एम . ए . हिन्दी द्वितीय वर्ष

पेपरः 1

आधुनिक काव्य

इकाई–१
कामायनी जयशंकर प्रसाद

अनुक्रम

१.१. उद्देश्य
१.२. प्रस्तावना
१.३. विषय – विवरण
    १.३.१. जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं रचना परिचय
    १.३.२. कामायनी : संक्षिप्त कथावस्तु
    १.३.३. कामायनी : महाकाव्यत्व
    १.३.४. कामायनी : इतिहास और कल्पना
    १.३.५. कामायनी : रूपकत्त्व
    १.३.६.कामायनी : समरसता दर्शन
    १.३.७. छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर कामायनी का मूल्यांकन
१.४. शब्दार्थ
१.५. सारांश
१.६. स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
१.७. क्षेत्रीय कार्य
१.८. संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

१.१ उद्देश्य

जयशंकर प्रसाद के जीवन एवं रचना परिचय प्राप्त करेंगे।

महाकाव्यत्व की कसौटी पर कामायनी का मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

कामायनी में चित्रित समरता दर्शन को स्पष्ट करेंगे।

छायावादी काव्य प्रवृतियों के आधार पर कामायनी का मूल्यांकन कर सकेंगे ।

१.२. प्रस्तावना

छायावाद के प्रमुख चार हस्ताक्षरों में से एक हस्ताक्षर के रूप में जयशंकर प्रसाद को जाना जाता है। सर्जक प्रसाद का आविर्भाव उस समय में हुआ था जब भारतेंदु युग अंतिम साँसे गिन रहा था। जब वे साहित्य सृजन की ओर उन्मुख हुए, तो उनकी प्रतिभा से चकित होकर कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास सभी उनके कलम के श्रृंगार बनने को उत्सुक हो उठे। उन्होंने अनेक कहानियाँ, नाटक, निबंध लिखें परंतु उनकी प्रतिभा का उत्तमांश कामायनी के रूप में ही हमारे सामने है। कामायनी को केवल आधुनिक युग की श्रेष्ठ कृति ही नहीं माना जाता बल्कि जीवन काव्य तथा छायावाद के उपनिषद् का दर्जा

दिया जाता है। आज जिधर दृष्टि जाती है, उधर अविश्वास, संकीर्णता, स्वार्थ, दम्भ, अतृप्ति, और आकुलता दिखाई देती है। वे इस बात को भली-भाँति जान गए थे कि जीवन को इस विषमता से निकालना है, क्योंकि नकारों, अतृप्तियों, अनवरत व्यथाओं के दंश सहकर जीवन नहीं जिया जा सकता। जीवन को सम्यक् रूप देने के लिए आवश्यक है कि इन प्रश्नों, समस्याओं और स्थितियों से निजाता पायी जाये। इसी उदात्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने कामायनी में समरसता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। जब तक मनुष्य स्वत्व से उपर उठकर परहित के संदर्भ में सोचेगा नहीं तब तक आत्मस्थिती को नहीं प्राप्त कर सकता यह संदेश वे कामायनी के माध्यम से समस्त आधुनिक समाज को देने का प्रयास करते हैं। आज जब की मनुष्य धर्मवाद, संस्कृतिवाद, भाषावाद राष्ट्रवाद, प्रांतवाद, स्त्रीवाद, आंबेडकरवाद जैसे कई वादों में विभक्त होकर मानवतावाद को तिलांजली दे रहा है तब प्रसाद द्वारा प्रतिपादित समरसता का दर्शन निश्चित ही फलदाई हो सकता है। इसी आशा-अपेक्षा के साथ प्रस्तुत इकाई में कामायनी में अभिव्यक्त महाकाव्यत्मकता, इतिहास और कल्पना, रूपकत्व, समरसता दर्शन और छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधारपर कामायनी का मूल्यांकन इन मुद्दों पर विस्तार से प्रकाश डालने की कोशिश की है।

१.३. विषय - विवरण :

१.३.१. जयशंकर प्रसाद जीवन एवं रचना परिचय

प्रेम, सौंदर्य, करूणा, वेदना और मानवता के रंगों के मेल से जो मानवाकृति उभरी, उसे आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रसाद के नाम से जाना जाता है। प्रसाद का जन्म ३० जनवरी १८९० में वाराणसी (उ.प्र.) काशी के गोवर्धन सराय मोहल्ले के सुँघनी साहु वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम देविप्रसाद साहु था । प्रसाद को प्रारंभ में घर पर ही अध्यापक रखकर संस्कृत, हिन्दी, फारशी और उर्दू की शिक्षा दी गई । जब वे बारह वर्ष के थे तब उनके पिता का देहान्त हुआ। उसके बाद माता और बडे भाई का भी निधन हो जाने से उनपर सत्रह वर्ष की आयु में ही परिवार का उत्तरदायित्व आ पडा। इस बीच गृहकलह के कारण उनके व्यवसाय को भी धक्का लगा और उनका वैभवशाली परिवार कर्ज के भारी बोझ से दब गया। जयशंकर प्रसाद यह वह व्यक्ति था जिसकी आत्मा में प्रेम और करूणा का जल था, आँखो में सौंदर्य को देखने-परखने और पाने की ललक थी तथा जिसके मनोराज्य में मानवता, करूणा और आनन्द की भावोच्छल प्रतिमा इधर से उधर चक्कर काटती रहती थी। छायावादी कवियों में उनका का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वे नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार और निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित है, परंतु उनकी ख्याति का सर्वाधिक प्रमुख कारण उनका कवि रूप ही रहा है। छायावादी काव्यकृति कामायनी के कारण उन्हें प्रसिद्धि मिली। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने नौ वर्ष की अल्पायु में कलाधर नाम धारण कर काव्य रचना बाद छायचित्र के प्रमुख कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। प्रसाद ने दोनों भाषाओं में रचनाएँ लिखी। उनके बहुआयामी कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ. हरिचरण शर्मा लिखते है - प्राज्ञिक और भावुक प्रसाद का कृतित्व विविधात्मक है। उनके नाटक इतिहास रस की निष्पत्ति करते हुए राष्ट्रीय संस्कृति की तात्त्विक मीमांसा करते है तो उपन्यास यर्थावाद का सशक्त प्रस्तुतिकरण। कहानियों में इतिहास, रोमांस, करूणा और सामायिक चिन्तन अभिव्यक्त हुए है तो काव्य में संस्कृति, दर्शन, कल्पना और अनुभूति का विनियोजन। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं- चित्रधार, प्रेमपथिक, करूणालय, महाराणा का महत्व, कानन कुसुम, झरना, आँसू, लहर, कामायनी आदि।

उनका प्रारम्भिक कृतित्व चित्रधार से कानन कुसुम तक की यात्रा को स्पष्ट करता है। विकसित तथा

प्रौढ कृतित्व की संवाहिका कृतियों में झरना, आँसू, लहर और कामायनी को लिया जा सकता हैं। भाव, चिन्तन और कला तीनों ही संदर्भों में प्रसाद चित्रधार के माध्यम से मार्गान्वेषण करते प्रतीत होते हैं। कानन कुसुम प्रसाद की काव्य यात्रा का दूसरा सोपान है। इसके वर्तमान उपलब्ध संस्करण में ४९ कविताएँ संकलित हैं। कानन कुसुम सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक रूप-रचना का प्रतीक है। इसकी कविताएँ प्रकृतिपरक, भक्तिपरक, विनयपरक और आख्यानपरक हैं। करूणालय का प्रकाशन सन १९१३ में हुआ, किन्तु बाद में उसे चित्राधार में सम्मिलित कर लिया गया। यह दृश्यकाव्य है जिसे गीतिनाट्य के ढंग पर लिखा गया है। 'महाराणा का महत्व' प्रसाद द्वारा रचित आख्यानक रचनाओं की अगली कडी है। इस ऐतिहासिक खण्डकाव्य में प्रसाद की महाराणा प्रताप, रहीम और अकबर से संबद्ध कथानक से सर्जन क्षमता व्यक्त हुई है। प्रेमाख्यान के आधार पर रचित 'प्रेमकथित' कृति में छायावादी काव्य चेतना की पीठिका के दर्शन होते है। यह कोरा प्रेमकाव्य नहीं है। इसमें कवि ाक जीवन - दर्शन और दृष्टिकोए भी कलात्मक शैली में अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमपथिक जगत् और जीवन के समन्वय का काव्य है। प्रसाद में आधुनिक प्रवृत्ति की झलक १९१८ में प्रकाशित 'झरना' कविता संग्रह से मिल जाती है और यही से छायावादी युग का आरंभ माना जाता है। झरना से पूर्व तक प्रसाद का काव्य वस्तुनिष्ठ प्रतीत होता है। यहाँ पहली बार प्रसाद आत्मनिष्ठता और निजता के प्रकोष्ठ में बैठकर नई भावधारा की यमुना में अवगाहन करते प्रतीत होते है। इसी में छायावाद का रंग रहस्य और रोमांस, कल्पनाप्रवण और लक्षणिक शैली की गोद में पलता दिखाई देता है। इसके बाद 'आँसू' नामक काव्यरचना का क्रम आता है। 'झरना' काव्य संकलन को छायावादी काव्य प्रयोगशाला का प्रथम अविष्कार माना जाता है, तो 'आँसू' काव्य संकलन को निष्कर्ष । आँसू घनीभूत मानवीय वेदना का काव्य है। लहर प्रसाद की एक श्रेष्ठ मुक्तक रचना है। इसमें कुल ३३ कविताओं को स्थान प्राप्त है। 'लहर' प्रसाद की जीवनानुभूतियों की सरिता से उठी हुई वह शालीन लहर है जिसका हिमांगी रंग कवि के भावोच्छ्वासों पर चढकर उसे तरल और स्निग्ध बना गया है। इसमें संकलित कविताओं को विषय की दृष्टि से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता हैं - आत्मपरक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, आख्यानात्मक कविताएँ। लहर में अतीत की मादक स्मृतियों के बिंब हैं, रूप सौंदर्य के उदात्त एवं गरिमामय चित्र हैं, आनन्द और उल्हास की मधुर भावोर्मियाँ है, आशा और निराशा का उद्वेलन हैं। इस प्रकार 'लहर' का भावात्मक पक्ष न केवल आकर्षक है, अपितु विविधता, घनता, अविस्मरणीय संदर्भो की योजना एवं भावानुभूतियों की सार्थक व्यंजना के कारण समृध्द भी है। '**का**मायनी' महाकाव्य में उनकी छायावादी प्रवृत्ति का चर्मोत्कर्ष दिखाई देता है। सन् १९१३ से पहले प्रसाद ब्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे, परंतु नई कविताओं का प्रारंभ उन्होंने हिन्दू पत्रिका के द्वारा किया।

इसके बाद महाकवि जयशंकर प्रसाद की रचना 'लहर' का प्रकाशन हुआ। इसमें कवि वैयक्तिक धरातल से उपर उठकर जीवन तथा जगत् के संबंध में अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए दिखाई देते हैं। बाद में कामायनी के कारण प्रसाद को विशेष ख्याति मिली। इसमें मनु, श्रद्धा और इडा की पौराणिक कथा का आधार लेकर प्रतीक प्रधान शैली के माध्यम से आनन्द का संदेश दिया है। प्रसाद की प्रतिभा का उत्तमांश 'कामायनी' के रूप में सामने आता है। कामायनी को आधुनिक गीता का दर्जा दिया जाता है। उसे न केवल काव्य बल्कि महाकाव्य, जीवन काव्य माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ. हरिचरण शर्मा अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं - "यह माना कि कामायनी छायावाद का उपनिषद् है, यह भी माना कि वह आधुनिक युग की श्रेष्ठ कृति है, यह भी सत्य है कि उसमें सृष्टि के विकास की क्रमिक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, पर यह सबसे बडा सत्य है कि कामायनी एक जीवन-काव्य है।"

महाकाव्य की सभी विशेषताओं से युक्त इनकी इस रचना को देखकर इन्हें मंगला-प्रसाद पुरस्कार से

सन्मानित किया गया। प्रसाद छायावाद के प्रमुख आधारस्तंभ है। प्रसाद ने कहानियाँ, उपन्यास और नाटक भी लिखें । उन्होंने करूणालय, विशाखा, अजातशत्रु, स्कन्धगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक लिखें हैं। उनके नाटकों में मन का संघर्ष बडे सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है। उन्हें प्राचीनता से कितना मोह था इसका अनुमान उनके नाटकों की कथावस्तु से ही लगाया जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य में मूलतः कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार और निबंधकार के रूप में जान-पहचाने जाते हैं। समस्त हिन्दी प्रेमी उनके योगादान को कभी नहीं भूलेंगे।

१.३.२. कामायनी की कथावस्तु –

कामायनी प्रसाद की अंतिम काव्यकृति है। इसे छायावाद, रहस्यवाद का प्रातिनिधिक काव्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। कामायनी की कथा का आधार पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में वर्णित जलप्लावन की घटना से लेकर पुराणों में बिखरी हुई सामग्री का अध्ययन, वर्षो तक चिन्तन, मनन कर कवि ने इसकी रचना की है। अपनी कल्पना द्वारा इन्होंने अनेक स्थलोंपर कथा में परिवर्तन भी किए हैं। अंतिम भाग में उनकी मौलिकता विशेष दर्शनीय है। इसमें कुल पंद्रह सर्ग हैं, जिनके शीर्षक स्थान, घटना या पात्र के नाम पर न रखकर मानसिक वृत्तियों के नाम से रखे गए हैं। उन मानसिक वृत्तियों का क्रम ऐसा रखा गया है जैसा कि मनुष्य के विकास का होता है। कुछ का संबंध पुरूष से है, कुछ का नारी से है और कुछ का दोनों से हैं । प्रसाद ने इस रचना में मनु के माध्यम से युग-युग के मानव का और श्रध्दा के माध्यम से युग-युग की नारी का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दी की महनीय उपलब्धि के रूप में कामायनी दार्शनिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक वैशिष्ट्य का समीकृत रूप लेकर आई है। 'चिन्ता' सर्ग से लेकर ''आनन्द'' सर्ग तक की यात्रा करता हुआ यह काव्य हिमगिरी की एक चेतनता से समरस होनेवाले मनु के जीवन का इतिहास है। इसके प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा और इडा हैं, जो इच्छा, क्रिया और ज्ञान के प्रतिनिधि हैं।

कामायनी एक साथ मनु और श्रध्दा की, पुरूष और नारी की एवं मनोभावों के विकास की कथा है। कामायनी की कथा एक अवलंब (आधार) माना है। ''कामायनी में भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन की साहित्यिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है और इस बहाने विश्व की वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।'' इसके अनेक दृष्टिकोणों को समझना ही कामायनी की वास्तविकता को समझना है। इसमें बहुत ही कम पात्र हैं, संक्षेप में जगत् की झाँकी, मनोभावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। कलात्मक भूमिका पर भी कामायनी का गौरव और महत्व असंदिग्ध है। भाषा, प्रतीक और बिम्ब की दृष्टि से कामायनी का कला-वैभव छायावाद की समस्त विशेषाओं का निदर्शक है, तो भावात्मक भूमिका पर उसमें आए रस, प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य, आनन्द, मानवता और जीवन के निर्माणकारी मूल्यों का विनियोग हुआ हैं। रूपक-प्रयोग, मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य के कारण तो कामायनी और भी महनीय हो गयी है। तात्पर्य यह है कि कामायनी प्रसाद के जीवनानुभवों का निचोड है, उनके समस्त चिन्तन का काव्यात्मक निष्कर्ष है।

कामायनी के कुल पंद्रह सर्गों का नामकरण निम्न प्रकार से किया गया हैं। कथावस्तु में कथ्य पर क्रमशः प्रकाश डाला जा रहा है –

१. चिन्ता	६. लज्जा	११. संघर्ष
२. आशा	७. कर्म	१२. निर्वेद

३. श्रद्धा ८. ईर्ष्या १३. दर्शन

४. काम ९. इडा १४. रहस्य

५. वासना १०. स्वप्न १५. आनन्द

*** चिन्ता –**

मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरूष है। वे मानवजाति के आदि पुरूष और देव जाति के एक शक्तिशाली पुरूष भी माने जाते हैं। एक समय था कि जब देव जाति की दृढ प्रतिष्ठा थी, परंतु जलप्रलय हुआ और देवजाति का विनाश हुआ। उनमें से केवल मनु जीवित रहे।इस सर्ग के आरंभ में मनु हिमालय की एक ऊँची चोटीपर बैठे हैं। उनके चारों ओर जल ही जल है। विनाश के इस दृश को देखकर मनु चिन्तित दिखाई देते हैं। उनका हृदय विषादग्रस्त हैं। वे चिन्ता को संबोधित करते हुए कहते हैं –

''मनन करावेगी तू कितना?उस निश्चिन्त जाति का जीव–

अमर मरेगा क्या ? तू कितनी गहरी डाल रही हैं नींव। ''

उन्हें अतीत के वैभव का बार–बार स्मरण होता है। मदिरा, विलासिनियों के साथ रतिक्रिडा, नृत्य, यज्ञ में प्राणियों की बलि दी जाना उन्हें सब याद आता हैं। देवता नित्य उत्सव मनाते हैं।आनन्द –विलास में विभोर रहते हैं। शक्ति और वासना का अन्त सदैव ही वासना में होता है। देवजाति का इतिहास भी इस कथन को प्रमाणित करता है। बिजली चमकने लगी, घोर वर्षा हुई, सर्वत्र जल ही जल हो गया। केवल मनु बचे, वे एक नौका में बैठकर सागर की लहरों के थपेडों में डूबने–उभरने लगे। एक बडी मछली ने नौका पर प्रहार किया। इस चोट से मनु की नौका हिमालय के उच्च शिखर पर आ टकराई और मनु बच गए। एक ऊँची शिलापर बैठकर भयावह जलप्लावन देखने लगे। उन्हें चिन्ता ने घेर लिया, वे देवों के गत विलासमय जीवनपर विचार करने लगे। वह वैभव, अतुल शक्ति, प्रेमालिंगन क्या एक स्वप्न था? धोखा था? उसी समय उनके मन में विचार आया कि यह जीवन क्षणभंगुर है और मिथ्या (झूठ) है। मृत्यु ही नित्य और सत्य है। कुछ काल तक यह जलप्लावन होता रहा परंतु धीरे–धीरे प्रकृति का प्रकोप शान्त हुआ। मनु ने देखा प्रलय की रात समाप्त हो रही थी। उन्होंने स्वस्थता की साँस ली और आशा के संचार से स्वस्थ हुए। उदयमान ग्रह,नक्षत्रों को देखकर मनु के मन में जिज्ञासा उठ खडी हुई और उन्हें लगा कि इनके पीछे कोई सत्ता है, यही आशा थी।

*** आशा –**

अंधकार नष्ट हो गया और प्रकृति ने एक नया रूप ले लिया। ऊषा (सुबह) के वर्णन से आशा सर्ग का आरम्भ होता है। हिम पिघलने के साथ वनस्पति स्वच्छ हो गई। वायु प्रवाहित होने लगी। आकाश में मानो किसी चतुर चितेरे ने रंग भर दिये हो। मनु को इस बात का एहसास होने लगा कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर शक्ति और सौन्दर्य का मूल है। प्रकृति के इस सारे बदलाव ने जीवन की आशा को संचारित किया और वे भविष्य के सुख स्वप्न देखने लगे। उनमें आशा ज्योति जलने लगी। उन्होंने एक सुन्दर गुहा में अपना निवासस्थान बनाया। भोजन बनाने के लिए धान की बोरियाँ चुनते हैं, जो अन्न बचता है, उसे प्रलय पीडित व्यक्ति के लिए छोड देते हैं। वे अपना जीवन तप में लगा देते हैं, किन्तु फिर भी अतित की स्मृति उनसे भुलाए नहीं भूलती। एकान्त जीवन बडा निर्मम हो जाता है। उनके ह्दय में वासना का जागरण होता है किन्तु वहाँ मनु के अतिरिक्त कोई नहीं है। उनमें जीवनसाथी की आशा बलवती हो रही थी।

❊ श्रध्दा –

इस सर्ग में कामभोग की बालिका 'श्रध्दा' का आगमन तब होता है, जब मनु चिन्ता में लीन थे। 'श्रध्दा' गंधर्व देश की रहनेवाली है, जो घुमने के लिए निकली थी। हिमालय दर्शन के लिए इधर आई थी। वह मनु से नाटकीय ढंग से उसका परिचय पूँछती है–

''कौन तुम?संसृति–जलनिधि तीर तरंगों से फेकी मणि एक,

कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक?''

इस प्रश्न को सुनकर मनु का हृदय मधुर रस से ओत–प्रोत हो गया। उन्होंने देखा कि उनके सामने गांधार देश के मुलायम रोम वालें भेडों की चर्म से ढकी हुई एक सुन्दर बाला खडी है। मनु कहते है –

''नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरूपाय।

एक उल्का–सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।।''

मैं एक भाग्यहीन व्यक्ति हूँ, जिसका जीवन सूत्र देवों के हाथों में है। प्राणी सर्वथा असमर्थ हैं, मैंने देवों के विलासमय जीवन को देखा है। इस संसार में सब कुछ नश्वर है, आज जो वह कल नहीं, जीवन का अंत ही निराशामय है। श्रद्धा मनु को जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने हेतु प्रोत्साहित करती है। मनु के नैराश्यपूर्ण जीवन को देखकर श्रध्दा ने उन्हें उबारा, 'उठो और कर्म में प्रवृत्त हो जाओ'! वह मनु से यह भी कहती है कि ''यह जीवन व्यर्थ गवाने के लिए नहीं है, फिर तुम में तो अपार शक्ति है और तुम्हारे सामने प्रकृति का व्यापक–विस्तार है। देव संस्कृति से ध्वस्त मानव संस्कृति की सृष्टी करो, पर अकेले तुम आत्मविस्तार नहीं कर पाओगे। मेरी सेवा तुम्हें समर्पित है।''

❊ काम :–

मनु बैठे सोच रहे थे कि यौवन भी कैसी विलक्षण वस्तु है, जिसके आगमन से मन में उन्माद और उल्हास छा जाता है। मनु में उल्हास भर गया। वह सौन्दर्य के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठा। स्वप्न में काम ने सूचित किया कि मैं देवताओं का उपास्य बन गया था। मनु सौन्दर्य का उपभोग करना चाहते हैं। मनु विचारों में डूब गए, उन्हें किसी की ध्वनि सुनाई दी जिसका आशय यह था कि– देवों के विलासमय जीवन का सहचर मैं काम हूँ, मेरी स्त्री का नाम रति है जो कि अनादि वासना का रूप थी और आकर्षण का काम करती थी। इस प्रकार हम दोनों के सहयोग से ही इस सृष्टि का प्रसार होता रहा। प्रलय के जल–प्लावन से देव–समाज तो लुप्त हो ही गया था, किन्तु मेरी प्यास अभी बूझी नहीं है। काम मनु को संबोधित करते हुए कहते हैं–

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा संतुष्ट ओघ से मैं न हुआः

आया फिर भी वह चला गया तृष्णा को तनिक न चैन हुआ।

काम मनु को भी समझाते हुए कहता है कि ''हे मनु, तुम भी भीतर ही भीतर झुलस रहे हो, शांति और शीतलता पाना चाहते है और उस प्रेम कला को पाना चाहते है तो उसके पात्र बनो।'' मनु उस प्रेम कला तक पहुँचने का मार्ग पूछते है परंतु जागने पर पाते हैं कि काम की ध्वनि बंद हो चुकी है। यही पर सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

*** वासना :–**

मनु और श्रद्धा का परिचय बढने लगा, पर संकोचवश एक–दूसरे के प्रति हृदय खोल न सकें। वे दोनों समीप होते हुए भी दूर थे। एक दिन संध्या समय मनु ने देखा एक बाल पशु से क्रिडा कर रही है। मनु यह सोचते हैं कि मुझ–से यह पशु ही भाग्यशाली है। वे क्षुब्ध(दुःखी) होकर मन ही मन में बोले कि सब मेरे ही संचित अन्न से पलते हैं। उनके मन में ईर्ष्या जाग उठी। उनका हृदय व्यथा से भर गया। श्रद्धा उस पशु से जितना प्रेम करती है, उतना प्यार मुझे क्यों नहीं देती। संसार की सभी उपयोगी और सुन्दर वस्तुओं का उपयोग मैं अपने सुख के लिए अवश्य करूँगा। श्रद्धा मनु के पास आ जाती है। वह मनु के बदले भाव को पहचान लेती है। श्रद्धा अपने कोमल हाथों से मनु को सहलाती है। मनु की ईर्ष्या दब गई और मनु का हृदय शान्त हुआ। श्रद्धा मनु से परम सुख का अनुभव कर रही थी, परंन्तु उनकी तात्कालिक तृष्णा शांति का कारण न बन सकी क्योंकि इसी समय नारी सुलभ लज्जा ने उसके हृदयपर शासन जमा लिया।

*** लज्जा :–**

नारी शरीर में लज्जा इस मनोभाव का उदय कैसे होता है यह प्रसाद ने सर्ग की प्रथम पंक्ति में ही अभिव्यक्त किया हैं –

''कोमल किसलय के अंचल में नन्ही कलिका ज्यों छिपति–सी

गोधुली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती–सी।''

लज्जा का उदय होना नारी का धर्म है। प्रसाद ने इस भाव का वर्णन काव्य शिल्प और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से चर्मोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ सर्ग माना जाता है। श्रद्धा आत्मसमर्पण कर देती है और मनु को सांत्वना देना चाहती थी, परन्तु लज्जा के कारण वह आगे नहीं बढ पाती। श्रद्धा के शरीर में रोमांच उठते हैं, वह स्वयं सिकुडती जाती है। अंग लचकने लगता है, हास्य में संकोच आ जाता है। दृष्टी में वक्रता आने से पलके झुक पडती हैं। वह चाहती है कि मनु को सुख दे पर संकोचवश नहीं दे पाती। लज्जा श्रध्दा से कहती है कि 'हे बालिके! तुम मुझे देखकर इतनी चकित मत हो। तुम अपने मन की चंचलता को दूर करो। प्रेम में कोई भी कदम उठाने से पहले तुम अच्छे प्रकार से विचार कर लो। सौन्दर्य के कारण हृदय नवीन आशाओं से भरा हुआ होता है। श्रद्धा ने कहा–तुम्हारा कहना सत्य है, पर मेरा मन पुरूष सम्पर्क से शिथिल हो गया है। पुरूष से समता पाकर आत्मसमर्पण कर देना ही नारी का धर्म है। लज्जा चकित हो जाती है और कहती है, नर आश्रित रहने से मैं तुम्हें विचलित नहीं कर सकती, पर आज से नारी के प्रति श्रद्धा और विश्वास का ही आश्रय रहेगा, इसलिए पुरूष के क्रूर अत्याचारों को सहते हुए भी हँसकर उसके साथ जीवन के पथ पर चलना होगा।'

*** कर्म :–**

काम के प्रभाव के कारण, कुछ आशा और अभिलाषा से मनु के हृदय में कर्म की प्रेरणा उद्दीप्त हुई। गत जीवन के याज्ञिक संस्कार जागृत हुए। वे चाहते थे सोमरस का पान, भोग और जीवन में नूतन उत्साह संचारित हो। एक दिन आकुली और किलात नामक दो असुर जो प्रलय में बच गए थे, संयोग से उधर आ निकले। श्रद्धा के पशु को देखकर आकुली का मन मांस भक्षण के लिए ललचाने लगा परंतु यह असंभव था। किलात उसे मनु के पास ले आए। मनु यज्ञ करना चाहते थे, पर पुरोहित का अभाव था। किलात और आकुली जैसे असुर पुरोहितों के जाल में पडकर मनु के मन में स्थित हीन देव संस्कार पुनःजागृत हो जाते हैं। यज्ञ का अनुष्ठान करना, पशु बलि चढाना और सोमपान करना उसे भाने लगता है। मनु को लगता है

जैसे एक नई स्मृति आएगी, उत्सव होगा और श्रद्धा को भी विशेष कुतूहल होगा।

यज्ञ में पशु की हत्या से श्रद्धा को बडा दुःख हुआ। जब उसके बालपशु की बलि दे दी गई तब वह गुफा में चली गई। रात्रि में शैय्या पर पडी-पडी संसार की निष्ठुरता, सुख और दुःख पर विचार करती रही। मनु अपने सुख को सबकुछ मानने लगा था। श्रद्धा गहरी निद्रा में मग्न थी, वे उसके पास गए उसे सहलाने लग और कहने लगे कि यह तुम्हारी कैसी माया है, जिसे मैंने स्वर्ग बनया है। उसे यों ही विफल न करो। यह सोमरस अधरों को लगाओ और मस्ती में झुलो। श्रद्धा ने कहा आज तुम भाव में बह रहे हो, कल इसमें क्या परिवर्तन नहीं होगा? कल भी किसी के साथ यज्ञ रचोगे? पशुबलि दी जाएगी? यह कैसी निर्दयता है? प्रवंचना है? हे मनु! सभी को जीने का अधिकार है। मनु ने कहा - "श्रद्धा हमारा अपना सुख भी बहुमूल्य है। दो दिन के जीवन के सुख का उपभोग तो सर्वस्व है। इसी क्षणिक जीवन में मिलनेवाले सुख को तुम तुच्छ कहती हो।" श्रध्दा ने कहा - "दूसरे प्राणियों के प्रति भी हमारा कर्तव्य है। मानवता का मूल अंग है अहिंसा, स्वार्थ, त्याग और सेवा कर्म।"

इसप्रकार श्रद्धा का हृदय भी मधुर मादकता से भर चला था। मनु ने उसकी दुर्बलता को पहचाना और कहा इसके आगे तुम जैसा कहोगी वैसा ही करूँगा। सोमरस आगे बढा दिया, श्रद्धा लज्जा मग्न हो गयी और दोनों आलिंगन पाश में आबध्द हो गए।

*** इर्ष्या :-**

श्रध्दा ने क्षणिक आवेश में आकर आत्मसमर्पण कर दिया था। मनु ने श्रध्दा को प्राप्त कर लेने के बाद उनके लिए उसमें अब कोई लीनता नहीं रही थी। अब वे कुछ और प्राप्त करना चाहते थे। श्रद्धा का मुख गर्भ के कारण पीला पड गया था। वह एकाकी बैठ तकली पर ऊन काट रही थी। मनु के मन में बार-बार नवीन लालसा जन्म लेती है लेकिन तब तक शान्त हो जाती। उन्हें यह जीवन बंदी जैसे लगा। श्रध्दा में अब पहली जैसे आकुलता, प्रेरणा, आकर्षण, उत्साह नहीं रहा। कभी शालियाँ बिनती, तो कभी बीजों का संग्रह करती।

मनु शिकार से लौटे, उनके हाथ में मरा हुआ हरिण था। श्रद्धा ने कहा - "तुम कहा भटकते फिरते हो? तुम्हें किस वस्तु का अभाव है? जो इतनी व्याकुलता है, मैं एकाकी शून्यता का अनुभव करती रहती हूँ।" मनु क्षुब्धता से बोले - "तुम में वह अनुराग कहाँ जो पहले था। तुम दिन-रात तकली से लिपटी रहती हो। मैं पशु का मांस और वस्त्र ला देता हूँ, तब फिर यह प्रार्थना और अन्न के लिए प्रयत्न कैसा?" श्रद्धा बोली स्वार्थ के लिए पशु हिंसा मुझे स्वीकार नहीं, जिन्हें हम प्रेमपूर्वक पाल सकते हैं, उन्हें मारने की क्या आवश्यकता है। मनु ने कहा कि "सहज मिलनेवाले सुखों को मैं छोडने को तैयार नहीं हूँ। सुख क्षणिक है और विनाश शाश्वत है, तो उपलब्ध क्षणों को सुख से वंचित क्यों किया जाय? क्या दूसरों के लिए हम अपना सुख दे दे। मैं तुम्हारी आँखो में केवल मेरा अपना ही चित्र देखना चाहता हूँ। तुम में जीवन का नशा नहीं देखा। प्रलय के बाद अब यह स्पष्ट है कि इस छोटे से जीवन में जितना सुख प्राप्त कर सकते हो कर लो। मैं यह चाहता हूँ कि तुम अपना सारा प्रेम मुझे दे दो और मैं तुम्हारे प्रेम के संसार में विचरण करता रहूँ।" श्रद्धा उसे हाथ पकडकर अंदर ले जाती है। उसने उन्हें भावी शिशु के लिए निर्मित झोला दिखाया और कहा मैं कुछ समय बाद माता बननेवाली हूँ। यह ऊन उसी के लिए है। मैं तुम्हारे वियोग में उससे मन बहलाया करूँगी। मनु को यह बात बुरी लगी। उन्होंने कहा यह प्रेम विभाजन का नया ढंग कैसा? मैं अकेला ही तुम्हारे प्रेम का अधिकारी हूँ, यदि तुम मुझे अखंड प्रेम नहीं दे सकती, तो मैं हमेशा के लिए सबकुछ छोडकर यहाँ से जा रहा हूँ।

✻ इड़ा :–

श्रद्धा को त्यागकर मनु का जीवन लक्षहीन हो गया। घुमते-घुमते मनु उजडे हुए सारस्वत प्रदेश में पहुँचे। वहाँ विश्राम करते हुए मनु जीवन के संबंध में विचार करने लगे कि, संसार क्या है? इसमें मनुष्य का जीवन क्या है? मनुष्य को कर्मठ होना चाहिए कि अकर्मण्य मनुष्य स्वयं भी भयभीत रहता है और संसार को भी भयभीत करता रहता है। मनुष्य प्रतिक्षण जहाँ निर्माण में लीन है, वही वह नाश में तत्पर है। मनुष्य कटुता के बीज बो रहा हैं। मेरे लिए हिमालय प्रेरणादायक नहीं, सूर्य ही मेरे लिए आदर्श है। मैंने कभी किसी पर दया नहीं की, श्रद्धा की ममता को तोडा और सदा स्वार्थ में लीन रहा। मैं सबको कष्ट ही देता आया हूँ, परन्तु किसी को प्रसन्न नहीं कर सका। इसी के परिणामस्वरूप मैं कभी सफलता का मूँह न देख सका।

मनु देवों और असुरों के संघर्ष का स्मरण करते हैं। देवता यह समझते थे कि हम ही संसार के स्वामी हैं, हम ही बुज्ज हैं, अब हमे किसी के आश्रय की आवश्यकता नहीं; हम में अपार और अनंत शक्ति है। उधर असुर देह का सुख ही सबसे बडा सुख मानते हैं। वे शरीर कीं उपासना में लीन रहते थें। सुर-असुर में जो संघर्ष हुआ वही संघर्ष मनु के हृदय में हो रहा है। उसी के साथ उन्हें श्रध्दा की स्मृति हो आयी। काम की वाणी ने उन्हें कहा – ‘‘मनु तुम इसलिए दुःखी हो कि तुम भोग में ही सुख मानते हो और स्वार्थान्धता में वंशीभूत हो। तुम सदैव द्वेष, कलह, स्वार्थपरकता और निराशा से अभिभूत रहेंगे। कलाप्रेमी न रहकर सतत संघर्ष में लीन रहेंगे तथा अज्ञान और अंधकार से सदा दुःख के भाजन बनोगे।’’

मनु ने जब यह सुना तो वे बडे दुःखी हुए और कुछ क्षणों बाद उन्होंने एक बाला को देखा। परिचय से ज्ञात हुआ कि वह उस प्रदेश की महारानी थी और उसका नाम ‘इडा’ था। उसके केश तर्कजाल के समान बिखरे हुए थे। इड ने उन्हें अपने आश्रय के लिए निमंत्रण दिया और समझाया कि ‘‘यदि मनुष्य बुद्धि से काम ले तो वह अपने दुःखों का विनाश कर सुख का भागी बन सकता है। यह उजडा हुआ सारस्वत प्रदेश ही देश है। मुझे किसी की सहायता चाहिए, जिससे मैं अपने देश को पुनः बसाऊँ। मनु ने इडा के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया और उस दिन से ही नष्टप्रायः सारस्वत प्रदेश के पुनर्निर्माण में लग गए।

✻ स्वप्न :–

मनु श्रध्दा को छोडकर जब चले गए तब से उसके लिए जीवन भार-सा हो गया। अब मकरंद हीन-सा, सुमन-रंगविहीन-सा, चित्र-प्रकाशविहीन-से, चंद्र-तारे रहीत रात्रि के समान लगना लगा था। वह उपेक्षा और विरह वेदना की असीम सरिता में पूर्णतः मग्न थी। एक दिन संध्या समय वह सोचने लगी कि ‘‘जीवन में सुख अधिक है या दुःख। आँखो के सामने जितने भी चित्र दिखाई देते वे अंततः नष्ट हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे इंद्रधनुष्य। मेरा दीपक एकाकी जल रहा है, अच्छा सुखपूर्वक जले, आज कोकिल बोलेगी बोले, मुझे सबकुछ सहना होगा। मुझे अतीत का संयोगजन्य सुख याद आ रहा है, परन्तु सम्बलदाता ही कही जा छिपा हैं तब मुझे उससे क्या? गत मधुमय अभिलाषाओं का स्मरण आते ही उसके मन में प्रश्न उठा कि कामायनी तू प्रतिदान क्यों नही चाहती, प्रेम में तो प्रतिदान ही प्रधान होता है। उसने देखा कि प्रकृति में सभी संप्रृक्त (लीन) हैं, परंतु वह वियुक्त और परित्यक्त है। उसका मन कुंठित हो गया, ह्दय भर आया और आँखों में आँसू आ गए। इसी समय एक कोमल ध्वनि उसके कानों में पडी – ‘माँ’। वह व्याकुल हो गयी। अपने पुत्र को अर्थात् ‘मानव’ को अंक में भरने के लिए दौड पडी। उस शिशु की कोमल भुजाएँ उसमें आ लिपटी। माँ ने दुलार दिया और दोनों पुनः निद्रा की सुखद गोदी में समाहित हो गये। श्रध्दा ने अर्धनिद्रिस्त अवस्था में स्वप्न देखा– ‘‘मनु ने सुन्दर नगर बसाया हुआ है, सभी उनके सहयोगी हैं, खेती हो रही है,फसलें लगायी जा रही है। सारे सुख के साधन एकत्र कर दिए जा रहे हैं। सारे प्राणी मिलकर

परिश्रम करते हैं। फलस्वरूप वह नगरी धन-धान्य से, सम्पन्नता से भर गयी है। श्रध्दा ने अपने को विचित्र स्थान पर पाया। वह चकित होकर चारों ओर देखती रही और नगर के सिंहद्वार के भीतर घुसी। नगर में बहुत ऊँचे-ऊँचे महल बने थें।उनमें से एक महल सोने के कलशों से सुशोभित है। वहाँ प्रेमी युगल आमोद-प्रमोद में लीन थे। दूसरी ओर नवीन मंडप में एक सिंहासन पर मनु बैठे थे। 'इडा' उन्हें मदिरा पिला रही है किन्तु मनु उसे पीकर तृप्त नहीं हो रहे हैं। मनु पीते-पीते बोले अभी कुछ और क्या करना है? इडा ने कहा कि "अभी तुम्हारा कर्म पूरा नहीं हुआ", मनु ने कहा ठीक है, नगर तो बस गया पर मेरा मानस अभी सूना है और वह तुम्हें पाकर ही बसेगा।"इडा चौकी और कहा, यह तुम क्या कहते हो! तुम प्रजापति हो और मैं तुम्हारी प्रजा हूँ।" मनु ने कहा, तुम मेरी प्रजा नहीं, मेरी रानी हो, मेरे प्रण को स्वीकार करो और फिर मनु ने उसे जबरदस्ती आलिंगनपाश में आबध्द कर लिया। मनु के इस अत्याचार से प्रकृति क्रुध्द हो गई, पृथ्वी काँपने लगी और आकाश में बहकर गर्जना हुई, प्रजा तो संतान के समान है और आज मनु अपनी ही पुत्री के साथ अत्याचार करने पर तुले हैं। दैवी प्रकोप हुआ, आकाश की सारी देवशक्तियाँ क्रोधित हो उठी, जिससे भयग्रस्त हो प्रजा जनशरणार्थ राजद्वारपर आयी और भयंकर कोलाहल करने लगे। इडा यह देखकर वहाँ से चली गई और मनु भी भयभीत होकर सोने के लिए चले गए। मनु समझ गए कि यह सारा उत्पात इडा का खडा किया हुआ है।

श्रद्धा स्वप्न में भी काँप उठी, जिससे उसकी निद्रा भंग हो गई। मनु के इस कृत्यपर उसे शोक हुआ, परन्तु शीघ्र ही ममता ने मन को आ घेरा। वह सोचने लगी अब क्या होगा? और इसी चिन्ता में रात बीत गई।

* संघर्ष :-

श्रध्दा का स्वप्न सत्य हो गया। मनु शैयापर पडे-पडे सोचने लगे कि मैंने अपने बुद्धि के बल से लोगों को संघटित तो किया, सुखी बनाया और आज वे विद्रोही बन गए। मैंने शासन के लिए नियमों का निर्माण किया, परन्तु क्या मैं भी नियमबध्द रहूँ। जब मैं श्रद्धा का ही ममतापाश तोडकर भागा तब इडा के अनुशासन में मैं कैसे रह सकता हूँ? इस संसार में तो सभी बंधनमुक्त है और सभी कुछ परिवर्तनशील है। आकाश में भी सभी ग्रह-उपग्रह अस्थिर हैं तथा जल, थल और वायु में सभी कुछ परिवर्तन चक्र में अपरिवर्तनशील है। मनुष्य भी आवागमन की चक्की में पिस रहा है। इसप्रकार समस्त संसार ही महाकाल का दास बना हुआ है। फिर क्यों न प्राप्त क्षणों का सुखमय उपभोग किया जाय?

इड़ा को देखकर मनु की विचार श्रृंखला टूट गई। इडा ने कहा कि "यह सत्य है कि तुम शासक (राजा) हो और तुम्हीं ने नियमों का निर्माण किया हैं परंतु तुम्हें भी तो नियमबध्द होना चाहिए। संसार में वही अवशिष्ट है, जो शक्तिशाली है और शासक की शक्ति स्वार्थ को छोडकर प्रजा के हितचिंतन में है।" मनु बोले कि "यह कैसे हो सकता है कि मैं शासक होते हुए भी अपनी उपभोग्य वस्तुओं का उपभोग भी न कर सकू। दैवीय प्रकोप से मैं नहीं डरता और आज मैं तुम्हें जाने न दूँगा।"

इड़ा ने समझाया कि "ऐसा अनाचार न करो इसका परिणाम बुरा होगा। देखों, प्रजा शरणागत हैं उसकी चिन्ता न करो।" मनु ने उत्तर दिया, तुमने मुझे दृढता का संघर्ष करना सिखाया और तुम ही मेरा तिरस्कार करती हो। अब कुछ भी परिणाम हो, मैं तुम्हें अपना करके ही रहूँगा। "इडा ने पुनः उद्‌बोधन किया कि यह ठीक नहीं है, परंतु तुम्हारा यह काल अनर्थ होगा। जिसका परिणाम तुम्हें भोगना पडेगा। अभी समय है और रात्रि के अवसान से पूर्व ही तुम अपनी भूल को समझो।"

इतना कहकर इडा द्वार की ओर चल पडी परन्तु मनु ने उसे अपने आलिंगन में जकड लिया। ठीक इसी समय सिंहद्वार टूट गया और जनता भीतर घुस गयी। उस जनता के नेता थे आकुली और किलात।

मनु ने उनकी भर्त्सना की परंतु अंत में युद्ध हुआ। जिसमें जनता के सहस्त्रों व्यक्ति आहत हुए परंतु मनु मरणासन्न होकर धराशायी हो गए।

***निर्वेद :-**

संघर्ष के बाद समस्त सारस्वतनगर दुःखी दिखाई देता था। इडा सोचने लगी "यह आदमी कितना क्रूर है,इसने मेरे उपकार का यह मूल्य चुकाया, मेरी पूजा की हत्या कर डाली। उसे मनु के पतन से ग्लानी होती है। अच्छा ही हुआ यह दंड मिला, परंतु नहीं यह मुझसे प्रेम करता था। उसी समय उसने सुना कि कोई दूसरा कहते आ रहा था, "अरे कोई बता दो मेरा पगला निवासी कहाँ है?" वह श्रद्धा थी और उसके पीछे-पीछे चला आ रहा उसका पुत्र मानव था। श्रद्धा ने आलोक में देखा कि मनु घायल है। उसने उसे पहचान लिया और अपना कोमल हाथ उसके ऊपर घुमाया। वह उसे होश में ले आई। बालक पिता को पाकर परमानंदित हुआ। पति-पत्नी और पिता-पुत्र का मिलन हुआ। मनु को अत्यंत सुख मिला। मनु निर्वेद से दबे थे और यह कह रहे थे कि "तुमने मुझे जीवन का रहस्य बताया।"

प्रभात की प्रथम किरणों के साथ मनु ने आँखे खोली। श्रद्धा की प्यारभरी दृष्टि देखकर इडा को वहाँ से चले जाने के लिए संकेत मिला था। मनु ने श्रद्धा से दूर चलने के लिए कहा परंतु श्रद्धा ने यह कहा कि वे अभी स्वस्थ नहीं है उन्होंने कहा कि 'श्रद्धे प्रलय से बचे हुए मुझे तुमने सहारा दिया। साथ ही बडा दुलार, प्रेम और विश्वास भी दिया। तुमने ही मेरे भीतर आत्मगुणों को पूँजीभूत किया। कष्टों को सहने की शक्ति दी परंतु मैं स्वार्थी तुम्हारा मूल्य नहीं समझ सका। मैं बडा ही पापी हूँ, मैं अब क्या कहूँ मेरी अंतरात्मा अपने आप पर ही क्षुब्ध हो रही है। मेरी कामना है कि तुम इस बालक सहित सुखी रहो। दिन बीता, रात भी गयी। प्रातःकाल हुआ तो मनु का कहीं पता नहीं था। ये सबको सोते हुए छोडकर भाग गए थें।

***दर्शन :-**

श्रद्धा सारस्वत नदी के तट पर बैठी है। कुमार को समझाने लगी कि जीवन कितना सुन्दर है। यह विश्व तो सुखद शान्ति से भरा नीड है। पीछे इडा खडी थी। उसने सुअवसर पाकर कहा - "हे अम्बे! मुझसे इतनी विरक्ति क्यों? श्रध्दा बोली विरक्ति क्यों? तुमने तो मेरे प्रवासी को शरण दी थी। मेरे पास ममता के अतिरिक्त और क्या है?मेरे पति ने तुम्हारा अपराध किया था, इसलिए मैं ही क्षमापार्थी हूँ।"

इड़ा ने कहा "नहीं, अपराध तो मनुष्य से होता है और स्त्री से भी होता है, उसको क्षमा कर देना सबसे बडा दूषण होगा। मुझे दुःख इस बात का है कि व्यक्ति अपने अपराध नहीं मानता। मैंने मनुष्य को बुध्दि दी परंतु मनुष्य उसका दुरूपयोग कर रहा है। अपने-अपने कर्तव्य को भूलकर सभी वैमनस्य से जल रहे हैं और संघर्ष में लीन हैं। समझ में नहीं आता कि जो नियम बनाते हैं, वही नियमों का भंग क्यों करते हैं। तो फिर क्या करे यह सब कर्म व्यर्थ है, मनुष्य को विनाश से कैसा रोका जाय। सर्वत्र भय फैल गया है।

श्रद्धा ने उत्तर दिया कि, "तुम्हारी स्थिति जनता की रही है। तुम्हें हृदय नहीं मिला। लो यह कुमार। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामयी है। तुम दोनों मिलकर कर्म करो और संसार के संताप को दूर करो। यह जीवन सच्चिदानंद है, इसको इसी रूप में समझाना चाहिए। संघर्ष से त्याग उत्तम है।" इड़ा ने कुमार को अपना लिया, वे दोनों चले गए। श्रद्धा मनु की खोज में निकल पडी। सारस्वत नदी के किनारे-किनारे चल कर उसने एक गुफा के पास मनु को देखा। मनु ने जब सुना कि श्रध्दा बालक कुमार को इडा के पास छोड आयी है, तो उन्हें परम दुःख हुआ। श्रद्धा ने कहा कि तुम्हे संदेह नहीं करना चाहिए। त्याग ही उपलब्धि का कारण है। अब हम और तुम सुख से जीवन व्यतित करेंगे। मनु को अपने भूलों का ज्ञान हो आया। मनु को सामने आनन्द का दर्शन होने लगा। इसी समय अंधकार में भगवान शिव का प्रभापुंज दिखाई पडा। श्रद्धा

से कहा कि ''तुम मुझे सहारा देकर उन चरणोंतक ले चलो, जहाँ पहुँचकर सभी पाप-पुण्य पावन होकर आनन्द ही आनन्द होता है।''

*** रहस्य:-**

मनु की इच्छानुसार श्रद्धा उन्हें उसी ओर ले चली। वे हिमालय पर उर्ध्वगामी दिशा की ओर चलने लगे। दोनों पथिक हिमालयपर चढते जा रहे थे। ऊँचे बहुत ऊँचे । श्रद्धा मनु को एक समतल भूमिपर ले आयी। सामने तीन आलोक बिन्दु दिखाई पडे। श्रद्धा ने इनका रहस्य स्पष्ट किया। यह बिन्दु क्रमशः इच्छा, कर्म और ज्ञान के आलोक है।

मनु ने कहा कि ''यह तो बहुत बडा सुंदर देश है, किन्तु यह शाम देश कौन है?इसका रहस्य तो समझाओं।'' श्रद्धा ने उत्तर दिया- यह शामल कर्मलेश का है। वही सबको कर्म में मग्न रखती है। यहाँ यंत्र के भाँति श्रम में मग्न है और ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार की भावना से ओतप्रोत हैं। जिजीविषावश तृष्णा एवं महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर सभी संघर्ष में लीन हैं और मृगतृष्णा के आवर्त में प्रतित हुए जीते हैं और मरते हैं। यह कर्म संस्कार ही प्राणियों के सतत आवागमन के कारण बनते हैं वे कभी मुक्ति को प्राप्त नहीं करते।''

मनु त्रस्त होकर बोले कि ''बस करो, यह तो बडा भीषण देश है।'' मनुष्य दो बिन्दुओं पर जीता है। यह जो (शामल) कुंजीभूत। रजत (चांदी) के समान उज्ज्वल दिख रहा है। वह कौन लोक है? श्रद्धा ने कहा, ''प्रियतम! वह ज्ञानलोक है। यहाँ सभी सुख दुःख से उदासिन है और न्याय निर्मम हैं। यहाँ बुद्धि का चक्र चलता है और तर्क से नीचे होता है। यह सर्वथा न्याय और तप में लीन हुए सजग रहते हैं तथा निःस्पृह जीवन का रस चाहते हैं। यह पापों से सशंकित रहते हैं। इच्छाओं का हनन करते हैं तथा शास्त्रज्ञान का अनुसरण करते हैं। इसप्रकार यह इच्छा, कर्म और ज्ञान के लोक हैं। इन तीनों में सामंजस्य नहीं हैं। अतः यह जीवन विडंबना से व्याप्त और सुख से वंचित है।''

ज्ञान दूर कुछ क्रिया-भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की

एक दूसरे से मिल न सके, यह विडंअना है जीवन की।

इतना कहते ही हास्य की एक ज्योति श्रद्धा के रूपपर छिटक गई, जो तीनों लोकों में व्याप्त हो गयी। जिससे वह मिलकर एकाकार हो गए। उन्हें यह प्रती हुआ कि शिव का तांडव नृत्य प्रारंभ हो गया हैं, जिसे देखकर श्रद्धा और मनु तन्मय हो गए और उन्हें समाधि में अनहत नाद सुनाई देने लगता हैं।

*** आनन्द :-**

श्रध्दा और मनु ऊपर ही ऊपर चले जा रहे हैं। कैलास मानसरोवर की पुण्यभूमि की ओर, वहाँ पर इडा और मनु कुमार भी उसे आ मिले। उनके साथ धर्म का प्रतिनिधि नांदी (नन्दी) वृषभ था। श्रध्दा कुछ नहीं बोली पर मनु कुछ मुस्कुराकर बोले, देखों यहाँ कोई पराया नहीं हैं। हम सभी ब्रम्हमय हैं।

इसी समय कामायनी अर्थात् श्रद्धा के मुखपर स्मित की रेखा दौड गयी, जिससे समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो गयी। सुगंधित वायु बहने लगी, वल्लरियाँ नृत्य करने लगी और मधुमत्त भ्रंमर होकर गुँजने लगे, पिक कुकने लगी और पुष्प पराग के भार से झडने लगे। चंद्र रश्मियों से मण्डित भीमखण्डित मणि-दीपों-से प्रतीत होने लगे और पवनाघात उत्पन्न ध्वनिरूप मृदंग अग्नि के समान रश्मियाँ, परिमल-मंचपर अप्सराओं के समान नृत्य करने लगी। उस समय ऐसा प्रतीत होता था। ''मानव की समस्त प्रकृति सचेतन होकर हँस रही हो। हिमालय शिव के समान और मानस की लहरे नित्यनीरद गौरी के समान भासित हो

रही थी। प्रकृति में निर्मल प्रेम की ज्योति दर्शन कर सबकी आँखों में प्रेम प्रतिबिंबित हो गया और वे भेदभाव को भूल गए। उस समय जड और चेतन सभी समरसता में तल्लीन थे, केवल एक चेतनता ही विलास कर रही थी और अखण्ड आनन्द अनुभूत हो रहा था। हिमालय की पाषाणी प्रकृति मंगलमय हो रही थी।'' प्रसाद इस सर्ग के अंतर्गत कहते हैं -

''समरस यह जड या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलासनी आनन्द अखण्ड घना था।''

१.३.३. कामायनी का महाकाव्यत्व :-

प्रायःमहाकाव्य उसे कहते है, जिसमें जीवन का विस्तार से चित्रण किया जाता है। साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्य को प्रबंधकाव्य का एक भेद स्वीकार किया गया है। भारतीय तथा पाश्चात्त्य समीक्षकों ने काव्य के उदात्त तथा श्रेष्ठ रूप को देखते हुए कामायनी को महाकाव्य माना है। वास्तव में महाकाव्य साहित्य की व्यापक एवं विशाल विधा है।

महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करनेवाले 'प्रथम आचार्य भामह' को माना जाता हैं। इन्होंने महाकाव्य के तत्वोंपर प्रकाश डालते हुए लिखा हैं कि, ''लंबे कथानकवाला, महान चरित्रों से समन्वित, आकृष्ट शैली में लिखित, नाटक की पंचसंधियों से युक्त, जीवन के विविध रूपों और कालों का वर्णन करनेवाला काव्य 'महाकाव्य' कहलाता है।'' इसी परम्परा में आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार - महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास-प्रसिध्द या सज्जन चरित्र से सम्बद्ध होनी चाहिए। वह सर्गबध्द तथा नाटकीय संधियों से युक्त होनी चाहिए। इसके आरम्भ में मंगलाचरण, ईश्वर वंदना, सज्जनों की प्रशंसा हो। महाकाव्य में लक्ष्य की दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कोई भी हो सकता है। श्रृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अंगी हो सकता है। कम से आठ सर्ग हो। प्रत्येक छन्द के अंतमें छन्द परिवर्तन अनिवार्य है। महाकाव्य में यथास्थान प्रकृति का विशद वर्णन होना चाहिए।''

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित कृति कामायनी को आधुनिक युग का महाकाव्य माना जाता है। कुछ आलोचक इसे आधुनिक युग की 'गीता' का दर्जा देते हैं। इसमें मानव-सृष्टि के विलास की कथा है और इस कथा में मानवात्मा के विलास को क्रमिक रूप में प्रस्तुत किया गया हैं। ऐसी स्थिति में महाकाव्यात्मकता की दृष्टि से इसके मूल्यांकन के लिए जो निकष निर्धारित किए हैं, उनमें उदात्त कथानक, महान घटना, उदात्त चरित्र, प्रकृति चित्रण, युगचित्रण, रसयोजना, महान उद्देश्य और उदात्त शैली आदि प्रमुख हैं। उनका संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है -

* उदात्त कथानक :-

महाकाव्य का कथानक उदात्त होना चाहिए। कथानक का चुनाव इतिहास, पुराण आदि से लिया जाना चाहिए। महाकाव्य का विषय ऐसा हो जो असाधारण शान्ति संपन्न हो तथा सभी को प्रभावित करने में सक्षम हो।उसमें काल्पनिक घटनाएँ भी हो सकती हैं, परंतु उनका रूप इतिहास संपन्न हो। महाकाव्य का विषय विस्तार जीवन से संबंधित होना चाहिए। इस दृष्टि से यदि कामायनी के कथानक पर विचार किया जाय तो कामायनी का कथानक इतिहास संपन्न है। इसमें प्रागैतिहासिक काल की कथा की बिखरी हुई कडियों को श्रृंखलाबध्द कर के कथावस्तु का निर्माण किया गया है। जिसमें आदि मानव मनु के जीवन की कथा है। कामायनी की कथा जीवंत है। इसमें आदि मध्य और अंत की योजना है। जय प्रलय के बाद से मनु के द्वारा

श्रध्दा के त्याग की घटनाएँ आदि भाग में, इडा-मनु मिलन से मनु के सारस्वत प्रदेश से पलायनतक की घटनाएँ मध्य भाग में; मनु द्वारा नटेश के प्रथव तांडव नृत्य प्रदर्शन के बाद की घटनाएँ अंत भाग में आती हैं। कामायनी का संपूर्ण कथानक शतपथ ब्राह्मण, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों से लिया गया है। ऐसा माना जाता है कि कामायनी का कथानक सद्वृत्तपर आधारित है। इसमें मनु तथा श्रद्धा के माध्यम से मानवता के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। कामायनी का कथानक ऐसे भावसत्यों को लेकर चला है जिनका संबंध देश और काल से भरे पूरे मानव के साथ जुड जाता है। चिन्ता, आशा, श्रध्दा, काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या आदि ऐसे भाव हैं, जिनका संबंध प्रत्येक मानव के स्वभाव से है। इसके साथ ही कामायनी में जिस आनन्दवाद के प्रश्न को उठाया है वह मूलतः मानव के लिए मंगलकार्य होने के कारण प्रभावशाली है। मूलतत्व कामायनी का कथानक उदात्त है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी अपनी प्रासंगिकता प्रमाणित कर रहा है।

* उदात्त चरित्र :-

महाकाव्य का दूसरा तत्व उदात्त चरित्र है। महाकाव्य के चरित्र उदात्त होने चाहिए। महाकाव्य के संबंध में कहा जाता है कि "महाकाव्य का नायक धीरोदात्त, धीरगंभीर, सामर्थ्यवान, असाधारण गुणों से युक्त होना चाहिए।" क्योंकि नायक के चरित्र में अलौकिक गुण होते हैं। इस दृष्टि से मनु के चरित्रपर प्रकाश डाला जाय तो यह कहा जा सकता है कि "मनु देवपुरूष हैं, उच्चकुलोत्पन्न हैं, परंतु उनके चरित्र में वे सभी गुण नहीं मिलते जो एक आदर्श नायक में होते हैं। मनु का चरित्र असाधारण भी नहीं है। उसमें अनेकानेक मानवीय दुर्बलताएँ भी हैं। इस संबंध में आलोचक डॉ. विजयेंद्र स्नातक कहते हैं कि कामायनी में चित्रित मनु को हम पूर्ण विकसित महाकाव्य के अनुरूप चरित्र नहीं कह सकते। प्रसाद ने मनु को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वह समर्थ एवं सफल नायक की परिभाषा में पूरी तरह नहीं आता। जैसे मनु प्रारंभ में एक साधारण व्यक्ति के समान देवसृष्टि के विध्वंस पर चिन्ता व्यक्त करते हैं, साधारण व्यक्ति के समान काम वासना से ग्रस्त होते हैं, ईर्ष्या करते हैं, उनमें क्रोध की अग्नि हैं, समाजशीलता का अभाव हैं। वास्तव में प्रसाद आज के बुद्धिवादी युग में अपने नायक को कल्पना लोक की कृति के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहते थे। प्रसाद ने मनु के चरित्र में मानवसुलभ दुर्बलताएँ भरकर मनु के चरित्र को अतिमानवीय होने से बचा लिया है। यही कारण है कि मनु जनजीवन में अधिक निकट दिखाई देते हैं। इसके साथ ही मनु मन के प्रतीक हैं, जिसके कारण मनु दुर्बलताओं से ग्रस्त दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मनु साधारण, असाधारण, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट दिखाए गये हैं। यही कारण है कि कुछ आलोचक कामायनी को नायिका प्रधान महाकाव्य मानते हैं। नायिका प्रधान महाकाव्य होने के कारण इसमें नायकत्व श्रद्धा को दिया जाना चाहिए जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

* प्रकृति चित्रण :-

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कामायनी अपने युग की एक सशक्त रचना मानी गई। इसका आरंभ तथा अंत भी प्रकृति की गोद में ही हुआ है। प्रकृति चित्रण की निम्न प्रणालियाँ कामायनी में मिलती हैं। जिनमें **आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, मानवीकरण रूप, रहस्यात्मक रूप, संवेदनात्मक रूप, अलंकार रूप, प्रतीक रूप आदि** प्रमुख हैं। **आलंबन रूप** में प्रकृति का चित्रण किया जाता है। कामायनी में प्रकृति का भयानक एवं रम्य दोनों ही रूपों में चित्रण किया गया है। चिन्ता सर्ग में सृष्टि के विध्वंसक चित्र में भयानकता एवं आशा सर्ग में प्रकृति के रमणीय चित्रों का वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं। उद्दीपन रूप के अंतर्गत प्रकृति संयोग एवं वियोग में मानव की भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं। कामायनी में प्रकृति यही कार्य करती है। श्रध्दा एवं मनु के मिलन अवसरपर मधुर चांदनी उनके सुख आनन्द का वर्णन है, परन्तु यही प्रकृति वियोग काल में वियोगी जनों को कष्ट भी देती हैं। **मानवीकरण रूप में** प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का

आरोप किया जाता हैं। कामायनी में अनेक स्थलोंपर प्रकृति को मानवीय रूप में देखा गया है। जैसे-आशा सर्ग में प्रभात रजनी का सुन्दर नारी के रूप में वर्णन, वासना सर्ग में संध्या का वर्णन आदि उदा. प्रमुखता से बताए जा सकते हैं। **रहस्यात्मक रूप** में कामायनी में अनेक स्थानोंपर रहस्यवादी सत्ता का आभास देने के लिए कवि प्रसाद ने प्राकृतिक उपादानों से काम लिया हैं। उदा. चिन्ता सर्ग में विश्वदेव का वर्णन, उसकी सत्ता का इसी रूप में चित्रण हुआ है। **संवेदनात्मक रूप में** प्रकृति मानव के साथ-साथ उसके हर्ष एवं दुःख में सम्मिलित होकर अपनी संवेदना प्रकट करती है। कामायनी में अनेक स्थलोंपर प्रकृति का इस रूप में चित्रण किया गया है। **अलंकार के रूप में** भी प्रकृति का वर्णन किया गया है। जैसे-श्रद्धा के रूपसौंदर्य को प्रस्तुत करने के लिए इसी पद्धति को ग्रहण किया गया है। इसी पद्धती के अन्तर्गत गुण एवं आकृति का साम्य भी दिखाया गया है। **प्रतीक के रूप में**-प्रकृति के उपादान मानव की भावनाओं के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। कामायनी में इसका काफी प्रयोग मिलता हैं। जैसे-उषा सुख का प्रतीक है, मुकुल प्रिय का प्रतीक है, अंधकार विषाद का प्रतीक है। सारांश रूप से यह कहा जा सकता है कि कामायनी में प्रकृति के विविध रूपों को अपनाकर प्रसाद ने आधुनिक काव्यों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

* युगचित्रण :-

महाकाव्य अपने युग की प्रातिनिधिक रचना होती है। इसी कारण प्रत्येक महाकाव्य में युग की सामाजिक तथा अन्य विचारधाराओं का प्रतिफलन पाया जाता है। 'कामायनी आधुनिक युग का एक सफल महाकाव्य है।' इसी के कारण अपनु युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी चित्र उपस्थित करती है। कवि ने आधुनिक मानवी जीवन की अविश्वास, संकीर्णता, स्वार्थ, दम्भ, अतृप्ति और आकुलता जैसी अनेक समस्याओं को एवं प्रश्नों को प्रस्तुत किया हैं। पश्चिम की संस्कृति भौतिकता, विलासिता का प्रचार-प्रसार कर रही है। इसका भारतीय सभ्यता पर प्रभाव पड रहा है। देवताओं की उश्रृंखलता और भोग-विलास के कारण उनका नाश दिखाकर कवि ने भौतिकतावाद के भयंकर दुष्परिणाम को चित्रित किया हैं।

आधुनिक युग में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि संस्थाओं ने धार्मिक संकिर्णता के परित्याग पर बल दिया था। कामायनी में भी अंत में इसी बात की पुष्टि होती है। कैलासपर्वत पर धर्म के प्रतीक वृषभ का परित्याग इसी ओर संकेत करता है। इसी के साथ कामायनी में विश्वबंधुत्व, प्रेमभावना, सहिष्णुता आदि का प्रचार किया गया हैं। आनन्द सर्ग में मनु का निम्न कथन इस बात की ओर संकेत करता है -

''सब भेदभाव भुलवा कर, दुःख सुख को ह्दय बनाता,

मानव कह रे! यह मैं हूँ यह विश्व नीड बन जाता।''

आधुनिक युग नारी की स्वतंत्रता तथा नारी महत्ता के प्रस्थापन का युग है। कवि रविंद्र ने इसी बात की ओर साहित्य में नूतनता का संचार किया था। कामायनी में नारी को त्याग, ममता, सेवा, दया तथा सभी आदर्श गुणों से समन्वित रूप में चित्रित किया गया है। श्रद्धा का चरित्र विश्वासमयी नारी के रूप में चित्रित किया गया है। वह साक्षात् विश्वास और श्रद्धा का प्रतीक है।

कामायनी में प्रसाद ने कई स्थलों पर प्रगतिशील विचारों की अभिव्यक्ति की हैं। आज शोषण, अत्याचार का विरोध किया जाता है यही कारण है कि संघर्ष सर्ग में इडा मनु के अत्याचार का तीव्र विरोध करती है। जनता का निम्न कथन अत्यंत सशक्त हैं। जैसे -

''आज बंदिनी मेरी रानी इडा यहाँ है?

ओ यायावर! अब तेरा निस्तार कहाँ हैं?''

※ गंभीर रसयोजना :–

आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में श्रृंगार, वीर तथा शान्त इनमें से किसी एक रस की अंगीरस (प्रमुख रस) के रूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। कामायनी के अंगीरस के संबंध में विवाद है। कुछ आलोचक श्रृंगार रस शान्त रस को प्रधान रस के रूप में मानते हैं। इस दोनों रसों का कामायनी में सुन्दर परिपाक हुआ है। यदि प्रसाद के दृष्टिकोण से देखा जाय तो कामायनी में प्रमुख रस श्रृंगार है। इसके बाद शान्त, करूण, वीर आदि रसों को स्थान दिया हैं। हास्य रस को छोडकर कामायनी में शेष सभी रस उपलब्ध होते हैं। ऐसा माना जाता है कि कामायनी में श्रृंगार के दोनों भेद संयोग तथा वियोग समान रूप में मिलते हैं। 'कामायनी' में प्रसाद ने कहीं–कहीं श्रृंगार के उदात्त चित्र भी उपस्थित किए हैं। जैसे मनु का कामोन्माद रूप इस प्रकार मिलता है –

''छुटती चिन्गारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त धधकती,
ज्वाला मधुर था वक्ष विकल अशान्त वातचक्र समान कुछ था
बाँधता आवेश श्वैर्य का कुछ न मनु के ह्रदय में था लेश।''

श्रृंगार के बाद कामायनी में शान्तरस का स्थान है। कुछ आलोचकों ने शान्तरस को ही कामायनी का प्रमुख रस माना हैं। कामायनी के अंतिम ४ सर्गों में इसके उदा. मिलते हैं। विद्वानों का मत हैं– यह शान्त रस ह्दय की उदात्त अथवा आनन्दावस्था को ही लेकर चला है। शान्त रस का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है –

''यह क्या! श्रद्धे! बस तु ले चल;उन चरणों तक, दे निज संबल;
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल;पावन बन जाते है निर्मल;
मिटते असत्य से ज्ञान लेश; समरस अखण्ड आनन्द वेश।''

※ महान उद्देश्य :–

कामायनी का उद्देश्य अत्यंत स्पष्ट है, वह है समरसता की सहायता से आनन्द की प्राप्ती। कामायनी में कवि जयशंकर प्रसाद ने मनु और श्रद्धा के माध्यम से मन के मनोमय कोश से जलमय कोश, वायुमय कोश, बुद्धिमय कोश तक पहुँचने की यात्रा को शब्दबद्ध किया है। केवल सैध्दांतिक रूप प्रस्तुत नहीं किया गया बल्कि अलग–अलग घटनाओं के द्वारा, क्रिया–कलापों के द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं। वर्ग वैषम्य को मिटाकर शोषणरहित सुखी समाज की स्थापना की है। वर्तमानकालीन विभिन्न समस्याओं से उभरने का एकमात्र उपाय समरसता दर्शन में ढूँढना यह मुख्य उद्देश्य कामायनी के सृजन में दिखाई देता है। समरसता की सहायता से मानवीय जीवन में आनंद की प्रतिस्थापना कैसे की जाती है, इसका उदाहरण कवि निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त करते हैं–

''प्रतिफलित हुई सब आँखे, उस प्रेम ज्योति विमला से,
सब पहचाने से लगते, अपनी ही एक कला से,
समरस थे जड या चेतन, सुन्दर साकार घना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।''

※ उदात्त शैली :-

महाकाव्य की शैली उदात्त होनी चाहिए। इसमें विविधता का होना अत्यावश्यक होता है। भाषाशैली की दृष्टि से कामायनी छायावादी युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कामायनी की भाषा विशुद्ध खडीबोली है। उच्चस्तर की भाषा साहित्यिक और समृद्ध है। शब्दों का चुनाव भावानुरूप हैं। जैसे-भाव वैसे शब्द हैं। भाषा में चित्रमयता, नादसौन्दर्य है, तत्सम, तद्भव और देशज इन तीनों प्रकार के शब्द कामायनी में यत्र-तत्र-सर्वत्र में मिलते हैं। कामायनी में प्रसाद ने शास्त्रीय छन्दों ाक प्रयोग किया हैं। साथ ही कुछ नए छन्दों के प्रयोग भी किए हैं। प्रसाद ने पारंपारिक अलंकारों के साथ नवीन अलंकारों को भी लिया हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि उनके प्रिय अलंकार रहे हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि कामायनी आधुनिक युग की या छायावादी युग की एक सफल रचना है। महाकाव्य की कसौटी पर वह शत-प्रतिशत खरी उतरती है। इसमें कथानक उदात्त है, इसकी नायिका श्रद्धा का चरित्र भी उदात्त है। नायिका श्रध्दा में भारतीय नारी के उदात्त चरित्र के सभी गुण हैं। इसी के साथ इसमें प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियाँ अपनाई गई हैं। युगचित्रण की दृष्टि से कामायनी महत्त्वपूर्ण रचना है। मानवी जीवन की अनेक गंभीर समस्याओं का चित्रण इसमें किया गया हैं। यही नहीं इसमें गंभीर रसयोजना का अंकन भी बडी सफलता के साथ चित्रित हुआ है। इसमें प्रमुख रस है श्रृंगार और शान्त। इसका उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है और इसकी भाषाशैली भी उदात्त है। सारांशतः कहा जा सकता है कि कामायनी हिंदी साहित्य की एक प्रातिनिधिक एवं श्रेष्ठ रचना है। इसमें काव्य तथा दर्शन का जैसा मणिकांचन योग है, वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। फलतः महाकाव्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति सिध्द हुई है।

१.३.४. कामायनी में इतिहास और कल्पना :-

कामायनी का निर्माण करने के लिए प्रसाद ने इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। जैसे-मनु, श्रद्धा और इडा आदि घटनाओं को वेदों से, पुराणों से लेकर प्रसाद ने कामायनी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार की है। इस बात को प्रसाद ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया हैं। कामायनी के प्रारंभ में उन्होंने कहा हैं - ''हाँ कामायनी की कथा-श्रृंखला मिलाने के लिए, कहीं-कहीं थोडी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड सका हूँ।''

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि कामायनी के कथानक में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। कामायनी में अभिव्यक्त इतिहास और कल्पना के समन्वय को देखने के पूर्व हमें पहले यह जानना होगा कि इतिहास क्या है?, इतिहास और काव्य का परस्पर संबंध कैसे होता है?,इतिहास संबंधी प्रसाद की धारणा होगा कि इतिहास क्या है?, इतिहास संबंधी प्रसाद की धारणा क्या थी? कामायनी के घटनाओं की ऐतिहासिकता क्या है? कामायनी के पात्रों का ऐतिहासिक दायित्व क्या है? इन सारे प्रश्नों पर यहाँ चर्चा की जा रही है -

इतिहास क्या है? इतिहास याने इति+हास। अर्थात् अतीत कालीन घटनाओं का लेखा-जोखा। इतिहास शब्द यह बताता है कि प्राचीन काल से लेकर वर्तमानकाल तक का सामाजिक, राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक घटनाओं का लेखा-जोखा इतिहास होता है। इसमें निश्चयात्मक भाव छिपा हुआ होता है। वह स्थूल रूप से घटनात्मक तथ्योंपर आधारित होता है। किन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि

इतिहास मानव मस्तिष्क के विकास का अध्ययन करता है। इतिहास में केवल तथ्य नहीं होते तथा उसमें कल्पना का भी समावेश होता है।

इतिहास और काव्य :-

इतिहास और काव्य दोनों का उद्देश्य एक ही होता है। काव्य सत्य की खोज करता है। इतिहास भी सत्य की खोज करता है। इतिहासकार का सत्य वस्तुनिष्ठ होता है। कवि का सत्य 'सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' होता है। इसी आधार पर काव्य और इतिहास का घनिष्ट संबंध माना गया है। साहित्यकार इतिहास में से सामग्री लेता है, किन्तु उसे भिन्न रूप से काव्य में प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही इतिहास के आलोक में, काल में वर्णित जीवन स्वाभाविक, विश्वसनीय, बोधगम्य हो जाता है। काव्य में वर्णित इतिहास का स्वरूप निश्चित रूप से कल्पनाभिमुख हो जाता है। कवि जिस घटना को अपने काव्य में चित्रित करता है या स्थान देता है वह ऐतिहासिक दृष्टि से काव्यकला के लिए कल्पना का वही रूप होता है, जो इतिहास विरूद्ध नहीं है। काव्य में कल्पना का प्रयोग वही तक होना चाहिए जहाँ वह ऐतिहासिक घटनाओं के स्वरूप को क्षत-विक्षत ना करे। ऐतिहासिक रचनाकार को कल्पना का उपयोग इतिहास के निर्जीव शरीर में स्पंदन लाने के लिए ग्रहण करता है। अतः इतिहास को कवि कल्पनाद्वारा संभाव्य रूप को ही ग्रहण करता है, जो ऐतिहासिक की परिप्रेक्ष्य में व्यवधान उपस्थित नहीं करते।

प्रसाद की इतिहास संबंधी धारणा –

महाकवि प्रसाद को इतिहास से संबंधित विस्तृत और विशाल जानकारी थी। उनके सभी नाटक इतिहास से संघर्ष लेकर ही लिखें गए। उन्होंने लिखा हैं कि इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें कोई घटना होती ही नहीं है किन्तु असाधारण रूप से नयी घटना फिर भविष्य में होने की संभावना होती है। मानव समाज की कल्पना का भंडार अक्षय है क्योंकि वह इच्छा शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूलसूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अस्पष्ट होता है। सब वह इच्छाप्राप्ति किसी व्यक्ति या जाति में केन्द्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है। तभी इतिहास की सृष्टि होती है। प्रसाद ने इतिहास से सामग्री ली हैं। इसका कारण यह है कि वही रचना सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। जिसका आधार ऐतिहासिकता होता है। प्रसाद ने कामायनी लिखने से पहले कई सालों तक इतिहास का अध्ययन किया और उसके बाद कामायनी जैसी रचना लिखी। कामायनी में मनु और श्रध्दा की कथा है। इसमें रूपक के माध्यम से मनोवैज्ञानिक तथा अध्यात्मिक आयामों का भी चित्रण किया गया हैं। कामायनी की कथा १५ सर्गों में शब्दबद्ध की गई है। सर्गों का नामकरण व्यक्ति या स्थान के आधारपर न होकर मानवीय मनोभावों के आधारपर हैं। निम्न मुद्दों के आधार पर कामायनी में अभिव्यक्त ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला जा सकता है –

अ) घटनाओं की ऐतिहासिकता

आ) पात्रों का ऐतिहासिक वृत्त

इ) वातावरण में ऐतिहासिकता

ई) मौलिक उद्‌भावना

अ) घटनाओं की ऐतिहासिकता :-

कामायनी में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना जलप्लावन की है। कामायनी के प्रारंभ में चिन्ता सर्ग में प्रसाद ने जलप्लावन की घटना का विस्तार से वर्णन किया है। जलप्लावन की घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण

में भी मिलता है। यहाँ इस घटना से संबंधित एक प्रसंग आता है जिसके अनुसार एक दिन मनु के पास जल लाया गया। उस जल में एक छोटी मछली भी थी। मछली ने मनु से कहा कि, "हे मनु! तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम मुझे बडा होने तक किसी पात्र आदि में रख दो और कालान्तर में समुद्र में फेंक देना।" इस प्रकार मत्स्य की कल्पनानुसार जलप्लावन हुआ और इस जलप्लावन में मनु की नौका की रक्षा मत्स्य ने ही की। इस घटना की ऐतिहासिकता को प्रसाद ने स्वीकार किया है और उसी के आधारपर अपने काव्य में मनु की नौका रक्षा का भी उल्लेख किया है। प्रसाद ने यह काम मूल ऐतिहासिक घटना को स्वीकार करते हुए उसमें थोडासा कल्पनाजन्य परिवर्तन भी कर दिया हैं। महामत्स्य पहले किस रूप में आया था और मनु को उसने क्यों बचाया? इन बातों का वर्णन प्रसाद ने इसलिए नहीं किया क्योंकि यह प्रसंग अतिप्राकृत प्रसंगों से संबंधित हैं।

कामायनी के इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त 'ब्रह्मपुराण' और 'विष्णुपुराण' में भी हुआ है। 'अथर्ववेद' में इसका उल्लेख संक्षिप्त में आया है। भारतीय ग्रंथों में भी जलप्लावन की घटना का उल्लेख मिलता है। जलप्लावन के घटना का मूल कारण जलदेवता का कोप माना गया है। प्रसाद ने भी कामायनी में जलप्लावन का कार्य वरूण का प्रकोप माना हैं। जलप्लावन की कुछ ऐतिहासिक बातों के लिए प्रसाद ने यह सिद्ध किया कि जलप्लावन के मूल में भोग तथा भ्रष्टाचार का होना है। साथ ही नौका में किसी पुरूष का होना और उसकी रक्षा किसी दैवी शक्ति से होना इसका भी संकेत दिया है।

'जलप्लावन' के बाद दूसरी ऐतिहासिक घटना है मनु का गुफा में रहते हुए पाक यज्ञ करना। यह वर्णन शतपथ ब्राह्मण तथा ऋग्वेद पर आधारित है किन्तु श्रद्धा और मनु का प्रेम तथा परिणय के संबंध में ऐतिहासिक तत्व मेल नहीं खाते। अतएव ब्राह्मण ने श्रद्धा को सत्य की पत्नी बनाया है किन्तु कुछ ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णुपुराण, शतपथ ब्राह्मणपुराण और ब्रह्मपुराण में इसका वर्णन है। इन सभी ग्रन्थों में मनु को श्रध्दादेव कहा गया हैं। संभवतः इन्हीं आधारों पर प्रसाद ने श्रद्धा और मनु का प्रेम दिखाकर उनका परिणय चित्रित किया हैं।

कामायनी में तीसरी ऐतिहासिक घटना है– किलात और आकुली का क्रोधित बनकर आना। वे मनु के पास आते हैं तथा मनु को पशुयज्ञ के लिए प्रेरित करते हैं। यह भी ऐतिहासिक घटना है। शतपथ ब्राह्मण तथा ऋग्वेद में इस घटना का उल्लेख मिलता है। कामायनी में प्रसाद ने शतपथ ब्राह्मण को ही आधार मानकर इस बात को प्रसिद्ध किया है।

कामायनी में चौथी ऐतिहासिक घटना है, सोमरस का पान करना। यह घटना प्रसाद ने ऐतिहासिक परिवेश से दी है। ऋग्वेद में सोमपान से वैभव की वृद्धि मानी गई है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञवर्णन में सोम और सुरापान की प्रशंसा की गई है। कामायनी में मनु को यज्ञ के अवसर पर सोमपान करते दिखाकर प्रसाद ने इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर यह स्वीकार किया है किन्तु मनु के सोमपान के बाद प्रसाद ने श्रद्धा को रूठते हुए दिखाया है। श्रद्धा को मनु मनाते हैं और अन्त में श्रद्धा भी सोमरस का पान करती है। यह सारी घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं कवि कल्पित है। कवि का उद्देश्य चरित्र–चित्रण के साथ कथानक में मनोवैज्ञानिक तत्त्व जोड देता है।

ईर्ष्या सर्ग में मनु मृगया खेलते थे। सारा दिन इधर–उधर घुमना, श्रद्धा का भावी सन्तान के लिए ऊन के कपडे बुनाना, झुला तैयार करना, मनु का इनसे विरक्त होना, मनु का गर्भवती श्रद्धा को छोडकर चले जाना आदि प्रसंग काल्पनिक हैं। इन घटनाओं से ऐतिहासिक सत्य की कोई हानी नहीं होती। इस प्रकार कामायनी की कथाश्रृंखला को जोडने के लिए प्रसाद ने इस सर्ग की कल्पना की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से

प्रसाद की यह कल्पना अत्यंत कलात्मक तथा तर्कसंगत है।

इडा तथा उससे संबंधित अधिकांश घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। सारस्वत प्रदेश का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। पुराणों में सारस्वत प्रदेश की कोई चर्चा नहीं है। इडा तथा मनु का मिलन तथा इडा द्वारा मनु के साथ मिलकर नवसृष्टि का विकास भी ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। 'कामायनी' में प्रसाद ने उन घटनाओं को शतपथ ब्राह्मण के आधार पर ग्रहण किया हैं।

कामायनी में दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना यह है कि मनु द्वारा इडा पर बलपूर्वक अनैतिक आचरण। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा मत्स्यपुराण में प्रजापति द्वारा अपनी दुहिता के साथ अनैतिक आचरण की कथा का उल्लेख मिलता है। कामायनी में इडा को आत्मजात प्रजा कहा है। मनु के अनैतिक आचरण तथा प्रकृति के शेष को देखना, इन घटनाओं में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर अंत तक या संघर्ष स्थल तक ऐसी कईं घटनाएँ हैं, जो अधिकांश ऐतिहासिक ही है।

कामायनी में निर्वेद, दर्शन तथा आनन्द सर्गों का निर्माण कल्पना पर आधारित है। मनु का घायल होना, श्रद्धा को आत्मग्लानी के कारण फिर से छोडकर भाग जाना, श्रद्धा द्वारा मनु को खोजना आदि सारी घटनाएँ कवि कल्पित हैं परन्तु ये घटनाएँ कामायनी के कथानक में इस प्रकार घुलमिल गई है कि इतिहास और कल्पना इन दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

आ) पात्रों का ऐतिहासिक वृत्त :-

कामायनी में प्रमुख रूप से मनु, श्रद्धा, इडा तथा गौण रूप से मानव, आकुली और किलात पात्र हैं। मनु का उल्लेख प्राचीन तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में मनु को जलप्लावन के बाद जीवित रहनेवाला प्रमुख पात्र बताया गया है। कामायनी में भी प्रसाद ने मनु को ऐतिहासिक रूप में ही स्वीकार किया हैं। मनु की ऐतिहासिकता प्रसाद ने कामायनी में निम्न शब्दों में व्यक्त की हैं -

''आज अमरता का जीवित हूँ, मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह! सर्ग के प्रथम अंक का, अधम पात्र भय सा विष्कंभ।''

ऐतिहासिक दृष्टि से मनु श्रद्धा देव माने गए हैं। श्रद्धा और मनु के सहयोग से नव मानवता का निर्माण होता है। शतपथ ब्राह्मण के इसी आधार पर प्रसाद ने मनु और श्रद्धा को परिणय सूत्र में बांधा है। इस प्रसंग को प्रसाद ने निम्न प्रकार से अभिव्यक्ति किया हैं-

''बनो संस्कृति के मूल रहस्य, तुम्ही से फैलेगी वह बेल,
विश्व भर सौरभ के भर जाएँ, सुमन के खेलों सुन्दर खेला।''

इस प्रकार प्रसाद ने ऐतिहासिक रेखाओं को ग्रहण करते हुए मनु के चरित्र का विकास किया है। प्रारंभ में चिन्ता तथा उसका विश्लेषण कवि की कल्पना है। कालान्तर में मनु का आशामय होना, अग्नि प्रज्वलित करना, प्रकृति के रहस्यों को खोजना काल्पनिक हैं, मनु की वासनामय रूप कवि कल्पना है। 'ईर्ष्या सर्ग' में मनु का जो ईर्ष्यातु रूप है, वह ऐतिहासिक नहीं। मनु का सारस्वत प्रदेश में जाकर राजा बनना, काम करना इन घटनाओं को इतिहास से ग्रहण किया गया है। प्रजापति के रूप में मनु का अनैतिक आचरण का संदर्भ वैदिक साहित्य में मिलता है। उसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजापति द्वारा दुहिता के साथ अनैतिक आचरण तथा परिणामस्वरूप प्रकृतिकोप का वर्णन भी मिलता है। कामायनी में ये प्रसंग बिना किसी विशेष परिवर्तन के निम्न शब्दों में अंकित हैं -

''आलिंगन ! फिर भय का क्रंदन! वसुधा के ग्रहण किसे

वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण पंथ नाप उठी!

अन्तरिक्ष में हुआ रूद्र हुंकार भयानक हलचल थी,

अरे आत्मजा प्रजा! पाप की परिभाषा बन शाप उठी।''

'संघर्ष सर्ग' में मनु का प्रजा के सामने जो तर्किक रूप प्रस्तुत किया गया है, वह काल्पनिक है। 'निर्वेद सर्ग' में मनु के सामने जो तार्किक रूप प्रस्तुत किया गया है, वह भी काल्पनिक है। निर्वेद सर्ग में मनु के चरित्र में जो आत्मग्लानी का भाव दिखाया है, उन्हें सारस्वत प्रदेश छोडते हुए जो दिखाया गया है, वह ऐतिहासिक नहीं है। अंत में श्रध्दा के साथ कैलास पर्वतपर जाना, अखंड आनन्द की प्राप्ति करना इतिहास और कल्पना का मिश्रित रूप है।

कामायनी के दूसरे पात्र श्रद्धा का चरित्र ऐतिहासिक ही है। इडा की निर्मिती पाक यज्ञ से हुई। कामायनी में पाक-यज्ञ का संबंध श्रध्दा के साथ जोडा गया है। श्रद्धा को 'कामगोत्रजा श्रध्दानामार्षिका' अर्थात् कामगोत्र की बालिका है। श्रद्धा के मातृत्व के संबंध में इतिहास का आधार होते हुए स्वतंत्र कल्पना से काम लिया गया है। इसमें श्रद्धा को दस पुत्रों की माता माना गया है किन्तु कामायनी में एक ही पुत्र का उल्लेख हुआ है। श्रद्धा के चरित्र विकास में अधिकांश मात्रा में कल्पना का ही प्रयोग हुआ है। उसके चरित्र में दया, ममता, करूणा और उसके दुःख, उसके सौंदर्य का वर्णन कवि ने कल्पना के आधार पर ही किया है। श्रद्धा के मातृत्व रूप में जिन बातों का उल्लेख हैं वे भी काल्पनिक हैं। उसी प्रकार उसके द्वारा सूत काटना, झुला बनाना तथा भावी शिशु के लिए चिन्तायुक्त होना इन सभी घटनाओं में काल्पनिकता हैं। घायल मनु की सेवा का प्रसंग भी काल्पनिक है। शेष तीन सर्गों की कथा भी काल्पनिक है।

कामायनी का तीसरा पात्र 'इडा' है। इडा को भी ऐतिहासिक आधार पर चित्रित किया गया है। ऋग्वेद में इडा की चर्चा अनेक स्थानों पर हुई है। इडा बुध्दि को साधनेवाली अथवा मनुष्य को चेतना प्रदान करनेवाली माँ है। कामायनी में प्रसाद ने इडा को बद्धिवादी नारी के रूप में चित्रित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इडा मनु की दुहिता है, यह आधार प्रसाद ने स्वीकार नहीं किया। प्रसाद ने इडा को मनु की प्रजा के रूप में माना है। इडा के साथ मनु का अत्याचार, अनैतिक आचरण इतिहास से संबंधित है। इडा के चरित्रांकन में प्रसाद ने कल्पना से काम लिया है। जैसे-इडा का रूप सर्वथा कवि मस्तिष्क की उपज है। मनु तथा इडा का सारस्वत प्रदेश में मिलना, इडा द्वारा सारस्वत प्रदेश के निर्माण में लगना, सारस्वत प्रदेश में रहते हुए इडा द्वारा मनु को सोमरस का पान कराना आदि इडा के ऐतिहासिक व्यक्तित्व से संबंधित बातें नहीं। जैसे कि इडा द्वारा श्रद्धा के सामने अपनी त्रुटियाँ स्वीकार करना भी काल्पनिक है। कवि प्रसाद उसका वर्णन करते हुए कहते हैं -

''मेरे सुविधाभाजन हुए विषम, टूटते, नित्य बन रहे नियम

नाना केन्द्रों में जलधर सम, घिर हट, बरसे ये उपलोपम।।''

इस प्रकार कामायनी के अन्त में इडा का मानव के साथ कैलास पर्वत पर जाना भी काल्पनिक है। मानव का चरित्र ऐतिहासिक है, परन्तु चरित्रांकन में प्रसाद ने कल्पना से काम लिया है। आकुली और किलात दोनों ही ऐतिहासिक पात्र हैं किंतु उनमें प्रसाद ने थोडासा परिवर्तन कर दिया हैं। ऋग्वेद में इनका वध दिखाया है तो कामायनी में इनका वध मनु के द्वारा करवाया गयी है। जैसे -

''कायर तुम दोनों ने उत्पात मचाया, अरे, समझकर जिनको अपना था अपनाया,

तो फिर आओ, देखों कैसे होती है बलि रण यह, यज्ञ पुरोहित, किलात और आकुली।''

इ) वातावरण में ऐतिहासिकता :-

कामायनी का कथानक देवसंस्कृति के विध्वंस तथा नव मानवता के प्रारंभ के संधि से निर्मित हुआ है। वातावरण निर्मिती के लिए ऐतिहासिक स्थानों तथा पदार्थों का उल्लेख हुआ हैं। जैसे-हिमालय पर्वत, सारस्वत प्रदेश, कैलास पर्वत, त्रिपुर, सोमपान, सोमलता। ऋग्वेद में सरस्वती नदी का उल्लेख है। अनुमान किया जाता है कि सारस्वत प्रदेश सरस्वती नदी के किनारे बसा है, शतपथ ब्राह्मण, ऋग्वेद आदि में इसका उल्लेख है। महाभारत में कैलास पर्वत का वर्णन है। इन सभी ऐतिहासिक नामों से वातावरण में इतिहास के अंश को मिलाया गया है।

ई) मौलिक उद्‌भावना :-

कामायनी में प्रसाद ने मौलिक उद्‌भावनाओं में उसके चार कारण हैं। प्रथम कारण है बिखरी हुई कथा को मिलाने के लिए कवि ने कहीं कहीं काल्पनिक घटनाओं का सहारा लिया हैं, घटनाओं और पात्रों में परिवर्तन कर दिया हैं। इस संबंध में प्रसाद स्वयं कहते हैं कि ''कामायनी की कथा श्रृंखला को मिलाने के लिए कहीं कहीं थोडी- बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड सका हूँ।'' दूसरा कारण ये है कि अतिप्राकृत तत्त्वों के निराकरण के लिए भी मौलिकता को दिखाया गया है।

तीसरा कारण है नायक तथा नायिका के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए कल्पना को नवीन उत्पादकों को जोड दिया गया हैं।

चौथा और अंतिम कारण है कवि की निजी विचारधारा, जिसमें कवि ने विचार धाराओं में जो दार्शनिकता प्रस्तुत की है उसके कारण ही कहीं मौलिकता पाई गयी है।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कामायनी के इतिहास को लेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचने हैं कि कामायनी में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। कामायनी की आधारभूमि इतिहास सम्मत है। कवि ने इस कथा को स्वाभाविक, मौलिक और हृदयग्राही बनाने के लिए, उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए मौलिक कल्पना का सहारा लिया हैं, परंतु यह कल्पना पूर्णरूप से ऐतिहासिक परिवेश से संबंधित प्रस्तुत की गई है। इसमें इतिहास की आधारभूमि स्पष्ट हुई है। अंत में यह कह सकते हैं कि कामायनी में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है।

१.३.५ कामायनी में रूपकत्व :-

'कामायनी' प्रसाद का ऐतिहासिक महाकाव्य है। उसकी कथावस्तु घटना एवं पात्र की प्राचीनता के साथ-साथ सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करता है। इस लक्ष्य को प्रसाद ने कामायनी की भूमिका में स्पष्ट कर दिया है, वे कहते हैं कि 'यदी श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बडा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।'

इसी प्रकार प्रसाद ने मनु, श्रध्दा तथा इडा का व्यक्तित्त्व प्रस्तुत करते हुए पात्रों के सांकेतिक व्यक्तित्व

का उल्लेख स्वयं किया हैं। मनु को मन का प्रतीक माना है और श्रध्दा को ह्दय का। उन्होंने कामायनी की भूमिका में लिखा हैं- 'श्रद्धा हृदय याकृत्या श्रद्धा विन्दते वसु।'

इड़ा को बुद्धि का प्रतीक माना हैं। इस समग्र विवेचन से अनुमान कर सकते हैं कि, कामायनी मूलतः ऐतिहासिक काव्य है किन्तु उसके पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के साथ-साथ सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि कामायनी को 'रूपक काव्य' कहा गया है। इसके संबंध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि कामायनी में कहीं कहीं ऐसी घटनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनकी रूपकात्मक संधि नहीं होती, क्योंकि कवि का उद्देश्य आरम्भ से अंत तक रूपक को निभाने का नहीं है।

रूपक काव्य क्या है? :-

कामायनी में रूपकतत्त्व है। इसका अध्ययन करते समय 'रूपक' किसे कहते है? यह जान लेना चाहिए। रूपक का प्रयोग साहित्य में दो अर्थों में होता हैं।१) साधारणतः साहित्यशास्त्र में समस्त दृश्यकाव्य को रूपक कहा जाता है। २) 'रूपक' एक साम्यमूलक अलंकार है। अलंकार के रूप में अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप जब किया जाता है, तब उसे 'रूपक अलंकार' कहते हैं। इसे ही अंग्रेजी में 'एलीगरी' कहते हैं। इसका अर्थ है द्वयर्थक कथा। इसका एक अर्थ प्रत्यक्ष और दूसरा अर्थ परोक्ष होता है। संस्कृत में इस प्रकार की कथा को **म**अन्योक्ति**फ** कहा जाता है अर्थात् इसमें एक साधारण अर्थ होता है और दूसरा गुढार्थ। अप्रस्तुत अर्थ पर प्रस्तुत अर्थ का अभेद आरोप होता है। संक्षेप में रूपक का अर्थ है- **म**जिसमें सैद्धान्तिक अप्रस्तुत अर्थ अर्थात् ध्वन्यार्थ का प्रस्तुत अर्थ पर अभेद आरोप किया जाता है। कामायनी में रूपकत्व है, इसे आधार मानकर कामायनी की समीक्षा आवश्यक है। कामायनी का रूपक-काव्य रूप घटनाओं, पात्रों, स्थानों तथा पदार्थों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

क) घटनाओं का रूपकत्त्व :-

कामायनी के निर्माण के लिए प्रसाद ने देवसृष्टि के विध्वंस तथा जलप्लावन की घटना से प्रारंभ किया है। 'जलप्लावन' कामायनी की महत्त्वपूर्ण घटना है।प्रत्येक धर्म में इस घटना को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। जलप्लावन मनु के दृष्टिकोण से देवों की अगाध इंद्रिय वासना का दुष्परिणाम था। इस बात को प्रसाद ने स्वीकार किया था। प्रतीकात्मक अर्थ में जलप्लावन की घटना का अर्थ है 'जब मन निर्बाध इंद्रिय उपासना में लग जाता है, तब ता सम्पूर्ण चेतना मायारूपी जल में डूब जाती है।'

चिन्ताग्रस्थ मनु को श्रध्दा जब मिलती है, तब उनके जीवन में नूतनता का संचार होता है। श्रध्दा की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मनु जीवन में कर्म करने के लिए प्रवृत्त हो जात हैं। प्रतीकात्मक रूप में इसका अर्थ यह है ''मन को ह्दय का सहयोग मिलता है, तब वह कर्मशील हो जाता है।''

जलप्लावन के बाद उल्लेखनीय घटना पशुयज्ञ है। पशुयज्ञ में मनु असुर पुरोहित आकुली और किलात के प्रभाव में आकर श्रद्धा पालतू पशु की यज्ञ में बील दे देते हैं। यहाँ मन की हिंसात्मक घटनाओं को रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ह्दय की रागात्मक वृत्ति का इस समय मन पर कोई अधिकार नहीं रहता।

सारस्वत प्रदेश में मनु इड़ा के साथ रहते-रहते उसके रूप और सौन्दर्य से अभिभूत होकर, उसके साथ वासनात्मक संबंध स्थापित करना चाहते हैं किन्तु इड़ा इसका विरोध करती है। परिणामस्वरूप मनु तथा प्रजा में संघर्ष होता है। इस घटना का प्रतीकात्मक अर्थ है ''रागात्मक वृत्ति से विच्छिन्न मन बुध्दि के साथ जुड़ जाता है। बुध्दि उसके उच्छृंखल स्वभाव का विरोध करती है, परिणामस्वरूप संघर्ष होता है अर्थात् मन चेतनाशून्य हो जाता है।''

कामायनी की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है त्रिपुर दाह। मनु श्रध्दा के साथ कैलास पर्वतापर जाते हैं, उन्हें वहाँ तीन गोलोक दिखाई देते हैं। मनु उत्सुकतापूर्वक श्रद्धा से उसके संबंध में पूछते हैं। इन तीनों गोलोकों का रहस्य समझाकर श्रद्धा मनु को बताती है, ''जीवन की यह विडंबना है कि यह तीनों पृथक्-पृथक् रहते हैं।'' वह इन तीनों का समन्वय कर अखण्ड आनन्द की सृष्टि करती है।

प्रतीकात्मक दृष्टि से त्रिपुरता अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। त्रिपुरता यानि इच्छा, कर्म तथा ज्ञान यह तीनों वृत्तियाँ ही मन की वृत्तियाँ हैं। इनमें परस्पर सामंजस्य नहीं होता। इसी कारण मन में असंख्य दुःखों का जन्म होता हैं। त्रिपुर दाह का अर्थ है, त्रिपुर याने तीन प्रवृत्तियाँ-इच्छा, कर्म तथा ज्ञान।त्रिपुर की कल्पना कामायनी को सैध्दान्तिक आधार प्रदान करती है। इस तीनों के सहयोग से मन को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है।

ख) पात्रों में रूपकत्व :-

कामायनी में प्रमुख तीन पात्र हैं। मनु, श्रद्धा तथा इड़ा। कामायनी के दोनों पात्रों में उमा (मानव) आकुली और किलात(असुर-पुरोहित) सांकेतिक पात्रों में काम और लज्जा हैं। यह सभी पात्र रूपकत्व के कारण दोहरा व्यक्तित्व रखते हैं। यहाँ पर पात्रों के रूपकत्त्व पर निम्न प्रकार से विचार किया गया हैं।

मनु :- मनु को प्रसाद ने मन का प्रतीक कहा है। व्याकरण में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार हुई है - मन्यते अनेन इति मनु अर्थात् जिससे मनन किया जाय वह मनु अथवा मन है। इसलिए प्रसाद ने मनु की मनन शक्ति का प्रारम्भ में ही उल्लेख किया हैं। मन के प्रतीक होने के कारण मनुमय कोश में स्थित जीव के प्रतीक है। मनुमय कोश में स्थित जीव प्रारंभ में ही अहंकार की भावना से भरा रहता है। इस कारण प्रसाद लिखते हैं-

''मैं हूँ यह वरदान सदृश्य क्यो? लगा गुँजने कानों में,
मैं भी कहने लगा मैं रहूँ, शाश्वत नभ के गानों में।''

मनोमय कोश में मन इन्द्रियों की बाढ में वे विनाशपर चिन्ता करते हैं। मनु अर्थात् मन में चिन्तनशीलता इसी कारण मानी गयी है। यही मनु याने मन हिमालय के उत्तुंग शिखरपर बैठकर आँखों से आँसू बहाकर प्रलय प्रवाह देखता है। वास्तव में कामायनी मन के उत्थान-पतन की कथा है। अहंभाव तथा चिन्ताग्रस्त मनु या मन हृदय के सहयोग से कर्मशील होता है किन्तु इसी बीच मन में भोगों की प्रेरणा होती है और मन श्रद्धा अथवा हृदय की रागात्मक वृत्ति की उपेक्षा कर आसुरी वृत्तियों के अधीन हो जाता है। यहाँ मन का पतन होता है और वह स्थित हो जाता है। किन्तु प्राणमय कोश अर्थात् मन में चंचलता रहती है। यह श्रध्दा से विमुख होकर बद्धि के जाल में फँस जाता है और जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टि रखने लगता है। ऐसी स्थिति में मन का और पतन होता है और वह अन्तमें कोश में स्थित मन अपने उद्धार के लिए प्रयत्न करता है। निर्वेग स्थिति में मनु भौतिकता छोड़ने लगते हैं और कहते हैं -

''सोच रहे थे जीवन सुख है? ना यह विकट पहेली है,
भाग अरे मनु! इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है।''

इस प्रकार मन का उद्धार यही से प्रारंभ होता है। रहस्य सर्ग से लेकर दर्शन सर्ग तक आते-आते मन विज्ञानमय हो जाता है। त्रिपुर के दर्शन एवं सामंजस्य से मन की चंचलता, असंतुष्टता, संकल्प-विकल्प की वृत्तियों को छोड़कर वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है। मन के उत्थान की अंतिम सीढी यही है 'आनंदमय कोश।' इस कोश में आने के बाद मन समरस होकर अखण्ड आनन्द की अनुभूति करता है।

श्रद्धा :- श्रद्धा हृदय की वृत्ति का प्रतीक है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने श्रध्दा को हृदयवृत्ति का प्रतीक

माना है। वह विश्वासमयी रागात्मक प्रवृत्ति है। ऋग्वेद में कहा गया है कि "मनुष्य सभी प्रकार की समृध्दियों को श्रद्धा के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा का निर्माण कामद्वारा हुआ है, इसलिए वह कामायनी है। इस श्रद्धा में हृदय के सभी श्रेष्ठतम भाव मिलते हैं।" उसके चरित्रांकन को लेकर प्रसाद लिखते हैं-

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लम्बी काया, उन्मुक्त

मनु पवन क्रिड़ीत ज्यों शिशुसाल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।"

इस प्रकार श्रध्दा उसके विश्वासी मन को कर्मशील बनाती है और मनु को भी कर्मशील बनाती है। इसका चित्रण करते हुए महाकवि प्रसाद ने लिखा हैं-

"डरो मत, अरे अमृत संतान अग्रसर है मंगलमय वृध्दि,

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र खिंची आवेगी सकल समृध्दि।"

'श्रध्दा' काम गोत्रजा होने के कारण कामायनी है। मन को सांत्वना हृदय के मार्गपर चलने से ही मिलती है।

उपर्युक्त समग्र विवेचन के आधार पर यहा कहा जा सकता है कि, 'कामायनी एक रूपक काव्य है' किन्तु कामायनी के रूपकतत्व पर आलोचकों ने, विद्वानों ने निम्न आक्षेप उठाये हैं-

आ. रामचंद्र शुक्ल ने पात्रों की प्रतीकात्मकता और घटनाओं की प्रतीकात्मकता पर आक्षेप लगाते हुए कहा हैं "मनु इड़ा की प्रेरणा से कर्मलोक में प्रवृत्त होते हैं फिर ज्ञानलोक और कर्मलोक को अलग-अलग कैसे माना जा सकता है?"

डॉ. नगेन्द्र ने मानव चरित्रपर आक्षेप लगाते हुए कहा हैं "मनु और मानव दोनों ही मन के प्रतीक हैं। प्रतीकात्मक दृष्टि से मानव पात्र आवश्यक है। सारस्वत प्रदेश में वृषभ को कैलास पर्वत पर छोड़ना भी सैद्धान्तिक दृष्टि से आक्षेपार्ह लगता है। श्रद्धा का वियोग वर्णन प्रतीकात्मक नहीं है।" आ. रामचंद्र शुक्ल भी श्रद्धा के चरित्रपर आक्षेप लगाते हैं कि "श्रद्धा भावलोक की प्रतीक है।" इन आक्षेपों को देखते हुए कहा जा सकता हैं कि श्रद्धा रागात्मक वृत्ति की भावना है परन्तु दार्शनिक रूपों में ज्ञान, इच्छा तथा कर्म तीनों ही समा जाते हैं। श्रद्धा जीवन की प्रेरणा शक्ति है।

उपर्युक्त आक्षेपों के बावजूद कामायनी को पूर्णतः रूपक काव्य माना जा सकता है।

१.३.६ कामायनी : समरसता दर्शन :-

कवि जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के 'रहस्य सर्ग' में समरसता सिध्दांत का प्रतिपादन किया है। उन्होंने इस सिद्धांत को प्रत्याभिज्ञान दर्शन से लिया है। शैव दर्शन में पाँच प्रमुख संप्रदाय माने जाते हैं- तमिल शैवदर्शन, नकुलीश पाशुपात दर्शन, रसेश्वर दर्शन, लिंगायत दर्शन और प्रत्याभिज्ञा दर्शन। कश्मीर में अभिनवगुप्ताचार्य ने शैव दर्शन के जिस रूप का उद्घाटन किया है वही 'प्रत्याभिज्ञानदर्शन' कहलाता है। मलों से आवृत आत्मा जब क्रिया, ज्ञान, इच्छा शक्तियों का भेद रहित एकीकरण कर देती है तो वह ज्ञान अतीन्द्रिय अथवा प्रतिभा कहलाता है। आत्मस्वरूप शिवत्व का ज्ञान ही 'प्रत्याभिज्ञान' कहा जाता, इसलिए इस दर्शन को प्रत्याभिज्ञानदर्शन कहते हैं। यह स्वातंत्र्यवाद, आभासवाद और अभेदवाद ऐसे कई नामों से जाना जाता है। शिव स्वातंत्रापूर्वक स्वेच्छा से विश्व का उन्मीलन करते हैं इस कारण इसे 'स्वातंत्र्यवाद' कहा जाता है। इसमें शंकर दर्शन की तरह विश्व को विर्वत न मानकर चिदात्मा का 'आभास'

माना गया है। इसी कारण से इसे आभासवाद के नाम से जाना जाता है। इसमें तत्व और जीव, ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं अभेद है इसलिए इसे अभेदवाद के नाम से भी जाना जाता है।

छायावादी कवि प्रसाद ने कामायनी में कविता के माध्यम से प्रत्याभिज्ञानदर्शन का प्रतिपादन कर विश्व जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया हैं। जयशंकर प्रसाद के मतानुसार प्रत्याभिज्ञानदर्शन में समरसता के सिद्धांत का विशेष महत्व है। समरसता की स्थिती में पुरूष अपने लघुत्व एवं संकुचित अवस्था से मुक्त होकर बहुत्व या व्यापकत्व-आत्मन से समरस हो जाता है। समरस का अर्थ दो तत्वों के पूर्णरूपेण परस्पर बाह्यान्तर सम्मिलन से होता है। ''स्वच्छन्द तंत्र में उल्लेख आया है कि जिस प्रकार एक नदी समुद्र में मिलकर समरसता को प्राप्त होती है। तत्पश्चात् समुद्र एवं नदी में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं रह जाती। आत्मा परमात्मा को प्राप्त होकर एकरूप हो जाती है, तो उसी को सामरस्य या समान रस की भावना कहते हैं।''

''नेत्र तंत्र में समरसता के बारे में यह लिखा गया है कि जिस समय योगी इस तथ्य से अवगत हो जाता है कि न तो मैं हूँ और न कोई अन्य है और ध्येय ही वहाँ विद्यमान है, अपितु मन आनन्द में लीन होकर समरस हो गया है, तब इस स्थिति को समरसता कहते है।'' सरल शब्दों में,समरसता से तात्पर्य है कि द्वैत भावना की समाप्ति पर समरसस्थिति में पहुँचकर आनन्द की अनुभूति होना।''

लिंगायत दर्शन में समरसता शब्द की व्युत्पत्ति समरस से मानी है। प्रसाद ने प्रत्याभिज्ञानदर्शन के आधार पर समरसता का उल्लेख करते हुए बताया है कि प्रत्येक मनुष्य समरसता का अधिकारी है- **''नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता, कारण जलधि समान।''** कारण यह है कि जहाँ विषमता है, वहाँ समरसता नहीं है और जहाँ समरसता है, वहाँ विषमता का कोई अस्तित्व नहीं है। वर्तमानकालीन विषमता से मुक्ति पाने के लिए प्रसाद ने कामायनी में जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह न केवल दर्शन का विषय है, अपितु व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत होने के कारण अत्यंत उपयोगी बन पड़ा है। प्रसाद ने सभी क्षेत्रों में समरसता स्थापित करने पर जोर दिया हैं। उन्होंने नर और नारी, सामाजिक और राजनैतिक जीवन, शासित और शासक, अधिकारी और अधिकृत तथा शोषण और शोषित के बीच समरसता स्थापित करने पर जोर दिया हैं। उन्होंने समरसता के लिए अनेक क्षेत्रों में प्रयत्न किया है। इसके लिए उन्होंने बुद्धि, हृदय की समरसता, इच्छा, ज्ञान और क्रिया का, शासक और शासित का और व्यष्टि और समाष्टि का समन्वय चित्रित करते हुए व्यक्ति की समरसता पर जोर दिया हैं।

प्रत्याभिज्ञानदर्शन में साध्य आनंद है और साधन सामरस्य की प्राप्ति। ज्ञान-क्रिया और इच्छा ये तीन शक्तियाँ पुरूष के तीन तत्वों बुध्दि, अहंकार और मन में संकुचित होकर निहित रहती हैं। इन शक्तियों की पृथक्ता से वैषम्य तथा भेद उत्पन्न होता है। भेद के नष्ट होने पर इन शक्तियों का सामरस्य होता है जिसे शिवत्व की प्राप्ति कहते है। इसीलिए प्रसाद कहते हैं-

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हो इच्छा कैसे पूरी हो मनकी

एक-दूसरे से न मिल सके यह विड़म्बना है जीवन की।''

कामायनी में श्रद्धा मनु को ऐसे लोक में ले जाती है जहाँ इच्छा (ऐंद्रिक रसास्वादन) क्रिया (भोग साधन जुटाने वाली बुध्दि और कर्म) और ज्ञान (निवृत्ति) का भेद समाप्त हो जाता है। रागविराग की भूमिपर इच्छा की आनन्ददायक तृप्ति होती है। संसार से विरक्त होकर मनु श्रद्धा के साथ मानसरोवर की ओर जाते हैं। इसका प्रतीकार्थ है कि मानव आस्तिक बुध्दि के द्वारा समरसता की स्थिति को प्राप्त करता है। मनु और श्रद्धा समरसता की स्थिति को पाना चाहते हैं। प्रसाद ने पारिवारिक जीवन को भी सुख, शांति और

आनन्दमय बनाने के लिए, समरसता लाने के लिए संकेत किया हैं-

''तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की समरसता है

सम्बन्ध बनी अधिकार और प्राप्त करते हैं।''

मनु और श्रद्धा समरसता की स्थिति को प्राप्त करते हैं। जिसे प्रसाद ने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया हैं-

''समरस थे जड़-या चेतन सुन्दर साकार घना था।

चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड़ घना था।''

कामायनी की श्रद्धा अपने पुत्र को यही संदेश देती है -

''सबकी समरसता का कर प्रचार

मेरे सुत, सुन मां की पुकार।''

इस समरसता का प्रभाव यह हुआ कि सारस्वत देश में वर्गभेद समाप्त हो गया और सर्वत्र सुखशांति एवं समृध्दि छा गयी। डॉ. रामलाल सिंह ने कामायनी अनुशीलन में लिखा हैं - ''दो विपक्षी या विरोधी वस्तुओं के द्वन्द्व का अभाव ही समरसता है। द्वन्व्द के अभाव में उनमें समन्वय स्थापित हो जाता है।''

प्रसाद ने कामायनी में लिखा है कि यदि विश्व के सारे मानव समरसता अपना ले, तो कोई किसी की सेवा को परायी न समझेगा, यह विश्व एक नीड़ बन जायेगा जहाँ न कोई शापित तपित या पापी होगा। जीवन वसुधा समतल हो जायेगी -

''शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है

जीवन वसुधा समतल है समरस है ज्यों कि जहाँ है।''

१.३.७ छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर कामायनी का मूल्यांकन :-

कामायनी का निर्माण छायावाद की प्रौढ बेला में हुआ है। यही कारण है कि उसमें छायावाद की समग्र प्रवृतियाँ दृष्टिगत होती हैं जिनपर चर्चा करना आवश्यक है-

* सौंदर्यदर्शन :-

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि है अतः छायावादी काव्यशैली का चरम उत्कर्ष उनके काव्य में मिलता है। छायावादी कविता प्रेम और सौंदर्य की कविता है। इस कारण कामायनी में प्रसाद ने कई प्रकृति की सौंदर्यमूलक उपमाओं को चित्रित किया हैं। इसी कारण इन्हें सर्वत्र सौंदर्यमयी चंचल वृत्तियाँ रहस्य बनकर नाचती हुई प्रतीत होती हैं। सभी स्थानों पर अपनी मधुरिमा में एक महान संदेश सुनाई पड़ता है और तारांगण चंद्र, ज्योत्स्ना, रजनीगंधा, उषा आदि सभी उन्हें मधुमय संदेश देते हैं। शिव का विनाशकारी भीषण तांडव नृत्य के गुंजन करनेवाले घरों से मधुर ध्वनि निकलती है। बहते हुए पवन के मृदुंग वादन, अप्सरा का नृत्य आदि के दर्शन होते हैं। प्रसाद ने झरना से लेकर कामायनी तक प्रकृति सौंदर्य के विविध चित्र खींचे हैं। उदाहरण स्वरूप इन पंक्तियों को दिया जा सकता हैं-

''ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था,

मादक मकरन्द की वृष्टि रही।''

⁕ श्रृंगारिकता :–

कामायनी में श्रद्धा के द्वारा श्रृंगार के दोनों पक्ष संयोग, वियोग का चित्रण मिलता है। श्रद्धा का सौंदर्य वर्णन मंगलमय है। इसे बताते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैं– नित्य यौवन छबी से दिप्त, विश्व की करूण कामनाओं की सौंदर्य प्रतिमा जोत्स्ना निर्झर आदि के दर्शन होते हैं। प्रसाद ने जिस श्रृंगारिकता को कामायनी में अपनाया है, वह विशुद्ध प्रेम का प्रतीक है क्योंकि उन्होंने देवसृष्टि का विनाश एवं मनु का पतन दिखाकर अंत में विकास की ओर अग्रेसर किया है।

⁕ वैयक्तिक सुख–दुःख की अनुभूति :–

छायावादी कविता में प्रत्येक कवि अपने वैयक्तिक सुख–दुःख के अवसर पाकर प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है और उसके सहारे सामाजिक भावनाओं का चित्रण करता है। कामायनी में प्रसाद की दुःखानुभूति, सुखानुभूति, मनु और श्रद्धा के द्वारा फूट पड़ी हैं। प्रसाद की सुख दुःख संबंधी सहानुभूति के दर्शन चिंता तथा आशा सर्ग में होता है। इन सर्गों में मनु के द्वारा वर्णित जीवन की विषमता एवं कटुता के दर्शन मिलते हैं। श्रद्धा सर्ग में मनु की व्यथा पूर्ण निराशा की स्थिति तथा श्रद्धा के आशापूर्ण संदेश, ईड़ा सर्ग में मनु का निजी दुःख आदि को विस्तार से बताया हैं।

⁕ प्रकृति पर चेतना का आरोप :–

कामायनी में प्रसाद ने जड़मय चेतना का आरोप किया है। उसीको मानवीकरण कहा जाता है। कभी इसको रजनी के रूप में विकल, खिलखिलाती हुई, घूंघट उठाती, मुस्कुराती हुए बेसुध होकर चंचलता के साथ आंचल छोड़कर भागती हुई दिखाई देती है। तो कभी वह चंचल तिजोरी का प्रतीक बन जाती है। इस तरह प्रसाद ने समस्त प्रतीकों, रूपादानों में कही ना कहीं मानवीय व्यापारों को आरोपित किया हैं।

⁕ आध्यात्मिकता :–

छायावादी कवि सर्वात्मवाद अथवा अद्वैतवाद का पुजारी रही है। इसी कारण वह एक ऐसी अज्ञात शक्ति के दर्शन करता है, जो उससे अभिन्न होकर सारे विश्व में व्याप्त है। वह कभी उसे प्रश्न करता है, तो कभी उसे जिज्ञासा भरे नेत्रों से देखता है, तो कभी वियोग का अनुभव करता है। इस प्रकार छायावादी कवि निर्गुण निराकार एवं रहस्यमय सत्ता के प्रति अपना रागात्मक संबंध स्थापित करके अपने विचार प्रकट करता हैं। कामायनी में ऐसे ही आध्यात्मिक भावना आगे चलकर रहस्य में बदल जाती है।

⁕ नारी की महत्ता :–

कामायनी में प्रसाद ने नारी की दया, माया, ममता, त्याग, बलिदान, सेवा आदि गुणों का समर्थन किया हैं। वे कहते हैं –

‘‘नारी तुम केवल श्रद्धा **हो, विश्वास रजतपगतल में,**

पियुष गीत सी बहा करो जीव के सुंदर फेरे मेंफ्फ़

प्रसाद की सृष्टि में नारी श्रध्दामयी है और वह जीवन के सप्ताह में सतत अमृतधारा को बहानेवाली है। इस प्रकार कामायनी–श्रद्धा को अत्यंत उदार निर्विक, मातृमूर्ति, कल्याणमयी, क्षमाशील आदि कहकर साधारण मानव से उच्च बताया है।

⁕ मानवता की निवृत्ति :–

कामायनी में प्रसाद ने विश्वव्यापी मानवता का चित्रण किया हैं। अतः मानव भावों के सत्य चेतना का सुदंर इतिहास बताया है। विश्व की दुर्बलताओं को बलावती बनाने की सलाह दी हैं। मानवता विजयनी

बनाने के लिए शक्ति के विद्युत् कणों को संकलित करने का आग्रह किया। संपूर्ण विश्व को एक नीर बतलाया है और अंत में समस्त भेदभावों को भूलकर संपूर्ण प्राणियों को एक कुटुंब के रूप में रहने का आग्रह किया है।

*** अभिव्यंजना की अनूठी पध्दति :-**

समस्त छायावादी रचनाओं में कामायनी को ही अनूठी अभिव्यंजना प्राप्त हुई है और इसलिए कामायनी को छायावाद की सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में स्वीकार किया है। कवि ने स्वानुभूति को विश्वास की अनुभूति में बदल दिया हैं। उनकी समस्या और समाधान बन गयी हैं। उसका अध्यात्म रहस्यवाद में बदल गया हैं। जिसमें उसे निरंतर प्रकृति के अज्ञात, विराट दर्शन में जिज्ञासा और कौतुहल बार-बार दिखाई देता हैं। प्रकृति के कण-कण में उसे कहीं न कहीं एक चुनौती मिलती हैं। जैसे कहा हैं - न जाने नक्षत्रों से कौन नियंत्रण देता मुझको मौत

*** रहस्यवाद :-**

कामायनी में रहस्यवाद को भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया हैं। जैसे विश्वव्यापी अज्ञात व्यक्ति के प्रति जिज्ञासा की भावना उस सत्ता के महत्ता का प्रदर्शन, दर्शन या मिलन का प्रयत्न भौतिक विघ्न एवं वेदना की निवृत्ति, उस अव्यक्त सत्ता का आभास या दर्शन संसार की वास्तविकता का ज्ञान और चिर मिलन आदि छायावाद के समस्त तत्त्व कामायनी में चित्रित हुए हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि छायावाद की लगभग सभी प्रवृत्तियों को कामायनी में सहजता से देखा जा सकता है।

१.४ शब्दार्थ

मनन-चिंतन
जीव-प्राणी
संसृति-संसार,
तीर-किनारा।
प्रभा-शोभा,कांति।
ओघ-प्रवाह, वासना की वेगमयी धारा,
किसलय-किसलय के पत्ते
दिपति-सी-चमकती हुई-सी।
जर्जर-थोथा, क्षुद्र,
सर्ग-सृष्टि, अध्याय,
निश्चिंत-चिंतारहित,
अमर-देव।
जलनिधि-समुद्र, सागर।
निर्जन-विजन, एकान्त।
अभिषेक - राजतिलक।
तृष्णा- प्यास, उत्कट लालसा।
धूमिल पट- अंधकार रूपी वस्त्र,
दीपक का स्वर-दीपक की ज्योति
दंभ-अहंकार,

१.५ सारांश :-

छायावाद के प्रमुख आधारस्तंभ जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय एवं रचना परिचय, उनके द्वारा लिखित कामायनी के पंद्रह सर्गों का संक्षिप्त कथानक, कामायनी में इतिहास और कल्पना का हुआ सुन्दर समन्वय, कामायनी का रूपकत्व तथा कामायनी में अभिव्यक्त समरसता दर्शन और छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर श्रेष्ठ कृति कामायनी का मूल्यांकन करके आधुनिक जीवन की त्रासदी से उभरने के

उपाय, कामायनी में चित्रित हैं। जयशंकर प्रसाद केवल छायावदी काव्य के ही नहीं, अपितु हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं। काव्य के क्षेत्र में 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' उनकी कीर्ति के आधार स्तम्भ हैं। इनमें 'कामायनी' उनकी काव्य रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि रचना है। उसमें प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक आधार लेकर मानव की मनोभावनाओं का सुन्दर रूप में चित्रांकन किया हैं और साथ ही शैव दर्शन के प्रत्याभिज्ञादर्शन में उल्लेखित समरसता सिद्धांत का भी गहनता एवं परिपूर्णता के साथ निरूपण किया है। इसमें प्राचनी देव-संस्कृति के विकास और अधःपतन के माध्यम से मानव-जीवन के विकास की कथा को रूपायित किया गया है। छायावादी कविता के गुण-दोष भी इस महाकाव्य में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इसमें कवि की मौलिक कल्पना, भव्य-पात्र-सृष्टि, प्रकृति का बहुआयामी चित्रण, मनोवैज्ञानिकता, प्रतीकात्मकता, गहन चिन्तन, मनन सभी साकार एवं एकाकार हो गया है।

कामायनी अपनी काव्य गरिमा और महानता के कारण विद्वानों में चर्चा-परिचर्चा, चिन्तन और अनुचिन्तन एवं शोध का निरन्तर आकर्षण केन्द्र रही है।

१.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरीय प्रश्न :-

- 'कामायनी' महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
- 'कामायनी' में अभिव्यक्त इतिहास और कल्पना के सुन्दर समन्वय पर प्रकाश डालिए।
- महाकाव्य की कसौटी पर 'कामायनी' शत-प्रतिशत खरी उतरती हैं-इस विधान की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
- छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर कामायनी का मूल्यांकन कीजिए।
- 'वर्तमान कालीन समाज की सभी समस्याओं से उभरने का एकमात्र उपाय कामायनी के समरसता दर्शन में खोज सकते हैं?' पक्ष-विपक्ष में चर्चा कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ :-

- कामायनी के शीर्षक की सार्थकता।
- मनु का चरित्र-चित्रण।
- कामायनी की प्रतीकात्मकता।
- चिन्ता मनोभाव का स्वरूप।

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :-

- कामायनी के सर्गों के नाम लिखिए।
- मनु किसी जाति के प्रतिनिधि पुरूष है?
- कामायनी में के विविध पात्रों के नाम लिखिए।
- समरसता का अर्थ लिखिए।
- काम की पत्नी रति का मुख्य काम क्या है?

घ) ससंदर्भ स्पष्टीकरण :-

- "आज अमरता की जीवित हूँ, मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,.........।"

- “ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हो इच्छा कैसे पूरी हो मनकी,........।”
- “समरस थे जड़-या चेतन सुन्दर सरकार बना था,........।”
- “बनो संस्कृति के मूल रहस्य, तुम्ही से फैलेगी वह बेल,.........।”

च) सही पर्याय लिखिए :-

- कामायनी में कुल कितने सर्ग हैं?

अ). पंद्रह ब) सोलह क) चौदह ड) ग्यारह

- जयशंकर प्रसाद के प्रथम काव्य संकलन का नाम क्या है?

अ). कामायनी ब) झरना क) आँसू ड) चित्राधार

- इसमें छायावाद के आधार स्तंभ कौन नहीं है?

अ). भारतेन्दु हरिश्चंद्र ब) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला क) जयशंकर प्रसाद ड) सुमीत्रानंदन पंत

- कामायनी में इड़ा किसका प्रतीक है?

अ). इच्छा ब) अतृप्ति क) बुद्धि ड) भेद

-समरसता का सिद्धांत किस दर्शन में प्रतिपादित है?

अ). बौध्द दर्शन ब) जैन दर्शन क) प्रत्याभिज्ञानदर्शन ड) सांख्य दर्शन

१.७ स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य -

- कामायनी के संदर्भ में अन्य आलोचकों की पुस्तकें संकलित कर उनका अध्ययन किया जाए
- कामायनी के समरसता दर्शन के सहारे सामाजिक एवं पारिवारिक समरसता स्थापित करने हेतु प्रयास कीजिए
- कामायनी की सफलता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए
- जयशंकर प्रसाद की पैतृक घर आज भी बनारस (काशी) में स्थित हैं, उसे भेंट देकर एक अलौकिक अनुभव प्राप्त किया जाए

१.८ संदर्भ- अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- कामायनी-जयशंकर प्रसाद-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- कामायनी की टीका समीक्षात्मक अध्ययन - प्रो. मंजु अग्रवाल - कमल पुष्प, प्रकाशन दिल्ली
- कामायनी : महाभाष्य-डॉ. युगेश्वर-जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- कामायनी विमर्श-डॉ. हरिचरण शर्मा-मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर
- रामचरित मानस और कामायनी-मटुकनाथ चौधरी-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
- आधुनिक हिन्दी कविता की दार्शनिक पृष्ठभूमि-डॉ.पद्म चंद्र अग्रवाल-सापेक्ष, प्रकाशन गाजियाबाद
- प्रसाद और कामायनी(श्रद्धा सर्ग) - श्री. राकेश-प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

इकाई २
द्रौपदी (लघुकाव्य नरेंद्र शर्मा)

अनुक्रम

२.१ उद्देश्य
२.२ प्रस्तावना
२.३ विषय – विवरण
  २.३.१ द्रौपदी का कथ्य
  २.३.२ द्रौपदी की कथा की (अध्यात्मिक दृष्टी से) प्रतीकात्मकता
  २.३.३ नारी नर की शक्ति का प्रतीक
  २.३.४ 'द्रौपदी' के पात्रों की प्रतिकात्मकता
  २.३.५ 'द्रौपदी' के पात्रों का चरित्र – चित्रण
  २.३.६ पांडवों का अज्ञातवास
  २.३.७ महाभारत के युद्ध का वर्णन
  २.३.८ 'द्रौपदी' का शिल्पविधान
२.४ शब्दार्थ
२.५ सारांश
२.६ स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न
२.७ स्वाध्याय–क्षेत्रीय कार्य
२.८ संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

२.१ उद्देश्य

* आधुनिक काल के काव्य एवं खंडकाव्य – की प्रवृत्तियों को जानना।
* लघु–काव्य की प्रतीकात्मकता से परिचित होना।
* महाभारत की कथा के अंश द्वारा जीवन – उपयुक्त संदेश प्राप्त करना।

२.२. प्रस्तावना

काव्य मानव मन की सुकोमल भावनाओं की, सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। काव्य के विषय आदि दृष्टि से भेद बनते हैं। उदा. महाकाव्य, खंडकाव्य, गीति – काव्य, लघु – काव्य आदि। प्रस्तुत इकाई में लघु–काव्य 'द्रौपदी' की जानकारी प्राप्त करनी है। कवि हैं नरेंद्र शर्मा। वे भूमिका में कहतें हैं कि 'द्रौपदी' में मेरा उद्देश्य पुरानी कहानी को दुहराना नहीं है। मैं यह मानकर चला हूँ कि सहृदय पाठक महाभारत की कथा से भली भाँति परिचित हैं। इसलिए मैंने संकेतों और संस्पर्शो को ही अलम समझा है। जिस कथा को हम बाल्यकाल से ही सुनते आए है, उसे ज्यों की त्यों पद्यबद्ध करना है। इस उद्देश्य के अनुरूप मैंने लोकप्रसिद्ध कथा के बीज–दृष्टी और लघिमा शैली को अपनाया है।''

'द्रौपदी' की कथावस्तु पाँच भागों या सर्गों में विभाजित की है। कथा का आरंभ द्रौपदी - स्वयंवर से होता है। द्रौपदी यज्ञकुंड से पैदा हुई थी। कृष्ण - द्रौपदी का संबंध भाई-बहन का अत: उसे 'नारायणी' शक्ति कहा गया है। पांडवों को पार्थ कहा गया है। क्योंकि पृथा उनकी माता हैं। उन्हें ही कुंती कहा जाता हैं। कौतूहल वश उन्होंने सूर्य का आवाहन किया था अत: कन्यावस्था में उन्हें 'कर्ण' नामक पुत्र हुआ जो अवैध माना गया, जिसका त्याग समाज के भय से कुंतीने कर दिया था। पंडु की पत्नी बनने के बाद धर्म, अर्जुन, भीम और माद्री के नकुल-सहदेव सबको पांडव कहा गया है। गांधारी के भाई शकुनि जो पांडव - कौरवों में मेल कराना नहीं चाहते। दुर्योधन शकुनि की ही चाल चलता है और अपने ही विनाश का कारण बन जाता है।

कवि ने पाँचो पांडवों को धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेव को पंचमहाभूत माना है। धृतराष्ट्र अचेतन मानस का प्रतीक हैं जो सौ पुत्रों की इच्छाओं से ही शासित हैं। पुत्र दुर्योधन धृतराष्ट्र जी अव्यक्त आशा-आकांक्षाओं का अभिव्यक्त रूप है। शकुनि जो कुटिल व्यवहार से युधिष्ठिर द्यूत खेलतें हैं और अपना सब कुछ गवा बैठते हैं। बदले में उन्हें बारह साल वनवास और एक साल का अज्ञातवास भुगतना पडता हैं।

द्रौपदी अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए उस प्रतिशोध की आग में धगधगती है। नारी नर की मर्यादा है अगर नर उस मर्यादा को तोडता है या उसे अपमानित करता है तब नर का सर्वनाश ही हुआ है। नारी कृत्या है, कल्याणकारिणी है, अर्थात् नारी जीवन-शक्ति है, सत्प्रेरणा है। उसकें प्रति आदर भावना, सन्मान भावना आवश्यक हैं।

२.३ विषय - विवरण

नरेंद्र शर्मा द्वारा रचित 'द्रौपदी' खंडकाव्य या लघुकाव्य की कथा महाभारत के महत्त्वपूर्ण अंश पर आधारित होते हुए भी कवि ने उस कथा में अपनी प्रतिभा और कल्पना का प्रयोग करके द्रौपदी की कथा में प्रतीकात्मकता के कारण आकर्षण निर्माण किया हैं। 'द्रौपदी' के साथ पांडव, गांधारी, धृतराष्ट्र आदि पात्रों की सहायता से कथानक संकेतात्मक दृष्टीकोण से विस्तारीत किया है और आध्यात्मिक दृष्टि से प्रतीकों के द्वारा कथा के साथ-साथ जीवनोपयोगी संदेश भी देना चाहते हैं। इस कथा का विस्तृत विवेचन आवश्यक हैं।

२.३.१ 'द्रौपदी' का कथ्य -

'द्रौपदी' पाँच सर्गों में विभाजित एक खंड-काव्य जिसे स्वयं कवि ने लघु-काव्य संबोधित किया है। महाभारत के एक महत्त्वपूर्ण अंश को लेकर घटना और पात्रों की प्रतीकात्मक व्याख्या इसमें प्रस्तुत की गई है। उनके द्वारा मानव-जीवन जे कथ्य को सफल बनाया है, उनकी यह कृति प्रौढ - कृति मानी जाती है। कवि ने पाठकों को जिज्ञासु मानकर महाभारत की कथा का जो कथा - अंश चुना है उसमें अपनी दृष्टि और योजनानुसार कुछ परिवर्तन किए हैं। पात्रों एवं घटनाओं की प्रतीकात्मक व्याख्या का क्षेत्र सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक तो है किंतु वह आधुनिक जीवन के कुछ विशिष्ट मूल्यों का निरूपण करके उनकी व्याख्या भी करता है।

द्रौपदी का स्थूल कथानक -

'द्रौपदी' लघुकथा के कवि नरेंद्र शर्मा है। महाभारत के महत्त्वपूर्ण अंश में कुछ परिवर्तन करके उन्होंने

अपनी यह काव्य रचना प्रस्तुत की हैं। इसका कथानक है - कुंती का अवैध पुत्र कर्ण था जिसे सामाजिक भय के कारण नदी में प्रवाहित कर दिया था। बडा होने पर वह अपने बडे भाई युधिष्ठिर को छोडकर दुर्योधन की ओर मिल गया। उसमें दान, दया, दाक्षिण्य आदि सद्‌गुण विद्यमान थे किंतु पापाचारियों के संग के कारण वह नष्ट हो गए। उसने तप और साधना से अनेक दिव्यास्त्र भी प्राप्त किए किंतु अवैध कार्यों में सहयोग देने से वे भी सब नष्ट हो गए। द्रुपद-सुता अर्थात् द्रौपदी के स्वयंवर में वह इसी कारण पार्थ द्वारा पराजित हुआ और द्रौपदी को प्राप्त न कर सका - कवि ने कहा हैं -

''हो गई कर्ण की हार, विजय है, जहा यज्ञ की ज्वाला।

आर्जव कहलाता विजय, पहन वरमाला पर जयमाला।।''

पांडव पांचाली को 'व्याहली' लेकर धर्म-पथ पर अग्रसर हुए। हस्तिनापुर में प्रवेश करने के बाद धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन से अपना आधा राज्य मांगा। अंधे पिता की नियति पांडवों की ओर देखकर दुर्योधन को समझाया कि 'उनका अधिकार उन्हें दे दिया जाएँ। दुर्योधन के दुराग्रह के कारण कुछ भी परिणाम नहीं निकला। पितामह भीष्म भी चाहते थे कि दुराग्रही कौरवों और सत्याग्रही पांडवों में स्नेह-संबंध स्थापित हो। किंतु शकुनि इन दोनों का मिलन देख नहीं सकता था। पतिव्रता गांधारी की भी इच्छा थी कि कौरवों और पांडवों का भविष्य मंगलमय हो। इसी कारण उसने नववधू द्रौपदी को अपने स्नेहालिंगन में बांध लिया था। यह दृश्य देखते ही दुर्योधन जल उठा। पिता धृतराष्ट्र पुत्र के ममत्व में अंधे थे इसी कारण पुत्र अविवेकी बन गया था। शकुनि ने दुर्योधन के, पांडवों और द्रौपदी के प्रति निर्मित इस द्वेषभाव को एक अच्छा शकुन माना और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। वह कहता हैं -

''न दूंगा अवसर की सन्मीत शक्ति को हो प्राप्त।

शकुनि के रहते, मिलेंगे नहीं मन से आप्त।।''

युगों से अलग कुरू और पांचाल प्रदेशों के मिलन द्वारा आर्यावर्त को पुष्ट बनाने की योजना बनी। धृतराष्ट्र भी इसमें हिस्सा लेने के लिए तैयार हो गए किंतु दुर्योधन के मतानुसार यह द्रुपद की चाल थी। उसने अंधे पिता को कहा कि, ''कौरवों से कुछ छिनेगा तभी पांडवों को कुछ प्राप्त होगा और इस वंचना को लिए वह तैयार नहीं हैं। मानो पुत्र की वाणी में पिता की ही इच्छा बोल रही थी। नृपति को विचलित देखकर विदुर ने कहा कि 'युधिष्ठिर को उसका अधिकार मिलना ही नीति और धर्म की रक्षा है।'' दुर्योधन और विदुर के बीच काफी देर तक चर्चा होती रही किंतु ममता से अंधे धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन का पक्ष लेकर युधिष्ठिर को राज्य का हिस्सा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की और इसके बदले में उन्हें प्राचीन भूमि 'खांडव - वन' देने की बात कही। राज-द्वारा सुरक्षित दृष्टि से भी खांडव - वन के बसने से हस्तिनापुर का पश्चिम द्वारा सुरक्षित होता था। अंतमें धृतराष्ट्र ने खांडव वन बसाने का युधिष्ठिर को आदेश दिया।

योजना कार्यान्वित हुई, यमुना जे उस पार सूनी पडी ययाति की भूमि को बसाने पांडव निकल पडें। अपने परिश्रम और धर्मपरायणता से उन्होंने अग्नि देवता से दिव्य-शस्त्रास्त्र प्राप्त किए और इंद्र देवता से भी शाश्वत मैत्री का वरदान पाया। दुर्योधन केवल भूप थे। युधिष्ठिर भूपों के भूप बने। वे स्वयं इंद्र और उनका इंद्रप्रस्थ अमरावती - इंद्रपुरी के समान था। सम्राज्ञी द्रौपदी भूतल की शची युधिष्ठिर जी श्री,सिद्धि और संपदा की वृद्धि करने वाली थी। राजसूय यज्ञ में धर्मपुत्र चक्रवर्ती बने। यह देख दुर्योधन मर्माहत हुआ। पहले भी उसने पांडवों के विनाश के लिए अनेक उपाय किए थे पर वे सब विफल रहे और वह निराश, हताश, दुखी हुआ और मामा शकुनि की शरण में आया। शकुनि ने उसे आश्वासन दिया कि पांडव चाहे जितने श्रीमान् कीर्तिमान्, शक्तिमान् हो जाएँ किंतु द्यूतक्रीडा से वह उन्हें अपना दास बना लेंगे और

भाग्यलक्ष्मी द्रौपदी भी हम सबके चरणों की दासी बन जाएगी।

शकुनि को सुयोग मिला। वह युधिष्ठिर की निर्बलता अर्थात् सर्वस्व दाँव पर लगाने की वृत्ति और निरंतर प्राप्त होनेवाली विजय से निर्मित अहं की भावना से परिचित था। उसने दुर्योधन को द्यूत का आयोजन करने को कहा। जुआ खेला, उसमें युधिष्ठिर हार गए। सबकुछ हार जाने के बाद द्रौपदी को उपकरण मात्र समझकर दाँव पर लगा दिया –

''सत्य खो बैठे युधिष्ठिर, लगाया जब दाव पर,

देवदत्ता यज्ञजा को समझकर निज उपकरण।''

और वे याज्ञसेनी – द्रौपदी को भी खो बैठे। कौरवों की भरी सभा में दु:शासन ने उस अयोनिजा को निर्वसन करने का निर्लज्जतापूर्ण प्रयत्न किया। द्रौपदी का अपमान युधिष्ठिर की आँखों के सामने हुआ। कौरवों में अहं रमणेच्छा की भावनाओं ने अधिकार जमा लिया था। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचाई। पांडवों को निर्वासित किया गया। द्रौपदी भी उनके साथ गई। किंतु उसके मन में प्रतिशोध की भावना भडक रही थी – जैसे –

''उठ रही थी यज्ञ – ज्वाला द्रौपदी के क्रोध की।

आ रही थी निकट हर क्षण भूमिका प्रतिशोध की।

पंच – शोणित – सरोवर की भूमि का आहवान था,

शक्ति थी किसमें भला अब शक्ति के प्रतिशोध की।।''

द्रौपदी की खुली वेणी वैतरणी के समान और काले बाल कौरवों के काले भविष्य के समान हैं। कौरवों की मरणवेला पास आ रही हैं। दिव्य–जन्मा शक्ति की अवहेलना और अपमान के कारण कौरवों का नाश हुआ। इसीलिए कवि ने कहा हैं –

''कठिन थी उस दिव्यजन्मा शक्ति की अवहेलना,

कठिन था नभ के लिए भी तेज उसका झेलना,

खेलकर यज्ञाग्नि से सब मर मिटे क्षत्रिय सुभट,

खेल पावक – प्रवंचन का भूलकर मत खेलना।।''

अठारह दिनों के निरंतर और भीषण युद्ध के बाद रण भूमि में निरव–शांति छा गई। चारो ओर का भयानक दृश्य कौरवों की पत्नियाँ विलाप कर रही थीं। वीरों के घर सूने पडे थे। उनके शव विजन में सो रहे थे। यमुना के किनारे स्थान–स्थान पर चिताओं का धुआँ उठ रहा था। सूर्य तनया कालिंदी का हृदय भी अस्थिफूलों के रूप में जल रहा था। इस विनाश की वेला में भी पांडवों के स्वागत के लिए हस्तिनापुर सजा हुआ था। द्रौपदी ने पांडवों के दिल में प्रतिशोध की आग जलाई और कौरवों का संहार हुआ किंतु अंतिम दिन अश्वत्थामा के संहारकारी घनघोर युद्ध में द्रौपदी को अपने पाँच पुत्रों से हाथ धोने पडे। जिन पुत्रों को गांधारी ने अन देखे ही जन्म दिया था, उनके शवों को देखने के लिए उस दुखिया माँ ने अपनी आँखों की पट्टी खोली। द्रौपदी और गांधारी दोनों शोकमग्न थी किंतु दोनों में अंतर था द्रौपदी विजयनी तो गांधारी पराजिता थी। दोनों शोक विगलित थीं। युधिष्ठिर जब मृत संबंधियों की आत्मा को शांति के लिए तर्पण कर रहे थे तब कुंती ने बताया कि कर्ण उसका सहोदर था और उसके हाथों से ही मारा गया है, अत:

उसे भी जल देने का वह आग्रह करती है। यह सुनकर धर्मपुत्र का हृदय अपने आपको धिक्कारने लगता है। वे आत्मग्लानि और आत्मपीडी से विचलित हो उठे। किंतु दूसरे ही क्षण उन्हें ऋतुमती द्रौपदी के केश-कर्षण, भीष्म और द्रोण का अनुचित पक्षपात, चक्रव्यूह में अभिमन्यु की गई निर्मम हत्या का स्मरण हो आया। तब अंतरतम से आवाज आई -

''शुद्ध स्वर्ण से अपने यश को, करो न व्यर्थ कलंकित।

शंकाओं के पार पहुँच कर, क्यों हो रहे सशंकित?

सत्यनिष्ठ हो सत्यनिष्ठ हे, देखो अंतर्तम में

पावक-तनया की जय-गाथा, स्वर्णक्षर से अंकित।।''

''हे सत्य निष्ठ! तुम अब भी सत्य निष्ठ रहो! आत्म - यज्ञ में देवेच्छा के वशीभूत होकर मानव को प्रथम आहुति अपनी ही इच्छाओं की देनी पडती है।'' इस अंतर्द्वंद्व के युधिष्ठिर को माता कुंती याद आई जिसने वैध पुत्र के लिए अवैध पुत्र की बलि दी। गांधारी ने भी धर्म और न्याय के कारण अपने पुत्र दुर्योधन को आशीष भी न दिया। सुबला, द्रुपदा, कुंती, सुभद्रा तथा गांधारी ने धर्मराज की विजय के लिए अपने पुत्रों की बलिदान किया। द्रौपदी के अपमान के कारण यह सब कुछ हुआ। युधिष्ठिर भावी बडी प्रबल होती है। अब चिंता की कालिमा से यश को कलंकित न करो। नारी नर की शक्ति है, जैसे -

दहन शक्ति से मूल्य चुकाती, नारी नर की जय का।

है नारी की सहनशक्ति में संस्थित केतु विजय का।

हस्तिमेरू ढह गया आह से, स्वर्ण द्वारिका डूबी,

है नारी के अश्रू-बिंदु में, पारावर प्रलय का।

नारी की आह से कुरूक्षेत्र ढह गया, स्वर्ग की द्वारिका डूब गई। नारी के आत्मोत्सर्ग से ही नर जीवन सार्थक-सफल होता है। नारी की महिमा उसकी सहनशीलता में है। इसमें ही विजय-केतु का संस्थान है। नारी की आह के ताप से हस्तिमेरू ढह गया, स्वर्ण द्वारिका समुद्र की उत्ताल तरंगों में डूब गई। उसके दुखदग्ध अश्रुकणों में प्रलय की लहरे हिलोरें लेती हैं। उसी प्रकार द्रौपदी के आँसुओं ने कौरवों का विनाश किया। हाहाकार कर दिया है।

नारी नर की मर्यादा है। जब उसकी मर्यादा को नर ने तोडा, उसे अपमानित किया, तब नर का संहार और सर्वनाश हुआ है। नारी कृत्या है, मृत्यू है, उर्वशी सी अप्सरा है, जननी है, जाया है, माया है, तारिणी - कल्याणकारिणी भी है। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया, अर्जुन अश्व के रक्षक बने और उसने सभी दिशाओं के शत्रुओं को हराया तथा हस्तिनापुर में विजय श्री स्थापित की। दुख दूर हुआ, समस्त राज्य में सुख-संपदा का निर्माण हुआ। यह सब द्रौपदी के पुण्यफल का ही प्रसाद था। द्रौपदी के पुण्यों के कारण नर को दिव्यशक्ति और प्रेरणा प्राप्त हुई। वह सृष्टि संचालन का कारण बनी है। इस प्रकार कवि नरेंद्र शर्मा ने नारी को इस उच्च एवं आदरणीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है।

२.३.२ द्रौपदी की कथा की (आध्यात्मिक दृष्टि से) प्रतीकात्मकता -

नरेंद्र शर्मा ने 'द्रौपदी' की कथा को इसप्रकार प्रस्तुत किया है कि यह कथा मनुष्य के हृदय में स्थित भावों की प्रतीकात्मक कथा बन जाती है। भावों की प्रतीकात्मक व्याख्या ही 'द्रौपदी' का कथ्य है - पाँच

पांडव पंचमहातत्व हैं। युधिष्ठिर आकाशतत्व, भीम - पवनतत्व, अर्जुन - अग्नितत्व, नकुल - जलतत्व और सहदेव - भूमितत्व के प्रतीक हैं। होमकुमारी द्रौपदी इन पाँच तत्वों को अपने लुप्त सत्त्वों की प्राप्ति की प्रेरणा देनेवाली जीवन शक्ती है। जब तक द्रौपदी इन पंचभूतों को अपने स्नेहसूत्र (की शक्ति) में बांध नहीं लिया तब तक वे अपने कर्तव्य, दायित्व और अधिकार के प्रति सजग नहीं हुए, चेतना - हीन ही थे। किंतु द्रौपदी ने अपनी जीवन-शक्ति के तेजस्वी स्पर्श आकाश में स्पंदन हुआ, वायु ने वेग प्राप्त किया, अग्नि में तेज उदित हुआ, जल में रसगयता का संचार हुआ और भूमि के प्राणों में सुगंध फैल गई। इस प्रकार आनंदशील पुरुष और धारणा शक्ति रूपा द्रौपदी के दैव - अभिलाषित संयोग का सुअवसर आया।

धृतराष्ट्र अवचेतन मानस है जिसे शत् इच्छाएँ पुत्र रूप में प्राप्त है जिनमें दुराग्रह - दुर्योधन है। कुंती का अवैध पुत्र 'कर्ण' अवैध भाव है। कर्ण दुर्योधन के पक्ष में होने के कारण जीवन-शक्ति और पुरुष के मिलन में बाधा बनने का प्रयत्न करता है। दिव्य-समर्थन न मिलने से पराजित होता है। शकुनि मन में स्थित 'तमस' तत्व है। विदुर विवेक, गांधारी सद्मति और भीष्म पितामह पाँच तत्त्वों मे पार्थ तथा शत इच्छाओं वाले अंध मानस के केंद्र में स्थित भाव है। पृथा पृथ्वी माता है जिन्हें देव वहन शक्ति प्राप्त है।

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन और दुःशासन आदि के पशुबल से भूमि शासित है। जब तक कल्याण की संभावना नहीं तब तक पृथ्वी पर आयोजित सृष्टी यज्ञ में उनकी बलि नहीं जा सकती। पंचतत्त्वों की प्रतीक धर्म आदि का महत्त्व द्रौपदी रूपी जीवन-शक्ति द्वारा ही स्थापित हुआ है। वैध भाव की अवैध तथा धर्म की अधर्म पर विजय से मानव को बडी प्रसन्नता होती है और अब उसकी संगिनी जीवनी-शक्ति ही उसकी नियति बन जाती है।

मनुष्य का अवचेतन मन अवैध भाव की पराजय से अपनी असंख्य इच्छाओं का भविष्य में होनेवाला अंत देखता है और सोचता भी है कि अंध-मानस के इन संकल्पों को छोड दे तो अच्छा होगा। सद्मति और विवेक भी उसे धर्म की आड आने से रोकते हैं। इच्छा होती है कि अतल की मानसी वृत्तियों और आकाशीय वृत्तियाँ स्नेह सूत्र में बंध जाएँ किंतु मानस में स्थित तमस तत्व फिर से अवचेतन मन को अपनी ओर खींच कर भ्रमित कर देता है, दोनों में द्वंद्व चलता है। सद्मति, विवेक जीवनी-शक्ति तथा पुरुष का मंगल चाहते हैं किंतु मानस स्वार्थ में अंधा हो जाने से श्रद्धा के रहते हुए भी मानव की विजय देख नहीं सकता। तमस तत्व अपनी विजय के लिए इसे अच्छा मौका समझता है। श्रद्धा, विवेक तथा मन की अंध वृत्तियों में संघर्ष चलता है। अगर श्रद्धा किसी अवसर पर जीवनी-शक्ति मिल भी जाएँ तो भी तामसी वृत्ति इस मिलन को देख नहीं सकती और मनुष्य के मन पर छा जाती है।

आरंभ में निरंतर सफलता, विजय मिलने के कारण मनुष्य प्रमत्त होकर दैवी साधनों को अपने ही 'उपकरण' समझने लगता है, उसमें अहं की भावना निर्माण होती है। अहं के कारण वह देव प्रदत्त शक्ति यों को अपनी रमणेच्छा और अहं की संतुष्टि के लिए दाँव पर लगाने के लिए भी तैयार हो जाता है। तामसीं भाव ऐसी स्थिती कीं प्रतीक्षा में रहते हैं और अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न करते हैं।

इधर मनुष्य का अवचेतन मन कुछ सोचने के बाद थोडासा झुकता है और मनुष्य को अपना आंशिक समर्थन देने के लिए तैयार होता है। किंतु मनुष्य का उत्कर्ष देखकर अवचेतन मन पुन: ईर्ष्या करके तामसी वृत्तियों का आश्रय लेता है। उधर उन्नति के कारण अहं उत्पन्न होने से तमस तत्व की सहायता से मनुष्य को पराजित करता है। मानस की दुष्ट प्रवृत्तियाँ जीवनी-शक्ति पर कुछ समय के लिए अधिकार से दुष्कृत्यों द्वारा उसे अपमानित करती हैं। जीवनी-शक्ति का अपमान मनुष्य के सामने होता है। वह दिव्यशक्ति अंधमानस, उसकी अंधी इच्छाएँ और अवैध भावनाएँ नष्ट करने का संकल्प करती है।

इसके बाद मानव तथा उसकी जीवनी-शक्ति अपने अधिकारों से वंचित हो निर्वासित होते हैं। निर्वासित का यह अवसर अच्छा ही होता है क्योंकि इस प्रायश्चित्त से उसका अहं, आत्मरति की भावना एवं जीवनी शक्ति को उपकरण समझने की सभी अवैध भावनाओं का शमन हो जाता है। वह ऊर्ध्वगामी बनता है। एकांतिक गुह्य-साधना के बाद दुष्ट भावों का शमन होकर सत्त्वों की प्राप्ति के लिए तमस नष्ट करना चाहता है।

भीषण संघर्ष एवं द्वंद्व के बाद आकाशपुरुष विजय प्राप्त करता है किंतु इस विजय के लिए भूमि को बहुत बडा बलिदान करना पडता है। इस बलिदान से मानव मन आत्मग्लानि से भर जाता है। वह सोचता है कि अंधे मन पर आधृत सद्मति ने अपने उत्पन्न आसुरी वृत्तियों को सामर्थ्य होने पर भी प्रोत्साहन न दिया। वैध के लिए अवैध भावनाओं को नष्ट करने के लिए मजबूर किया। इस भीषण संघर्ष से प्राप्त विजय में बलिदान को देखकर मनुष्य न्याय और धर्म का आश्रय लेकर आदर्शों की स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जाता है। यह सारा कल्याणकारी कार्य जीवनी-शक्ति की ही प्रेरणा से होता है। 'द्रौपदी' ही जीवनी-शक्ति है। उसका चरित्र दिव्य है, उसकी महिमा अनंत है।

२.३.३ नारी नर की शक्ति का प्रतीक

प्राचीन काल से नारी नर की मर्यादा रही है। जब कभी नर ने उस मर्यादा को तोडा तब तो भयानक सर्वनाश हुआ है। मर्यादा तोड कर रावण ने सीता का अपहरण किया तो उसकी सोने की लंका जल कर राख हो गई। उसका अहंकार खत्म हो गया। द्रौपदी के अपमान और लांछन के परिणाम से कौरवों का विनाश हुआ। कुरूक्षेत्र का युद्ध धर्मयुद्ध इसी लिए हुआ। यह सृष्टि यज्ञ है। उसने विश्व कल्याण के लिए पशुबल की आहुति अनिवार्य है। धृतराष्ट्र की अंधी-कामना रूप दु:शासन और दुर्योधन आदि पशुबल के प्रतीक है।

द्रौपदी की प्रेरणा से पांडवों ने धर्म की रक्षा, न्याय की स्थापना और मंगल प्रसार के लिए युद्ध रूप सृष्टि यज्ञ में पशुबल की बलि दी। उन पर विजय प्राप्त करके लोकमंगल की स्थापना की। स्वत्व और सत्त्व प्राप्त करके धर्म की सत्ता स्थापित की। अक्सर देखा गया है कि सात्त्विक ऊर्ध्व चेता व्यक्ति लौकिक संघर्ष और युद्ध से विरत होकर एकांत जीवन बिताते हैं। सत्ता और सत्त्व उन्हें आकर्षिक नहीं करते। शक्ति-प्रेरित कार्य के अभाव में वे सत्त्व, सत्त्व और सत्ता से वंचित रह जाते हैं। ऊर्ध्व-गामिनी चेतना की लहरों ने यदि इन पुरूषों में शक्ति प्रज्वलित नहीं की तो ये पद-पद पर विचलित और असफल होते हैं। धारणा शक्ति रूपा द्रौपदी पांडवों में शाश्वत जीवनी-शक्ति प्रज्वलित करके उन्हें युद्धोन्मुख करती है और विजय के मार्ग पर अग्रसर करती जो धर्म और न्याय का है।

नर की इस विजय का मूल्य नारी अक्सर चुकाती आई है क्योंकि वह अपरिमित सहनशक्ति से युक्त है। कुंती या पृथा ने अपने वैध पुत्रों के लिए अवैध पुत्र कर्ण जैसे तेजस्वी वीर की बलि दी। सुभद्रा ने अभिमन्यु की, द्रौपदी ने पाँचो पांडव पुत्रों की, सुबल सुता गांधारी ने अपने शत पुत्रों को होम कर दिया। लौकिक दृष्टि से महाभारत रूपी यज्ञ भयानक संहार और सर्वनाश की घटनाओं से भरा है। विजय की पताका पर कितनी माताओं को पुत्रहीन, बहनों को भ्राताहीन, अभागिन विधवाओं के अश्रु-बिंदु ढुलक रहे हैं। कौरवों का संहार पांडवों के लिए विजय है या पराजय? सृष्टि-चक्र में यह स्थिती, सृजन-संहार और विजय-पराजय की लहरे निरंतर उठती है। उस यश के संचालन में नारी रूपा जीवनी-शक्ति ही प्रेरणा-प्रदान करती है। उस नारी रूपा शक्ति के अनेक रूप हैं - वह कृत्या है, वह मृत्यु है, वह उर्वशी-सी अप्सरा

है जिसने विक्रम और दुष्यंत को कर्मप्रेरित किया। वह जाया है जिसकी मर्यादा की रक्षा के लिए राम ने समुद्र का संतरण करके रावण का संहार किया। वह कल्याणकारिणी है जिसने युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा पुरुष में स्पंदन और तेज भर कर युद्ध के लिए प्रेरित कर पशुबल को खत्म करके लोकमंगल की स्थापना की। जीवनी-शक्ति रूपा नारायणी-द्रौपदी इस शाश्वत सत्य का प्रतीक है। बिना धरती से आकाश की कल्पना नहीं कर सकते। नारी के बिना नर में तेज का संचार नहीं हो सकता और बिना सत्क्रिया के विचारों का भी महत्त्व नहीं रहता। द्रौपदी उसी सनातन जीवन-शक्ति का प्रतीक है जो अनादि काल से पुरुष में पौरुष को जागृत करके उसे सत्पथ पर लोककल्याण के लिए प्रवृत्त करती है। कवि नरेंद्र शर्मा ने इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रतीक पद्धति द्वारा जीवन की सफलता की प्रेरणा शक्ति द्वारा संदेश दिया है। -

''नारी कृत्या मृत्यु उर्वशी जननी जाया माया।
क्षीरसिंधु धारिणी तारिणी, महाशून्य की काया।।
ऋतानृता, चिद् अचिद् शक्ति वह, नीरा-नाल-कमलिनी।
वह हिरण्यगर्भा है, जिसमें सब ब्रह्मांड समाया।।''

इस प्रतीकात्मक कथा-काव्य का आधार है महाभारत। उद्योग पर्व में यान-संधि विषयक वार्ता के संदर्भ में प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र ने अपने कुमार्ग पर अग्रसर पुत्रों को उपदेश देते हुए पांच पांडवों की तुलना पाँच महातत्त्वोंसे की है और द्रौपदी पांडव रूप नर में शक्ति के तेजस्वी स्फुलिंग भरने लगी है। इस धर्मयुद्ध में नारायण-कृष्ण नर के सारथी है। पिता के उपदेशों का स्वीकार न करने से उनका विनाश हुआ है।

२.३.४ 'द्रौपदी' के पात्रों की प्रतीकात्मकता

सनातन जीवन-शक्ति रूपा द्रौपदी नर की कुलवधू है। वह अपनी प्रचंड दीप्ति और प्रेरणा के कारण कृत्या मानी गई है। अपनी विशेषताओं के कारण उसने सतयुग की रेणुका और त्रेतायुग की सीता की गौरवपूर्ण परंपरा में स्थान प्राप्त किया है। द्रौपदी यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई है और होम-ज्वाला की शिखा के समान कृष्णवर्ण है इसीलिए उसे 'कृष्णा' भी कहा गया है।

नारायणी द्रौपदी की प्रेरणा से जो पांच महातत्त्व परस्पर संश्लिष्ट हुए हैं उन्होंने अपनी शक्ति का परिचय दिया है।

युधिष्ठिर आकाश तत्त्व है। पाँचो भाइयों में युधिष्ठिर सुख-दुःख, राग-द्वेष, लेन-देन, संग्रह-त्याग, जय-पराजय की लौकिक भावनाओं से अछूते हैं। उनकी व्यापक विचारधारा, निर्विकार निर्मल स्वभाव और द्यूत में उनके व्यसन का भी यही रहस्य है। इसीलिए धरती के मलिन वातावरण में आकाश उतरना नहीं चाहता। भीम और अन्य पात्रों की प्रेरणा प्राप्त करके भी वासनाओं की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं होता। आकाश विराट और अनंत है, वर्णगंधहीन है और धरती या भूमि स्थूल है, गंधमधुर है, उस पर विराटता के प्रसार की संभावना कैसे हो सकती है?

न्यायदर्शन के अनुसार आकाश तत्व रूप युधिष्ठिर ने ही यक्ष के प्रश्नों के समाधान के रूप में जीवन के चरम सत्यों का उद्घाटन किया है। भीम, अर्जुन आदि तत्व रूप में उसके अनुचर हैं, उसके आदेशों का पालन करनेवाले हैं।

भीम पवन या वायु देवता से संबंधित है। उसमें अतुल बल विक्रम है। हनुमान की तरह ही युद्ध तथा व्यक्तिगत शौर्य - प्रदर्शन के अवसरों पर उन्होंनें वृक्षों को उखाडकर शत्रुओं पर प्रहार करके विजय प्राप्त

की है। पवन का रौद्र रूप क्या कुछ नहीं कर सकता। स्वभावत: विवेकहीन, बल विक्रम संसार में भयानक अनर्थ कर देता है। किंतु पाँचो पांडवों में भीम सरल प्रकृति के हैं – कवि ने उनके संदर्भ में कहा हैं –

''प्राणबल के धाम दुर्जय भीम अति विक्रांत थे,
किंतु अलकापुरी देखे बिना, वह भी शांत थे... ।।''

द्रौपदी की प्रेरणा से कौरवों में सबसे अधिक उत्तेजना भीम के मन पैदा होती है, इसीलिए उन्होंनें ही दु:शासन के रक्त से द्रौपदी कें वेणीसंहार की प्रतिज्ञा का पालन किया। कवि ने कहा हैं –

नदी वैतरिणी यथा वेणी खुली लहरा रही।
धार्त राष्ट्रों को डुबाने हर भँवर गहरा रही।
द्रौपदी के केश काले, धरा को छूने चले,
शत्रु होंगे धराशायी, मरण बेला आ रही।

अर्जुन अग्नि तत्त्व है। यास्क मुनि के अनुसार धरती की अग्नि और स्वर्ग के इंद्र दोनों ही एक तत्त्व के दो रूप हैं। अर्जुन के प्रति इंद्र अधिक प्रभावित है इसीलिए तो उन्होंने अर्जुन की लक्ष्यप्राप्ति के लिए असभ्य कर्ण से स्वर्ण-कुंडलों की भिक्षा मांगी थी। अर्जुन ने कर्ण पर विजय पायी थी। उसने अयानिजा होमकुमारी द्रौपदी पर विजय पाई थी। अग्नि तत्त्व असभ्य -प्राकृत का संस्कार करता है। अर्थात् यह अग्नि के तेज की महिमा है। अर्जुन कुंती की वैध संतान। उसने स्वर्ग जाकर वरदान पाया, शिवशंकर द्वारा पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। इसलिए वह विजयी होता रहा।

नकुल जल तत्व है, अश्व जल का प्रतीक है। महाभारत के अनुसार नकुल अश्वविद्या पारंगत था। सुंदर और श्यामल वर्ण का था।

सहदेव भूमि तत्व है। वह भूमि के समान सहनशील, संकोची, शीलवान है। कुंती इन मातृविहीन माद्री पुत्रों के लिए विशेष स्नेह रखती है।

धृतराष्ट्र के शतपुत्र उनकी अंध-नग्न वासनाओं के प्रतीक हैं। विवेकहीन मनुष्य का अनेक बार पतन और पराभव होता है। उनकी विवेकहीन इच्छाएँ उनके शतपुत्रों के रूप में उदित हुई और कौरवों के विनाश का कारण बनीं।

दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के शतपुत्र आसुरी शक्ति के प्रतीक हैं। इसीलिए अविवेकी कौरवों को गीता का उपदेश न मिला क्योंकी आसुरी शक्ति में विवेक की आँखे बंद होती है। इसलिए दुर्योधन ने पांडवों को सत्त्व से वंचित किया था। द्रौपदी का भरी सभा में चीरहरण किया। अन्याय, पाप, वासना की आग अन्यायी और पापीकोही जलाती है। दुर्योधन आदि का सर्वनाश इसी बात का संकेत करता है।

'शकुनि' कुटिलता, दुर्भावनाओं के कारण प्रसिद्ध है। उसने पांडवों और कौरवों को कभी निकट आने न दिया। पांडवों को कृष्ण का विवेकपुर्ण सहायता प्राप्त है तो धृतराष्ट्र -पुत्रों को शकुनि की दुष्टता और कुटिलता। यद्यपि वह गांधारी के भाई है किंतु दोनों के आचार-विचार में काफी अंतर है। गांधारी के दिल में कुरूकुल की लक्ष्मी द्रौपदी के लिए विशेष ममता है। पितृहीन पांडवों के लिए स्नेह है। तभी तो वह अपने पुत्रों का विजय अभियान में आशीर्वाद नहीं देती। गांधारी और शकुनि सृष्टि के दो विरोधी तत्त्व के प्रतीक हैं जिनके योग से ही सृष्टि की प्रक्रिया चलती है।

युधिष्ठिर का द्यूतप्रेम, द्रौपदी को दाँव पर लगाना और उनकी हार भी उनके विशिष्ट विचार के ही प्रतीक हैं। वे अपनी अव्यावहारिकता के कारण विजय के मोह वश द्रौपदी को भाग्य संपत्ति माना था और दाँव

पर लगा कर उसे गवाँ बैठे थे। यह तो द्रौपदी की महिमा है कि वह सुकुमार होकर भी प्रचंड जीवन-शक्ति, आत्मबल और क्षात्र तेज से दीप्त थी। उसने अपनी मर्यादा की रक्षा स्वयं की और पांडवों के सुप्त प्राणों में आत्म-गौरव न्याय की रक्षा और दायित्व का बोध कराया जिससे वे अंतत: अपने लुप्त स्वत्वों को प्राप्त कर सके। युधिष्ठिर की द्यूत क्रीडा के संदर्भ में कवि कहते हैं -

''युधिष्ठिर को व्यसन है, पर नहीं जिसका ज्ञान।
द्यूत-क्रीडा की कला वह, सुनो आयुष्मान।
लगा दूंगा दाँव पर सब, विजय निश्चिय जान,
भाग्य-लक्ष्मी द्रौपदी का धर हृदय में ध्यान।।''

युधिष्ठिर यह भूल गए है किं द्रौपदी न केवल पांडवों की पत्नी है, न केवल कर्म-पथ पर प्रवृत्त करनेवाली महीयसी नारी है किंतु वह तो शाश्वत जीवन-शक्ति का प्रतीक जो सृष्टि-यज्ञ में विश्वात्मा रूप में पुरुष शक्ति बनी है।

'द्रौपदी' नरेंद्र शर्मा की उत्कृष्ट काव्य-कृति है। कवि ने प्रतीक पद्धति के द्वारा कथावस्तु का विकास किया है। कर्णार्जुन कथा का संकेतात्मक शैली में विवरण किया है। द्रौपदी - गांधारी मिलन की कवित्वपूर्ण कल्पना तो कवि की प्रतिभा की चरम परिणति है। द्यूत में शकुनि द्वारा पांडवों की हार, द्रौपदी का भरी सभा में अपमान, बारह वर्षो को वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास, युधिष्ठिर द्वारा समस्त देश का भ्रमण, अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, इंद्रलोक की यात्रा, भीम का अलकापुरी गमन और हनुमान के दर्शन, युधिष्ठिर द्वारा यक्ष के प्रश्नों का समाधान आदि महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकेत शैली में उल्लेख किया गया है। कवि ने नारी की महत्ता, नारी का प्रभाव नव चेतना, नर को शक्ति और गति देनेवाली मानकर, उसके त्याग, बलिदान से प्राप्त श्री, समृद्धि, संपन्नता मानवता के विकास का भी संकेत देता है।

२.३.५ द्रौपदी के पात्रों का चरित्र -चित्रण

द्रौपदी -

'द्रौपदी' यह लघु-काव्य है। इसका प्रधान पात्र 'द्रौपदी' है। उसे जीवनी-शक्ति, कर्म की प्रेरणा और तृष्णा, धारणा शक्ति, योगेश्वर की बहन कृष्णा तथा स्वेच्छा से आकाश पुरुष को वरण करनेवाली, युग-परिवर्तन के हेतु क्रांति, नर की वरेण्या, होमकुमारी, कर्षण की शक्ति, व्याहती, पांचाली, पंचतत्त्वों की कल्याणी, साकार पंचाग्नि शक्ति, आकर्षण की अतिशक्ति, पांडवकुल की शशिप्रभा, कौरवकुल की उल्का, भावी और काल को अपने इंगित से चलानेवाली देवेच्छा,उर्ध्वगामिनी ज्वाल, अयोनिजा, नियति, अपराजिता, नारायणी, अन्नपूर्णा, धर्म-कर्म-प्रकाशिनी, मद-मोह-द्रोह विनाशिनी, ज्ञान से संपन्न वाणी, भक्त की मनभावनी दिव्य जन्मा, सम्राट युधिष्ठिर की श्री समृद्धि, भूतल की शची, याज्ञसेनी आदि नामों तथा विशेषणों से उसे कवि ने संबोधित किया है। ये सभी संबोधन एवं विशेषण द्रौपदी के चरित्रपर प्रकाश डालते हैं। आकाशपुरुष युधिष्ठिर को उसने ही पुरुषार्थ और कर्म के लिए प्रेरित किया। उसके कारण ही वे इंद्रप्रस्थ के भूप बनने पर उन्हें अप्रत्याशित उन्नति प्राप्त हुई। जब धर्मराज ने उसे केवल अपना भोग्या समझकर दाँव पर लगा दिया, तो उन्हें प्रायश्चित करना पडा। कौरवों की भरी सभा में उस एकवस्त्रा, ऋतुमति, चिता की लपट सी, आशिव फिर भी सती का अपमान हुआ जो उनके ही विनाश का कारण बना। धर्मनंदन को विजयी बनाने के लिए उसने अपने पाँच बेटों का बलिदान दिया। सचमुच ही द्रौपदी का चरित्र अलौकिक है। इस बात का स्वीकार करते हुए स्वयं कवि नरेंद्र शर्मा ने भूमिका में लिखा है - ''द्रौपदी

को नारी-शक्ति की दीप्त प्रतीक मानकर मैंने उस दिव्य प्रतीक को नमन किया है। द्रौपदी का चरित्र दिव्य है, पौराणिक पात्रों में वही अकेली है ज्यो श्याम-वर्ण है।'' उसका यह श्याम वर्ण उसकी अनंत महिमा का प्रतीक है। स्वयं द्रौपदी जीवन-शक्ति का शाश्वत प्रतीक है।

द्रौपदी कुरूकुल की लक्ष्मी है। अतिसुंदर भी है। जब तक उसने पाँचो पांडवों का वरण नहीं किया तब तक वे भिक्षुक के समान दीन-हीन जीवन यापन कर रहे थे, उसका संयोग पाते ही उनमें नयी शक्ति-चेतना निर्माण हुई और अपने स्वत्त्व और सत्ता को प्राप्त कर लेने से ही विश्राम लेते हैं।

द्रौपदी एक सामान्य भोग्या नारी नहीं, वह तो महान है। पांडवों में तेजस्विता की अग्निधारा को प्रज्वलित करनेवाली चिरंतन नारी है। रावण का, वध सीता के अपहरण का परिणाम था। उसी प्रकार 'महाभारत' भी द्रौपदी के चीरहरण और राज्य या अर्थशक्ति के प्रति अंधी ममता के कारण ही हुआ। एक मानवी के रूप में उस नारी के मन में धृतराष्ट्र-पुत्रों अर्थात् कौरवों के प्रति प्रतिशोध की आग जल रही थी। भरी सभा में ऋतुमति द्रौपदी को ही निर्वसना नहीं किया गया वह समस्त नारी जाति को जिस अंधी शक्ति ने लांछित किया था, उस अपमान, लांछन को दूर करने के लिए ही तो भीम ने दु:शासन के रक्त से द्रौपदी के 'वेणी-बंधन' का व्रत पूरा किया।

द्रौपदी जब अपनी सौंदर्य दीप्ति से हस्तिनापुर के राजमहल में एक नववधू के रूप में प्रवेश करती है तब सभी उसकी सौंदर्य प्रभावित हो जाते हैं। गांधारी के चरणों में आशीर्वाद लेने जाती है तो गांधारी उदार प्रसन्न मन, बंद आँखों से उसकी छबि को देखकर खिल उठती है। कवि इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं -

''बाँह फैलाह बढी वह नववधू की ओर,
उड चला विपरीत दिशि की ओर आँचल छोर।
मुँह दिखाई तुझे क्या दूँ द्रुपदतनया बोल।
देख ली इंदीवरी छबि नयन-मन के खोल।।''

गांधारी के प्रश्न का कुछ भी उत्तर न था। गांधारी 'दृगसुख वंचिता श्रवण का आनंद लेना चाहती है।' किंतु स्नेहातिरेक से आँखों से अश्रु-धारा नववधू पर अभिसिक्त होने लगी। तो दूसरी ओर द्रौपदी की दीप्ति से शकुनि और दुर्योधन के दिल में ईर्ष्या और वासना की आग सुलगने लगी ओर दुर्योधन सोचने लगा कि पांडवों को पराजित करके द्रौपदी के सौंदर्य पर अपना अखंड अधिकार बनाऊंगा चाहे सब-कुछ न्योछावर ही क्यों न करना पडे।

''युधिष्ठिर को व्यसन है, पर नहीं जिसका ज्ञान।
द्यूत-क्रीडा की कला वह, सुनो आयुष्मान।
लगा दूंगा दाँव पर सब, विजय निश्चय जान,
भाग्य-लक्ष्मी द्रौपदी का धर हृदय में ध्यान।।''

द्रौपदी नारी ही है, सौंदर्य की गरिमा से युक्त है। सभा में निर्वसना हो जाने तथा वनवास की यातनाओं से उसके मन में प्रतिशोध की आग सुलगती है जो आग कुरूकुल का काल बनी हैं। द्रौपदी की ओजस्विता, कठोर प्रकृति, स्वाभिमान पांडवों में जीवन-धारणा शक्ति बनते हैं। दुर्नीति, दु:शासन, पशुबल से शासित धरती पर उसकी प्रेरणा से न्याय, धर्म और सत्य की स्थापना हो सकी है।

कवि के अनुसार द्रौपदी एक नारी है, नर को विजय के शिखर तक ले जानेवाली एक शक्ति है। नारी केवल प्रेरणा नहीं देती, दिशा-निर्देश नहीं करती , जीवन के अंध:कारमय मार्ग पर उज्वल-आशा-किरणों

का प्रसार नहीं करती। वह अपनी बलि भी चढाती है। इस रूप में द्रौपदी का व्यक्तित्व है पर वह शाश्वत-जीवन-शक्ति की प्रतीक भी है, पुरुष में युगों युगों से शक्ति और तेज का संचार करनेवाली कल्याणकारिणी है, तारिणी है, वह कृत्या भी है, उर्वशी भी है और मंगलकारिणी भी है। समस्त नारी जाति का एक सर्वोत्तम आदर्श है।

युधिष्ठिर -

द्रौपदी लघु-काव्य के प्रधान पुरुष पात्र युधिष्ठिर है जो पाँच तत्त्वों से संश्लिवट आकाशपुरूष हैं। वे नारायण के सखा, नरश्रेष्ठ, नररत्न, नभतत्त्व, कालात्मज, अविकारी, निर्लिप्त, अनीह, अकाम, कामार्थ भाव से मुक्त, पार्थ, सत्त्वगुणी, कौंतेय, धनंजय, भारत, सत्यनिष्ठ, धर्मराज, धर्मपुत्र, धीर, वीर, अजेय, ऊर्ध्वगामी, सव्यसाची हैं। नियति ने जीवन-शक्ति के द्वारा लुप्त सत्त्वों की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रेरणा दी, हर स्थान पर उन्हें सफल बनाया। जब उन्होंने उसे अपने अधीन समझकर उसका अपमान किया, रमण की भावना से पीडित हुए तो प्रायश्चित्त के लिए उन्हें निर्वासित होकर गुह्य-साधना करनी पडी। एक साल की इस साधना के बाद अठारह दिनों की अग्नि-पथ की यात्रा करने पर वे विजयी हुए। विजय तो मिली किंतु युद्ध में भीषण नर-संहार एवं आत्मीय जनों के बलिदान को देखकर उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। इस युद्ध में अपने द्वारा किए गए दुष्कृत्यों के कारण उन्हें पश्चाताप हुआ। फिर आश्वस्त होकर धर्म का पालन करने और जीवन-शक्ति के सहायता से वसुंधरा को अपने न्याय और सत्यनिष्ठा से धन्य बनाने का संकल्प किया। युधिष्ठिर का चरित्र एक आदर्श मानव के संघर्षोंके बाद विजयी होनेवाले सौभाग्यशाली मानव का चरित्र है।

इस काव्य के विषयी की दृष्टि से पाँच पांडव प्रधान ज्ञात होते हैं किंतु विचार दर्शन की व्यापक भूमि पर युधिष्ठिर का चारित्रिक अंतर्द्वंद्व विशेष रूप से प्रशंसनीय है। पाँचो पांडव पाँच महातत्त्व के प्रतीक हैं। उनमें आकाश तत्त्व युधिष्ठिर अग्रज हैं अर्थात् आकाश की तरह उर्ध्वचेता है। धरती की वासना और कलुष उन्हें स्पर्श नही कर पाते किंतु आकाश में तब तक तेज का प्रसार नहीं हो सकता जब तक द्रौपदी की जीवन-शक्ति अपने विद्युत-विलास से प्रदिप्त नहीं कर पाती। वे आकाश की तरह निर्विकार, निर्मल, अव्यावहारिक है। तभी तो द्रौपदी जैसी पावन नारी को भोग्या मानकर जुए के दाँव पर लगा तो देते हैं, और उसमें हार जाते हैं।

धर्मप्राण युधिष्ठिर धीर, गंभीर, शांत हैं। वे न तो राज्य पाने पर विचलित होते हैं और न द्रौपदी के निर्वसना होने पर धीरज छोडते हैं। कठोर वनवास से टूटते नहीं, प्रचंड संघर्षों के क्षणों में भी विवेक का त्याग नहीं करते। द्रौपदी शक्ति प्रेरित कार्य की मंत्रणा देती है, इसलिए युद्ध में भी स्थिर भाव से, दृढ संकल्प का बल लेकर लडते हैं। अंतमें इस धर्मसुत की विजय होती है और अधर्म, अन्याय की पराजय होती है।

युद्धोपरांत शांति के विषादपूर्ण द्वंद्व की छाया में युधिष्ठिर के चरित्र का विकास दिखाई देता है। धर्मराज होकर भी उन्होंने कृष्ण की प्रेरणा अधर्म-आचरण किया। वे उन्हें अब चुभते हैं - कर्ण की पराजय, द्रोणाचार्य की छलपूर्वक हत्या, शिखंडी के माध्यम से भीष्म की पराजय और अंतत: श्मशान का भयंकर दृश्य, उनके जीवन की धुरी को ही तोडता हुआ दिखाई देता है। पुत्रहीन, पतिहीन कुरू कुल की ललनाओं का आर्त रूदन मानो उन्हें चुनौती देने लगता है। कवि ने इस वातावरण का वर्णन करते हुए कहा हैं -

युद्ध क्षेत्र पर शांति छा गई, अष्टादश दिन बीते।
शापित कौरव हारे रण में, वह्निसुता - वर जीते।
कुररी-सी रोती कौरवियाँ, रूदन न हृदय समाता,
वीर पडे सो रहे विजन में, भरे पुरे घरे रीते।।

धर्मरक्षा की आड में यह कैसा अधर्म। सत्ता पर अधिकार करने के लिए कैसा छल और कैसी प्रवंचना। तभी आकाश में संचरण करनेवाला धर्मराज का रथ मानो पाप और असत्य के बोझ से धरती में धँसने लगा था। यह विनाश की लीला थी या विजय की लालसा। इन विचारों के द्वंद्व और परिताप में भटकते धर्मराज के मन की पवित्रता और विवेक दिखाई देता है। उनकी विजय में उनका करुणार्द्र चित्त के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनकी सत्यनिष्ठा द्वंद्व से परेशान है किंतु यह बात सच है कि इस धर्मयुद्ध में दु:शासन और दुर्योधन की पशुता के शमन के लिए यह महाबलि अनिवार्य थी। अगर भीष्म-द्रोण शस्त्र धारण कर भरी सभा में द्रौपदी को निर्वसन होने बचा सकते तो आज यह भयानक रक्तपात क्यों होता ? निहत्थे अभिमन्यु पर कौरवों के महारथियों ने बर्बर आक्रमण करकें जिस अधर्म का बीज बोया उसका प्रतिफल कौन भोगता ? अत: पछतावा निरर्थक है। इस युद्ध में पांडवों की विजय यह धर्म की विजय है। यह मिली है पावनतनया द्रौपदी की प्रेरणा-शक्ति से।

धर्मराज सोचते हैं कि इस विजय के लिए क्या साधारण मूल्य चुकाना पडा है। आर्य स्त्री भोग की वस्तु नहीं वह तो इस जीवन-यज्ञ में याज्ञिक नर की शक्ति है। वह अपने बलिदान से पुरुष का पथ प्रशस्त करती है। पृथा ने कर्ण, गांधारी ने शतपुत्र, सुभद्रा ने अभिमन्यु और द्रौपदी ने पाँच पुत्रों की बलि देकर धर्म की ध्वजा फरहायी, जो रक्तरंजित है। वह व्यथा-पीडा को सहती है और उसकी मर्यादा तथा लज्जा पर आघात हुआ तो वह उस कृत्य करनेवाले का दहन करती है। नारी के अश्रु-बिंदु में प्रलय का पारावार गरजता रहता है। नारी कृत्या भी है, उर्वशी भी है और कल्याणकारिणी भी है। नारी की अवहेलना करनेवाला नर सर्वनाशी होता है। उसका उचित सन्मान करने से ही मनुष्य जीवन में श्री, कीर्ति और विजय पाता है। युधिष्ठिर ने युद्ध में विजय पाई है द्रौपदी की प्रेरणा से। द्रुपदा पुण्य बल से ही देश में धर्मराज्य की स्थापना की, अश्वमेध यज्ञ किया। अश्वमेध का रक्षक अश्व दिग्विजय कर लौट आया था क्योंकि युधिष्ठिर के मन में अग्निकुमारी द्रौपदी मनीषा बनी कल्याण का पथ प्रशस्त कर रही थी। युधिष्ठिर का चारित्रिक विकास इसी द्वंद्व के द्वारा कवि ने प्रस्तुत किया है।

धृतराष्ट्र -

धृतराष्ट्र जन्मांध है किंतु उनकी दमित वासनाओं ने शतपुत्रों के रूप में जन्म लिया है, जो स्वेच्छाचारी, असंयत, मर्यादा को तोडनेवाले हैं। उनकी दृष्टि से नारी केवल भोग का उपकरण है। उनपर अंधे धृतराष्ट्र का कोई नियंत्रण नहीं है। जिस प्रकार कामांध व्यक्ति अपनी इंद्रियों का दास बन जाता है वैसेही वे अपने पुत्ररूप शत-शत कामनाओं के दास बने है। इसीलिए तो द्रौपदी का न केवल अपमान किया है, किंतु उसे निर्वसन भी किया। अपने पुत्रों की इच्छा के कारण पांडवों को राज्य नहीं दिया। खांडव वन राज्य स्थापना का पांडवों को आदेश दिया। ऊजड पडा हुआ यह क्षेत्र युधिष्ठिर अपने बाहुबल से संपन्न करेंगे। नाग लोगों के उपद्रव को भी वे शांत करेंगे, आभीरों से हस्तिनापुर त्रस्त नहीं होगा। नृप की आज्ञा से पांडव खांडव वन में देवलोक-सा संपन्न वातावरण निर्माण किया गया -

बसावे बंजर युधिष्ठिर दिखावे पुरुषार्थ।

बने अन्तर्वेदिका के द्वार-रक्षक पार्थ।।

गंगा-यमुना के बीच की भूमि में पांडवों ने अपना रहने का स्थान बसाया। पांडवों ने अग्नि देवता और इंद्र देवता का वरदान पाया। जंगल में मंगल किया। वहाँ युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। अनेक देशों से राजे-महाराजे आएँ। द्रौपदी सम्राज्ञी बनी।

धृतराष्ट्र की बाहरी दृष्टि नहीं थी पर अंतर की दृष्टि जो प्राप्त थी वह पुत्रों के मोह के कारण धुंधली हो चुकी थी। उनके सौ पुत्र मदांध थे, उनका सर्वनाश निश्चित था किंतु वे अपनी बुद्धिहीनता के कारण उसे नहीं देख पा रहे थे। विवेक हीनता के कारण विनाश युक्त भविष्य की पद-चाल तो सुनी थी। नववधू के रूप में आशीर्वाद के रूप में वे मुक्ताओं की वर्षा कर रहे तो फिर भी उनके मन द्रौपदी के प्रति दुर्भान भरा हुआ था। क्योंकि बूढे धृतराष्ट्र अंधी ममता से पीडित थे। उनकी पत्नी गांधारी पतिव्रता थी तो द्रौपदी स्नेह की वर्षा करनेवाली थी।

कवि ने धृतराष्ट्र का चरित्रांकन प्रतीक शैली में प्रस्तुत किया है। धृतराष्ट्र में सद्भाव का किंचित अंश है किंतु जब इच्छाएँ उभरकर आती हैं तो वह नतमस्तक हो जाता है। दुर्बल चरित्र के व्यक्ति की तो रीढ टूट जाती है जो खुद पर अधिकार नहीं कर सकता तो दूसरे पर कैसे करेगा। इसी तरह धृतराष्ट्र को वृद्धावस्था में पराजय और सर्वनाश भुगतना पड रहा है।

दुर्योधन –

दुर्योधन धृतराष्ट्र की ममता से अंध वासनाबीज का ही अंकुरित रूप है। महाभारत का वह प्रधान खलनायक है। कवि ने धृतराष्ट्र -दुर्योधन तथा शकुनि-दुर्योधन संवादों के माध्यम से दुर्योधन की अंतर की ज्वाला को विविध घटनाओं के द्वारा व्यक्त करके चरित्रांकन किया है। वह संकीर्ण, ईर्ष्यालु, अंधवासना और सत्ता के लोभ से पराभूत व्यक्तित्व है। धृतराष्ट्र के आदेश पर भी वह पांडवों को अपना प्राप्य नहीं देता। पांडव शस्त्र-कुशल है और इसी के बल पर द्रौपदी जैसी अग्निकुमारी को अपनी पत्नी बनाकर हस्तिनापुर में ले आते हैं तब उसकी सुंदरता को देखकर उसे अपनी भाग्य-लक्ष्मी बनाने का वह संकल्प धारण कर लेता है। वहाँ की वैभव संपन्नता, समृद्धि और सौभाग्य को देखकर उसके मन में काँटे चुभने लगते हैं क्योंकि उसका मन विलक्षण है। स्वजनों का सुख देखकर वह दुखी होता है पीडित होता है।

वह दुष्ट शकुनि की मंत्रणा से द्यूत, छल, लाक्षागृह में दहन और ऐसी न जाने कितनी पाशविक योजनाएँ बनाता है। किंतु बुरी बातें सोचनेवालों का अंत विफलता और पराभव में होता है। दुर्योधन ने पांडवों के विनाश के लिए लाखो प्रयत्न किए किंतु अंतमें उसका ही नहीं उसके पूरे भाइयों का भी विनाश होता है। कवि ने दुर्योधन के चरित्र को धृतराष्ट्र की दमित इच्छाओं और अंधी ममता के प्रतिरूप में विकसित किया है। यही कारण है कि माता गांधारी के सहृदय होने पर भी धृतराष्ट्र की अंधी वासना और दमित इच्छाओं के बीज दुर्योधन में फलित होता है। अगर बीज ही अच्छा न हो तो उसका फल कैसे अच्छा हो सकता है।

शतखंड अहंता-पुंज, तनय सौ गांधारी ने जाये।

पाकर बबूल का बीज, धरित्री कैसे आम उगाए।।

बहुत समझाने पर भी दुर्योधन ने कृष्ण की नेक सलाह नहीं मानी। अंतत: कौरव-पांडवों का भयानक नर-संहारक युद्ध हुआ। कौरवों का नाश तो पांडवों की विजय हुई। पशुता पर विजय पाने के लिए कौरवों का संहार हुआ। दुर्योधन एवं उस के शक्तिशाली सौ भाई कुटिल शकुनि के दास बन गए थे अत: उनका विनाश निश्चित ही था।

गांधारी –

धृतराष्ट्र की पत्नी, शकुनि की बहन कौरवों की माता है। अपने जन्मांध पति के लिए वह स्वयं अपनी आँखो पर आजीवन पट्टी बांध लेती है। वह पति परायणा है। पांडव लक्ष्मी द्रौपदी के लिए उस उदार मना

नारी में स्नेह है। वह कहती हैं –

विगत युग की सुखद सुधि, आ बाहुओं के बीच।
देख मैं कब से पसारे बाँह, आँखे मी च।
कुलवधू, कुछ बोल। मैं भी तो सुनूँ मधुछंद,
मिले दृगसुख-वंचिता को श्रवण का आनंद।।

गांधारी ने तो आँखो पर पट्टी बांध रखी थी किंतु मन की आँखो से उस श्यामल वर्णा, कमलसी द्रौपदी की छबि देख वह धन्य हो गई। महादेवी के सामने द्रौपदी मौन थी, उनके बीच कुछ वार्तालाप नहीं हुआ। किंतु दोनों का मिलन हुआ। एक पर्वत शिखर के समान तो दूसरी स्त्रोत-सी थी। द्रौपदी कुल की श्रेष्ठ आर्या गांधारी की कृपा की अभिलाषिणी थी, तो गांधारी द्रौपदी की शुभाकांक्षिणी थी। दोनों एक-दूसरे के प्रति स्नेह से ओत-प्रोत थी। गांधारी दृग-सुख-वंचिता थी किंतु उसने अपना स्नेह आनंदाश्रुओं से वधू पर मानो अभिषेक के रूप में सिक्त कर दिया। यह प्रसंग देखते ही गांधारी के भाई शकुनि के मन में संदेह जाग उठा।

इस आनंद बेला पर धृतराष्ट्र भी प्रसन्न थे। सोचते थे कि कुरू-पांचाल मिले तो दो राष्ट्र एक होंगे। उन्होंने अपने बेटे सुयोधन को बुलाया और कहा कि युधिष्ठिर का स्वागत उत्साह से करो। किंतु वह चुप नहीं रहता। विदुर के समझाने पर खांडव प्रस्थ पांडवों को दिया जाता है।

गांधारी के मन में पांडवों के प्रति स्नेह है। इसीलिए वह युद्ध के लिए प्रेरित अपने पुत्रों को आशीर्वचन भी नहीं देती है। अन्यायी पुत्रों की आसुरी प्रवृत्तियों का वह समर्थन नहीं करती। युद्ध में पांडवों की जीत होती है और कौरवों की हार। सौ पुत्रों की माता ने अपनी आँखो पर से एक बार पट्टी हटाई और युद्ध में मृत वीरपुत्रों के अंतिम दर्शन कर लिए। कैसा कारूणिक दृश्य था वह। सौ पुत्रों की माँ, उसका मातृत्व स्नेह विगलित उमड पडा। कवि ने वर्णन करते हुए कहा है –

''भातृ-पुत्र हीना, द्रुपदा सी थी सुबला गांधारी
भेद यही बस, एक विजयिनी, एक सब तरह हारी।
जन्म दिया जिन अन देखों को, उनके शव-दर्शन-हित,
पहली बार वीर-माता नेम दुखिया दृष्टि उघारी।''

'द्रौपदी' काव्य में गांधारी का चरित्र जहाँ कहीं भी उभरा है, उस में सहज मनुष्यत्व की तरलता मूर्तिमान हो उठी है।

इनके अतिरिक्त भीष्म, विदुर, दुःशासन आदि पात्र भी प्रसंगानुसार अपनी स्वाभाविक भावनाओं की अभिव्यक्ति कर गए हैं।

शकुनि –

शकुनि सुबलसुता गांधारी के भाई हैं किंतु शकुनि के मन में प्रतिहिंसा का जहर भरा हुआ है। महाभारत के अन्य पात्रों में शकुनि अपनी कुटिल दुर्भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है। वह पांडवों और धृतराष्ट्र-पुत्रों में कभी मेल नहीं होने देता। भीष्म पितामह की भी इच्छा है कि स्नेह-सूत्र में इन्हें बांधना होगा – उन्होंने विदुर से कहा है कि –

''कर याज्ञसेनि को तुष्ट, इष्ट दुस्साध्य साधना होगा।

कह रहे विदुर से भीष्म स्नेह का सेतु बांधना होगा।''

भीष्म पितामह पांचाली जैसी कुलवधू मिलने के कारण प्रसन्न थे। उसी समय शकुनि के मन निष्ठुर भावना जाग उठी –

आनंद-पुलक की लहर, उठी शकुनी के निष्ठुर उर में।

ऋजु हुआ शकुनि का अधर, होठ पर कुटिल हास की रेखा।

असमंजस उसका गया दीप्त जब द्रुपद-सुता को देखा।

कौरव-कुल में अंध:कार और विनाश का जो तत्व वर्तमान है शकुनि का जीवन उसी का जीवंत रूप है क्योंकि वह बडा ही कुटिल है। अग्निकन्या द्रौपदी को देखकर द्वापर-युग का ईंधन रूप शकुनि हँस उठा अर्थात् महाभारत के युद्ध की आग प्रज्वलित करने में उसने ईंधन का काम किया है। उसको इसी स्वभावगत विशेषता को कवि स्पष्ट करते हैं कि –

''शोणित-पंकिल गंधार, शकुनि लोहित प्रतिहिंसा-पंकज।

नैवेद्य न समझें उसे, कौरवी गजलक्ष्मी के दिग्गज।''

कौरव कुल के नाश का प्रतीक यह शकुनि कुटिल गजलक्ष्मी का नैवेद्य नहीं है, यह तो प्रतिहिंसा के रक्त से लिफ्त मानो गंधार के रक्त-पंक में खिला कमल है। अर्थात् यह तो चारों ओर रक्तपात और सर्वनाश प्रस्तुत करेगा, सुख और शांति नहीं।

जब नववधू द्रौपदी हस्तिद्वार पार करके अंत:पुर में आई, गांधारी के पैर छूते ही उसके दिल में कुछ कसक उठी। भीष्म ने गंधार-पुत्री का अपहरण धृतराष्ट्र के लिए किया था। द्रौपदी ने अर्जुन का दिल से वरण किया था-यह बात शकुनि ने कहते ही वे चौक गए और कहा कि कुल की ममता के लिए कभी मैंने निठुराई की थी और कहते हैं –

पर उसे भुला दो, शकुनि, कभी जो खेल नियति ने खेला।

युग बदल चुका है शकुनि, आज नव युग की मंगल वेला।।

शकुनि इसे शकुन मानकर मन ही मन मुसकाया। द्रौपदी के मोहक रूपा ज्वाला को शकुनि ने देखा। द्रौपदी को गांधारी की ओर आते देखकर उसके मन में विविध संकल्प-विकल्प उठने लगे हैं। सोचता है कि द्वापर के इस संघर्षपूर्ण युग में कर्पूर की शीतलता में अंगार की ज्वाला सुलग उठेगी। द्रौपदी के चरणों की धूल में सूर्य की लाली (क्रांति की चिनगारी) भडक उठेगी। उस अग्निकन्या के चरण-चिहनों का अनुसरण महाकाल भी करते हैं। शकुनि स्वयं संघर्ष, कलह और पारंपारिक विद्वेष-भावना की प्रतिमूर्ति है। उसके चरणों की धूल में सूर्य की रक्ताभ सुंदरता है। क्रांति की ज्वाला है। कवि ने कहा है –

''मैं तुम्हें पहचानता हूँ, ऊर्ध्वगामिनी ज्वाल,

चरणचिहनों पर तुम्हारे चले भावी काल।

शकुनि द्वापर युग, अनलजा, मैं तुम्हारा भृत्य।

देवि, कृत्या बनो, युग को करो तुम कृतकृत्य।''

शकुनि को अग्निकन्या द्रौपदी ऊर्ध्वगामिनी ज्वाला-सी लगती है जिसके पद-चिहनों का अनुसरण

काल भी करता है। वह अनुचर वन देवी का आवाहन करता है कि देवी कृत्या बनकर इस स्वार्थ-द्वेष से जर्जर युग को कृतकृत्य कर दो।

गांधारी और द्रौपदी के मिलन अवसर पर दृग सुख-वंचिता गांधारी ने स्नेह से आसुओं का मानो अभिषेक किया। यह देखकर शकुनि अपने आप पर रूष्ट हुआ और मन ही मन कहा -

''युक्ति से दुस्साध्य।

द्यूत के हे देव! मेरे तुम्हीं हो आराध्य।

न दूँगा अवसर कि सन्मति शक्ति को प्राप्त।

शकुनि के रहते मिलेंगे नहीं मन से आप्त।''

कुटिल, दुष्ट शकुनि ने कौरव-पांडवों की जय-पराजय के लिए युधिष्ठिर को द्यूत खेलने की मंत्रणा दी और वे भी तैयार हो गए। शकुनि को ज्ञात था कि युधिष्ठिर को द्यूत खेलने का शौक है किंतु उसका पर्याप्त ज्ञान उन्हें नहीं है। द्यूत की छलपूर्ण कला के द्वारा पांडवों पर विजय निश्चित हो सकती है ऐसा विश्वास वह दुर्योधन को दिलाता है। शकुनि की चाल से पांडव सब कुछ हार गए। दुर्योधन से वह कहता है कि चतुरता से हम सौभाग्य-लक्ष्मी द्रौपदी को भी वश में कर सकेंगे। इन सभी प्रसंगों में शकुनि का कुटिल व्यवहार, दुष्टता स्पष्ट होती है।

२.३.६ पांडवों का अज्ञातवास -

युधिष्ठिर और शकुनि ने जुआ खेला। युधिष्ठिर हार गए। उन्होंने सबकुछ हार जाने के बाद द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। दुरभिमानी धृतराष्ट्र के पुत्रों ने भरी सभा में द्रौपदी के साथ निर्लज्जता पूर्ण व्यवहार किया। उसे निर्वसन करने का प्रयत्न किया, कृष्ण ने उसकी लाज बचाई। युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ बीहड जंगलों में तरह-तरह की यातनाएँ भुगत रहे थे किंतु यात्रा और विपत्ति की यह यात्रा उनकी साधना और तपस्या की भूमि बनी। इसी काल में उन्होंने अपनी वीरता एवं यश का प्रसार करते हुए अनेक राजाओं को अपना मित्र बनाया। उधर कौरव अहंकार और मद में डूबे हुए थे।

अपने राज्य से निर्वासित होकर पांडव बारह साल वन-जंगल भटकते रहे। कहा गया है कि प्रव्रज्या और तप साधना के बिना इस संसार में कोई जननायक, आत्मज्ञानी नहीं बन सका। राम और बुद्ध के जीवन से इसी तथ्य का संकेत मिलता है। राम वनवास के बाद श्रीराम बन सके और जन-जन में उनके नाम की महिमा बढ गई तो महाभिनिष्क्रमण के बाद ही सिद्धार्थ 'बुद्ध' बन सकें। भारतीय संस्कृति का निर्देश है कि शांत वातावरण में साधना अच्छी तरह से हो सकती है। उसी तरह कुंती के पुत्रों के लिए यह वनवास फलदायक ही बना।

कौरवों के अन्यायपूर्ण व्यवहार से द्रौपदी ने अपना वेणी - बंध खुला छोडकर दृढ संकल्प किया। उदा. -

''नदी वैतरिणी यथा वेणी खुली लहरा रही।

धार्तराष्ट्रों को डुबाने हर भँवर गहरा रही।

द्रौपदी के केशँ काले, धरा को छूने चले।

शत्रु होंगे धराधायी, मरण बेला आ रही ?''

द्रौपदी के खुले केश धरती को छू रहे थे और भविष्य में धराशाही होनेवाले शत्रुओं की मरणवेला का संकेत कर रहे थे। अपने अन्यायपूर्ण आचरणों के कारण धृतराष्ट्र के पुत्रों की अवनति और कुंति के पुत्रों की उन्नति हो रही थी। अर्जुन के लिए इंद्र ने स्वयं कर्ण से दान लिया, किरात वेश धारी शिव ने अर्जुन की परीक्षा लेकर उसे पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। सभी देवताओं ने प्रसन्नता प्रकट की। इंद्र के आमंत्रण से अर्जुन स्वर्ग की सैर करने के लिए गए - इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि ने कहा हैं -

''पाशुपत वरदान पाया, उर्वशी का शाप भी,

धनंजय पर हुई दुहरी कृपा यों अज्ञेय को।''

इंद्र की प्रेरणा से अर्जुन ने चित्रसेन से गीत, नृत्य आदि की शिक्षा पाई। स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी कामातुर होकर अर्जुन के पास गई किंतु उसने उर्वशी को माता के रूप में ही देखा क्योंकि वह पुरूखा की पत्नी थी। फलत: क्रोधातुर होकर उर्वशी ने अभिशाप दिया कि वह एक वर्ष तक नपुंसक रहेगा और स्त्रियोंके बीच नर्तक का जीवन बिताएगा। अर्जुन को इस जितेंद्रिय और शील संपन्न देवताओं की कोटि में रखा गया। इस प्रकार ईश्वर की दुहरी कृपा पाने का अर्जुन को सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक बार किसी ब्राह्मण का मंथन-काष्ठ मृग लेकर भाग गया। वनवासी पांडवों से उसने अनुरोध किया कि वह उसे ढूंढ लाएँ अन्यथा, उनका 'अग्निहोत्र' खंडित हो जाएगा। वे सभी थक गए, बहुत प्यासे हो गए। सहदेव ने वृक्ष पर चढकर एक सरोवर देखा। वहाँ पहुँचे पर यज्ञ उसके प्रश्नों के उत्तर दिए बगैरे पानी पीने नहीं दे रहा था। प्यासे होने के कारण उन्होंने यक्ष की बात न मानी। जबरदस्ती से जल पीते ही वे भूमि पर गिर पडे। चार भाइयों की दशा देखकर व्याकुल होकर युधिष्ठिर वहाँ पहुँचे। उन्होंने यक्ष के सब प्रश्नों के उचित उत्तर दिए। प्रसन्न होकर यक्ष - वेषधारी ने चारों भाइयों को जीवित कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर के उत्तर मे जीवन की सभी समस्याओं का समाधान मिला है। कवि कहते हैं -

हो गए उत्तीर्ण पांडव परीक्षा में धर्म की।

मिलेगी अज्ञातवासी बन, उन्हें गति मर्म की।

दास बनकर ही नृपति की धर्म-शिक्षा पूर्ण है।

दासता ही कसौटी है हर नृपति के कर्म की।

निर्वासित पांडव वन में कठोर आत्मसंयम और साधना का जीवन बिताते थे। उनके वनवासी जीवन में राज्य का वैभव और ऐश्वर्य का विलास नहीं था। वनवास बारह साल का खत्म हो गया। अब तो उन्होंने दासों की तरह अकिंचन वन, अज्ञातवास का जीवन-यापन करना आरंभ किया। वस्तुत: राजा के कर्तव्य की शिक्षा इस दासता के जीवन में ही पूरी होती है। प्रत्येक राजा दास बनकर ही प्रजा की वास्तविक दशा से परिचित हो सकता हैं। वहीं उसके जीवन की सही परीक्षा होती है। अगर वह उसमें खरा उतरता हैं वही सच्चा प्रशासक -नृपति बन सकता है।

पांडवों के अज्ञातवास का आरंभ हुआ। अत: उन्होंने विराट नगर के बाहर शमी वृक्ष जो श्मशान में स्थित था। उस पर उन्होंने अपने धनुष्यादि शस्त्र रख दिए। विराज-पुत्र उत्तर के अर्जुन सारथि बनकर आए और कौरवों के विरुद्ध उसकी सहायता की तब शमी वृक्ष पर रखे शस्त्र वहीं से लिए थे। कोई वृक्ष के निकट न आए इसलिए वहाँ एक शव लटका दिया था। अज्ञातवास का यह काल पांडवों के लिए रात्रि की तरह

खतरनाक था। जिस तरह गहरे अंधेरे में पंचभूत अदृश्य-निश्चेष्ट से रहते हैं, पांडव भी विराट के यहाँ छिपकर कठोर साधना कर रहे थे। यह साधना गुह्य श्मशान-साधना के समान थी।

पाँचो पांडव और द्रौपदी मत्स देश के सम्राट विराट के यहाँ गुप्त रूप से जीवन-यापन कर रहे थे। जो कभी सम्राट थे वे आज विराट के सेवक बने हैं। कीचक विराट की रानी का भाई था और मत्स देश का सेनापति भी। द्रौपदी विराट की रानी के पास सैरंध्री (केशों का श्रृंगार करनेवाली स्त्री) के रूप में कष्टमय जीवन बिता रही थी। कीचक उसके अपूर्व रूप को देखकर मुग्ध हो गया और द्रौपदी से रतिदान की याचना की। बार-बार उसने विरोध किया किंतु वह उसपर अतिप्रसंग करने लिए तत्पर था। भरी सभा में उसे सबके सामने अपमानित करते रहा। अंतत: भीमसेन ने राजा की नृत्यशाला में उसका वध किया और उसके भाइयों को भी खत्म कर दिया।

अर्जुन भी विराट के यहाँ उर्वशी के अभिशाप के कारण नपुंसक और स्त्रियों के बीच बृहन्नला के रूप में नर्तकी का जीवन-यापन कर रहे थे। कवि ने वर्णित किया हैं की -

बृहन्नला के रूप में भी हुई अर्जुन की विजय,

नृत्यशाला उत्तरा की उत्तरीयों का निश्चिय।

निरूत्तर उत्तर लगा पद पूजने कौंतय के।

पार्थ से प्रभावित था मत्स के प्रभु का हृदय।

विराट के पुत्र उत्तर के सारथि बनकर बृहन्नला (अर्जुन) युद्ध क्षेत्र में गई। उत्तर के युद्ध भूमि से लौटने पर बृहन्नला उसे प्रेरणा देती है। किंतु बाद में बृहन्नला योद्धा बनी और उत्तर सारथि। द्रोण भीष्म कर्ण आदि महान योद्धा हारे, अर्जुन विजयी बना। उत्तर अर्जुन का (बृहन्नला) प्रशंसक बना। तब विराट ने उसकी पुत्री का पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिए अर्जुन से अनुरोध किया किंतु उसने इस प्रस्ताव का अस्वीकार किया, क्योंकि संगीत-वाद्य, नृत्य की शिक्षा उन्होंने उसे दी थी अत: वह उनकी शिष्या थी किंतु उत्तरा को उन्होंने अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार किया। उत्तरा अभिमन्यु की पत्नी बनी।

अज्ञातवास में युधिष्ठिर ने अपना नाम कंक रखा था। वह विराट के साथ पासा खेलते थे। अर्थात् अज्ञातवास में पांडवों ने अपना नाम वेश बदलकर अनेक संकटों का, प्रसंगों का छिप-छिपकर सामना किया किंतु इस एक साल के अज्ञातवास में उन्हें कोई पहचान न सका था।

२.३.७ महाभारत के युद्ध का वर्णन -

महाभारत के आरंभ होने के पूर्व हे समस्त सृष्टि में अपशकुन दिखाई देने लगे। उसका वर्णन बडा ही प्रभावपूर्ण रूप से करते हुए कवि ने लिखा हैं -

''जीव अतिचारी हुआ, नक्षत्र श्रवणा के निकट।

चरमराने लगा बोझिल मंद से रोहिणी-शकट।

सिंह-मुख में अग्नि-सा कुज मघा पर वक्री हुआ,

पुष्य को आक्रांत करने लगा धूमायत विकट।।''

बृहस्पति श्रवण नक्षत्र में गतिमान हुआ। शनिश्चर रोहिणी को पीडा देने लगा। चंद्रमा का मृग-चिहन

मिट गया। राहू ने सूर्य पर आक्रमण आरंभ किया, केतु चित्रा पर स्थिर हुआ। धूमकेतु पुण्य-नक्षत्र में स्थित हुआ। यह ग्रह योग दोनों सेनाओं के लिए अमंगल सूचक है। मंगल वक्री होकर मघा पर स्थित हुआ। यह सभी अमंगल और सर्वनाश के ही सूचक थे। धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य की पहचान कठिन थी। देव-दानव मोहग्रस्त थे। संपूर्ण व्योम में अंधकार उगल रहे थे। मानो महाकाल ही आ रहा था।

इस युद्ध में योद्धाओं ने विजय प्राप्त करने के लिए अपना बाहुबल, शस्त्रास्त्र, तन-मन भी सौंप दिया। अग्नि-कन्या द्रौपदी के मन में वर्षों से अपमान की जो आग जल रही थी, यह दहकती अपमान-ज्वाला का अग्नि-रथ युद्ध में दौडने लगा। उसने अनेक योद्धाओं के अपने प्रतिशोध की आग में जला दिया, कुंचल दिया क्योंकि उसने मन-रूपी अग्नि-रथ के सारथि स्वयं भगवान कृष्ण थे और मनोराज्य के स्वामी धनुर्धर अर्जुन थे।

महाभारत का यह नरसंहारकारी युद्ध अठारह दिनों तक चला। उस युद्ध के हेतु को द्रौपदी के विचारों से अवगत कराते हुए कवि कहते हैं -

अवधि अष्टादश दिवस की, अग्निपथ की साधना,

पूर्ण होगी द्रौपदी के सत्व की आराधना।

सत्वशीले। तत्व के हित क्या नहीं सहना पडा ?

सहज है क्या पंचतत्वों को किरण में बांधना?

यह एक ऐसी साधना थी जो युद्ध की ज्वाला से संपन्न हो सकी। द्रौपदी ने स्वत्व की रक्षा के लिए प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित की, उसमें दोनों पक्षों के अनेक योद्धाओं को बलिदान देना पडा। पांडवों के पाँच पुत्रों की बलि देने पडी। सत्व की प्रतिष्ठा और पंचतत्वों की रक्षा के लिए बडे से बडे बलिदान तुच्छ ही है। इस अग्नि-किरण रूपी द्रौपदी ने पांच पांडव रूप पंचमहाभूतों को अनेक यातना और कठोर साधना से एक सूत्र में बांधा था तभी तो वे इस पाशवी शक्ति पर विजय प्राप्त कर सके। कौरवों की हार हो गई।

किंतु युद्ध के कारण सर्वत्र श्मशान की शांति, करूण शून्यता, निर्मम निस्तब्धता छाई थी। समस्त युद्ध क्षेत्र रक्त-रंजित था, राजवंश की पति और पुत्रहीन वधुओं की आँखे आँसुओं से भरी हुई थी। सर्वनाश और संहार का विदारक दृश्य दिखाई दे रहा था। विजयी होने के कारण इस विनाश की वेला में हस्तिनापुर पांड़वों के स्वागत के लिए सजा हुआ था। कवि ने युद्ध क्षेत्र की भीषणता का वर्णन करते हुए कहा हैं -

''सेनाएँ अब कहाँ? पडे हैं, सब सैनिक-सेनानी।

कुलवधुओं के भाल वही हैं, कहाँ सुहाग-निशानी।

किंतु ऊषा-संध्या की लाली, कब फीकी पडती है।

सजा हस्तिनापुर, जेता की, करने को अगवानी ?''

जीवन में सुख-दुःख का क्रम चलता ही रहता है। अब तो पांडवों के जीवन की अमावस्या बीत चुकी और उनके जीवन-आकाश में चंद्रकला की स्निग्ध, सुखद किरणों का उदय हुआ।

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध के अंतिम दिन रात्रि में द्रौपदी के पाँचो पुत्रों के सिर काट दिए, भाई धृष्टद्युम्न का भी कत्ल कर दिया। नदी के किनारे स्थान-स्थान पर चिताओं से धुआँ उठ रहा था। संबंधी जन अपने मृत वीरों का पावन भस्मावशेष पवित्र नदी में बहा रहे थे। सरिताएँ उन स्मृति दीपों से भरी थीं।

उनकी सद्गति के लिए मंद स्वरों में पावन सामगान हो रहा था। जगत्पिता का विराट आकाश इन मुक्त आत्माओं से जगमग कर रहा था।

तर्पण करते हुए पार्थ से कहा पृथा ने, बेटा।

ज्येष्ठ सहोदर था तेरा ही, कर्ण भाग्य का हेठा।

विवस्वान का कर आवाहन, मैंने उसे जना था।

हाय, अनुज के ही हाथों वह, अत चिता पर लेटा।

कुंती ने अपनी कौमार्य अवस्था में ही सूर्य के आवाहन से कर्ण को जन्म दिया था। कर्ण महाबली था किंतु अन्यायी दुर्योधन का समर्थक था। वह अवैध पुत्र होने के कारण आजीवन अधिकार वंचित रहा और समाज के द्वारा भी उसे अपमान प्रतारणाएँ ही मिली। वैध पुत्र के लिए माता कुंती ने अवैध पुत्र की बली दी थी।

''भीष्म-द्रोण के असहयोग से ऐसा युद्ध न होता।

धृष्टद्युम्न धृष्ट था, फिर भी, ऐसा धृष्ट न होता।

किंतु व्यर्थ सब सोच, युधिष्ठिर हुआ जो कि होना था।

स्वर्ण वह्नि का दाह सहे बिन, ऐसा शुद्ध न होता।''

युधिष्ठिर कौरवों के अन्यायों को याद करके पश्चात्ताप करते हैं। युद्ध के लिए कृष्ण और पांडवों ने कौरवों की पराजय के लिए छल पूर्ण नीति अपनाई। भीष्म ने अपने वध का उपाय स्वयं ही बताया। गुरूद्रोही धृष्टद्युम्न ने नि:शस्त्र आचार्य द्रोण को मारा। सोचते हैं कि अगर भीष्म और द्रोण कौरवों का असहयोग करते तो ऐसा युद्ध न होता। द्रौपदी का अपमान, वीर अभिमन्यु की हत्या नहीं होती। किंतु होनी तो अटल होती है। उसे कौन टोक सकता है ? जब तक स्वर्ण अग्नि में तप्त नहीं किया जाता तब तक वह शुद्ध नहीं होता, न उसकी कांति उभरती है। मनुष्य जब तक जीवन के दु:ख की आग और अनुताप में जलता है तभी वह स्वर्ण जैसा शुद्ध और यशस्वी होता है।

युधिष्ठिर युद्ध के इस परिणाम से बेचैन थे, चिंतामग्न थे, उन्हें आत्मज्ञान हुआ कि विश्व में नर की विजय का मूल्य नारी ही चुकाते आई है। उसकी सहन-शक्ति में विजय-श्री निवास करती है।

''आर्या भार्या नहीं उपकरण, वह न कंचना म्लेच्छा।

आर्या नारी पावक-तनयाम मूर्तिमती देवेच्छा।

जीवन यज्ञ, वीर नर याज्ञिक, नारी अग्नि कुमारी,

देवेच्छा-वश आत्म-यज्ञ में, पहली आहुति स्वेच्छा।।''

जब नर आर्या-नारी को केवल भोग्य-उपकरण मान कर स्वेच्छा चरण करता है तो उसके परिणाम विनाशकारी होते हैं। द्रौपदी अग्निकन्या थी, वह मूर्तिमती देवेच्छा थी। मानव जीवन एक पवित्र यज्ञ और पुरुष यज्ञ का कर्ता है। देव की प्रेरणा से इसे स्वेच्छा की ही पवित्र आहुति देनी पडती है। तभी नारी की मर्यादा और लज्जा की रक्षा होती है। मनुष्य का जीवन मंगल कामनाओं से ही समृद्ध बनता है किंतु नारी की आह की ताप से सर्वनाश ही होता है। जैसे शांतनु के पुत्र ने अंबा का अपहरण किया था -

‘‘स्वयंवरा अंबा को हरकर, लाए शांतनुनंदन।

किंतु एक दिन शयित हुए वह, सजवा कर शरा-शैया।।’’

शांतनु पुत्र भीष्म ने काशी-नरेश पुत्री अंबा-जो महाराज शाल्व से प्रेम करती थी, का जबरदस्ती से अपहरण किया था। इस बात का रहस्य जान लेने के बाद नीतिज्ञ भीष्म ने उसे शाल्व के पास लौटा दिया। शाल्व ने उसका स्वीकार नहीं किया। फलत: भीष्म आजीवन दु:ख भुगते रहे। शर शैया पर सोकर उन्हें मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पडी। अर्थात् महाकाल का दंड सबको भुगतना पडता है। दिव्याग्नि द्रौपदी ने भी कुरू-कुल के गांधारी के पुत्रों के अपमानों का प्रतिशोध लेने के लिए पांडवों में जीवन-शक्ति, प्रेरणा निर्माण की फलस्वरूप ‘महाभारत’ का भीषण एवं नरसंहारक युद्ध हुआ अर्थात् यह धर्मयुद्ध या अधर्म पर धर्म की असत्य पर सत्य विजय का। युद्ध के दुष्परिणाम, आत्मग्लानि, पश्चात्ताप आदि भावों से चिंतित युधिष्ठिर -पात्र के द्वारा कवि ने युद्ध की वास्तविक स्थिती का वर्णन किया है।

२.३.८ ‘द्रौपदी’ का शिल्पविधान –

कविवर नरेंद्र शर्मा रचित ‘द्रौपदी’ उच्चकोटि का लघुकाव्य है। द्रौपदी के जीवन-वृत्त को केंद्र में मानकर कथानक का विस्तार किया गया है। महाभारत की व्यास द्वारा कथित कथा का शर्मा ने पिष्टपेषण नहीं किया किंतु उसके मर्म बीज के अनुसंधान का प्रयत्न किया है। वास्तव में द्रौपदी और पाँच पांडवों का दांपत्य संबंध प्राचीन काल में प्रचलित बहुपति प्रथा का सामाजिक प्रतीक नहीं अपितु द्रौपदी उनकी दृष्टि में जीवन-शक्ति की शाश्वत प्रतीक है और पाँचो पांडव पाँच महातत्त्व के समग्र संश्लिष्ट रूप है। द्रौपदी प्रज्ञा और चैतन्य की ज्वाला है जिसने समग्र चेतना की दिव्य आभा से तेजस्वी ही नहीं किया, उन्हें प्रेरित करके उनके सत्व और सत्त्वों को प्राप्त करने की उनमें क्षमता भर दी है। इस दृष्टि से उनकी ‘द्रौपदी’ यह रचना मौलिक है क्यों कि इतिहास और पुराण के पृष्टों में दबे हुए पात्र आज भी हमारे लिए उज्वल ज्योति-किरणों को प्रसारित कर रहे है। उनकी रूपसज्जा, मनोहारिणी काव्य-भाषा, पात्रों की पुरातनता किंतु नव विचारों की दीप्ति से पुरातन कथा मानव जाति के अंत:करण को आंदोलित करके सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते है। जो भावी पीढियों के लिए महत्त्वपूर्ण संदेश भी है।

काव्य का विषय सनातन हो या नवीन। किंतु उसे सहज, सरल, रसमय, सुबोध बनाने के लिए कवि की भाषा शैली-पद्धति का महत्त्व होता है। द्रौपदी-स्वयंवर से युद्ध में विजय तक कथा-विस्तार संतरण लघिमा शैली के बिना असंभव था क्योंकि प्रत्येक भारतीय महाभारत की कथा से परिचित होता ही है। इसलिए कवि नरेंद्र शर्मा ने सुधी पाठकों पर कुछ बातें छोड दी हैं और प्रतीकात्मक शैली द्वारा कथा प्रस्तुत की है।

काव्य के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं भाव-पक्ष एवं कला पक्ष। भावपक्ष की दृष्टि से कवि ने पात्रों की प्रतीकात्मकता के द्वारा कथ्य स्पष्ट किया है। नरेंद्र शर्मा अत्यंत भावुक सहृदय कवि रहे है। इसीलिए बौद्धिकता के साथ-साथ भावुकता के भी स्थान-स्थान पर दर्शन होते है। शायद इसलिए हिंदी आलोचकों ने उन्हें ‘‘भावनाओं के कवि’’ के रूप में स्वीकार किया है किंतु वे स्वयं अपने-आपको ‘‘मानव-मन की दुर्बलताओं का कवि’’ कहते है। हृदय की प्रधानता की यह स्वीकारोक्ति उनके व्यक्तित्व की भावुकता, संवेदनशीलता, निश्चलता और स्वच्छंदता से अपने मनोभावों को व्यक्त करने की अदम्य प्रवृत्ति सूचित करती है। उनकी रचनाओं में भावुकता और बुद्धि का द्वंद्व निरंतर वर्तमान रहा है। कवि अपने आपको समाज से अभिन्न नहीं रख सकता। अत: समाज का कल्याण और उसकी सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान आवश्यक होता है तभी समाज-मानव विकास कल्याण हो सकता है।

कला-पक्ष की दृष्टि से भी 'द्रौपदी' काव्य सफल माना जा सकता है। संस्कृत प्रचुर शब्दों के सहज प्रयोग से पात्रानुकूल एवं भावानुकूल रहे हैं। उनकर अर्थबोध शब्दों की कठिनता को दूर सका है।

उदा. - द्रौपदी, लाक्षागृह, क्षत्रिय, दीप्ति, आर्जव, पंचतत्त्व, मृत्तिका, कामार्थ, अव्यवहारी, अहंमन्य, निर्लिप्त, तृष्णा, स्वागत, आहलाद, उन्माद, स्वीकार, सूक्ष्म, त्याज्य, व्योम, ज्वाला, सुप्त दुर्भाव, आग्रह, दुराग्रह, उर्ध्वगामिनी, कृतकृत्य, दुस्साध्य, चतुर्भुज, चतुर्दिक, निरस्त्रा, ऋतुमती, नृपति, शस्त्र-अस्त्र अग्नि, सत्व मुक्तात्मा, द्रवित, व्यष्टि-समाष्टि वह्नि अंतर्तम विकीर्ण आदि।

सामासिक शब्द प्रयोग -

युग-परिवर्तन, ऊतल-पातल, दाह-दीप्ति, मृत्तिका-पात्र, भव-बोधि, नभ-तत्व, कामार्थ-भाव, वासना-दास, दान-दाक्षिण्य, जल-थल, कलह-सूत्र, कौरव-कुल, वासना-बीज, पांडव-लक्ष्मी, पावक-तनया, शोषित-सरोवर, काल-व्याल, विजडित-चरण, सुहाग-निशानी, अन्न-वस्त्र, कूटयुद्ध-रत, आत्म-यज्ञ, शर-शैया आदि

मुहावरों का प्रयोग -

मूल्य चुकाना, कुपित होना, ब्रह्मांड में समानाम भेंट चढाना, थाह पाना, कूला न समाना, गाथा गाना, उलझन में पडना, होनी-अनहोनी होना, नयन झुकाना, झफ झोरना, धिक्कारना, आवाहन करना, हृदय में न समाना, दाँव पर लगाना, लुप्त होना, अभिनंदन करना आदि.

कहावतें - लोकोक्तियों का प्रयोग -

साँच को आँच नहीं, सौ बात की एक बात करना, त्याग का फल मधुर किंतु प्रथम तिक्त होता है आदि. शब्दों के प्रयोग एवं मुहावरे, कहावतों के कारण भाषा में जो सहजता एवं सुबोधता निर्माण हुई है वह लक्षणिय है।

अलंकारों का प्रयोग -

अनुप्रास, उपमा, दृष्टान्त रूपक आदि अलंकारों के प्रयोग से काव्य में प्रयुक्त पात्रों के सूक्ष्म-कोमल भावों की अभिव्यक्ति होती है। 'द्रौपदी' काव्य में इन अलंकारों का भाववृद्धि-भावोत्कर्ष एवं स्पष्टता के लिए प्रयोग किया गया है। जिससे उनकी भाषा में चमत्कारपूर्ण विलक्षणता दिखाई देती हैं -

उदा. - ❊ द्रौपदी जीवनी शक्ति, पंचतत्त्वों को वह कल्याणी।

❊ कृष्णा मधूकरी नहीं, लपट है यागानल की कृष्णा।

❊ जीवन क्या है। बस खेल। खिलौना है चतुरंग मानव।

❊ ''स्वागत है, आगत देवि, तुम्हारा अभिनंदन है, स्वागत।''

❊ कृष्णा को अस्वीकार, कमल, जो कर्दम बीच खिला था।

❊ पांडवकुल की शशिप्रभा, कौरवों को वह वह्नि कराला।

* पावक-तनया को देख, हँस पडा द्वापर युग का ईंधन।

* मथित सागर - सदृश वसुधा, पार्थ इंद्र समान।

* है दुस्साध्य अगम धारा में, नारी, नर की नैय।

अलंकारों के प्रयोग में कवि ने प्राकृतिक उपकरणों की मनोरम उपयोग किया है।

उदा. - व्योम, ऊषा, संध्या, यामिनी, आकाश, अंबर, प्रकृति, पशु, प्रकाश, जल-थल, पवन, अग्नि, उल्का, पंकज, बीज-वृक्ष, वन, मोर, चंद्र, सूर्य, नदी-नद, सिंधु, गिरी, बादल, धूलि, व्याल, तिमिर, जल-धारा आदि।

प्रतीकात्मकता -

नरेंद्र शर्मा का 'द्रौपदी' लघु-काव्य भले ही महाभारत की कथा-अंश पर आधारित हैं किंतु उन्होंने पात्रों की प्रतीकात्मकता के द्वारा पाँच सर्गों में समस्त कथानक विस्तारीत है। पहले ही सर्ग में पात्रों की प्रतीकात्मकता सुस्पष्ट है। द्रौपदी नर की जीवन-शक्ति, युधिष्ठिर आकाश तत्व, अर्जुन अग्नि तत्व, भीम-वायु तत्व, नकुल- जलतत्व और सहदेव भूमि तत्व अर्थात् पंचमहातत्व है। धृतराष्ट्र दमित इच्छाओं के प्रतीक है। दुर्योधन, शकुनि कुटिलता, दुर्नीती, अधर्म के प्रतीक है। गांधारी पतिपरायणा, विदुर, द्रोण, भीष्म आदि पात्र विशिष्ट विचार बिंदुओं के वाहक हैं। कवि ने 'द्रौपदी' के माध्यम से पुरातन पर नित नूतन भारत की नारीत्व की व्यंजना की है जो तेजोमयी, प्रभावशालिनी, अतिरमणीय, दीप्तिशालीनी है।

भाषाशैली - कवि ने प्रतीकात्मक शैली के साथ ही संकेतात्मक लघुता-शैली, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से महाभारत की कथा के अंश को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है।

कवि ने प्रमुख घटना-प्रसंगों के वर्णन से प्रतीक शैली के द्वारा जीवन के चरम सत्य को उभारा है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही वातावरण सृजन किया है और कथा का विस्तार किया है। प्रतीकात्मक चित्रों के हलके स्पर्श से गाढे भावचित्र अद्भुत क्षमता से उभरकर आए हैं। वास्तव में महाभारत की लोकप्रसिद्ध कथा और कविकल्पित अध्यात्म धारा दोनों एक-दूसरे से संपृक्त है अत: वस्तुविधान-शिल्पविधान की दृष्टि से यह सफल काव्य माना जाता है।

२.४ शब्दार्थ -

नृपति - राजा
भूप - राजा
अमरावती - स्वर्गलोक
यज्ञज - अग्नि से उत्पन्न - द्रौपदी
अयोजिता - अग्नि धारण किए हुए - द्रौपदी
शोणित - रक्त
पावक - अग्नि
अस्थिफूल - भस्मावशेष (वीरों के)
वैध - अवैध - समाज मान्य - अमान्य

हस्तिमेरू - बडा पर्वत
ऊर्धगामी - ऊपर की और आकाश मार्ग पर जानेवाली
पशुबल - राक्षसी प्रवृत्ति
क्षीर सिंधु - दूध का सागर, क्षीरसागर
व्यसन - शौक
इंदीवरी - बहुत सुंदर
प्रवंचना - धोखा, फँसाना
दमित - दबी हुई
मंत्रणा - सलाँह, मशवरा
दुस्साध्य - कठिन
अनुचर - दास, सेवक
बीहड - ऊबड खाबड, ऊँचा-नीचा
कौंतेय - कुंती पुत्र अर्जुन
कौमार्य अवस्था - अविवाहित

२.५ सारांश -

नरेंद्र शर्मा द्वारा लिखित लघु-काव्य या प्रतीकात्मक काव्य या चरित्र काव्य या खंडकाव्य महाभारत की कथा के अंश पर आधारित है। पाँच सर्गों में काव्य के द्वारा कथानक का विस्तार किया गया है। पाँचो पांडव- युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि के तत्त्व है। होमकुमारी द्रौपदी इन पंचमहाभूतों में जीवन-शक्ति का संचार करती है। अपने स्नेहसूत्र में इन सबको बांध ही नहीं रखा किंतु उनमें अपने कर्तव्य, दायित्व एवं अधिकार के प्रति सजग, चेतनायुक्त बनाए रखा। धृतराष्ट्र और गांधारी के सौ पुत्र थे। दुर्योधन, दुःशासन अविवेकी, अन्यायी थे। गांधारी के भाई शकुनि दुष्ट, कुटिल स्वभाव के थे। वे कौरव-पांडवों में मेल होने देना नहीं चाहते थे। भीष्म कुरूकुल को स्नेह सूत्र में बांध रखना चाहते थे किंतु कर्ण, शकुनि दुष्ट वासना से पीडित, अन्यायी, अविवेकी दुर्योधन का साथ दे रहे थे।

नववधू के रूप में जब द्रौपदी हस्तिनापुर में आई तब गांधारी ने स्नेह बंधन से उसका स्वागत किया। इस मिलन से शकुनि शंकित हुआ और मन ही मन सोचा कि द्यूत के सहारे मैं कौरवों की जीत कराऊंगा। धृतराष्ट्र भी नववधू के आगमन से प्रसन्न हुए और उन्होंने दुर्योधन से पांडवों को उनका राज्य का हिस्सा देने का आग्रह किया। विदुर ने भी समझाया। धृतराष्ट्र दुर्योधन के हठ के आगे कुछ न कर सके। पांडवों को खांडव प्रस्थ बसाने का आदेश दिया गया। वहाँ परिश्रम और धर्मपरायणया से देवताओं से वरदान प्राप्त किया और इंद्रपुरी जैसे श्री-समृद्धि निर्माण की हुई देखकर दुर्योधन मर्माहत हुआ। अनेक उपायों से भी वह पांडवों का विनाश न कर पाया। इसलिए मामा शकुनि की शरण में आया।

शकुनि की कुटिल चाल से युधिष्ठिर द्यूत में सबकुछ हार गए। अंतमें उन्होंने द्रौपदी को भोग्य उपकरण समझकर दाँव पर लगा दिया। पांडव हार गए। धृतराष्ट्र के दुरभिमानी पुत्रों ने द्रौपदी को भरी सभा में निर्वसन करने का निर्लज्जपूर्ण प्रयत्न किया। पांडव, भीष्म, द्रोण आदि महारथी कुछ न कर सके। किंतु भगवान् कृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचाई। राज्यहीन वे सब (पांडव-द्रौपदी) वनवास निकल पडे। बारह साल वन-वन घुमते रहे। अपने मृदुल आचरण से उन्होंने अनेक राजाओं को अपना मित्र बनाया था। इधर कौरव

अपने अहंकार और मद में डूबे हुए थे। द्रौपदी के मन में प्रतिशोध की आग भडक रही थी। बारह साल वनवास निकल गया अब शेष था एक साल का अज्ञातवास।

मत्स देश के राजा विराट के यहाँ अपने नाम-वेश बदल कर पांडव एवं द्रौपदी साल भर रहे। युधिष्ठिर कंक नाम से विराट नृपति के साथ पासा खेलता, अर्जुन-बृहन्नला के नाम से नृत्यशाला में शिक्षा देता। तो द्रौपदी विराट की रानी की सैरंध्री बनकर बडा कष्टमय जीवन-व्यतीत कर रहे थे। कौरवों युद्ध करने के लिए जब विराट के पुत्र उत्तर सारथि बृहन्नला को लेकर गया था किंतु युद्ध से वह पीठ दिखाने पर बृहन्नला ने उसे प्रेरणा दी स्वयं योद्धा बना और उत्तर को सारथि बनाया। द्रोण, भीष्म, कर्णादि महायोद्धा इस युद्ध में हार गए। उसकी वीरता से प्रभावित राजा विराट ने अपनी बेटी उत्तरा से विवाह करने का प्रस्तावम बृहन्नला -अर्जुन के सामने रखा किंतु उसने इन्कार किया। वह तो उनकी शिष्या है। उसे तो वे नृत्य-वाद्य-संगीत की शिक्षा दे चुके है। आगे उत्तरा को उन्होंने अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार किया। वह अभिमन्यु की पत्नी बनी।

अज्ञातवास में ही विराट की रानी के भाई कीचक सैरंध्री के अपूर्व सौंदर्य से मुग्ध होकर उससे रतिदान की याचना करता है, बार-बार मना करने पर भी अत्याचार करना चाहता है। भरी सभा में युधिष्ठिर और भीम के सामने उसे अपमानित करता है। अंतत: भीम राजा की नृत्यशाला में उसका और उसके भाइयों का वध करता है।

अज्ञातवास की समाप्ति के बाद महाभारत आरंभ होने के सर्वत्र अपशकुन दिखाई देने लगते हैं। युद्ध जीतने के लिए दोनों पक्षों के योद्धा बाहुबल, शस्त्रास्त्रादि के साथ युद्ध की आग में कूद पडे। द्रौपदी की अनेक वर्षों से अपमान की धधकती आग ने अनेक योद्धाओं को प्रतिशोध की आग में जला दिया, कुचल दिया। अठारह दिनों तक महाभारत का नरसंहारकारी युद्ध हुआ। पांडवों की विजय हुई। युद्ध के दुष्परिणाम से युधिष्ठिर चिंतामग्न हुए और उन्हें वे सभी बातें याद आती है जिनके परिणाम से युद्ध हुआ। द्रौपदी का सभा में अपमान, अभिमन्यु की निर्मम हत्या, भीष्म, द्रोण आदि का कौरवों को सहयोग आदि। और उन्हें आत्मज्ञान हुआ - कि विश्व में नर की विजय नारी के मूल्य चुकाने से ही संभव है। कुंती ने अवैध पुत्र कर्ण की, गांधारी ने कौरवों की, द्रौपदी ने अपने पाचों पुत्रों की, सुभद्रा ने अभिमन्यु की बलि चढाई। द्रौपदी एक नारी है, नर को विजय के शिखर तक ले जाने की एक शक्ति है। युग-युग से 'नारी' शक्ति पुरुष में शक्ति तेज का संचार करनेवाली कल्याणकारिणी, तारिणी, कृत्या, उर्वशी भी है। सारांशता, 'द्रौपदी' कवि की जीवनोपयोगी संदेश देनेवाली रचना है। धर्म की अधर्म की, असत्य की सत्य पर विजय होती है। अत: यह सफल रचना है।

२.६ स्वयं -अध्ययन के लिए प्रश्न -

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न -

* 'द्रौपदी' लघु-काव्य का संक्षेप में कथ्य लिखिए।
* द्रौपदी न केवल लघु-काव्य का पात्र है बल्कि नर की शक्ति का प्रतीक भी है - स्पष्ट कीजिए।
* द्रौपदी लघु-काव्य के पात्रों की प्रतीकात्मकता कथ्य के आधार पर समझाइए।
* 'द्रौपदी' के शिल्पविधान को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(ख) टिप्पणियाँ -

* द्रौपदी का चरित्रांकन

* शकुनि की कुटिलता
* द्रौपदी जीवन-शक्ति
* 'द्रौपदी' का अलंकार विधान
* अज्ञातवास में अर्जुन-बृहन्नला रूप
* द्रौपदी-गांधारी के मिलन का प्रसंग

(ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

* कुंती के पुत्र कर्ण की महत्त्वपूर्ण स्वभावगत् विशेषताएँ लिखिए।
* द्रौपदी के लिए प्रयुक्त चार नामों को लिखिए।
* पांडवों को किन-किन प्रतीकों से व्यक्त किया गया है ?
* धृतराष्ट्र की दमित वासनाएँ किस रूप में प्रकट हुई हैं ?
* पांडवों ने अज्ञातवास का एक वर्ष किस राजा की सेवा में बिताया ?
* अप्सरा उर्वशीने अर्जुन के पास कौनसी इच्छा व्यक्त की है?

(घ) संदर्भ स्पष्टीकरण -

* कठिण थी उस दिव्यजन्मा शक्ति...
* दहनशक्ति से मूल्य चुकाती...
* नारी कृत्या, मृत्यु उर्वशी जननी...
* युधिष्ठिर को व्यसन है...
* बाँह फैलाएँ बढी वह नववधू...
* युद्ध क्षेत्र पर शांति छा गई...

(च) सही पर्याय लिखिए -

* युधिष्ठिर को किसका व्यसन था?

(अ) द्यूत-क्रीडा (ब) युद्ध (क) रमण (ड) राज्य

* अज्ञातवास में विराट के यहा युधिष्ठिर ने किस नाम को धारण किया ?

(अ) पार्थ (ब) धर्म (क) कंक (ड)

* कौरव और पांडवों में कौन मेल नहीं होने दे रहा था ?

(अ) भीष्म (ब) द्रोण (क) गांधारी (ड) शकुनि

* महाभारत का युद्ध कितने दिनों तक चला ?

(अ) अठारह (ब) बीस (क) सात (ड) आठ

* कवि नरेंद्र शर्मा ने द्वापर युग का ईंधन किसे कहा है ?

(अ) अर्जुन (ब) शकुनि (क) कर्ण (ड) भीम

* काशी-नरेश की बेटी अंबा का किसने अपहरण किया था ?

(अ) भीष्म (ब) द्रोण (क) युधिष्ठिर (ड) भीम

२.७ स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* 'द्रौपदी' लघु-काव्य में अभिव्यक्त नारी विषयक विचार स्पष्ट कीजिए।
* 'द्रौपदी' लघु-काव्य में विविध-पात्रों की सूची तैयार कीजिए।
* 'द्रौपदी' काव्य के द्वारा अभिव्यक्त विविध प्रसंगों का वर्णन कीजिए।

* आपकी दृष्टि से 'द्रौपदी' काव्य की उपयुक्तता क्या है ?

२.८ संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें -

* 'द्रौपदी' - नरेंद्र शर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली - ६

* डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा - ग्रंथावली - भाग - ३

संपा. - (स्वामी) डॉ. ओम आनंद सरस्वती

शांति प्रका. हरियाणा (रोहतक)

इकाई – ३
संशय की एक रात (नरेश मेहता)

अनुक्रम

३.१ उद्देश्य
३.२ प्रस्तावना
३.३ विषय–विवरण
    ३.३.१ नरेश मेहता : जीवन–परिचय
    ३.३.२ कथावस्तु
    ३.३.३ पात्र परिचय
    ३.३.४ संशय की एक रात में अभिव्यक्त समस्याएँ
    ३.३.५ काव्य–कला
    ३.३.६ नई कविता में संशय की एक रात का स्थान
    ३.३.७ 'संशय की एक रात' शीर्षक की सार्थकता
    ३.३.८ 'संशय की एक रात' की शिल्प दृष्टि
३.४ शब्दार्थ
३.५ सारांश
३.६ स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न
३.७ स्वाध्याय–क्षेत्रीय कार्य
३.८ संदर्भ–अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

३.१ उद्देश्य –

* नरेश मेहता के जीवन तथा रचना का परिचय प्राप्त करता है।
* 'संशय की एक रात' काव्य के कथ्य को समझता है।
* प्रमुख पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को समझता है।
* 'संशय की एक रात' काव्य में अभिव्यक्त समस्याओं से परिचित होता है।

३.२ प्रस्तावना :–

नरेश मेहता द्वारा रचित 'संशय की एक रात' नामक काव्य कृति में राम की परंपरागत कथा को एक नई दृष्टि से देखा और व्यक्त किया गया हैं। रामायण और राम विषयक अन्य काव्य कृतिओं में श्रीराम प्राय: शील, शक्ति और सौंदर्य के समन्वित व्यक्तित्व के रूप में वर्णित हुए हैं। श्रीराम स्वयं अपने आप में एक परम्परा की तरह हैं। सामान्य पाठक के लिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श सखा आदि विविध रूपों में वे भारतीय जनमानस में जाने–पहचाने जाते हैं। किन्तु प्रस्तुत काव्य–नाटक में वे परस्पर विरोधी विचारों, मान्यताओं और आस्थाओं के बीच हुए उलझे दिखाई देते हैं।

दूसरे शब्दों में कहे तो, ''मनोवैज्ञानिक रीति से उनमें खण्डित व्यक्तित्व का आरोप किया गया हैं, जिसमें युद्ध और शान्ति, विराटत्व के साथ लघुत्व का बोध, एकान्तिक आत्म-मंथन और सामूहिक दायित्व-बोध, व्यक्ति तथा समूह को लेकर विरोधी निष्ठाओं का द्वंद्व चित्रित हुआ हैं।''

आधुनिक विसंगतिओं का राम में आरोपण तथा उनके माध्यम से अपने युग की समस्याओं के समाधान के रूप में विपरीत मूल्यों, बोधों और मान्यताओं के बीच एक सही दृष्टि अपनाने की प्रेरणा ही इस कृति का मूल उद्देश्य हैं। यह समस्या अपने आप में कोई नयी चीज नहीं हैं। इस प्रकार की स्थितियाँ मानव समाज तथा इतिहास में बराबर उठती रहीं हैं, लेकिन प्रत्येक युग का 'संशय' अपने ऐतिहासिक दाय और मजबूरी से अद्वितीय हो जाता हैं। हमें यह देखना है कि, नरेश मेहता ने जिस संशय का आरोपण प्रज्ञापुरुष राम में किया है वह कहाँ तक संगत और सफल हैं।

३.३ विषय विवरण :-

३.३.१ नरेश मेहता जीवन परिचय :-

१५ फरवरी १९२२ को शाजपुर, मालवा के ब्राह्मण परिवार में जन्में नरेश मेहता आधुनिक हिन्दी कवितों की पहली पंक्ति में स्थान रखते हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने कई जगह नोकरी की हैं। सन् १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय रहने के साथ-साथ वे लगभग १५ वर्ष तक काँग्रेस, समाजवादी पार्टी से सम्बद्ध रहे। दिल्ली में ट्रेड युनियन के साप्ताहिक पत्र का संपादन, 'कृति' मासिक पत्रिका के संपादक, छह वर्षों तक आकाशवाणी के कार्यक्रम अधिकारी आदि जगहों पर नौकरियाँ करने के बाद सन १९५९ से उन्होंने इलाहाबाद में रहकर स्वतंत्र लेखन कार्य किया हैं।

घुमक्कड प्रवृत्ति, क्रांतिकारी, संगीत, अध्यात्म-तंत्र-ज्योतिष में रूचि, पान-तंबाकू इत्र के शौकीन, दूसरे सप्तक के कवि, मानवतावादी उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, आलोचक, संपादक, खण्ड काव्यकार, सजग शिल्पी, परिश्रमी, खुशमिजाजी, औत्सविक मानसिकतावाले लेखक आदि उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ बताई जा सकती है। परिणाम स्वरूप उन्हें उनके समग्र कार्यकाल में निम्न पुरस्कारों से सन्मानित किया गया हैं -

* मध्यप्रदेश शासन का राजकीय सम्मान (१९७३)
* सारस्वत सम्मान (१९८३), मध्यप्रदेश शिखर सम्मान (१९८९)
* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत-भारती पुरस्कार (१९८५)
* साहित्य अकादमी पुरस्कार 'अरण्या' कविता संग्रह पर (१९८८)
* ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९९४)

नरेश मेहता ने अपने समग्र कार्यकाल में उपन्यास, कहानी संग्रह, नाटक, विचार, ग्रंथ, संपादन, काव्य संकलन तथा खंडकाव्य लिखे हैं, अर्थात् उनका साहित्य समृद्ध रहा हैं। जैसे -

* उपन्यास :- 'यह पथ बंधु' था, 'अंतरकथा दो खंड', 'डूबते मस्यूल','दो एकान्त', 'प्रथम फाल्गुन', 'धूमकेतु : एक श्रुति', 'नदी यशस्वी हैं', 'पुनः एक युधिष्ठिर'।
* कहानी संग्रह :- 'तथापि', 'एक समर्पित महिला', 'जलसाधर'।

※ नाटक :- 'सुबह के घंटे', 'खंडित यात्राएँ', 'सरोवर के फूल', 'पिछली रात की बर्फ' (रेडियो रूपक)।

※ विचारपरक ग्रंथ :- 'मुक्तिबोध एक अवधूत कविता', 'शब्द पुरुष अक्षेप', 'काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व', 'हम अनिकेतन'।

※ संपादन :- 'वाग्देवी', 'गाँधी - गाथा'।

※ काव्य :- 'बोलने दो चीड को', 'बनपाखी! सुनो!!', 'तुम मेरा मौन हो', 'उत्सवा', 'आखिर समुद्र से तात्पर्य', 'पिछले दिनों नंगे पैरों', 'देखना एक दिन', 'अरण्या', 'चैत्या'।

※ खंडकाव्य :-

'संशय की एक रात' - १९६२, 'प्रसादपर्व'-१९७७, 'महाप्रस्थान' - १९६४, 'शबरी'-१९७७, 'प्रार्थना पुरुष'- १९८५, 'समिधा'(दो खंड) संपूर्ण काव्य।

इस प्रकार नरेश मेहता ने मानव में विराजे श्रेष्ठ को जगाने की चाह से बहुत कुछ लिखा हैं। क्षिप्रा-नर्मदा से लेकर गंगा तक फैले हुए जीवन के विस्तृत फलक को वे अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते हैं। इस कारण मानव और प्रकृति के साथ गहरा लगाव, मनुष्य के महिमा की स्वीकृति, कृषि जीवन के प्रति आकर्षण, वैश्विक दृष्टि तथा अखण्ड आस्था आदि उनकी कविता की प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती रही हैं। 'संशय की एक रात' नाट्यशैली में लिखी गई एक लम्बी कविता हैं। जिसमें युद्ध को लेकर राम के मन में उठनेवाले अन्तर्द्वंद्वों का चित्रण किया गया हैं। राम का निर्णय व्यक्ति का नहीं होता। जिस समय नरेश मेहता लिख रहे थे, उस समय व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बात पूरे जोर-शोर से उठायी जा रही थी, लेकिन नरेश मेहता के राम सबके निर्णय में अपना निर्णय मानतें हैं - 'अब मैं निर्णय हूँ सबका, अपना नहीं।' इस प्रकार अपने बहुआयामी व्यक्तित्व से हिन्दी साहित्य की हर एक विधा को महत्व प्रदान करनेवाले नरेश मेहता २३ नवंबर २००० को इलाहाबाद की पावन धरती में विलीन हुए।

३.३.२ कथावस्तु :-

नरेश मेहता द्वारा लिखित 'संशय की एक रात' खंडकाव्य की कथावस्तु चार सर्गों में विभाजित है। प्रस्तुत खंडकाव्य का आरंभ रामेश्वर के सिन्धु तट से होता हैं। जहाँ श्रीराम चिन्ताओं में जकडे हुए उपस्थित हैं। सीता का उद्धार कैसे हो, इसी प्रश्न ने उन्हें बुरी तरह झंझोड दिया हैं। उनके इस मानसिक अन्तर्दंद्व और अनिश्चितता की स्थिती की परिचायक निम्न पंक्तियाँ हैं - ''कितनी बार, कितनी साँझ, इस सिन्धु बेला तट, बितायी, काट दी, पर व्यर्थ।'' वे चिन्तन में लीन हैं। उन्हें स्मरण हैं कि उन्होंने रावण के क्रूर पंजो से सीता को बचाने के लिए सभी सम्भव प्रयास किए। दूत भेजे। किन्तु परिणाम के नामपर उन्हें केवल निराशा ही हाथ लगी। आज उन्हें रह-रहकर यह बात साल रही है कि सीता को छुडा न सकने के कारण राजा जनक,पुरवासी और यहाँ तक कि स्वयं जानकी भी पता नहीं, क्या-क्या सोंच रही होगी ? राम इसी चिंता में लिन थे, उनके अनुज लक्ष्मण का प्रवेश होता है और वे राम को युद्ध-संबंधी कतिपय महत्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं। लक्ष्मण इस बात का पूरा प्रयास करते हैं कि अवसाद और निराशा में डूबे हुए राम पूरे उत्साह और शक्ति के साथ युद्ध के लिए तत्पर हों। वे अपने अग्रज राम को अपने पौरुष से आश्वस्त करते हुए कहतें हैं कि -

''तो फिर

शपथ है बन्धु

मुझको मेरे ही बाण की

आज की भाद्रपदी साँझ की

आज्ञा करें राम

देखे फिर पौरुष इस बन्धु का।''

लक्ष्मण के आश्वासन पर राम अपने मन की द्विधा को व्यक्त करते हैं। निश्चय ही राम युद्ध से नहीं डरते, किन्तु उनका लक्ष्य तो यह है कि मनुष्य के भीतर जो देवत्व छिपा हैं, उसे किस प्रकार जगाया जाये? उन्हें युद्ध से प्रेम नहीं हैं। वे कहते हैं – ''लक्ष्मण! मैं नही हूँ का पुरुष, युद्ध मेरी नहीं है कुंठा, पर युद्ध प्रिय भी नहीं।'' राम को तो रह-रहकर यही विचार सालता है कि अयोध्या में जो कुछ अप्रिय हुआ अर्थात् पिता की मृत्यु, माताओं का वैधव्य, उर्मिला का विरह और बाद में सीता का हरण यह सब घट्नाएँ अन्तत: उन्हीं से जुडी हैं। इन सबके मूल में राम ही तो है। अत: वे स्वभावत: यही सोचते हैं कि 'व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें?' व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए युद्ध का औचित्य राम को नहीं दिखता। उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए किए जानेवाले युद्ध में असंख्य भोले-भाले व्यक्तियों का संहार होगा। ऐसे उद्देश्य प्राप्ति हेतु खेला जानेवाला युद्ध उन्हें मिथ्यात्व के समान लगता हैं।

राम अकेले सेतुबन्ध की ओर निकल आते हैं। उन्हें अभी भी युद्ध की चित उद्विग्न किए हुए हैं। लक्ष्मण और हनुमान दोनों विभिषण के शिविर की ओर चले गए हैं। राम अभी भी चिंता में लीन हैं। उनकी दृष्टि में यदि सभी मानवीय प्रश्नों का एकमात्र उत्तर खड्ग और युद्ध हैं, तो उन्हें ऐसा युद्ध औअर ऐसे विषय कदापि नहीं चाहिए। उनके चिन्तन की स्पष्टता और दृढता देखिए –

''मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,

बाणबिद्ध पाखीसा विवश

+ + +

सीता भी नहीं चाहिए, सीता भी नहीं चाहिए।''

इसी बीच नील प्रवेश करता है और राम को सूचित करता है कि पुल की मीनार के पीछे कोई अस्पष्ट-सी छाया घूम रही है। जिसके अंक में एक पक्षी फडफडाता दिखता है। राम स्वयं उस छाया को देखने मीनार के पीछे की ओर आते हैं। थोडी ही देर में वह छाया पुन: अस्पष्ट सी उभर आती है, जिसे देखकर राम उसका परिचय पूछते हैं। छाया राम से पूर्ण एकान्त में बात करना चाहती हैं। छाया बताती है कि वह राम के पिता राजा दशरथ की आत्मा है और जो पक्षी उसकि अंक में फडफडा रहा है, वह जटायु है।

तद्नंतर छाया और राम में बातचीत होती है। छाया भी अपने ढंग से राम के अन्तर्मन के संशय को दूर करना चाहती है और उन्हें बताती है कि :-

''कीर्ति, यश, नारी, धरा

जय लक्ष्मी

ये नहीं है कृपा या अनुदान।

मेरे पुत्र! भिक्षा से नहीं

वर्चस्व से अर्जित हुए हैं, ये आज तक।''

छाया राम को युद्ध के लिए उद्बोधित करती है क्योंकि यह युद्ध वस्तुत: असत्य के विरुद्ध है। जटायु सांख्य दर्शन की शब्दावली का प्रयोग करता है और इस प्रकार राम के परिताप और पश्चाताप को दूर करने का यत्न करता है। राम का संशय बना हुआ है और विभिन्न पात्रों और परिस्थितीयों की ऐसी योजना बनाई जाती है कि राम का यह संशय दूर हो सकें। राम का संशय युद्ध के परिणाम का संशय नहीं है अपितु मानव नियति का संशय है। राम के अनुसार ''यदि सारे शुभाशुभ युद्धों से ही प्रतिपादित हो, तब वे सत्य तो नहीं, अंतिम भी नहीं।'' अन्तत: जटायु और छाया दोनों राम से विदा ले लेते हैं।

प्रस्तुत खंडकाव्य के तीसरे सर्ग में राम युद्ध शिविर में बैठे हुए अपने वीरों तथा सामन्तों के साथ युद्धविषयक मंत्रणा में लीन हैं। इस मंत्रणा में राम के अतिरिक्त लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, जामवंत, विभिषण आदि सम्मेलित हैं। बैठक के आरम्भ में ही लक्ष्मण हनुमान को संबोधित करते हुए राम की मन:स्थिति का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि राम किस प्रकार रघुकुल के दु:खों का कारण अपने आप को मानते हैं। युद्ध को मान्यता इसलिए नहीं देते की सीता हरण राम की व्यक्तिगत समस्या होती तो कोटि-कोटि बानर, नग्न देह धारण कर इस तरह यहाँ इकट्टे नहीं होते और यदि यह बानर एकत्रित न आते तो सेतुबन्ध का बनना भी मात्र कल्पना रह पाता। हनुमान की मान्यता यह कि सीता भले ही राम की पत्नि हो, किसी की वधु हो, किसकी दुहिता हो किन्तु कोटि कोटि जन के लिए वह केवल स्वतंत्रता का प्रतीक हैं। जहाँ तक युद्ध का प्रश्न है, हनुमान स्पष्टत: कहते हैं कि वे भी युद्ध प्रेमी नहीं है, किन्तु रावण के अत्याचारों में जकडे हुए हजारो नर-नारियाँ को स्वतंत्र कराने के लिए युद्ध अनिवार्य है। बावजूद उसके युद्ध को लेकर राम का संशय यत्किंचित भी कम नहीं होता। वे हनुमान को पुन: प्रतिप्रश्न पूछतें हैं कि ''हनुमान, मैं युद्ध की अनिवार्यता को भली भाँति जानता हूँ। किन्तु मेरे मन में यह आशंका है कि क्या युद्ध के उपरांत भी शांति आएगी ?'' इस बात का उन्हें कोई विश्वास नहीं हैं। राम की दृष्टि में युद्ध कोई साधारण बात नहीं होती-किसी भी पीढी का दायित्व होता हैं। अत: उसके सम्बन्ध में कोई भी निर्णय सुव्यवस्थित रूप से लिया जाना चाहिए। आवेशों से प्रेरित होकर नहीं। राम के अनुसार युद्ध फेन की तरह नहीं होता। उसके निर्णय से ही इतिहास बनता हैं। तभी हनुमान विभिन्न तर्क देकर वर्तमान परिस्थितीयों में युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं। सुग्रीव भी इस मंत्रणा में सम्मिलित होते हैं और कहते हैं -

''महाराज !

''युद्ध केवल फेन ही नहीं

निर्णय है

जिससे इतिहास बना करता हैं।''

जब राम युद्ध के प्रसंग में विभीषण के विचार पूछतें हैं, तो विभीषण युद्ध को दर्शन की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि - ''युद्ध, मंत्रणा नहीं एक दर्शन है राम! अन्तिम मार्ग। स्वत्व और अधिकार अर्जन का।''

विभीषण जानते हैं कि कल लंका पर होनेवाले आक्रमण में वह राम का साथी होगा और तब उसके देशवासी अर्थात् लंकावासी उसके राष्ट्र-विरोधी युद्ध पर थू-थू करेंगे। विभीषण जानते हैं कि - ''मेरा राष्ट्र, इस युद्ध में रौंध डाला जाएगा कल राम?'' तथापि विभीषण यह जानते हैं कि रावण के असत्य आचरण और अन्यायपूर्ण व्यवहार के रहते हुए वह जो कुछ कर रहे हैं सर्वथा नैतिक और न्यायोचित है।

युद्ध-मंत्रणा में सारी रात बीत जाती है और अन्तत: राम को युद्ध की अनुमति देनी ही पडती है। अपने मंत्रियों, सामन्तों के तर्कों के विरुद्ध उनके पास युद्ध करने के सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं रह जाता। युद्ध-

परिषद् की इच्छा के प्रति राम भी नतमस्तक हो जाते हैं और युद्ध का आरंभ होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राम ने युद्ध करने का निर्णय आधे मन से लिया है।

इसी कारण वे कहते हैं – ''अब मैं निर्णय हूँ, सबका, अपना नहीं।''

राम मानते हैं कि इतिहास के हाथों व्यक्ति एक व्यक्ति न होकर केवल शस्त्र होता है। राम युद्ध की अनुमति अवश्य देते हैं किन्तु उन्हें बार-बार यह प्रश्न कचोटता हैं, क्या आनेवाली पीढीयाँ इस बात पर विश्वास कर सकेंगी कि राम ने युद्ध करने के पूर्व इतनी गहराई से इस समूचे प्रश्न पर विचार किया था?'' राम इस सारी परिस्थितीयों में अपने आप को सर्वथा अस्वस्थ और निराश महसूस करते हैं। राम की इस मन:स्थिती का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं ''क्या कल आनेवाली पीढियाँ यह विश्वास कर पाएँगी कि राम ने युद्ध का निर्णय किस मानसिक अन्तर्द्वंद्व में किया था।'' रामराज्य यह वास्तविकत: प्रजातंत्र था, उसी के कारण राम जब संशय में घिर जाते हैं तो युद्ध का निर्णय संसद् पर सौंप देते हैं और संसद् बहुमत के आधार पर यह निर्णय लेती हैं कि युद्ध होगा। तब युद्ध को लेकर राम के मन में स्थित संशय समाप्त हो जाता है और वे भी संकल्प करते हैं कि युद्ध को रोख पाना उनके हाथों के बाहर की बात है और अब तो केवल सेना की पगध्वनियाँ, रणनिनाद, भेरियाँ, युद्ध-घोष और झंडियाँ ही बची रही हैं। लेकिन अंत में वे कहते हैं –

''अब मैं केवल
प्रतिक्षा हूँ
कवचित कर्म हूँ
प्रतिश्रृत हूँ सबका
सबके लिए,
केवल अपने ही लिए
सम्भवत: नहीं!''

३.३.३ पात्र परिचय :–

राम :–

'संशय की एक रात' काव्य में महिमा मण्डित श्रीराम का चरित्र खण्डित व्यक्तित्व के रुप में रूपायित हुआ है। राम यहाँ आधुनिक प्रज्ञा-पुरुष के प्रतीक हैं। जिसप्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा-पुरुष भी सनातन प्रतीक होते हैं। राम ऐसे ही प्रज्ञा प्रतीक हैं जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को समझाता रहा है।

प्रस्तुत कृति में राम आदर्श चरित्र होते हुए भी खण्डित मन हो गये हैं। उन्हें आधुनिक प्रज्ञा के रूप में चित्रित करने के लिए यह आवश्यक था कि वे आधुनिक दृष्टि से सोचे। वर्तमान युगीन बोध युद्ध में विश्वास नहीं करता किन्तु शान्ति को भी एक जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकृति नहीं दे पा रहा है। स्पष्टत: हमारा बोध दो विपरीत आस्थाओं में विभक्त हो गया है और हमारा व्यक्तित्व इन्हीं दो विचार दर्शनों में खण्डित हो गया है। यह द्विधा मन:स्थिती उसे बाँट देने में सफल हो रही है। ऐतिहासिक राम ऐसे ही संशय

से ग्रस्थ हैं। उन्हें जिन प्रश्नों ने उद्विग्न बनाया हैं, वे आज के चिंतनशील मानव को भी उसी निर्ममता से उद्वेलित कर रहे हैं। इस कारण संवेदनशीलता, आत्मग्लानि, व्यष्टि और समष्टि का अन्तर्द्वंद्व, विद्रोहधर्मिता, प्रज्ञा पुरुष, संशयग्रस्तता आदि राम के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ बनी हुई हैं।

⁕ संवेदनशीलता :–

प्रस्तुत कृति में श्रीराम अत्यंत संवेदनशील हैं। रावण द्वारा सीता के हरण के उपरांत वे अत्याधिक संवेदनशील हो गये हैं। इस स्थिती में वे निर्णय नहीं ले पा रहे हैं। उनमें अनिश्चय, संशय ग्रस्तता निरंतर बढती हुई दिखाई दे रही हैं। सर्वसाधारण पुरुष की तरह पत्नी के अपहरण ने उन्हें अत्याधिक संवेदनशील बना दिया हैं। उनकी यह बाहरी संवेदनशीलता उनके चरित्र का एक रूप हमारे समक्ष रखती हैं।

राम यह सोचते – सोचते दुश्चिन्ताओं में डूब जाते हैं कि सीता–हरण के समाचार को सुनकर उनके परिजन, पौरजन एवं जनक महाराज आदि उनके विषय में क्या–क्या सोचते होंगे। उन्हें लगता हैं कि सारी प्रतिष्ठा गल–गल कर बह गयी है। सम्भव है इस समाचार को सुनकर लोग उन्हें कायर समझने लगेंगे। सीता की स्मृति आते ही वे उस विचार से विव्हल हो उठते हैं। उनके मन में अनेक संशय खडे हो जाते हैं। ''क्या सीता ने कोई अनुचित कार्य किया है? क्या रावण के शिकंजे से वे सीता को नहीं छुडा पाएँगे?'' आदि प्रश्नों ने उन्हें आत्म–ग्लानि में डूबो दिया हैं। अपने इस आत्मग्लानिता के कारण वे अवतारी पुरुष के रूप में अविमनस्क न रहकर सर्वसाधारण मानव बन जाते हैं। उनकी आत्म–ग्लानि इस हद तक पहुँच जाती हैं कि –

''भू मुकूट जैसे अशोको के प्रति

+ + +

हमरो श्रेष्ठ तो वे गाछ हैं।''

⁕ व्यष्टि और समष्टि का अन्तर्द्वंद्व :–

प्रस्तुत कृति में श्रीराम यद्यपि अपनी व्यक्तिगत वेदना से व्यथित हैं किन्तु समाज अथवा विश्वमानवता की दुर्निवार चिन्ता भी उन्हें उद्विग्न कर रही है। इस कारण उन्हें लगता हैं कि सीता हरण यह उनकी नितांत व्यक्तिगत समस्या हैं। उसके लिए मैं युद्ध का आव्हान कर समस्त वानर सेना के प्राण खतरें में क्यो डालू? विश्व मानवता की चिन्ता उन्हें ऐसा नहीं करने देती। इसी हित–कामना ने उन्हें युद्ध – विरत किया हैं कि कहीं उनके द्वारा लडा गया यह युद्ध आनेवाले के युद्धों की नींव न बन जाएँ।

⁕ विद्रोहधर्मिता :–

राम की वंश परंपरा के अनुसार युद्ध यद्यपि एक स्वीकृत मूल्य है किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में वे इस मूल्य को स्वीकार नहीं कर पातें। उनके भीतर एक विद्रोह जन्म ले चुका है और अन्याय–अत्याचार को शक्तिपूर्वक मर्दित कर देनेवाली मान्यता उन्हें झूठी लगती हैं। वे निश्चय नहीं कर पातें कि युद्ध के पश्चात् शान्ति होगी ही।

⁕ प्रज्ञापुरुष :–

राम अपने वैयक्तिक संकट के नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व–मानवता के संकट के केन्द्रबिन्दु बन गये हैं। इसलिए वे सामान्य व्यक्ति न रहकर सार्वकालिक अथवा सनातन 'प्रज्ञा–पुरुष' बन गये हैं। उन्हें आधुनिक प्रज्ञा का प्रतीक इसलिए कहा जायेगा क्योंकि जिन प्रश्नों ने उन्हें उद्विग्न बनाया हैं, वे आज के चिन्तनशील मानव को भी उसी निर्ममता से उद्वेलित कर रहे हैं।

*** संशयग्रस्तता :-**

युद्ध और शांति इन दो प्रश्नों ने उन्हें संशयी बना दिया हैं। इतने प्रश्नों और शंकाओं ने उन्हें घेर लिया हैं कि वे अपनी ही दृष्टि में अपात्र बन गये हैं।

इसप्रकार राम आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक होने के कारण वर्तमान युगीन मनुष्य की भाँति संशयग्रस्त, द्वंद्वग्रस्त, युद्ध से विन्मुख, पत्नी विरह की पीडा में व्याकुल दिखाई देते हैं।

*** लक्ष्मण :-**

'संशय की एक रात' काव्य में लक्ष्मण का चरित्र अत्यंत उद्धत एवं कर्मण्य व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। यहाँ वे लघुमानव के रूप में चित्रित होने के बावजूद भी दृढ प्रतिज्ञ तथा पूर्णपुरुष के रूप में उभरकर सामने आए हैं। भाद्रपदीय रात्रि में राम को चिन्ता में निमग्न देखकर जब वे उनके समक्ष उपस्थित होते हैं तब वे एक आज्ञाकारी अनुज प्रतीत होते हैं। किन्तु राम को संशय की स्थिति में पाकर उन्हें निराशा होती हैं। वे उन्हें सुग्रीव द्वारा की गई सन्धि का समाचार देकर उत्साहित तथा प्रेरित करना चाहते हैं। किन्तु राम जब युद्ध से विन्मुख होकर उन्हें कहते हैं कि तुम ही निर्णय लो, तो वे राम के संशय को लेकर क्षणभर असमंजस्य की स्थिति में चले जाते हैं। उनकी समझ में यह नहीं आता कि राम किस प्रकार के संशय में उलझे हैं? राम के मन को वह कौन-सा प्रश्न मँथ रहा हैं उनकी समझ में नहीं आता। राम के प्रति उनके मन में अनन्य निष्ठा है। प्रारंभ में तो उन्हें यही लगता है कि सीता की स्मृति ने राम को व्यथित कर रखा है। सम्भवत: उन्हें जीवन निस्सार लग रहा है। वे राम की क्षमा माँगते हुए कहते हैं, ''आप मेरे बडें भाई हैं। आपके संपर्क में रहकर किसी भी प्रकार का अनुभव ऐसा नहीं होता हैं, जो हताश कर दें। ऐसी स्थिती में आपके मुख से निराशा जनक विचार सुनकर मै व्यथित हो गया हूँ।'' लक्ष्मण को जब इस बात की प्रतीति होती हैं कि राम युद्ध से बचना चाहते हैं तब वे राम से कहते हैं -

''संधि या कि युद्ध

\+ + +

मात्र विवशता नहीं हैं।

नही हैं हम

\+ + +

अंधे हाथों के।''

लक्ष्मण राम को समझाते हुए कहते हैं कि वे स्वयं कितने भी लघु अथवा सामान्य क्यों न हों किन्तु कर्म द्वारा प्रेरित उनका स्वत्व सार्थक हैं। यहाँ लक्ष्मण कर्म तथा शक्ति के दुर्दम्य, जिजिविषा और एकनिष्ठा वर्चस्व के प्रतीक बन गए हैं। उनके उद्धत पैरों में संकल्पित प्रज्ञा है, वर्चस्विनिष्ठा है, उत्सर्गित इच्छा है। जब राम स्वयं को शव में चुभें हुए बाण की भाँति महत्त्वहीन मानने लगते हैं और इतिहास के हाथों बाण बनने की अपेक्षा, अंधेरे में यात्रा करते हुए खो जाना ही अपनी नियति समझते हैं। तब लक्ष्मण इस नियतिवादी दृष्टिकोण का विरोध करते हुए 'वर्चस्वी निष्ठा' और 'स्वत्व ही स्वत्व है हमारा कर्म' की अवधारणा उनके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। कर्मवाद का यही प्रखर दृष्टिकोण लक्ष्मण ने राम के सामने रखा हैं। वे स्वयं को किसी अदृश्य, अंधे हाथों के परिचालित यंत्र नहीं मानते। संभव है अपने इस कर्म-पथ पर चलते हुए उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पडे।

लक्ष्मण राम को समझाना चाह रहे हैं कि हमें इस प्रकार हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। आक्रोश, प्रतिशोध और क्रोध से जलती हुई हमारी आँखो में बंधी हुई मुट्ठी में, भींचे हुए ओठों में इन उद्धत पैरों में संकल्पित प्रज्ञा है। हम अपने से बाहर चलते हैं, धूप और अंध:कार को चिरते हुए चलते हैं। हम बाधाओं और कठिनाइयों को भी सहर्ष स्वीकार कर उनको समाप्त करने की शक्ति रखते हैं। उन्हें राम की यह तर्क भावना अच्छी प्रतीत नहीं होती। उनकी वैयक्तिक समस्या समष्टिगत क्यों बन रही हैं ? उन्हें यह भी समझ में नहीं आता कि सेतुबंध का आयोजन या युद्ध का आहवान राम को कहीं व्यर्थ तो नहीं लगता ? या राम को यह दु:श्चिंता तो नहीं है कि युद्ध का परिणाम क्या होगा ? यदि ऐसा है तो उनके अग्रज उन्हें आज्ञा दें और तब अपने इस अनुज का पौरुष देखें। संभवत: उन्हें दूसरी बार सागर का मंथन करना होगा। यदि समुद्र उसमें बाधक है, तो अहस्त्य के आचमन की भाँति वे उसे सोख डालेंगे। वे राम को आश्वासन देते हैं कि अपने प्रचंड पौरुष से लंका को नष्ट कर देंगे। लक्ष्मण का भातृप्रेम उनके उद्धत पौरुष को अत्याधिक उद्दिप्त करता है। वे कर्म की चुनौती को स्वीकार कर लेंगे और यदि अग्निकुंड में भी उतरना पडे तो तत्पर रहेंगे। किंतु अपने प्रिय अग्रज के माथे पर चिंता की रेखा देखना उनके लिए असह्य है। वे राम को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके मन में यदि कोई संशय है तो वे रामेश्वरम् में ही रुक जाये। लक्ष्मण अकेले ही लंका में जाकर अपने पुरुषार्थ के बल से सीता को वापस ले आयेंगे -

''जाऊँगा

बंधु! जाऊँगा

सीता को लाऊँगा

अपने पुरुषार्थ से।''

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण का चरित्र भ्रातृस्नेह, वर्चस्वीनिष्ठा, अदम्य कर्मभावना और अजय पौरुष का आगर है।

मध्यरात्रि में जब युद्ध हो या नहीं इसका निर्णय करने के लिए युद्ध परिषद की बैठक होती है तब राम का यह कथन सुनकर की सीता हरण राम की नितांत वैयक्तिक समस्या हैं। लक्ष्मण उद्विग्न होकर हनुमान से कहतें हैं - ''सुनते हो? हनुमान प्रवीर! सुनते हो, प्रभु के निर्णय को? परितापित वाणी को!''

उपर्युक्त पंक्तियों में लक्ष्मण के भातृप्रेम के साथ-साथ राम के संशय की व्यर्थता भी प्रमाणित हो गई है। वे राम द्वारा प्रतिपादित इस बात को स्वीकार नहीं कर पातें कि वहीं अंतिम निर्णायक अथवा अंतिम मानवता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कृति में लक्ष्मण ही एकमात्र चरित्र हैं जो राम के संशय, दैन्य, आत्मग्लानि और अनिश्चय को व्यर्थ सिद्ध करते हुए अपनी अदम्य जिजीविषा, कर्म, अविचल विश्वास, वर्चस्वीनिष्ठा एवं अजय पौरुष की प्रतिस्थापना करते हैं। लक्ष्मण क्षण-जीवीता में विश्वास रखते हैं। राम की भाँति अनागत की आशंका-कुशंका उन्हें ग्रस्त नहीं करती। वर्तमान में जीने की ललक और वर्तमान के महत्त्व से ही वह परिचित हैं। 'संशय की एक रात' में लक्ष्मण का चरित्र कर्मवाद के प्रखर व्याख्याता के रूप में अवतरित हुआ है।

*** हनुमान :-**

हनुमान राम कथा के एक अनिवार्य चरित्र हैं। किंतु पूर्ववर्ती काव्य की भाँति संशय की एक रात में उनका चरित्र केवल परंपरा पोषित आदर्श सेवक का ही नहीं रह गया है, वरन् युगीन दृष्टि की सापेक्षता के

अनुसार कवि नरेश मेहता ने उनके चरित्र का पुन: संस्कार किया है। इस कृति में चित्रित हनुमान तुलसीदास द्वारा वर्णित केवल आज्ञाकारी सेवक न होकर एक ऐसे सेवक के रूप में व्यक्त हुए हैं, जिसका व्यवहार अपने स्वामी से मित्रवत् हैं। इसलिए वे राम के द्विधाग्रस्त संशयी मन को कर्म एवं पौरुष की ओर प्रेरित करते हैं। जब उन्हें यह ज्ञात होता हैं कि सीता-हरण को राम केवल अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं, तब उन्हें अपने स्वामी का यह तर्क मिथ्या प्रतीत होता हैं। उनका यह मानना हैं कि यदि सीता-हरण राम की व्यक्तिगत समस्या होती तो, कोटि-कोटि जनों का यह समूह युद्ध की अभिलाषा लेकर रामेश्वरम् में क्यों एकत्रित होता ? हनुमान इसी एक आधार को लेकर राम के अंतर्द्वंद्व को समाप्त करना चाहते हैं कि जिस उद्देश्य की पूर्ति हेतु करोडों सामान्य जन इंद्र के कठोर वज्र की शक्ति को लेकर अभियान में प्रस्तुत हैं, वह राम की निजी समस्या हो ही नहीं सकती।

लक्ष्मण की तरह ही हनुमान भी लहुमानव में निहित अदम्य जिजीविषा शक्ति एवं निष्ठा के प्रतीक पुरुष हैं। कवि नरेश मेहता ने हनुमान को लघुमानव अर्थात् साम्राज्यवादी शोषक द्वारा प्रताडित, पीडित सामान्य मानव समुदाय के प्रखर प्रतिनिधी के रूप में चित्रित किया हैं। उनकी ओजस्वी वाणी में शोषित मानव समुदाय की पौरुष से युक्त साहसी निष्ठा मुखरित हुई है। हनुमान का यह मानना है कि लघु मानवों को यह अजेय शक्ति, यह अपूर्व निष्ठा और यह अमित साहस राम ने ही प्रदान किया हैं। राम ही आहवान के परिणाम स्वरुप काली-दुबली, मटमैली देहोंवाले यह बौने प्रथम बार जाग उठें हैं। अपने सारे जातीय राग-द्वेष, प्रादेशिकता का परित्याग कर महासेतु का निर्माण कर रहें हैं, जो हनुमान की दृष्टि का प्रथम आश्चर्य और मानव के विद्रोह भाव का प्रथम किन्तु अद्भुत प्रतीक है।

हनुमान की दृष्टि में सीता न केवल राम की पत्नी हैं बल्कि करोडों सामान्य लोगों के लिए वे उनकी अपहृत स्वतंत्रता का प्रतीक है। वे राम से कहते हैं -

''हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल,

प्रतीक है -

रावण अशोक वन की सीता हम साधारण जनों

की अपहृत स्वतंत्रता।''

हनुमान अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञ है। लेकिन उसके पीडित और दलित जनसमूह के प्रवक्ता के रूप में उनकी भाव-भावनाओं को वे अभिव्यक्ति देते हैं। जिससे यह स्पष्ट होता हैं कि शोषित साधारण जन अब केवल राम के माध्यम से ही अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को पुन: प्राप्त कर सकते हैं। हनुमान राम को यह बताना चाहतें हैं कि सामान्य जन तथा वे स्वयं भी कभी युद्धप्रिय नहीं रहें। किंतु वे साम्राज्यवादियों की कुटिल नीतियों द्वारा प्रदत्त वानर पद से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे हैं। हनुमान युद्ध की अनिवार्यता से राम को अवगत कराते हुए कहते हैं कि सीता का उद्धार केवल उन्हीं की समस्या नहीं हैं, अपितु वह स्वतंत्रता का प्रतीक मात्र है। वास्तव में यह अत्याचार के दमन की एक सामूहिक समस्या है, जिसका निदान केवल एक युद्ध है।

हनुमान की दृष्टि में जो अनुचित है, उसका प्रतिकार केवल समय ही कर सकता है और कोई नहीं। हनुमान शोषितों, पीडितों और प्रताडितों के प्रतिनिधि हैं। इसलिए जब राम जैसा पौरुष संपन्न व्यक्ति उन्हें मिला तब वे अपनी संपूर्ण श्रद्धा एवं आस्था उन्हें समर्पित कर देते हैं। सीता को भी वे माता मानकर स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में देखते हैं।

इस प्रकार हनुमान राम भक्त होते हुए भी प्रस्तुत कृति में दलित, पीडित वानर समूह के प्रवक्ता के रूप में चित्रित हैं।

*** विभीषण :–**

'संशय की एक रात' कृति में विभीषण राम ही की तरह एक खंडित व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने आते हैं। विभीषण का यह खण्डित व्यक्तित्व तथा नियतिबद्ध मूल्य के प्रति विद्रोह इतिहास का एक ज्वलंत प्रश्न है। वाल्मीकि में इसका समाधान केवल राजनैतिक है। तुलसी ने भक्ति के मूल्य को सर्वोपरी मानकर विभीषण को भक्त बनाकर समाधान पा लिया है। लेकिन इस प्रबंध में विभीषण के चरित्र के साथ यह सुविधा नहीं हैं। जिस युग में संशय की एक रात लिखी गई है, वह युग मानव मूल्यों के अन्वेषण का युग होने के कारण युद्ध और शांतिम व्यष्टि और समष्टि आदि का विवेचन, विश्लेषण में हुआ हैं।

राम जिस प्रकार सीता हरण की समस्या से उभरने के लिए युद्ध की अनिवार्यता को लेकर संशयग्रस्त हैं, उसी प्रकार युद्ध को लेकर विभीषण के मन में भी थोडा–बहुत द्वंद्व दिखाई देता है। विभीषण के लिए युद्ध दर्शन बन जाता है। क्योंकि वह अंतिम मार्ग बनकर उसके सामने आता है। उनका यह मानना हैं कि ''काम''यह सामूहिक अंधता है, तथा ''संशय'' वैयक्तिक अंधता है। विभीषण के सामने समस्या यह है कि वह काम को वैयक्तिक और संशय को सामूहिक रूप कैसे दें? इसीलिए युद्ध की अनिवार्यता विभीषण का विकल्प बन जाती है। राम ही की तरह विभीषण के मन में भी एक–दूसरा अप्रमाणित व्यक्ति जन्म लिए हुए है। खण्डित व्यक्तित्व का यह समाधान विभीषण को दुर्भाग्यपूर्ण सौभागी युग के चिंतन के रूप में भोगना पडता है। विभीषण का संशय विकल्प के बाद उसकीए नियति बन जाता है। राम अपने संशय को अपनी नियति न मानकर सामूहिक नियति या सामूहिक विकल्प में बदलना चाहते हैं। विभीषण का संशय उसकी नियति बनकर बार न बार उसे संघर्ष की प्रेरणा देता है। राम जब अपने संशय को सामूहिक निर्णय के विकल्प में बदल देते हैं तो नि:संग हो जाते हैं और उनके आधे व्यक्तित्व का अधूरा मन उस नि:संगता को पा लेता हैं जो बराबर यह कहता हैं –

''अब मैं निर्णय हूँ सबका, अपना नहीं, क्योंकि अब मैं निर्णय हूँ, व्यक्ति नहीं।''

निर्णय तो विभीषण के खण्डित व्यक्तित्व और विभाजित आस्था ने भी लिया था लेकिन विभीषण का निर्णय यह नि:संगता इसलिए नहीं अपना पाता है, क्योंकि वह निर्णय के साथ संदर्भो में बदल देता है। लंका का न होकर राम का हो जाता है।

प्रस्तुत कृति में अभिव्यक्त विभीषण का संशय लंका की अजन तांत्रिक प्रकृति के प्रति विद्रोह है। जब कि राम का संशय एक व्यक्ति की गंभीर आस्था–अनास्था के बीच व्यवस्था की अकुलाहट है। राम व्यवस्था के लिए बैचेन हैं और विभीषण गलत व्यवस्था अस्विकार कर बैचेन है। इसलिए व्यवस्था का आभास मिलने पर वे राम की तरह नि:संग नहीं हो सकते क्योंकि विभीषण की प्रकृति मूलत: विद्रोह की प्रकृति है। विभीषण में अपने व्यक्तित्व को उठाकर एक तरफ रख देने की सुविधा ही नहीं है क्योंकि उनका निर्णय अकेले का निर्णय हैं।

संक्षेप में नरेश मेहता ने विभीषण को युद्ध को लेकर विभीषण के अंतर्मन में हो रहीं उलथ–पुलथ को सशक्त शब्दों में शब्दबद्ध किया है।

३.३.४ 'संशय की एक रात' में अभिव्यक्त समस्याएँ :-

नरेश मेहता द्वारा लिखित 'संशय की एक रात' यह खण्डकाव्य समस्याओं की एक मंजूषा की तरह है, जिसकी प्रत्येक पंक्ति से एक समस्या टपक रही है। समग्र कृति में प्रश्न ही प्रश्न हैं और इनसे निर्मित हुआ है-संशय का एक दुर्बेध व्यूह। राम इस व्यूह में उलझ गये हैं। यद्यपि लक्ष्मण और हनुमान आदि ने इस व्यूह को तोडने का अथक प्रयास किया है। किंतु राम का आधा व्यक्तित्त्व इन समस्याओं से अंततक मुक्त नहीं होता।

प्रस्तुत कृति में नरेश मेहता ने वर्तमान युगीन समस्याओं को केन्द्र में रखकर उसके अनुरूप राम के चरित्र को ढाला है। खण्डकाव्य के नायक राम के सामने वैयक्तिकता तथा सार्वजनिकता, युद्ध और शांति, विराटत्व के साथ-साथ लघुत्व का बोध, एकात्मिक आत्ममंथन और सामूहिक दायित्वबोध, आधुनिक युग के खण्डित व्यक्तित्व तथा मूल्यों का अन्वेषण आदि समस्याएँ हैं।

*** वैयक्तिकता तथा सार्वजनिकता :-**

व्यक्ति का नितांत वैयक्तिक व्यक्तित्व भी सार्वजनिक जो सकता हैं? पूरा 'प्रबंध' इसी केंद्र पर आधारित है। राम के सामने जो बारम्बार प्रश्न उठता है वह यही है कि क्या सीता की मुक्ति सार्वजनिक हो सकती है ? वैयक्तिकता कब और किन स्थितीयों में सार्वजनिक हो सकती है और यदि ऐसा नहीं होता तो क्या उस वैयक्तिकता को व्यक्तिगत तक ही रहने दिया जाए ? उदा. व्यक्ति मर्यादा और सार्वजनिक आचरण की समस्या भी राम को संशय में डालती है। यह नितान्त आधुनिक समस्या है।

*** युद्ध और शान्ति की समस्या :-**

आलोच्य कृति की प्रधान समस्या है, युद्ध और शान्ति। प्रस्तुत कृति मूल रूप में इसी समस्या के आवर्त में घूमती रहती है। सीता को रावण ने अपहृत कर लिया है। उसकी मुक्ति हेतु युद्ध अथवा शान्ति में से किस मार्ग को चुना जाय यही प्रश्न राम के मन मानस को मंथ रहा हैं। उनका अन्तर्द्वंद्व निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा है। यद्यपि रावण से समझौता करने के अनेक प्रयास किये गये हैं लेकिन शांति के सब दूत लौटे, सौ बार इन परिस्थितियों में जबकि युद्ध ही एकमात्र अवलंब रह गया है तब भी राम शांति कामी हैं। आदर्शों के प्रति उनका अटूट विश्वास उन्हें युद्ध से विरत करता हैं जबकि लक्ष्मण और हनुमान विशुद्ध रूप से युद्ध के पक्षधर हैं। ऐसा नहीं है कि राम कायर है अथवा युद्ध की विभीषिका से भयाक्रान्त हैं। वे कहते हैं - "मैं नहीं हूँ का पुरुष, युद्ध मेरी नहीं कुण्ठा, पर युद्ध प्रिय भी नहीं।" लेकिन जब सामूहिक निर्णय ही युद्ध के पक्ष में हो तो एक व्यक्ति का निर्णय निरर्थक ही होता है। परिस्थितीयों से समझौता करके राम ने अन्ततः अपनी शान्ति कामना का गला घोटकर युद्ध का निर्णय लिया। यद्यपि अंत तक उनका यह संशय दूर न हुआ कि जो यह करने जा रहे हैं क्या वह अनुचित नहीं है? इसीलिए वे अन्त में इसी निर्णय पर आते हैं कि अब मैं निर्णय हूँ सबका अपना नहीं।"

*** विराटत्व के साथ लघुत्व के बोध की समस्या :-**

यह इस 'प्रबंध' तीसरी महत्त्वपूर्ण समस्या है। राम जिस विराटत्व की कल्पना में क्षण के विवेक को, निष्ठा और विकल्प को, कर्म और वर्चस्व को शंकित होकर अपने से अलग कर देना चाहते हैं, वहीं पर लक्ष्मण इनकी परम्परागत अर्थवत्ता में अर्थ के नये स्तर जोडते हैं। इस दृष्टि से प्रबंध में विराटत्व की असीमता और लघुत्व की सघनता को राम तथा लक्ष्मण के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। साथ ही सहजता की समस्या को हनुमान और जामवंत आदि के द्वारा व्यक्त किया है। राम का विराटत्व व्यक्ति एवं सार्वजनिक की सुविधा में हैं, इतिहास की प्रतिबद्धता और इतिहास के मुक्ति के संघर्ष में हैं तथा युद्ध और

शान्ति के विकल्प के संत्रास में हैं। हनुमान और जामवंत, लक्ष्मण के समर्थक हैं लेकिन अपनी सहज प्रज्ञा के कारण लक्ष्मण के विशिष्ट दायित्वबोध के आधार पर नहीं।

*** एकान्तिक आत्म-मंथन और सामूहिक दायित्व-बोध की समस्या :-**

यह प्रबंध की चौथी समस्या है। जिसे कवि ने बडी गंभीरता तथा कलात्मक विवेक एवं संयम के साथ प्रस्तुत किया है। 'संशय की एक रात' में राम इसी समस्या से घिरे हुए हैं। राम जी सम्पूर्ण संवेदना की विशिष्टता यह हैं कि जब वह एकान्तिक होती है, तो सामूहिकता से ओत-प्रोत होती हैं और जब जीवन्त सामूहिकता को स्वीकारती हैं तो नितान्त एकान्तिक हो जाती है। इन दोनों परस्पर विरोधी स्थितियों का समाधान ही प्रबन्ध तथा कवि की समस्या है। यह समस्या इतिहासगत राम की नहीं रही है लेकिन यह समस्या नरेश मेहता के राम की हैं क्योंकि वह संक्रमण काल के जागरूक कवि हैं।

*** आधुनिक युग के खण्डित व्यक्तित्व की समस्या :-**

प्रस्तुत समस्या को बडी तीव्रता के साथ प्रबंध में उठाया गया है। समाज में जैसे-जैसे अभिजात्य तत्त्वों का विकास होता जाता हैं वैसे-वैसे मानव आचरण के विधेय भी तद्नुरूप जटिल होते जाते हैं। मानव चेतना की आदिम स्थिती बहुत कुछ सीधी या प्रकृत अनुभूतियाँ थी। उनमें तराश नहीं थी क्योंकि सारी मानवीय चेतना एक सीधी रेखा के समान चलती थी। जीवन में तराश के स्थान पर कुछ व्यावहारिक रुढियाँ थी, जिन्हें पूरा कर देने के बाद व्यक्ति अपने आपको मुक्त समझता था। वाल्मीकि और तुलसी की रामायण में राम का व्यक्तित्व जटिल नहीं हैं इसलिए वह कथ्य सम्भव है। जबकि इसके विपरीत आज की चेतना कई धरातलों पर एक साथ आचरित होती हैं। अनेक रूढियों का स्थान मूल्यों ने ले लिया हैं और एक स्थिती में दो विरोधी मूल्य भी एक-दूसरे से टकराते हैं। इसीलिए जब नरेश मेहता पौराणिक राम को अपने कथा-सन्दर्भ में बैठाते हैं तब आज के मनुष्य की ही भाँति कहते हैं - 'दो सत्य, दो संकल्प, दो-दो आस्थाएँ व्यक्ति में ही अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो गये हैं।'

*** मूल्यों के अन्वेषण की समस्या :-**

जिस युग में 'संशय की एक रात' लिखी गयी है। वह युग मानव-मूल्यों के अन्वेषण का युग है। खण्डकाव्य के समस्या यह है कि कैसे उन मूल्यों का अन्वेषण किया जाए, जिनके कारण संपूर्णता की आज के सन्दर्भ में सार्थकता प्रदान की जा सके। मूल्यों का यह ऊहापोह तथा निरर्थकता-सार्थकता का बोध, मूल्यों के अन्वेषण तथा पुरान्वेषण की प्रेरणा देते हैं। यह पुनर्मूल्यांकन की समस्या मुख्यत: दो पात्रों के तीव्रत्तम रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। एक राम तथा दूसरे विभीषण।

राम के इस चिन्तन में परम्परा, इतिहास और मानव-विशिष्टता को लेकर जो बैचेनी हैं, वह एक पदस्थ व्यक्तित्त्व की जिज्ञासा हैं, जो अपने से डिगना नहीं चाहता। विभीषण में यही संशय एक विस्थापित व्यक्तित्व की समस्या बनकर प्रस्तुत होता है।

*** व्यष्टि और समष्टि की सत्ता का प्रश्न :-**

इस कृति में यह भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या उठाई गई हैं कि क्या समष्टि अथवा सामूहिक निर्णय के सामने व्यक्तिगत विचारों का कोई महत्त्व नहीं हैं। यह समस्या केवल राम की समस्या नहीं हैं, वरन् आधुनिक युग में रहनेवाले और अकेलेपन की अनुभूति करनेवाले प्रत्येक चिन्तनशील व्यक्ति की समस्या हैं। राम का व्यक्तित्व शान्ति कामी होते हुए भी सामूहिक निर्णय से असम्पृक्त नहीं रह सका, यद्यपि वे चाहते तो अपना निर्णय समूह पर थोंप सकते थें। सम्भवत: यह आज के व्यक्ति की नियति बन गयी है कि उसे समष्टि द्वारा प्रतिपादित निर्णयों को स्वीकृति देनी ही होगी। व्यष्टि और समष्टि परस्पर आश्रित है। व्यक्ति

के बिना समाज का अस्तित्व नहीं और समाज के बिना व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं।

इस प्रकार नरेश मेहता ने प्रस्तुत कृति में पौराणिक कथानक के माध्यम से कई आधुनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला हैं।

३.३.५ काव्य कला :-

रामकथा एक पौराणिक आख्यान हैं किन्तु कवि नरेश मेहता ने उस आख्यान में से एक ऐसे प्रसंग को अपनी काव्य प्रतिभा से एक खण्डकाव्य का रूप दे दिया है, जिस प्रसंग को अन्य कवियों ने महत्त्वहीन समझकर, उपेक्षित कर दिया था। प्रस्तुत कृति में कवि ने राम को देवत्व से हटाकर पार्थिव भूमिपर चित्रित किया हैं और उन्हें परस्पर विरोधी विचारों और आस्थाओं से युक्त एक खण्डित व्यक्तित्व प्रदान किया हैं। यह कवि मनोवैज्ञानिक धरातल पर सम्पन्न हुआ है, जिसमें युद्ध और शान्ति, व्यष्टि और समष्टिगत परस्पर विरोधी आचार संहिताओं का द्वंद्व चित्रित हुआ है।

काव्यकला की दृष्टि से मूल्यांकन करते समय प्रस्तुत कृति के कलापक्ष, भाषाशैली, मुक्तछंद, दार्शनिकता और नामकरण की सार्थकता आदि मुद्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा।

*** कलापक्ष :-**

यद्यपि प्रस्तुत कृति को कवि ने खण्डकाव्य के नाम से अभिहित किया है किन्तु यदि खण्डकाव्य के लक्षणों की दृष्टि से आलोच्य कृति की परीक्षा की जाय तो उस यह शत-प्रतिशत खरी नहीं उतरती। केवल सर्गबद्धता ही खण्डकाव्य का गुण नहीं हैं जैसा कवि ने किया हैं। डॉ. कृष्णदेव शर्मा के मतानुसार प्रस्तुत कृति के लिए यदि कोई उपयुक्त शब्द हो सकता हैं तो वह ''नाट्यरूपक'' है। वे ऐसा इसलिए भी मानते हैं कि प्रत्येक सर्ग के आरंभ में रंगमंच के उपयुक्त वस्तु निर्देश दिया गया है। प्रत्येक कथन कवि के शब्दों में न होकर पात्रों के शब्दों में हैं। संपूर्ण कृति को पढते समय हमें ऐसा लगता हैं कि हम श्रव्य काव्य न पढकर किसी दृश्य का आस्वादन कर रहे हैं।

*** भाषाशैली :-**

आलोच्य कृति की भाषा गरिमामयी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है। बावजूद उसके यत्र-तत्र प्रयुक्त तद्भव शब्दों ने विभिन्न चरित्रों के भाव-सम्प्रेषण में महनीय योगदान दिया हैं। 'अनुखन', 'पाखियों', 'पोर-पोर' आदि शब्दों का प्रयोग इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं जो अपनी तद्भावना से आकर्षित किये बिना नहीं रहते। दूसरी ओर कवि ने कुछ शब्दों के अन्त में भावार्थ प्रत्ययों का निस्संकोच प्रयोग किया हैं। जैसे-प्रदत्तो, असत्कारित, असम्पृक्ति, प्रतीति आदि। कवि के इस प्रयोग ने जहाँ भाव संप्रेषणीयता को एक नवीनता प्रदान की है, वहाँ भाव गाम्भीर्यता में भी एक गति दी है। यद्यपि इस नवीनता के दुराग्रह ने शबद दोषों की भी सृष्टि की हैं जो व्याकरण की दृष्टि से सम्मत नहीं कहे जा सकते।

प्रस्तुत कृति की एक अन्य भाषागत विशेषता है उसकी चित्रमयता। चित्रमयी भाषा के प्रयोग में कवि को नितांत सफलता मिली हैं। कवि का प्रत्येक शब्द एक चित्र खडा कर देता है। इससे कई स्थलों पर तो अत्यन्त सुन्दर बिम्बों की भी अवतारणा हो गयी हैं। जहाँ तक शैली का प्रश्न है सर्वत्र अलंकृत शैली का ही वर्चस्व है। जिससे काव्यात्मक रसनुभूति होती है। एक खण्डकाव्य के लिए ऐसी भाषा होना गरिमायुक्त ही है।

* **मुक्तछन्द का प्रयोग :-**

'संशय की एक रात' में कवि नरेश मेहता ने न्याय और सांख्य दर्शन का समाहार किया है। न्याय दर्शन में संशय, तर्क तथा अंत में निर्णय की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। प्रस्तुत कृति में यही संशय और निर्णय व्याख्यायित हुए हैं किन्तु लेखक ने उनका समायोजन आधुनिक दृष्टि से किया है। विभिन्न पात्रों के तर्क-वितर्क राम के संशय के समाधान बनने में सहायक हुए हैं और राम यह निर्णय देते हैं कि युद्ध होना चाहिए।

द्वितीय सर्ग में दशरथ की छाया जिस 'बृहद विराट चक्र' का उल्लेख करती है उसमें वेदों के ऋतु विषयक विचार ही प्रतिभासित होते हैं। जटायु के उपदेश में सांख्य दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। विभीषण द्वारा कहे गये 'नितांत एकत्व' नयी कविता के अकेलेपन के एहसास से मिलता-जुलता तर्क है। जो आधुनिक दृष्टिकोण का परिचायक है। उसी प्रकार लघुमानव तत्व और क्षणजीविता भी नयी कविता की देन है। आज मानव अपने को सांसारिक सुख-दुःखों, प्रयत्नों-विफलताओं, क्षमताओं-विवशताओं में अपने को नितात्न बौना अनुभव करता है। इसी प्रकार से क्षणजीविता में वर्तमान में जीने की ललक दिखाई देती है।

प्रस्तुत कृति को ''संशय की एक रात'' शीर्षक देकर कवि ने प्रमुख पात्र राम के संशय को व्यवस्थित महत्ता देने का प्रयास किया है। यद्यपि कुछ लोगों का यह मानना है कि शीर्षक से राम का महिमामण्डित व्यक्तित्व शुद्र अथवा हीन हो जाता है। अच्छा होता कि शीर्षक ''राम का संशय'' होता। किन्तु वे वह भूल जाते हैं कि राम का जो रूप प्रस्तुत कृति में रूपायित हुआ हैं, वह केवल प्रतीक है अधुनातन खण्डित व्यक्तित्ववान मनुष्य का; जो कुण्ठाओं, विषमताओं, टूटने बनते मूल्यों और व्यवस्थाओं के दुर्निवार शिंकजे में फँसा छटपटा रहा है।

इस प्रकार नरेश मेहता की कृति 'संशय की एक रात' के कलापक्ष को हम सफल कला मान सकते हैं।

३.३.६ नई कविता में 'संशय की एक रात' का स्थान :-

हिन्दी में नई कविता का आरम्भ अज्ञेय द्वारा सन् १९४३ में संपादित 'तारसप्तक' से माना जाता है। आरंभ में इसे प्रयोगवादी कविता की संज्ञा दी गई। इसे प्रयोगवादी इन अर्थो में कहा गया कि यह कविता परम्परागत शैली से सर्वथा भिन्न थी। इस कविता ने हिन्दी काव्यधारा को एक नया मोड़ दिया था, पाठकों चिन्तन के लिए एक नई सामग्री दी थी। यह कविता केवल मनोरंजन के लिए नहीं अपितु प्रबुद्ध पाठक की समूची चेतना को झंकृत करने के उद्देश्य से लिखी जाती थी। सन् १९५२ में जब 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ तब से इसे नई कविता का नामाभिधान प्राप्त हो गया।

नई कविता का विश्लेषण करने पर उसकी अनेक विशेषातओं का निर्धारण किया गया। इसमें अवसादग्रस्त व्यक्तित्व की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों को स्वर प्रदान करके कविता के एक अनछुए आयाम को स्पर्श किया जाता है। परम्परागत कविता में केवल उदात्त और महान भावों-विचारों की ही अभिव्यक्ति होती थी किन्तु नई कविता में मनुष्य के लघुतम और हीनतम विचारों को भी अभिव्यक्ति मिल गई। इसमें आस्था-अनास्था, आशा-निराशा के मिले-जुले चित्र प्रस्तुत किए जाने लगे। इसकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमें किसी भी प्रकार के काव्यात्मक अनुशासन और परम्परागत वस्तु एवं शैली का खुलकर

तिरस्कार किया गया। इस कारण इसमें वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से नवीनता थी। इस काव्य चेतना में स्पष्टत: दार्शनिक मतवाद की प्रतिछाया नहीं दिखाई पडती तथा वस्तुचयन और अभिव्यक्ति प्रणाली में अतिशय प्रतीकों तथा अप्रस्तुतों के प्रयोग की ललक भी इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। इन कवियों में परस्पर दृष्टिकोण की प्रचुर भिन्नता थी और समानता केवल इतनी ही थी कि वे सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते थे और प्रयोग के माध्यम से कविता का सत्य खोजने का प्रयास करते थे।

नई कविता की इस पृष्ठभूमि में 'संशय की एक रात' किंचित अलग सी पहचान बनाए हुए है। नरेश मेहता स्वयं एक जगह पर लिखते हैं कि एक तरफ इस कविता में निराशा, अनास्था, आशा, साहस, उत्साह एवं संकल्प की ध्वनियाँ भी सुनाई पडती हैं तो दूसरी तरफ जिजीविषा तथा नवयुग के अभ्युदय की आशा भी इसमें अभिव्यक्त हुई है। एक अन्य स्वर भी है, वर्तमान स्वर से तीव्र असंतोष की भावना। वह असंतोष आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि कई कारणों से प्रस्तुत है और कहीं नितान्त वैयक्तिक तो कहीं लोक से सम्बद्ध है। इस असंतोष की भावना ने प्राय: व्यंग का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। युद्ध और शान्ति तथा अन्याय प्रवृत्तियाँ नए कवि को आकर्षित करती हैं और उनपर चुभते, मार्मिक व्यंग कसता हैं।

नरेश मेहता की कविताएँ नई कविता का अंग होते हुए भी किंचित् नए स्वर को ध्वनित करती हैं। वे मनुष्य की लघुता से परिचित हैं किन्तु फिर भी वे उसे खण्डित रूप में देखने को इच्छुक नहीं हैं। वे मनुष्य को उसके समग्र रूप में, उसकी समग्र उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में ही देखने के अभिलाषी हैं।

मनुष्य के जीवन और चरित्र को लेकर एक तटस्थ और सर्वथा निष्पक्ष दृष्टि का परिचय नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' खण्डकाव्य में दिया हैं। उनकी यह अपेक्षा हैं कि नया मनुष्य श्रम और साधना के मार्ग पर चलकर स्वयं नवरचना करता रहे। उन्हें विश्वास हैं कि मनुष्य का भविष्य सुखमय होगा। कवि मानवता के श्रेष्ठतम का उपासक हैं। 'संशय की एक रात' मे चित्रित राम मनुष्य के इसी श्रेष्ठ अंश को जागृत करने को आतुर हैं। वे कहते हैं –

''मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु

मानवता में श्रेष्ठ जो विराजा हैं

उसको ही

हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु।''

विषय के दृष्टि से ही नहीं, शिल्प की दृष्टि से भी नरेश मेहता की कविता में नयापन दिखाई देता हैं। उनकी कविताओं में जहाँ एक ओर क्लासिकल शैली के प्रति मोह हैं वहाँ अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों के प्रति भी उतना ही मोह दिखाई देता हैं। 'संशय की एक रात' में निस्संदेह क्लासिकल शैली का ही निर्वाह हुआ है किन्तु अनेक कविताओं में कवि ने अंग्रेजी के प्रचुर शब्दों का प्रयोग किया हैं। अलंकार में मेहता ने रूपक और उपमा का अत्याधिक प्रयोग किया हैं। उनकी उपमान योजना में भी एक नवीनता आ गयी है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मेहता की गणना हिन्दी के ऐसे नवीन कवियों में की जाती हैं जिन्होंने जीवन और जगत् से जुडे हुए विभिन्न प्रश्नोंपर नितांत नई दृष्टि से विचार किया हैं। युद्ध और शान्ति, व्यष्टि और समष्टि तथा उसीसे जुडी हुई अनेक सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं को कवि ने आधुनिक संदर्भों में व्यक्त किया हैं। उनकी कविताएँ प्रबुद्ध पाठक की समस्त चेतना-शक्ति को उद्‌बुद्ध करने में सर्वथा समर्थ दिखाई देती हैं।

३.३.७ 'संशय की एक रात' शीर्षक की सार्थकता :-

शीर्षक से किसी भी साहित्यिक कृति की महत्वपूर्ण पहचान होती है। उस पर से कृति के आशय और विषय का अनुमान लगाया जाता है। इस कारण कोई भी साहित्यकार अपनी कृति का नामकरण अत्यंत सोच-समझकर सुविचारित ढंग से करता है। डॉ. कृष्णदेव शर्मा के मतानुसार कृति के नामकरण के अनेक आधार हो सकते हैं जैसे कि कृति में वर्णित कोई महत्त्वपूर्ण घटना, कोई विशेष पात्र अथवा ऐसा ही कोई अन्य आधार। नामकरण की एक अन्यतम विशेषता यह होती है कि वह चित्ताकर्षक होने के साथ-साथ साहित्यिक कृति की अन्तर्वस्तु का परिचायक भी होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी भी कृति के शीर्षक के उच्चारण मात्र से कृति के भीतर वर्णित सामग्री, कथा का किंचित् आभास हो जाना चाहिए। इस कारण बहुत बार शीर्षक देते समय या तो केंद्रीय पात्र को प्रमुखता दी जाती हैं या केंद्रीय घटना तथा समस्या को प्रधानता दी जाती हैं। बहुत बार परिवेश तथा कृति के लेखन के पीछे निहित उद्देश्य को प्राथमिकता दी जाती है।

प्रस्तुत खण्डकाव्य को कवि नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' शीर्षक दिया हैं। संपूर्ण खण्डकाव्य के केंद्र में राम का संशयी मन है। रावण के विरुद्ध युद्ध करने से पूर्व श्रीराम नाना प्रकार के संशयों में जकडे हुए हैं। सीता का हरण हुआ है किन्तु वे यह सोचते हैं कि यह तो उनकी व्यक्तिगत समस्या हैं और इस कारण वे यह नहीं चाहतें कि उनकी व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए ऐसा युद्ध खेला जाय जिसमें सहस्त्रों निर्दोष नागरिक अपने प्राणों की आहुति दें। इसलिए उनके मन में संशय निर्माण होता हैं कि मेरी व्यक्तिगत समस्या के निवारण हेतु समस्त वानरों की जान खतरें में डालना कहाँ तक उचित हैं। संपूर्ण अन्तर्कथा में मूल कथ्य राम का संशय होने के कारण प्रस्तुत कृति का नाम सर्वथा उचित भी लगता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम को कवि ने आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक रूप में चित्रित किया हैं। इस कारण आधुनिक मनुष्य जिस प्रकार संशय के घेरे में फंसा हुआ दिखाई देता हैं, उसी प्रकार राम भी संशय के शिकार हो गए हैं। सामान्य पाठक के लिए श्रीराम एक व्यक्ति नहीं अपितु शील, शक्ति और सौंदर्य का प्रतीक हैं। साक्षात् भगवान हैं। नरेश मेहता ने राम के इस महान गरिमापूर्ण रूप को घटाकर एक सामान्य मनुष्य के प्रतिनिधित्व के रूप में चित्रित किया हैं। इसी कारण वे राम को संशयों में जकडा चित्रित किया हैं। यही कारण है कि वल्मीकि और तुलसी के राम की तुलना में नरेश मेहता के राम भिन्न स्तरों पर प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं। तुलसी के राम सर्वशक्तिमान हैं तो नरेश मेहता के राम कहते हैं कि -

''मैं केवल युद्ध बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु

मानव में जो श्रेष्ठ विराजा हैं

उसको ही

हाँ उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु।''

वस्तुत: नरेश मेहता राम को आधुनिक मानव की संशयग्रस्त चेतना के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करना चाहते हैं और कदाचित् इसीलिए उन्होंने प्रस्तुत खण्डकाव्य को ऐसा शीर्षक दिया हैं जो कि श्रीराम की महत्ता का नहीं, उनकी लघुता का परिचायक हैं। लेखक श्रीराम के भीतर पल रहे संशय का सर्वोपरि महत्त्व देना चाहते हैं।

प्रस्तुत खण्डकाव्य का पूरा शीर्षक ''संशय की एक रात'' है। संशय के संबंध में तो ऊपर विचार कर लिया गया हैं। प्रस्तुत काव्य नाटक में राम का यह संशय सारी रात चलता है अर्थात् सीता हरण की समस्या से छुटकारा पाने हेतु रावण से युद्ध किया जाए अथवा न किया जाय इस प्रश्न पर वे पूरी एक रात

विचार करते हैं और अन्ततः वीरों, सामन्तों को युद्ध करने की अनुमति दे देते हैं। क्योंकि युद्ध संबंधी मंत्रणा में पूरी एक रात व्यतीत हो गई इसीलिए कवि ने प्रस्तुत खण्डकाव्य को ''संशय की एक रात'' शीर्षक दिया है जो कि सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है।

वस्तुतः प्रस्तुत काव्य-नाटक के पात्रों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राम हैं और राम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाव संशयग्रस्तता है-संशय में बिताई गई रात का सम्भवतः इतना ही महत्त्व है। डॉ. कृष्णदेव शर्मा के मतानुसार, ''यदि काव्य नाटक का शीर्षक 'संशय की एक रात' के स्थान पर 'राम का संशय' होता तो संभवतः अपेक्षतया अधिक सार्थक होता। सच तो यह हैं कि प्रस्तुत काव्य नाटक में राम का संशयग्रस्त होना ही सर्वाधिक महत्तपूर्ण घटना हैं और इसी घटना के चारों ओर समूचा खण्डकाव्य घुम रहा है। कवि का मूल लक्ष्य यह बता जा रहा हैं कि जो राम अपने युग में सर्वशक्तिमान थे, जिनकी इच्छा के अनुरूप घटनाएँ मोड लेती थी, वहीं मर्यादा पुरुषोत्तम राम आज की परिस्थिती में इस समस्या पर किस दृष्टि से विचार करते हैं। कवि ने पौराणिक राम को आधुनिक संदर्भो में व्यक्त किया हैं और यहे कारण है कि- 'संशय की एक रात' काव्य के राम तत्काल युद्ध को तत्पर नहीं हो जाते प्रत्युत युद्ध को टालने का भरसक प्रयास करते हैं और कहते हैं-

लक्ष्मणः

मैं नहीं का पुरुष

युद्ध मेरी नहीं हैं कुण्ठा

पर युद्ध प्रिय भी नहीं

सारांशतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत खण्डकाव्य का शीर्षक निश्चय ही सार्थक है।

३.३.८ संशय की एक रात : शिल्प दृष्टि :-

'संशय की एक रात' की शिल्प योजना मूलतः एक खण्डकाव्य की है। जिसमें कथोपकथन, एकालाप, वार्तालाप और केवल आत्म-विवेचन के माध्यम से पूरी कथावस्तु के साथ नया संदर्भ जुडता चलता है। नरेश मेहता के शिल्प पक्ष में न तो ऐसा लगता हैं कि आज के युग का मनुष्य केवल पलायन के लिए इस घटना और कथानक को चुनता है और न यही प्रतीत होता है कि उन पुराण पात्रों को जबर्दस्ती निर्मूल करके आज के आधुनिक युग की अर्थहीनता के बीच लाकर खडा कर दिया गया हैं। नरेश मेहता ने दोनों को अपने-अपने संदर्भ में जैसे का तैसा रहने दिया हैं। केवल काल की दूरी को हटाकर कुछ प्रश्न, कुछ संशयों को उनके बीच बिखेर दिया हैं। यह चेष्टा की हैं कि ठीक आज के संदर्भ में यदि उन प्रश्नों को राम, हनुमान, लक्ष्मण और विभीषण के सामने रखा जाए तो क्या प्रतिक्रिया होगी ? प्रायः काल की दूरी को हटा लेने के बाद पुराण पात्र खोखले और नितान्त निष्प्राण लगते हैं लेकिन जिस शिल्प का प्रयोग नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' इस खंडकाव्य में किया उसमें यह भाव नहीं होता। प्रत्येक व्यक्तित्व अपने पात्रत्व की गरिमा लेकर ही इतिहास के अंगों और संदर्भों का साक्षात्कार करता हैं। 'संशय की एक रात' में इस शिल्प योजना की बुनावट की वह पहली शर्त उन्होंने निभायी हैं। इस शिल्प के माध्यम से राम को उनके 'विराटत्व' के साथ रामत्व से परे रख कर एक प्रश्नाकुल किन्तु विवेकशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया हैं। इतिहास की कालविहीनता के साथ उन्होंने उसको प्रश्नाकुलता जोडी है और ऐसे शिल्प की तलाश की है जिसमें एक साथ नितान्त समसामायिक और नितान्त प्राचीन के बीच वार्तालाप हो सके।

प्राचीन का स्थूलत्व स्थापत्य की तरह अपनी जगह पर है, जो आधुनिक का सूक्ष्म तत्व अपनी सूक्ष्मता में अपनी जगह पर है केवल अनुभूति को संवाहक बनाकर उन्होंने एक साथ दोनों को आत्मसात् किया हैं। इस शिल्प योजना की कलात्मकता में उन्हें सफलता मिली हैं। इस बुनावट का शिल्पगत उपयोग इस 'प्रबंध' में पूरी तरी संभव हुआ है।

लक्ष्मीकांत वर्मा के मतानुसार नरेश मेहता के शिल्प विधान के दो प्रमुख अंग हैं। एक तो बिम्बविधान द्वारा अद्वितीयता की स्थापना और दूसरे भाषा के माध्यम से उस अद्वितीय को सार्थक बनाना। चार सर्गों के इस 'प्रबंध' में स्वयं सर्गों का नामकरण ही यह बताता हैं कि कवि ने सर्गों का विभाजन विषय या घटना क्रम में नहीं किया हैं वरन् बिम्बों के क्रमिक संयोजन से उसने घटना, विषय और कथा तीनों को गुम्फित करने की चेष्टा की हैं।

आगे वे लिखते हैं कि, 'संशय की एक रात' में नरेश मेहता का काव्य-प्रतीक दो बिम्बों में व्यक्त हुआ हैं। पहला सन्दर्भ की गहनता, दूसरा अर्थ की गहनता। इस प्रबन्ध के बिम्बों में से दोनों तथ्य एक साथ सशक्त रूप में व्यंजित हुए हैं।

'संशय की एक रात' की भाषा पौराणिकता और समसामायिकता के बीच जुझती हुई चलती है। यद्यपि इनका आग्रह पौराणिकता के प्रति है लेकिन इनका रचना-संकल्प इनको आधुनिकता से पृथक् नहीं होने देता।

आलोच्य कृति की भाषा गरिमामयी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है तथापि यत्र-तत्र प्रयुक्त तद्भाव शब्दों ने विभिन्न चरित्रों के भाव-सम्प्रेषण में महनीय योगदान दिया हैं। अनुखन, पाखियों, पोर-पोर आदि शब्दों का प्रयोग इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं, जो अपनी तद्भावना से आकर्षित किये बिना नहीं रहतें। दूसरी ओर कुछ शब्दों में कवि ने अंत में भावार्थ प्रत्ययों का निस्संकोच प्रयोग किया है-जैसे-प्रदत्त, असत्कारित, असम्पृक्ति, प्रतीति आदि। कवि के इस प्रयोग ने जहाँ भाव-सम्प्रेषणीयता को एक नवीनता प्रदान की है, वहाँ भाव गाम्भीर्यता में भी एक गति ला दी है। प्रस्तुत कृति की एक अन्य भाषागत विशेषता है उसकी चित्रमयता। चित्रमयी भाषा के प्रयोग में कवि को नितान्त सफलता मिली है। कवि का प्रत्येक शब्द एक चित्र खडा कर देता है। जहाँ तक शैली का प्रश्न है, सर्वत्र अलंकृत शैली का ही वर्चस्व है, जिससे काव्यात्मक रसानुभूति होती है। एक खण्डकाव्य अथवा नाट्यरूपक के लिए ऐसी भाषा और शैली का होना गरिमायुक्त ही है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नरेश मेहता क्लासिकीय परम्परा की भाषा के समर्थक हैं। उनकी भाषा में संज्ञा से क्रिया बनाने की नामधातु प्रक्रिया हैं। नरेश मेहता की भाषा शब्दों के गुरूत्व और महिमा से अनुप्राणित हैं। भाषा के स्तर पर कहीं-कहीं पर उन्होंने तत्सम के संस्कार से तद्भाव और तद्भाव के संस्कार में तत्सम का प्रयोग किया हैं।

३.४ शब्दार्थ :- टिप्पणी

*** प्रथम सर्ग :-**

सहकार-आम	वंचक-छलिया	अनुखन-बराबर
विलोकी-देखो	प्रदत्तों-दान करो	असंशी-सम्बन्धहीन
प्रतिकृति-मूल की ही भाँति	अभिसिप्त-बांछना योग	परिचालित-निर्देशित

प्रज्ञा-चेतना वर्चस्वी-शक्तिशाली वर्चस्व-पौरूष

अभियान-आक्रमण का आयोजन प्रतिश्रुत-वचनबद्ध देहदारी-जिसकी देह जल गई हो,

अपात्री-जिसका व्यक्तित्त्व कुछ न हों पात्रता-व्यक्तित्त्व अमोही-मोहहीन

प्रज्ञात्मकता-चेतनावाली समाहित-निहित आसित-निहित

प्रज्ञित-विचारवान् वंचना-झुठलाया जाना अनास्थित-जिसके प्रति विश्वास न हों

अभिषेक जल-शिवमूत्ति के स्नान के लिए ऊपर एक जल पात्र टँगा रहता है, उस क्रिया को अभिषेक कहते है।

निर्माल्य-देवता पर चढाये गये फूल बासी हो जाने पर निर्माल्य कहते है।

※ द्वितीय सर्ग :-

भाद्रपदी - भाद्रपदवाली। नारिकेल-नारियल। वासुदेव - पीपल या अश्वत्थ।

पाखी - पक्षी। ईशान -उत्तर पूर्व का कोन। मंत्रद्वारा सिद्ध किया हुआ।

दिशाकाशी - दिशा और आकाश में। पाशित - बँधा हुआ। वात्याचक्र - आँधी

मिहीरहीना-बिना सूर्यवाली। अवैतरित-जो न तैरा गया हो।

विकल्पित-डाँवा डोलमन: स्थिती का। आप्त-सत्य - शास्त्र वचन। ऋत - सृष्टि का जो सत्य हो।

दिशाकाशी पुरुष - ब्रह्मा। समाहृत - आदरणीय। अविनश्वर - ईश्वर।

शिरस्त्राण - सिर पर पहने जानेवाली युद्ध भूषा।

कोट कंगुरों - किले के पर कोटे और छज्जे के ऊपर का हिस्सा।

त्रासदी - कष्ट देनेवाला स्थिती, अंग्रेजी के ट्रेजेडी का हिंदी रूप।

अन्तरीप - धरती का वह भाग जिसके तीन ओर पानी होता है।

※ तृतीय सर्ग :-

कुशिल - कठोर। लाघव - छोटे लोग। गुल्मभाव - टोली या कबीले की भावना।

महार्णव - महासागर। दुहिता - पुत्री। अपहृत - छीन ली गयी।

पृथुज्जन - सामान्यजन। सैन्धव - सिन्धु देश का घोडा। कशाघातित - कोडे खाये हुए।

पार्थिव पूजन - शिवपूजा की एक विशेष पद्धति जिसमें मिट्टी से शिवलिंग तैयार किया जाता है।

※ चतुर्थ सर्ग :-

पक्षाघाती - लकवे की बीमारी अर्थात् असमर्थ। तापसवेशी - तपस्वी के वेश वाला।

पिनाकजयी - शिव धनुष तोडनेवाला अर्थात् राम। अप्सरियाँ - अप्सरिएँ।

दिशाघाती - दिशा से टकरानेवाली। कवचित - कवच पहने हुए।

३.५ सारांश :-

नरेश मेहता द्वारा लिखित 'संशय की एक रात' यह खण्डकाव्य या नाट्य-रूपक पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने का एक सफल प्रयास माना जाता है। ऐतिहासिक पात्र राम को आधुनिक युग के सामान्य मनुष्य की तरह द्वंद्व में चित्रित कर कवि ने राम को देवत्व के पद हटाकर एक आम आदमी की तरह चित्रित किया हैं। संशय की एक नयी कविता के प्रतिनिधि कवि नरेश मेहता की ऐसी कृति है जिसमें चित्रित मुख्य संशय युद्ध की अपेक्षा शान्ति की सापेक्षिकता, श्रेष्ठता से संबद्ध है।

संपूर्ण खण्डकाव्य अनेक समस्याओं पर केन्द्रित है। व्यष्टि और समष्टि, युद्ध और शान्ति, विराटत्व के साथ लघुत्व का बोध, एकान्तिक आत्म-मन्थन और सामूहिक दायित्व-बोध, आधुनिक युग के खण्डित व्यक्तित्व तथा मूल्यों के अन्वेषण की समस्या।

व्यष्टि और समष्टि के द्वंद्व के कारण राम के मन में यह संशय निर्माण हो जाता है कि सीता हरण यदि मेरी व्यक्तिगत समस्या है तो उसके लिए मैं समस्त वानर सेना के प्राण क्यों खतरे में डालू। इस समस्या के माध्यम से कवि ने यह समझाने की कोशिश की है कि किन परिस्थितियों में व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन सामूहिक बन जाता है। सीता जब केवल राम की पत्नी न रहकर समस्त वानरों के स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाती है तब उसके हरण की समस्या राम की व्यक्तिगत समस्या न रहकर सामूहिक समस्या बन जाती है।

युद्ध और शान्ति की समस्या के द्वंद्व में भी राम के मन में यह संशय बढता है कि क्या विश्वास है कि युद्ध के बाद शान्ति होगी ही ? युद्ध से होनेवाली मानव हानी को लेकर राम चिंतीत हैं। कवि यह बताना चाह रहें हैं कि यह समस्या नितांत आधुनिक है। आधुनिक काल में कई प्रश्न इतने जटिल हो गए हैं कि उन्हें हल करने हेतु युद्ध किया जाए तो भी वह पूर्णत: हल होंगे ही ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। उदा. भारत-पाक, भारत-चीन, भारत-बांग्लादेश के परस्पर संबंध, कश्मीर की समस्या आदि।

३.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :-

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* 'संशय की एक रात' काव्य का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
* 'संशय की एक रात' काव्य में अभिव्यक्त समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
* 'संशय की एक रात' काव्य के प्रमुख पात्र राम की चरित्रगत विशेषताएँ बताइए।
* '' 'संशय की एक रात' काव्य में हनुमान दलित एवं पीडितों के प्रवक्ता के रूप में चित्रित हैं'' कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

ख) टिप्पण्णियाँ

* 'संशय की एक रात' शीर्षक की सार्थकता
* 'संशय की एक रात' के विभीषण
* 'संशय की एक रात' काव्य में अभिव्यक्त युद्ध और शान्ति की समस्या
* 'संशय की एक रात' की शिल्प दृष्टि

ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* 'संशय की एक रात' काव्य की सीता किसका प्रतीक है?
* सीता हरण की समस्या को राम किस प्रकार की समस्या मानते हैं?
* 'संशय की एक रात' काव्य की भूमिका किसने लिखी है?
* नरेश मेहता किस सप्तक के कवि माने जाते हैं?
* 'संशय की एक रात' काव्य में हनुमान किसके प्रवक्ता के रूप में चित्रित हैं?

घ) संदर्भ स्पष्टिकरण

* लक्ष्मण!

मैं नही हूँ का पुरुष

युद्ध मेरी नहीं हैं कुंठा
पर युद्ध प्रिय भी नही
※ ''हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल प्रतीक हैं
रावण अशोक वन की सीता
हम साधारण जनों की अपहृत स्वतंत्रता।''
※ मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु !
मानव में जो श्रेष्ठ विराजा है
उसको ही
हाँ उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु।

च) सही पर्याय लिखिए -

※ 'संशय की एक रात' में किसके मन में संशय बना हुआ था ?
(अ) सीता (ब) राम (क) रावण (ड) लक्ष्मण
※ संशय की एक रात के कवि कौन है?
(अ) अज्ञेय (ब) नरेंद्र शर्मा (क) नरेश मेहता (ड) मुक्तिबोध
※ नरेश मेहता को इ. स. १९९४ कौनसा पुरस्कार मिला?
(अ) मंगला प्रसाद (ब) भारत-भारती (क) ज्ञानपीठ (ड) साहित्य अकादमी

३.७ स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

※ आधुनिक काल में हिन्दी के अन्य कवियों द्वारा राम पर लिखे गए काव्य का अध्ययन कर विश्लेषण कीजिए।
※ आदि कवि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास के राम में और 'संशय की एक रात' में चित्रित नरेश मेहता के राम की तुलना।
※ अपने-अपने परिक्षेत्र में रामकथा की अलग-अलग मान्यताओं का संकलन कीजिए।
※ रामकथा से संबंधित लोकगीत, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का संकलन कीजिए।

३.८ संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :-

※ संशय की एक रात - श्री नरेश मेहता - लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद
※ संशय की एक रात - डॉ. कृष्णदेव शर्मा - रीगल बुक डिपो - नई दिल्ली - ६
(आलोचनात्मक अध्ययन)
※ संशय की एक रात - डॉ. अलका धनपत - सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, मोहन गार्डन, नई दिल्ली
(परम्परा और आधुनिकता)
※ नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन - प्रतिभा मुदलीयार
※ नरेश मेहता का काव्य : विमर्श और मूल्यांकन - प्रभाकर शर्मा

इकाई ४
नागार्जुन

अनुक्रम

४.१ उद्देश

४.२ प्रस्तावना

४.३ विषय – विवरण

  ४.३.१ i) प्रेत का बयान

  ४.३.२ ii) बादल को घिरते देखा

  ४.३.३ iii) भस्मांकुर

  ४.३.४ नागार्जुन के काव्य का आशय

  ४.३.५ प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ

४.४ शब्दार्थ

४.५ सारांश

४.६ स्वयं– अध्ययन के लिए प्रश्न

४.७ स्वाध्याय– क्षेत्रीय कार्य

४.८ संदर्भ– अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

४.१. उद्देश

नागार्जुन की काव्य– विशेषताओं को समझ सकेंगे।

नागार्जुन के काव्य से यथार्थ एवं जन– जीवन से परिचित होंगे।

४.२ प्रस्तावना

नागार्जुन का मुलनाम वैद्यनाथ मिश्र है। सन् १९११ ई. में तरौनी जनपद, जिला दरभंगा बिहार में हुआ और मृत्यू सन् १९९८ ई. में। शास्त्री की उपाधी प्राप्त, बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए थे। किसान आंदोलन में हिस्सा, जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाए गए आंदोलन में हिस्सा, आपातस्थिति में गिरप्तार अभावों से दीर्घकाल तक संघर्ष, व्यंग्यकार,घुमक्कड, प्रगतिशील कवि– जनकवि, उपन्यासकार, आलोचक, अनुवादक, संस्कृत,मैथिली, पाली, मराठी, गुजराती, बंगाली, सिंहली, तिब्बती,पंजाबी, सिंधी भाषा के ज्ञाता थे। साहित्य–अकादमी नई दिल्ली, भारत–भारती उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ द्वारा पुरस्कार मिले थे।

उनका साहित्य समृद्ध रहा है– काव्यरचनाएँ है –युगंधरा,सतरंगे पंखोवाली, प्यासी पथराई आँखे, तालाब की मछलियाँ, चंदना, तुमने कहा था, हजार– हजार बाँहोवाली, रत्नगर्भ, भस्मासुर, भूमिजा, चिंता,देशदशकम्, कृषकदशकम् आदि। निबंध, बालसाहित्य,अनुवाद संबंधी लेखन किया उनके उपन्यास है– रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ ,पारो, वरूण के बेटे, कुंभीपाक, हरिक जयंती आदि नागार्जुन जनवादी प्रतिनिधी कवि अतः श्रमिक वर्ग के समर्थक,पूंजीवाद के विरोधक, भुखमरी

का व्यंग्यात्मक चित्रण करनेवाले मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हैं।

४.३ विषय- विवरण

नागार्जुन की कविता युग से संवाद करती है। वे व्यवस्था- विरोधी रचनाकार है । अर्थात नागार्जुन हिंदी की प्रगतिशील धारा के कवि हैं। सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों को देखकर उनका मन आक्रोश उगलता हैं तो प्रकृति को देखकर पुलकित होता है। पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति व्यंग्य के स्वर धारदार बने हैं।स्वाधीन भारत के अभाव, भूख मरी, महंगाई अर्थात आर्थिक विपन्नता को व्यक्त करते हुए उनका क्रोध उनकी अनेक कविताओं में स्पष्ट हैं।

४.३.१ i) प्रेत का बयान -

"ओ रे प्रेत"-
कड़कर बोले नरक के मालिक यमराज
'सच- सच बतला!कैसे मरा तू ?
भूख से , अकाल से? बुखार, कालाजार से?
पेचिश, बदहजमी, प्लेग, महामारी से?
कैसे मरा तू, सच-सच बतला।'
खड़-खड़- खड़-खड़ , हड़- हड़- हड़-हड़
काँपा कुछ हाड़ों का मानवीः ढाँचा
नचाकर लंबी चमचों-सा पंचअंगुरा हाथ
रूखी-पतली किट- किट आवाज में
प्रेत ने जबाब दियाः
' महाराज! सच- सच कहूँगा, झूठ नहीं बोलूंगा
अब हम गुलाम नहीं, नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के
पूर्णिया जिला है सूवा बिहार के सिवान पर
थाना धमदाहा
बस्ती रूपउली
जात का कायथ
उमर कुछ अधिक पचपन साल की
पेशा से प्रायमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रूपैया,सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं, दो नहीं, नौ- नौ महीने
घरनी थी, माँ थी,बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर, करुणा के अवतार!
आप ही की छाया में, मैं ही बाकी
क्योंकि करमों की पत्तियाँ अभी कुछ शेष थीं।

हमारे अपने पुश्तैनी पोखर में
मनोबल शेष था सूखे शरीर में...'
'अरे वाह....'
भभाकर हँस पड़ा नरक का राजा
दमक उठी झालरें कंपमान सिर के मुकूट की
फर्श पर ठोककर सुनहुला लौह- दंड
अविश्वास की हँसी हँसा दंडपाणि महाकाल
'बड़े अच्छे मास्टर हो! आये हो मुझको भी पढ़ाने!
मैं भी बच्चा हूँ ... वाह भई , वाह!
तो तुम भूख से नहीं मरे?'
हद से ज्यादा डालकर जोर, होकर कठोर
प्रेत फिर बोल बोला -
'अचरज की बात हैं, यकीन नहीं करते आप क्यों मेरा,
कीजिए न कीजिए आप चाहे विश्वास
साक्षी है धरती , साक्षी है आकाश
और और और और और भले
नाना प्रकार की व्याधीयाँ हों भारत में
किंतु-'
उठाकर दोनों बाँह किट- किट करने लगा प्रेत-
'किंतु
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधी का पता नहीं हमको
सावधान महाराज, नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का।'
निकल गया भाव आवेश का
तदनंतर शांत-स्तिमित स्वर में प्रेत बोला-
जहाँ तक मेरा अपना संबंध हैं
सुनिए महाराज,
तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं, दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला।'
सुनकर दहाड़
स्वाधीन भारत के
भुखमरे,स्वाभिमानी,सुशिक्षक प्रेत की
रह गये निरूत्तर
महामहिम नरकेश्वर।

नागार्जुन समसामयिक परिस्थितयों एवं परिवेश के प्रति चिंतित थे। शिक्षा, राजनिती, धर्म,अर्थ आदि विषयक सामाजिक विषमता का उन्होंने खुलकर विरोध किया है। 'प्रेत का बयान' कविता में उन्होने व्यवस्था एवं परिस्थितियों से तंग आए

प्रायमरी स्कूल के मास्टर की दर्दनाक वेदना को नाटकीय ढंग से व्यक्त किया है। इस रचना में कवि ने प्रासंगिक विषय को वाणी दी है ।भूखमरी के शिकार मास्टर को नरक पहुँचाना पड़ता है। वहाँ यमराज उन्हें मृत्यु का कारण पूछते हैं।तब वे अपनी वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हैं तो यमराज उसकी मृत्यु के कारण पर खिल्ली उड़ाते हैं । मास्टर की मृत्यु भूख की समस्या एवं गंभीर व्यथा ग्रस्त जीवन जीने से हो जाती है ।नागार्जुन समाज के उन लोगों पर कड़ा प्रहार करते हैं जो सत्य से मुँह मोड़ना चाहते हैं, झूठ को महत्व देते हैं, जो यमराज की भूमिका अदा करते हैं। वास्तविकता यह हैं कि मास्टर राष्ट्र का निर्माण हैं। राष्ट्र- भवन के निर्माण एवं

नीव बनाने में पीढ़ियाँ तैयार करता है, किंतु उसे अनेक विवंचनाओं का सामना करना पड़ता है। अजय तिवारी ने नागार्जुन की कविता में लिखा हैं कि- 'भूखमरी के शिकार अतिसाधारण लोगों के प्रति रोष और घृणा एक साथ व्यक्त होती है।' नागार्जुन व्यवस्था परिवर्तन की कामना करते हैं। शोषित एवं भ्रष्ट- व्यवस्था यमराज की भूमिका अदा करते हुए जनसाधारण को नरक यात्रा के लिए

मजबूर करती हैं। कवी ने वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया हैं ।

नस्क में पहुँचे प्रेत के साथ यमराज की बातचीत हो रही हैं कठोर स्वर में नरक के मालिक यमराज ने पूछा, 'अरे, प्रेत !सच-सच बता, तू कैसे मरा?भूख से,अकाल से, बुखार से, कालाजार से, पेचिश, बदहजमी, प्लेग या महामारी से।'

तभी वह हड्डियों का,मानव का ढाँचा, अपना चमचों जैसा,लंबा पाँच उंगलियों वाला हाथ हिलाते हुए शुष्क, धीमी

आवाज में उत्तर देता हैं 'महाराज! मैं सच-सच बताऊंगा, झूठ नहीं कहूंगा। अब हम गुलाम नहीं, स्वाधीन भारत के नागरिक हैं। पूर्णिया जिले के सूबा बिहार की सीमा पर,थाना धमदाह!बस्ती रूपउली, जाति के कायस्थ, आयु पचपन साल से कुछ अधिक,पेशा प्रायमरी स्कूल मास्टर,वेतन तीस रूपैया,सो भी समय पर भी नहीं मिलता। बड़ी मुश्किल से एक नहीं, दो नहीं ,नौ- नौ महीने काटे हैं । पत्नी थी , माँ थी, चार बच्चे थे, हे दयासागर वे सभी आपकी छाया में ही आ चुके हैं।बस केवल मैं ही शेष था क्योंकि करमी की पत्तियसँ खाकर जीता था क्योंकि हमारे पुरानी पीढ़ियों के तालाब में शेष थी और सुखे शरीर में मनोबल शेष था।'

'अरे वाह...' उपहास करके यमराज हँस पड़े तब उनके सिर के मुकुट की झालरे कंपित होने लगी।फर्श पर अपना सुनहरा लोह- दंड ठोककर अविश्वास करते हुए यमराज,महाकाल हँसकर कहने लगे-'बड़े ही अच्छे मास्टर हो। मुझे भी

पढाने आए हो।मैं भी बच्चा हूँ? वाह भई वाह! तुम तो भूख से नहीं मरे?'' अधिक जोर देकर,कठोर होकर प्रेत फिर से बोला-''अचरज की बात हैं, क्यों आप नहीं मेरा यकीन करते। आप चाहे विश्वास करे याना करे, यह धरती, यह आसमान साक्षी हैं, भले ही भारत में विविध प्रकार की व्याधियाँ हो किंतु...।'' अपने दोनों हाथ उठाकर क्षीण स्वर में प्रेत ने कहा-'किंतु भूख या क्षुधा नाम की किसी व्याधी का हमें पता नहीं, सावधान महाराज,हमारे सामने फिर कभी भूख का नाम मत लेना।'कुछ क्षण बाद आवेश निकल

गया तब शांत, आश्चर्ययुक्त स्वर में वह कहने लगा -सुनिए महाराज!जहा तक मेरा अपना संबंध हैं, मुझे थोडा भी दुख नहीं पीडा नहीं, दुविधा नहीं, बड़ी सरलतासे प्राण निकले थे। पेचिश का हमला मेरी आँत सह न सकी। 'स्वाधीन भारत के भूखमरे, स्वाभिमानी सुशिक्षित प्रेत की चिल्लाहट सुनकर महामहिम यमराज निरूत्तर हो गए।

४.३.२ (ii)

'' बादल को घिरते देखा है-
अमल धवल गिरी के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानयसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कंधो पर
छोटी-बड़ी कई झीलें हैं
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त मधुर बिस-तंतु खोजते
हंसो को घिरते देखा है ।

ऋतु बसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारूण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशाकाल से चिर-अभिशापित

बेबस उन चकवा-चकई का, बंद हुआ क्रंदन फिर उनमें
उस महान सरोवर के तीरे, शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय कलह छिड़ते देखा है, बादल को घिरते देखा है ।

दुर्गम बर्फानी घाटी में, शत-सहस्त्र फुट ऊँचाई पर

अलख नाभि से उठनेवाले, निज के ही उन्मादक परिमल
के पीछे धावित हो-होकर,तरल तरूण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है। बादल को घिरते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह, कहाँ गयी उसकी वह अलका,
नहीं ठिकाना कालिदास के, व्याम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूंढा बहुत परंतु लगा क्या, मेघदूत का पता कहीं पर
कौन बताए वह छायामय,बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था, मैंने तो भीषण जाड़ो में
नभ-चुंबी कैलास- शीर्ष पर, महामेघ को झंझानिल से,
गरज-गरज भिडते देखा है। बादल को घिरते देखा है।
शत-शत निर्झर-निर्झरिणी कल
मुखरित देवदारू कानन में,
शोणित धवल कुटी के भीतर,
छायी हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुतल को साजे,इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाये,
शतजल लाल कमल वेणी में
रजत-रचित मणि-खचित कलामय
पान-पात्र द्राक्षासव-पूरित
रख सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपटी पर,
नरम निदान बाल-कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारूण आँखोवाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अंगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।।

प्रकृति के साथ नागार्जुन का अत्यंत घनिष्ठ संबंध रहा है उनकी प्रकृति परक कविताओं में वेविध्य मिलता है। कहीं हिमालय पर बादल घिरते है, तो कहीं बादलों को बरसते देखा है ,कहीं पवन द्वारा उनकी गतिशीलता देखी। प्रकृतिपरक कविताओं में 'बादलो को घिरते देखा है' प्रसिद्ध कविता रही है। परिवेश की घुटनभरी जिंदगी में प्रकृति की उपयोगिता होती है, मानसिक तनाव को खत्म

करने में प्रकृति सहायक बनती है। बादलों के माध्यम से कवि ने प्रकृति का सौंदर्य, मादकता,रमणीयता, विरह का अभिशाप, प्रणय कलह आदि रूपों में वर्णन किया है ।

स्वच्छ-निर्मल धवल गिरी के शिखरों पर बादलों को घिरते हुए देखकर कवि अनेक कल्पनाओं के द्वारा उसका वर्णन करते हैं । छोटे-छोटे मोती के समान उसके हिमकणों को मानसरोवर के स्वर्णिम कमल दलों पर गिरते हुए देखा है।

ऊँचे हिम शिखरों पर कई छोटी-बड़ी झीलें है, उनका पानी श्यामल नीला है। समतल क्षेत्रों से - गर्मी से आकुल और पावस की आशा से तिक्त-मधुर बिस-तंतु-कमल के ठंठल खोजते हुए-वहाँ आनेवाले हँसो को तैरते हुए देखा है ।

वसंत की सुप्रभात,मंद-मंद पवन,सुबह की मृदु किरणें,आस-पास के स्वर्ण से चमकने वाले शिखर किंतु बेबस चकवा-चकई जो एक-दूसरे से अलग होकर रातभर अभिशापित होकर रात बिताते हैं- उनका रोना उस महान सरोवर के तीर पर बंद हुआ किंतु फिर से हरी-हरी घास-काई की दरी या बिछाने पर प्रणय-कलह को निर्माण होते हुए देखा ।

दुर्गम बर्फीली घाटी में सौ-हजारो फुट ऊँचाई पर दिखाई न देनेवाली खुद की ही नाभि के उन्मादक सुगंध के पीछे भागनेवाले कस्तुरी मृग को अपने आप ही चिढ़ते हुए देखा।

कहा गये धनपति कुबेर,उनकी अलका नगरी, कालिदास का ठिकाना है न उनके आसमान में प्रवाहित गंगाजल का, उस मेघदूत को भी बहुत ढुंढा पर पता नहीं लगा, न जाने वह यहीं पर बरस पड़ा होगा , जाने दो वह तो केवल कवि- कल्पित था। किंतु मैंने भयंकर जाडों में गगन चुंबी कैलाश-शिखर पर महामेघ को तूफानी हवा गरज-गरज कर भिड़ते देखा है ।

सौ-सौ निर्झर-निर्झरिणी देवदारू के जंगल में मधुर सुर में बह रही थी, लाल श्वेत भोज पत्रों से बनी कुटिया के भीतर रंग -बिरंगे, सुगंधित फूलों से बालों को सँवारे,नील मणियों की माला शंख से गलों में पहने,कानों में नील कमल लटकाएँ, शतदल लाल कमल वेणी में, रत्न -खचित कलाबूत से युक्त चांदी का पानदान,द्राक्षासव रखा हुआ,रक्तचंदन की माथेपर त्रिपटी लगाए,नरम कस्तूरी मृग छालों पर पलथी मारकर,मदिरा से लाल आँखोवाले किन्नर-किन्नरियाँ अपने कोमल अंगुलियों को वंशी बजाते,घुमते हुए देखा हैं। समस्त वातावरण प्रसन्न,संपन्न,आनंददायी बना हैं।

४.३.३ (ii) भस्मांकुर -

पग-पग पर ऋतुपति का छबि-संभार
दिशा-दिशा में किशलय-कुसुम-प्रसार
विविध गंध बंधुर समीर-संचार
पिक-रव अलि-गुंजन झिल्ली-झंकार
स्निग्ध सुकोमल सतरंगी संसार
मुखर हिमाचल पिछले तरल तुषार
प्रकृति परी ने सजा हरित श्रृंगार
त्वरा-भरित झरने हो उठे उदार

उधर शिशिर, मधुमास इधर,इस पार
नहीं कहीं भी दीख रहा पतझार
नंदन वन ही लाया यहा उतार

बंधु ले गया मुझसे बाजी मार
त्रिभुवन में छलकता मधुमद सिंधु
आजीवन सहकर्मी अपना बंधु
साध्य कठिन हो, साधन चाहे स्वल्प
पूर्ण करेगा वह मेरा संकल्प

सहज सखा सहभोगी रूचिर वसंत
अंतिम क्षणतक देगा अपना साथ
सांग सवाहन सायुध मेरा मित्र
फैलाकर बैठा है मायाजाल
मुझे नहीं है अब कुछ भी संदेह
विविश, करेंगे रागारूण शितिकंठ
गिरितनया का अधर सुधा रसपान
दोनों ही तब दीखेंगे युगनद्ध

देश-काल का टूटेगा व्यवधान
मूक हास में थिरकेगा कैलास
और सभी तो हट जायेंगे दूर
छिपा रहूँगा मैं उनके ही पास
पूरा होगा सुरपति का अभिलाष

पूरा होगा सुरपति का अभिलाष
गौरानंदन शिव का औरस पुत्र
वही करेगा तारक का संहार
सुरसमूह की चिंता होगी दूर
यश के भागी हम होंगे कृतकृत्य

अभी- अभी तो उतरे हैं इस ठौर
टहल- बूलकर देख रहे हिम-भूमि
चमक उठा है कुसुमाकर का क्षेत्र
लगता क्या असमय वसंत-विन्यास....
पूर्णकाम प्रभू , जय-जय हे सुरराज
सुखी रहे अपना वह देव-समाज
अपनों के हित आऊ यदि मैं काम
समझूंगा सधिक है अपना नाम

'प्रिये, किधर हो? आओ,इधर समीप
देखो तो कैसी लगती वनभूमि

रातों रात यहाँ उतरा मधुमास
निखर उठे हैं बहुरंगी परिवेश
पूरा होगा निश्चय अपना लक्ष्य...'
'जी,कब से मैं देख रही यह दृश्य।'
निकट आ गयी रतिरानी सुकुमारि
सजी-धजी गुड़िया-सी सुंदर नारि

पति से बोलीः 'सब-कुछ है तैयार
धन्य-धन्य कुसुमाकर,ऋतुपति धन्य।
चलो पिन्हायें उसे जुही का हार
जादूगर है मदन तुम्हारा मीत
हिमखंडित शिखरों के बीचोबीच
देख रही हूँ कानन पहली बार
शिलीभूत तुहिनों से अटे पठार
पता नहीं, किस ओर हो गये लुप्त...

'जी, कब से मैं देख रही यह दृश्य...
माया कानन में डूबा धवलाद्रि
हरित हास ही छिटकाता सब ओर
तट तरू, तुहिन शिलोच्चय, सरित प्रवाह
लगते तिहरे प्रभातरत्न प्रतिबिंब
अनुरंजित छवियों में सब हैं कैद
लता,मुकुल,टूसे,पत्रांकुर, पुष्प...
पशु-पक्षी-कृमि-कीट सभी हैं मस्त
राग-रंग में अग-जग सारे व्यस्त
आओ साजन,करें कहीं विश्राम
भ्रमर-दूत को भंजो मधु के पास
उधर गुफा में बैठेंगे कुछ देर...'

रखुकर पति के कंधों पर मृदु हाथ
आँखो में दी आँखो रति ने डाल
दो-दो दृगमणि, चारों की द्युति
एक-
अंतर उर में तरल स्निग्ध प्रतिरूप
तैर रहे थे उनमें बारंबार
भासित हुई मदन को कुछ क्षण
बाद
संशय -मिश्रित भय की हल्की छाँह-

स्पंदित चंपक पंखडियों के बीच
दो मणि गोलक चमें शंका श्याम!
छिपा न पायी भीतर का आतंक
मलिन -मुखी रति पास आ गयी और....
झट से झुककर लिया मदन ने थाम
काँप रहा था रति का मृदुल शरीर
स्वेदसिक्त, रोमांचित कांतिविहिन
अंग -अंग लगता था स्पंदन-शून्य
होठों पर से गायब थी मुसकान
फीकी आभा में उदास थे गाल
रत्नशिला की पटिया पर तत्काल
लिटा दी गयी उसकी बेसुध देह
लगा बीजने मन्मथ किशलय गुच्छ
वापस लाये क्रमशः तन की स्फूर्ति
मंदाकिनी -सलिल-शीकर-संपात
खुले नयन,देखा रति नेःप्रिय मित्र
खड़ा सामने सहृदय सखा वसंत
अपर मदन -सा अति सुंदर सुकुमार।

भस्मांकुर नागार्जुन की मौलिक रचना है।किंतु उसके पौरानिक घटना -प्रसंगो चरित्रों तथा आशयों में आधुनिक युग की दृष्टि से अर्थों से संपन्न किया है। पार्वती की स्वप्न चर्चा,काम के अनिष्ट की आशंका से खिन्न हो जाना,रति और काम का पारस्परिक वार्तालाप, मध्यस्थ के रूप में वसंत का उनके आपसी झगड़े को सुलझाना आदि प्रसंग नागार्जुन की कविता के अपने प्रसंग है।कवि ने पौराणिक कथा को मानवीय बना दिया है। सारा कार्य-व्यापार कैलाश पर्वत पर घटित होता है। कैलाश का वसंत ऋतु से संबंधित प्रकृति वर्णन अत्यंत मनोरम है। उन्होंने मलयानिक, नर-कोकिल चटुल, भ्रमर आदि के आत्म परिचय द्वारा वसंत की आगामी पृष्ठभूमि तैयार की है।

कैलाश -अंचल में वसंत के अचानक आगमन से वातावरण बदल गया है। चारों और अंकुशित पन्ने-कलियाँ,फूलों के खिल जाने से सुगंध फैली है। सर्वत्र परिमल युक्त पवन का संचार हो रहा है।कोयल की कूक,भ्रमरों का गुंजन,झिंगुरों की झंकार के कारण सारा संसार मधुर,प्रसन्न-सतरंगी बना है।हिमालय से बर्फ पिघल कर तुशार-बिंदु मुखरित हो रहे हैं, प्रकृति-परी मानो हरित-श्रृंगार से सजी हुई है। झरने भी भरकर बड़ी उदारता से बहने लगे।

उधर शिशिर तो इधर वसंत मास।इसलिए यहाँ पतझर नहीं दिखाई दे रहा।मानो यहाँ नंदनवन ही उतार लाया है। मुझसे बाजी मारकर मुझे ले गया मानो त्रिभुवन में आनंद का सागर उमड़ पड़ा। आजीवन सहयोग देनेवाला यह सखा भले ही साध्य कठिन क्यों न हो और साधन अल्प-कम क्यों न हो फिर भी पह मेरा संकल्प पूर्ण ही करेगा ऐसा कामदेव को विश्वास है।

क्योंकि कामदेव या मदन का मित्र या सखा वसंत है।

वसंत कामदेव का सहयोगी,मित्र, सबको प्रिय है वह तो निश्चित ही अंत तक उनका साथ देगा।

इसीलिए तो मेरे इस मित्र ने अपने सारे वाहन, आयुध आदि लेकर वह अपना मायाजाल फैलाकर बैठा है।अब तो मुझे कुछ भी संदेह नहीं है कि वह नीलकंठ के मन में प्रीति या कामभावना निर्माण करेगा और शिव-पार्वती आलिंगन बध्द होकर शिव,पार्वती के अधर-अमृत का पान करते हुए दिखोंगे।

देश-काल की मर्यादा टूट जाएगी, कैलाश पर्वत पर हलचल निर्माण होगी,वह थिरकने लगेगा,उस समय सभी दूर हो जाएंगे किंतु मैं तो उनें पास ही छिपा रहूँगा। इस तरह इंद्र अर्थात देवराज शचीपति की अभिलाषा पूर्ण होगी।

शिव-पार्वती के मिलन की इच्छा इंद्र की थी वह पूर्ण होते ही शिव-पार्वती पुत्र के औरस पुत्र के द्वारा तारक-महादानव का संहार होगा।देवतागणों की चिंता दूर होगी और इस यश के हम सहयोगी अपने इस कार्य से कृतकृत्य होगें।

हम तो अभी-अभी ही इस स्थान पर उतरे हैं। थोडा घुम कर हिम भूमि के दर्शन कर ले। वसंत के कारण यह क्षेत्र चमक उठा है। असमय में वसंत की सुषमा निर्माण करने में क्या लगता है। हे प्रभु, तुम्हारी जय हो देवाधीपति इंद्र! आपका पह देव-समाज सुखी रहे।अपनों के हित के लिए यदि मैं काम आऊ तो मैं अपना नाम सार्थक समझूंगा।

काम,रति और वसंत कैलाश पर थे।वसंत के इस मायाजाल से प्रसन्न थे।तभी कामदेव पे कहा ‘प्रिये,किधर हो?इधर समीप आकर तो देखो!यह वन भूमि कैसी लगती है! यहाँ तो रातो-रात वसंत उतर आया है।संपूर्ण परिवेश निखर उठा है,बहुरंगी बना है।अब तो अपना लक्ष्य निश्चित ही पूरा होगा...।’ रति ने कहा, ‘जी मैं तो यह दृश्य कबसे देख रही हूँ।’

सुकुमारी वह रतिरानी निकट आई,वह साज-श्रृंगार की हुई गुडियाँसी सुंदर नारी लग रही थी।पति कामदेव से वह कहने लगी-‘अब तो सब-कुछ तैयार है। हे ऋतुराज,वसंत तुम धन्य हो। हे कामदेव तुम्हारा मित्र जादुगर है, चलो उसे जुही का हार पहनाएंगे। हिम-शिखरों के हिम खंडो के बीचोबीच मैं ऐसा कानन या वन पहली बार देख रही हूँ।शिलीभूत हिम-तुषारों से न जाने पठार किस ओर लुप्त हो गए हैं ।....

जी,मैं कबसे यह दृश्य देख रही हूँ ... माया कानन में यह धवलाद्रि-पर्वत डूब गया है और सब ओर हरित रंग छिटका है। किनारों के वृक्ष, बर्फीली चट्टाने, नदियों के प्रवाह तुम्हारी तरल प्रभा के प्रतिबिंब मानो प्रसन्न छवियों में सब कैद हैं।लता,कलियाँ पत्रांकुर,फूल... पशु-पक्षी-कृमि-कीट सभी मस्ती में हैं। समस्त विश्व राग-अनुराग के रंग में व्यस्त हैं।साजन आओ,अब हम कहीं विश्राम करें। हम उधर गुफा में कुछ देर बैंठेगे।भ्रमर-दूत को वसंत के पास भेज दो।ङ्क ऐसा कहकर रति ने अपने कोमल हाथ पति के कंधो पर रखकर उनकी आँखो में आँखे डाली, दो-दो आँखे,चारों की ज्योति एक होकर उनके मन के स्निग्ध भाव बार-बार तैरने लगे।कुछ क्षण बाद मदन के मन संशय-युक्त भय की भावना निर्माण हुई।उन्हें हल्की-सी छाया लता-बेलियों के बीच हिलते हुए दिखाई दी,दो मणि जैसे गोलक अर्थात आँखे चमकी।शंका हुई।

उदास होकर रति पास आई किंतु वह अपने भीतर के भय को छिपा न सकी।मदन ने उसे तुरंत झुककर थाम लिया। रति का मृदु शरीर काँप रहा था। उसका सारा शरीर पसीने से भर गया,रोमांचित हुआ, मुख कांति हीन हुआ।उसका अंग चेतना शून्य हो गया।होंठों से मुसकान गायब थी, गालों का तेज-कांति कम हो गई थी।वह बेहोश हो गई,तुरंत उसे पटिया पर लिटा दिया गया।मदन कोपलों के गुच्छ को पंखे की तरह हिलाने लगा। कुछ देर बाद उसके शरीर पर गंगाजल छिटकनेसे स्फूर्ति आई, उसने आँखे खोली,रति ने देखा मप्रियमित्र, सहृदय, सखा वसंत सामने खड़ा था जो दूसरा मदन-सा अति

सुंदर सुकुमार दिखाई दे रहा था।

४.१.३.४ नागार्जुन के काव्य का आशय–

प्रगतिवादी काव्य–चेतना को आगे बढानेवाले कवियो में नागार्जुन का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। वे ओर उनका काव्य जनता और उसके दुःख–दर्द की अभिव्यक्ति करते हैं। वे किसी वादों और प्रयोगों के भटकाव में नहीं उलझे हैं। अपने स्वर को खेत, खलिहान,मजदूर, किसान तक जाना चाहते हैं। उनकी कविता में लुहार की दुकान में,मजदूरों के कल–कारखानों में, किसानों के खेत में, आम मेहनतकश आदमी के श्रम को प्रस्तुत किया हैं। अपने सामान्य अनुभवों पर आधारित कविताएँ भी उन्होंने लिखी हैं। प्रसिध्द 'मदन–दहन'जैसे पौराणिक संदर्भ पर 'भस्मांकुर' जैसे खंड काव्य की रचना भी की है।

नागार्जुन अपनी रचनाओं से अपने युग के प्रति विशेष सजग और संवेदनशील है। उनकी कविताओं में उनका व्यंग्यकार और राजनीतिक कवि रूप सामने आता हैं तो दूसरे रूप में वे प्रकृति के खुले प्रांगण में विचरण करके प्रकृति की विविध छवियों से परिचय करवाते हैं। इसी के अंतर्गत उनकी प्रेम कविताएँ भी आती है जिनका व्यक्ति से विश्व प्रेम तक विस्तार हैं।

नागार्जुन उन रचनाकारों में नहीं हैं, जो कल्पनालोक में विचरण करते हैं। वे ठोस सामाजिक समस्यायों और जमीनी यथार्थ से जुड़े हुए हैं।सामाजिक बदलाव के लिए वे–संघर्ष को अनिवार्य मानते हैं और काव्य को संघर्ष का सशक्त माध्यम।आम आदमी के साथ उनकी सहानुभूति हैं। इसीलिए उनकी समस्याओं को उन्होंने संवेदनात्मक स्तर पर अभिव्यक्त किया हैं।

समाज के साथ ही उन्होंने राजनीतिक चरित्रों एवं उनकी नीतियों,पारिवारिक संबंध एवं दांपत्य प्रेम प्रकृति से संबंधित काव्य किया हैं। इसीलिए वे देश,धरती,जनता के कवि माने जाते हैं।उनके काव्य में प्रखर लोक–चेतना है, संघर्ष–अभावों से ग्रस्त, अनुभूति में पर्याप्त ईमानदारी, मेहनतकशों के लिए सहानुभूति,जमींदार और पूंजीपतियों के प्रति तीखा व्यंग्य मिलता है। शोषितों, पीड़ितों का स्वर उनके काव्य मे मिलता हैं। प्रोफेसर रामचरण महेंद्र लिखते हैं कि–'नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। उनमें मजदूर वर्ग की संघर्षशील चेतपा समुन्नता रूप में प्रकट हुई हैं।पूंजीवादी चट्टानों से टकराती,भयंकर संघर्षों में तपती, मजदूर वर्ग की हिमालय करती हुई नागार्जुन की काव्यधारा जनवादी परंपराओं में आगे बढ़ी हैं।' इसीलिए उनके काव्य में भारत की भूमी,नंगी,दीन–हीन,पीड़ित–शोषित, असहाय जनता से जुड़कर, उनके लिए संघर्ष करने के कारण वे कालजयी बने हैं।

बाढ़,दुर्भिक्ष,सूखा, अकाल अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण जपता के दयनीय जीवन को नागार्जुन ने व्यक्त किया हैं। पूंजीवादी व्यवस्था उनके व्यंग्यपूर्ण स्वर और भी धारदार बने हुए 'प्रेत के बयान' में देखने को मिलते हैं –

'कैसे मरा तू?भूख से, अकाल से?
बुखार ,कालाजार से?
पेचिश,बदहजमी, प्लेग,महामारी से?
कैसे मरा तू ,सच–सच बतला।'

स्वाधीन भारत के प्रायमरी स्कूल के अध्यापक की दयनीय स्थिति की तस्वीर उभरकर आई है । भूख, गरीबी के चित्रण से कवि ने तत्कालीन परिस्थितियों को दर्पण बना दिया है। इससे ही स्पष्ट है कि कवि ने

निम्नवर्ग के उपेक्षित जीवन को बहुत पास से देखा और स्वयं भोगा भी है। जीवन की तकलीफों ,अभावों पेट की भूख का वास्तविक दर्द अवगत कराने मे उनका शब्द–सामर्थ्थ सहायक बना है। रमेश कुंतल मेघ के अनुसार– 'प्रेमचंद के बाद शायद कवि नागार्जुन ही ऐसे हैं जिनकी खंड–खंड कविताओं मे भी समकालीन भारतीय समाज और संस्कृति का सिलसिलेवार इतिहास मिल सकता है। लोकचित मे जो सामूहिक संवेगोंवाली प्रतिक्रिया होती है, उसमें जो तात्कालिकता और जीवंतता, सादगी और सपाटता, तेजी और तल्खी, मोह भ्रम और मोहभंग चुनौती और व्यथा ,व्यंग्य और फूहड़ता होती है, वह सब नागार्जुन ने सर्वाधिक भोगी है और अपनी कविताओं मे अभिव्यक्ति की है।'

नागार्जुन के दो प्रसिध्द खंडकाव्य हैं– भस्मांकुर एवं भूमिजा। पाठय क्रम में 'भस्मांकुर' का अंश लिया गया है। नागार्जुन का यह आख्यात्मक खंडकाव्य है,इसमें मदन–दहन की पौराणिक कथा को पद्यबध्द किया है। उसका संक्षिप्त कथ्थ निम्न प्रकार से कहा जा सकता है। जिससे समाविष्ट अंश का सही–सही अर्थ बोध हो सकेगा–

महाबली तारकासुर देवताओं को सताने लगे तब देव–समाज ब्रहमा से प्रार्थना करने गए, तब ब्रहमा ने कहा–' शिव यदि हिमालय की पुत्री उमा से विवाह कर लें तो उन दोनों के मिलन से शिशु का जन्म होगा जो महाबली तारकासुर का वध कर सकेगा।' ब्रहमा ने उपाय तो बताया किंतु शिवजी का पार्वती की ओर आकर्षित करना चाहा। उन्होंने इस काम के लिए अपने मित्र वसंत को चुना और वे कैलाश पर्वत की ओर चल पड़े। कथांश प्रसंग को आधार बनाकर 'काम' क चिरंतन पक्ष की पुष्टि करते हुए युगीन संदर्भों एवं समस्याओं को उद्घाटित करना चाहा है.... 'काम' की जीवंत समस्या इस कृति का केंद्र बिंदु है, जिसके चारों ओर प्रस्तुत रचना का कथ्थ चक्कर लगाता है। यही कारण है कि शिव–पार्वती की अपेक्षा काम, रति तथा वसंत का संदर्भ अधिक उजागर हुआ है।''

नागार्जुन ने में पौराणिक कथा को नए अर्थों में प्रस्तुत किया है शिवजी जैसे महान तपस्वी के मानस में प्रणय–रति भावना सचेत करना कथा का मूल लक्ष्य है और यह कठिन काम करने के लिए मदन–कामदेवता कैलाश की रमणीय घाटियों की ओर निकल पड़े। काम अपनी पत्नी रति और वसंत के साथ वहाँ पहुँचा।मदन के प्रभाव और वसंत के सहयोग से वहाँ का समस्त वातावरण आनंदमय और उल्लसित हो गया। असमय में वसंत के आ जाने के कारण शिवजी की तपस्या भंग हो गई।

पार्वती प्रतिदिन शिवजी की सेवा के लिए अपनी सखियों के साथ तपस्या–स्थल तक जाती थी और स्वयं को शिव के प्रति अर्पित कर देती है।पार्वती शिव को स्वप्न में मिलन–मुद्रा में देखती है तो शिव भी वसंत के मोहक वातावरण से प्रसन्न होकर पार्वती की ओर प्रणय की दृष्टि से देखते हैं। उनकी तपस्या–समाधि भंग हो जाती है। वे कारण जानना चाहतेहैं तब उनहें लता–कुंजो के पीछे छिपे 'मदन'दिखाई देते हैं,उन्हें देखते ही वे क्रोधित होते हैं और उनकी तीसरी आँख खुलते ही उस आग में मदन भस्म हो जाते हैं। पति को भस्म हुआ देख रति विलाप करती है और उसी समय आकाशवाणी होती है और कामदेव के चिरंजीवी होने का आश्वासन मिलता है।अर्थात कामदेव को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

नागार्जुन ने भी यह अवगत कराया है कि मानव हो या देवता सभी जीव–जंतु में 'काम' भावना होती है जो एक नैसर्गिक क्रिया है, न केवल कुमार की उत्पत्ति के लिए;मनुष्यता की परंपरा को बनाए रखने के लिए सृष्टि को जीवित रखने के लिए किया है। इसीलिए कवि ने शिव की नहीं बल्कि मनुष्य के मानस–पटल पर चिरंजीवी बनकर रहनेवाले कामदेव की जयजयकार की है।

सारांशतः नागार्जुन का काव्य मानवीय और मानवीय अनुभूतियों का काव्य है। मानव जीवन के सारे

सुख-दुख, आशाए- आकांक्षाएँ' सुंदरता-विरूपता उसमें प्रतिबिंबित हैं। संवेदनाओं की जीवंत अभिव्यक्ति के कारण वे सारी मन की गहराइयों में उतरती है। उनकी कविता समाज केंद्रीत, लोक-केंद्रीत,मनुष्य-केंद्रीत जनता के कवि की जनता के लिए ही कविता हैं। विश्व की शोषित-पीड़ित मनुष्यता के पक्षधर होने के कारण उन्होंने सामाजिक परिवर्तन,एक स्वस्थ और सुंदर समाज-रचना की माँग की हैं।उनकी भाषा बहुरंगी है-आम जन की,पंडितों और काव्य रसिकों की भाषा है।मुक्तछंद के साथ ही कवित्त,सवैया बरवै छंदो के प्रयोग से भाषा लयबद्ध बनी है। इसीलिए उनका काव्य पठनीय एवं श्रवणीय बन गया है।

४.३.५ प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएँ-

प्रगतिवादी यह हिंदी साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति है। 'प्रगति'का अर्थ ही आगे-बढना या उन्नति करना है।यह वाद मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित है,रूस के दार्शनिक कार्लमार्क्स के विचारों की अभिव्यक्ति को हिंदी में 'प्रगतिवाद'कहा गया । इ.स. १९३६ से १९४३ तक का इसका काल संक्षिप्त रहा है।छायावाद की काल्पनिकता से लेखक-कवि ऊब गए थे, वे ठोस धरती पर उतर आना चाहते थे। छायावाद के भौतिक जीवन से उदासीन, आत्मनिष्ठ,सूक्ष्म, अंतर्मुखी प्रवृत्ति के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में ही इसका निर्माण हुआ। जिसका जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण,ईश्वर, आत्म के प्रति अनास्था, समाजवाद की स्थापना उद्देश रहा हैं।

सामान्य रूप से प्रगतिवाद की निम्न विशेषताएँ हैं-

*** शोषकों के प्रति घृणा-**

समाज शोषक अर्थात भूपति,पूंजीपति एवं शोषित -कृषक, मजदूर, नारी, भिक्षुक आदि वर्गों में विभाजित हैं।अब तक के साहित्य में तो शोषकों की प्रशंसा होती रही और शोषित उपेक्षित ही रहे। अतः प्रगतिवादी कवियों ने शोषकों के प्रति आक्रोश और शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की हैं। उनके जीवन का विदारक चित्र उन्होंने चित्रित किया।जीवन की विषमता के प्रति क्रोध केदारनाथ,दिनकर ने व्यक्त किया हैं।

*** धर्म का विरोध-**

मार्क्सवादी मानते हैं कि धर्म पूंजीपतियों -शोषकों का ही रक्षक है।वे ऐसे धर्म की उपेक्षा करते हैं जो निर्धनों का शोषण का साधन हैं। प्रगतिवादी कवि भी ईश्वर, आत्मा -परमात्मा,स्वर्ग-नरक आदि में विश्वास नहीं करते।

*** समकालीन समस्याओं के प्रति जागरूकता-**

जातीय-कलह, महंगाई,बेकारी , अकाल, कश्मीर-समस्या,हिंदुस्तान-पाकिस्तान संघर्ष आदि समस्याओं को नागार्जुन,अग्रवाल आदि कवियों ने विषय बनाया।

*** नारी विषयक व्यापक दृष्टिकोण-** मार्क्सवादी दृष्टि से नारी भी शोषित है जब मनुष्य उसे पुरूषों के बराबरी का स्थान देते हैं और उसकी इज्जत करने लगे हैं।पंत,निराला के काव्य में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है- निराला ने कहा हैं- ''वह तोड़ती पत्थर ,इलाहाबाद के पथ पर।''

*** रूढियों का विरोध-** प्रगतिवादी कवि सबसे पहले सृष्टिकर्ता ईश्वर संबंधी अंध-विश्वासों पर प्रहार करता है। उनकी दृष्टि से मंदिर, मस्जिद, गीता,कुरान आदि कोई महत्व नहीं रखते। वे तो मानव को केवल मानव रूप में ही देखना चाहते हैं।इसीलिए ईश्वर, और आडंबरों का वे विरोध करते हैं। कवि नवीन के शब्दों में-

'जगपति कहाँ?अरे, सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी....

रे नर,स्वयं जगत्पति तू है...।'

※ शोषितों के प्रति सहानुभूति- प्रगतिवादी काव्य तो शोषित वर्ग के जीवन से जुड़ा हैं। गरीब,मजदूर, किसान,मेहनत करनेवालों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं।कवि निराला की भिक्षुक कविता इसका उचित उदा. हैं- 'वह आता,

दो टुक कलेजे के करता, पछताता पर आता...।'

※ समाज- जीवन का यथार्थ चित्रण- प्रगतिवाद ने निम्न वर्ग की प्रतिष्ठा की है,इसीलिए इन कवियों के सामने पीड़ितो का हाहाकार,उसके रूप में अपने काव्य में स्थान दिया हैं। 'ताज' कविता मे पंत ने कहा हैं-

"हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।"

※ अंग्रजों का विरोध-शिक्षा के कारण इस समय जन जागृति होने लगी थी। फिर भी प्रगतिवादी कवि जन-जागृति कर रहे थे।इसलिए उन्होंने व्यंग्य पूर्ण एवं प्रतीकात्मक काव्य सृजन किया। निराला की कविता में कुकुर मुत्ता जो गरीबों का और गुलाब और अमीरों का प्रतीक हैं।

※मानवतावाद की स्थापना- प्रगतिवादी काव्य में मानवतावाद को सर्वोच्च स्थान दिया गया। वे तो इन सब का उत्कर्ष चाहते हैं।पंत ने लिखा हैं-

"देश काल और स्थिति से ऊपर

मानवता को करो प्रतिष्ठित।"

जीवन की विषमता को दूर करके मानवता की प्रतिष्ठा बढ़ाने के कारण प्रगतिवाद का साहित्यिक महत्व रहा है।प्रगतिवादी प्रमुख कवियों में पंत, निराला, दिनकर,नरेंद्र शर्मा, शिवमंगलसिंह सुमन आदि का नाम लिया जाता हैं तो प्रगतिवादी गौण कवियों में रामेश्वर शुक्ल अंचल केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव,डॉ.रामविलास शर्मा,अज्ञेय,मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नागार्जुन आदि का नाम लिया जाता हैं।

४.१ शब्दार्थ- टिप्पणियाँ-

(i)प्रेत का बयान-

कालाजार-एक प्रकार का तेज बुखार

सिवान- सीमा

पुश्तैनी-पुरानी, पीढ़ियों से चला आनेवाला

दंडपाणि-यमराज

पोखर- तालाब

भभाकर-भड़ककर धमकाना,उपहास से

स्तिमित- आश्चर्यचकित

आँत- अँतडी

करमी- पानी ने आनेवाली बेल जिसके पत्ते साग की तरह खाते हैं

पेचिश-मरोड़

(ii) बादल को घिरते देखा हैं-

तुंग-ऊँचा

ऊमस- गर्मी

तुहिन- बर्फीले, तुषार

बेबस-विवश

शैवाल-सेवार,पानी के ऊपर पैदा होनेवाली घास

दरी- बिछाना

अलख-परमात्मा

कस्तूरी-मृग की नाभि से निकलनेवाला सुगंधित पदार्थ

अलका- कुबेर की नगरी

झंझानिल-आंधी-पानी

कल-सुंदर

इंद्रनील- नीलकांत मणि

कुवलय- नील कमल

द्राक्षासव-अंगूर की शराब

लोहित चंदन-लाल चंदन

(ळळळ) भस्मांकुर-

छवि संभार- शोभा-समृद्धि

गंध-बंधुर- कभी कम, कभी अधिक सुगंधि से भरा हुआ

त्वरा-भरित- वेगमय

*** नंदनवन-**

स्वर्ग लोक का विशिष्ट उद्यान। पुराणों में नंदन-वन की महिमा का बखान किया गया है। वहाँ सुनहले कमल खिलते हैं,कल्पवृक्ष कामधेनु है जो सब इच्छाएँ पूर्ण करते हैं।अप्सराओं का नृत्य-गायन चलता हैं।

सांग-वाहन सहित,स्वजन समंत

रागारूण शितिकंठ- प्रीति-दीप्त नीलकंठ

गिरि-तनया-पार्वती

*** युगनद्ध-**

भोगकालीन मुद्राओं में परस्पर गुंथे हुए। काम-केलि-रत तरूण-तरूणियों के जोड़ प्राचीन काव्यों एवं कलाकृतियों में यंत्र-तंत्र पाए जाते हैं।आलिंगन बद्ध व्यवधान-दूरी फासला

गौरीनंदन-पार्वती-पुत्र,कार्तिकेय,गणेश

*** तारक-**

हजारों साल की तपस्या करने से यह महादानव महाप्रतापी हो गया जिससे सारे देवता उससे आतंकित रहने लगे। उसे ब्रह्माजी का वरदान था कि उसके समान कोई दुसरा बली नहीं होगा न वह किसी के हाथों मारा जाएगा केवल वह शिव के औरस पुत्र के हाथों मारा जाएगा।

⁕मधु,कुसुमाकर– वसंत

शिलीभूत तुहिनों से पथराई हुई बर्फो से

माया–कानन– जादुई प्रभाव से दिखनेवाला जंगल, कृत्रिम–वन

धवलाद्रि–कैलाश पर्वत,धौलगिरि

शिलच्चय– शिलाओं के ढेर,चट्टानों के सिलसिले

प्रभा–तरल प्रतिबिंब– चमकीली छाँहों में काँपती हुई परछाइयाँ

⁕भ्रमस्दूत –संवाद ले जाने का काम करनेवाला भौंरा।यह भी कवियों के दिमाग की उपज है।

दृग–मणि–आँखो की पुतलियाँ

स्पंदन–शून्य–निश्चेष्ट

बीजने –पंखे की तरह झलने

मंदाकिनी–आकाश–गंगा के जलकणों के बार–बार दिए जाने वाले छीटें

४.१.५ सारांश

सादगी,सरलता और खुलापन नागार्जुन के व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं।प्रगतिशील विचारधारा के कवि,संघर्षशील,सहजस्फूर्त प्रतिभा के धनी, संवेदनशील,यायावर पं.वैद्यनाथ मिश्र अर्थात यात्रीया नागार्जुन का बहुरंगी व्यक्तित्व उनकी विविध साहित्यिक रचनाओं में प्रतिबिंबित हुआ है।युगधारा,सतरंगे पंखोवाली,प्यासी पथराई आँखे भस्मांकुर,भूमिजा आदि काव्य–खंडकाव्यात्मक रचनाओं के अतिरिक्त रतिनाथ की चाची,बलचनमा,वरूण के बेटे, पारो आदि उपन्यास तथा निबंधसंग्रह,बालसाहित्य,अनुवाद आदि से संबंधित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

नागार्जुन अपनी रचनाओं से अपने युग के प्रति सजग हैं।इसलिए उनके काव्य में समाज, लोक,मनुष्य, प्रकृति,परिवार,शोषितों,पीड़ितों के स्वर मिलते हैं। दुःख,दर्द, पीड़ा,स्नेह,प्रेम, सहानुभूति,संघर्ष आदि भाव,बाढ़,अकाल,सूखा, दुर्भिक्ष,अन्य प्राकृतिक आपदाओं से प्रजा की दयनीय स्थिति,पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति प्रखर व्यंग्य उनकी कविता प्रेत के बयान में,प्राकृतिक वर्णन बादल को घिरते देखा है मैं तो पौराणिक कथा भस्मांकुर में नैसर्गिक भावना ‘काम’की महत्ता व्यक्त की हैं। मानव जीवन को बनाएँ रखने का कार्य ‘काम’द्वारा ही संभव है, नहीं तो मनुष्य जीवन समूल नष्ट होने की संभावना हैं।कवि नागार्जुन ने मानवीय अनुभूतियों को काव्य का विषय बनाया और अपनी लेखनी द्वारा उन्हें व्यक्त करने में वे सफल रहें हैं।

नागार्जुन सही अर्थ में जन कवि है,इसीलिए जनता का हर्ष,क्रोध,दुःख,सुख,संघर्ष,दीन–हीन पीड़ितों के लिए संघर्ष करने का कारण उनकी रचनाएँ कालजयी बनी है। दुखी जनता के प्रति सहानुभूति के कारण ही उन्होंने मार्क्सवाद को स्वीकृति दी हैं। मनुष्य की सहनशीलता की कोई हद होती हैं,जब वह खत्म हो जाती हैं, तब वह शोषण को नष्ट करके क्रांति की ज्योति से सुख–शांति निर्माण करना चाहता हैं। अनेक कोशिशों के बाद भी परिवर्तन न देखकर उनका आक्रोश का स्वर कविता से ही निकलता हैं। हर पल उनकी कोशिश जारी हैं यही प्रगतिवादी चेतना की निशानी हैं।उनके इस बेजोड़ कार्य से ही उन्हें प्रगतिवादी कवियों में ऊँचा स्थान हैं।

४.१.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

※ पठित कविताओं के आधार पर नागार्जुन के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

※ 'भस्मांकुर' कविता के अंश से आशय स्पष्ट कीजिए।

※ बादल को घिरते देखा हैं- कविता का भावार्थ समझाइए।

(ख) टिप्पणियाँ

※ मास्टर की स्थिति का वर्णन

※नागार्जुन का प्रकृति- चित्रण

※नागार्जुन की प्रगतिवादी चेतना

※भस्मांकुर में अभिव्यक्त मदन और रति के संवाद

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

※नागार्जुन के काव्य पर किसका प्रभाव रहा हैं?

※'बाजरे की कलगी' की क्या विशेषता हैं?

※भस्मांकुर के प्रमुख पात्रों के नाम लिखिए?

※'प्रेत का बयान' के मास्टर की घरेलू जानकारी दीजिए।

(घ) संदर्भ स्पष्टीकरण-

※'सच-सच बतला.....सच-सच बतला।'

※बड़े अच्छे मास्टर हो.... नहीं मरे?

※कहाँ गया धनपति कुबेर वह.... कवि-कल्पित था।

※प्रिय किधर हो?..... सुंदर नारि।

※'छिपा न पायी भीतर का आतंक..... बेसुध देह।'

(च) सही पर्याय लिखिए-

※ प्रेत का बयान कविता के रचनाकार कौन हैं?

अ) निराला ब) पंत क) नागार्जुन ड) अज्ञेय

※प्रायमरी स्कूल मास्टर की तनखा कितनी थी?

अ) तीस रूपये ब) पचास रूपये क) सौ रूपये ड) एक सौ बीस रूपये

※चिर- अभिशाप के कारण किसको रात अलग-अलग बितानी पड़ती हैं?

अ) चकवा-चकई ब) तोता-मैना क) पति-पत्नी ड) राजा-रानी

※मृगछालों पर पलथी मार कर कौन बैठे थें?

अ)देवी- देवता ब)शिव-पार्वती क)किन्नर-किन्नरियाँ ड)नर-नारी

※कामदेव की पत्नी कौन हैं?

अ) रति ब) प्रीति क)गौरी ड) शची

※गौरीनंदन-शिव का औरस पुत्र किस दानव का संहार करने वाला हैं?

अ)नरकासुर ब)कैटभ क)मधु ड)तारक

※ मदन का सहृदय सखा कौन हैं?

अ)शिशिर ब) वसंत क)ग्रीष्म ड) हेमंत

४.१.७ स्वाध्याय –क्षेत्रीय कार्य

* पठित कविताओं में से नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त शब्द लिखिए।
* प्रगतिवादी विशेषताओं के आधार पर नागार्जुन के काव्य की समीक्षा कीजिए।
* नागार्जुन की विविध रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।
* नागार्जुन के भस्मांकुर एवं भूमिजा खंडकाव्य को पढ़िए।

४.१.८ संदर्भ–अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* आयाम–संपा. विश्वनाथ गौड, ललित शुक्ल
* हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ– डॉ.नामदेव उतकर
* राष्ट्रवाणी–पुणे–नागार्जुन विशेषांक–नवंबर–दिसंबर २०११

इकाई ४.२
अज्ञेय

अनुक्रम

४.२.१ उद्देश्य
४.२.२. प्रस्तावना
४.२.३. विषय – विवरण –
 ४.२.३.१ १) कितनी शांति! कितनी शांति
 ४.२.३.२ २) सागर किनारे
 ४.२.३.३ ३) कलगी बाजरे की
 ४.२.३.४ प्रयोगवादी काव्य की विशेषाताएँ
 ४.२.३.५ अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता तथा काव्य भाषा
४.२.४ शब्दार्थ – टिप्पणी
४.२.५ सारांश
४.२.६ स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न
४.२.७ स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
४.२.८ संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

४.२.१ उद्देश्य :–

– प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।

– प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के योगदान को समझेंगे।

४.२.२ प्रस्तावना :–

अज्ञेय प्रयोगवादी परंपरा के प्रवर्त्तक कवि हैं। उनका सच्चा नाम हैं। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन। अज्ञेय नाम से वे प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सन १९११ कुशीनगर जिला देवरिया उत्तरप्रदेश में हुआ और मृत्यु सन् १९८७ में हुई। वे पंजाबी ब्राह्मण, सारस्वत गोत्रीय थे। युरोप, जापान, फिलीपाईन, रूमानिया, मंगोलिया रूस आदि की विदेश यात्रा इनका साहित्य समृद्ध एवं संपन्न हैं। वे कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, पत्र–पत्रिकाओं के संपादक, अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, भारतीय साहित्य के प्रतिनिधी लेखक, अंग्रेजी कवि हैं। इन्हें आंगन के पारद्वार पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार, कितनी नावों में कितनी बार पर ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य वाचस्पति, डी.लिट्, भारत–भारती उपाधियाँ मिली हैं।

इनके काव्यसंग्रह हैं – भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरीघास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए ये, सुनहले शैवाल, पहले मैं सन्नाटा बुनता हुँ, महावृक्षों के नीचे आदि। कहानी संग्रह – उपन्यास हैं

– विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, जयदोला, शरणार्थी, ये तेरे प्रतिरूप, अमरवल्लरी, शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी, निबंध संग्रह हैं – त्रिशंकु, आत्मनेपद, सबरंग आदि अनुवाद हैं – श्रीकांत अनुवाद भरतचंद्र का उपन्यास, त्यागपत्र – जैनेंद्र के उपन्यास का अंग्रजी में अनुवाद; तारसप्तक एक, दो, तीन भाग; नये एकांकी पुष्करिणी, आधुनिक हिंदी साहित्यादि, हिंदुस्तान, कादंबिनी, जनसत्ता, दिनमान, सारिका, नवभारत टाइम्स, साप्ताहिक हिंदुस्तान, हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया आदि पत्र-पत्रिकाओं में सहभाग। विविध प्रकार के लेखन साहित्य के द्वारा अज्ञेय ने विविध विषयों और समस्याओं को अभिव्यक्त किया हैं।

४.२.३ विषय – विवरण

अज्ञेय हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद के प्रसिध्द कवि एवं नायक रहे हैं। सन् १९४३ में अज्ञेय द्वारा संपादिक 'तारकसप्तक' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। अज्ञेय के प्रयोगवाद ने हिंदी को एक नया मोड दिया क्योंकि इसमें उन्होंने नए – नए प्रयोग किए हैं। व्यक्तिवादी चेतना के ये प्रयोग उनके द्वारा ही सिद्ध हुए हैं। वे मैथिलीशरण गुप्त को अपने गुरू मानते हैं उनके भग्नदूत, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, महावृक्ष के नीचे आदि कृतियों में निराशा, क्षणवादी भावना एकांत आत्मबोध स्पष्ट है। इत्यलम्, हरी घाझ पर क्षणभर की कविताओं में स्नेह से प्रकृति तक का प्रभाव पंत के समान दिखाई देता है। प्रतीक बिंब, व्यंग आदि उनकी कविताओं में उभरकर आए हैं। उनकी सागर किनारे, कलगी बाजरे की आदि कविताओं में उनके काव्य की शैलीगत नवीनता स्पष्ट हैं।

४.२.३.१ कितनी शांति ! कितनी शांति!

कितनी शांति! कितनी शांति!
समाहित क्यों नहीं होती यहाँ भी मेरे ह्रदय की क्रांति?
क्यों नहीं अंतर-गुहा का अश्रृंखल दुर्बाध्य वासी,
अस्थिर यायावर अचिर में चिर-प्रवासी
नहीं रूकता, चाहकर-स्वीकार कर- विश्रांति?
(मारकर भी, सभी ईप्सा, सभी कांक्षा, जगत की उपलब्धियाँ सब हैं लुभानी भ्रांति!)
तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद –
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद –
बिना पूछे, सिध्द कब ? इस कष्ट से होगा कहा साक्षात्?
कौनसी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी शिशिर भीगी रात?
चला हूँ मैं, मुझे संबल रहा केवल बोध-पग-पग आ रहा हूँ पास,
रहा आतप-सा यही विश्वास
स्नेह के मृदु घाम से गतिमान रखता निविड मेरे साँस और उसाँस।
आह संख्यातीत रूपों में तुम्हें मैंने किया है याद!
किंतु सहसा हरहशते ज्वार-सा बढ़ एक हाहाकार
प्राण को झकझोर कर दुर्वार,
लील लेता रहा है मेरे अकिंचन कर्म-श्रम-व्यापार!

ऐसे कहाँ है अस्तित्व की इस जीर्ण चादर के इकहरी बार के ये तार!

गूंजनी ही रही है दुर्दांत एक प्रकार :
कहाँ है वह लक्ष्य श्रम का - विजय की-तुम्हारा
प्रतिश्रुत वह प्यार!
हरहराते ज्वार-सा बढ़ सदा आया एक हाहाकार
अहं अंतर्गुहावासी! स्वराति! क्या मैं चाहिनता
कोई न दुजी राह?
जानता क्या नहीं निन में बध्द होकर है नहीं निर्वाह?
क्षुद्र नलकी में समाता है कही बेथाह
मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज-दीप्त प्रवाह!
जानता हूँ! नहीं सकुचा हूँ, कभी समवाय को देने स्वयं का दान,
विश्व-जन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान!
कांति अणु की है सदा गुरू-पुंज का सम्मान!
बना हूँ कर्त्ता, इसी से कहूँ - मेरी चाह, मेरा दाह, मेरा खेद और उछाह
मुझ सरीखा अगिन लीकों से, मुझे यह सर्वदा है ध्यान,
नयी पक्की सुगम और प्रशस्त बनती है युगों की राह!
तुम? जिसे मैंने किया है याद, जिससे बंधी मेरी प्रीत -
कौन तुम अज्ञात -वय-कुल-शील मेरे मीत?
कर्म की बाधा नहीं तुम, तुम -नहीं प्रवृत्ति से उपराम -
तुम्हें धारे हृदय में, मैं खुले हाथों सदा दूंगा बाह्य को जो देय
नहीं गिरने तक कहूंगा, तनिक ठहरू क्योंकि मेरा चुक गया- पाथेथ।
तुम! हृदय के भेद मेरे, अंतरंग सखा-सहेली हो,
खगों-से उड़ रहे जीवन-क्षणों के तुम पटु बहेली हो
नियम भूतों के सनातन, स्फुरण की लीला नवेली हो
किंतु जो भी हो, निजी तुम प्रश्न मेरे, प्रेय प्रत्यभिज्ञेय!
मेरा कर्म, मेरी दीप्ति, उद्भव-निधन, मेरी मुक्ति तुम
मेरी पहेली हो!
तुम जिसे मैंने किया है याद, जिससे बंधी मेरी प्रीत?
लभानी है भांति -------
कितनी शांति! कितनी शांति!

अज्ञेय अपने युग के जागरूक, संवेदनशील करकी रहे हैं। उनकी प्रथम कविता इ.स. १९२७ में प्रकाशित हुई और सन १९८७ तक उनकी काव्ययात्रा अबाध गति से चलती रही। वे इस लंबी यात्रा में राहों के अन्वेषी रहे हैं। उन्होंने तार-सप्तक से हिंदी कविता को नया संस्कार दिया। अनेक काव्य संग्रहों के निर्माण में उनके अनेक विषय प्रकट हुए। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने उनकी इस काव्ययात्रा को चार-सोपानों में विभक्त किया हैं - ''पहला है विद्रोह और हताश का, दूसरा है अपने भीतर शक्ति संचय का, तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का और चौथा है मानवीय दायित्व-बोध के साथ-साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का।''

अज्ञेय विविध संवेदनाओं के कवि हैं। इसलिए उनकी कविताओं का कथ्य विविध अनुभवों से जुड़ा हुआ है। उनकी कविताओं में प्रेम, प्रकृति, रहस्य समाज, आत्मान्वेषण आदि भावों की एक साथ प्रस्तुति देख सकते हैं। 'प्रेम' अज्ञेय की कविता का मुख्य विषय है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में स्वच्छंदतावादी कवियों का प्रभाव है किंतु बाद में जटिल मनःस्थिति को अभिव्यक्ति मिली है। अज्ञेय की कविता में आत्मन्वेषण के धरातल पर दो व्यक्तियों के बीच एक संवाद - सा दिखाई देता है। एक सामान्य व्यक्ति का और दूसरा उनके आदर्श कवि-व्यक्तित्व का जिसकी खोज उनके मन में निरंतर चलती रहती है। 'कितनी शांती!' कविता में आत्मसंवाद और कवि व्यक्तित्व की खोज द्रष्टव्य है -

तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद -
सदा प्राणों में कही सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद -
बिना पूछे - सिध्द कब इस इष्ट से होगा कहा साक्षात्?

कौनसी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी

शिशिर भीगी रात?

इस कविता का आशय इसी बात पर आधारित है। कवि सोचते है कि इतनी शांति! कितनी शांति है। इसमें मेरे दिल में निर्माण होनेवाली क्रांति यहाँ क्यों नहीं मिलती है, एकत्र नहीं हो जाती। अंतर तम का मुक्त, बंधन रहीत अस्थिर, यायावर, शीघ्रता का चिर-प्रवासी चाहकर भी नहीं रूकता, आराम नहीं करता। जगत की सभी उपलब्धियाँ आकर्षणीय हैं, भ्रांति पैदा करनेवाली हैं। सभी इच्छा-आकांक्षाओं को दबा देने पर भी वे आकर्षित ही होती हैं।

मैंने तुम्हें अनेक बार अनेक रूपों में याद किया। मन ही मन तुम्हारे संवाद भी सुनता रहा। पता नहीं बिछा पूछो कवा इष्ट साध्य होगा, वह कौनसी प्रात होगी कि उसमें यह आर्द्रता-आस्था भाव खिल उठेगा क्योंकि शिशिर की भीगी रात सूनी है। मैं तो निकल जाना चाहता हूँ किंतु केवल यह आत्मबोध संबल रहा है कि धीरे-धीरे नजदीक आ रहा है। प्रकाश सा विश्वास, स्नेह के मृदु पसीने से मेरे घने जंगल में श्वास-प्रश्वास गतिमान रखता है। कितनी बार और कितने रूपों में तुम्हें याद किया है। किंतु अचानक बैचेनी- परेशानी का ज्वार-सा बढ़ जाने से हाहाकार हो जाता है।

प्राणों को झकझोर कर मेरे दीन कर्म-श्रम-व्यापारों को निगल लेता हूँ और अनुभूति के संचित-कनक भार को इकट्ठे झेलता हूँ। ऐसा कहाँ अस्तित्व है कि जो इस जीर्ण चादर के इकहरी बाट का हिस्सा बने। एक तरह से यह प्रबल स्वर गुंजता रहा। 'श्रम का वह लक्ष्य कहाँ है? जीवन की जीत- तुम्हारी वह प्यार की प्रतिज्ञा।' जब यह याद आता है तब मन ज्वार-सा उभर आता है और पीड़ा से रोना आजाता है। अंतर्गहावासी अहं, स्वरति! मैं कोई दूसरी राह नहीं पहचानता! मैं यह भी जानता हूँ कि केवल स्वयं में बध्द होकर निर्वाह नहीं होता। सोचों कि क्षुद्र नलकी-में अथाह कहीं समाता है क्या! मैं यह जानता हूँ कि जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना ही मुक्त-तेज दीप्त प्रवाह है। मैं स्वयं का दान करने, मेल करने में संकोच नहीं करता। विश्व था समाष्टि के लिए इस व्यष्टि का अभिमान बाधक नहीं था। हमेशा गुरू-पुंज के सम्मान में ही अणु(लघु-व्यक्ति) की कांति -श्रेष्ठता रहती है।

कर्ता बनने के कारण ही मैं मेरी, चाह, दाह, खेद, आनंद व्यक्त करता हूँ। मेरे समान अग्नि-लोकों के कारण युगों की नई, पक्की, सरल और प्रशस्त राह बनती है, इस बात का मुझे हमेशा ही ध्यान रहता है। तुम? जिसे मैंने याद किया, जिससे मेरी प्रीत बंधी है, तुम कौन हो? तुम्हारी आयु-कुल-शील मेरे लिए अज्ञात है? तुम कर्म की बाधा नहीं, तुम प्रवृत्ति से विरक्ति भी नहीं! क्या तुम्हारे हित के लिए मेरा संघर्ष

रूका है, मेरा कर्म रूका है। तुम्हें दिल में धारण करने से कुछ भी तो रूका नहीं। मैं हमेशा ही खुले हाथों से बाह्य को जो देना है वह दूँगा, गिरने तक नहीं कहूंगा ''थोडासा रूको क्योंकि मेरा मार्ग चूक गया है।''

तुम मेरे दिल के भेद हो, अंतरंग सखा-सहेली हो। पंछी के समान उड़ने वाले मेरे जीवन-क्षणों के तुम प्रवीण शिकारी हो। अतीत के सनातन नियम, स्फूर्ति नई प्रेरणा-लीला हो। किंतु तुम जो भी हो, तुम मेरे ही प्रश्न हो, प्यार-प्रेम को पहचानने वाले हो। तुम मेरा कर्म, मेरी दीप्ति, मेरा उद्भव-निधन मेरी मुक्ति, मेरी पहेली भी तुम हो, जिसे मैंने याद किया है, जिससे मेरी प्रीत बंधी है, कितनी लुभावनी है यह भ्रांति! कितनी शांति, कितनी शांति। अज्ञेय ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्व दिया है- वे कहते हैं- मैंने कविता का उपयोग करना नहीं चाहा, क्योंकि मैंने नहीं माना कि मेरे उपयोग करना चाहने से वह उपयोगी हो सकती है। मैं मानता हूँ जब वह उपयोगी होती है, जब मैं स्वयं उपयोगी हूँ, उसमें जीवन की पूर्णता तब है जब मैंने पूर्ण जीवन के प्रति स्वयं को समर्पित किया है। दुहाई देने से ही कविता नहीं लिखी जाती। कवि अपने अस्तित्व के प्रति सजग है व्यष्टि- समष्टि का द्वंद्व सक्रिय है।

अज्ञेय अपनी प्रणयानुभूति के चरम क्षणों में रहकर भी न रहने की कल्पना करते हैं। अपने भीतर के सूने सन्नाटे की गूँज को सुनते हैं। और क्षणभर के लिए अपने और अपनी प्रियतमा को लय हो जाने की स्थिती का अनुभव करते हैं। यह आत्मलय, आत्मविसर्जन के प्रणय को कहीं न कहीं मुक्ति का सीमाहीन खुलेपन का एहसास कराता है।

४.२.३.२ सागर किनारे

तनिक ठहरू! चांद उग आये,
तभी जाऊंगा। वहा नीचे
कसमसाते रूद्ध सागर के किनारे।
चांद उग आये।
न उसकी
बुझी फीकी चांदनी में दिखे शायद
वे दहकते लाल गुच्छ बुरूँस के जो
तुम हो।
न शायद चेत हो, मैं नही हूँ वह डगर
गीली दूब से मेदुर
मोड़ पर जिसके नदी का कूल है, जल है,
गुच्छ लाल बुरूँस के उत्फुल्ल।
न आये याद, मैं हूँ
किसी बीते साल के सीले कलेंडर की
एक बस तारीख, जो हर साल आती है।
एक बस तारीख - अंकों में लिखी ही जो न जावे।
जिसे केवल चंद्रमा का चिहन ही बस करे सूचित-
बंक-आधा-शून्य,
उलटा बंक-काला वृत्त,
यथः पूनो-तीन-तेरस-सप्तमी,

निर्जला एकादशी या अमावस्या।
अंधेरे में ज्वार ललकेगा-
व्यथा जागेगी। न जाने दीख क्या जावे
जिसे आलोक फीका सोख लेता है।
तनिक ठहरू। कसम साते रूद्ध सागर के किनारे
तभी जाऊँ वहाँ नीचे -
चांद उग आये।

अज्ञेय मूलतः अनूठे प्रकृति प्रेमी कवि हैं। उन्होंने कहा है ''प्रकृति दृश्य को देखते हुए मुझे सहसा चेतना की एक लहर आप्लावित कर लेती है कि मैं जीवित हूँ, कि जीवन सुंदर है कि जीवित होने की अनुभूति सौंदर्य की चरम अनुभूति है।''अज्ञेय ने प्रकृति का चित्रण परंपरागतरीति से नहीं अपितु नव्यतम उपमानों की पृष्ठभूमि पर किया हैं।

अन्य उपमानों के साथ ही अज्ञेय को सागर बहुत प्रिय है। सागर उन्हें विविध रूपों से देखता रहा, उनके अनेक भावों, विचारों, चिंतनों, अनुभूतियों या कलागत अभिव्यक्तियों में वह विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। प्रणयानुभूति,वियोग की पीड़ा मिलनात्सुक भावना उनके काव्य में अभिव्यक्त हुई है। इच्छाओं की ज्वाला में प्रेमी जलता है, प्रेमविश्वलता, बैचैनी का वर्णन कवि अपनी कविता में करता हैं।

थोडा-सा ठहर जाऊ जब चांद का उदय होकर वह ऊपर आयेगा तभी वह उस रूके हुए कसमसाते-बेचैन सागर के किनारे जाऊँगा, नीचे उतरने का प्रयत्न करूंगा क्योंकि चाँद ऊपर आने से उसकी आभा फैल जाएगी।

उसकी फीकी शांत चांदनी में शायद कुछ न दिखे। उदासी के कारण कुछ भी दिखाई न दे। जंगल के वृक्षों के वे लाल गुच्छ ऐसे लगते हैं जैसे वे जलकर मानो आँच या लपट बाहर फेंक रहे हो, वैसे ही तुम हो। शायद उन्हें यह याद नहीं कि मैं वह मार्ग-रास्ता नहीं जो गीली घास से ढँका हुआ है, जिसके मोड पर नदी का किनारा है, जल है, मोड़ के भीतर बाँस में लाल रंग के बुरूस के खिले हुए गुच्छ घिरे हुए हैं।

शायद आपको याद नहीं, मैं तो किसी बीते साल के सीले-छपे कलेंडर की बस एक तारीख जो हर साल आती है। बस यह एक तारीख अंकों में लिखी न जाएँ। जिसे केवल चंद्रमा के चिह्न के द्वारा ही सूचित की जाएँ। चंद्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं से सूचित होता है कि तिथि कौनसी है। चंद्रमा वक्र-आधा-शून्य (पूर्ण) उलटा वक्र-काला वृत्त आकार में होता है तब पूनो, तेरस, सप्तमी, निर्जला एकादशी या अमावस माने जाते हैं। अतः कलेंडर की आवश्यकता नहीं।

अमावस के अंधेरे में ज्वार उभर कर आएगा। परिणामतः व्यथा अर्थात् पीड़ा जागेगी। वह दिखाई भी कैसे देगी क्योंकि उसे तो फीका आलोक सोख लेगा। हृदय-सागर की बेचैनी, व्यथा को स्वयं व्यक्ति ही समझ है जो उस स्थिति में घिरा हुआ है। अपनी व्यथा पीड़ा के साथ ही कवि चाँद की फीकी रोशनी में सागर के किनारे जाना चाहते हैं।

४.२.३.३. कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तरिका

अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी हुई
हटकीं कली चंपे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय, उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुल्लमा छूट जाता है।
मगर क्या तुम, नहीं पहचान पाओगीः
तुम्हारे रूप के- तुम हो, निकट हो, इसी जादू के-
निजी किस सहज, गहरे बोध से, किस प्यार से मैं कहा रहा हूँ-
अगर मैं यह कहूँ- बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की
आज हम शहरातियों को,
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का-ऐश्वर्य का- औदार्य का-
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा, एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सून गगन की पीठिका पर दोलती कलगी
अकेली बाजर की
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है-
और मैं एकांत होता हूँ समर्पित
शब्द जादू हैं -
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

अज्ञेय की यह बहुचर्चित कविता है, जिसमें उन्होंने नष्ट बिंब और प्रतीक नए रचनाशिल्प तथा नयी शब्दरचना को अपनाया है। इसका प्रभाव उनकी पुरानी कविताओं से बिलकुल भिन्न है। उनकी दृष्टि में परंपरागत प्रतीक बार-बार प्रयुक्त होते रहने के कारण मैले अर्थात् अनुपयुक्त हो गए हैं। अतः 'कलगी बाजरे की' कविता में वे अपनी प्रिया के लिए नष्ट प्रतीक का प्रयोग करते हैं। इस कविता में परिवर्तित प्राकृतिक सौंदर्य बोध दृष्टिगत होता है।

तुम हरी बिछली अर्थात् बिछाई हुई घास के समान प्रसन्न हो। बाजरे की दुबली-पतली फुर्तीली झूलती कलगी या तुरा हो। अगर मैं तुम्हें. ललाती संध्या में आसमान की अकेली तारिका या नक्षत्र कहता। किंतु अब नहीं कहता। या शरद ऋतु की प्रभात में ओस से न्हायी हुई कुमुद, ताजगी भरी चम्पे की कली आदि तो नहीं कहता, तुम्हें लगता कि मेरा दिल छीछला है या रिक्त-सूना है या तो फिर मेरा प्यार ही मैला अर्थात् अनुपयुक्त है।

सिर्फ, सिर्फ यही बात है कि यह परंपरागत उपमान अब मैले या अनुपयुक्त हो गए हैं, अर्थहीन हो गए हैं। देवता भी इन सब प्रतीकों छोडकर चले गए हैं। सब प्रतीक अर्थहीन बन चुके हैं। जैसे बर्तन को बार-बार या अधिक घिसने से उसका मुलम्मा घट जाता है, कलई निकल जाती है। तो क्या तुम अपने रूप को पहचान न पाओगी तुम तो तुम्हारे रूप के ही निकट हो, यही इसका जादू है। अपने ही सहज, गहरे बोझ से, किस प्यार से मैं यह कह रहा हूँ। हाँ अगर मैं यह कहूँ कि तुम बिछली घास हो, हरी-भरी, खुशी से हवा में दोलती दुबली-पतली, फुर्तीली बाजरे की कलगी हो! तो क्या यह अच्छा नहीं हैं!

आज हम शहरों में रहनेवालों को पाले हुए मालंच पर सँवरी जुटी के फूल से भले ही लगती हो। वह अपने प्रेम के विषय में नगरवासियों से कुछ सुनना नहीं चाहता। किंतु सृष्टि का विस्तार, ऐश्वर्य और औदार्य का, कहीं सच्चा कहीं प्यारा एक प्रतीक बिछली घास है। प्राकृतिक उपमान विस्तृत, संपन्न हैं। बड़ी उदारता से प्रकृति इन उपमानों को देती हैं। वे सच्चे और प्यारे होते हैं। कवि कहते हैं कि सच्चा और प्यारा प्रतीक बिछली घास है या शरद ऋतु की संध्या के सूने-खाली आसमान के आसन या पीठिका पर झूलती अकेली बाजरे की कलगी सच कहूँ- जब जब इन्हें मैं देखता हुँ। तो यह खुला उजड़ा हुआ संसार केंद्रीतभूत-सधन होकर, संकुचित हो जाता है और मैं अकेला हो जाता हूँ 'समर्पित' शब्द जादू ही हैं। तो क्या यह प्यार में किया गया समर्पण कुछ भी नहीं।

अज्ञेय ने प्रकृति के विराट रूप का चित्रण करते हुए सौंदर्यानुभूति, अनुभवों का खुलापन, अटूट प्रेम, समर्पण आदि का दर्शन कराया है। उनकी दृष्टि से यह आत्मानुभूति और मुक्ति का क्षण है।

४.२.३.४ प्रयोगवादी काव्य की विशेषाताएँ

आधुनिक हिंदी काव्य की एक नवीनतम शैली, प्रयोगवाद है जिसमें कवियों ने अपनी अनुभूति की व्यंजना के लिए नवीन प्रयोगों को अपनाया हैं। सामान्यतः प्रत्येक युग में अभिव्यंजना शैली और विषयों में नए-नए प्रयोग होते रहे हैं किंतु उस युग के प्रत्येक कवि को प्रयोगवादी नहीं कहते। 'प्रयोग' शब्द एक विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति के अर्थ में उपयोग में लाया गया है। छयावादी की भाव-विभारता और प्रगतिवादी बौध्दिकता की प्रतिक्रिया के रूप में प्रयोगवाद की निर्मिती हुई है। प्रयोगवाद के श्रेष्ठ आलोचक लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार ''प्रयोगवाद छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया मात्र है।'' इस प्रयोगवाद को अभिव्यक्ति के लिए नवीन माध्यम, नवीन विषय चुनने पड़े जो पहले अज्ञात थे।

हिंदी के काव्य-क्षेत्र में इस साहित्यिक प्रवृत्ति का जन्म 'प्रथम तारसप्तक' के प्रकाशन अर्थात् सन १९४३ इ. से माना लिया गया है। अज्ञेय को प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक स्वीकार किया गया है। सत्य की खोज करना, काव्य का साधारणीकरण करना, परंपरा को ज्यों का त्यों स्वीकार न करके नए प्रयोगों को आवश्यक माना, भाषा में संस्कार आदि बातों को इसमें महत्त्व दिया गया। अज्ञेय स्वयं 'प्रयोगवाद' नामकरण में अरूचि दिखाते हुए कहते हैं कि ''प्रयोगवाद यह नाम नए कवियों के लिए पर्याप्त नहीं है---- किसी मंजिल पर पहुँचना नहीं है, वे अभी राही हैं, राही नहीं बल्कि यों कहिए राहों के अन्वेषी हैं।'' अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक पहला प्रकाशित हुआ। उसमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, माथुर, नेमिचंद जैन, भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा इन सात कवियों का समावेश था। उसके बाद तारसप्तक दूसरा, तीसरा, चौथा प्रकाशित किया गया। तीसरे तारसप्तक में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का समावेश किया गया हैं। सन १९४३ से १९५३ तक नवीनतम प्रयोग की यह धारा प्रवाहित होती रही। उसकी निम्न विशेषाताएँ हैं---

अहंनिष्ठ व्यक्तिवादी दृष्टिकोण– व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण कवि सामाजिक जीवन के साथ गठबंधन नहीं कर सके। उदा. नदी के द्वीप, यह दीप अकेला जिनमें अहंकार की भावना स्पष्ट है –

''यह दीप अकेला स्नेह भरा, है गर्व भरा मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति दे दो।''

''हम नदी के द्वीप हैं, हम यह नहीं कहते कि

यह स्त्रोतास्विनी बह जाये।''

दूषित भावनाओं का चित्रण –

इन कवियों ने अश्लील, असभ्य विषयों को व्यक्त करने में ही अपना आत्मगौरव समझा हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से ही इन कवितों ने नग्न यथार्थ की सृष्टि की हैं। कवि अज्ञेय कहते हैं कि– आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स संबंधी भावनाओं से आक्रांत है। उसका मस्तिष्का दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा हुआ है। इसीलिए कविता में इसप्रकार की बात आई है। प्रयोगवादी कवि फ्रायड के समान ही कामवासना को ही जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति मान लेते हैं।

निराशावादी :–

अतीत की प्रेरणा और भविष्य की आशा से प्रयोगवादी विरक्त हैं। वे निराश, हताश बन गए हैं। वे वर्तमान जीवन में ही सबकुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं– उदा. – छूले इसी क्षण, क्योंकि कल वे नहीं रहेंगे, क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।

अति बौद्धिकता :–

प्रयोगवादी काव्य में पांडित्य का अधिक्य रहा है। मास्तिष्क पर बल देकर वे काव्य लिखते हैं। अति बौध्दिकता के कारण पाठक भी परेशान हो जाते हैं। उदा. अज्ञेय की हरी घास पर क्षणभर कविता –

''चलो उठे अब। अब तक हम थे बंधु।
सैर को आये। और रहे बैठे तो लोग कहेंगे
धूंधले में दुब के दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी तो यह हरी घास ही जाने।''

अति बौद्धिकता के कारण काव्य की रसमयता कम होकर शुष्कता आ जाती है।

सौंदर्य भावना का विस्तार :–

सौंदर्य भावना एक शाश्वत प्रवृत्ति हैं। युगानुसार वह प्रतीकों एवं भाषा शैली के माध्यम से व्यक्त होती रही। प्रगतिवाद में सौंदर्यबोध के मापदंड बदले और निम्नस्तर के मानव जगत् में सौंदर्य बोध किया गया। तो प्रयोगवादी कवियों ने संसार की सभी चीजों में सुंदरता देखी। उनकी दृष्टि से संसार की कोई भी चीज उपेक्षणीय नहीं होती। तुच्छ, कुरूप वस्तु में भी सौंदर्य के दर्शन करता है और कविता के लिए अपना विषय बनाता है। चूड़ी का टुकडा, पकौडी, फटी ओढ़नी, छिपकली, मकड़ी आदि विषय बनते हैं।

नवीन उपमान :–

परंपरागत प्रतीकों और उपमानों का त्याग प्रयोगवादी कवियों ने इसलिए किया हैं कि उनका आकर्षण कम हो गया है। यांत्रिक युग की जटिल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो गए है जैसे बर्तन अधिक घिसने से उनका मुल्लमा छूट जाता है, प्रतीकों के अधिक प्रयोग करने से उनकी अर्थवत्ता समाप्त हो जाती है –

उदा. ''ये उपमान मैले हो गए हैं। देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूचा।
कभी बासन अधिक घिसने से मुल्लामा छूट जाता है।''
''प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया।
कलगी बाजरे की, रूप छरहरी......।''
''बासी ककड़ी सी अलसाई
सड़ा हुआ नारियल-सा खाली मास्तिष्क.......।'' आदि।

यथार्थवादकी प्रतिष्ठा :-

प्रयोगवाद में कल्पना के स्थान पर यथार्थवाद की प्रधानता रही है। छायावादी काव्य में कल्पना तो प्रगतिवाद में सामाजिक यथार्थ की प्रधानता रही है किंतु प्रयोगवादी काव्य में अतियथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इसलिए प्रयोगवादी कवि अति क्षुद्र, तुच्छ वस्तु का यथार्थ की दृष्टि से वर्णन करके उसमें नवीनता, नए-नए प्रयोग करके मौलिकता दिखाते हैं। अपने काव्य के द्वारा प्रयोगवादी सत्य के दर्शन कराता है।

काव्य विषयक कलात्मक दृष्टिकोण :-

प्रयोगवादी कवि काव्यकला को जीवन के लिए न मानकर केवल कला के लिए ही मानते हैं। इसलिए इन कवियों का लक्ष्य केवल विलक्षणता, आश्‍चर्य, दुरूहता से अपनी नवीनता प्रगट करना ही होता हैं।

भाषा- शैली :-

प्रयोगवादी कवियों ने अनेक स्थानों पर भाषा के अच्छे प्रयोग किए हैं किंतु उनके विलक्षण प्रयोग के कारण खड़ीबोली के व्याकरण के रूप की अवहेलना की गई हैं। दर्शन, मनोविज्ञान, भूगोल, बाजारू बोली के शब्द प्रयोग से भाषा बोझिल, जटिल, असंदिग्ध बन गई हैं। किंतु यह भी देखना आवश्यक हैं कि प्रयोगवाद बाद्धिकता का विशेष आग्रही है, वह प्रत्येक वस्तु को प्रौढ दृष्टि से देखता है। इसमें नए सत्यों या नई यथार्थताओं का बोध भी हैं, रागात्मक संबंध भी है और उनको सहृदय पाठकों तक पहुचाने की शक्ति भी हैं। अज्ञेय ने न केवल प्रयोगवादी काव्यधारा को प्रवाहित किया है किंतु तारसप्तकों के माध्यमसे अनेक कवियों को इस धारा में समाविष्ट कर लिया हैं।

४.२.३.५ अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता तथा काव्यभाषा :-

इ. स. १९४३ से सन १९४५ तक सेना में नोकरी करनेवाले अज्ञेय कवि होने के साथ-साथ निबंधकार, उपन्यासकार, आलोचक, पत्रकार, कथाकार भी थे। उन्होंने चार सप्तकोंका संपादन कर हिंदी काव्य जगत् में अपना अलग अस्तित्व प्रस्थापित किया। अभिव्यक्ति तथा विषयवस्तु दोनों ही स्तरों पर उन्होंने हिंदी काव्य में नए प्रयोग किए और उसे नयी भाव-भांग मा से संपन्न किया। वे स्वयं प्रयोग की प्रक्रिया से गुजरे है। उन्होंने भाव, भाषा, अलंकार, उक्ति आदि के क्षेत्र में प्रयोग किए और नई काव्य-चेतना का संचार किया। वे वर्तमान के प्रति सजग थे और अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध थे। युग के जीवन की कुंठा, विघटन, नग्नता और खोखलापन इनके प्रयोगधर्मी नव-आयाम हैं। उसीप्रकार प्रयोगवाद की प्रबल अभिव्यक्ति क्षणबोध की अभिव्यक्ति में होती हूँ। अज्ञेय ने भी क्षण समस्त अनुभूतियों, संवेदनाओं, विचारों और भावनाओं को स्वर दिया है।

उदा. ''आ के इस विविक्त, अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें.......।''

अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता का एक महत्वपूर्ण अन्य आयाम भी है आत्मान्वेषण। इनके काव्य की यह महत्वपूर्ण और गहरी प्रवृत्ति रहीं है। आत्मान्वेषण को उन्होंने आत्मबोध और आत्मविश्लेषण से जोड़ दिया है। वे कहते हैं -

''हम नदी के पुत्र हैं
बैठे हैं नदी की क्रोड में......।''

उनकी इस काव्य-संवेदना का आधार अस्तित्ववादी दर्शन है। कवि व्यक्तिनिष्ठ अहं और निजी अस्मिता के प्रति आग्रह करते हैं। वे अपना अस्तित्व मिटाना नहीं चाहते। किंतु साथ रहकर ही अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं अर्थात् अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं।

काव्यभाषा के संदर्भ में स्वयंअज्ञेय ने लिखा हैं - ''शब्दों के निरंतर प्रयोग से वे घिस जाते हैं। हर युग के नये जीवन - सत्य को पुरानी भाषा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। व्यंजना के पुराने साधन पर्याप्त नहीं हैं। कवि नयी सूक्ति, नयी उपमाएँ, नया चमत्कार भाषा में लाता है।'' काव्य की आवश्यकता के अनुसार अज्ञेय ने अपनी खड़ी बोली में परिवर्द्धन-परिवर्तन भी किए हैं। इनकी भाषा कहीं छायावादी, कहीं रहस्यवादी, कहीं वर्णनात्मक तो कहीं लोकभाषा के निकट हैं। उनकी भाषां में यथास्थान तद्भव, तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ हैं-

उदा. - हृदय, क्रांति, सिद्ध, मृदु, प्रतिश्रुत ज्वार, क्षुद्र, मुक्त, दीप्ति, संसृति, रूद्ध, उत्फुल्ल, चिह्न, चंद्रमा, सृष्टि, ऐश्वर्या, औदार्य आदि. देशज शब्दों प्रयोग से भाषा लोकभाषा के निकट पहुचती है-

उदा. - छोरिया, गोरियाँ, छरहरी बासन आदि

दोलती, ललाती, लुभानी जैसी विशेष क्रियाओं को प्रयोग किया हैं। रेल, मोटर, कॅलेंडर आदि अंग्रजी, तारीख, मुलम्मा, साल, नसीला आदि अरबी-फारसी शब्द प्रयोग मिलते हैं।

कलगी बाजरे की, ललती सांझ, नीहार-न्हायी कुई, टटकी कली चंपे की, मैला प्यार, बिछली घास, सँवरी जुही के फूल से, सूने गगन की पीठिका सीले कलेंडर की, फीका आलोक, कसमसाता रूद्ध सागर आदि विशेषणों का प्रयोग अज्ञेय अपने ढंग से करते हैं। शब्दों की तोड़-मरोड़ से उन्हें कुछ फर्क नहीं पड़ता। उनका ध्यान तो केवल इतना होता है कि उनके शब्द, उनकी भाषा एवं उनका शिल्प उनके भावों का पूर्ण संवाहक बनना चाहिए।

अज्ञेय की भाषा के विभिन्न रूपों में, प्रयोगधर्मिता के कारण भाव एवं लघुदृश्य साकार हो उठे हैं। उसीप्रकार प्रतीक-रचना में भी नवीनता लाने का प्रयत्न किया हैं-

उदा. किसी बीते साल के सीले कलेंडर की
'' एक बस तारीख, जो हर साल आती है।
कहीं सच्चा कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की सांस के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।''

अज्ञेय की काव्य भाषा में प्रतीकों के साथ-साथ बिंबों का भी प्रयोग असाध्य वीणा में मिलता है। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा की समृद्धि में निश्चित ही वृद्धि हुई हैं- उदा. खिल उठना, राह प्रशस्त बनाना, खुले हाथों से देना, सूचित करना, सोख लेना, सिमट जाना आदि।

अज्ञेय भाषा में संप्रेषण को अधिक महत्व देते हैं और शिल्प के संबंध में प्रयोग को ही अधिक महत्व देते हुए नवीनता का आग्रह करते हैं। भाव और बुद्धि के कारण उनकी कविताएँ प्रभावपूर्ण हैं। आधुनिकता का प्रयोगधर्मी रूप अज्ञेय से बढ़कर इस काल के शायद ही किसी कवि में मिलता हो। नए दृष्टिकोण की निर्मिती, बहिर्वस्तु की सत्यता, समकालीनता का अहसास, बौद्धिक सूझ-बूझ और वैज्ञानिक अप्रोच उनके काव्य में मिलता है। इसलिए कहीं कहीं उनके काव्य में रूखेपन की झलक साफ दिखाई देती है। यह ठीक है कि उपमान के मैले होने का तारा समकालीनता के प्रसंग में उचित था, पर टटके उपमानों के लिए दौड़ धूप कहीं कुछ हाथ नहीं लगा।

४.२.४ शब्दार्थ, टिप्पणी

१. कितनी शांति

मायावर - भ्रमणशील, भिक्षुक, संत
ईप्सा- अभिलाषा
क्लिन्न - भीगी हुई
निबिड़ - घना
दुर्दांत - भयंकर, प्रबल
प्रतिश्रुत - प्रतिबद्ध, प्रतिज्ञा किया हुआ
समवाय - समूह, समुदाय, मेल
व्यष्टि - व्यक्ति
उपराम - विराम, आराम, विरक्ति
पाथेय - मार्ग-भोजन
प्रत्यभिज्ञेय - मान्यता या जानने योग्य
क्लिन्न - आर्द्रा, भीली
हरहा - परेशान
लीलना - निगलना
नलकी - नल के आकार की
बहेली - शिकारी
अचिर - शीघ्र
दुर्दांत - प्रबल
प्रतिश्रुत - प्रतिध्वनि, गुंज
चिह्वाचा - पश्चानुलक्षण
प्रेम - प्यारे
आतप - प्रकाश

२. सागर किनारे -

बुरूँस - पहाड़ी वृक्ष
मेदुर - ढँकी हुई
रूद्ध - रोका हुआ
दूब - घास
उत्फुल्ल - खिले हुए
बुझी - शांत, बुझना
कसमसाते - बेचैन
दहकना - आग की लपट
चेत - होश, याद
बंक - वक्र

३. कलगी बाजरे की

कलगी - शिरोभूषण, तुर्रा
छरहरी - दुबली-पतली
ललाती - लाल रंग की
बासन - बर्तन
मुलम्मा - कलई
दोलती - झूलती
बिछली - बिछाना, फैलाना
टटकी - ताजी, ताजगी

नीहार - ओस, कुहरा, हिम
लहलहाना - हर-भरा खुशी से भर जाना, आनंदमय
सँवरा - ठीक होना
पीठिका - आधार, आसन
संसृति - संसार, आवागमन
वीरान - उज़डा हुआ, मनुष्य हीन
सिमटना - संकुचित, लज्जित होना
कुईं - कमल जैसा एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं और रात में खिलते है, कुमुद

४.२.५ सारांश

अज्ञेय का नाम है सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन। उनका जन्म इ.स.१९११ और मृत्यु इ. स. १९८७ में हुई। अज्ञेय मूलतः कवि हैं उनके चिंता, इत्यलम हरी घास पर क्षण भर, इंद्रधनु रौदे हुए आदि काव्य ग्रंथ हैं। वे श्रेष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, यायावर अनुवादक, नाटककार, आलोचक, पत्रकार और कुशल संपादक भी हैं।इन विविध क्षेत्रों में उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया हैं।

प्रयोगवादी धारा के अज्ञेय सशक्त कवि रहे हैं। 'तारसप्तक' का प्रकाशन इस क्षेत्र में एक क्रांतिकारी घटना है। जिसने काव्य के क्षेत्र में नई वस्तु, विषय और शिल्प से धूम मचा दी। लघु मानव, लघु परिवेश के उपक्षित छोटे से क्षण को भी काव्य में स्थान दिया हैं।

अज्ञेय प्रेम में आत्मसपर्णण की भावना को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। प्रेयसी के प्रेम के बिना जीवन निरर्थक मानते विरह की अनुभूति कवि को आत्मस्थ कर देती है। इसीलिए वे अपने भीतर के सूने सन्नाटे की गूंज को सुनते हैं और क्षणभर के लिए अपने और अपनी प्रिया को लय हो जाने की स्थिति का अनुभव करते हैं। यह आत्मलय, आत्मविसर्जन कवि को प्रणय कहीं न कहीं मुक्ति का सीमाहीन खुलेपन का एहसास कराता है।

अज्ञेय प्रयोगवादी कवि होने के कारण उन्होंने नए प्रतीक, उपमानों का प्रयोग करके, नए शिल्प-रचना, नए शब्दों के प्रयोग से काव्य में प्रेम मिलनोत्कंठा, आतुरता, विश्वास, समर्पण आदि की सशक्त अभिव्यक्ति की हैं। भाषा में विविध शब्दों को अपने मनचाहे रूप में गढ़ा हैं। भावों की अभिव्यक्ति के लिए मनोरम विशेषणों, मुहवरों का प्रयोग किया हैं। अनेक स्थानों पर अतिबौद्धिकता के कारण उनकी भाषा जटिल हो गई हैं किंतु भावों-विचारों के संप्रेषण के लिए वह उपयुक्त ही है। कवि होने के साथ ही सामाजिक प्रतिबद्धता का भी कर्तव्य उन्होंने काव्य के द्वारा निभाया हैं।

४.२.६ स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न -

- प्रयोगवाद की विशेषताओं को लिखिए?
- प्रयोगवादी कवि के रूप में अज्ञेय के योगदान पर, प्रकाश डालिए।
- पठित कविताओं के आधारे पर अज्ञेय के भाव एवं शिल्प पक्ष का विवेचन कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

- कलगी बाजरे की का आशय
- अज्ञेय के काव्य में प्रकृति वर्णन
- अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- चंद्रमा का चिह्न क्या सूचित करता है?
- कवि कसमसाते रूद्ध सागर के किनारे कब जाना चाहते हैं?
- ''कलगी बाजरे की'' कविता में प्रयुक्त प्राकृतिक उपमान लिखिए।
- बर्तन अधिक घिसने क्या होता है?

घ) संदर्भ स्पष्टीकरण -

- तुम्हें मैंने आह संख्यातीत रूपों में किया है याद........
- तुम हृदय के भेद मेरे, अंतरंग सखा-सहेली हो......
- ''तनिक ठहरू। चांद उग आये,.....
  कसमसाते रूद्ध सागर के किनारे......।''
- ''बल्कि केवल यही :
  कि ये उपमान मैले हो गये हैं........।''

च) सही पर्याय लिखिए-

- उपमान सारे मैले हो गये हैं- किसकी काव्य पंक्ति है?

अ) माथुर ब) अज्ञेय क)मुक्तिबोध ड)नागार्जुन

- तारसप्तक के प्रवर्त्तक कौन है?

अ) अज्ञेय ब)सक्सेना क)भारती ड)जगदीश गुप्त

- 'कलगी बाजरे की' किसका प्रतीक है?

अ) प्रिया ब)मित्र क)देवताड) मन

४.२.७ स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

- अज्ञेय द्वारा प्रयुक्त उपमानों को पठित कविताओं के आधारपर लिखिए।
- अज्ञेय प्रयोगवादी कवि हैं - पक्ष-विपक्ष में चर्चा कीजिए।
- अज्ञेय की अन्य रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।
- अज्ञेय की कौनसी रचना आपको अच्छी लगी, उसके बारे में दोस्तों से बातचीत करें।

४.२.८ संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- आयाम - संपा- विश्वनाथ गौड, ललित शुक्ल, राजकमल प्रका. दिल्ली
- हिंदी साहित्य की युगीत प्रवृत्तियाँ- डॉ. नामदेव उतकर
- राष्ट्रवाणी - अज्ञेय विशेषांक जुलाई-सितंबर २०११.

इकाई ४.३
मुक्तिबोध

अनुक्रम

४.३.१ उद्देश्य

४.३.२ प्रस्तावना

४.३.३ विषय - विवरण

  ४.३.३.१ १) मेरे लोग

  ४.३.३.२ २) मुझे पुकारती हुई पुकार

  ४.३.३.३ ३) पता नहीं

  ४.३.३.४ मुक्तिबोध के काव्य में विलक्षणता और समाज-बोध

  ४.३.३.५ मुक्तिबोध के काव्य का कलापक्ष

४.३.४ शब्दार्थ

४.३.५ सारांश

४.३.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

४.३.७ स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य

४.३.८ संदर्भ-अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

४.३.१ उद्देश्य

- प्रयोगवादी कवि मुक्तिबोध काव्य का आकलन कर सकेंगे।
- नई कविता और प्रयोगवादी दृष्टिकोण से मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

४.३.२ प्रस्तावना

गजानन माधव मुक्तिबोध इ. स. १९१७ में श्योपुर-मुरैना मध्यप्रदेश में जन्मे। इ. स. १९६४ में पक्षाघात से उनकी मृत्यु हुई। इनकी प्रारंभिक शिक्षा उज्जैन में तो विश्वविद्यालयीन शिक्षा नागपूर में हुई। अनेक स्थानोंपर उन्होंने अध्यापन का कार्य किया। प्रगतिशील लेखक संघ की इ.स. १९४२ में उज्जैन में स्थापना की। पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य किया। इनका जीवन आरंभ से ही संघर्षयुक्त था, वे विश्लेषक, मूड़ी, व्यक्तिवादी कवि थे। प्रथम तारसप्तक के प्रथम कवि, विद्रोही तथा आत्मपरायणता धारण करनेवाले कवि थे। कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में उन्होंने लेखन किया हैं।

उनके काव्य-संग्रह हैं- चांद का मुह टेढ़ा है,भूरी-भूरी खाक खाल धूल; मुक्तिबोध - रचनावली छह खंडों में समग्र साहित्य संकलित है। काठ का सपना, सतह से उठता आदमी आदि कहानी संग्रह हैं, विपात्र उपन्यास है, नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्यनिबंध, नये साहित्य का सौंदर्य-शास्त्र, एक साहित्यिक की डायरी, कामायनी-एक पुनर्विचार उनकी अन्य रचनाएँ है। मुक्तिबोध अहिंदी भाषी होकर

भी हिंदी साहित्य में जो योगदान दिया है, वह ऐतिहासिक है। मुक्तिबोध की भाषा में संस्कृत, फारसी, मराठी, इंग्रजी शब्दों के प्रयोग बड़ी सहजता से किया हुआ मिलता हैं जिनसे जीवन के तथ्यों का ही उद्‌घाटन हुआ है।

४.३.३ विषय – विवरण

मुक्तिबोध की कविता अद्‌भुत संकेतों से भारी है। उनकी संवेदनात्मक अनुभूतियों और भाव-बोध उनके काव्य से स्पष्ट होता है। उनके भोगे हुए जीवन का स्वाभाविक चित्रण उनके काव्य में उभरकर आया है। उनके भोगे हुए जीवन का स्वाभाविक चित्रण उनके काव्य में उभरकर आया है। अर्थात् उनकी कविता का दायरा अधिक व्यापक बन गया है। निरंतर संघर्ष, संगत-असंगत प्रसंगों का चित्रण, जनता की सही तस्वीर प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त की है। उनकी प्रस्तुतियाँ सहज और बोधगम्य हैं।

४.३.३.१ मेरे लोग–

अ

जिंदगी की कोरन में जनमा
नया इस्पात
दिल के खून में रंगकार।

आ

तुम्हारे मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर
असंख्य स्त्री-पुरूष-बालक
बने, जग में भटकते हैं,
कही जनमें
नये इस्पात को पाने।
झुलसते जा रहे हैं आग में
या मुद रहे हैं धूल-धक्कड़ में,
किसी की खोज है उनको, किसी नेतृत्व की।
पीली धुमैली पसलियों के पंजरोंवाली
उदासी से पुती गायें
भयानक तड़फड़ती ठठरियों की
आत्मवश स्थितप्रज्ञ कविताएँ
उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के समुदाय
या गो-यूथ लेकर वे, घुसे ही जा रहे हैं
ब्राशिए के बस्टवाली उन दुकानों के पास
काफे की निकटवर्ती सड़क पर
चमचमाती खूबसूरत शान की नॉयलॉन भब्भड़ में।
दुतरफा पेड़वाली रम्य किंग्सवे में

कि एलगिन रोड़ नुक्कड़ पर
खरोंचें मारते-सी घिस रहे-सी
सौ खुरों की खरखराती शब्द-गति
सुनकर खड़े ही रह गये हैं लोग
उनमें सैकड़ों विस्मित, कई निस्तब्ध।
कुछ भयभीत, जाने क्यों, समूचे दृश्य से मुँह यों कहते-
हटाओ ध्यान, हमसे वास्ता क्या है?
कि वे दुःस्वप्न आकृतियाँ, असद् हैं, घोर मिथ्या हैं!
दलिद्दर के शनिश्चर का, भयानक प्रोपेगंडा हैं!
खुरों के खरखराते सुरचते पद-शब्द-स्वर-समुदाय
सुनकर, दौड़कर उन होटलों पर,
द्वार- देहली, गैलरीपर, खिडकीयों में या छतों पर,
जो इकट्ठा हैं
गिरस्तिन मौन माँ-बहनें
सड़क पर देखती हैं, भाव-मंथर, कालपीड़ीत ठठरियों की
श्याम गो-यात्रा, उदासी से रंगे गंभीर मुरझाये हुए प्यारे
गऊ चेहरे।
निरखकर, पिघल उठता मन
रूलाई गुप्त कमरे में ह्रदय के उभरती-सी है।
नहीं आये समझ में सत्य को शिक्षित
सुसंस्कृत बद्धिमानों दृष्टिमानों के
उन्हें वे हैं कि मन ही मन, सहज पहचान लेतीं!
मग्न होकर ध्यान करती हैं कि
अपने बालकों को छातियों से और चि पकतीं।
भोले भाव की करूणा बहुत ही क्रांतिकारी सिद्ध होती है।
उपेक्षित कालपीड़ित सत्य की समुदाय
लेकर साथ मेरे लोग
असंख्य स्त्री, पुरूष, बालक भटकते हैं
किसकी खोज है उनको
अटकना चाहते हैं द्वार- देहली पर किसी के किंतु
मीलों दूरियों, के डैश खिचते हैं
अंधरी खाइयों के मुँह बगासी जोर से लेकर
युँही बस देख, अन पहचानती आँखो, खुले रहते।
गंदी बस्तियों के पास नाले पर बरगद है,
उसी के श्याम तल में वे, रंभाती कई गायें।
कि पत्थर ईंट के चूल्हे-सुलगते हैं
फुदकते हैं वहीं दो-चार
बिखरे बालवाले बालकों के श्याम गंदे तन

व लोहे की बनी स्त्री-पुरूष आकृतियाँ
दलिद्दर के भयानक देवता के भव्य चेहरे वे
चमते धूप में!
मुझको है भयानक ग्लानि
निज के श्वेता वस्त्रों पर
स्वयं की शील-शिक्षा सत्य-दीक्षा के
विरोधी अस्त्र-शस्त्रों पर
कि नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों पर
उचटता मन, उतारूँ आवरण-
यह साफ गहरा दूधिया कुश्ता
व चूने की सफेदी में चिलकते-से सभी कपड़े
निकालूंगा।
किसी ने दूर से मुझको पुकारा है
गंदी बस्तियों के पास, नाले पार
घुमटी एक, जिसके तंग कमरे में
जरा-सा पुस्तकालय वाचनालय है
पहुँचता हूँ। अचानक ग्रंथ, कोई खोलता ही हूँ कि
पृष्ठों के हृदय में से
उभरते काँपते हैं वायलिन के स्वर
सहज गुंजारती झंकार, गहरे स्नेह-सी।
मीठी सधन विस्तृत भटकती गुंज
जिसकी सान्द्र ध्वनि में से, सुकोमल राश्मों के पुंज!
तेजोद्भास, मन खुलता, स्वयं की ग्रंथियाँ खुलती!
कि इतनी में फटी-सी अन्य पुस्तक
खोलता-सा हूँ कि
पृष्ठों के जिगर में से
भयानक डाँट
कोई भव्य विश्वात्मक तडित् आघात
सहसा बोध होता है
उभरता क्रोध निःस्वात्मक
सहज तनकर गरजता
जिंदगी की कोख में जगमा
नया इस्पात
जिसके खून में रंगकर!
तुम्हारे स्वर कहाँ हैं,
ओ!

मुक्तिबोध ने निरंतर अभावों से संघर्ष करके जीवन साहित्य और समाज को नए अर्थ प्रदान किए थे। मुक्तिबोध का द्वंद्व अंतर्बाह्य दोनों तरह का था। व्यक्तिवादी मुक्तिबोध हमेशा पराजित हो ते रहे थे लेकिन

सामाजिक चेतना की आंतरिकता ने उनके स्नेह को हमेशा विकसित किया है। अर्थात् उनका आंतरिक व्यक्तित्व मानवता को प्राणदान देता है ऐसा करते समय उन्होंने कभी कोई समझौता भी नहीं किया। पर-पीड़ा को समझते थे, उसमें डूब जाते थे, उसे दूर करने की उनकी प्रबल इच्छा थी, यही कारण है कि अनेक स्थानों पर उनकी कविता से विद्रोही स्वर फूट पड़े हैं। लघु-मानव, कुंठित और शोषित अस्मिता को उन्होंने स्वाभिमान प्रदान किया है। वस्तुतः विश्व मानवता की वेदना में ही उनकी सच्ची समवेदना थी। यही कारण है कि मुक्तिबोध अभावों में सुखी थे। जिंदगी के एक-एक पन्ने को सोलकर भारतीयों के सामने रखी है, सही अर्थों में वे विश्वबंधुता की सच्ची चेतना के कवि है। उन्होंने जीवन की भयावहता और असंगति का स्वीकार एक प्रवृत्ति के रूप में किया है। स्वयं उनका जीवन ही एक अबूझ पहेली था। फक्कड और जीवन की अराजकता में असीम विश्वास होने के कारण उनके काव्य में भोगे हुए यथार्थ का ही अंकन किया गया है, पुराने कुओं, बावडियों, तालाबों, बरगदों, वीरानों, खंडहरों, मंदिरों, दरगाहों, सुनसान रास्तों की धूल फाँकते हुए कटु-मीठे अनुभवों की गठरी को विद्रोही वृत्ति के द्वारा मानव-कल्याण के द्वारा खोली हैं। इस में दर्शन, इतिहास, साहित्य के साथ ही जीवन की विसंगतियों को संकलित इसलिए किया गया हैं कि वे समय पाते ही जीवन के खोखलेपन पर प्रहार कर सकें।उनकी अपनी विडंबना पर प्रहार कर सकती है और विद्रोही प्रवृत्ति से विजय प्राप्त करते हैं, कर्मठ विद्रोह की वे प्रेरणा अपने लोगों को देते हैं।

कवि कहते हैं- जिंदगी की कोख से ही यह नया इस्पात दिल के खून से निर्माण हुआ है और इस जिंदगी में तुम्हारे- मेरे शब्द रूप धारण करके मानव अर्थात् स्त्री-पुरूष-बालक बनकर विश्व में भटकने लगे हैं। नया रूप इस्पात जैसा कठोर, मजबूत रूप प्राप्त करने के लिए विवंचनाओं की आग में झुलसते जा रहे हैं। पीड़ित हो रहे हैं था फिर व्यर्थ ही मिटते जा रहे हैं, या उन्हें किसी नेतृत्व की खोज करनी है। उनकी अस्पष्ट, मटमौली पसलियों की, कंकाल समान, उदासी से पोती हुई गायें अर्थात् निरिह मनुष्य समूह को देखकर, उनकी भयानक पीड़ा जो उन्हें बेचैन करती है, वे ही कविता में उभरती हैं जो समुदाय, काल से पीड़ित तथा उपेक्षित है वह कविता का आधार बनता है।

यह पीड़ित तथा उपेक्षित समूह दिशाहीन होकर कहीं भी घुस जाने का प्रयत्न कर रहा है। ब्राशिए के बस्ट वाली अर्थात् मस्तिष्क हीन केवल शरीरवाले, दुकानों के पास, सड़क के कॅफे के नजदीक, या चमक-दमक वाले खुबसुरत आकर्षणीय स्थानों पर, या फिर दुतर्फा पेड़ोंवाले रमणीय किंग्सवे-स्थानापर या एलगिन रोड की नुक्कड़ पर, खरौंचे मारने वाली-घिसने वाली सौ खुरों की खरखराती शब्द-गति सुनकर लोग खड़े हो गए, उस भीड़ में कुछ लोग विस्मित, तो कई निस्तब्ध हो गए हैं कुछ डर-से गए। न जाने क्यों संपूर्ण दृश्य को दुर्लक्षित करते हुए कहते हैं- इन सबको दुर्लाक्षित करें, इनसे हमें क्या -लेना देना है। कि ये पीड़ादायक सपने की आकृतियाँ हैं, असत्य है, मिथ्या आभास है। या फिर दलिद्दर के शनिश्चर का दरिद्रता की भयानक अफवाहें-प्रोपेगंडा है। बिसते, रगड़ खानेवाले खुरों से निकलगे वाले पद-शब्द-स्वर समुद्राय सुनकर, उन होटलों पर, द्वारों पर, गैलरियों पर, खिडकियों या छतों पर दौड़ कर जो माँ-बहने मौन होकर सड़क पर देखती हैं। पीड़ा-दुख-दर्द के कारण वे सब मौन हैं। भावना-शून्य, काल से पीड़ीत कंकाल शरीरधारी गायों की यात्रा जो संध्या के समय जा रही है, उदासी में वे रंगी है, उनके चेहरे गंभीर हैं, मुरझाए हुए हैं। उन प्यारी गायों के चेहरों को देखकर मन द्रवित होता है, पिघल उठता है। रहस्यमय कमरे से भीतर का क्रंदन उभरने जैसे लगता हैं।

क्या यह सत्य सबकुछ शिक्षित, सुसंस्कृत, बुद्धिमानों की समझमें आया है, या नहीं उसे वह मन-ही मन पहचान लेती हैं। मग्न होकर विचार करती हैं। अपने बच्चों को वे अपने सीने से चिपकाती है। किंतु यह मत समझो कि वह डर के मारे यह सब कर रही है। इस भोले भाव की करूणा ही क्रांतिकारी सिद्ध

होती है। उपेक्षित तथा काल से पीड़ित सत्य को लेकर जब मेरे लोग असंख्य स्त्री, पुरूष, बालक भटकते हैं। उन्हें किसी की खोज हैं। वे किसी द्वारा- देहली पर अटकना-रूकना चाहते हैं। मीलों की दूरियों के डॅश खिंचते हैं। बहुत प्रयत्न करते हैं। अंधेरी खाइयों में थकावट एवं सुस्ती के कारण जोर से मुँह बगासी लेकर अपरिचित से खुली आँखो से बस यूही देखते रहते हैं-

गंदी बुस्तियों के निकट ही नाले के पार बरगद का पेड़ है। संध्या के समय वहाँ रंभाती हुई कई गयें, बरगद के पेड़ के नीचे बैठती हैं, तभी पत्थर, ईंट के बने हुए चूल्हे सुलगते हैं। स्त्रियाँ खाना बनाने के लिए संध्या के समय चूल्हे जलाती हैं। उनके आस-पास दो-चार बच्चे नाचते-कुदते हैं, उनका तन मैला है, उन बालकों के बाल बिखरे हैं और लोहे जैसी मजबूत स्त्री-पुरूषों की आकृतियाँ उस चूल्हे की आग की धूप में दरिद्रता के भयानक देवताओं के भव्य चेहरे चमक उठे थें। उस भयानक स्थिती को देखकर मुझे ग्लानि आई, मूर्च्छा-सी आगई।

अपने ही श्वेत वस्त्रों पर जो सभ्यता की पहचान मानी जाती है। खुद के शील, शिक्षा सत्य की दीक्षा के विरोध शस्त्रों से या कि नगरों के सुसंस्कृत, सौम्य चेहरों से मन विरक्त हो गया, मन भड़क उठा और उनका सफेद पोश नकाब उतारने के लिए तैयार हो गया। दूध जैसा सफेद, साफ कुरता तथा चूने की सफेदी जैसे चमकते सभी कपड़े उतारने के लिए मन तैयार हो गया। तभी मुझे दूर से मुझे पुकारा अर्थात् यह तो उनको अंतरम की आवाज थी। गंदी बस्तियों के पास नाले के पार एक घुमटी हैं उसके संकीर्णया छोटे से कमरे में एक पुस्तकालय, वाचनालय है। वहाँ मैं पहुंचता हूँ। अचानक कोई ग्रंथ खोलती ही हूँ कि पृष्ठों के दिल से वायलिन के काँपते हुए स्वर उभरने लगते हैं। येही मुक्तिबोध का आत्मबोध है। बड़ी सहजता से वे स्वर गुंजने लगते हैं, जो गहरे स्नेह से भरे हैं। मीठी सघन गुंज दूर तक फैलती है जिसकी घनीभूत ध्वनि में से सुकोमल किरणों के समूह तेज से प्रकाशित होकर मन खुल जाता है, स्वयं की ग्रंथियाँ खुलती हैं। तभी फटी-सी दूसरी पुस्तक खोलता हुँ तो उस पुस्तक के जिगर से भयानक डाँट पड़ती है। किसी भव्य विश्वात्मक तेज का बिजली-सा आघात होता है और बोध-ज्ञान होता है। तभी मन में क्रोध उभरता है, बड़ी आवाज में दाटते हुए गरजता है तुम जिंदगी की कोख में जन्मे नये इस्पात से हो। दर्द-पीड़ा की आग में तपकर, खून के रंग में रंगे हो फिर तुम्हारे वे स्वर कहाँ है। अर्थात् क्रांति के स्वर कहा है। क्रांति से ही परिवर्तन या विकास संभव है।

४.३.३.२ मुझे पुकारती हुई पुकार-

मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहीं-
प्रलंबित अंगार-रेख-सा खिंचा
अपार चर्म, वक्ष प्राण का
पुकार खो गयी कहीं बिखेर अस्थि के समूह
जीवनानुभूति की गंभीर भूमि में।
अपुष्प-पत्र, वक्र श्याम झाड़-झंखड़ों धिरे असंख्य ढूह
भग्न-निश्चयों - रूंधे विचार -स्वप्न-भाव के
मुझे दिखे,
अपूर्त सत्य की क्षुधित, अपूर्ण यत्न की तृषित
अपूर्त जीवनानुभूति-प्राण मूर्ति की समस्त भग्नता दिखी
(कराह-भर उठा प्रसार प्राण का अजब)

समस्त भग्नता दिखी, कि ज्यों विरक्त प्रांत में
उदास-से किसी नगर, सटर-पटर,
मलीन, त्यक्त, जंग-लगे कठोर ढेर
भग्न वस्तु के समूह
चिलाचिला रहे प्रचंड धूप में उजाड़......
दिख गये कठोर स्याह (घोर धूप में) पहाड़
कठिन-सत्य भावना नपुंसका असंज्ञ के
मुझे दिखी विराट् शून्यता अशांत काँपती
कि इस उजाड़ प्रांत के प्रसार में रही चमक।
रहा चमक प्रसार.....
फाड़ श्याम-मृत्तिका स्तरावरण उठे सकोण
प्रस्तरी प्रतप्त अंग यत्र-तत्र- सर्वतः
कि ज्यों ठंकी वसुंधरा-शरीर की
          समस्त अस्थियाँ खुलीं
रहीं चमक कि चिलचिला रही वहाँ
अचेत सूर्य की सफेद औ उजाड़ धूप में।
समीर-हीन खैबरी
अशांत घटियों गयी असंग राह
शुष्क पर्वतीय भूमि के उतार औफ उठान की निरर्थ
उच्चता निहारती चली वितृष्ण दृष्टि से
(कि व्यर्थ उच्चता बधिर असंज्ञ यह)
          उजाड़ विश्व की कि प्राण की
          इसी उदास भूमि में अचक जगा
          मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहीं
दरार पड़ गयी तुरत गंभीर-दीर्घ
प्राण की गहनतरा प्रतप्त के
अनीर श्याम मृत्तिका शरीर में
पुकार के अधीर व्यग्र स्पर्श से बिलख उठे
तिमिर विवर में पड़ी अशांत नागिनी-
छिपी हुई तृषा, अपूर्त स्वप्न-लालसा, तुरत दिखी,
कि भूल-चूल ध्वंसिनी अनावृत्त हुई।
                    पुकार ने समस्त खोल दी छिपी प्रवंचना
                    कहा कि शुष्क है अथाह यह कुआँ
                    कि अंधकार-अंतराल में लगे
                    मही श्याम-जाल
                    घृण्य कीट जो कि जोड़ते दिवाल को, दिवाल से
                    व अंतराल का तला
                    अमानवी कठोर ईंट-पत्थरों भरा हुआ

न नीर है, न पीर है, मलीन है
सदा विशून्य शुष्क ही कुआँ रहा।
विराट् झूठ के अनंत छंद सी
भयावनी अशांत पीत धुंध-सी
सदा अगेय
गोपनीय द्वंद्व सी प्रसंग जो अपूर्त, स्वप्न-लालसा
प्रवेग में उड़े सुतीक्ष्ण बाण पर
अलक्ष्य भार-सी वृथा
जगा रही विरूप चित्र हार का
सधे हुए निजत्व की अभद्र रौद्र हार-सी।
मैं उदास हाथ में, हार की प्रतप्त रेत मल रहा
निहारता हुआ प्रचंड उष्ण गोल दूर के क्षितिज
शून्य कक्ष की उदास, श्वास-हीन, पीत-वायु शांति में
दिवाल पर, सचेष्ट छिपकली
अजान शब्द-शब्द ज्यों करे
कि यों अपार भाव-स्वप्न-भार ये
प्रशांति गाढ़ में, प्रशांति गाढ़ से, प्रगाढ़ हो
समस्त प्राण की कथा बखानते
अधीर यंत्र वेग से अजीब एक-रूप-तान
शब्द, शब्द, शब्द में
मुझे पुकारती हुई खो गयी कहीं.......
आज भी नवीन प्रेरणा यहाँ न भर सकी,
न जी सकी, परंतु वह न डर सकी।
घनांधकार के कठोर कक्ष, दंश-चिह्न-से
गंभीर लाल बिंब प्राण ज्योति के
गंभीर लाल इंदु-से सगर्व भीम शांति में उठे अयास मुस्करा
घनांधकार की भिदी परंपरा।
सफेद राख के अचेत शीत, सर्व ओर रेंगते प्रसार में
दबी हुई अनंत ज्योति जग उठी
मलीन मृत्यु-गीत के उदास छंद बावरे
घनांधकार के भुजंग-बंध दीर्घ साँवरे
        विनष्ट हो गये, प्रबुद्ध ज्वाल में हताश हो
विशाल भव्य वक्ष से
बही अनंत स्नेह की महान कृतिमयी व्यथा
बही अशांत प्राण से महान मानवी कथा।
        किसी उजाड़ प्रांत के, विशाल रक्त-गर्भ गुबंजों घिरे
        विहंग जो, अधीर पंख फडफड़ा दिवाल पर
        सहाय-हीन, बद्ध-देह, बद्ध-प्राण, हारकर न हारते,

अरे नवीन मार्ग पा खुला हुआ
तुरंत उड़ गये सुनीलव्योम में अधीर हो।
मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयीं वहीं
सँवारती हुई मुझे, उठी सहास प्रेरणा
प्रभात भैरवी जगी अभी-अभी।''

मुझे पुकारनेवाली पुकार अर्थात् भीतर की आवाज न जाने कहाँ खो गई। जो दीर्घ-लंबी अंगार की रेखा के समान खींचती हुई त्वचा सीने को पार करके, हड्डियों के समूह में, जीवनानुभूति की भूमि में खो गई।

पुष्पहीन पत्ते-हीन, टेढ़े-मेढ़े कँटीले झाडियों के असंख्य ढेरों से धिरे हुए, टूटे हुए निश्चय, रूके हुए विचार-स्वप्न भाव मुझे दिखें। जो अपूर्त सत्य के कारण भूखें, अपूर्ण प्रयत्नों के कारण प्यासे हैं। पूरे न होनेवाली जीवनानुभूति को खंडित होते हुए देखा। इससे प्राणों में अजीब सी कराह उठी जो सर्वत्र फैल गई।

मोहक सपनों के टूट जाने से सर्वत्र निराश-हताश वातावरण दिखाई देने लगा। जैसे किसी उदासीन क्षेत्र में, किसी उदास नगर के तुच्छ, मैले, त्यक्त, जंग-लगी, टूटी वस्तुओं के ढेर से लगे। प्रचंड धूप, के कारण सभी गरमा-गरम होकर वीरान बना था। कड़ी धूप के कारण बड़े मजबूत पहाड़ काले-काले दिखाई देते लगे।

कठिन सत्य-भावना बेकाम, बेनाम हो गई। इस विराट शून्यता को अशांत काँपते हुए देखा। लगा कि इस वीरान क्षेत्र में सत्य भावना प्रसार में चमक उठी। श्याम-मृत्तिका के कठोर-आवरण को तोड़ा किंतु सर्वत्र सभी चीजें हिस्से अधिक तप्त बने थे। लग रहा था कि पृथ्वी के ढँके हुए शरीर की समस्त हड्डियाँ खुली हो गई या फिर सूर्य की प्रचंड धूप में वे अचेत हड्डियाँ सफेद हो चमक रही है। हवा हीन दरिया, अशांत घाटियाँ, नीरब पथ शुष्क पर्वतीय भूमि की ढलान की स्थिती में विस्तृष्ण दृष्टि उठाकर निरर्थ उच्चता देखती रही (मानो यह ऊपर उठी हुई दृष्टि बधिर, अचेतन हो।) इस उजाड़ विश्व को या प्राण को। किंतु इसी उदास भूमि में मैं विस्मित हुआ क्योंकि मुझे पुकारती हुई पुकार कहीं खो गई।

उस पुकार के कारण तुरंत एक गंभीर-दीर्घ दरार पड़ गई। प्राण के अतल में जो कि अधिक तप्त होने के कारण श्याम-मृत्तिका के शुष्क शरीर में पुकार के कारण अधीर व्यग्र-स्पर्श से अंधेरे कूप में अशांत पड़ी नागिन दुखी हो गई क्योंकि उसकी छिपी हुई तृषा, अपूर्त स्वप्न-लालसा दिखाई देने लगी या फिर गलती से वह विध्वंसकारीणी अनावृत्त हो गई। भीतरी पुकार ने छिपी हुई, ठगानेवाली बात को खोल दिया और कहा कि- ''यह कुआँ शुष्क है, अथाह या गहरा है, या अंधकार-अंतराल में बड़े-बड़े काले-काले जाल लगे हैं, जो तुच्छ कीटकों ने दीवार को दीवार से जोड़ कर बनाये हैं और भीतर का तला या अतल अमानवी कठोर ईंट-पत्थरों से भरा हुआ है, न पानी है न पीड़ा है, न उदास है क्योंकि यह कुआँ तो सदा ही शून्य, शुष्क ही रहा है।''

बहुत बड़े झूठ के अनंत छंद-सी, भयानक अशांत पी हुई धुंध-सी, हमेशा अगेय, रहस्यमय द्वंद्व-सी, जो प्रसंग में अपूर्त स्वप्न लालसा है, जो तीक्ष्ण बाणों के आवेग पर उड़ती है किंतु लक्ष्यहीन है, इसलिए वह भार-सी निरर्थक है। मानो वह पराजय की भद्दी आकृति जागृत कर रही है। कार्य सिद्धि के लिए निजीपन की यह भयानक पराजय-सी रही। मैं निराश होकर हाथ में पराजय की तत्परेत मलता रहा और प्रचंड उष्ण गोल दूर के क्षितिज तक देखता रहा।

मैं शून्य कमरे की उदास श्वास-हीन, पीत-वायु की शांति में दीवार पर जीवित हलचल करने वाली छिपकली देखता रहा। कवि अज्ञात शब्द-शब्द भाव को पार करके सपनों के भार से गहरी शांति में, गहरी शांति से प्रगाढ़ होकर समस्त प्राण की कथा का वर्णन करते हैं। उद्विग्न, यंत्र के वेग से अजीब एक-रूप-तात शब्द-शब्द में मुझे पुकारते हुए कहीं खो गई। किंतु आज भी यहाँ कोई नई प्रेरणा निर्माण न हो सकी, न जी सकी पर वह न डर सकी। मानो उसमें अहसास निर्माण हुआ हो।

घने अंधकार के कठोर कमरे में दंश-चिह्न-से, लाल बिंब प्राण ज्योति के गहरे लाल इंदु या चांद-से, गर्वयुक्त डरावनी या भीम शांति में सहसा मुसकाने लगी यही घने-अंधकार की भिदी परंपरा। श्वेत राख के अचेत शीत कण सर्वत्र फैलने लगे और उसमें दबी हुई अनंत ज्योति जाग उठी। उदास मृत्यु-गीत के उदास छंद, घने अंधकार के भुजंग-पाश मानो नष्ट हो गए। ज्ञान की ज्वाला में हताश हो गए। विशाल हृदय से अनंत स्नेह की व्यथा बाहर निकलने लगी और अशांत मन से महान मानवी कथा बहने लगी अर्थात् आत्मसाक्षात्कार के कारण कवि मानवी व्यथा-पीड़ा को समझने के कारण वहीं पीड़ा, दर्द शब्द-रूप या काव्य के द्वारा प्रस्फुटित हुई।

किसी वीरान उजाड क्षेत्र के लाल गुम्बजों या घुम्मटों पर जो पंछी अधीर होकर, पंख फड़फड़ा रहे दीवार पर, जो असहाय, बद्ध-देह, बद्ध-प्राण है वे हारकर भी हार नहीं मानते क्योंकि उनके लिए नया मार्ग खुला है। खुला मार्ग पाते ही वे बड़ी अधीरता से तुरंत मीले-गगन में उड़ गए। मुझे पुकारती हुई पुकार वहीं खो गई। मुझे सँवारती हुई, नयी प्रेरणा उठी मानो अभी-अभी प्रभाव-भैरवी जगी हो। यह आशा की प्रभात बिरले कवियों में मिलती है।

मुक्तिबोध की कविता जिंदगी का अंधेरा देश का अंधेरा और बाहर-भीतरी सभी प्रकार के अंधेरे में सिमट गई है। कविता का आरंभ ही अंधेरे कमरों से होता है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य की दमित इच्छा ही अवेचतनस्थ होकर स्वप्न-रूप में प्रस्फुरित होती है। अंधेरे में कवि को जो कुछ मूर्तिमान होता है वह दमित इच्छा न होकर आत्मसंभवा-शक्ति है जिसे व्यक्त करने का सामर्थ्य एवं प्रयत्न दोनों की उपलब्धता नहीं हो पाती हैं। कवि सभी संभावनाओं से, प्रयत्न की परिपूर्णता से हृदय में रिस रह ज्ञान का तनाव रहस्य पुरूष के रूप में बार-बार पीछा करते हुए महसूस कर रहे हैं। कवि जब घोर पीड़ा या आत्म-पीड़ा से त्रस्त होता है तब वह अभिव्यक्ति के सभी खतरे हैं। उसका यह निर्णय ही उसकी नई प्रेरणा बन जाता है।

४.३.३.३ पता नहीं

यह पता नहीं, कब कौन, कहाँ किस ओर मिले,
किस साँझ मिले, किस सुबह मिले!
यह राह जिंदगी की
          जिससे जिस राह मिले
है ठीक वहीं, बस वहीं अहाते मेहंदी के
जिनके भीतर है कोई घर
बाहर प्रसन्न पीली कनेर
बरगद ऊँचा, जमीन गीली
मन जिन्हें देख कल्पना करेगा जाने क्या!

तब बैठे एक, गंभीर वृक्ष के तले
टटोले मन, जिससे जिस छोर मिले,
कर अपने-अपने तृप्त अनुभवों की तुलना
घुलना मिलना!
यह सही है कि चिलचिला रहे फासले
तेज दुपहर भूरी, सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला
काल बाँका-तिरछा
पर, हाथ तुम्हारें में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद-छाँह वहीं, गहरी-गहरी सपनीली-सी,
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा
स्वर्गीय उषा......
लाखों आँखो से, गहरी अंतःकरण तृषा
तुमको निहारती बैठेगी, आत्मीय और इतनी प्रसन्न,
मानव के प्रति, मानव के, जी की पुकार
जितनी अनन्य!
लाखों आँखों से तुम्हें देखती बैठगी
वह भव्य तृषा, इतने समीप
ज्यों लाली भरा पास बैठा हो आसमान
आँचल फैला,
अपनेपन की प्रकाश वर्षा, में रूधिर-स्नात हंसता समुद्र
अपनी गंभीरता के विरूध्द चंचल होगा।
मुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोक भरी
जो सतत तुम्हारी थाह लिये होती गहरी
इतनी गहरी
कि तुम्हारी थाहों में अजीब हलचल,
मानो अनजाने रत्नों की, अपहचानी-सी चोरी में
धर लिये गये,
निज में बसने, कस लिये गये।
तब तुम्हें लगेगर अकस्मात्
....
ले प्रतिभाओं का सार, स्फुलिंगों का समूह
सबके मन का, जो एक बना है अग्नि-व्यूह
अंतस्तल में
उस पार जो छायी हैं ठंडी, प्रस्तर-सतहें
सहसा काँपी, तड़कीं, टूटी,
औं भीतर को वह ज्वलत् को, ही निकल पड़ा!
उत्कालित हुआ प्रज्वलित कमल!
यह कैसी घटना है......

कि स्वप्न की रचना है।
उस कमल कोष के पराग-स्तर, पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक, वह शक्ति-पुरूष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप अत्यंत निकट, आतुर उत्कट
तुमको कंधे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ और कितनी दूर।
फिर वही यात्रा सुदूर की,
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
कि वही आत्म चेतस् अंतः संभावना,
...... न जाने किन खतरों से जूझ जिंदगी!
अपनी धकधक
में दर्दीले फैले फैलेपन की मिठास
या निःस्वात्मक विकास का युग
जिसकी मानव-गति को सुनकर
तुम दौड़ोगे प्रत्येक व्यक्ति के
चरण तले जनपथ बनकर!
वे आस्थाएँ तुमको दरिद्र करवाएंगी
कि दैन्य ही भोगोगे
पर, तुम अनन्य होगे,
प्रसन्न होगे!
आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकायेगी
जिस जगह, जहाँ जिस छोर मिले
ले जायेगी......

..... पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले।

मुक्तिबोध की कविताओं की सही पहचान है- संवेदनात्मक अनुभूतियाँ और भाव-बोध की दिशाओं को समझने की क्षमता क्योंकि उनके सामने उसका भोगा हुआ जीवन हैं। इसी सहजता के कारण वे पाठक को अपना बना लेते हैं। वे मनुष्य की लालसा को खत्म करके, खतरों से जूझ कर अनन्य प्रसन्न बनने की आंतरिक प्रेरणा निर्माण करना चाहते हैं। आत्मचेतना से यह संभव है वे कहते हैं- जिंदगी की राह उज्जड-खाबड है किंतु आत्मीय जन की आह सुनाई देगी तुम स्वप्नवत दौड ते रहोगी रामशेर बहादुर सिंह ने मुक्तिबोध के संदर्भ कहा हैं- मुक्तिबोध की कविता अद्‌भूत संकेतो भरी, जिज्ञासाओं से अस्थिर, कभी दूर से ही शोर मचाती, कभी कानों में चुपचाप राज की बातें कहती चलती हैं। वे पता नहीं कविता में जिंदगी के सुदूर सफर की पीडाओं का वर्णन करते हैं-

यह किसीको भी पता नहीं कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले। सुबह मिले था श्याम। यह जिंदगी की लंबी राह है। जिसे जैसा मार्ग मिलता हैं वह उसे ठीक समझ कर चलता हैं। उसका क्षेत्र सीमित रहता हैं जैसे किसी सीमित स्थान के था अहाते में मेहंदी लगी है और भीतर कोई घर है। बाहर पीले रंग की कनेर प्रसन्न है। जमीन गीली और ऊँचा बरगद का पेड़ है। मन तो केवल कल्पना करता है, गंभीर होकर वृक्ष

के तले बैठकर मन को टटोलता है। सोचता है, जिसे जो राह मिलती है वह चलता है। अपने तृप्त अनुभवों की, मिलने-जुलने की वह तुलना करता है। क्या ये अनुभव सही हैं या केवल यह आभास है, चमक है। दोपहर की तेज, भूरी धूप चारों ओर गरम धारा के समान रेंगती चली जा रही थी। काल कठिन था किंतु जब तुम्हारे सिर पर मित्र-सी बरगद की छाया गहरी और सपनीली-सी फैलेगी तब इस एकांत में आशादायी ऊषा तुम्हारे दिल को छू जाएगी। लाखों आँखों से गहरी मन की तृषा तुम्हें देखते रहेगी। अन्य लोगों की प्यासी आँखे तुम्हारी ओर ही लगी हुई है। वे आत्मीय और प्रसन्न है। मानव की मानव के प्रति पुकार जैसी असाधारण-अनन्य होती है। लाखों आँखों से वह भव्य तृषा तुम्हें ही देखती बैठेगी। वह इतने समीप है जैसे लाल रंग से युक्त भरा हुआ आसमान आँचल फैलाकर बैठा हो।

अपनेपन की प्रकाश-वर्षा में रक्त-स्नात किंतु हँसता हुआ जन सागर अपनी गंभीरता को छोड़ चंचल बन जाएगा। पीड़ा, दर्द की सहनशक्ति खत्म होते ही भयानक रूप निर्माण होना स्वाभाविक ही है। उनके मुख है या केवल आलोकयुक्त आँखें हैं जो हमेशा तुम्हारी गहराई का अंदाजा लगाने के लिए और अधिक गहराई में डूब रही हैं। जब तुम्हारे मन के सागर में अजीब हलचल होगी, तब ऐसा लगेगा कि अनजाने रत्नों की अपहचानी-सी चोरी करते हुए तुम पकड़ लिए गए हो, वे तुम्हारे बस आ जाने से कस लिए गए हो तब तुम्हें अचानक ऐसा लगेगा कि इन स्फुलिंगों के समूह का, सबकी प्रतिभाओं से जो एक अग्निव्यूह हृदय में बना है, जो ठंडी, पत्थरों की सतहें छायी हुई थी वह अचानक काँप उठी, फूट पड़ी, टूट पड़ी और भीतर की वह आग निकल पड़ी। अब तक बंद-मिटा हुआ कमल इस अग्नि ज्वाला से खिल उठा। आज तक लोगों के दिलों में दुख-दर्द, पीड़ा की टीस थी, जब तक वे सहन करते रहे तब सब कुछ शांत, ठंडा था किंतु अब सहन शक्ति की मर्यादा टूटते ही उनके भीतर की भावनाओं की आग फूट पड़ी। मन सोचता है- ''यह कैसी घटना है या केवल सपना है।'' कमल-कोष के पराग-स्तर पर खड़ा हुआ तभी अचानक एक शक्ति या रहस्य पुरूष दोनों हाथों से आसमान को थामता हुँआ प्रकट हुआ और धीरे धीरे वह निकट आने लगा, उसकी उत्कट इच्छा है कि, ''(हमे) तुम्हें कंधे पर बैठा कट खुद् तक घुमाने के लिए जाऊ।'' जीवन की इस सुदूर यात्रा में, खोज में आत्मचेतना को अनेक खतरों से जूसना ही है।

दिल की धकधक में दर्द सर्वत्र फैल चुका है किंतु उसके अंतमें मिठास, विकासात्मक युग का निर्माण होगा, प्रत्येक मनुष्य गति को सुनकर, तुम प्रत्येक व्यक्ति के चरण के मार्ग बनकर उनके साथ चलोगे। केवल आस्थाएँ तुम्हें दरिद्र बनायेगी, क्या खुम गरीबी ही भोगना चाहते हो? पर नहीं तुम तो अनन्य होंगे, तुम प्रसन्न होंगे, क्योंकि आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकाएगीं। वह तुम्हें कहीं पर भी ले जाएगी। कवि का कहना है कि केवल ''आस्था के भरोसे कुछ नहीं होगा। तुम्हारे भीतर की चेतना तुम्हें उकसाएगी क्योंकि उसे तुम्हारी शक्ति का अंदाजा हो गया है।'' कवि का आत्मसंघर्ष में बहुत विश्वास है।

४.३.३.४ मुक्तिबोध के काव्य में विलक्षणता और समाज-बोध-

गजानन माधव मुक्तिबोध की जिंदगी गरीबी, अभावों और सामाजिक विसंगतियों से जूअने की करूण कहानी है। भीतर और बाहर के निरंतर संघर्ष ने उनके स्वास्थ को जर्जर कर दिया था। वे प्रगतिशील चेतना के सशक्त कवि और गहरे आलोचक थे। इनकी कविताएँ सबसे पहले 'तारसप्तक' द्वारा सामने आई। इनकी रचनात्मक के महत्त्व का पता इसी बात से चलता है कि लेखन-कार्य प्रयोगशील तथा नयी कविता के आंदोलन के जिस दौर से गुजरा, उनकी लीक छोड़कर चला और इस स्थिति के बावजूद भी वे दोनों ओर से अभिनंदित हुए।अपने युग की प्रगतिशील चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए उसकी संकीर्णताओं को

भी तोड़ा और रचनाकार की मूलभूत ईमानदारी की रक्षा करने में खुद टूट गए किंतु उन्होंने समझौता नहीं किया न सुख-सुविधाओं से न किसी अवरोधों से।

मुक्तिबोध ने अपने समय की भयानक सच्चाई को अभिव्यक्त करने का हौसला दिखाया था। अतः उसके लिए उन्होंने अतियथार्थवाद और फैंटसी का भी आधार लिया। मध्यवर्ग के होने के कारण आत्मसंघर्ष की अभिव्यक्ति उनके काव्य में उपलब्ध होती है। उन्हें मानसिक और सामाजिक संघर्ष के कवि भी कहा जाता हैं।

साठ के दशक में प्रयोगवाद को अपने में समाविष्ट करके निर्माण होनेवाली काव्यधारा को नयी कविता संज्ञा दी गई। मुक्तिबोध के अनुसार- ''नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। नयी कविता का स्वर एक नहीं विविध है।'' इसने व्यक्ति-चेतना के स्तर पर आकर व्यक्ति की वेदना और समग्र रूप में इसे ही समाष्टि की वेदना के रूप में चित्रित किया है। वेदना के कई स्तर हैं- व्यक्तिगत, युग-संगास, सांसारिक विषमताएँ, सामाजिक विसंगतियाँ आदि।

नयी कविता क्षणबोध की अभिव्यक्ति को महत्त्व देती है। कुठा, विघटन, नग्नता, खोखलापन, मानवीय मूल्यों का पतन, नये को ग्रहण करने के साथ ही आत्मान्वेषण, लघु-मानव को जीवन की पूर्णता के रूप में देखने की दृष्टि- ''उनकी दृष्टि से लघुमानव वह है जो अपनी संपूर्ण संवेदना भूख, प्यास आदि से उपेक्षित हैं।'' अर्थात् नया कवि व्यष्टि और समष्टि के बीच एक विशेष संबंध सूत्र स्थापित करना चाहता है। इसलिए उसका जुड़ाव लोक से अधिक है। मुक्तिबोध ने लोक की अनुभूति, सौंदर्य-बोध, प्रकृति और अन्य समस्याओं को बड़ी उदार मानवीय भूमि पर स्वीकार किया हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में प्रगतिवादी तथा मार्क्सवादी चिंतन के साथ प्रयोगवादी चेतना भी दिखाई देती है। इनके काव्य में व्यक्ति की संकीर्ण सीमा को तोड़कर व्यापक सामाजिकता का स्पर्श करने की तड़प दिखाई देती हैं। इसीलिए सामाजिक यथार्थ के दर्शन भी अनेकविध रूपों में होते हैं। सामाजिक यथार्थ के रूप में उनकी आस्था निम्न-मध्य वर्ग की दयनीय स्थिति, शोषित वर्ग के प्रति करूणा एवं सहानुभूति का निर्माण करती हैं।

मुक्तिबोध के मन में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति घोर आक्रोश था क्योंकि यह व्यवस्था केवल मुटिभर लोगों के नियंत्रण में रहती हैं और समस्त सामाजिक सुख-साधनों को भी अपने ही कब्जे में रखती है। परिणामतः उत्तम आदमी का जीना कठिन हो जाता है, इसलिए अनेक स्थानोंपर उनका तीव्र आक्रोश भरा स्वर उभरकर आया है। वे पूंजीवादी व्यवस्था को ही खत्म कर देना चाहते हैं। मुक्तिबोध ने लिखा हैं कि- मैं तो सिर्फ मेहनत पर, अकारथ मेहनत पर, उस मेहनत पर जो अपना पेट भी नहीं भर सकती, उस मेहनत पर, जो बहुत सज्जन है, उस सहनशील श्रम पर लिखने वाला हूँ, उस श्रम का चित्रण करना चाहता हूँ, जिसका बदला कभी नहीं मिलता और जिसे आये दिन आत्मबलिदान और त्याग की नसीहत दी जाती हैं। मुक्तिबोध मानव के मनोविकार और विदुपताओं के लोभी दानवों का अत्यंत स्पष्ट चित्रण किया है, उसीतरह राजनितिक सत्ताधारियों, मानव-विरोधी प्रवृत्तियों का भंडाफोड किया हैं। सामाजिक अव्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

फैंटेसी के प्रयोग से मुक्तिबोध के काव्य में विशेष नवीनता का प्रवेश हुआ है। यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही उन्होंने इसका प्रयोग किया है। उनकी अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस आदि कविताएँ इसी फैंटेसी पर आधारित हैं। क्योंकि अभिव्यक्ति का उनका अपना एक सबल माध्यम रहा है। मुक्तिबोध की कविता की विशेषता है समकालीन जीवन की वास्तविकताओं से साक्षात्कार करना। जिसमें जीवन के प्रति मोह टूटा

है, विद्रोह और आक्रोश का स्वर तीव्र बना हैं, संसार के प्रति जागरूकता, समाज और राजनिति के अंतर्सूत्रों की खोज, उनकी समझ, आक्रमण, भ्रष्टाचार, नेताओं के झूठे आश्वासन, महंगाई, बेरोजगारी आदि विषमताओं के कारण मोहभंग की स्थिति बन गयी है। लोक के लिए बनी व्यवस्था ही उनकी उपेक्षा करने लगी। इसलिए भारतीय परिवेश की विषमताओं, असंगत बातों समाज का खोखलापन, जड़ता से विषम जाल को कवि उतारना चाहते हैं। एक ओर व्यक्ति की पीड़ा है तो दूसरी ओर जीवन में छायी हुई विषमता के प्रतिआक्रोश की अभिव्यक्ति हुई हैं। अर्थात् मुक्तिबोध का काव्य जितना काल-संस्पृक्त है उतना ही लोक संपृक्त रहा है।

मुक्तिबोध में क्रांति का स्वर प्रखर है किंतु अस्त्रों-शस्त्रों की अपेक्षा वे विचारों की क्रांति के समर्थक हैं। उन्हें काला रंग बहुत प्रिय था। इसलिए उनके काव्य में अंधकार के अर्थवाले अनेक शब्द प्रयोग मिलते हैं- जैसे- काला, श्याम, सावला, रात, तम-अंतराल, स्याही, तिमिर आदि। मुक्तिबोध और उनकी काव्य-रचना पर विचार करते हुए डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा हैं कि- ''गजानन माधव मुक्तिबोध एक संघर्षशील व्यक्ति थे। उनमें अनेक मानवीय गुणों के साथ-साथ विद्रोह प्रियता थी।..... उनकी रचनाओं वैयक्तिक विवेक, मानवतावादी दृष्टिकोण, आत्मचेतना, व्यक्ति की, गरिमा आदि के रूप में आधुनिक भावबोध स्पष्टता के साथ उभरा है।'' उन्होंने रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, यांत्रिक जीवन पद्धति और सभ्यता की विसंगतियों के बीच नवीन मूल्यों की निर्मिती के लिए आकुलता व्यक्त की है। अपने जीवन में वे निरंतर संघर्ष करते रहे। इसलिए परिवेश की स्थिति त्रस्त जीवन पर उनकी दृष्टि केंद्रीत थी। उनके व्यापक अनुभवों के कारण रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं- मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं। जिनका अनुभव जगत् बहुत व्यापक हैं जो अपने परिवेश के जीवन से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए हैं। उनकी प्रगतिवादी दृष्टि परिवेश-बोध, सामाजिक-चिंतन और अनुभव वैविध्य को और बढ़ा देती है। इसलिए नई कविता के अग्रज कवि सच्चे अर्थ में मुक्तिबोध ही हैं। लोक-परिवेश से जुड़े रहना ही उनकी बड़ी शक्ति है। उन्होंने वर्तमान साहित्यिकों के प्रति अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा हैं कि- ''हमारे बहुत से कवि और कथाकार मारे डर के, उस वास्तव को नहीं लिखते हैं जिसे ये भोग रहे हैं, क्योंकि ये उस वास्तव से उड़ जाना और उड़ते रहना चाहते हैं। अनुभूत वास्तव का आज जितना अनादर है उतना पहले कभी नहीं था।''

मुक्तिबोध इस बात को समझते हैं कि साहित्यिक या लेखक ही सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों की ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। इसलिए अपनी रचनाओं में बार-बार रेखांकित करने के लिए तैयार रहते हैं। लेखन के लिए कवि अपने को अभिशप्त मानता है और यही अभिशाप रचना के लिए आवश्यक होता है। आत्मसंघर्ष में इतना विश्वास और संतोष निर्माण करना अन्य कवियों के लिए असंभव है। मुक्तिबोध में मुक्ति का बोध आरंभ से रहा है भले ही वह काल्पनिक हो। अपने काव्य में उन्होंने तम, अंधकार जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया हैं वे विसंगति के साक्षा हैं। कवि जीवन के जिस अभावों में जीवन जीता है अर्थात् उन परिस्थितीयों से मजबूर होकर ही आत्म-संघर्ष के लिए वह तैयार होता है। इसलिए उसे व्यथा, निराशा. अभाव, खून के धब्बे. हड्डिया, रामशान आदि प्रेरणा देते हैं। मुक्तिबोध का मूल्यांकन करते हुए अशोक वाजपेयी ने लिखा है कि- मुक्तिबोध की दृष्टि से अनुभव या विचार दोनों स्तरों पर काव्य का सरलीकरण अर्थात् सत्य का सरलीकरण संभव नहीं। अतः ये आस्था और संशय, बेचैनी और ऐठन समाज की टकराहट से ही पैदा होते है। यह अभिव्यक्ति तभी आत्म-संभवा बन सकती है जब समाज के दर्द को निकट से देखा-परखा, भोगा जाएँ। विचारों और भावों की सही अभिव्यक्ति इसी टकराहट के बाद ही संभव हैं।

मुक्तिबोध का आत्म-संघर्ष उनकर भोगा हुआ सत्य है। वर्तमान समाज की कृत्रिमता, छल-

विश्वासघात, संत्रास और मुखौटे लगाए हुए विविध चेहरों ने मजबूर होकर उन्हें अंतर्मुखी बनने और आत्म-संघर्ष करने के लिए बाध्य किया है। उनका आत्म-संघर्ष हरेक संवेदनशील प्राणी का प्रभावित करता है। आत्म-चिंतन की प्रेरणा देने वाला यह कवि खुद अपनी पहचान बना गया है।

४.३.३.५ मुक्तिबोध के काव्य का कलापक्ष-

मुक्तिबोध अपनी पीढ़ी के विशिष्ट कवि रहे हैं। इनका अनुभव जगत् बहुत है जो अपने परिवेश के जीवन से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए हैं। अतः कवि को रूमानी भूख-प्यास के सीमित दायरे से बाहर निकलकर विविध छवियों, प्रश्नों और संवेदनाओं से भरे जीवन के बीच ला खड़ा कर दिया है। कवि की प्रगतिवादी दृष्टि उसके परिवेश-बोध, सामाजिक चिंतन और अनुभवों की विविधता को और बल देती है। जीवन के इन बहुविध अनुभवों के लिए कवि ने परंपरित भाषा का अधिक प्रयोग किया है। तारसप्तक के बाद की कविताओं में उनकी भाषा नई, सधन जीवनानुभवों से युक्त होते गई। अनुभवों के बड़े-बड़े शिलाखंड एक-दूसरे से असंबद्ध इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उनकी इस असंम्बद्धता में भी संबद्धता का एक सौंदर्य है। इससे भाषा बोझिल, कठिन होने पर भी पाठक कवि की भावनाओं में बंध जाते हैं।

मुक्तिबोध में फैंटेसी है अर्थात् एक जादुई कथा में आधुनिक जीवन-अनुभवों की अभिव्यक्ति है। लगता है कि पाठक किसी जादुई लोक में धूम रहा है, जहाँ रह-रहकर दृश्य बदलते हैं, तरह-तरह के विचित्र व्यापार दिखाई पड़ते है। जादुई चमत्कार होते हैं और पाठक भय, घृणा, आक्रोश, यातना, आत्महीनता, शक्ति के मिले- जुले आधुनिक जीवन-अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए रचा गया काव्यलोक है।

मुक्तिबोध सामाजिक जीवन यथार्थ के कवि हैं। उनके अनुभव वर्ग-सिध्दांतों से नहीं संघर्षमय जीवन-भोग से निर्मित हैं। उनके इस संघर्षमय जीवन में पीड़ा है, पराजय हैं, सामाजिक विकृतियों का तीखा बोध है। किंतु लगाता है कि कवि अंधकार में अकुलाता हुआ भी प्रकाश की खोज से हारा नहीं है। यह प्रकाश ऊपर से नहीं बरसता, अपनी आत्मा की पीड़ा से ही फूटता है और विवेक-दृष्टि से दिखाई देता है।

मुक्तिबोध ने प्रतीक, बिंबादि कलातत्त्वों से भाषा के द्वारा विषयों की अभिव्यक्ति की है- नागिन, कुआ आदि प्रतीकों द्वारा आंतरिक पीड़ा ही व्यक्त करते हैं- * तिमिर विवर में पड़ी अशांत नागिनी-
छिपी हुई तृषा.......
* ...... शुष्क है अथाह यह कुआँ
कि अंधकार- अंतराल में लगे......

उनके काव्य में बिंबों का भी प्रयोग किया हुआ मिलता हैं- जैसे- ''गंदी बस्तियों के पास नाले पार। बरगद है। उसी के श्याम तल में वे। रंभाती कई गायें। कि पत्थर ईट के चूल्हे सुलगते हैं। फुदकते हैं वहीं दो-चार। बिखरे बालवाले बालकों के श्याम गंदे तन। व लोहे की बनी स्त्री-पुरूष आकृतिया। दलिद्दरके भयानक देवता के भव्य चेहरे वे। चमकते धूप में!''

मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं में एक काव्यवृत्त है जिसे फैंटेसी कहते हैं। फैंटेसी का नवप्रयोग उनके काव्य की परम विशेषता है। इनसे दो प्रकार की स्थिति होती हैं- एक यह है कि एक कविता में एक ही बड़ी फैंटेसी होती है। उसके भीतर कई छोटी- छोटी फैंटेसियाँ रहती हैं अर्थात् यह सब अनुभवों की ही उपज होती हैं। दूसरी स्थिति में एक ही कविता में कईं फैंटेसियाँ होती हैं। उनके काव्य का रूप बौद्धिक है जिसमें उनका यथार्थवादी चिंतन के दर्शन होते हैं। इस यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए वे फैंटेसी को

एक सशक्त माध्यम मानते हैं क्योंकि वे एक ओर युग के अंतर्विरोध को सजीव अभिव्यक्ति प्रदान करती है तो दूसरी ओर कवि के अंतर्द्वंद्व की स्पष्टता से प्रस्तुति करती है। अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस कविताएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। प्रतीकों में गाय, नागिन, तम, तिमिर आदि का उन्होंने प्रयोग किया हैं।

उनकी विचारधारा के प्रवाह में बिंबों का फैलाव है किंतु उनमें एकरूपता दिखाई नहीं देती। शायद वे चिंतन में खो जाने के कारण उनके अनुभव भी बिखरे-बिखरे से लगते हैं। उनकी अनुभूति वैयक्तिक स्तर के साथ ही परिवेश से गहरी जुड़ी हुई हैं। आम-मनुष्य की संवेदना, श्रम, भूख, प्यास, मानसिक आँच को अपने काव्य में स्थान देकर, जिन मुटिभर लोगों ने उनका जीवन दुभर कर दिया है उस व्यवस्था को वे मिटा देना चाहते हैं। अतः आक्रोश, विद्रोह की भावना उनकी कविता में उभरकर आयी हैं।

जिंदगी, इस्पात, नुक्कड़, जिंदगी, वास्ता, जिगर, अजीब, आसमान, स्याह, गुम्बज, खतरा आदि अरबी-फारसी शब्द;

नेतृत्व, विस्मित, दृश्य, दुःस्वप्न स्थितप्रज्ञ, बुद्धिमान, ग्लानि, आकृति, अस्त्र-शस्त्र, भग्नता, तृषित, यत्न प्रस्तरी, प्रज्वलित, उत्कालित आदि तत्सम; किंग्सवे, एलागिन, काफे, ब्राशिए, प्रोपेगण्डा, होटल, डैश, वायालिन आदि अंग्रेजी शब्द;

खून में रंगना, खरोंच मारना, मन पिघलना, मुँह बगासी लेना, मन उचाटना, मन टटोलना, घुलना-मिलना, खतरों से जूझना आदि मुहावरे;

उदासी से पुती गाये, उपेक्षित सत्य के समुदाय, खूबसूरत शान की नायलॉन भब्भड, दलिद्दर के शनिश्चर, गऊ चेहरे, रंभाती हुई गाये, फुदकते बच्चे, उचटता मन, सुसंस्कृत सौम्य चेहरे, गंदी बस्तियाँ, पृष्ठों का हृदय, सुकोमल रश्मों के पुंज, जिंदगी की कोख, छिपी हुई तृषा, अपूर्त स्वप्न-लालसा, भीमशांति आदि विशेषण, उपमानों के प्रयोग से मुक्तिबोध की भाषा समझनेलायक बनी है। अनेक स्थानों पर उनके भावों को समझना कठिन है फिर उनकी भाषा की विलक्षणता आकर्षणीय है।

४.३.४ शब्दार्थ

१) मेरे लोग

धुमैली - मटमैली अस्पष्ट
पुती - लिपी-पुती-रंगाना
बस्ट- धड़, धुल धक्कड - व्यर्थ, दरिद्र, निकम्मा
नायलॉन भब्भड - रासायनिक प्रक्रिया
किंग्सवे - स्थान का नाम
ठठरी - अस्थिपंजर
चिलकना - चमकना
सान्द्र - घनीभूत
दलिद्दर - दरिद्र, निकम्मा

२) मुझे पुकारती हुई पुकार ढूह - टीला, ढेर

प्रलंबित-लंबी, सहारा देनेवाली
चिलचिलाता - रूखा, गर्म, शुष्क
असंज्ञ - बिना नाम की
प्रस्तरी - कठोर
अचक - अचानक
विवर - बाँबी
प्रवंचना - छलना
रेंगना - धीरे धीरे चलना
गुबंज - घुम्मट
सधना - कार्यसिद्ध होना

भग्न - खंडित, निराश
झाड-झंखाड - कँअीली झाडियों का समूह
अचक - विस्मित
सटस्पटर - तुच्छ, मामूली
खैबरी - दरिया
ध्वंसिनी - विनाशकारी
उजाड - वीरांन, सूना
अजान - अज्ञात, नासमझ
विरूप - कुरूप, भद्दा

३) पता नहीं
अहात - चहार-दीवारी से घेरी हुई जगह
थाह - तल, गहराई का अंदाजा
उत्कलित - खिलना
थामना - रोकना, पकड़ना
उरस-स्पृशा - मन की इच्छा

४.३.५. सारांश

गजानन माधव मुक्तिबोध ने काव्य के अतिरिक्त कहानी उपन्यास आदि पर लेखन किया। अहिंदी भाषिक होकर भी उन्होंने हिंदी साहित्य में किया हुआ योगदान अमूल्य हैं। प्रथम 'तारसप्तक' के प्रथम कवि के रूप में उन्हें अज्ञेय ने स्थान दिया किंतु उनका लेखक कार्य सबसे भिन्न रहा। उनके प्रसिध्द काव्यग्रंथ हैं- चांद का मुह टेढ़ा है भूरी-भूरी खाक-खाक धूल। उन्हें संस्कृत, फारसी, मराठी, अंग्रेजी, हिंदी का ज्ञान था। उनकी कविताओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है।

उनका जीवन अभावों के संघर्ष के कारण निखर गया भोगे हुए जीवन के कारण उनके काव्य में सच्चाइयों के लिए उन्होंने अपने मन के भावों को फैंटेसी के आधार पर और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। व्यक्तिगत वेदना को उन्होंने समाष्टि के रूप में व्यक्त किया है। लघुमानव-उसकी भूख, प्यास, संवेदना, कुंठा, खोखलापन के साथ आत्मान्वेषण, शोषितों के प्रति करूणा एवं सहानुभूति अर्थात् सामाजिक यथार्थ के प्रति आस्था, तड़प कवि में दिखाई देती हैं।

मुक्तिबोध में क्रांति का स्वर, प्रखर है अर्थात् वे विचारों के द्वारा ही क्रांति करना चाहते हैं। कवि लेखन के लिए अपने आपको अभिशप्त मानते हैं जो रचनाओं के लिए अनिवार्य है। जीवन की विसंगतियों से संघर्ष करते हुए उन्हें व्यथा, उदासी अभाव, निराशा, खून के धब्बे, हड्डिया, शमशान आदि प्रेरणा देते हैं। संशय, बैचैनी सामाजिक संघर्ष के कारण निर्माण होती होते है।अर्थात् यह अभिव्यक्ति आत्म-संभवा बन सकती है जब कवि समाज के दर्द-पीड़ा को देखता नहीं तो स्वयं भोगता है तभी सच्चि भावाभिव्यक्ति होती है जिसे मुक्तिबोध की कविता में देखा जा सकता है।

मुक्तिबोध की गठरी में परिवेश से प्राप्त बहुत गहन भाव हैं। इन विविध भाव-भावों के प्रदर्शन के

लिए उन्होंने भले ही बोझिल, कठिन भाषा का प्रयोग किया है किंतु पाठक कवि की उन भावनाओं में डूब जाता है। उन्होंने फैंटेसी के द्वारा रहस्यमय जादुई कथा में अकुलाता हुआ भी प्रकाश की खोज से हारा नहीं है। यह प्रकाश ऊपर से नहीं बरसता किंतु आत्मा की पीड़ा से ही फूट निकलता है जो विवेक - दृष्टि से ही दिखाई देता है। नागिन, गाय, कुआ, वीरान जंगल, सूने-भग्न मंदिर आदि प्रतीकों के द्वारा अपनी आंतरिक पीड़ा व्यक्त की है। मुहावरे बिंब विविध भाषिक शब्दों के द्वारा उन्होंने भाषा में आकर्षण बनाएँ रखा हैं। प्रयोगवादी खेमे के कवि किंतु प्रगतिवादी चेतना का भी उनपर प्रभाव लक्षित होता है।

४.३.६. स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- पठित कविताओं के आधार पर मुक्तिबोध के काव्य की समीक्षा कीजिए।
- मुक्तिबोध के काव्य का सामाजिक बोध स्पष्ट कीजिए।
- मुक्तिबोध के काव्य के कलापक्ष का विवेचन कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

- मुक्तिबोध की पता नहीं कविता का आशय
- मुक्तिबोध की प्रतीकात्मकता
- मुझे पुकारती हुई पुकार का तात्पर्य

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- मुक्तिबोध की काव्य-रचनाओं के नाम लिखिए।
- मुक्तिबोध की कविताओं में अंधेरे से संबंधित आए हुए अन्य शब्द लिखिए।
- सुसंस्कृत चेहरों के आवरण को मुक्तिबोध किन शब्दों में वर्णित करते हैं?
- अंतराल का तला किससे भरा हुआ हैं?

घ) संदर्भ स्पष्टीकरण

- जिंदगी की कोख में जनमा........नये इस्पात को पाने।
- मुझ को है भयानक ग्लानि...... निकालूंगा
- पुकार ने समस्त खोल दी छिपी प्रवंचना...... शुष्क ही कुआँ रहा।
- शून्य कक्ष की उदास...... पुकार खो गयी कहीं.....
- लाखों आँखो से तुम्हें देखती बैठेगी...... विरूद्ध चंचल लेगा।
- अपनी धकधक...... प्रसन्न होगे!

च) सही पर्याय लिखिए

- चांद का मुख टेढ़ा है काव्य संग्रह के कवि कौन है?

अ) अज्ञेय ब) माथुर क) मुक्तिबोध ड)नागार्जुन

- बरगद के पेड़ के नीचे संध्या के समय मुक्तिबोध ने किसे बैठे हुए देखा?

अ) गायें   ब) बैल   क) बकरियाँ   ड) भेड़े

- तिमिर विविर में अशांत नागिनी सी कौन पड़ी थी?

अ) अस्थि   ब) क्षुधाक)तृषा   ड) धूप

- मुक्तिबोध के सामने शक्ति-पुरूष हाथों में क्या थामता हुआ प्रकट हुआ?

अ) आसमान ब). कमल   क)वासना   ड) मिठास

४.३.७. स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य

- पठित कविताओं से मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्दों की सूची तैयार किजिए।
- मुझे पुकारती हुई पुकार का अर्थ समझने का प्रयत्ने करें।
- अंधकार के लिए मुक्तिबोध किन-किन शब्दों का प्रयोग करते हैं।
- मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'ब्रह्मराक्षस' को पढकर उनके विचार समझने की कोशिश करें।

४.३.८. संदर्भ- अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- आयाम - संपा- विश्वनाथ गौड, ललित शुक्ल
- अनभै- संपा- रतनकुमार पांडेय अप्रैल- जून २००३
- राष्ट्रवाणी - संपा. - सु. मो. शाह, मार्च-अप्रैल १९९९
- हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास - डॉ. सभापति मिश्रा

इकाई : ५
जहीर कुरेशी की चुनिंदा गजलें

अनुक्रम

५.१ उद्देश्य
५.२ प्रस्तावना
५.३ विषय - विवरण
 ५.३.१ गजलों का भावार्थ
 क्रमांक ३,५, १०, ११, १४
 १५, २२, २४, २५, ३०
 ३४, ३७, ४३, ४४, ४५
 ४६, ४८, ४९, ५०, ५१
 ५.३.२ आम आदमी का जीवन-चित्रण
 ५.३.३ वर्तमान राजनीति का चित्रण
 ५.३.४ स्त्री की यातनामयी जिंदगी का यथार्थ
 ५.३.५ विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण
 ५.३.६ जनता की संघर्षशील मानसिकता का चित्रण
 ५.३.७ आशावादी भावना का चित्रण
 ५.३.८ जहीर कुरेशी की गजलों का कला-पक्ष
५.४ शब्दार्थ
५.५ सारांश
५.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न
५.७ स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य
५.८ संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

५.१ उद्देश्य

* जहीर कुरेशी की गजलों का अर्थ समझेंगे।
* जहीर कुरेशी की गजलों और उनके कथ्य से परिचित होंगे।
* जहीर कुरेशी की गजलों का तकनीक समझ सकेंगे।
* जहीर कुरेशी की गजलों में अभिव्यक्त आम-जनता की आशावादी भावना को समझ सकेंगे।

५.२ प्रस्तावना

समकालीन गजलकारों में जहीर कुरेशी एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। अब तक उनके छह गजल-संग्रह

प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से वर्तमान समाज, राजनीति तथा सांस्कृतिक पारप्रेक्ष्य को उद्‌घाटित किया हैं। उनकी गजलें आम आदमे के समग्र जीवन को अभिव्यक्त करती है, साथ ही मानवीय-मूल्यों तथा नीति तत्त्वों का संस्कार करती है। भावों की विविधता से ओतप्रोत जहीर कुरेशी की गजल अपनी कलागत सुंदरता के कारण भी विशेष उल्लेखनीय लगती है। उनकी गजलों में काफिये का अत्यंत सफल, सटीक, सार्थक तथा सुंदर प्रयोग दृटिगोचर होता हैं। वे अपनी गजलों के लिए आम बोलचाल की भाषा का चमन करते हैं। अत: उसे समझने के लिए किसीभी प्रकार के शब्दकोश की आवश्यकता महसूस नहीं होती। उनकी गजलें समाज की विभिन्न समस्याओं के साथ-साथ आम आदमी के जीवन-संघर्ष, आशा-निराशा, सुख-दु:ख को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी गजलों में समाज, साहित्य, संस्कृति, नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य, राजनीति, अर्थव्यवस्था, अपराध प्रवृत्ति, महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ यथा विकृतियाँ, शोषकों का षड्‌यंत्र, जनता की सहनशीलता, कायरता तथा उनकी शक्तियाँ सामर्थ्य आदि कई विषय दृष्टिगोचर होते हैं। प्रतिकूल पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा अभावग्रस्त जिंदगी के परिणामण स्वरूप उनकी गजल भी सामान्य जन का पक्ष लेते हुए व्यवस्था से लोहा लेती हैं। अब तक कुरेशी के कुल छह गजल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। (१) लेखनी के स्वप्न (२) एक टुकडा धूप (३)चाँदनी का दु:ख (४) समंदर ब्याहने आया नहीं है (५) भीड में सबसे अलग और (६) पेड तन कर भी नही टूट। अभी भी उनकी कलम गजल के क्षेत्र में उतनी ही सशक्तता से चल रही हैं। जहीर कुरेशी की गजल में मानवीय-मूल्य, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक विसंगतियों तथा विकृतियों का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। पठित गजलों के भाव-अर्थ सौंदर्य से यह बात स्पष्ट होगी।

५.३ विषय विवरण

५.३.१ गजल

''अनुभवों की पाठशाला ने सिखाया है बहुत,

जो सिखाया है, वो मेरे काम आय है बहुत।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी कहते हैं कि अनुभवों की पाठशाला अर्थात् जिंदगी के अनुभवों ने हमें बहुत सिखाया है और जो भी मैनें सीखा है वह मेरे बहुत काम आया हैं। अर्थात् गजलकार कहते हैं कि जिंदगी हमें जो कुछ भी सिखाती है वह हमें भविष्य में बहुत काम आता है।

लाख रूपए में खरीदा था पिया ने मेरा वर,

वो मेरा सर्वांग होकर भी, पराया है बहुत।

भावार्थ :- गजलकार इस शेर के माध्यम से हमारे समाज की दहेज प्रथा तथा पति-पत्नी के संबंधों की असलियत को भी अभिव्यक्त करते हैं। दहेजप्रथा से पीडित स्त्री की मनोदशा को रेखांकित करते हुए गजलकार लिखते हैं कि लाख रूपये दहेज देकर पति खरीदने पर और उस लडकी का सर्वांग होकर भी उसे अपना पति पराया लगता है। अर्थात् कुरेशी कहते हैं कि लडकी के पिता लाख रूपये दहेज देकर जिस लडके से उसका विवाह करवाते हैं वह उसे प्यार न देकर उसका शोषण करता है। अत: अपना पति ही उसे पराया लगता है।

आप जिसकी धीरता... गंभीरता पर मुग्ध हैं,

उस समंदर ने जहालों को डुबाया है बहुत।

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी समाज के शोषकों के चरित्र को बेनकाब करते हुए कहते हैं कि हम पूँजीपतियों तथा शोषकों के धीर, गंभीर व्यक्तित्व के पर मुग्ध होते हैं, उनके प्रभावित हैं। परंतु सच बात तो यह है कि इस शोषक रूपी समंदर ने कई जहाजों को डूबो दिया है। अर्थात् पूँजीपतियों या शोषकों का व्यक्तित्व भले ही हमें लुभावना लगता हो परंतु असलियत यह है कि इसने कई आम लोगों की जिंदगियों को निगल लिया है।

धीरे धीरे वो कुशल नृत्यांगना बन ही गई,

वक्तने उस एक औरत को नचाया है बहुत।

भावार्थ :- जहीर कुरेशी इस शेर के माध्यम से औरत की विवशताभरी तसबीर रेखांकित करते हैं। वे कहते हैं कि अपनी परिस्थितियों तथा मजबुरियों के कारण कोई औरत न चाहते हुए भी अपनी जरूरतों के लिए एक कुशल नृत्यांगना बन जाती है।

मेरे आँगन में खडा है पेड हरसिंगार का,

जब भी छेडा है उसे, तो खिलखिलाया है बहुत।

भावार्थ :- कुरेशी कहते हैं कि मेरे आँगन का हरसिंगार के पेड को जब भी छेडते हैं कि बहुत खिलखिलाता है। अर्थात् गजलकार कहना चाहते हैं कि हरसिंगार का पेड तथा उसके फूल हम जितना छेडने की कोशिश करते है वह अधिक खिल उठता है।

''आज भी तो है सियासत एक गणिका की तरह,

इस सियासत ने मुझे आजमाया है बहुत।''

भावार्थ :- गजलकार कुरेशी आज की सियासत का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं कि पहले जमाने की तरह आज भी सियासत एक गणिका की तरह ही है। गणिका अपने इशारों पर जिस तरह से अपने चाहनेवालोऽ को नचाती है उसी तरह सियासत भी अपने स्वार्थ के लिए सामान्य जनता को नचाती है। आज तक इस सियासत ने सामान्य लोगों को बहुत आजमाया है।

अब वो पंछी ही नहीं आजाद होना चाहता,

मैनें उस पंछी को पिंजरे से उडाया है बहुत।

भावार्थ :- कुरेशी ने इस शेर में सामान्य जनता की गुलाम मानसिकता का मार्मिक अंकन किया है। जब कोई उसे उसकी गुलामी का अहसास कराता है या उसकी मुक्ति के लिए प्रयास करता है तो वह गुलाम व्यवस्था का इतना आदि हो जाता है कि वह स्वतंत्र नहीं होना चाहता। गजलकार ने पिंजरे में बंद पंछीके उदाहरण के माध्यम सें इस मानसिकता को चित्रित किया है। वे कहते हैं कि जिसप्रकार कोई पिंजरे में बंद पंछीको आजाद करने की, उसे उडाने की बहुत कोशिश करने पर भी वह उडना नहीं चाहता, आजाद नहीं होना चाहता।

५. गजल

''जब भी औरत ने अपनी सीमा-रेखा को पार किया,

पार-गमन से पहले, खुद को कितने दिन तैयार किया।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी ने अपने गजलों के माध्यम से औरत की यातनाभरी जिंदगी का यथार्थ चित्र अंकित किया है। आज के समय में कडे संघर्ष के बाद स्त्री पारंपरिक गुलामी की श्रृंखलाओं को तोडकर, अपनी सीमा-रेखा को पार कर रही है। स्वतंत्र हो रही है। इस दिब के लिए उसने न जाने कितने दिन अपने आप को तैयार किया है। अत: कुरेशी कहते हैं कि जब भी किसी औरत ने अपनी सीमा-रेखा को पार किया है तब इस सदियों की कारा से बाहर निकलने के लिए खुद को कई सदियों तक तैयार किया है।

''जनता को सहने की आदत है, सब कुछ सह लेती है,

किसी कष्ट को लेकर, जनता ने कब हाहाकार किया।''

भावार्थ :- इस शेर में गजलकार जहीर कुरेशी ने जनता की सहनशीलता की आदत का चित्रण किया है। वह अपने पर हो रहे अन्याय के खिलाफ कभी आवाज नहीं उठायी। कुरेशी कहते हैं कि जनता को सहने की इतनी आदत है कि वह सब कुछ सह लेती है। वह अपने हो रहे कष्ट को लेकर या अन्याय के खिलाफ कभी भी आवाज नहीं उठाती।

''वो कारोबारी दिमाग था, सागर तट पर जा बैठा,

लहरें गिन-गिनकर भी उसने लाखों का व्यापार किया।''

भावार्थ:- जहीर कुरेशी अपने गजलों के माध्यम से समाज के विभिन्न पगलुओं का तथा समाज में विद्यमान व्यक्तिओं को रेखांकित करते हैं। इस शेर के माध्यम से उन्होंने व्यापारी मनोवृत्ति के लोगों का सूक्ष्म चित्रण किया है। कारोबारी दिमाग का या वणिक वृत्ति का व्यक्ति हर समय हिसाब-किताब या नफा-नुकसान के बारे में सोचता हैं। गजलकार कहते हैं कि कारोबारी दिमागवाला व्यक्ति सागर-तट पर बैठा व्यक्ति यहाँ बैठकर प्राकृतिक सुंदरता का आनंद न उठाते हुए, लाखों के लेन-देन के बारे में सोचता है या फिर लहरों की सुंदरता को न देखते हुए लहरे भी गिनता रहता है।

द्वन्द्व-युद्ध जैसा, कुछ मन के अन्दर चलता रहता है,

क्यों चलता रहता है, तुमने इस पर कभी विचार किया।

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने वर्तमान राजनेताओं के चरित्र को उद्घाटित किया है। ये राजनेता अपने विपक्षियों पर प्रहार करने के लिए आरोपों के भाषा का ही प्रयोग करते हैं। अगर कोई अपनी ईमानदारी के साथ साथ अच्छे काम भी करता है तो ये राजनेता उनका गलत प्रचार कर उसे बदनाम करते हैं।

''जितनी ताकत होगी उतना ही तो बोझ उठाएगा,

उसने जो भी किया, स्वयं की क्षमता के अनुसार किया।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी की गजलें आम आदमी की जिंदगी का यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। आम आदमी अपनी क्षमता के अनुसार जिंदगी का बोझ उठाता है। वे कहते हैं कि आम आदमी में जितनी ताकत होती है वह उतना ही बोझ (जिंदगी का) उठा पायेगा। आज तक उसने जो भी किया है अपनी क्षमता के अनुसार ही किया है।

''निर्बल कोई भी हो - औरत, हरिजन अथवा शीशमहल,

निर्बल पर ताकरवर ने, हर युग में, अत्याचार किया।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने हमारी अत्याचारी व्यवस्था का पर्दाफार किया है। हर युग में निर्बलों पर अत्याचारी व्यवस्था ने तथा ताकतवर व्यवस्था ने अत्याचार किया है। निर्बल कोई भी हो, औरत, हरिजन या दलित अथवा शीशमहल, हर युग में ताकरवर ने निर्बल पर अत्याचार किया है।

१०. गजल

''हो गए हैं सब ओझल विवादों में,

आदमी उलझा रहा केवल विवादों में।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी इस शेर के माध्यम से विवादों में घिरे आम आदमी की अवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं कि आम आदमी का लक्ष्य राजनेताओं या सत्ताधारियों के विवादों में ओझल हो गया है और इस विवाद के घेरे में आम आदमी भी उलझ गया है। वह तय नहीं कर पा रहा है कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है या कहाँ है ?

''लोग संसद में निगत चालीस वर्षों से,

कर रहे हैं भुखमरी को हल विवादों में।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने वर्तमान खोखकी जनतांत्रिक व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। जनता द्वारा निर्वाचित सांसदों द्वारा संसद में बैठकर जनता की समस्याओं को सुलझाना अपेक्षित है। परंतु सांसद संसद में बैठकर केवल विवाद करते हैं। इसी कारण कुरेशी जी कहते हैं कि संसद में बैठे हुए लोग विगत चालीस वर्षों से सामान्य जनता की भूखमरी की समस्या को न सुलझाते हुए केवल भूखमरी को हल करने के विषय पर विवाद करते आ रहे हैं।

''अपने देखे नहीं दो सम्प्रदायों के,

लोग हो जाते हैं जब पागल विवादों में।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने हमारे देश के साम्प्रदायिक संघर्ष का भी यथार्थ चित्रण किया है। जब दो संप्रप्रदायों में विवाद की स्थिती निर्माण होती है तब लोग पागल से बन जाते हैं। इन्सानियत को भूलकर संप्रदाय को सर्वोपरि मानकर विवाद करते हैं।

''कोर्ट में वादी व प्रतिवादी बहस के बीच,

न्याय होता है बहुत घायल विवादों में।''

भावार्थ :- हमारे देश में न्यायव्यवस्था सामान्य जनता को न्याय दिलाती है। परंतु आज न्यायालयीन प्रक्रिया सामान्य जनता को न्याय दिलवाने की बजाय बहसों में उलझाकर रखती आ रही है। इस वास्तविकता को दर्शाते हुए कुरेशी कहते हैं कि वर्तमान समय में न्याय के लिए प्रतीक्षारत जनता कोर्ट में वादी और प्रतिवादी के बहस के बीच उलझकर रह जाती है और इस विवाद में फैंसकर न्याय घायल होता आ रहा है।

''अब वहाँ पर बाँध बँध पाना असन्भव है,

फैस गया है उस नदी का जल विवादों में।''

भावार्थ :- हमारे देश में जनहितकारी उपक्रमों का तथा सुविद्याओं का विवादों में उलझना भी अब एक व्यवस्था ही बन जाती है। हर विधायक कार्य किसी न किसी विवाद में फैस जाता हुआ दिखायी देता

है। उदाहरण स्वरूप जहीर कुरेशी कहते हैं कि नदी को जल भी अब प्रांतीक विवादों में फैसा जाता है तो उस नदी पर बनने वाला बाँध बँध पाना असम्भव हो गया है।

११. गजल

''काँच के घर में खडे हैं, इसलिए चुप हैं,

लोग पापों के घडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने समाज में व्याप्त विसंगतियों तथा विकृतियों का भी यथार्थ चित्रण किया है। समाज में पाप, अनाचार, अनैतिकता तथा अव्यवस्था इस कदर फैली हुई है कि सभी लोग इस विषय पर चुपी थानकर बैठे हैं। समाज में सामाजिक तथा आर्थिक विषमता ने ही समाज में शोषण का जन्म हुआ है। काँच के महलों में बैठे शोषक,पापी लोग इस व्यवस्था को बनाये रखना चाहते है। इस कारण वे चुप्पी साधकर बैठे रहते हैं। उनका मौन टूटता है तो उन्हें डर है कहीं उनका शीशें का महल कहीं टूट न जायें। उन्होंने अपने शोषण को बरकरार रखने के लिए इतना पाप किया है कि उन्हें डर है कि उनकी एक हरकत उनकी व्यवस्था को तहस-नहस न कर दें।

''नीतियों को गालियाँ देते थे पैदल लोग,

आज घोडों पर चढें हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- सामान्य जनता या विपक्षी लोग हमेशा सत्ताधारी व्यवस्था की नीतियों की कटु आलोचना करते हैं। उस व्यवस्था को, नीतियों को गालियाँ देते हैं। परंतु जैसे ही सत्ता में चले जाते हैं तो चुप्पी साधकर बैठे जाते हैं। गजलकार कहते हैं कि सत्ताधारी व्यवस्था की नीतियों को गालियाँ देनेवाले, पैदल चलने वाले लोग जैसे ही घोडों पर चढ जाते हैं अर्थात सत्ता में बैठ जाता है वे नीतियों को लेकर चुप्पी थामकर बैठ जाता है।

''आइने सच बात कहना चाहते हैं किन्तु,

सामने पत्थर पडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी सामान्य मनुष्य की भीरूता को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि आम इन्सान अपने आँखो के सामने गलत होता देखकर सच बात करना चाहता है परंतु सामने गलत लोगों को पाकर मौन धारण करता है। कवि के शब्दों में कहे तो आईना सच बात कहना चाहता है परंतु सामने पत्थर पडा देखकर चुप्पी साध लेता है।

''झुग्गियों की बात लगती है उन्हें बौनी,

वे हिमालय से बडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी इस शेर के माध्यम से कहते हैं कि झुग्गियों में रहनेवाले लोगों की बात हिमालय जैसे महलों में रहनेवालों को बौनी अर्थात् घटिया या हीन लगती है। इसलिए पूँजीपति लोग अर्थात् महलों में रहनेवाले लोग झुग्गी-झोपडी में रहनेवाली की बात पर चुप्पी साध लेते हैं।

''कैसे टकरा जाएँगे अन्याय-आँधी से,

वृक्ष बालू में गडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी कहते हैं कि जिनकी बुनियाद खोखली होती है, जिनके

ईमान में मिलावट होती हैं, वे अन्याय या आँधी के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकते। अर्थात् जो लोग कमजोर, डरपोक होते हैं वे अन्याय-अत्याचार का सामना नहीं कर सकते, इसलिए वे मौन धारण कर बैठते हैं। जिसप्रकार बालू अर्थात् रेत में गडा वृक्ष आँधी तूफान से नहीं टकरा सकता वैसे ही डरपोक या भयग्रस्त लोग अन्याय का सामना नहीं कर सकते।

''यदि स्वयं चढते तो निश्चित चीखते चेहरे

मित्र सूली पर चढे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से जनता की कायर तथा स्वार्थी मनोवृत्ति का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि हम तब तक अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज नहीं उठाते जब तक वह हम पर नहीं होता। हमारे मित्र पर जब कोई अन्याय-अत्याचार करता है तो हम चुप्पी साध लेते है। गजलकार कहते हैं कि यदि स्वयं को सूली पर चढाया जाता है तो सामान्य आदमी उसके खिलाफ आवाज उठाता है परंतु अपने ही मित्र को सूली पर चढाते देखकर हम चुप्पी साध लेते है।

''कायरों की पाठशाला में अधिकतम लोग,

पाठ जीवन का पढे हैं, इसलिए चुप हैं।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी ने जनता की कायर मानसिकता का चित्रण करते हुए कहा है कि अधिकांश लोगों ने कायरों की पाठशाला में जीवन का पाठ पढा है इसलिए अधिकांश लोग अन्याय-अत्याचार के खिलाफ चुप्पी थानकर बैठे जाते हैं। अर्थात् कायर लोगों के बीच ही रहने के कारण अधिकतम लोग अन्याय-अत्याचार के विरूद्ध कुछ न बोलकर चुप रहते हैं।

१४. गजल

''अनैतिकता के चरमें को बदल कर देखना होगा,

गलत राहों पे वो कैसे गई, ये सोचना होगा।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी ने समाज के विभिन्न मूल्यों का भी चित्रण किया है। समय के साथ-साथ समाज की नैतिक-अनैतिकता की मान्यताएँ भी बदल गयी है। आज न चाहते हुए भी किसी औरत को विवशतावश समाज की नैतिकता के बंधनों को तोडकर अनैतिकता के रास्तों पर चलना पडता है। इसी कारण कुरेशी कहते हैं कि वह औरत गलत राहों पर कैसे चली गयी, इस हमें अनैतिकता के चरमें को बदलकर देखना होगा और सोचना होगा।

''कहाँ तक याद रखिए-खट्टी मीठी, कडवी बातों को,

हमें आगत की खातिर भी, विगत को भूलना होगा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से मनुष्य की पूर्वग्रही दृष्टि तथा अतीत की स्मृतियों के कारण भविष्य को दूषित दृष्टि से देखने की वृत्ति को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि हमें उज्ज्वल आगत तथा भविष्य के लिए विगत की खट्टी, मीठी, कडवी यादों को भूलाना चाहिए।

''विरोधी दोस्त भी है, रोज मिलता है, इसीकारण,

विरोधी के इरादों को समझाना-बूझाना होगा।''

भावार्थ :- कुरेशी ने हमारे समाज की विभिन्न विसंगतियों तथा अंतर्विरोधों को भी अभिव्यक्त किया

है। कई बार हमारे दोस्त भी तात्त्विक स्तर पर हमारे विरोधी होते हैं। रोज मिलनेवाले ये हमारे दोस्त हमें प्रभावित करते हैं। अत: हमें अपने विरोधियों के इरादों को भी समझना-बूझना जरूरी होता है।

''बहुत उन्मुक्त होकर जिन्दगी जीना भी जोखिम है,

नदी की धार को अनुशासनों में बाँधना होगा।''

भावार्थ :- मनुष्य के व्यक्तित्व तथा सर्वांगीण विकास के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। परंतु स्वतंत्रता की मर्यादा भंग होने पर उस परिवेश में जिंदगी जीन खतरनाक होता है। इस संबंध में कुरेशी जी कहते हैं कि बहुत अधिक उन्मुक्त होकर जिंदगी जीना जोखमभरा होता है। नदी का जल अगर प्रवाह छोडकर दिशाहीन बहता हो तो वह अनर्थ करता है। अत: उसे अपनी धारा में बाँधना ही सार्थकता है।

''लडाई में उतर कर, भागना तो का-पुरुषता है,

लडाई में उतर कर, जीतना या हारना होगा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने मनुष्य की संघर्षशीलता को महत्त्वपूर्ण माना है। वे मानते हैं कि जीवन-संघर्ष में उतरकर उससे पलायन करना या भागना बुजदिली या का-पुरुषता है, कायरता है। जीवन के संघर्ष या लडाई में उतरकर हारना या जीतना ही पुरुषार्थ है।

''मनोविज्ञान की भाषा में अपने मन की गाँठो को,

अकेले बन्द कमरे में किसी दिन खोलना होगा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी मनुष्य के मन की गुत्थियों को सलझाते हुए कहते हैं कि मनुष्य के मन में असंख्य विचार तथा भाव-भावनाएँ उभरती हैं और घुटन के रूप में मन में बैठी रहती हैं। इससे कई मानसिक उलझने निर्माण हो सकती हैं। अगर मनुष्य अपने मन की इन भाव-भावनाओं को कहीं अभिव्यक्त नहीं कर पाया तो कई विकृतियाँ निर्माण हो सकती हैं। अगर यह संभव न हो तो अकेले बन्द कमरे में अपने मन को खोलना चाहिए और अपने मन की गाँठो को सुलझना चाहिए।

''बचाना है अगर इस मुल्क की उजली विरासत को,

हमें अपनी जडों की ओर फिर से लौटना होगा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी मे अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत या धरोहर की रक्षा के लिए हमारे देश की प्राचीन जडों की ओर लौटने की आवश्यकता व्यक्त की है। वे कहते हैं कि अगर हमें हमारे देश की उज्ज्वल विरासत या धरोहर को बचाना है तो हमें अपनी जडों अर्थात् प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर की ओर लौटना होगा।

१५. गजल

''भावनाओं के शहर में लोग बेघर हो गए,

जिंदगी से इस कदर जूझे कि पत्थर हो गए।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने वर्तमान समय की विसंगतियों का भी मार्मिक चित्रण किया है। जिंदगी की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति के लिए भी वर्तमान शहराती आदमी संघर्ष करता हुआ, जूझता हुआ दिखायी देता है। शहरों में आपसी रिश्ते इतने खोखले तथा बनावटी औऔर उधले होते हैं कि एक दूसरे से मिलने पर बात तो करते हैं परंतु मदद नहीं करते। इसी कारण इन खोखली भावनाओं के बीच शहर में कई लोग

हमें बेघर दिखायी देते है। शहर की जिंदगी मनुष्य को संवेदनशून्य बनाती है। जिंदगी की जरूरतों की पूर्ति में जुटा इन्सान इतना आत्मकेंद्री बन गया है कि वह दूसरों के सुख-दुःख से भी पसीजता नहीं।

''सर्प बनकर जो हमेशा विष-वमन करते रहे,

एक तख्ती टाँग कर वे लोग शंकर हो गए।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से समाज की कुप्रवृत्ति तथा दोगली वृत्ति को बेनकाब किया है। वे कहते हैं कि जो लोग आज तक साँप की तरह निरंतर गरल या विष फेंकते रहे हैं वे ही अब एक तख्ती टाँग कर शंकर हो गए हैं। अर्थात् जो लोग निरंतर समाज में विष या जहर फैलाते रहे हैं वे ही समय के साथ-साथ अवसर देखकर अपना रूप बदलते हुए स्वार्थ के लिए शंकर अर्थात् भगवान बनने की नौटंकी करते हैं।

''आत्मा के आइनों पर धूल के मेले लगे,

जिन्दगी में आज इतने बवंडर हो गए।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी जीने वर्तमान समाज, में बढती संवेदन हीनता का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि वर्तमान समय में मनुष्य की आत्मा पर धूल के इतनी परतें जम गयी है कि उसकी परदुखकातरता पूरी तरह ढँक गयी है। इस धूल के बवंडर ने जिंदगी को अत्यंत धूँधला कर दिया है। अर्थात् बढती संवेदनहीनता ने संपूर्ण समाज में कृत्रिमता तथा अमानवीय बना दिया है।

''अब किसे अपना कहें, किस द्वार पर आवाज दें,

दोस्त, रिश्ते, फूल सब काँटों के बिस्तर हो गए।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से सामाजिक संबंधों के खोखले रूप को अभिव्यक्त किया है। रिश्ते हमें जीने के लिए ऊर्जा प्रदान करते हैं। परंतु अब इन रिश्तों में स्वार्थ के आ जाने के कारण इन रिश्तों पर विश्वास रखनेवाला व्यक्ति आहत होता है। कुरेशी कहते हैं कि अब सभी रिश्ते, दोस्त तथा फूल भी काँटो का बिस्तर बन गए हैं अर्थात् दुःख पहुँचा रहे हैं। अत: अब यह समझ नहीं आ रहा है कि किसे अपना कहें और किसके द्वार पर सहायता के लिए आवाज दें।

''स्वप्न जिनकी आँख ने पाले सितारों से अधिक,

डुगडुगी के सामने वे लोग बन्दर हो गए।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी वर्तमान राजनेताओं के चरित्र तथा सामान्य जनता के स्वप्नों का चित्रण किया जहीर कुरेशी कहते हैं कि जो जनता अपनी आँखो में सितारों से भी अधिक सपने सँजोती है वही जनता राजनेताओं के षड्यंत्र में फँसकर बन्दर की तरह उलछती-कूदती है। राजनेताओं द्वारा उसे बन्दर की तरह नचाया जाता है।

२२. गजल

''पीठ पीछे से हुए वार से डर लगता है,

मुझको हर दोस्त से, हर यार से डर लगता है।''

भावार्थ : जहीर कुरेशी अपनी गजलों में जीवन के नाना अनुभवों तथा रिश्तों की असलियत को चित्रित किया है। इस शेर के माध्यम से वे दोस्त बनकर दुश्मनों-सा व्यवहार करनेवाले स्वार्थी मित्रों को बेनकाब

करते हैं। वे कहते हैं कि आज समय इस तरह हो गया है कि सब तरफ अविश्वसनीयता का माहौल है। दोस्त ही दोस्त पर अपने स्वार्थ के लिए वार करता हुआ दिखायी दे रहा है। इसी कारण कवि कहते हैं कि उसे पीठ पीछे से हुए वार करनेवाले हर दोस्त तथा यार से डर लगता है।

''चाहे पत्नी करे या प्रेमिका अथवा गणिका,

प्यार की शैली में, व्यापार से डर लगता है।

भावार्थ :- इस शेर में माध्यम से जहीर कुरेशी ने रिश्तों-नातों तथा प्यार में फैली स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण किया है। प्रेम किसे अच्छा नहीं लगता। परंतु अगर वह प्रेम किसी स्वार्थपूर्ति या नफे-नुकसान को मन में रखकर किया जाता है तो ऐसी प्रवत्ति से गजलकार को डर लगता है। कुरेशी कहते हैं कि पत्नी, प्रेमिका अथवा गणिका अगर प्यार की शैली में अर्थात् अपने प्रेम भरे व्यवहार के माध्यम से व्यापार करें तो इस प्रवृत्ति से उन्हें डर लगता है। अर्थात् प्यार भरे रिश्तों में बढती स्वार्थ, लालच तथा व्यापारिक प्रवृत्ति से कुरेशी को डर लगता है।

''संविधानों की भी रक्षा नहीं कर पाई जो,

मूक दर्शक बनी सरकार से डर लगता है।''

भावार्थ :- संविधान (किसी भी देश का) देश की जनता के अधिकारों तथा हकों की रक्षा करता है और संविधान की रक्षा करना तथा उस पर अंमल करना देश की सरकार तथा अप्रत्यक्ष रूप से जनता की जिम्मेदारी होती है। परंतु जब सरकार ही संविधान की रक्षा करने में असमर्थ हो तब तानाशाही ताकतें बढती है। इसी कारण कुरेशी इस शेर के माध्यम से कहते हैं कि जो सरकार संविधान की रक्षा न कर नाकाम बनीं, मूक दर्शक बनी रहती है ऐसी सरकार से डर लगता हैं। इसका कारण यह कि जब संविधान ही न रहेगा तो देश की जनता तथा उसकी सुरक्षा का जिम्मा कौन उठायेगा?

''इस महानगरी में करना पडे कब और कहाँ,

व्यस्तताओं भरे अभिसार से डर लगता है।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगति को अंकित किया है। आज महानगरों में हर व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि किसी मित्र या परिवार जन से मिलने के लिए भी उसके पास समय नहीं है। इन व्यस्तताओं के बीच वह किसी अपने को मिलता भी है तो जल्दबाजी में। आधुनिक आपाधापी से भरे मनुष्य की इस व्यस्तताओं भरी जिन्दगी के बीच किसी मनुष्य का दूसरों को मिलना भी कुरेशी को डरावना लगता है। इसका कारण यह कि उस मिलन या भेंट में किसी भी प्रकार की आत्मीयता का नितांत अभाव दृष्टि गोचर होता है।

''कोई तलवार कभी काट न पाई जिसको,

वक्त की नदिया की उस धार से डर लगता है।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से गजलकार जहीर कुरेशी ने वक्त की महिमा को रेखांकित किया है। समय अखंड, अनंत तथा निरंतर प्रवाहमान होता है। कुरेशी कहते हैं कि इस वक्त की नदिया की धार को आज तक कोई न काट नहीं पाया है न रोक पाया है। काल अजस्त्र तथा अखंड होता है। अभी तक ऐसी कोई तलवार नहीं बन पाई है जो इस वक्त की रफ्तार को काट पायी है। इसी कारण कुरेशी को वक्त की इस धारा से डर लगता है।

''एक झटके में चुका दे जो समूची कीमत,

रूप को ऐसे खरीदार से डर लगता है।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने वर्तमान समय की विसंगति तथा विकृति को अभिव्यक्त किया है। आज पैसों या धन की ताकत के बल पर पूँजीपसि ऐशो-आराम तथा भोग की चीजें बँटोरने में लगे हुए है। इसके कारण समाज में कई प्रकार की विकृतियाँ निर्माण हुई है। हर वह सुंदर तथा मोहक चीज का वे आस्वाद लेना चाहते हैं। जैसेही उस चीज का भोग लिया जाता है उसे बडी बेदर्दी से दूर फेंक दिया जात है। मनुष्य की इस रूप अर्थात् सुंदरता भयभीत है। वह ऐसे उपभोगवादी पूँजीपतियों के घर का टूटा हुआ खिलौना नहीं बनना चाहती।

''हम चमत्कारों में विश्वास तो करते हैं मगर,

हम गरीबों को चमत्कार से डर लगता है।''

भावार्थ :- सामाजिक तथा आर्थिक विषमता भारतीय समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसी आर्थिक विषमता को कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कुरेशी जी कहते हैं कि भारतीय जनमानस का चमत्कारों पर विश्वास तो हैं मगर समाज के गरीब लोगों को चमत्कार से डर लगता है। इसका कारण यह है कि आज तक गरीबों को गरीबी दूर करने के लिए कई बार धोखा दिया गया। नई-नई तरह से ठगा गया है। इसलिए जब कोई गरीबी दूर करने का चमत्कार करने की बात करता है तो फिर से नये तरीके से ठगे जायेंगे, इस बात से आम आदमी डरता है। इस प्रकार कुरेशी ने सामान्य जन की भयभीत मानसिकता को इस शेर के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

२४. गजल

''स्वस्थ रहने की कडी तैयारियों के साथ,

लोग जीवित हैं बहुत बीमारियों के साथ।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने समाज में बढती कुप्रवृत्ति को दर्शाया है। वे कहते हैं कि कोई माली किसी को छूट देकर फुलवारी में प्रवेश तो देता हैं परंतु वे लोग उस फुलवारी को तहस-तहस करते हैं। इस तरह के कुकर्म से अपना मुँह भी काला करते हैं। अर्थात् किसी पर विश्वास कर हम उन्हें अपने घर या देश में प्रवेश तो देते हैं परंतु वे लोग अपने कुकर्म से अपना मुँह तो काला करते ही हैं साथ ही हमारे घर को भी नुकसान पहुँचाते हैं।

''भेट को भी लाभ लेकर बेच देते हैं,

बस, यही मुश्किल है कारोबारियों के साथ।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में रिश्तों में बढती व्यावहारिकता तथा मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति का चित्रण किया है। कोई रिश्तेदार जब एखाद चीज भेंट देता हैं तो उसे सहेजकर रखने की बजाय मुनाफा पाने के लिए उसे बेचने की प्रवृत्ति बढ रही है। कुरेशी कहते हैं कि वर्तमान समय में कारोबार करनेवालों के साथ रिश्ता जोडने में यही मुश्किल हैं कि वे भेंट में मिली चीज लाभ कमाने के लिए बेंच देते हैं।

''उम्र भर, जो शाक-भाजी पर रहा निर्भर,

फैस गया है आज माँसाहारियों के साथ।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी कहते हैं कि समय के साथ-साथ संगी-साथियों के संगत में मनुष्य की आदतों में भी बदलाव आता है। जैसे कोई मनुष्य उम्रभर शाक-भाजी पर निर्भर रहा हो वह माँसाहारियों की संगत में माँसाहारी बन जाता है। अर्थात् संगति का असर मनुष्य पर अधिक बढने लगा है।

''चारे झोकर भी वो कहलाएगा साहूकार,

क्योंकि वो रहता है सत्ताधारियों के साथ।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने सत्ताधिशों की शोषण नीति-तथा अन्याय-अत्याचारों का चित्रण किया है। सभी गरीब, मेहनतकारों का शोषण करनेवाला, उन्हें सूद के नाम पर लूटनेवाला चोर होकर भी सत्ताधारियों के साथ रहने से साहूकार कहलाता है। शोषकों को शोषक न कह साहूकार की उपाधि प्रदान करनेवाली व्यवस्था का कुरेशी ने पर्दाफाश किया है।

''आग लगने में वहाँ क्या देर लगती है,

फूस मिल जाता है जब चिंगारियों के साथ।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने एक उदाहरण के द्वारा समाज में फैलते संघर्ष और विवाद की आग को दर्शाया है। कुरेशी कहते हैं कि जहाँ चिंगारियों के साथ फूस मिल जाता है तो आग लगने में देर नहीं लगती। अर्थात् जहाँ रिश्तों में पहले से ही संघर्ष के बीज हो वहाँ छोटीसी भी संघर्ष की बात उस संघर्ष को बढावा देती है।

''आज के इस दौर में भी, क्या नहीं होता,

गाँव से लेकर शहर तक, नारियों के साथ।''

भावार्थ :- वर्तमान समय में बार-बार यह कहा जाता है की, समय बदल गया है। जो आज तक शोषित-पीडित अन्यायग्रस्त रहे हैं वे अब स्वतंत्र हो गए हैं। वास्तविकता यह है कि गाँव से लेकर शहर तक आज भी उसी प्रकार की स्थिति है। नारियों को सदियों तक शोषित बनाकर रखा गया। अर्थात् आज भी वही स्थिति है और नारियों का शोषण आज के दौर में भी बरकरार है।

२५. गजल

''आँसुओं की धार को बंदी बना लेते हैं लोग,

ये करिश्मा है कि फिर भी मुस्करा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने मनुष्य की सहनशक्ति को रेखांकित किया है। वे कहते है कि कई लोग अपने सीने में दर्द छुपाकर ओठों पर हँसी रखते हैं और अपने आँसुओं को भी कैद करते हैं या रोक लेते हैं।

''स्वप्न को साकार करने की कला सीखे बिना,

आनेवाले कल को सपनों से सजा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी कहते हैं कि कई बार अनुभवहीन लोग अपने जीवन में सुनहरे सपने तो सँजोते हैं परंतु उन सपनों को साकार करने की कला सीखने का प्रयास नहीं करते। अर्थात् स्वप्नों को साकार करने को साकार करने की कला सीखने की बजाय सपने सँजोना एक तरह से अज्ञान का परिचायक है।

''एक भी अन्याय का करते नहीं तनकर विरोध,

खुद को कालीनों की शैली में बिछा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने कायर लोगों की कायरता या डरपोक मानसिकता का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि कुछ लोग इतने कायर या बुजदिल होते हैं या इतने सुविधाभोगी होते हैं कि वे अन्याय के सामने या अन्याय करनेवालों के सामने कालीनों की तरह झुक जाते हैं। वे किसी भी प्रकार के अन्याय का तनकर विरोध नहीं करते।''

''चाल चलने से अगर हो मात की संभावना,

राजनैतिक दुश्मनों से भी निभा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने वर्तमान राजनेताओं की दोगली प्रवृत्ति को रेखांकित किया है। वे कहते हैं कि जैसे ही कोई राजनेता पराजय की संभावना देखकर अपने राजनैतिक दुश्मनों से भी साँठ-गाँठ कर लेते हैं।

''आज ये फल चख लिया, कल दूसरा फल चख लिया,

अपनी इस आवारगी का भी मजा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने आज के उपभोगवादी मनुष्य को चित्रित किया है। वे कहते हैं कि समाज में ऐसे भी आवारगी का मजा लेनेवाले लोग हैं जो आज एक फल चख लेते हैं तो कल दूसरे फल का मजा लेते हैं। अर्थात् समाज में अनैतिकता की प्रवृत्ति बढ रही है और एकनिष्ठता की प्रवृत्ति कम होते जा रही है।

''इस तरह अपराध करते हैं कि गायब हो गवाह,

न्याय-घर में, शक का पूरा फायदा लेते हैं लोग।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने न्याय व्यवस्था की असलियत को बयान किया है। न्यायालय में सबूतों और गवाहों के बलपर न्यायदान होता हैं। इसी बात का फायदा समाज के अमीर लोग उठाते हैं। वे अपराध इस तरह से करते हैं कि गवाह को भी गायब करते हैं और न्यायालय में शक के कारण पर छूट जाते हैं।

३०. गजल

''जो बेहद मुश्किल लगता था, उसको भी आसान किया,

हमने सपनों को सच कर लेने का अनुसंधान किया।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने सामान्य जनता के निश्चय को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि हमने अपने सपनों को साकार करने या सच करने के लिए खोज की है और जो बेहद मुश्किल लगता था उसे भी आसान किया। अर्थात् हम तब तक अपने सपनों को साकार नहीं कर सकते जब तक हम अपने सपनों को पूरा करने का निर्धार नहीं करते।''

''इस कलियुग के दानवीर कर्णो की गाथा मत पूछों,

जितना भी काला धन था, वो मुक्त-हस्त से दान किया।''

भावार्थ :- महाभारत का कर्ण अपनी दानवीरता के लिए सुपरिचित है। किसी भी दानी को आज भी लोग कर्ण की उपमा प्रदान करते हैं। लेकिन आज के कर्णो की असलियत को बेनकाब करते हुए इस शेर में कुरेशी लिखते हैं कि आज के इस कलियुग के दानवीर कर्णो की गाथा मत पूछों क्यों कि आज पूँजीपति लोग अपने काले धन को मुक्त-हस्त से दान करते हैं और दानी कहलाते हैं।

''आँखो में आँसू का झरना, अधरों पर मुस्कानें है,

औरत ने इस द्वन्द्व-युद्ध में खुद को लहू-लहान किया।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने औरत की यातनाभरी जिंदगी का मार्मिक चित्रण किया है। वे कहते हैं कि औरत की जिंदगी आँसूओं भरी होती है। एक ओर वह अपने आँखो में आँसूओं क झरना छिपाती है और ओठों पर मुस्कान रखती है। औरत ने इस द्वन्द्व युद्ध में अपने-आप को लहू-लुहान किया है। अर्थात् औरत की जिंदगी की कथा व्यथाभरी ही है।

''हम को चलना है, लेकिन यह राजनीति तय करती है,

हमने तो केवल नेता के कहने पर प्रस्थान किया।''

भावार्थ :- वर्तमान समय में सामान्य मनुष्य का जीवन राजनीति द्वारा संचालित है। आज राजनिती इतनी प्रभावी बन गयी है कि वही तय करती है कि आम आदमी क्या करे? जहीर कुरेशी कहते हैं कि हमें चलना हैं लेकिन राजनीति तय करती है कि हमने प्रस्थान करना चाहिए या नहीं। नेता ही तय करवाते हैं कि आम आदमी कहाँ प्रस्थान करें।

''यह बदलाव कहाँ से आया, कैसे आया, ज्ञात नहीं,

प्रतिभा से ज्यादा लोगों ने पैसे का सन्मान किया।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने समाज की बदलती मानसिकता का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि पता नहीं समाज में यह बदलाव कहाँ से आया और कैसे आया कि लोगों ने प्रतिभा से ज्यादा पैसों का सन्मान किया है। अर्थात् कुरेशी जी कहना चाहते हैं कि पहले लोग प्रतिभा को सन्मान किया करते थे परंतु समाज में बदलाव आ गया है। ज्यादातर लोग प्रतिभा से ज्यादा पैसों का सन्मान कर रहे हैं।

३४. गजल

''भीड में सबसे अलग, सबसे जुदा चलता रहा,

अन्त में हर चलनेवाला एकला चलता रहा।''

भावार्थ :- इस शेर में जहीर कुरेशी ने वर्तमान आधुनिक समाज में बढती अकेलेपन की समस्या का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि महानगरों में हर कोई भीडभाड से अलग और सबसे हटकर चलता है। अंत में हर कोई भीड का आदमी अकेले ही चलता है। यही इस शहरों की वास्तविकता है।

''रात भर चलते रहे सपने, यहाँ तक ठीक है,

ये न पूछो-रात भर सपनों में क्या चलता रहा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी कहना चाहते हैं कि समाज का निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य अपनी अभाव भरी जिंदगी के बीच कई सपने सँजोत हैं। हर रात वह सपने देखता हैं और उन सपनों से नई ऊर्जा ग्रहण कर दिनभर अपनी आम जरुरतों के लिए भटकता रहता है। उसे अपने सपनों के बारे में

कोई पूछता है तो वह कुछ नहीं कहता। सच केवल इतनाही है कि वह हर रात नया सपना देखता है।

''थक गए हम लोग, इस कारण ही पीछे रह गए,

हम रुके, लेकिन, हमारा रास्ता चलता रहा।''

भावार्थ :- गजलकार जहीर कुरेशी इस शेर में जीवन की संघर्षशीलता तथा निरंतरता को अभिव्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि जीवन के पथ पर निरंतर चलते रहना ही जीवन है जो थककर रुक जाते वे पीछे रह जाते हैं। उनके लिए जीवन रुपी राह कभी ठहरती नहीं। अत: कुरेशी कहते हैं जीवन पथपर बिना रुके निरंतर चलते रहनेमें ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

''कौन अच्छा है, बुरा है कौन, इसमें मत उलझ,

ये तो दुनिया है, यहाँ अच्छा-बुरा चलता रहा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी का कहना है कि इस संसार में अच्छाई और बुराई सदियों से चलती आ रही है। लेकिन आजतक कौन अच्छा और कौन बुरा है इसका निर्णय कोई भी कर नहीं पाया है। अच्छाई और बुराई यह केवल देखने वाले की दृष्टिपर निर्भर करती है। इसी कारण कुरेशी कहते है कि अच्छाई और बुराई के विवादमें उलझना नहीं चाहिए।

''तीन अक्षर वासना को बंद कमरा चाहिए,

ढाई आखर प्यार का पंथी खुल चलता रहा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी के मतानुसार जो व्यक्ति सच्चा प्रेमी होता है उसे प्रेम करने के लिए खुली जगह भी काफी हो जाती है। उसे अपना प्रेम जताने के लिए किसी एकांत की या बंद कमरे की आवश्यक्ता नहीं होती। वह प्यार का पंथी सबके बिच अपने प्रेम की अभिव्यक्त करता है क्योंकि उसके मन को वासना छूती तक नहीं लेकिन वासनांध मनुष्य अपने प्यार को अभिव्यक्त करने के लिए बंद कमरा ढूँढता रहता है।

''जो पुराना था उसी में करके थोडी काट-छाँट,

हर महीने ही कोई फेशन नया चलता रहा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने आधुनिक समाज में बढती फैशनपरस्ती को आभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि आज के समय में हर महिने कोई नया फैशन चलता आ रहा है। फैशन के नाम पर जो पुराना या उसी को काट-लाँट कर नये तरी के से चमक दमक के साथ पेश किया जा रहा है।

''जिन्दगी में सिर्फ ऐसे लोग ही कुछ कर सके,

जिनके सँग करने या मरने का नशा चलता रहा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी कहते हैं कि इस जीवन में वही लोग कुछ कर दिखाते हैं जिनके साथ कुछ करने या फिर मरने का नशा होता है। जो लोग डरते-डरते कुछ करने कि कोशिश करते हैं वे कुछ कर नहीं पाते वहीं लोग जीवन में सफल होते हैं। जो सबकुछ दाँव पर लगा कर कर गुजर ने की इच्छा रखते हैं। निर्भयतासे जो अपना काम करते हैं वेही जीवन में सार्थकता प्राप्त करते हैं।

३७. गजल

“जिस जुबों पर चढ गई अधिकार की भाषा,

उसको फिर आती नहीं है प्यार की भाषा।”

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने मनुष्य की अधिकार जताने की प्रवृत्ति को रेखांकित किया है। वे कहते हैं कि जिसकी जबान पर अधिकार की भाषा चढती है। जि व्यक्ति केवल अधिकार जताना है उसे कभी प्यार की भाषा नहीं आती। वह किसी से प्यार के दो लब्ज भी नहीं बोल पाता। अधिकार के उन्माद में वह प्यार की महत्ता तथा शक्ति को भूल जाता है।

“पत्रिकाओं के जगत में चल नहीं पाती,

खास लहजे में बँधी अखबार की भाषा।”

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से अखबार की भाषा तथा पत्रिकाओं के जगत् की भाषा के अंतर को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि अखबार की खास लहजे में बँधी हुई भाषा पत्रिकाओं के जगत् में नहीं चल सकती।

“इन प्रजातंत्रीय राजाओं की चौखट पर

फूलती-फलती रही दरबार की भाषा।”

भावार्थ :- स्वतंत्रता के बाद हमारे देश से राजसत्तायें तथा राजदरबार समाप्त हुए। उन्हीं के साथ उनके भाट भी समाप्त हुए। परंतु वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था में राजनेता राजाओं की तरह अवतरित हुए है। उनकी चापलुसी तथा प्रशंसा कर पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करनवाले नये भाट तथा नये दरबार की भाषा फुलती-फलती रही है। कुरेशी ने इसी राजनीतिक विसंगति को इस शेर के माध्यम से बेपर्दा किया है।

“ये महानगरीत जीवन का करिश्मा है,

भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा।”

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने अपने गजलों के माध्यम से महानगरीय जीवन की विभिन्न विसंगतियों को भी उन्होंने महानगरीय जीवन में व्यस्तताओं, अकेलेपन तथा घुटन के कारण सुखी-जीवन से दूर गये परिवारों की दशा को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि महानगर में हर परिवार अपनी जीवन पद्धति, व्यस्तताएँ, अकेलापन, घुटन तथा अतिमहत्त्वाकांक्षा के कारण सुख से दरकिनार हो गया है। यही महानगरीय जीवन का करिश्मा है।

“मोम की गुडिया समझ लेती है छुअनों से,

साथ में लेटे हुए अंगार की भाषा।”

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने वासनांध लोगो की प्रवृत्ति तथा छोटी-सी बच्ची की मानसिकता को दर्शाया है। वे कहते हैं कि छोटीसी बच्ची भी किसी आदमी के वासनांध घिनोने स्पर्श को समझने की शक्ति रखती है। जिसप्रकार कोई मोम की गुडिया अपने साथ में लेटे हुए अंगार की भाषा को समझती है।

“इनकी बातों में विरोधी-दल का लहजा है,

और उनके पास है सरकार की भाषा।”

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने वर्तमान राजनीति को बेपर्दा किया है। वे कहते हैं कि प्रजातंत्र में विपक्षी दल की भूमिका बडी अहम् होती है। सरकार की नीतियों की, खामियों की आलोचना करना उनका कर्तव्य होता है। लेकिन आज विपक्षी-दल सत्ताधीशों के स्वर में स्वर मिलाकर उनके ही लहजे में बोलते हैं। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए और हितसंबंधोंकी रक्षा के लिए विपक्षी-दल सरकार के साथ साँठ-गाँठ कर लेते हैं।

''सभ्यता के कौन-से युग में खडे हैं हम,
बोलते हैं युद्ध के बाजार की भाषा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने वर्तमान बाजारीकरण की विसंगति को चित्रित किया है। वे कहते हैं कि पता नहीं हम किस युग में खडे हैं कि हम युद्ध के बाजार की भाषा बोल रहे हैं। अर्थात् वर्तमान समय में संपूर्ण दुनिया में बाजारवाद का युद्ध चल रहा है। आज हर चीज खरीदी और बेची जा रही हैं। जिस व्यक्ति तथा देश के पास क्रयशक्ति न हो वह इस व्यवस्था में नाकारा जा रहा है। यहाँ तक कि आण्विक शक्ति या युद्ध की जगह बाजार अर्थात् अर्थशास्त्र ने ले ली है। इसी विसंगति को कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

४३. गजल

''है न वो कद से बडा और न कपडों से बडा,
सबको लगता रहा जो अपने उसूलों से बडा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से व्यक्ति की महानता को दर्शाया है, वे कहते हैं को व्यक्ति की महानता को उसके कद और कपडों से नहीं आँका जा सकता। जो लोग इअ तरह से किसी व्यक्ति की महानता को आँकते है और उसे मामूली करार देते हैं वह व्यक्ति उनसे काफी बडा होता हैं। जिनके उसूल व्यक्ति के कद और कपडों तक सीमित होते हैं वे छोटे लोग हैं। जो व्यक्ति न कद से और कपडों से बडा हैं लेकिन अपने उसूलों से बडा है वही व्यक्ति सही दृष्टि से सबसे बडा होता है।

''दूध का दूध करे, पानी का पानी कर दे,
न्यायधीशों में भला कौन है हंसों से बडा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने वर्तमान न्याय व्यवस्था की असलियत को बयान किया है। वे कहते हैं कि न्यायधीश के पास नीर-क्षीर विवेक की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार हंस दूध में मिला पानी दूर कर देता है। दूध का दूध और पानी का पानी कर देने की क्षमता रखता है। अर्थात् वह असलियत को सामने लाता है। यही क्षमता न्यायधीशों के पास होनी चाहिये। परंतु वर्तमान समय में हमें न्यायधीशों में इन गुणों का अभाव खलता है। इसी कारण कुरेशी कहते हैं कि न्यायधीशों में हंसों से बडा कौन है ?

''सीधे रस्ते को कभी उसने बडप्पन न दिया,
वो जो बनता रहा दुनिया में करिश्मों से बडा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में दुनिया में ऊँचे मकाम हासिल करनेवालों की सफलता की राह को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि इस दुनिया में जिन्होंने भी करिश्मा दिखाया है या फिर अपने कर्तृत्व से आश्चर्यकारी ऊँचाई हासिल की है उन्होंने इस मकाम पर पहुँचने के लिए कभीभी सीधी राह को महत्त्व

नहीं दिया। उन्होंने अपनी नई राह बनाकर ऊँचाई हासिल की हैं।

''लोग झगडों के निपटते ही उसे भूल गए,

बन गया या जो अनायास विवादों से बडा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से जनता में आपस कें झगडों की वजह बने छोटे-छोटे विवादों के बारें में अपनी बात कही है। वे कहते हैं कि कभी-कभी अनायास ही जनता में किसी बात या मसले को लेकर विवाद होता है। वह छोटी सी बात विवादों से बडी हो जाती है वे उस बात को भूल जाते हैं जो विवादों से बडी लग रही थी।

''वो बताता है कि वो कुल से बडा है, लेकिन,

मुझको लगता नहीं वो आदमी कर्मों से बडा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी का कहना है कि कोई भी व्यक्ति केवल ऊँचे कुल का होने से बडा नहीं होता। उसका कर्म उसे बडा बनाता है। इसी कारण जब कुरेशी से कोई व्यक्ति अपने बडे कुल का होने की बात करता है तब वह आदमी उन्हें कर्मों से बडा नहीं लगता।''

''शाह भी सिर को झुक देते हैं जिनके आगे,

मुझको लगता नहीं वो आदमी कर्मों से बडा।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी कहते हैं कि किसी भी मनुष्य को त्याग, समर्पण, इंसानियत तथा प्रेम एवं करुणा की भावना उसे ऊँचा स्थान प्रदान करती हैं। जनता द्वारा उसे पूजनीय तथा सन्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सामान्य जनता ही नहीं शहंशाह तक ऐसे त्यागी, फकीरोंके आगे सिर झुकाते हैं। इसी कारण जनता की दृष्टि से फकीर शहंशाह से बडा होता है।

''ये शरारत तो मुखौटा है चढाने के लिए,

कोई होता नहीं फनकार शरीफों से बडा।।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी के मतानुसार किसी भी व्यक्ति को उसकी शराफत उसे बडा बनाती है। कोई फनकार या कलाकार कितना भी बडा क्यों ना हो उसे तब तक सही दृष्टि से बडप्पन नही मिलता जब तक कि वह शराफत नहीं दिखाता।

४४. गजल

''घर के अन्दर देखकर या घर के बाहर देखकर,

थक गया है आदमी खुद को निरंतर देखकर।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से वर्तमान आदमी की निरन्तर श्रमतर जिंदगी को अभिव्यक्त किया हैं। आज हर आदमी अपनी व्यस्तताओं के कारण घर के तथा बाहर के कामोंमें उलझा हुआ दिखाई देता है। इस निरन्तर श्रम के कारण वह बेहद थकान महसूस करता हैं। वर्तमान मनुष्य की इसी व्यस्तता को कुरेशी ने अभिव्यक्त किया हैं।

''न्याय-घर में भी बदल जाते हैं दर्पण के बयान,

मूल-अपराधी के संकेतों में पत्थर देखकर।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से वर्तमान न्यायव्यवस्था की असलीयत का पर्दाफाश किया है। वे कहते हैं कि धन तथा बल के बल पर अमीर लोग अपने अपराधों को छिपाता हैं। न्यायालय में कोई व्यक्ति उनके खिलाफ बयान देने जाता है तो मूल अपराधी संकेतों से उसे डरा-धमका कर उसका बयान अपने पक्ष में कर लेते हैं। न्यायदेवता उन अपराधियों को बरी कर देती हैं।

''चीखने को भी यहाँ पंछी को आजादी नहीं,

चाकुओं के हाथ में अपने कटें पर देखकर।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने समाज में हो रहे अन्याय, अत्याचार तथा दमन का मार्मिक चित्रण किया है। वे कहते हैं कि वर्तमान समाज में पूँजी वादी व्यवस्था द्वारा समाज के सामान्य लोगों पर अन्याय तथा अत्याचार हो रहे हैं। यह शोषण करनेवाली व्यवस्था अपने स्वार्थ के लिए सामान्य आदमी को गुलाम बनाकर रखना चाहती हैं। अपनी शक्ति के बल पर वे उनकी आजादी छीन लेते हैं। अर्थात् उनके खिलाफ कुछ बोलने की स्वतंत्रता उन्हें नहीं होती। जब कोई उनके खिलाफ आवाज उठानेकी कोशिश करता है तो उसे डरा-धमका कर चुप किया जाता हैं।

''उसको तालाबों के किस्सों में मजा आता नहीं,

जो अभी लौटा है अपने घर, समन्दर देखकर।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में विस्तृत अनुभव संपन्न मनुष्य की मानसिकता को रेखांकित किया हैं। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने ज्ञान तथा मेहनत के बल पर समग्र विश्व को जानता है वह व्यक्ति छोटी-छोटी बातों को लेकर आश्चर्य व्यक्त नहीं करता। अर्थात् जो व्यक्ति ज्ञान का समंदर तैर कर आता है उसे छोटे तालाबों में तैरने का मजा नहीं आता।

''दोस्तों से राय लेना व्यर्थ लगता है मुझे,

दोस्त मुझको राय देते हैं, मेरा स्वर देखकर।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी का कहना है कि दोस्त अक्सर मुश्कीलो की घडी में राय देते हैं। हमारा मार्गदर्शन करते हैं। लेकिन उनकी वह राय तब फायदेमंद होती है वे अपनी ओर से दे दें। अक्सर होता है कि हमारा दोस्त हमें सलाह देता है। भाँपकर ही हमारा दोस्त हमें सलाह देता है। इसलिए ऐसे स्वर में स्वर मिलाने वाले दोस्तों से सलाह लेना उन्हें व्यर्थ लगता है।

''खूनी हथियारों की बिकी के नए माहौल में,

हँस रहे हैं शस्त्र-विक्रेता कबूतर देखकर।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में वर्तमान समय की भयावह विकृति को प्रस्तुत किया है। आज समाज में हिंसाचार का बोलबाला है। खुलेआम शस्त्रों की क्रय और विक्रय हो रही हैं। ऐसे माहौल में किसी आम आदमी को देखकर यह शस्त्र-विक्रेता उसपर हँसते हैं। इस प्रकार जहीर कुरेशी ने समसामाथिक विसंगति तथा विकृति को बयान किया।

४५. गजल

''धूप, मिट्टी, हवा को भूल गए,

बीज अपनी धरा को भूल गए।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में मनुष्य की कृतज्ञता की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया हैं। वे कहते हैं कि जिस धूप, मिट्टी और हवा के बल पर बीज पल्लवित होता है और पौधा बनता है वह बीज पौधा बनने के बाद उस धूप, मिट्टी, हवा को भूल जाता है। उसी प्रकार कुछ लोग जितके बलपर जीवन में आगे बढते हैं उन्हीं को भूल जाते हैं।

''जिन्दगी की मरीचिकाओं में,

लोग अपनी दिशा को भूल गए।''

भावार्थ :- इस शेर में जहीर कुरेशी ने लोगों के उन्नति-पथ से भतकने की अवस्था को दर्शाया हैं। वे कहते हैं कि कई लोग जिन्दगी की मरीचिकाओं में उलझकर अपनी दिशा से भटक जाते हैं। अर्थात् जीवन की उलझनों के बीच कई लोग अपनी दिशा खो बैठें हैं। वे करना कुछ चाहते थे पर कर कुछ बैठे हैं।

''पद-प्रतिष्ठा ने इतना बौराता-

पुत्र अपने पिता को भूल गए।''

भावार्थ :- वर्तमान समय में आगे बढने की होड इतनी बढ गयी है कि लोग अपने रिश्ते-नातों तक भूल रहे हैं। कुरेशी कहते हैं कि आज पद और प्रतिष्ठा की लालसा ने लोगों को इतना पागल कर दिया हैं कि वे उसे पाने के लिए अपने जन्मदाता तक को भूल जाते हैं। अर्थात् पद-प्रतिष्ठा की लालसा ने पिता-पुत्र के स्नेह-पूर्ण संबंधों तक को भूल दिया हैं।

''जिसकी जलने से ज्योति जन्मी हैं,

दीप उस वर्तिक को भूल गए।''

भावार्थ :- इस शेर में भी कुरेशी ने कृतज्ञता की प्रवृत्ति को ही रेखांकित किया हैं। जिस वर्तिका के जलने से दीप प्रज्ज्वलित होता है और ज्योति का जन्म होता है वहीं दीप ज्योति को त्याग एवं उत्सर्ग को भूल जाता हैं। उसी प्रकार जिन लोगों की सहायता तथा मदद से हमारा व्यक्तित्व उज्ज्वल होता हैं उन्हों लोगो को समय के साथ के साथ भूलकर कृतघ्न बन जाते हैं।

''अपनी मिट्टी की गंध भूले तो,

लोग अपनी कला को भूल गए।''

भावार्थ :- इस शेर मेम कुरेशी जीने सच्चे कलाकार की विशेषता प्रस्तुत की हैं। सच्चे कलाकार की पहली शर्त होती हैं उसका अपनी मिट्टी से जुडे रहना। जो कलाकार अपनी मिट्टी की गंध को भूल जाता हैं लोग उसकी कला को भी भूल जाते हैं। अर्थात् कुरेशी कहते हैं कि वही कलाकार जनताद्वारा याद रेखा जाता हैं जिसकी कलाकृति में अपनी मिट्टी की सौंधी गंध हो।

''इतनी निर्भर हुए दवाओं पर

स्वास्थ्य की प्रार्थना को भूल गए।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी वर्तमान मनुष्य के जीवन पद्धति की विसंगति को खोलते हुए कहते हैं कि आज का मनुष्य विभिन्न प्रकार की दवाओं पर इतना निर्भर हो गया हैं कि वह अपने प्राकृतिक जीवन को भूल गया हैं। वह स्वास्थ्य की असली प्रार्थना को भूलकर दवाओं पर निर्भर हो गया हैं। स्वस्थ रहने के लिए अपनी प्राकृतिक दिनचर्या को वहन अपनाकर कृत्रिम जीवन पद्धति को अपना रहा हैं।

''वोट की राजनीति में अंधे,

देश की एकता को भूल गए।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था तथा प्रजातांत्रिक-व्यवस्था की असलियत का पर्दाफाश किया हैं। वे कहते हैं कि देश की अखंडता तथा एकता हमारे लिए सर्वोपरि हैं। इससे बढकर हमारे लिए कोई महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। लेकिन आज हमारे राजनेता सत्ता की लालसा में इतने अंधे हो गये हैं कि उसे पाने के लिए वे अपने देश की एकता तथा अखंडता तक को भूल रहे हैं। वोट पाकर सत्ता पाने के लिए वे समाज को जाति, धर्म, प्रांत तथा भाषा के आधार पर विभाजित कर देश की एकता को भूल गए हैं। आज की इस वोट की राजनीति का यथार्थ चित्रण जहीर कुरेशी ने इस शेर में किया हैं।

४६. गजल

''बातों से... सिर्फ बातों से ऐसा किया गया,

लोगों के सामने उसे नंगा किया गया।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से शब्दों की शक्ति को अर्थात् हमारी अभिव्यक्ति की ताकत को उद्‌घाटित किया हैं। वे कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति की असलियत को हम केवल अपनी बातों से ही सबके सामने उघाडकर रख सकते हैं। इसी कारण जहीर कुरेशी कहते हैं कि उसे लोगों के सामने सिर्फ बातों से ही नंगा किया गया। कभी-कभी इस शक्ति का गलत प्रयोग होता हुआ दिखायी देता हैं। किसी को बदनाम करने के लिए या लोगों में उनकी छबि को बिगाडने के किए भी बातों का ही सहारा लिया जाता हैं।

''इस राजनीति द्वारा, महज वोट के लिए,

जलते हुए सवालों को पैदा किया गया।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से वर्तमान राजनीति का पर्दाफाश किया हैं। वे कहते हैं कि हमारे प्रजातांत्रिक देश में जनता के वोट के बल पर सत्ता प्राप्त होती हैं। अत: हर राजनीतिक दल सत्ता की लालसा में, वोट बँटोरने के लिए जनता में विभाजन के बीज बोकर अपना उल्लू सीधा कर रहा हैं। इसी कारण अधिकाधिक वोट प्राप्त करने के लिए राजनेताओं द्वारा समाज में जानबूझकर ऐसे सवाल पैदा किये जा रहे हैं जिससे उन्हें अधिकाधिक राजनीतिक लाभ अर्थात् वोट मिले। इससे समाज में द्वेष, तथा विभाजन की प्रवृत्ति बढती हैं।

''वो भीख माँगता ही नहीं था...इसीलिए,

उस फूल जैसे बच्चे को अंधा किया गया।''

भावार्थ :- कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से बडे बडे महानगरों तथा शहरों में समाज की विकृत ताकतों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए छोटे-छोटे बच्चों को भिखारी बनाने की प्रवृत्ति को उद्‌घाटित किया हैं। वे कहते हैं कि कुछ लोग डरा धमकाकर किसी बच्चे को भीख माँगने के लिए मजबूर करते हैं। वह जब मना करता हैं तो उस फूल जैसे बच्चे की आँखे फोडकर उससे भीख मँगवायी जाती हैं। इस प्रकार कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से समाज के एक घिनौने तथा अमानवीय रूप को यहाँ प्रस्तुत किया हैं।

''पानी ठहर न जाए कहीं उसकी देह पर,

उस खुरदुरे घडे को भी चिकना किया गया।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी का कहना हैं कि कोई कुम्हार किसी खुरदुर घडे को इसलिए चिकना बना देता हैं कि उसके ऊपर कहीं भी पानी न ठहर जाये। अर्थात् वह घडा पानी तो अपने अंदर समेटे रहे परंतु बाहर से वह दिखायी न दें। इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने वर्तमान समय में मनुष्य में बढती बाहरी चमक-दमक की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त किया हैं। आज हर मनुष्य अपने कर्तव्यों से ज्यादा ऊपरी ताम-झाम तथा बाहरी-चमक-दमक को ज्यादा सहेज रहा हैं। वर्तमान मनुष्य के इसी ढकोसले को कुरेशी ने प्रस्तुत किया हैं।

''झण्डे के स्वास्थ्य पर कोई इसका असर नहीं,

ऊँचा किया गया उसे, नीचा किया गया।''

भावार्थ :- कुरेशी का कहना हैं कि किसी झण्डे को ऊँचा किया जाय अथवा नीचा किया जाय उसके स्वास्थ्य पर कोई असर नहीं होता हैं। वे कहना चाहते हैं कि किसी भी झण्डे पर उसकी ऊँचाई या बौनाई का कोई असर नहीं होता। वह जिस ऊँचाई पर भी क्यों न रहे वह हमेशा लहराता रहता हैं या अपनी ऊँचाई को दर्शाता हैं। अर्थात् किसी भी ऊँचे व्यक्तित्व को कितना भी नीचे दिखाने की कोशिश क्यों न हो परंतु उसकी ऊँचाई कम नहीं होती। वह जहाँ भी रहता हैं वहाँ अपनी ऊँचाई को ही दर्शाता हैं।

''तालाब-तल की कलमुँही कीचड को छेडकर,

उस स्वच्छ जल को व्यर्थ ही गंदा किया गया।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी कहते हैं कि किसी तालाब के पास बैठकर हम उसकी कलमुँही कीचड को बेवजह ही छेडकर उसके स्वच्छ जल को गंदा कर देते हैं। बिना किसी वजह से हम साफ-सुथरे जल को गंदा कर देते हैं। अर्थात् समाज में ऐसे कई लोग हैं जो बेवजह अपनी हरकतों से या कृति से समाज के कुछ पुरानी सवेंदनशील विषयों को या बातों को छेडकर समाज का स्बास्थ्य तथा शांति बिगाड देते हैं। उनका कुछ उद्देश्य हो न हो परंतु उनकी इस कृति से समाज का माहौल खराब हो जाता हैं। कभी-कभी कुछ राजनीतिक दलों या संगठनों द्वारा जान-बूझकर इस तरह की हरकतें की जाती हैं जिससे समाज के लोगों का ध्यान एक ओर से बँट जाये और वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि में सफल हो जायें।

''पत्थर विरोध करने से डरते हैं, आज भी,

जिन पत्थरों पे चाकू को पैना किया गया।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने सामान्य जनता की भयभीत मानसिकता को रेखांकित किया हैं। वे कहते हैं कि जिन पत्थरों पर घिसकर चाकू को पैनी धार दी जाती हैं वह पत्थर ही विरोध करने से डरता हैं। अर्थात् वे कहते हैं कि जिनके बलपर पूँजीवादी ताकतें अपना दमनचक्र चलाती हैं उनका स्वार्थ जब पूरा हो जाता हैं वे उन्हें अपने से दूर करते हैं। जिनके श्रम तथा मेहनत के बल पर पूँजीवादी व्यवस्था अपने शोषण को मजबूत करती हैं वे ही श्रमजीवी बाद में उस व्यवस्था का विरोध करने से डरते हैं। महलों को बनानेवाले मजदूर महल पूरा होने के बाद उसमें प्रवेश करने से डरते हैं। अर्थात् कुरेशी कहते हैं कि जिनके बल पर जिनके श्रम पर यह पूँजीवादी व्यवस्था बनी हैं वे मजदूर ही बाद में उस व्यवस्था का विरोध करने से डरते हैं।

४८. गजल

''उम्र के साथ थकी देह, हुआ मन बूढा,

मन के पश्चात, हुआ व्यक्ति का चिन्तन बूढा।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने महानगरीय जीवन की असलियत को बयान किया हैं। महानगर की अप्राकृतिक जिंदगी, व्यस्तताएँ, आत्मकेंद्री वृत्ति तथा प्रदूषित आबोहवा के चलते व्यक्ति अत्यंत कम उम्र में बूढा नजर आता हैं। निरंतर की इस आपाधापी के चलते उम्र के साथ उसकी देह थक जाती हैं और मन भी बूढा हो जाता हैं। मन का बुढापा आते ही व्यक्ति की सोंच भी बूढी हो जाती हैं। कुरेशी जी ने इस शेर में इसी असमय बढती वृद्धत्व की समस्या को रेखांकित किया हैं।

''उस सुहागिन की व्यथा आप भला क्या समझें,

जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढा।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने औरत की यातनाभरी जिंदगी के एक पक्ष को उद्घाटित किया हैं। वे कहते हैं कि उस युवा सुहागिन औरत की व्यथा को कोई भी नहीं समझ सकता। जिसका विवाह किसी बूढें व्यक्ति के साथ किया गया हो। उसे अपना यौवन व्यर्थ ही गँवाना पडता हैं। कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से अनमेल विवाह के कारण औरत की यातनामय जिंदगी को अंकित किया हैं।

''हमने शहरों को देखा हैं बुढापा ढोते,

किन्तु देखा नहीं दुनिया में कहीं वन बूढा।''

भावार्थ :- इस शेर में भी कुरेशी ने महानगरीय जीवन की विसंगति को अभिव्यक्त किया हैं। वे कहते हैं कि शहरों में कई लोग आपाधापी की जिंदगी के कारण असमय बुढे होते हैं। ऐसे लोगों की संख्या शहरों में सबसे अधिक दिखायी देती हैं। अत: कुरेशी कहते हैं कि शहरों की ऐसी हालत देखकर लगता हैं कि मानो शहर बुढापा ढो रहा हो। दूसरी बात यह हैं कि अत्याधिक भौतिकवादी होने के कारण शहरों का प्राकृतिक सौंदर्य भी खत्म होता जा रहा हैं। मानो शहर बुढा हो या बन अपनी प्राकृतिक रूप के कारण आज भी कहीं बूढा नहीं लगता।

''आप उपदेश की आदत को बदल ही डालें,

आप के बेटे को भाता नहीं दर्पन बूढा।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने दो पीढियों के अंतर को दर्शाया हैं। अक्सर पुरानी पीढी नयी पीढी को उपदेशों पर चलने का आग्रह करती हैं। जिससे नयी पीढी डब जाती हैं। वे अपनी पुरानी पीढी के कदम पर नहीं चलना चाहती। वे नहीं चाहते कि बूढे दर्पण में अपना चेहरा देखें। इसी कारण कुरेशी अपनी पुरानी पीढी से कहतें हैं कि उपदेश देने की आदत को बदलना चाहिए क्योंकि हमारे बेटों को बूढे दर्पण में अपना भविष्य देखना भाता नहीं।

''आज तक तो यही देखा है युवा-पीढी ने-

देश को खींच रहा है कोई इंजन बूढा।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने वर्तमान राजनीति की विसंगति को उद्घाटित किया हैं। आज देश की युवा पीढी राजनीतिक क्षेत्र में अभी भी हाशिये पर हैं। बूढे राजनेता ही देश की बागडोर सँभाले हैं। वे युवापीढी के हाथ देश का नेतृत्व देना नहीं चाहते। अभी भी उनका सत्ता प्राप्ति का मोह छूटा नहीं हैं। इसी वास्तविकता पर व्यंगात्मक प्रहार करते हुए कुरेशी कहते हैं कि आज तक तो युवापीढी न यही देखा हैं कि कोई बूढा इंजन देश को खींच रहा हैं, देश को चला रहा हैं। अत: देश के विकास की गति भी बूढे

इंजन के अनुसार धीमी ही हैं।

४९. गजल

''हर कदम पर ही सियासत हैं, इधर से देखिए,

यार, जीवन को खिलाडी की नजर से देखिये।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने जीवन विषयक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया हैं। वे कहते हैं कि हमें जीवन को खिलाडी की नजर से देखना चाहिए। जिस में हार-जीत, आशा-निराशा होती ही हैं। अत: खिलाडी की तरह बारीकी से देखें तो हमें हर कदम पर सियासत अर्थात् दाँव पेंच ही नजर आयेंगे। अत: बिना डरे उनका खिलाडी की तरह सामना करना चाहिए।

''देखा हैं गाँव, तो फिर गाँव जाकर देखिए,

गाँव को मत मुंबई जैसे शहर से देखिए।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने देहात या गाँव संबंधी दृष्टिकोण को रेखांकित किया हैं। अक्सर मुंबई जैसे महानगरों में रहनेवाले शहराती लोग गाँव की ओर पूर्वग्रह दूषित मानसिकता से देखते हैं। वे गाँव को पिछडे अज्ञानी तथा परंपराप्रिय मानते हैं परंतु कुरेशी कहतें हैं कि अगर गाँव को सही दृष्टि से देखना हैं तो गाँव में जाकर देखना चाहिए, उसे मुंबई जैसे शहर से गाँव को नहीं देखना चाहिए।

''आपको कम लग रहे हैं, आपके दस लाख भी?

दस अरब को देखिए, लेकिन सिफर से देखिए।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने जीवन के हार-जीत, आशा-निराशा तथा उत्कर्ष पतन के दर्शन को रेखांकित किया हैं। वे कहते हैं कि हमने चढते हुए सूर्य का उत्कर्ष तो देखा हैं परंतु कभी-कभी ढलता हुआ सूर्य भी पर्वत-शिखर से देखना चाहिए। अर्थात् वे कहते हैं कि हम अनेक व्यक्तियोंकी उन्नति को तो बडी उत्सुकता से देखते हैं परंतु कभी-कभी उन्नति की उस ऊँचाई से व्यक्ति की अवनति को भी देखना चाहिए।

''दूसरों के घर में घुसकर देख आने की जगह,

दोस्तों, गृह-युद्ध को अपने ही घर से देखिए।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से गजलकार कुरेशी कहते हैं कि कई बार हम दूसरों के घर में चल रहे युद्ध अर्थात् संघर्ष को बडी रोचकता से तथा आनंद के साथ देखते हैं परंतु हमें इस गृह-युद्ध को अपने ही घर से देखना चाहिए। अर्थात् दूसरों के घर में चल रहे संघर्ष को भी हमें अपने घर की तरह देखकर उसे सुलझाने में मदद करनी चाहिए न कि उसे बढाना चाहिए।

५०. गजल

''दो रोटी के अलावा, चार की बातें नहीं करते,

करोडो लोग कोठी-कार की बातें नहीं करते।''

भावार्थ :- इस शेर में जहीर कुरेशी ने वर्तमान समाज की आर्थिक विषमता का मार्मिक चित्रण किया हैं। वे कहते हैं कि हमारे समाज में कई लोग ऐसे हैं जो दो रोटियों के अलावा चार बातें नहीं करते। हमारे देश में करोंडो लोग ऐसे हैं जो चंद अमीर लोगों की तरह कोठियों और कार की बातें नहीं करते।

''बरस में, एक दिवाली-अमावस के अलावा हम,

अमावस से कभी उजियार के बातें नहीं करे।''

भावार्थ :- इस शेर में भी कुरेशी ने आर्थिक विषमता को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि आज भी इस देश में एक साल में केवल दीवाली की अमावस के अलावा किसी भी अमावस के दिन कई लोग उजाले की बातें नहीं करते। अर्थात् गजलकार कहते हैं कि दीवाली इस देश का ऐसा त्यौहार है जिस दिन अमीर गरीब सभी अमावस के दिन अपनी क्षमता के अनुसार घर में खुशियाँ मनाते तथा उजाला करते हैं।

''यहाँ इस देश में कुछ आदिवासी-क्षेत्र ऐसे हैं-

जहाँ के नागरिक सरकार की बातें नहीं करते।''

भावार्थ :- इस शेर में जहीर कुरेशी ने सदियों हाशिये पर रखे गये आदिवासियों की वास्तविकता को अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि इस देश के गाँव-शहरों में, दूर-दराज में सरकार तथा सियासतों की बातें होती हैं। परंतु अभी भी जो आदिवासी क्षेत्र है वहाँ के नागरिक सरकार से संबंधित किसी भी प्रकार की बातें नहीं करते। आदिवासी समाज के पिछडे, अभावग्रस्त जिंदगी को इस शेर में अभिव्यक्त किया हैं।

''जहाँ पर देह नारी या पुरुष की गैरहाजिर हो,

शहर के लोग ऐसे प्यार की बातें नहीं करते।''

भावार्थ :- इस शहर में कुरेशी ने महानगरों में बढती उपभोगवादी तथा ऐंद्रियता की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है। वे कहते हैं कि शहरों में जब भी प्यार की बात की जाती हैं तब कभी भी नारी या पुरूष के देह से विरहित बातें नहीं होती। अर्थात् जब भी प्यार की बात निकलती है तब केवल शारीरीक प्रेम की बातें की जाती हैं। फिर चाहे वह पुरूष से संबंधित हो या नारी से।

''जिन्हें बिकना है, जीवन में हजारों बार बिकना है,

वे अपने मूल्य या बाजार की बातें नहीं करते।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने भूमंडलीकरण के कारण बदले हुए जीवन मूल्यों को रेखांकित किया हैं। वे कहते हैं कि आज के इस भूमंडलीकरण के दौर में हर चीज बिकाऊ हो गई हैं। हर कोई बेचना या खरीदना चाहता है, बिकना चाहता है। और इस बाजार में जो बिकने की तैयारी रखता है वह कभी नैतिक मूल्यों या बाजार की बातें नहीं करता। अर्थात् इस बाजारवाद ने मूल्यों का पतन कर दिया हैं।

५१. गजल

गर्म कम्बल, नर्म बिस्तर से निकलकर देख तो,

है खुला आकाश, तू घर से निकलकर देखतो।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से जहीर कुरेशी ने आत्मकेंद्री तथा अपने परिवार तक ही सीमित जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को अपने घर से निकलकर जीवन के व्यापक पटल को समझने की बात की हैं। वे कहते हैं कि सही दृष्टि से अगर जीवन को समझना है तो अपना गर्म कम्बल, नर्म बिस्तर से निकलकर घर से बाहर निकलकर खुले आकाश अर्थात् विस्तृत संसार को देखना चाहिए।

''एक भी बाधा नहीं, जो रोक ले तेरे कदम,

यार, अपने व्यर्थ के डर से निकलकर देख तो।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर में मनुष्य की सामर्थ्य का बखान किया है। वे कहते हैं कि ऐसी कोई बाधा या रूकावट नहीं होती है जो उसके कदमों को रोक सके। बशर्ते उसने अपने निरर्थक डर से निकलकर आगे बढना चाहिए। वे कहना चाहते हैं कि मनुष्य अपने लक्ष्य तक तभी पहुँच सकता है, जब वह निडर वृत्ति को अपनाते।

''जो न परझर जी सका, उस पर न मधु-ऋतु आएगी,

देख, अपने शुष्क परझर से निकलकर देख तो।''

भावार्थ :- इस शेर में कुरेशी ने जीवन के सुख-दुख तथा आशा-निराशा इन दो पहलुओं को पतझर और मधु-ऋतु के उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि जो परझर को नहीं जी सका उस पर कभी मधु-ऋतु की बरसात भी नहीं होती। अगर मधु-ऋतु की चाह है तो शुष्क पतझर भी नहीं होती। अगर मधु -ऋतु की चाह है तो शुष्क पतझर का भी अनुभव लेना आवश्यक होता है। अर्थात् जब तक हम दुख या निराशा का अनुभव नहीं लेते तब तक हमें सुख तथा आनंद का अहसास नहीं हो सकता। अत: चाहिए कि हम सुख के साथ-साथ दु:ख का भी अनुभव लें।

''तू भी मेरे साथ गा सकता है आशाओं के गीत,

किन्तु, अपने इस बुझे स्वर से निकलकर देख तो।''

भावार्थ :- गजलकार कुरेशी इस शेर के माध्यम से कहना चाहिते है कि हर व्यक्ति आशाओं भरे गीत गा सकता है। कवि अपने मित्र से कहता हैं कि वह भी आशाओं भरे, आनंद तथा खुशी के गीत गा सकता है। परंतु आवश्यकता यह है कि उसने अपने दुख को भूलकर और बुझे स्वर से बाहर निकलकर एक बार देखते की कोशिश करनी चाहिए।

''जोहते हैं तट पे तेरी राह मुस्कानों के फूल,

आँसुओं के इस समंदर से निकलकर देख तो।''

भावार्थ :- जहीर कुरेशी ने इस शेर के माध्यम से आशावादी भावना का चित्रण किया है। वे निराशा तथा दु:ख में डूबे व्यक्ति को आशा बँधाते हुए कहते हैं कि हमें आँसुओं के समंदर से बाहर निकलकर नये सिरे से जीवन प्रारंभ करना चाहिए। इसका कारण यह है कि जीवन के तट पर उसकी राहों में मुस्कानों के फूल उसकी राह जोहते हैं। अर्थात् इस जीवन पथ पर अनेक आनंद तथा खुशी के पल उसका इंतजार करते हैं।

''कितने चेहरे तुझसे मिलने के लिए बेताब हैं,

एक दिन तू अपने अन्दर से निकलकर देख तो।''

भावार्थ :- इस शेर के माध्यम से कुरेशी ने निराशा में डूबकर अपने आपको सबसे काँटकर दूर बैठे मनुष्य को ढाँढस बँधाते हुए कहा है कि हमें निराश होकर सबसे नाता तोडकर, अलग नहीं बैठना चाहिए। जीवन में सुख-दुख की आँख मिचौनी चलती ही रहती है। अत: दुख आनेपर या असफलता के आने पर सबसे दूर नहीं जाना चाहिए। एक बार अपने आपसे बाहर निकलकर देखना चाहिए कि कितने चेहरे उसे मिलने के लिए बेताब हैं। अर्थात् कुरेशी निराशा या असफलता के कारण अकेलेपन की प्रवृत्ती के शिकार व्यक्ति के मन में आशा का संचार करते हुए प्रेम के रिश्ते से उसे समाज से जोडने का प्रयास करते हैं।

५.३ विषय विवरण

५.३.२ आम आदमी का जीवन चित्रण –

कुरेशी की गजल आम–आदमी के आस–पास घुमती हैं। उनके सुख दुख को अपना मानते हैं, वे अपनी पक्षधारता को बयाँ करते हुए कहते हैं –

''मैं आम आदमी हूँ, तुम्हारा ही आदमी,

तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।''

यह आम आदमी अपने जीवन में कई समस्याओं से जूझता हैं। व्यवस्था द्वारा भी उसे सताया जाता है, उसका शोषण होता हैं। उसकी सहनशीलता उसे व्यवस्था से विरोध करने से रोकती हैं। परंतु जब सहनशीलता की सीमा टूटती है तो वह विद्रोह करता है। अपनी क्षमता के अनुसार व्यवस्था से लोहा लेता है। कई बार वह चुपचाप अन्याय सहन करता है। परंतु इसका अर्थ यज नहीं है कि वह कायर है। वह कम ही क्यों न हो लडता है। सामान्य जनता या आम आदमी की इस संघर्षशीलता को अभिव्यक्त करते हुए कुरेशी एक शेर में कहते हैं –

''इस व्यवस्था में, बहुत लडना बहुत मुश्किल नहीं,

किन्तु, वो कम लडने वाला आदमी कायर न था।''

जहीर कुरेशी जानते हैं कि निरंतर संघर्ष ही आम आदमी की वास्तविकता है। उसे हर समय संघर्ष से ही गुजरना पडता है। अपने रोजमरी की जरूरतों को हासिल करने से लेकर बडी से बडी चीज पाने तक कडी मेहनत और परिश्रम करना पडता है। जब उसे वह हासिल करता है तो उसे जीत–सा अहसास होता है। इसी कारण गजलकार लिखते हैं –

''अथक प्रयास के उजले विचार से निकली,

हमारी जीत, निरंतर जुझार से निकली।''

आम आदमी हमेशा अपनी आय के अनुसार जरूरतें बढाता हैं और पूरी करता हैं। अपनी इच्छाओं को दबाते हुए जितनी तनख्वाह होगी उतना ही खर्च करता है। आम आदमी की इस विवशता भरी जिंदगी को रेखांकित करते हुए कुरेशी कहतें हैं –

''हमारी चादरें छोटी, शरीर लम्बे हैं,

हमारे खर्च की सीमा पगार से निकली।''

यह आम आदमी अपनी आम जरूरतों को पूर्ति के लिए निरंतर संघर्ष करते हुए भी अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश है। कई बार यह विवशता उन्हें अन्याय, अत्याचार चुपचाप सहन करने के लिए मजबूर करती हैं। वे अपने ऊपर हो रहे अन्याय का विरोध भी कर नहीं पाते। आम आदमी की इस सहनशीलता को व्यक्त करते हुए जहीर कुरेशी जी कहते हैं –

''एक भी अन्याय का करते नहीं तनकर विरोध,

खुद को कालीनों की शैली में बिछा लेते हैं लोग।''

जनवादी विचारधारा से जुडे जहीर कुरेशी आम आदमी की संघर्षशीलता को चाहते हैं। आम आदमी

के मन में बैठी सहनशीलता तथा कायरता उन्हें भाति नहीं। वे आम आदमी को एक सैनिक के रूप में देखना चाहते है। उसकी कायरता तथा डर उन्हें बेचैन तथा क्रोधित करता है। आम आदमी की इस कायरता पर प्रभाव डालते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

''जिंदगी से भागकर लडता रहा जो, उम्र भर,

क्या कहेंगे आप उस सैनिक को, कायर की जगह।''

आम आदमी का संपूर्ण जीवन संघर्ष अपने पेट की आग बुझाने का संघर्ष है। नौकरी कर के वह अपने जीवन का निर्वाह करता है। अपने परिवार जनों का पेट भरने के लिए नौकरी उसे जहाँ ले जाती है वह वहाँ चुपचाप चला जाता है। निरंतर पेट के लिए भटकना यह आम आदमी की नियति ही बन गती है। इस वास्तविकता को व्यक्त करते हुए कुरेशी लिखते हैं –

''पेट भरने के लिए की है जो मैंने नौकरी,

इस शहर के बाद जाने किस शहर ले जाएगी।''

इस प्रकार कुरेशी जी ने आम आदमी के जीवन के विभिन्न रूपों का बडा ही सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया। आम आदमी की अभावग्रस्त जिंदगी, गरीबी, विवशता, सहनशीलता तथा संघर्षशीलता का यथार्थ चित्रण किया है।

५.३.२ वर्तमान राजनीति का चित्रण –

जहीर कुरेशी की गजलें अपने वर्तमान समय तथा समाज का यथार्थ चित्रण करती है। अत: उनकी गजलों में वर्तमान राजनीति का यथार्थ अंकित हुआ है। स्वाधीनता के बाद कुटील एवं स्वार्थी राजनीति की शिकार सामान्य जनता हुई है। उनकी भावना को अभिव्यक्त करते हुए कुरेशी एक शेर में लिखते हैं –

''सब जानते हैं जिसको, सियासत के नाम से,

हम भी कहीं निशाने हैं उस खास तीर के।''

सियासत या राजनीति आम आदमी को अपने इशारों पर नचाती है। अपनी शोषण की नीति चलाने के लिए वे आम आदमी की इस्तेमाल करता है। गजलकार कुरेशी जी कहते हैं –

''आज भी तो है सियासत एक गणिका की तरह,

इस सियासत ने मुझे भी आजमाया है बहुत।''

सत्ता के तख्त पर बैठा वर्तमान राजनेता वैभव, विलासिता और ऐशाआराम में जिंदगी बिताता है। वह आम लोगों से चुनकर आता है, उसके बल पर सत्ता हथियार है परंतु उसे ही भूलकर सत्ता के उन्माद में डूबे जाता है। कुरेशी वर्तमान राजनेता की इस तानाशाही विलासिता भरी जिंदगी का चित्र अंकित करते हुए लिखते हैं –

''उसने सत्ता के अश्व पर चढकर,

जो भी देखा – वो शान से देखा ।''

वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनेता जनता द्वारा चुन लिये जाते हैं और संसद में जाकर देश की

नीति निर्धारित करते हैं तथा देश की जनता की विभिन्न समस्याओं को सुलझाना उनका दायित्व बन जाता है। पिछले पचास सालों में भी हमारे राजनेताओं द्वारा भूखमरी की समस्या जैसी बुनियादी समस्याएँ भी हल नहीं की गयी है। जब भी भूखमरी का मसला उठाया जाता है तब केवल संसद में बहस होती है और जनता को यह धोखा दिया जाता है कि उन्हें उनकी कितनी चिंता है। राजनेताओं की इस चालबाजी और संसदीय व्यवस्था का पर्दाफाश करते हुए कुरेशी कहते हैं –

''लोग संसद में विगत चालीस वर्षों से,

कर रहे हैं भूखमरी को हल विवादों में।''

ये राजनेता या सत्ताधारी नहीं चाहते कि देश से भूखमरी की समस्या हल हो बल्कि राजनीति की जाती है और वोट हथिया लिए जाते हैं।

लोकतांत्रिक-व्यवस्था में देश की जनता की सुरक्षा की जिम्मेदारी सरकार पर होती है। देश का संचालन संविधान नियमों पर चलता है। अत: संविधान की रक्षा करना भी सरकार की ही जिम्मेदारी है। परंतु जब संविधान विरोधी ताकतों द्वारा संविधान को ही हटाने का षड्यंत्र चलाया जा रहा था तब सरकार मूक दर्शक बनी देख रही थी। शायद संविधान को हटाने में सरकार का भी हाथ हो। सरकार के इस रवैये से आम आदमी भयभीत हो जाता हैं। सरकार की इस चालाकी या निष्क्रियता को बयान करते हुए गजलकार लिखते हैं –

''संविधानों की भी रक्षा नहीं कर पाई जो,

मूक दर्शक बनी सरकार से डर लगता है।''

लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की सत्ता होती है। सामान्य जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि देश की नीति तथा विकास की दिशा निर्धारित करते हैं। अत: उन्हें जनता के प्रतिबद्ध होना चाहिए। परंतु वास्तविकता यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद नीतियाँ पूँजीपति तथा अमीर-साहूकारों का हितसंवर्द्धन को दृष्टि में रखकर ही निर्धारित की गयी है। सेठ-साहूकार सामान्य जनता को लूटनेवाली अपनी पूँजेवादी नीतो चलाते हैं और उनका साथ जनता द्वारा निर्वाचित राजनेता दे रहे हैं। इसा चालाकी का पर्दाफाश करते हुए कुरेशी लिखते हैं –

''चोर होकर भी वो कहलाएगा साहूकार,

क्योंकि वो रहता है सत्ताधारियों के साथ।''

लोकतांत्रिक-व्यवस्था में सत्ता-पक्ष के साथ-साथ विपक्षी दल को भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। देश की नीति निर्धारण तथा सत्ताधारियों पर नियंत्रण रखने के काम में भी विपक्षियोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परंतु सत्ता तथा सुविधाओं की प्राप्ति हेतु विपक्षी दल कई बार अपना अहम् कर्तव्य भूलकर सत्ताधारियों की गलत नीतियों का भी समर्थन देता है। जनता को एक दूसरे के शत्रु दिखानेवाले सत्ताधारी दल के तथा विपक्षी दल के लोग अंधेरे में साँठगाँठ करते हैं।

दोनों दल जनता के प्रति उत्तरादायी माने जाते हैं। परंतु सत्ता, स्वार्थ एवं लालसा के कारण वे अपना कर्तव्य भूलकर जनता का ही शोषण करते हैं और तानाशाहा बनकर जनता पर हुकूमत करते हैं। जनता के सेवक के रूप में प्रजातंत्र की कुर्सी पर बैठे ये लोग सत्ता के मोह में सामान्य जनता को संबोधित करते हुए लिखते हैं –

''ये प्रजातंत्र की कुरसी है, उतारों उसको,

वो जो आ बैठा हे कुरसी पे स्वयंभू बनकर।''

वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन पूरी तरह से राजनीति से प्रभावित हो गया है। वर्तमान राजनीति सामान्य जनता को संचालित करती है। आज राजनीति सामान्य आदमी को कठपुतली की तरह नचा रही हैं -

''हमको चलना है, लेकिन यह राजनीति तय करती है,

हमने तो केवल नेता के कहने पर प्रस्थान किया।''

लोकतांत्रिक-प्रणाली में सामान्य जनता का वोट ही सरकार स्थापित करता है। जनता ही अपने प्रतिनिधी वोट द्वारा चुनती है। परंतु वर्तमान समय में सत्ता हासिल करने के लिए जनता की धर्म, जाति, प्रांत, भाषा आदि संकीर्ण अस्मिताओं को भडकाकर राजनेता अपनी वोट की घिनौनि राजनीति खेल रहे हैं। इस कारण देश की अखंडता तथा सार्वभौमता को खतरा निर्माण हो गया है। कुरेशी इस वास्तविकता बेपर्दा करते हुए लिखते हैं -

''वोट की राजनीति में अंधे,

देश की एकता को भूल गए।''

जानबूझकर ऐसे संवेदनशील मसलों को हवा दी जा रही है जिसके कारण जनता विभाजित हो जाए और उनकी वोट की राजनीति सफल हो जाए। अत: कुरेशी आगे लिखते हैं -

''इस राजनीति द्वारा, महज वोट के लिए,

जलते हुए सवालों को पैदा किया गया।''

वर्तमान समय में राजनीति ने सामान्य आदमी की संपूर्ण जनजीवन झकझोर दिया है। हर क्षेत्र में राजनीति ने प्रवेश किया है। धर्म, अर्थ, भाषा, प्रांत, संस्कृति आदि सभी क्षेत्र राजनीति से प्रभावित हैं। जीवन की स्वाभाविकता को ही राजनीति न खत्म किया गया। सामान्य आदमी के आपसी रिश्ते भी राजनीति से प्रभावित होने के कारण जीवन का आनंद खत्म हो गया है। अत: कुरेशी कहते हैं -

''हर कदम पर ही सियासत है, इधर से देखिए,

यार, जीवन को खिलाडी की नजर से देखिए।''

भारत की वर्तमान राजनीति की यह विशेषता बन गयी है कि देश के सभी दलों का नेतृत्व तथा प्रमुख नेता बुजुर्ग या वृद्ध है। देश को युवा शक्ति को पीछे धकेलकर ये बूढे राजनीति को स्वयं चला रहे हैं। वर्तमान राजनीति की इस विसंगति पर प्रहार करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं -

''आज तक तो यही देखा है युवा-पीढी ने

देश को खींच रहा है कोई इंजन बूढा।''

इस प्रकार गजलकार जहीर कुरेशी ने हमारी वर्तमान राजनीति की विसंगतिओं तथा विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया हैं।

५.३.३ स्त्री की यातनामयी जिंदगी का यथार्थ

भारतीय समाजव्यवस्था में स्त्री को सदियों से यह समझा गया है। पुरूषप्रधान समाजव्यवस्था होने जे कारण स्त्री का समाज में गौण स्थान मिला है। भिन्न सामाजिक, धार्मिक रीतिरिवाजों, परंपराओं तथा प्रथाओं के कारण भी इसका जीवन अत्यंत दयनीय हो गया है। जहीर कुरेशी की गजले स्त्री की यातनाओं तथा दु:ख दर्द को बडी सजीवता से अंकित करती है।

दहेज प्रथा भारतीय समाज की एक विशेषता बन गयी है। विवाह के समय लडकी के पिता को लडके वालों को दहेज देना पडता है। पैसों से रिश्ता जुड जाने के कारण उस लडकी को कई बार अपने ससुराल में अपनापन नशीब नहीं होता। पति भी बार-बार पैसों के लिए सताता है। इस वास्तविकता को अभिव्यक्त करते हुए वे लिखते हैं -

''लाख रूपए में खरीदा या पिता ने मेरा वर,

वो मेरा सर्वांग होकर भी, पराया है बहुत।''

गरीबी, दरिद्रता तथा अभाव के कारण कई बार घर की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए गलत कामों का सहारा लेना पडता है। न चाहते हुए भी ऐसे काम करने पडते है जो समाज द्वारा अनैतिक या घिनौने समझे जाते हैं। जहीर कुरेशी इस संबंध में लिखते हैं -

''धीरे-धीरे वो कुशल नृत्यांगना बन ही गई,

वक्त ने उस एक औरत को नचाया है बहुत।''

इसप्रकार के काम करना यह केवल उसकी मजबूरी होती है। उसे अपनी मर्यादायें तोडने का निर्णय लेने से पहले बहुत सोचना पडता है। मन को सँभालना पडता है। विवशतावश मर्यादाओं का उल्लंघन करनेवाली स्त्री की इस मानसिकता का वर्णन करते हुए गजलकार लिखते हैं -

''जब भी औरत ने अपनी सीमा-रेखा को पार किया,

पार-गमन से पहले, खुद को कितने दिन तैयार किया।''

अतिमहत्त्वाकांक्षाएँ मनुष्य को अनैतिकता के रास्ते पर ले जाती है। कई बार पति की अतिमहत्त्वाकांक्षा के परिणाम पत्नी को भुगतने पडते हैं। सदियों से औरत को भोग्या की दृष्टि से देखा जाता हैं। इस दृष्टि के कारण महत्त्वाकांक्षा की लालसा रखनेवाला पति अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी पत्नी तक को बेच देता है। इस वास्तविकता को बेनकाब करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''महत्त्वाकांक्षी पति के इशारे पर,

गई थी कल भी वो साहब के बिस्तर तक।''

पति की इस अतिलालसा के कारण अनैतिकता के रास्ते पर चली औरत की ओर समाज घृणा की दृष्टि से देखता है। ऐसी औरत की मनोव्यथा को समझने के लिए उसे पूरी तरह जानना जरूरी है। अत: कुरेशी कहते हैं -

''अनैतिकता के चश्में को बदल कर देखना होगा,

गलत राहों पे वो कैसे गई, ते सोचना होगा।''

अनमेल विवाह की समस्याओं से भी भारतीय समाज सदियों से ग्रस्त है। अक्सर लडकी जैसे ही

युवा हो जाती है उसे बोझ समझकर जल्द से जक्द ब्याह दिया जाता है। विवाह के समय यह भी नहीं देखा जाता कि दोनों का मेल है भी या नहीं। कई बार तो छोटीसी लडकी का विवाह बूढ़े आदमी के साथ किया जाता है और बिना किसी गुनाह के उस लडकी को सारी उम्रभर शरीर सुख से वंचित रहना पडता है। उसकी इस व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कुरेशी ने लिखा है –

''बूढा वर नवयुवा वधू के,

तन का हाहाकार न जाना।''

गजलकार आगे लिखते हैं –

''उस सुहागिन की व्यथा आप भला क्या समझें,

जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढा।''

एक पित के लिए लडकी का विवाह सबसे बडी समस्या मानी गयी है। भारतीय समाज में स्त्री को दिया गया निम्न स्थान ही इसका कारण है। दहेज प्रथा तथा पुत्री पर होनेवाले अन्याय के कारण पिता हमेशा भयभीत रहता है। उसे अपनी बेटी की शादी तथा भविष्य की चिंता सताती रहती है। अच्छा वर ढूँढते-ढूँढते वह थक जाता है। ऐसे ही एक पिता का चित्र खींचते हुए कुरेशी कहते हैं –

''जो भी मिल जाता है कहते हैं, उसी से बापू,

मेरी बेटी के लिए तुम भी कोई वर देखो।''

स्त्री को अपने पिता तथा पति दोनों के घर पर सम्मान नहीं मिलता। हमेशा से उसके साथ असमानता का व्यवहार होता रहा है। उसे अपने पति के घर पर सारा सुख तो मिल जाता है परंतु बराबर का दर्जा नहीं मिलता। जीवन केवल भौतिक सुख ही सबकुछ नहीं होता बल्कि जहाँ उसे सम्मान मिले, बराबरी का स्थान मिले वहाँ पर ही सच्चा सुख होता है। इस भावना को अभिव्यक्त देते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

''अपने पत्नी को सारे सुख बराबर के दिए,

किन्तु, मिल सकती नहीं उसको बराबर की जगह।''

उसकी यह दशा न केवल देहातों में है बल्कि शहरों में भी उसे पुरूषों से निम्न ही समझा जाता है। जहीर कुरेशी के शब्दों में –

''आज के इस दौर में भी, क्या नहीं होता,

गाँव से लेकर शहर तक, नारियों के साथ।''

शादी के बाद औरत को कई यातनाओं, समस्याओं तथा शोषण को सहन करना पडता है। इस कारण उसका जीवन आँसुओं का समंदर बन जाता है। मन में दुःख को दबाकर उसे ओठों पर मुस्कान रखनी पडती है। स्त्री की इस द्वंद्वग्रस्त मानसिकता को रेखांकित करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

''आँखो में आँसू का झरना, अधरों पर मुस्कानें हैं,

औरत ने इस द्वंद्व युद्ध में खुद को लहू-लुहान किया।''

इस घुटन के कारण उसका गला रूँधने लगता है मगर कई मर्यादाओं के कारण आँसू निकल नहीं पाते। इस अवस्था को चित्रित करते हुए कुरेशी कहते हैं –

"उसका रूँधने लगा गला, लेकिन,

आँसुओं की जुबान बाकी है।"

अक्सर औरत के संबंध में, उसके मन के संबंध में कई भ्रम फैलाये जाते हैं। जैसे कि औरत एक पहेली है, उसे कोई समझ नहीं सकता। इस मान्यता को नकारते हुए कुरेशी चाहते लिखते हैं -

"तुम समझना ही नहीं चाहते औरत का सुभाव,

वो पहेली नहीं, औरत को समझकर देखों।"

गजलकार कहना चाहते हैं कि औरत पुरूष के मन को तुरंत भाँप लेती है। गंदी नजरों को दूर से ही पहचान लेती है। औरत के इस स्वभाव को अभिव्यक्त करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

"मोम की गुडिया समझ लेती है छुअनों से,

साथ में लेटे हुए अंगार की भाषा।"

विवशतावश कई सारी औरतों को न चाहते हुए भी अनैतिकता के मार्ग को अपनाना पडता है। इसी कारण समाज में वेश्या की समस्याएँ निर्माण हो गयी है। समाज के उँचे-पूँजीपति लोग अपनी भोग लालसा तथा कामवासना की पूर्ति के लिए समाज की गरीब, दरिद्री औरतों की विवशता का लाभ उठाते हैं। रात होते ही ऐसी औरतें घर के बाहर सज-सँवरकर कदम रखती है। जहीर कुरेशी ने समाज की इस वास्तविकता का पर्दाफाश करते हुए लिखा हैं -

"अँधियारा घिरते ही वो, तन की दूकान सजाती है,

इसी लिए वो बाट जोहती है अँधियारा होने की।"

इस प्रकार गजलकार जहीर कुरेशी ने भारतीय समाजव्यवस्था में सदिओं से बंदिस्त स्त्री की जिंदगी का यथार्थ अंकित किया है। समाज में स्त्री की ओर देखने का दृष्टिकोण, बेटी के पिता की विवशता, अममेल विवाह, वेश्या की समस्या, औरत की द्वंद्वात्मक मानसिकता आदि का बडा मार्मिक चित्रण इनकी गजलों में हुआ है।

५.३.४ विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण

गजलकार जहीर कुरेशी ने अपनी गजलों में समसामायिक विभिन्न सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

वर्तमान समाज कई सारी समस्याओं से ग्रस्त है। हमारा समाज कई सारी असमानताओं, विषमताओं, विसंगतिओं तथा विकृतिओं से ग्रस्त हैं। समाज में सदिओं से निर्बल तथा कमजोर लोगों पर, औरत तथा दलितों पर ताकत वरों द्वारा अन्याय-अत्याचार होता आ रहा है। इस यथार्थ को अंकित करते हुए कुरेशी एक शेर में लिखते हैं -

"निर्बल कोई भी हो- औरत, हरिजन अथवा शीशमहल,

निर्बल पर ताकतवर ने, हर युग में, अत्याचार किया।"

पूँजीवादी-शोषणकारी व्यवस्था में सामान्य श्रमजीवी, मेहनतकारी लोगों का शोषण होता है। इसी कारण इन लोगों को बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं होती। अन्न, वस्त्र निवास जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति भी वह सहजता से कर नहीं पाता। इस शोषणचक्र में फँसे मेहनतकश लोगों की इस अभावग्रस्त जिंदगी

का यथार्थ चित्रित करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

''जिसको अपना कह सकूँ, बस्ती में ऐसा घर न था,

नील–अम्बर के सिवा, सिर पर कोई छप्पर न था।''

इसी कारण इस मेहनतकश आदमी में शहर में सडक के किनारे, झुग्गी–झोपडिओं में रहना पडता है। इस मेहनतकश लोगों की मेहनतपर बनाये गये महल से पूँजीपति इन झुग्गी झोपडिओं को हिकारत से देखता है –

''सेठ साहब ने झोपडी का कद,

अपने उँचे मकान से देखा।''

इस विषमता के कारण ही समाज में विषमता अपने क्रूर रूप के साथ बढ रही है। इस विषमता के कारण ही समाज में गरीबी तेजी से बढ रही है। इस बढती गरीबी और दरिद्रता को रेखांकित करते हुए गजलकार लिखते हैं –

''आँकडों के सिवा, गरीबी पर,

झुग्गियों का बयान बाकी है।''

जब इन झुग्गिओं में रहनेवाला मेहनतकश आदमी अपने हक, अधिकारों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा विषमता के खिलाफ आवाज उठाता है तब पूँजीवादी व्यवस्था जे पक्षधर लोग चुप्पी थान लेते हैं। इस सामाजिक विषमता को बयान करते हुए कुरेशी एक शेर में लिखते हैं –

''झुग्गिओं की बात लगती है उन्हें बौनी,

वे हिमालय से बडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

कल–कारखानों में तथा जमीदारों के खेतों में खटनेवाले खेतीहर मजदूर के श्रम को कभी भी पूँजीपति या जमींदार देखता नहीं है। जी–तोड मेहनत से खेतीहर मजदूर द्‌वारा बोई गयी फसल से उसका अपनत्व का संबंध स्थापित होता है। इसका कारण यह कि वह अपना खून–पसीना बहाकर फसल की देखभाल करता है और इस तैयार फसल को देखकर जमींदार केवल मुनाफें का अंदाज लगाने लगता है। इस शोषण का चित्र अंकित करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

''तुमने फसलों से लगाया है रकम का अंदाज,

तुमने देखा ही नहीं फसलों का धानी होना।''

इस प्रकार खेतीहर मजदूर द्‌वारा सींची गयी फसल से जमींदार मुनाफा कमाता है और उसे केवल अगली फसल के लिए वह जीवित रह सके इतना मेहनताना देता है। इसीकारण उसे भूख एवं गरीबी में जीवन व्यतीत करना पडता है। उसके इस शोषण तथा भूख और गरीबी से व्यवस्था को या सरकार को कोई लेना –देना नहीं है। इस विसंगति को खोलते हुए गजलकार लिखते हैं –

''सचमुच भूख गरीबी क्या है,

ये दिल्ली – दरबार न जाना।''

हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में केवल इस समस्या पर बहसें होती है। संसद में बैठे हमारे राजनेता

जो जनता के प्रतिनिधि होते हैं वे पूँजीपतियों का हितसंबद्र्धन करते हैं। संसद में बैठकर भूख विषय पर बहस कर वे अपनी खोखली प्रतिबद्धता जताते हैं। उन्हें गाँव में भूख से बिलखते परिवार से कुछ लेना-देना नहीं होता। हमारे समाज की गरीबी, दरिद्रता और लोकतांत्रिक व्यवस्था की इस विसंगति को उद्घाटित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''गाँव में उस भूख का परिवार बसता है,

जिस पे बहसें हो रही थीं राजधानी में।''

मेहनतकरा समाज भूख से लडता हुआ दिनभर मेहनत कर थकान से चूर-चूर होता है और पत्थर के बिस्तर पर सो जाता है। परंतु वैभव विलासिता की पूँजीवादी संस्कृति में पले-बढे आदमीए को नर्म बिछौने की सिलवट भी चुभने लगती है। इस विसंगति को उद्घाटित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''थककर चूर बदन को पत्थर का बिस्तर भी काफी है,

वरना सिलवट भी चुमने लगती है नर्म बिछौने की।''

इस मेहनतकरा आदमी के लिए 'रोटी' की समस्या सर्वोपरि होती है। वे पूँजीपतियों की तरह कोठी-कार की बातें नहीं करते। उनका संपूर्ण जीवन संघर्ष 'रोटी' के इर्दगीर्द होता है। इस वास्तविकता को चित्रित करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं -

''दो रोटी के अलावा, चार की बातें नहीं करते,

करोडों लोग कोठी-कार की बातें नहीं करते।''

आह हमारे देश में 'काले धन' की समस्या भी बहुत अधिक मात्रा में दिखायी देती है। सरकारी तिजोरी पर डाका डालकर दान-धर्म करते है। एक तरफ सरकारी चोरी कर काला-धन संग्रहीत करना और फिर दान-धर्म करना इस सामाजिक विसंगति को रेखांकित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''काले पैसे को दिल खोलकर,

देनेवाला ही दानी लगे।''

हमारा समाज ऐसे चोरों के ही दानी के रूप में संबोधित करता है। कुरेशी आगे कहते हैं -

''इस कलियुग के दानवीर कर्णों की गाथा मत पूछों,

जितना भी काला धन था, वो मुक्त-हस्त से दान किया।''

वर्तमान भारतीय समाज में सांप्रदायिक संघर्ष का भी बोलबाला है। जहीर कुरेशी अपनी समसामायिकता को निबाहते हुए सांप्रदायिक संघर्ष को रेखांकित करते हैं -

''आपने देखे नहीं दो सम्प्रदायों के,

लोग हो जाते हैं जब पागक विवादों में।''

इन सांप्रदायिक विवादों ने देश की अखंडता को खंडित कर दिया है। हर संप्रदाय की ईश-वंदना अलग-अलग है और उस आधार पर भी विवाद उत्पन्न होते हैं। इस सांप्रदायिक विभिन्नता को अंकित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''धर्म पर इतने मतान्तर हो गए -

ईश-वंदन के कई टुकडे हुए।''

वर्तमान बाजारवादी या उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के कारण हमारे देश की सांस्कृतिक विरासत खतरा निर्माण हुआ है। इस खतरे से देश की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के लिए हमें अपनी परंपराओं से जुडाने की बात गजलकार करते हैं। वे कहते हैं -

''बचाना है अगर इस मुल्क की उजली विरासत को,

हमें अपनी जडों की ओर फिर से लौटना होगा।''

इस अपसंस्कृति ने हमारे सामाजिक रिश्ते नातों को भी प्रभावित किया हैं। अत: आज जब कोई रिश्तों नातों की बात करता है तो उसकी हँसी उडाई जाती है। इस संबंध में एक शेर द्रष्टव्य है -

''सभ्यता ने इस कदर बहका दिया -

लोग रिश्तों और नातों पर हँसे।''

इन नवबाजारी अपसंस्कृति के रूप को अंकित करते हुए गजलकार कुरेशी कहते हैं -

''सभ्यता के कौन से युग में खडे हैं हम,

बोलते हैं युद्ध के बाजार की भाषा।''

इस बाजार वादी संस्कृति ने हमारे समाज के मूल्य, आदर्श, नीति आदि को समाप्त कर दिया है। हर चीज बिकाऊ हो गयी है। इस बाजारवादी चेहरे को चित्रित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''जिन्हें बिकना है, जीवन में हजारों बार बिकना है,

वे अपने मूल्य या बाजार की बातें नहीं करते।''

जहीर कुरेशी ने अपने गजलों के माध्यमसे वर्तमान समाज की विभिन्न विकृतियों तथा विसंगतियों का भी यथार्थ चित्रण किया है। वर्तमान समाज में महानगरीय जीवन तथा आपाधापी भरी जिंदगी के कारण कुंठा की प्रवृत्ति बढ रही है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से खुली बात तक नहीं कर पा रहे है। अत: मन में कई सारी बातें कुंठित होकर वह व्यक्ति कुंठा का शिकार बन रहा है। वर्तमान समाज की इस विसंगति को चित्रित करते हुए कुरेशी एक शेर में लिखते हैं -

''एक मेरा दोस्त भी है बन्द कमरे की तरह,

अपने मन की बात जो कहता नहीं सुनता नहीं।''

इस महानगरीय जीवन में हर व्यक्ति हमें भागता हुआ दिखायी दे रहा है। जो कुछ भी करते हैं वह सुखप्राप्ति के लिए। परंतु इस भागदौड भरी जिंदगी में हम सुख के पल ही गँवा रहे हैं। इस नव जीवन पद्धति की विसंगति को बयान करते हुए गजलकार लिखते हैं -

''ये महानगरीय जीवन का करिश्मा है,

भूल बैठे हम सुखी परिवार की भाषा।''

इस तरह की जिंदगी के कारण महानगर का आदमी हमें असमय बूढा नजर आता हैं। इस नये आदमी के रूप को चित्रित करते हुए वे आगे कहते हैं -

''हमने शहरों को देखा है बुढापा ढोते,

किन्तु, देखा नहीं दुनिया में कहीं बन बूढा।''

वर्तमान समय कई सारी विकृतियों और विसंगतियों से सराबोर है। हर दिन हमें अखबार में दुर्घटनाएँ तथा विकृतियाँ पढने के लिए मिलती है। आज के समय की इस विसंगतो को खोलते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं -

''कोई अच्छी-सी खबर भी ढूँढ खबरों में कहीं,
रोज अखबारों में दुर्घटना ही दुर्घटना देख।''

आज हर व्यक्ति स्वार्थ और लालच में फँसा हुआ दिखायी देता है। इस स्वार्थ की प्रवृत्ति के कारण समाज-विभाजन हो रहा है। इस सत्य को उद्‌घाटित करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''स्वार्थ छोटे, जब बडे होने लगे,

मूल आँगन के कई टुकडे हुए।''

वर्तमान समाज हिंसा तथा युद्ध-सी विभीषिका के कारण त्रस्त है। खूनी और शस्त्र विक्रेताओं का बोलबाला है। अहिंसा के सारे प्रतीक लहूलुहान हैं। इस विसंगति को खोलते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं -

''खूनी हथियारों की बिक्री के नए माहौल में,

हँस रहे हैं शस्त्र-विक्रेता कबूतर देखकर।''

इस प्रकार जहीर कुरेशी की गजल वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं, विकृतियों तथा विसंगतियों का यथार्थ चित्रण कर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय देती है।

५.३.५ जनता की संघर्षशील मानसिकता का चित्रण

जहीर कुरेशी की गजल सामान्य मेहनतकश आदमी का पक्ष लेते हुए उसकी संघर्षशील मानसिकता को चित्रित करती है। समाज का सामान्य शोषित - पीडित मनुष्य पूँजीवादी व्यवस्था तथा विषमता धारित समाजव्यवस्था का शिकार है। वह अपनी जीवनावश्यक चीजों की पूर्ति के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है। अत: वह उसपर होनेवाले अन्याय, अत्याचार तथा अपने शोषण के विरूद्ध कुछ बोल नहीं पाता। सामान्य आदमी की इस विवशता को बयान करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''कैसे टकरा जाएँगे अन्याय - आँधी से,

वृक्ष बालू में गडे हैं, इसलिए चुप हैं।''

लेकिन जब सामान्य आदमी की सहनशीलता खत्म होती है तो वह व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार होता है। इस संघर्षशीलता को अभिव्यक्त करते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''लडाई में उतरकर, भागना तो का-पुरूषता है,

लडाई में उतर कर, जीतना या हारना होगा।''

गजलकार कहना चाहता है कि सहनशीलता की हद खत्म होने के बाद हार जीत की चिंता किये बगैर यह आदमी अन्याय - अत्याचार के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है। इस तरह की संघर्षशीलता मनुष्य को कठोर तथा ताकतवर बनाती है। आम आदमी की इस निरंतर संघर्षशीलता ने भी उसे अत्यंत कठोर बना दिया है। इस संबंध में एक शेर द्रष्टव्य है -

''भावनाओं के शहर में लोग बेघर हो गए,

जिंदगी से इस कदर जूझे कि पत्थर हो गए।''

इस संघर्षरत जीवन में आम आदमी की जब भी जीत हुई है वह कडे संघर्ष से ही हुई है। अथक प्रयास और जुझारू प्रवृत्ति के बल ही वह जीत हासिल करता है। सामान्य आदमी की इस जुझारू प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं -

''अथक प्रयास के उजले विचार से निकली,

हमारी जीत, निरंतर जुझार से निकली।''

गजलकार जहीर कुरेशी जी को सामान्य जनता की ताकत का अहसास है। वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता अपनी इच्छा के अनुसार देश को संचालित करवा सकते है। आज तक जिन नेताओं ने देश तथा देश की जनता जे साथ धोखा किया उन्हें दंडित करने की ताकत जनता के पास है। सामान्य जनता की इस सामर्थ्य को दर्शाते हुए कुरेशी लिखते हैं -

''दण्ड दे सकता है उनकी सिर्फ जन-मत ही,

देश को पहने रहे जो शेरवानी में।''

शोषणकारी या विषमतावादी व्यवस्था अपने शोषणचक्र को बरकरार रखने का भरसक प्रयास करती है। आम आदमी जब इस व्यवस्थाअ के खिलाफ आवाज उठाता है, उसे बदलने के लिए प्रयास करता है तब उसके मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करने का काम यह व्यवस्था करती है। लेकिन फिर भी जागृत सामान्य जन संगठित होकर झरने की तरह पहाड जैसी पूँजीवादी - प्रस्थापित ताकत से संघर्ष कर अपना रास्ता बनाते हुए आगे बढता है। सामान्य जनता की इस संघर्षशीलता को अभिव्यक्त करते हुए जहीर कुरेशी एक शेर में लिखते हैं -

''हजार रास्ता रोकें पहाड दुनिया के,

जो लोग झरने हैं, खुद रास्ता बनाते हैं।''

इसी संघर्ष के बलपर सामान्य आदमी अपने सपनों को पूरा करता है। इस संघर्ष के बल पर मिली सफलता को भी कुरेशी ने अभिव्यक्त किया है -

''जो बेहद मुश्किल लगता था, उसको भी आसान किया,

हमने सपनों को सच कर लेने का अनुसंधान किया।''

जहीर कुरेशी जी कहते हैं कि यह सफलता भी उन्हीं को प्राप्त होती है जो जीने और मरने का नशा संग लेकर चलते हैं। अर्थात् जो संघर्ष पथ पर बेहिचक आगे बढने का माँदा रखते हैं वे ही सफलता के कदम चूम सकते हैं। जहीर कुरेशी के शब्दों में -

''जिन्दगी में सिर्फ ऐसे लोग ही कुछ कर सके,

जिनके सँग करने या मरने का नशा चलता रहा।''

इसप्रकार गजलकार जहीर कुरेशी ने सामान्य आदमी की संघर्षशील मानसिकता तथा संघर्षरत जीवन का चित्र उकेरा है।

५.३.६ आशावादी भावना का चित्रण

जहीर कुरेशी की गजल सामान्य मेहनरकश मनुष्य के संघर्षशील जीवन के साथ-साथ उसके मन में बसी आशावादी भावना का भी मार्मिक चित्रण करती है। जीवन संघर्ष में कई बार हार तथा निराशा आती है, उस समय जन पक्षधर गजलकार जहीर कुरेशी सामान्य मनुष्य के मन में आशावादी भावना का संचार करते हैं। उनकी आशावादी भावना को व्यक्त करनेवाली एक गजल के चंद शेर द्रष्टव्य हैं -

''टूक -टूक विश्वास लिए फिरते हैं,
खुद को बहुत हताश लिए फिरते हैं।
पीडा व्यक्त न हो जाए, इस भय से,
मुख पर फीका हास लिए फिरते हैं।
हम जीवन की मृग-मरिचिकाओं में,
मीलों लम्बी प्यास लिए फिरते हैं।
काट दिए हैं पंख समय ने फिर भी,
उडने को आकाश लिए फिरते हैं।''

इस प्रकार हताशा, निराशा के बीच से गुजरते हुए भी गजलकार निराश न होकर मन में आशावादी भावना को लेकर चलता है। उन्हें विश्वास है कि इस अंधकार के बीच से ही सुहानी भोर निकल पडेगी। कुरेशी के शब्दों में -

''ये सोचकर ही तुम्हें रात से गुजरना है,
सुहानी भोर सदा अंधकार से निकली।''

कुरेशी जी के मन में बसी यह आशावादी भावना ही है जो सामान्य मनुष्य को विश्वास दिलाती है कि वर्तमान मंजर या परिस्थिती बदलेगी। अपने मन में ठूँस-ठूँसकर भरी इस आशावादी भावना को व्यक्त करनेवाली उनकी निम्नांकित गजल द्रष्टव्य है -

''न बदले मन से, सतह पर जरूर बदलेगा,
ये सख्त बर्फ का पत्थर जरूर बदलेगा।
वो बन के बदलियाँ बरसेगा, मीठे पानी की,
मुझे पता था - समंदर जरूर बदलेगा।
ये बात सोच रही है वो कितने सालों से
वो कुछ महीनों के अन्दर जरूर बदलेगा।
-- -- --
कभी कभी अम्न की रूत आएगी जमाने में,
कभी तो युद्ध का तेवर जरूर बदलेगा।''

जब कोई हताश, निराश होकर जिंदगी को बोझ की तरह ढोने की बात करता है तो उसे अपनी जीवनदायिनी दृष्टि समझाते हुए उत्साह सहित जीने की सीख देते हैं। उन्हें जीवन के अनमोल होने की बात समझाते हुए कुरेशी कहते हैं -

''जीवन है अनमोल, इसे उत्साह सहित जीना सीखें,
आम आदमी होकर भी, बातें करते हैं ढोने की।''

कुरेशी सामान्य मनुष्य के मन में इस तरह उत्साह जागृत कर कहता है कि वह भी उनकी तरह आशाओं के गीत गा सकता है, बशर्ते अपने बुझे स्वरों से बाहर निकलना होगा। कुरेशी के लब्जों में -

''तू भी मेरे साथ गा सकता है आशाओं के गीत,
किन्तु, अपने इस बुझे स्वर से निकलकर देखतो।''

इस प्रकार कुरेशी संघर्ष रत सामान्य मनुष्य के मन से हताश, निराशा को दूर कर उनमें आशावादी भावना अंकुरित कर जीवन पथ पर आगे बढने की प्रेरणा देता है।

५.४ शब्दार्थ

गणिका - नृत्यांगना
सियासत - सत्ता, सरकार
कारोबारी - व्यापारी
बौनी - मामूली, नाटी
बवंडर - भेंट, चोरी - चोरी मिलना
आवारगी - मौज-मस्ती
जुबाँ - जबान
छुअन - स्पर्श
उसूल - नियम, सिद्धांत
अनायास - सहज
फनकर - कलाकार
दर्पन - दर्पण, आईना
मरीचिका - मृगतृष्णा, भ्रांति
बौराना - पागल बन जाना
सिफर - गहराई
उजियार - रोशनी, उजाला
इत्मीनान - तसल्ली
विरासत - उत्तराधिकारी में मिला धन, संपत्ति
धानी - हरा
अनुसंधान - खोज
पनघट - पानी भरने का घट
तिमिर - अंधकार

५.३.७ जहीर कुरेशी की गजलों का कला-पक्ष

गजल विधा में काफिया और रदीफ का बहुत महत्त्व हो हैं। इस दृष्टि से जहीर कुरेशी एक सफल गजलकार सिद्ध होते हैं। उन्होंने काफिये का बहुत ही सफल, सटीक, सार्थक तथा सुंदर प्रयोग किया है। जैसे - पीर, चीर, तीर, कबीर, शरीर, ज्ञानी, दानी, सावधानी, वर्तमान, दलान, प्रस्थान, स्वर, शर,

मुद्राएँ, भाषाएँ, हताशाएँ, मँगेतर, बंदर, पत्थर, बिस्तर, समंदर, आदि। उन्होंने अनेक तत्सम् तथा तद्भव शब्दों का गजल में प्रयोग किया है।

जहीर कुरेशी ने गजलों में बहर (छंद) का भी सफल प्रयोग किया है। वे बहुत ही सफल एवं सहज बहरों का प्रयोग करते हैं। कठिन तथा उलझी हुई बहरों से अपनी गजल को दूर रखते हैं।

कहीं - कहीं काफिये के प्रयोग में छोटी-मोटी गलतियाँ दृष्टिगोचर होती है। जैसे विश्वास, हास, प्यास के साथ हताश, आकाश, लाश जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

उनके गजलों की भाषा आम बोलचाल की भाषा है। उन्होंने अपनी गजलों के लिए सहज, सरल भाषा को चुना है। इस कारण उनके गजलें काफी पसंद की जाती है। भाव तथा कला का सुंदर समन्वय उनकी गजलों में दिखायी देता है।

५.५ सारांश

संक्षेप में कह सकते हैं कि जहीर कुरेशी जी की गजलों समसामायिक समाज की विभिन्न विसंगतियों, राजनीतिक विसंगतियों, सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं का यथार्थ चित्र अंकित करती है। आम आदमी की जीवन के विभिन्न पहलुओं, अनुभवों का अत्यंत मार्मिक चित्रण उनकी गजलों में मिलता है। सत्ताधिशों के शोषण तंत्र तथा सामान्य शोषित, पीडित जनता की खौफनाक चुप को अभिव्यक्त करनेवाले कुरेशी जी अपनी गजलों के माध्यम से व्यवस्था के खिलाफ आवाज भी उठाते हैं। समाज के शोषित पीडित, मेहनतकश जनता के अभावग्रस्त जिंदगी का चित्र उकेरते हुए उनकी गजल सदियों से शोषित तथा गुलाम बनी औरत की यातनाभरी जिंदगी को भी अभिव्यक्त करती है।

नारीपर हो रहे अन्याय, अत्याचार तथ शोषण के कई रूप उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से अभिव्यक्त किये हैं। अन्याय, अत्याचार तथा शोषण के बावजूद चुप्पी थानकर बैठे सामान्य जनता की सहनशीलता तथा उनकी कायरता को भी कुरेशी जी ने उघाडकर रख दिया हैं। जहीर कुरेशी जी की गजल आम आदमी की पक्षधर गजल हैं। अत: उनकी गजलों में आम आदमी के जीवन के कई पहलू भी सजीव हो उठे हैं। इस आम आदमी को अपने इशारों पर नचाने वाली सियासी ताकतों के षड्यंत्र का पर्दाफाश करने का काम कुरेशी जी की गजल करती है।

वर्तमान समय की प्रजातांत्रिक प्रणाली की विसंगतियों तथा स्वार्थ और सत्ता प्राप्ति की राजनीति का भी यथार्थ चित्र इनकी गजलों में मौजूद है। देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा बनी वोट तथा विभाजन की राजनीति को भी कुरेशी जी ने बेनकाब किया है। अत: कह सकते हैं कि जहीर कुरेशी जी की गजल अपने समसामायिक समाज का यथार्थ प्रस्तुत करती है।

५.६ स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न -

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न -

* जहीर कुरेशी ने आम आदमी की जिंदगी का चित्रण यथार्थ रूप में किया है - सोदाहरण समझाइए।
* स्त्री की यातनमयी जिंदगी को जहीर कुरेशी ने गजलों के द्वारा बडी सफलता से अंकित किया है - विवेचन

कीजिए।

* जहीर कुरेशी ने वर्तमान राजनीति की पोल-खोल दी है - स्पष्ट कीजिए।

(ख) टिप्पणियाँ -

* कुरेशी की गजलों में व्यक्त आशावादी भावना
* कुरेशी की गजलों का कलापक्ष
* कुरेशी की गजलों में अभिव्यक्त सामाजिक विषमता

(ग) एक - दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

* कुरेशी के गजल संग्रहों के नाम लिखिए ।
* कुरेशी की गजलों में किन - किन विषयों की अभिव्यक्ति की गई हैं ?
* कुरेशी ने बाजारवादी अपसंस्कृति का चित्रण किस तरह किया है?
* कुरेशी की गजल किसके इर्द-गिर्द में घुमती हैं?

(घ) सही पर्याय लिखिए -

* लेखनी के स्वप्न गजल संग्रह कें लेखक कौन हैं?

(अ) जहीर कुरेशी (ब) दुष्यंतकुमार (क) शमशेर बहादुर (ड) डॉ. विराट

* पति की लालसा के कारण पत्नी को क्या करना पडा?

(अ) अनैतिक मार्ग अपनाना (ब) नौकरी (क) घर-परिवार संभालना (ड) तलाक लेना

* मेहनकश आदमी के लिए कौनसी समस्या सर्वोपरि हैं?

(अ) नौकरी (ब) संघर्ष (क) रोटी (ड) संस्कृति

* कुरेशी की गजलों में जीवन - उपयुक्त कौनसी भावना ठूँस-ठूँसकर भरी हैं?

(अ) संघर्ष (ब) हताशा (क) निराश (ड) आशावादी

५.७ स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* कुरेशी की गजलों के द्वारा महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ स्पष्ट कीजिए।
* जहीर कुरेशी की गजलों में अभिव्यक्त सामान्य- जन की जिंदगी को रेखांकित कीजिए।
* जहीर कुरेशी की गजलों में अभिव्यक्त समसामायिक समस्याओं का विवेचन कीजिए।
* जहीर कुरेशी की गजलों को गाकर देखिए।
* स्त्री - विषयक अभिव्यक्ति वाली जहीर कुरेशी की गजलों काअ संकलन कीजिए।

५.८ संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* जहीर कुरेशी की चुनिंदा गजलें - संपा. डॉ. मधु खराटे
* जहीर कुरेशी : महत्त्व और मूल्यांकन - डॉ. विनय मिश्र, उर्वशीयम् प्रकाशन, दिल्ली, २०१०.
* हिंदी गजल के विविध आयाम - डॉ. सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, दिल्ली, १९९३.

एम . ए . हिन्दी द्वितीय वर्ष

पेपरः 2

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा

इकाई : 1
भारत में भाषा विज्ञान के अध्ययन का परंपरागत स्वरूप

अनुक्रम

1.0 **उद्देश्य**
1.1 **प्रस्तावना**
1.2 **विषय विवरण**
 1.2.1 **भारत में भाषाविज्ञान के अध्ययन का परंपरागत स्वरूप**
1.3 **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न**
1.4 **सारांश**
1.5 **शब्दार्थ**
1.6 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**
1.7 **संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

1.0 उद्देश्य

✻ भाषाविज्ञान के परंपरागत स्वरूप को समझना।
✻ भाषा के विविध अंगों का विकास क्रम समझना।
✻ भाषाविज्ञान के अध्ययन की भारतीय परंपरा और विद्वानों के कार्य का परिचय प्राप्त करना।

1.1 प्रस्तावना

भाषा मानव-व्यवहार का, उसकी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। मानव-विकास के साथ-साथ उसकी भाषा का भी विकास होता रहा। भाषा का इतिहास इतना ही पुराना है जितना पुराना मानव इतिहास । भाषा की निश्चित व्यवस्था होती हैं । भाषा की उस व्यवस्था के अध्ययन के बिना भाषा का सही ज्ञान असंभव है। भाषा की व्यवस्था में स्वनों, शब्दों, वाक्यों और अर्थों की क्रियाशीलता के कारण ही उसका एक माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है। भाषा विज्ञान भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करता है क्योंकि भाषा का इतिहास और उसका रूप भाषाविज्ञान के अध्ययन का विषय हैं।

भाषा की व्यवस्था के क्रियाशील कार्य करनेवाले स्वन, शब्द, वाक्य, अर्थ से भाषाविज्ञान के अंगों के रूप हैं जिनसे भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की प्रदीर्घ परंपरा हैं कि जिन्होंने भाषाविज्ञान का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया हैं। भारत में इस परंपरा का प्राचीन काल में स्रोत मिलता हैं। इस इकाई में उसीका अध्ययन किया जानेवाला है।

1.2 विषय – विवरण

1.2.1 भाषा विज्ञान के अध्यायन का परंपरागत स्वरुप :

भाषा विज्ञान के अध्यायन का परंपरागत स्वरुप भारत में भाषाविज्ञान के अध्ययन का परंपरागत स्वरूप विविध विज्ञानों के समान ही भाषा से संबंधित अध्ययन भारत में प्राचीन काल से होता रहा है। अनेक भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि भारत में अन्य देशों की अपेक्षा भाषाविज्ञान के अध्ययन की गति आरंभ से ही अप्रतिम रही है। आधुनिक भाषाविज्ञान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पाणिनि के प्रभाव से ही विकसित हुआ हैं। भाषाविज्ञान के अध्ययन यह परंपरा अत्यंत प्राचीन हैं। अत: अध्ययन की सुविधा के लिए इसे दो भागों में विभाजित कर सकते हैं –

क) भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्राचीन परंपरा ख) भाषाविज्ञान के अध्ययन की आधुनिक परंपरा।

क) भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्राचीन परंपरा –

भारतीयों का प्राचीनतम साहित्य वैदिक साहित्य है। ऋग्वेद में भाषा-चिंतन और अध्ययन के बीज मिलते है। किंतु व्यवहार रूप में सर्वप्रथम कार्य ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है –

* **ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ –** इनमें कई स्थानों पर शब्दों के अर्थ समझाने का प्रयत्न किया गया है । भाषाविज्ञान के इतिहास में व्याकरण (खंड-खंड करना) और धात्वर्थ तक पहुँचने की प्रथम सीढी है।

* **पदपाठ –** वेदों का सही ढंग से अध्ययन -विश्लेषण करने के लिए पदपाठ का विचार किया गया है। संधि और समासों के आधारपर वाक्यों के शब्दों को अलग करके, स्वराघात पर विचार किया गया है । वेद पाठ में मंत्र, पद, क्रम, जटा, धन पाठ महत्त्वपूर्ण है।

* **शिक्षा –** वेदों के छ: अंगों में एक है शिक्षा । उसके अंतर्गत ध्वनि-विज्ञानसंबंधी कार्य हुआ है। स्वर और व्यंजन के उच्चारण भेद को समझानेवाली पद्धति शिक्षा है।

* **निघण्टु –** यास्क मुनि द्वारा लिखित उस ग्रंथ में विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का संग्रह है। अर्थात् केवल कठिन और दुर्बोध शब्दों का संकलन है। आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश होने के कारण भाषाविज्ञान की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

* **प्रातिशाख्य** - वेदों के शुद्ध उच्चारण तथा नियत ध्वनि की रक्षा लिए विद्वानों द्वारा (पद, नाम, आख्यात, निपातादि) प्रतिशाखानुसार जो सिद्धांत बताए गए हैं उन्हें प्रातिशाख्य कहते हैं।

* **निरूक्त** - यास्क मुनि द्वारा रचित यह ग्रंथ अत्यंत प्राचीनतम हैं। निरूक्त का अर्थ हैं 'व्युत्पत्ति' । निघण्टु के प्रत्येक शब्द की यास्क ने विस्तारपूर्वक व्याख्या की हैं, इनकी दृष्टि से प्रत्येक संज्ञा की व्युत्पत्ति किसी - न किसी धातु से हैं। उसमें कुल 1298 व्यत्पत्तियाँ देने का प्रयत्न किया गया हैं ।

⁕ **आपिशलि तथा काश कृत्स्न** – यास्क और पाणिनि के बीच भाषा के अध्ययन का पर्याप्त विकास हुआ । पाणिनि के पूर्व आपिशलि और काशकृत्स्न आदि व्याकरणकारों का नाम लिया जाता हैं । इन्हें व्याकरण संप्रदायों का जन्मदाता कहा जाता हैं।

⁕ **इन्द्र ऋषि** – ऐन्द्र संप्रदाय के प्रवर्त्तक इन्द्रऋषि माने जाते हैं। तैतिरीय संहिता के अनुसार ये ही प्रथम व्याकरणकार हैं। सामग्री के अभाव के कारण यह संप्रदाय पाणिनि के पूर्व के जीवन पर प्रकाश नहीं डाल पाया है किंतु दक्षिण भारत के व्याकरणों, विशेषतया तमिल ऐन्द्र संप्रदाय का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। डॉ. बर्नेल के अनुसार दक्षिण के प्राचीनतम व्याकरणों में से 'तोल्कप्पियम' पूर्णत: इसी आधारपर बना है।

⁕ **पाणिनि** – भारतीय भाषा विज्ञान के इतिहास में पाणिनि को आदिगुरू माना गया है। पाणिनि के समय के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने बडे विस्तार के साथ स्पष्टीकरण करते हुए इनका काल 5 वीं सदी ई. पू. के मध्य भाग को माना हैं।

पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' के आठ अध्यायों में चार हजार सूत्रों के द्वारा संस्कृत को नियमबद्ध करने का प्रयत्न किया हैं। भाषा की पूरी संरचना धातुएँ, प्रत्यय, उपसर्ग आदि की सहायता से शब्द और रूप, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, संख्यावाचक, अव्यय, क्रियापद आदि का विवेचन किया हैं। ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ, आघात आदि विवेचन किया हैं। पाणिनि का प्रभाव परवर्ती विद्वानों पर अमिट रूप में पडा है किंतु इनकी 'अष्टाध्यायी' की कोई बराबरी नहीं कर सका। कुछ विद्वान केवल आलोचन, टीका –टिप्पणी में तो कुछ स्वतंत्र ग्रंथ लिखने का प्रयत्न कर रहे थे।

⁕ **कात्यायन** – इनका समय पाणिनि के लगभग तीन शताब्दी बाद का माना जाता है। पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' के जो संशोधन इन्होंने किए है उसे 'वार्तिकां' कहा जाता है। सूत्र–शैली लिखी 'वार्तिका' में 1500 सूत्रों की व्याख्या की गई है। अष्टाध्यायी का यह संशोधन एवं पूरक ग्रंथ माना जाता है।

⁕ **पतंजलि** – इनका काल 150 ई. पू. के आसपास माना जाता है। इन्होंने 'महाभाष्य' की रचना की हैं। कात्यायन के आक्षेपों का खंडन पतंजलि ने किया तथा पाणिनि के कुछ अनुपयुक्त सूत्रों में सुधार भी किया हैं। ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, ध्वनि–अर्थ का संबंध आदि बातों का सुंदर विवेचन किया हैं। भाषा विवेचन की दृष्टि से इनका यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। पतंजलि के बाद कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं मिलता। किंतु कुछ टीकाएँ मिलती हैं।

'काशिका' टीका जयादित्य तथा वामन ने लिखी हैं। इसमें पाणिनि के सूत्रों को पर्याप्त उदाहरणों के साथ समझाया हैं। पतंजलि के 'महाभाष्य' पर भर्तृहरि कृत 'वाक्य–पदीय' टीका प्रसिद्ध है।

⁕ **कौमुदी ग्रंथ** – व्याकरण के ग्रंथों को सुबोध बनाने के लिए नूतन पद्धति का अवलंब किया गया। नए टीकाकारों को 'कौमुदीकार' कहा जाने लगा था। कुछ प्रसिद्ध कौमुदीकार हैं –

विमल सरस्वती कृत 'रूपमाला' में लकार पर विचार किया गया है और क्रिया को विस्तार से समझाया है।

रामचंद्र कृत 'प्रक्रिया कौमुदी' पर शेषकृष्ण ने 'प्रक्रिया-प्रकाश' टीका लिखी।

भट्टो जी दीक्षित कृत 'सिद्धांत-कौमुदी' संस्कृत भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें संज्ञा, संधि, स्त्री प्रत्यय, कारक, समास, तद्धित, कृदंत के अनुसार सूत्र रखे गए हैं।

हेमचंद्र का शब्दानुशासन तथा बोपदेव का 'मुग्धबोध' उल्लेखनिय है।

वररूचिकृत 'प्राकृत-प्रकाश' भले ही प्राकृत भाषा का सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं किंतु इसमें महाराष्ट्री प्राकृत का विस्तृत वर्णन हैं।

सारांशत: भारतीय विद्वानों की व्याकरणिक दृष्टि अत्यंत व्यापक थी, उसलिए ध्वनि,रूप, वाक्य, अर्थ आदि पर विवेचन किया गया है।

ख) भाषा विज्ञान के अध्ययन की आधुनिक परंपरा -

भारत में भाषाविज्ञान का आधुनिक रूप में अध्ययन का आरंभ यूरोप के संसर्ग से हुआ और भारत में भाषा विज्ञान संबंधी खोज शुरू हुई। अत: कुछ यूरोपीय विद्‌वानों के कार्य पर प्रकाश डालना आवश्यक है -

कॉडवेल - द्रविड भाषाओं के मर्मज्ञ कॉडवेल ने 'द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखा । तुलनात्मक दृष्टि से ठोस कार्य होने के कारण इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

जॉन बीम्स - इन्होंने ध्वनि, संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया से संबंधित, तीन भागों में 'आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' ग्रंथ लिखा है। जिसमें पंजाबी, हिंदू, गुजराती, मराठी, उडिया, बंगला आदि के व्याकरण का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है। वे इंग्लंड के निवासी थे।

केलाग - 1876 में 'हिंदी भाषा का व्याकरण' लिखें हुए ग्रंथ में मेवाडी, नेपाली, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पहाडी, बिहारी आदि के उदाहरण दिए है। केलाग धर्मगुरू थे। न्यूयॉर्क से धर्म-प्रचार के लिए भारत में आए थे।

हार्नले - पूर्वी हिंदी का तुलनात्मक व्याकरण इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा के संबंध में इनके निबंध प्रकाशित हैं।

डी. ट्रम्प - इनका ''तुलनात्मक सिंधी व्याकरण '' ग्रंथ 1872 प्रकाशित है । इसमें संस्कृत, प्राकृतादि भाषाओं से तुलना की गई हैं।

ग्रियर्सन - आयरलैंड के ग्रियर्सन 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण' ग्रंथ के कारण प्रसिद्ध हुए। इनका यह ग्रंथ विशालकाय हैं। इसमें भारत की सभी भाषाओं तथा बोलियों का उदाहरणसहित व्याकरण विद्‌यमान हैं।

टर्नर - 1931 में 'नेपाली कोश' प्रकाशित किया हैं जिसमें इन्होंने नेपाली शब्दों की व्युत्पत्ति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। 1962 में ''भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्युत्पत्ति कोश'' प्रकाशित किया है जिसमें मराठी स्वराघात, गुजराती ध्वनि समूह तथा सिंधी भाषा का विवेचन किया गया है।

जूल ब्लाक - इनका 'मराठी की बनावट' ग्रंथ है जिसे में भाषा का संपूर्ण ऐतिहासिक एवं संगठनात्मक वर्णन मिलता है। इसी प्रकार ''भारतीय आर्य भाषा' और 'द्रविड भाषाओं का व्याकरण' इनके दो ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतीय विद्वानों की परंपरा –

डॉ. रामकृष्ण भंडारकर – आधुनिक युग में भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में काम करनेवाले प्रथम भारतीय है। इतिहास और पुरातत्व के वे विद्वान थे किंतु इन्होंने भारतीय आर्य भाषाओं का पर्याप्त अध्ययन किया है। इन्होंने मुंबई विश्वविद्यालय में 1877 में जो सात व्याख्यान दिए थे जो 'फिलोलाजिकल लेक्चर्स' के नाम से 1914 में प्रकाशित हुए। इसमें इन्होंने भाषा विकास संबंधी नियम, संस्कृत का विकास प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं की ध्वनियों से संबंधित विवेचन किया है।

गौरीशंकर ओझा – लगभग दो दर्जन पुस्तकों के वे धनी हैं। ''प्राचीन लिपि माला'' इनकी विश्वविख्यात पुस्तक है। जिसमें ब्राह्मी, खरोष्टी, गुथी, कुटील, नागरी, शारदा, बंगला, तेलगु, कन्नड, तमिल आदि लिपियों की उत्पत्ति और क्रमिक विकास दिखाया है। भारतीय लिपियों के अध्ययनकर्ताओं के लिए यही प्रामाणिक ग्रंथ है।

कामताप्रसाद गुरू – हिंदी भाषा का गहराई एवं विस्तारपूर्ण विवेचन करनेवाला इनका ग्रंथ है ''हिंदी व्याकरण''। हिंदी भाषा का उस स्तर का दूसरा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं।

इनके अतिरिक्त तारापुरवाला, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, सूर्यकांत शास्त्री, डॉ. कपिल देव द्विवेदी, भिक्षु जगदीश, सुकुमार सेन, डॉ. तुळपुळे, डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. उदयनारायण तिवारी आदि अनेक विद्वानों ने संस्कृत, पाली, प्राकृत, बंगाली, असमी, पंजाबी, उडिया, गुजराती, मराठी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, दक्खिनी हिंदी पर सराहनीय कार्य किया हैं। भाषा वैज्ञानिक कार्य की यह परंपरा अक्षय रूप से प्रवाहमान रही है।

1.3 स्वयं –अध्ययन के लिए प्रश्न –

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

✲ भारतीय भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्राचीन परंपरा को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

✲ भारतीय विद्वानों का भाषाविज्ञान के विकास में योगदान रहा हैं –विशद कीजिए।

....

....

....

✲ ''भाषाविज्ञान पश्चिम की उपज है'' कथन को सिद्ध कीजिए ।

....

....

....

* भाषाविज्ञान के विकास की आधुनिक परंपरा पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ –

* प्रातिशाख्य

....

....

....

* पाणिनि का योगदान

....

....

....

* यूरोपीय भाषावैज्ञानिकों का कार्य

....

....

....

* डॉ. भंडारकर और ओझा का कार्य

....

....

....

* भाषा विज्ञान की दृष्टि से वैदिक काल का महत्त्व

....

....

....

ग) एक–दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भाषा विज्ञान संबंधी व्यवहार रूप में सर्वप्रथम कार्य किन ग्रंथों से हुआ है?

....

....

....

✻ वेदों के शुद्ध उच्चारण तथा नियत ध्वनि की रक्षा के सिद्धांतों को क्या कहते है?

....

....

....

✻ 'निरूक्त' की रचना किसने की है?

....

....

....

✻ पाणिनि की प्रसिद्ध रचना का नाम लिखिए।

....

....

....

✻ भाषाविज्ञान पर कार्य करनेवाला प्राचीन भारतीय चार विद्‌वानों के नाम लिखिए।

....

....

....

✻ भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कार्य करनेवाले आधुनिक भारतीय दो विद्‌वानों और ग्रंथों के नाम लिखिए।

....

....

....

✻ ग्रियर्सन की प्रसिद्ध रचना का नाम और महत्त्व लिखिए।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए –

✻ अष्टाधययी की रचना किसने की?

अ) यास्क, ब) पाणिनि, क) पतंजलि, ड) कात्यायन

✻ निरूक्त का क्या अर्थ है?

अ) व्युत्पत्ति, ब) सिद्धांत, क) स्वराघात, ड) शब्दकोश

* कामता प्रसाद गुरू के ग्रंथ का नाम क्या हैं?

  अ) प्रक्रिया कौमुदी, ब) प्राचीन लिपिमाला, क) हिंदी व्याकरण,

  ड) भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण

1.4 सारांश

भाषा मानव व्यवहार, उसकी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। मनुष्य के विकास के साथ-साथ भाषा का विकास होता रहा। ध्वनि-स्वन, वर्ण, पद, शब्द, वाक्य, अर्थ भाषा के मुख्य अंग हैं। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन इन्हीं अंगों के आधारपर किया जाता है। इसलिए भाषा-विज्ञान भाषा का अध्ययन करनेवाला स्वतंत्र विज्ञान है।

भाषा- विज्ञान का अध्ययन करनेवाले विद्वानों की परंपरा काफी दीर्घ रही है। प्राचीन काल के वैदिक ग्रंथों में उसके स्रोत मिलते हैं। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में भाषा विज्ञान के अध्ययन की गति अप्रतिम रही है। ऋग्वेद में भाषा -चिंतन, अध्ययन, ब्राह्मण-आरण्यक ग्रंथों में शब्दों के अर्थ धातुओं का परिचय, यास्क के निघंटु में शब्दों के अर्थ, तो इनके निरूक्त में प्रत्येक शब्द की व्युत्त्पत्ति; पाणिनि की अष्टध्यायी में भाषा की संपूर्ण संरचना का विवेचन मिलता हैं, इनके इस ग्रंथ का परवर्ती विद्वानों ने प्रभाव आत्मसात करते टीका, आलोचना एवं स्वतंत्र ग्रंथों का लेखन किया जिनमें कात्यायन, पतंजलि का नाम लिया जाता हैं।

भाषा विज्ञान के अध्ययन की आधुनिक परंपरा में कॉडवेल, बीम्स, ग्रियर्सन टर्नर आदि यूरोपीय तो भंडारकर, ओझा, कामताप्रसादि भारतीय विद्वानों का कार्य प्रशंसनीय हैं।

1.5 शब्दार्थ

पाणिनि यास्क	-	भारतीय प्रसिद्ध भाषा - व्याकरण अध्ययनकर्ता.
व्युत्पत्ति	-	उत्पत्ति
भाषा की व्यवस्था	-	भाषा की संरचना
टीका	-	भाष्य, आलोचना

1.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* भाषा वैज्ञानिक के विकासात्माक कार्य में सहाय्यक भारतीय व्याकरणकारों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
* भाषा वैज्ञानिक कार्य करनेवाले यूरोपीय विद्वानों के योगदानपर प्रकाश डालिए।
* भाषा वैज्ञानिकों की एवं उनके भाषा -व्याकरण विषयक ग्रंथों की सूची तैयार कीजिए।
* भारतीय और यूरोपीय व्याकरणकारों के भाषाविज्ञान संबंधी कार्य का परिचय प्राप्त कीजिए।

1.7 संदर्भ–अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें –

✻ भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल
✻ सरल भाषा विज्ञान - डॉ. अशोक शाह, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्र. सं. 1994
✻ भाषिकी हिंदी भाषा तथा भाषा शिक्षण - डॉ. अंबादास देशमुख, अतुल प्रकाशन, कानपुर,
✻ भाषा और भाषा विज्ञान - डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास - प्रकाशन, कानपुर.

इकाई – 2

भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ, स्वरूप और उपशाखाएँ

अनुक्रम

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय –विवरण

  2.2.1 भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ

  2.2.2 भाषाविज्ञान का स्वरूप

  2.2.3 भाषाविज्ञान की उपशाखाएँ।

  (1) कोशविज्ञान (2) समाजभाषविज्ञान (3) लिपिविज्ञान

  (4) मनोभाषाविज्ञान (5) भाषा–भूगोल (6) व्युत्पति विज्ञान

2.3 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

2.4 शब्दार्थ

2.5 सारांश

2.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

2.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

* भाषा के महत्त्व और अंग्रेजी–हिंदी परिभाषाओं को जान सकेंगे।
* भाषाविज्ञान के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
* भाषाविज्ञान की उपशाखाओं से परिचित होंगे ।

2.1 प्रस्तावना

अपनी कोई ईच्छा, आवश्यकता, भाव या मत दूसरे तक पहुँचाना होता है तब संकेत इशारे या बोलकर इसे बताते है। यहाँ व्यक्त करने का साधन ही व्यापक अर्थ में भाषा कहलाता है। लेखन भी इसी के अंतर्गत आता है। भाषा, शब्द, भाषा धातु से बना है जिस का अर्थ है बोलना। पशु–पक्षी एवं मनुष्य मुँह से तरह–तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न कर अपनी अत को अभिव्यक्त करते हैं इसलिए मूल रूप से यही भाषा है। उसी कारण डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा का मुख्य लक्षण भाषा मूलत: उच्चारण मूलक होती है, बताया है।

उच्चरित भाषा को भाषाविज्ञान में 'मुखर साधन' कहते है। मुँह से उच्चारित ध्वनियाँ

'मुखर साधन' के अंतर्गत आती हैं। मुखरता को ही 'वाक्' नाम से पुकारा जाता है। वाक् के दो प्रकार है।

(1) **अव्यक्त वाक् –**

अव्यक्त वाक् में मनुष्य को छोडकर सभी प्राणियोंद्वारा निर्मित ध्वनियों का समावेश किया जाता हैं। ये सभी प्राणी अपनी बात को अपने उच्चारण से दूसरों तर पहुँचाते हैं। लेकिन उनकी उच्चारित ध्वनियाँ हमारी समझ में नहीं आती, अर्थबोधन नहीं होता। इनका शास्त्रीय विश्लेषण करना भी संभव नहीं हैं। इसलिए भाषाशास्त्रियों ने उसे अव्यक्त वाक् कहा हैं।

(2) **व्यक्त वाक् –**

व्यक्त वाक् के अंतर्गत मनुष्य के मुँह से उच्चारित ध्वनियों का समावेश होता हैं । इनसे अर्थबोधन होता है। इन ध्वनियों में स्पष्टता निश्चितता, पूर्णता गुण होने से इनका विवेचन – विश्लेषण, अध्ययन करना संभव है। उसकारण भाषाशास्त्री उन्हें व्यक्त वाक् कहते हैं। व्यक्त वाक् ही भाषाविज्ञान के अध्ययन का साधन है।

मनुष्य की भाषा चिंतन-मनन, विचार, कल्पना आदि का भी साधन है। भाषा के कारण ही मनुष्य की सामाजिकता दृढ़ हुई है। व्यक्ति व्यक्ति के संबंध स्थापित हुए हैं। भाषा के कारण ही मनुष्य इस संसार में सर्वोत्तम प्राणी माना गया है। आज मनुष्य ने भाषा के कारण ज्ञान विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया है।

2.2 विषय विवरण

2.2.1 भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ

भाषाविज्ञान का अध्ययन आधुनिक है। पश्चिमी प्रभाव से भारत में भाषाविज्ञान का अध्ययन प्रारंभ हुआ। इसलिए सबसे पहले पश्चिमी भाषावैज्ञानिकों की परिभाषाओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

✻ मारियो पेई – "Philology (or Linguistics) is the science and Scientific Study of language, words and linguistic laws'

(अर्थात् वह शास्त्र जिसमें भाषा, शब्दों एवं भाषायी नियमों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, भाषाविज्ञान कहलाता है।

✻ आर. एच. रॉबिन्सन – "Linguistics is quite simply the science study of human language in all its manifestations and uses, near and far, persent and past, without, restriction on time, place or culture."

(अर्थात् सभी देशकालों की मानव-भाषा के समग्र रूपों एवं प्रयोगों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान कहलाता है।)

✻ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका – "The word philology in here taken as meaning the science of language in the study of the structure and development of languages, thus corresponding to linguistics!"

अर्थात् यहाँपर प्रयुक्त फिलोलॉजी शब्द का अर्थ है भाषा का विज्ञान जिसमें सुव्यवस्थित संरचना तथा भाषाई विकास का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। यही आजकल भाषाविज्ञान कहलाता है।

उपरोक्त विद्वानों के अलावा मैक्समूलर, हॉकेट, ग्लीसन, जानीलिओन्स ने भी भाषाविज्ञान को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन सभी के मतों का निष्कर्ष यह हैं कि,

* भाषाविज्ञान के लिए इन्होंने फिलॉलॉजी और लिंग्विस्टीक शब्द का प्रयोग किया है।
* फिलॉलॉजी को लिखित भाषा का अध्ययन करनेवाला तो लिंग्विस्टीक को बोलचाल की भाषा का अध्ययन करनेवाला कहा है।
* भाषा की संरचना, विकास का वैज्ञानिक अध्ययन जिसमें किया जाता है, वह भाषाविज्ञान है।

भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का अध्ययन

* संस्कृत में लिखा गया हैं कि ,

''भाषाया यत्तु विज्ञानं, सर्वांग व्याकृतात्मकम् विज्ञान दृष्टिमूलं तद् भाषा विज्ञानमुच्यते''
अर्थात् भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषाविज्ञान कहते है। जिसमें भाषा का सर्वांगिण व्याकरणमूलक, वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।

* **डॉ. श्यामसुंदरदास –** ''भाषाविज्ञान भाषा की व्युत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।''

* **डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा –** ''भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । उस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान कहलाएगा''

* **डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन –** ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टिसे सिद्धि निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।''

* **डॉ. उदयनारायण तिवारी –** ''भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते है जिसमें भाषा मात्र के भिन्न भिन्न का विवेचन तथा निरुपण किया जाता है।''

* **डॉ. रामेंश्वर दयालु अग्रवाल –** ''भाषाविज्ञान भाषासंबंधी समस्त तथ्यों एवं व्यापारों से संबंध रखता है। उसमें संसार की भाषाओं के गठन, इतिहास, परिवर्तन, भाषाओं के पारस्परिक संबंध, इनके पार्थक्य, कारणों एवं नियमों आदि समस्त विषयों पर विचार होता हैं।''

* **डॉ. भोलानाथ तिवारी –** ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन–विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।''

* **डॉ. बाबूराम सक्सेना –** ''भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है।''

* **डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना –** ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भाषा–तत्त्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधारपर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है...जिस

शास्त्र में भाषासंबंधी तत्त्वों का निरीक्षण एवं परीक्षण करके कतिपय विषय बनाये जाते हैं, उसे भाषाविज्ञान कह सकते है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधारपर निष्कर्ष रूप में ये बाते सामने आती है....

* भाषा का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करनेवाला विज्ञान भाषाविज्ञान है।
* भाषा की प्रकृति, सरंचना, विकास का अध्ययन कर सिद्धांतों का निर्माण भाषाविज्ञान में होता है।
* व्याकरण से अधिक विस्तृत अध्ययन भाषाविज्ञान में होता है।
* भाषाविज्ञान अनुप्रयुक्त (प्रयोगिक) विज्ञान है।

भाषाविज्ञान का नामकरण

'भाषाविज्ञान' शब्द पश्चिम से भारत में आया है। भारत में प्राचीन काल में भाषाविषयक अध्ययन के लिए अलग-अलग शब्द प्रचलित थे जैसे शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, प्रतिशाढ्य। ये सारे शब्द भाषा के किसी एक अंग को ही सूचित करते थे । जैसे 'शिक्षा' मौखिक या उच्चारणिक भाषा को सूचित करता है। निरूक्त शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ से जुडा है। व्याकरण भाषा की रूप-रचना को सूचीत करता है।

सच तो यह हे कि भाषाविज्ञान और व्याकरण को पहले एक ही माना जाता था। परंतु व्याकरण किसी एक भाषा से अथवा एक काल की भाषा का ही अध्ययन करता है जबकि भाषाविज्ञान 'भाषा मात्र' को अपने अध्ययन का आधार बनाता है।

विलियम जोन्स ने तुलना के पक्ष पर बल देते हुए उसे कॉम्पेरेटिव ग्रामर अर्थात् 'तुलनात्मक व्याकरण' की संज्ञा प्रदान की। इसे 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान'लिंग्विस्टिक के नाम से भी संबोधित किया गया।

पश्चिमी विश्व में भाषाविज्ञान के लिए सर्वाधिक प्रचलित शब्द फिलॉलॉजी है। यह एक ग्रीक शब्द है। यह Philos शब्द Logas अर्थात् विज्ञान से बना है।

ब्लूमाफिल्ड के मत से जिसमें लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे फिलॉलॉजी और जिसमें बोलचाल की भाषा अध्ययन क्षेत्र है वह लिंग्विस्टिक कहलाता है। परंतु आजकल फिलॉलॉजी के अंतर्गत प्राचीन भाषा सामग्री का विश्लेषण तो लिंग्विस्टिक में आधुनिक जीवित भाषाओं-बोलियों का अध्ययन किया जाता है। ऐसा उदयनारायण तिवारी का कथन है।

मैक्समूलर ने उसे साईंस ऑफ लैंग्वेज कहा। परंतु ये नाम सर्वग्राह्य न हो सका। लिंग्विंस्टिक शब्द सर्वग्राह्य रहा है। यह शब्द लैटिन शब्द 'लिंग्वा' से बना है। जिसका अर्थ हैं जीभ जो वाणीसूचक है। लिंग्विस्टिक शब्द हॉकेट, हैंरिस, हालिडे, चॉम्स्की आदि प्रयुक्त करते हैं। पारिभाषिक शब्दावली आयोग ने लिंग्विस्टिक के लिए 'भाषाविज्ञान' शब्द की संस्तुति की है और आज यही शब्द व्यवहृत हो रहा है।

2.3.2 भाषाविज्ञान का स्वरूप

भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र समूची पृथ्वी तक फैला हुआ है। एमर्सन के कथन का अनुवाद यह है कि भाषा एक नगर है जिसके निर्माण में प्रत्येक मनुष्य ने एक पत्थर उसमें लगाया।

उसीतरह की बात पी. डी. गुणे लिखते है, ''भाषाविज्ञान का क्षेत्र इतना व्यापक है जितनी की सम्पूर्ण मानवता, क्योंकि उसका संबंध विश्व की, मनुष्य की भाषा से है। भाषाविज्ञान का संबंध किसी भाषा के किसी विशेष काल के तथ्यों से नहीं है। उसके विपरीत किसी भी देश में पाईं जानेवाली मनुष्य की भाषा ही इसका विषय है।''

हिंदी के सुप्रसिद्ध भाषाविद भाषाविज्ञान की मुख्य चार शाखाएँ स्वीकार करते है - वाक्यविज्ञान, रूपविज्ञान, स्वनविज्ञान, अर्थविज्ञान।

भाषा कहने से ध्वनि, शब्द, रूप-वाक्य और अर्थ इन पाँच बातों की जानकारी मिलती है। इसलिए भाषाविज्ञान में मुख्य रूप से इन पाँच अंगों का अध्ययन होता है।

भाषाविज्ञान भाषासंबंधी समस्त तथ्यों एवं व्यवहारों से संबंध रखता है। उसमें संसार की भाषाओं के गठन, इतिहास, परिवर्तन भाषाओं के पारस्परिक संबंध, इनके पार्थक्य के कारणों एवं नियमों आदि सभी विषयों पर विचार होता है। भाषा, भाषा के विविध रूप, भाषा के परिवार, भाषाई समाज, भाषा की प्रकृति, स्वन, पद, वाक्य, अर्थ, कोश, व्युत्पति आदि भाषा विज्ञान के अंग है।''

इसतरह भाषाविज्ञान का स्वरूप निर्धारित करते हुए कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान भाषा के सभी अवयवों का वैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन कर सिद्धांत निर्धारीत करनेवाला विज्ञान है। भाषाविज्ञान के कारण ही भाषा परिवारों की अवधारणा सामने आई और उससे एहसास हुआ कि मनुष्य जाति के सदस्य कहीं न कहीं एक दूसरे से अवश्य इतने जुड़े हैं । वे एक परिवार के सदस्य हैं। जो भाषाएँ कालकवलित हो चुकी है इनसे भी परिचय भाषाविज्ञान के कारण ही होता है। तीसरी बात यह कि आधुनिक काल में संदेश-प्रेषण के लिए संचार-माध्यम ईजाद हुए हैं, उनके क्रियाकलापों की भी एक विशेष भाषा होती है। जो मशिनी भाषा के रूप से भाषाविज्ञान के कारण ही ज्ञात हुई है।

2.3.3 **भाषाविज्ञान की उपशाखाएँ**

भाषाविज्ञान की उपशाखाएँ अनुपयुक्त भाषाविज्ञान अर्थात् प्रायोगिक भाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र हैं। इनका अध्ययन आवश्यक है

1. **कोशविज्ञान**

कोशविज्ञान को अंग्रजी में Lexicology कहते है। कही कही उसे कोशकला अर्थात Lexicography भी कहते है। कोशविज्ञान में किसी भाषा या बोली का कोश किस तरह निर्माण किया जाता है यह बताया जाता है। कोश में दिये हुए शब्दों का क्रम क्या हो? इन शब्दों के अर्थ का निर्धारण किस प्रकार हो, अर्थ किस क्रम से दिया जाए, मुहावरों कहावतों को किस पद्धति रखो, शब्दों के व्याकरणिक रूप और कोटियों का निर्धारण अर्थपुष्टि के लिए उदाहरण, चित्र क्रम क्या हो इनका ज्ञान कराना कोशविज्ञान के उद्देश्य हैं।

भाषा की प्रौढता, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता से परिचित होने के लिए कोश का ज्ञान अत्यावश्यक है। बिना कोश के अर्थ की प्रतिति पाठक या श्रोता को नहीं हो सकती । कोश किसी भाषा के शब्दों का प्रामाणिक अर्थबोध कराने के अलावा उसके उच्चारण, व्युत्पत्ति, विकासक्रम अर्थपरिवर्तन की भी जानकारी देता है। कोश को अंग्रेजी में Dictionary कहते

हैं। जिसका हिंदी में अर्थ है शब्दभंडार। कोश केवल एक भाषिक नहीं होते बहुभाषिक भी होते हैं। यह कोश लेखक के साथ-साथ आलोचक, अनुवादक, अनुसंधाता, विद्यार्थी, अध्यापक, भाषाशास्त्री आदि को उपयोगी हैं।

कोश की परिभाषा ब्रिटानिका कोश में इसप्रकार दी है, ''कोश एक पुस्तक है - जिसमें किसी भाषा के शब्द तथा उसके अर्थ या तो उसी भाषा या किसी अन्य भाषा में साधारणत: वर्णानुक्रम में होते है। प्राय: शब्दों के उच्चारण, उनकी उत्पत्ति, तथा प्रयोग का विवरण उसमें रहता है।''

लगभग 1000 ई. पू. में निघण्टुओं की रचना हुई, जिनमें कठिन एवं प्रचलन से उठे वैदिक शब्दों का संकलन किया गया । यास्क (800 इ. पू.) ने अपने निरुक्त में वैज्ञानिक पद्धति से इसप्रकार के शब्दों के अर्थ-निर्धारण का प्रयास किया । तब से लगभग 1200 इ. तक कोश-निर्माण की अखण्ड परम्परा चली आ रही है और अनेक प्रकार के सैकडों कोशों की रचना हुई।

✻ **कोश के मुख्य प्रकार –**

✻ एकभाषीय कोश - जिनमें जिस भाषा के शब्द हो इसीमें इनके अर्थ दिए हो। जैसे अंग्रजी-अंग्रजी, हिन्दी-हिन्दी आदि। उदा. - हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा का हिन्दी शब्दसागर!

✻ द्विभाषीय कोश - इसमें शब्द एक भाषा में होते हैं और अर्थ दूसरी भाषा में दिया जाता हैं। जैसे अंग्रेजी-हिन्दी, रूसी-हिन्दी आदि। उदा. डॉ. हरदेव बाहरी का बृहत अंग्रेजी -हिन्दी कोश

✻ बहुभाषी कोश - इसमें एक ही अर्थ के वाचक अनेक भाषाओं के शब्द संकलित किये जाते हैं। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से तथा एक साथ कई भाषाओं के शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसे कोश अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। जैसे - अंग्रेजी-हिन्दी-मराठी कोश।

✻ **कोश निर्माण के लिए आवश्यक बातें**

✻ **शब्द संकलन –** प्राचीन और प्रचलन से बाहर भाषाओं के शब्दों का संकलन को में करना आवश्यक है। इसके साथ ही प्रचलित और जीवित भाषा के शब्दों को पूरे प्रदेश में घूम कर, लोगों से सुनकर शब्दों का संग्रह किया जाना जरुरी है। प्रयास यह रहे कि एक भी शब्द छूटने न पाए। प्रत्येक नये संस्करण में ऐसे शब्दों का समावेश करते रहना चाहिए। क्योंकि कोश निर्माण का कार्य छपा और हो गया इस तरह का न हो निरंतन नया होना चाहिए।

✻ **वर्तनी –**

वर्तनी की प्रामाणिकता का ध्यान रखना कोशकार का आद्य कर्तव्य है। स्थान-भेद के कारण शब्द के उच्चारण और वर्तनी में भेद मिलता है अत: कोशकार इनमें से सर्वाधिक प्रचलित और मानक वर्तनी को ही मान्यता दें। वर्तनी में एकरूपता होना जरुरी है। यथास्थान वर्तनी - भेदों का भी उल्लेख कर देना चाहिए।

* **शब्दक्रम –** कोश में शब्दों का क्रम बहुत महत्वपूर्ण है। कारण बिना शब्दक्रम के कोश देखनेवाले को अपेक्षित शब्द खोज पाना संभव नहीं होगा। शब्दक्रम अर्थात् अल्फाबेटीकल ऑर्डर है। अनुस्वार, अर्धचंद्र, स्वर-व्यंजन का ध्यान रख कर शब्द दिये जाए। यह वर्णानुक्रम शब्द के अंतीम वर्ण तक चलता रहे। कुछ कोशकार अक्षरसंख्या के आधार पर, विषय के आधार पर और व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दरचना देते हैं।

मुख्य शब्द के घेरे में ही इससे बननेवाले सामासिक शब्द, मुहावरे और लोकोक्तियों को देना चाहिए। उससे स्थान की बचत तथा देखनेवाले को भी सुविधा होती है।

* **व्याकरण –** शब्दों के आगे इनकी व्याकरणिक कोटि अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण. लिंग, वचन का भी उल्लेख करना चाहिए।

* **अर्थ –** शब्दकोश का वास्तविक महत्व शब्दों का अर्थ और व्याख्या ही है। कारण कोश देखने का मुख्य उद्देश्य इन बातों को जानना होता है।।

किसी शब्द का अर्थ उसका समानार्थी शब्द देकर प्रस्तुत किया जाता हैं लेकिन जहाँ स्पष्टता आवश्यक हैं, वहाँ व्याख्या, अर्थ के लिए, विद्वानों के ग्रंथों से उद्धरण देने चाहिए। जहाँ कोश का प्रयोगकर्ता इस भाषा के कुछ विशेष पदाथों, प्राणियों, परिवेश से अपरिचित होता हैं, वहाँ पर रंगीन चित्र या कृष्ण-धवल चित्र देने चाहिए।

* **व्युपत्ति –** शब्दों की सही व्युत्पत्ति बिना जाने शब्दों का सही अर्थ ज्ञान न होने से शब्द की आत्मा तक अर्थात् अर्थ तक नहीं पहुँच पाते। हिन्दी में इसतरह के व्युत्पत्ति कोश नहीं के बराबर है।

* **उच्चारण –** शब्दों के लिखित और उच्चारित रूपों में प्राय: अंतर दिखायी देता है। यूरोपियन भाषाओं का तो यह एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। परंतु हिन्दी में भी यह अंतर दिखाई देता है। जैसे - शब्द के लिखित रूप हैं - कमल, आवश्यक्ता, बहुत, समय इनके क्रमश: उच्चारित रूप हैं - कमल्, आवश्यकता बोत, समै।

इसतरह कोश निर्माण के समय उपयुक्त बातों को ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

कोश के अन्य प्रकार निम्न माने गए हैं –

पर्यायवाची, कोश मुहावरा और लोकोक्ति कोश, व्यक्ति कोश (उसमें किसी एक लेखक के समूचे साहित्य के शब्दों का संकलन होता हैं।) पुस्तककोश (उसमें किसी एक पुस्तक में आए शब्दों का संकलन होता हैं), व्युत्पत्तिकोश, पारिभाषिक कोश, बोली कोश, चरित्रकोश, विलोम कोश, उच्चारण कोश, सूक्तिकोश, विश्वकोश। विश्वकोश में ज्ञान-विज्ञान के साहित्य की पूर्ण शब्दावली होती हैं। कुल मिला कर कोश ज्ञान का भण्डार कोश ही है।

2. समाजभाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन ''भाषा भाषा के लिए'', भाषा के आधार पर होता है। भाषाविज्ञान का लक्ष्य भाषा की आंतरिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना है। भाषाविज्ञान अपने विवेचन का क्षेत्र भाषा स्वयं में क्या है? को ध्यान में रख कर अध्ययन करता है।

दूसरी बात यह है कि भाषाविज्ञान के अध्ययन की वस्तुभाषा का विश्लेषण भाषा की महत्तम इकाई वाक्य को ध्यान में रख कर करता है।

भाषाविज्ञान अपने अध्ययन में कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों को केंद्र में रखता है। यहाँ पर आधार सामग्री - व्याकरण को भाषाविज्ञान अपनाता है। भाषाविज्ञान व्याकरण के आधारपर भाषा की प्रकृति से परिचित होता है।

भाषाविज्ञान भाषिक नियमों की खोज पर बल देता है। मनुष्य के भाषिक व्यवहार को नियम-नियंत्रित मानता है और भाषा संबंधी नियम भी निर्माण किये जाते हैं।

भाषाविज्ञान रूप पर बल देता है। इसलिए भाषाविज्ञान की अध्ययन सीमा भाषिक क्षमता है।

उपरोक्त बातें होने से भाषाविज्ञान इन प्रश्नों के उत्तर नहीं देता है। जैसे - अनेकवचन का प्रयोग कब किया जाता है? सम्मानसूचक तथा औपचारिक कथन में किन शब्दों का प्रयोग किया जाता है? मनुष्य कब बोली, उपबोली, विशेष शैली या सम्मिश्रण अथवा विदेशी भाषा का प्रयोग करता है? भाषा व्यवहार और भाषा व्यवस्था इन दोनों का क्या संबंध है? वक्ता का सामाजिक स्तर भेद उच्च, मध्य, निम्न, जातिभेद, लिंगभेद (स्त्री-पुरुष), उम्रभेद और सामाजिक प्रतिष्ठा भेद का द्योतन भाषाई उच्चारण, वाक्यरचना, संस्कृत या अंग्रजी शब्दों का प्रयोग या संमिश्रण प्रयोग किसतरह होता है और सामान्य कथन एक विशेष कथन प्रोक्ति कब बन जाता है-इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के लिए भाषाविज्ञान की नई शाखा का जन्म हुआ जिसे समाजभाषा विज्ञान कहते हैं।

समाजभाषा विज्ञान शब्द अंग्रेजी के Socioliguistics का हिन्दी अनुवाद है। समाज और भाषा के संबंधों का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान में महत्त्वपूर्ण है। भाषा सामाजिक व्यवहार का एक सशक्त माध्यम और अभिव्यक्ति है। उसका सामर्थ्य भाषा बोलनेवाले लोगों में निहित होता है। उसलिए हम किसी व्यक्ति को कहते है, 'आप इधर आइए' तो दूसरे व्यक्ति से कहते है - 'तू इधर आ'। प्रतिष्ठा प्राप्त डॉक्टर या उच्चशिक्षित व्यक्ति से कहते हैं, 'कृपया आप बताइए कि'। जबकी किसी छोटे व्यक्ति से कहते हैं कि, 'तू यह बता।' उसीतरह परिवार के आदरणीय, बडे-बूढे-जैसे माता-पिता या दादा-नाना - 'तू यहाँ बैठ' या 'तुम यहाँ बैठो' कहते है। इसलिए तू, तुम, आप, में से किसी एक के प्रयोग का चयन अथवा एकवचन या बहुवचन में से एक के स्थान पर दूसरे के चयन के पीछे का निर्धारक तत्त्व भाषा प्रयोग का 'सामाजिक बोध' है।

भाषा का जन्म परिवेश से होता है। परिवेश संस्कृतिक का जन्मदाता है। भाषा और संस्कृति सहसंबंध के अनेक आयाम दिखाई देते है। जैसे देवर-स्वयंवर, आरति-प्रार्थना, अक्षता-कुंकुम, तिलक-सौभाग्य अलंकार के समाज में विशेष अर्थ है। खाने के समय हम भात या चावल का प्रयोग करते है न कि अक्षत का। श्रीफल और कलश का एक विशेष अर्थ है। उसीमें से शिष्टाचार का जन्म होता है। संबोधन का पता चलता है। खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, शिष्टता, अश्लिलता, अपमान, अनादर, अपेक्षा इन सबकी अभिव्यक्ति भाषा के विशेष प्रयोग से होती है।

संदर्भयुक्त भाषायी कथन 'शाब्दिक घटना' अथवा प्रोक्ति हो जाती है। यही शाब्दिक घटना अर्थप्रेषण व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण इकाई है। समाज भाषाविज्ञान में भाषा के प्रयोजन परक

रूपों की अर्थात् प्रयुक्तियों की चर्चा होती हैं। कब, कौन, किसे, आज्ञात्मक वाक्य कह सकता है और कब अनुरोध, या कब निवेदन होता है।

भाषाविज्ञान के प्रवर्तक विलियम लेवाब है ऐसा रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने माना हैं। इनका शोधप्रबंध 1966 में प्रकाशित हुआ जिसमें इन्होंने न्यूयार्क में बोली जाने वाली अंग्रेजी भाषा का सामाजिक स्तर परक अध्ययन किया हैं। इनका निष्कर्ष है कि भाषागत भेद समाजगत भेदों से जुडे हुए हैं।

अन्य समाजभाषा वैज्ञानिकों में उल्लेखनीय नाम है डेल हाईम्स, गम्पर्ज, फिशमन, ब्लूमफिल्ड, विलियम ब्राइट आदि।

इ. स. 1963 में युनायटेड स्टेटस अमेरिका में समाजशास्त्र शोध परिषद् के अधीन समाजभाषाविज्ञान की पहली समिति बनी। इ. स. 1964 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में समाजभाषाविज्ञान का पहला सम्मेलन हुआ। उसमें पढे गये शोध-निबंधों को विलियम ब्राइट ने इ. स. 1966 में प्रकाशित कराया। इंग्लैंड में बेसिल बर्नस्टीन और पीटन समाजभाषाविज्ञान के अग्रणी हैं।

भारत में समाज भाषाविज्ञान का कार्य काफी पुराना है। आधुनिक भाषाविदों नें समाज भाषाविज्ञान पर भी विचार किया हैं। डॉ. रामविलास शर्मा, एम. एल. वर्मा, अरुण कुमार शुक्ल, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. सूरजभानसिंह आदि।

समाजभाषाविज्ञान के कारण ही वाक्, वाणी, मिश्र भाषा, आदि भाषाई रूप हमारे सामने आए। भाषा प्रयोग दक्षता जैविक न होकर, एक सामाजिक घटना का परिणाम हैं। देश, काल, पात्र, विषय, वस्तु और तथ्य भाषा के रूप-निर्माण में सहायता करते हैं।

कुल मिला कर समाजभाषाविज्ञान का वह अनुप्रयुक्त अंग है जो संम्प्रेषण को आधार बना कर अध्ययन करता है।

3. **लिपिविज्ञान** (Grammtology)

भाषा का आधार मनुष्य मुँह से उच्चारित ध्वनियाँ है। जो श्रोताद्वारा कानों से सुनी जाती हैं। जिससे वह मानसिक प्रतीति या बोधन करता है जिसे 'अर्थप्रतीति' कहते हैं।

भाषा उच्चारणमूलक होने के कारण श्रव्य होती है। ऐसे में श्रोता और वक्ता दोनों का एक साथ होना अनिवार्य हो जाता है। इन दोनों में से यदि कोई एक न होगा तो भाषा का अस्तित्व भी नहीं रहेगा। और अर्थप्रेषण नहीं होगा।

दूसरी बात यह है कि श्रवणीय ध्वनियाँ शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। बोला हुआ, हवा में विलीन हो जाता है। उसी कमी को दूर करने के लिए एक साधन की खोज की गई जिसे 'लिपि' कहते हैं।

श्रवणीय ध्वनियाँ दृष्टिगोचर बनाने के लिए जिन प्रतीक चिह्नों को प्रयोग किया जाता हैं उसे लिपि या लिपिचिह्न कहते हैं।

लिपि के कारण श्रोता यदि उपस्थित नहीं हुआ तो भी हम अपनी बात लिखकर (चिठ्ठी, पत्र आदि) उसके पास पहूँचा सकते हैं। लिखने के कारण भाव-विचार दिक्

(Space) और काल (Time) को पार कर जाते हैं। अर्थात् देश-काल का बंधन खत्म होकर भाव, विचार, अनुभवों को स्थायित्व मिलता हैं।

वह विज्ञान जिसमें लिपि या लिपियों को वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, उसे 'लिपिविज्ञान' कहते है।

लिपि का निर्माण, लिपि का विकास या इतिहास, लिपि विकास की अवस्थाएँ, ध्वनिलिपि, अक्षरात्मक, वर्णनात्मक लिपि आदि बातों का अध्ययन लिपिविज्ञान में होता हैं। इसके अलावा लिपियों की खामियाँ, लिपि प्रयुक्ति के रूप, लिपि के विभिन्न आकार का भी अध्ययन उसी में होता है।

भाषा की उत्पत्ति की तरह लिपि की उत्पत्ति के विषय में भी यह मत प्रचलित था कि लिपि का अविष्कार ईश्वर ने किया है। भारतीय विद्वान ब्राह्मी लिपि को ब्रह्मा के द्वारा बनायी हुई मानते हैं। तो मिस्त्र के लोग लिपि का निर्माता थॉथ अथवा आइसिस को मानते हैं। पहली अवस्था को वे हाइरोग्लिपिक अर्थात् पवित्र खुदाई नाम देकर हिरेटीक अर्थात् पवित्र लिपि का रूप बना जो राजा और पुजारियोंद्वारा प्रयुक्त होती थी, ऐसा मानते हैं। बैबिलोनिया के लोग नेबो और पुराने ज्यू लोग मोझेज, युनानी लोक हर्मेस को लिपि के उद्गाता मानते हैं।

जिस प्रकार शब्द और अर्थ का संबंध सहज न होकर ऐच्छिक या यादृच्छिक होता हैं इसी तरह किसी भाषा की ध्वनि के लिए व्यवहृत लिपिचिहन का संबंध भी यादृच्छिक ही है। इसी कारण एक ही ध्वनि के लिए अलग अलग लिपियों में अलग अलग चिह्न मिलते हैं।

मनुष्य ने अपनी जरूरत को ध्यान में रखकर लिपि को जन्म दिया है। शायद जादूटोने के लिए कुछ रेखाएँ खिंची गई। धार्मिक श्रद्धावश किसी देवता का प्रतीक या चित्र बनया गया। अपने चित्र पहचानने के लिए उन पर कुछ चिन्ह अंकित किये गये। गुफा-कंदराओं की दीवारों पर रेखाएँ खींच कर कुछ चित्र बनाएँ गए। स्मरण के लिए किसी रंग या रस्सी या पेड की छाल में गाँठे लगा कर याद रखा गया (यज्ञोपवित, राखी का धागा, पूजा का धागा, विवाह का बंधन आज भी प्रचलित है।)

लिपि विकास की मुख्य निम्न अवस्थाएँ दिखाई देती हैं - सूत्रलिपि, चित्रलिपि, भावलिपि और ध्वनिलिपि।

सभ्य विश्व की प्राचीनतम लिपि चित्र भावात्मक है। उदाहरणार्थ मिस्त्री, सुमेरी, बेबीलोनी, चिनी, जपानी और सिंधूघाटी की लिपि आदि लिपियाँ।

ध्वनिलिपि को जन्म देने का श्रेय 'उत्तरी सामी' लोगों को हैं। इसीके साथ-साथ भारतीयों को भी हैं। यूरप की ग्रीक, रोमन, गॉथी और एशिया की अरामी, पहलवी और भारत की खरोष्टी ये ध्वनि लिपियाँ हैं।

भारत में लिपिज्ञान सबसे प्राचीन हैं मोहेनजोदडो-हडप्पा में मिले हुए शिलालेख- इसके उदाहरण है। रामायण में यह प्रसंग आता है कि किष्किंधा में श्रीरामचंद्र जी ने हनुमान जी को अपनी अँगूठी दी। जिस पर 'राम'नाम अंकित था। अशोकवाटिका में हनुमान जी ने

रामदूत होने का विश्वास दिलाने के लिए वह अँगूठी दिखाई। किंवदंती है कि महर्षि वेदव्यास ने अपना महाकाव्य 'महाभारत' आशुलिपिक गणेशजी से लिखवाया।

इन सारी बातों की जानकारी लिपिविज्ञान के कारण ही मिलती हैं।

* **लिपिविज्ञान के प्रकार –**

* **वर्णनात्मक लिपिविज्ञान –** इसमें किसी का लिपि का उसके किसी एक काल में प्रयुक्त रूप का अध्ययन किया जाता है।

* **ऐतिहासिक लिपिविज्ञान –** इसमें किसी एक लिपि की उत्पत्ति विकास या इससे विकसित शाखाओं – प्रशाखाओं के विकास आदि का अध्ययन किया जाता हैं।

* **तुलनात्मक लिपिविज्ञान –** दो या अधिक लिपियों का अध्ययन (एक काल में या पूरे विकास का) किया जाता है।

* **सैद्धांतिक लिपि –** इसमें सामान्य रूप से विश्व लिपियों का उत्पत्ति, विकास, परिवर्तन के कारण, इनका आदर्श तथा इस आदर्श की प्राप्ति के लिए उपाय आदि का विचार किया जाता है।

लिपिज्ञान सभ्यता की निशानी है। जो लिपि को पढ सकता हैं और पढे हुए को (बोले हुऐ को) लिख सकता हैं उसे पढा–लिखा कहते हैं। लिपि के द्वारा पुस्तक–ग्रंथ आदि लिख कर विचारों–भावों को स्थायी रूप दिया जा सकता है। यही स्थायिता समाज और व्यक्ति की शिष्टता और सभ्यता की द्योतक हैं। सोच–अनुभव का दायरा लिपि के कारण ही बढता है। आजकल दूर–संचार के चलते कम्प्यूटर क्रांति के कारण कम्प्यूटर के अनुकूल लिपियाँ तथा मोबाईल के एसएमएस के लिए लिपि सुधार की दिशाएँ लिपिविज्ञान के बल पर ही जानी जा सकती है।

4 मनोभाषाविज्ञान

भाषा मनुष्य की अमूल्य धरोहर है। संसार में केवल मनुष्य ही भाषा का प्रयोग करता है। चॉम्स्की के मत से भाषा के व्यवहार की क्षमता मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। मानव मस्तिष्क की एक विशेष क्षमता है। भाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन एक संरचनात्मक व्यवस्था के रूप में करते है। समाज भाषाविज्ञान में भाषा के सम्प्रेषण पक्ष पर बल दिया जाता हैं। तो मनोभाषाविज्ञान में उस बात का अध्ययन किया जाता है कि हम भाषा किस तरह सीखते है। मनोविज्ञान, अर्जन के विविध रूपों पर विचार करता है। उस संदर्भ में अभिरूचि, स्मरण जैसे तत्त्वों पर विचार किया जाता है। मनोभाषाविज्ञान के अध्ययन का दूसरा प्रमुख क्षेत्र 'वाक् विकार' है। ठीक से सुनाई न देना, बोलते न आना, समझ में न आना, तुतलाना, हकलाना, भूल जाना यह मुख्य 'वाक् विकार' है। वाक् विकार में सुधार के उपाय मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय है जिस पर मनोभाषा विज्ञान चर्चा करता है। 1954 में सी. ई. ऑस्गुड और टी.ए. सीबॉक ने भाषाविज्ञान की इस शाखा को 'साइको लिंग्विस्टीक्स' मनोभाषाविज्ञान नाम दिया।

ए. आर. डिबोल्ड, पॉल फ्रीज, जॉर्ज मिलर ने मनोभाषाविज्ञान पर कार्य किया है। पॉल फ्रिज मनोभाषा विज्ञान की परिभाषा देते हुए लिखते है, ''मनोभाषाविज्ञान हमारी

अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं और सम्प्रेषण के बीच संबंधों का अध्ययन है और हमारे बचपन या बाद में सीखी गई भाषाद्‌वारा प्रदत्त माध्यम से संबंद्‌ध है।

मनोभाषाविज्ञान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता हैं। (1) संकुचित अर्थ में भाषाविज्ञान को कोडीकरण और डिकोडीकरण की क्रियाओं से जोडा गया हैं। जिसके द्‌वारा वक्ता का अभिप्रेत सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रहित कोड, संकेतों में परिणत होता है। (जैसे अक्षत-चावल-भात-राइस के सामाजिक अर्थ अलग-अलग हैं।) और यह संकेत श्रोताद्‌वारा संदेशों के रूप में व्याख्यायित होते हैं। (2) व्यापक अर्थ में मनोभाषाविज्ञान भाषा अर्जन, भाषा का अनुरक्षण, भाषाई व्यवहार का अध्ययन करता हैं।

इसमें भाषा सीखने के सामान्य अधिगम सिद्‌धांत, वाचिक व्यवहार का, अनुबंध, भाषा और अर्थ में संबंध तथा सार्वभौमिक तत्वों की प्रकृति - यह अध्ययन के विषय है। मनोभाषा विज्ञान निम्न प्रश्नों के उत्तर खोजता है -

- बालक अपनी मातृभाषा कैसे सीखता है?
- बाल भाषा और वयस्क भाषा में क्या अंतर है?
- द्‌वितीय भाषा अधिगम द्‌विभाषिकता या बहुभाषिकता के कारण कौनसी समस्याएँ आती हैं?
- वाक्यों का उत्पादन कैसे होता है? और उन्हें कैसे समझा जाता हैं?
- भाषासंबंधी विकारों का अध्ययन और उपचार को ढूँढना भाषा के विकार शारीरिक या मानसिक कारणों से होते हैं। शारीरिक कारणों के भाषा-विकारों को चिकित्सा, शल्यकर्म से दूर किया जा सकता हैं। तो तनाव, आशंका, आदि मानसिक कारणों से तुतलाना, हकलाना, भूल जाना का उपचार मनोभाषा विज्ञान कराता हैं।

5 भाषाभूगोल

भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा भूगोल एक नवीन अवधारणा हैं। इसके अंतर्गत प्रमुखत: दो विषयों का अध्ययन किया जाता हैं -

(1) संसार की भाषाओं का सीमा निर्धारण।

(2) किसी भाषा विशेष की बोलियों का स्थानीय विशेषता के आधार पर विवेचन। जिसे 'बोली भूगोल' भी कहा जाता है।

भाषाविज्ञान कोश में परिभाषित किया है कि - किसी क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषाओं, भाषा या बोलियों में ध्वनि, सुर, शब्द-समूह, रूप तथा वाक्यगठन आदि की दृष्टि से (स्थानीय विशेषताओं की दृष्टि से) अध्ययन ही भाषाभूगोल कहलाता है।

भाषा-भूगोल की व्यावहारिक उपयोगिता अथवा अध्ययन के निम्न लाभ है -

संसार में लगभग तीन हजार भाषाएँ प्रयुक्त होती है। इनमें सैकडों भाषाएँ ऐसी हैं जिनकी सीमाएँ आपस में मिलती हैं। सीमावर्ती भाषा अपने आसपास की भाषाओं से प्रभावित होती है। ऐसे में भाषा की सीमा तय करना आवश्यक होता है। जैसे नंदुरबार जिले में मराठी भाषा हैं किंतु इसकी सीमा पर गुजराती भाषा भी है। छत्तीसगढ का रायपुर जिला

हिन्दीभाषी है। इसके निकट का सुंदरगढ जिला उडिया हैं। इसलिए गुजराती-मराठी या उडिया-हिन्दी की सीमा-रेखाएँ मिली-जुली है। ऐसे में भाषाओं के सर्वेक्षण और वितरण के विश्लेषण में भाषा भूगोल का अध्ययन महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

भाषाओं के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामरिक, कूटनीतिक और समाजशासत्रीय महत्त्व स्पष्ट करना भाषा-भूगोल के महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

कोई भाषा किन ऐतिहासिक घटनाओं और परिणामों के कारण आधुनिक स्थिति पर पहुँची है, इसके मध्यवर्ती रूपों में कौनसे परिवर्तन हुए हैं, प्रगति के बाधक कारण ढूँढना भाषा-भूगोल का कार्य है।

भाषा को बोलनेवालों की एक निश्चित संख्या होती है। इसके वितरण का विशिष्ट ढाँचा होता है। जीवनोपयोगी वस्तु के निर्माण में अथवा सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण में इसका उपयोग होता है। संसार की आर्थिक और कूटनीतिक गतिविधियों का निर्धारण और नियमन होता है। इस भाषा के महत्त्व को जानना तथा यदि कोई क्षेत्र दूसरे देश का उपनिवेश रहा है। तब विदेशी भाषा उस क्षेत्रपर हावी हो जाती है। इनके महत्त्व और कारणों का अध्ययन करने (भाषा-नियोजन) के लिए भाषा-भूगोल का महत्त्व अनन्यसाधारण है।

संसार में कौनसी भाषाएँ बोली जाती है, बोलनेवालों की संख्या, भाषा प्रयोक्ताओं के बौद्धिक, मानसिक, सांस्कृतिक स्तर को जानने के लिए और यह लोग किन परिस्थितिओं में प्रयोग करते हैं - का अध्ययन भी भाषा-भूगोल के कारण हो सकता है।

भाषा-भूगोल के अध्ययन की प्रणाली का मुख्य आधार है जनगणना और भाषागणना। जनगणना प्राय: दस वर्षो की अवधि पर की जाती हैं। इसी जनगणना से भाषा प्रयोक्ताओं की सूचना भी मिलती है।

इस गणना में एक त्रुटी है, वह यह कि एकभाषिता कहाँ पर है, और द्विभाषिता कहाँ पर है, भाषिक छाया कहाँ पर कितनी है, का उत्तर मिलने में कठिनाई है। ऐसी स्थिति में भाषा-भूगोल हमारी मदद करता है। राष्ट्रीय साक्षरता तथा बौद्धिक उत्पादकता का पता इस क्षेत्र में प्रकाशित होनेवाली पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों और मुद्रित साधनों से चलता है।

भाषा-भूगोल के अन्य प्रकार है - बोली-भूगोल, शब्द-भूगोल, ध्वनि-भूगोल, वाक्य भूगोल आदि।

भाषा-भूगोल के अध्ययन की परंपरा 19 वीं सदी से पहले दशक से शुरुआत होती हैं। उस क्षेत्र में प्रथम उल्लेखनीय नाम श्लेमर का है। 1873 में स्कीट ने इंग्लीश एटलस बनाने का प्रयास किया था। 1895 में फिशर ने स्वाबिया का भाषा एटलस छपवाया था। कनाडा, अमेरिका में भी कार्य हुआ है। भारत में ग्रिअर्सन ने भाषा सर्वेक्षण का कार्य किया था। जिसका प्रकाशन २० वीं शती के प्रारंभ में हुआ। इस तरह भाषाविज्ञान में भाषा-भूगोल का अध्ययन आपसी संबंधों के निर्धारण के लिए, सांस्कृतिक और आर्थिक रिश्ते बनाने के लिए महत्त्वूपर्ण साबित हुआ है। विदेशी पर्यटन के लिए भी यह अध्ययन दिशा-दर्शन में मदद करता है।

6. **व्युत्पत्ति विज्ञान** (Etymology)

व्युत्पत्ति का संबंध शब्द से हैं। किसी शब्द की व्युत्पत्ति तथा इसके विकास का

इतिहास जिस विज्ञान में किया जाता हैं वह व्युत्पत्ति विज्ञान हैं। इसलिए ''व्युत्पत्ति विज्ञान शब्दविज्ञान की वह शाखा है जिसमें शब्दों का सर्वांगिण और परिपूर्ण अध्ययन किया जाता है।''

किसी भाषा के एक-एक शब्द को लेकर इसकी व्युत्पत्ति और विकास का क्रमिक अध्ययन इसमें किया जाता है।

शब्द के मूल रूप को जानने के लिए पहले व्याकरण की सहायता से उसके प्रकृति और प्रत्यय को अलग करके उसके अर्थपर विचार किया जाता है और यह खोजा जाता है कि किन कारणों से उसमें बाद में ध्वनि और अर्थसंबंधी परिवर्तन घटित हुए।

इस तरह व्युत्पत्ति विज्ञान ध्वनिविज्ञान, शब्दविज्ञान और अर्थविज्ञान का मिला-जुला रूप है।

प्राचीन काल में भारत में इस विज्ञानपर अध्ययन हुआ है। प्राचीन काल में इसे 'निरूक्त' कहते थे। जो छह वेदांगों में से एक था। कठिन वैदिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए अनेक निरुक्तों की रचना हुई। जिनमें सबसे अधिक लोकप्रिय और उपलब्ध यास्क मुनि का निरुक्त है। यास्क मुनि का समय इ.स. पूर्व 8वीं शती है।

व्युत्पत्ति में मनगढंत कल्पना को कोई स्थान नहीं है। गहरे चिंतन, शोध और छानबीन से शब्द की व्युत्पत्ति खोजी जाती है। व्युत्पत्ति विज्ञान, वैज्ञानिकता की नींव पर खडा है। व्युत्पत्ति को निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है -

* 'दा' धातु से 'डिति' प्रत्यय लग कर 'दिति' शब्द बना जो दैत्यों की माता का नाम है। नञ् तत्पुरुष समास करके 'न दिति-अदिति' (अर्थात् जो दिति न हो वह अदिति) यह देवों की माता (दक्ष प्रजापति की कन्या तथा कश्यप की पत्नी) का नाम निष्पन्न हुआ। अब 'अदिति' शब्द में 'व्य' प्रत्यय लगाने से 'आदित्य' शब्द बना, जिसका अर्थ हुआ 'अदिति के पुत्र' अर्थात् देवगण!

* दो धातु (बाँटना, खण्डित करना) से 'क्तिन्' प्रत्यय लग कर भी 'दिति' शब्द बनता हैं, जिसका अर्थ हुआ खंड नञ् समास करके 'न दिति' = 'अदिति' शब्द बना जिसका अर्थ हुआ अखण्ड, पूर्ण । अदिति शब्द में पूर्ववत् 'व्य' प्रत्यय के योग से आदित्य शब्द बना, जिसका अर्थ हुआ पूर्णता!

दोनों व्युत्पतियों को मिलाने से 'आदित्य' का अर्थ हुआ देवगण, जिनमें पूर्णत: का भाव विद्‌यमान है। मनुष्य अपूर्ण है, देवता पूर्ण ! उसी कारण मानव की तुलनामें देवताओं की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हुआ है! यद्‌यपि व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'आदित्य' शब्द समस्त देवताओं का वाचक है, पर कालांतर में अर्थसंकोच के कारण यह केवल सूर्य के अर्थ में सीमित रह गया। 'आदित्य' सूर्य के भाग को कहते हैं। इनकी संख्या बारह हैं और इनके नाम हैं : धाता, मित्र, अर्थमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु । यह बारहों आदित्य एक साथ केवल प्रलयकाल में ही उदित होते हैं।

व्युत्पत्तिविज्ञान से पता चलता है कि कोई शब्द किस तरह प्रचलित हुआ है, जैसे 'जनवासा' शब्द, जिसका आज अर्थ है बारातियों के रूकने का स्थान । उसकी उत्पत्ति ऋग्वेद के शब्द 'जन' से हैं। जिसका अर्थ है 'वर'। वर के साथ आनेवाले लोग 'जन्य'

कहलाते हैं। उसलिए शब्द बना जन्ययात्रा, और जन्यवास – संस्कृत का शब्द है, जो प्राकृत में 'जण्यावास' हिन्दी में 'जनवास जनवासा' बना ।

व्युत्पत्ति के द्वारा यह भी पता चलता है कि कोई शब्द अपने मूल अर्थ से हटकर पूर्णतया विरुद्ध अर्थ का वाचक हो जाता है। अर्थविज्ञान में इसे 'अर्थादेश' कहते है। जैसे असुर शब्द है। यह 'असु:' से बना है जिसक अर्थ है प्राण, असुर का अर्थ हुआ शक्तिवान, प्राणवान । पारसीयों की अवेस्ता में 'अहुरमज्द' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है परमात्मा और वे अग्नि को अहुरमज्द के रूप में पूजते थे । ईरानी ये आर्य ही है। आर्य की एक टोली भारत में आई जो इंद्रपूजक, वैदिक आर्य थे । ईरानी और भारतीय आर्यों में संघर्ष हुआ और असुर का द्वेषमूलक अर्थ हुआ 'राक्षस' । कारण 'अ' को निषेधवाचक मानकर 'सुर' यह नया शब्द गढा, जिसका अर्थ हुआ 'देवता' और जो सुर नहीं हैं वह 'राक्षस'। व्युत्पत्ति के द्वारा ही पता चलता है कि भाषा में प्रयुक्त शब्दसमूह कितने तत्सम, कितने तद्भव देशज और विदेशी है। व्युतपत्तिकार ने निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए –

* किसी शब्द की व्युत्पत्ति देने से पहले उसके प्राचीनतम रूप (अर्थात् मूल रूप) का ज्ञान कर लेना चाहिए ।
* व्युत्पत्ति में वैज्ञानिकों को भाषाविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। जिस भाषा पर कार्य करना है उसके व्याकरण तथा ध्वनि-नियमों ज्ञान जरुरी है।
* दो शब्दों का परस्पर सम्बन्ध ध्वनि-नियमों के आधारपर निश्चित करना चाहिए। बाह्यरुप-साम्य के आधारपर नहीं ।
* दो शब्दो में ध्वनि संबंध स्थापित हो जाना ही काफी नहीं, इनमें अर्थसाम्य की खोज भी करनी चाहिए ।
* व्युत्पत्ति पूरे शब्द की होनी चाहिए, उसके किसी अंश की नहीं ।
* किसी भी भाषा के शब्दसमूह पर भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक प्रभाव पडता है, जिसका ध्यान व्युत्पत्ति के समय रखना चाहिए ।
* जिस भाषा पर कार्य करना हो इससे संबंध भाषा, उसका साहित्य तथा संस्कृति का भी अध्ययन कर लेना चाहिए।
* मिथ्या सादृश्य के कारण कई बार शब्द अपना रूप बदल कर भ्रम उत्पन्न करता है, जिससे सतर्क रहना आवश्यक है।
* शब्द-व्युत्पत्ति में भावुकता या अनुमान के स्थान पर वैज्ञानिकता का आग्रह होना चाहिए।
* पूर्व में किये गये कार्य की जानकारी अवश्य कर लेनी चाहिए।

व्युत्पत्ति के शास्त्र में काम करनेवाले पश्चिमी विदवानों में टर्नर, स्कीट, क्लूगे आदि उल्लेखनीय हैं। तो भारतीय विद्वानों में हरगोविन्ददास, भिकमचंद सेठ, कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी, हरिवल्लभ भायाणी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. हेमचंद्र जोशी उल्लेखनीय नाम हैं ।

2.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

✻ भाषाविज्ञान की परिभाषाओं के आधारपर उसका स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

✻ भाषाविज्ञान की उपशाखाओं का परिचय दीजिए ।

....

....

....

✻ भाषाविज्ञान की उपशाखाओं का उल्लेख करते हुए कोशविज्ञान एवं लिपि विज्ञान का परिचय दीजिए ।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ

✻ भाषाविज्ञान का स्वरूप

....

....

....

✻ भाषाभूगोल

....

....

....

✻ मनोभाषाविज्ञान

....

....

....

* समाजभाषाविज्ञान

....

....

....

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

* भाषा भूगोल के अध्ययन के लाभ लिखिए ।

....

....

....

* व्युत्पत्ति विज्ञान का महत्त्व लिखिए ।

....

....

....

* लिपिविज्ञान में किन बातों का अध्ययन होता हैं?

....

....

....

* कोश के प्रकारों के नाम लिखिए ।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए

* भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान है - यह किसकी परिभाषा है?

  अ) डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा ब) श्यामसुंदर दास क) बाबुराव सक्सेना ड) भोलानाथ तिवारी

* व्युत्पत्तिविज्ञान किससे संबंधित हैं?

  अ) शब्द ब) पद क) वाक्य ड) अर्थ

2.4 सारांश

भाषा शब्द की व्युत्पत्ति भाष धातु से हुई हैं जिसका अर्थ हैं बोलना । यही भाषा मनुष्य की पहचान है । इसी भाषा का व्यवस्थित अध्ययन भाषाविज्ञान कहलाता है । रॉबिन्सन,

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, ग्लीसन आदि ने भाषाविज्ञान को परिभाषित किया है। भारतीय विद्वानों में डॉ. श्याम सुंदरदास, देवेन्द्रनाथ शर्मा, अम्बाप्रसाद सुमन, डॉ. उदयनारायण तिवारी, डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषाविज्ञान को परिभाषित किया हैं । भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान है। भाषाविज्ञान, भाषाविषयक सिद्धांतों का निर्धारण करता हैं।

भाषाविज्ञान, भाषा के सभी तथ्यों और व्यवहारों से संबंध रखता है। इसमें संसार की भाषाओं के गठन, इतिहास, परिवर्तन, भाषाओं का आपसी संबंध पर अध्ययन किया जाता है। भाषा के विविध रूप, भाषा के परिवार, भाषाई समाज और भाषा के मुख्य अंगों - ध्वनि (रवन), पद (रूप), वाक्य और अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान में किया जाता हैं ।

भाषाविज्ञान के मुख्य अंग हैं - ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान । भाषाविज्ञान की कोशविज्ञान, समाज भाषाविज्ञान, लिपिविज्ञान आदि उपशाखाएँ बनायी गई हैं -

कोशविज्ञान में कोशनिर्माण, कोश प्रयोग की कला सिखलायी जाती है। कोश में किसी भाषा के शब्दों का भण्डार होता है। और शब्दों का वैकल्पिक, समान शब्द देखकर अर्थ दिया जाता है भारत के प्राचीनतम कोश निघण्टु है। कोश व्युत्पत्ति, व्याकरण, सुर, बलाघात को भी सूचित करता है।

समाजभाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन सम्प्रेषण के आधारपर करता है। परिवेश, संस्कृति, विनम्रता, सम्मान, औपचारिकता, अनौपचारिकता, उम्र, लिंग के परिप्रेक्ष्य में भाषा का अध्ययन करता है।

लिपिविज्ञान में भाषा के लिए लिपि की उपादेयता को बताकर लिपि उत्पत्ति की आवश्यकता, लिपि का विकास, लिपिसुधार के प्रयत्न का अध्ययन किया जाता है। लिपि के कारण ही भाषा स्थायी हो सकती है।

मनोभाषाविज्ञान भाषा का अर्थबोधन, भाषाविकारों का अध्ययन तथा उपचार बतलाता है।

भाषा भूगोल के अध्ययन से भाषाओं के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामरिक, समाजशास्त्रीय महत्त्व, सीमा का निर्धारण ज्ञात होता है। भाषाई एटलस निर्माण में मदद करता है।

व्युत्पत्ति विज्ञान में शब्दों की व्युत्पत्ति विश्लेषण के आधारपर खोजी जाती है। शब्द की ध्वनियों, अर्थ में परिवर्तन के कारण खोजे जाते है। इस प्रकार भाषाविज्ञान की यह विविध उपशाखाएँ अनुप्रयुक्तता और प्रयोजनीयता के कारण रोजगारपरक है ।

2.5 शब्दार्थ

वाक् - वाणी

ईजाद - आविष्कार

व्युत्पत्ति - विश्लेषण

2.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

- ✻ महाराष्ट्र के भाषावैज्ञानिकों का परिचय प्राप्त कीजिए।
- ✻ भाषाविज्ञान की अन्य उपशाखाओं की जानकारी प्राप्त कीजिए।
- ✻ भाषाविज्ञान का स्वरूप परिभाषाओं के आधारपर स्पष्ट कीजिए।
- ✻ भाषाविज्ञान की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

2.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा – डॉ. तेजपाल चौधरी

भाषाविज्ञान की भूमिका – डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा

इकाई – 3
स्वन एवं स्वनिम विज्ञान

अनुक्रम

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 विषय विवरण
3.2.1 स्वन का स्वरूप
3.2.2 स्वन उत्पादन संवहन ग्रहण
3.2.3 वाग् अवयव
3.2.4 स्वनों का वर्गीकरण
3.2.6 स्वरों का वर्गीकरण, व्यंजनों का वर्गीकरण
3.2.7 स्वन परिवर्तन के कारण और दिशाएँ
3.2.8 स्वनिम – निर्धारण और भेद, ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन
3.3 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न
3.4 सारांश
3.5 शब्दार्थ, टिप्पणी
3.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
3.7 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

3.0 उद्देश्य –

* भाषा के वाग् अवयवों से परिचित होंगे ।
* स्थान -प्रयत्न, करण के आधार पर स्वन - वर्गीकरण प्रस्तुत कर सकेंगे ।
* स्वन परिवर्तन की दिशाएँ और कारण समझ सकेंगे ।

3.1 प्रस्तावना

भाषा की पहचान बोलना है। ध्वनियों में बोला जाता है। भाषाविज्ञान में इसे स्वन कहते है। भाषा की लघुतम इकाई स्वन है। स्वन उत्पादन जिन अवयवों से होता है उन्हें वाग् अवयव कहते हैं । पाणिनीय शिक्षा में बोलने की प्रक्रिया इस प्रकार बनती है – ''बुद्धि के साथ आत्मा अर्थों (वस्तुओं) को देख कर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है, मन शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है जिससे वायू में प्रेरणा उत्पन्न होती है, प्रेरित वायु (श्वासवायू) फेंफडे में

चलती हुई ध्वनि को उत्पन्न करती है फिर बाहर की ओर लाकर तथा मुख के उपरिभाग से अवरूद्ध होकर मुख में पहुँचती है और पंचधा विभक्त ध्वनियों का निर्माण करती है।

वक्ता के द्वारा उच्चरित ध्वनियों को श्रोता कानों से सुनकर मानसिक बिम्ब उत्पादित करता है और मानसिक प्रतीति प्राप्त करता है जिसे अर्थ प्रतीति कहते है। भाषा का प्रयोग ध्वनियों का उच्चारण कर स्वन निर्माण करना है। इसलिए सही उच्चारण और सही सुनना ही अर्थप्रेषण है।

3.2 विषय–विवरण

3.2.1 स्वन का स्वरूप

स्वन भाषा की लघुत्तम इकाई है। अंग्रेजी में उसे Phone कहते है। जिसका संबंध वाग् अवयवों से हैं । वक्तादूवारा उच्चारित ध्वनियों को श्रोता ग्रहण कर, वक्ता को अभिप्रेत अर्थ–आशय को ग्रहण करे तब वह स्वन कहलाएगा ।

जिस विज्ञान में स्वन का विशेष अध्ययन होता है उसे 'स्वनविज्ञान' कहते हैं। अंग्रजी में उसे Phonetics कहा जाता है।

स्वन विज्ञान के लिए संस्कृत में 'शिक्षा' संज्ञा प्रचलित है और शिक्षा सही उच्चारण है । पतंजलि का कहना हैं कि, एक शब्द का शुद्ध ज्ञान और प्रयोग मनुष्य के लिए स्वर्ग प्राप्ति के समान होता है।

3.2.2 स्वन–उत्पादन–संवहन–ग्रहण

भाषाई उच्चारण अर्थात् बोलने के तीन आयाम है जिन्हें स्वन के तीन आयम कह सकते है। वे निम्न प्रकार के हैं –

क) उत्पादन – वक्ता के दूवारा भाषा का उच्चारण करना । यह औपचारिक आयाम है। अंग्रजी में इसे Articalatory कहते हैं।

ख) संवहन (वहन) – वक्ता के दूवारा निर्मित भाषा स्वन मुँह से बाहर अर्थात हवा में तरंगों के रूप में छोडे जाते है। श्रोता इन हवाई स्वन तरंगों को अपने कानों दूवारा ग्रहण करता है। यहाँ पर हवा लहरियों या तरंगों को वक्ता से श्रोता तक पहुँचाने के माध्यम के रूप में कार्य करती है। यदि इस संवहन में बाधा आ जाए–जैसे– दीवार–काँच आदि तो इन स्वनों का संवहन ही नहीं होता । इसको आधार बनाकर टेलीफोन बूथ पर या रेकॉर्डिंग, स्टुडिओ में ध्वनि विरहित कक्ष (साऊंड प्रूफ केबीन) का निर्माण किया जाता है।

ग) श्रौतिकी – इसे अंग्रेजी में Auditory कहते हैं। श्रावणिक स्वन–विज्ञानवायुमंडल में संचरित होनेवाली स्वन तरंगे कर्णपटल को प्रभावित करती है। हमारा कान तीन भागों में बँटा हैं – बाह्य कर्ण, मध्यवर्ती कर्ण, भीतरी कर्ण ।

बाह्य कर्ण के दो भाग हैं – एक वह जो आँखों से दिखाई देता है और टेढा–मेढा है। दूसरा भाग कर्ण नलिका का होता है। इस नलिका के भीतरी छिद्र पर एक झिल्ली होती है जो बाह्यकर्ण को मध्यवर्ती कर्ण से जोडती है।

मध्यवर्ती कर्ण लघु आकारवाली कोठरी है, जिसमें तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती है, जिसका एक सिरा बाह्य कर्ण की सिल्ली से जुडा रहता है। दूसरी ओर इसका संबंध भीतरी कर्ण के बाहरी छिद्र से होता है।

भीतरी कर्ण में शंखनुमा एक अस्थिसमूह होता है। इसके दोनों ओर झिल्लियाँ होती हैं । इसके बीच खोखले भाग में द्रव पदार्थ भरा होता है, यही से श्रावणी सिरा प्रारंभ होती है जो मस्तिष्क से जुडी होती है। वक्ता द्वारा उच्चारित स्वन लहरियाँ वायू द्वारा वहन होकर श्रोता के कानों के पर्दे पर टकराती है। कर्णपटल में कंपन उत्पन्न होता है। ये कंपन अस्थियों द्वारा भीतरी कर्ण के द्रव पर निर्माण होता है और श्रावणी सिरा के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचता हैं और हमें सुनाई देता है।

3.2.3 **वाग् अवयव**

शरीर के जिन अवयवों से स्वन का उत्पादन होता है, उन्हें उच्चारण अवयव, ध्वनियंत्र, स्वनयंत्र, वाग्यंत्र, वाग् अवयव कहा जाता है। अंग्रेजी में उसे Organs of speech कहते है, जो निम्न है -

✻ **फेंफडे -**

स्वन उत्पादन के लिए आवश्यक वायु इच्छवास के रूप में फेंफडे से बाहर आती है। जो स्वन रूपमें परिवर्तित होती है। बाहर छोडनेवाली हवा का श्वसन प्रक्रिया का उपजात (by Product) भाषा स्वन निर्माण है। फेंफडे का मुख्य कार्य रक्तशोधन है।

✻ **श्वासनली -**

फेंफडों से निर्गम हवा और आगत हवा श्वासनली के द्वारा जाती-आती है। फेंफडों से कण्ठ तक की यह एक लम्बी नली है। यह कोई स्वतंत्र स्वने उत्पन्न नहीं करती । यह केवल स्वन उत्पन्न करने वाली हवा को स्वरयंत्र में भेजती है।

✻ **भोजननली**

श्वास नलिका के पीछे भोजन नलिका होती है। श्वास नलिका और भोजन नलिका को अलग करने के लिए एक मजबूत झिल्ली की दीवार होती है। भोजन नलिका आमाशय तक जाती है। पेट भर जाने के पश्चात आमाशय की हवा उस रास्ते से बाहर निकलती है।

✻ **स्वरयंत्र**

अभिकाकल के कुछ नीचे और श्वास नली के ऊपर स्वरयंत्र है। फेंफड़े से निकली हुई हवा स्वरयंत्र से होकर ही बाहर निकलती है। स्वन निर्माण में उसका प्रमुख योगदान है। उसे कण्ठपीटक भी कहते है।

✻ **स्वरतंत्री**

स्वरतंत्र में पतली झिल्ली के बने दो लचिले परदे होते हैं । जिन्हें कपाट भी कहते है । स्वरतंत्री को स्वररज्जू भी कहते हैं । स्वन उत्पादन में उसकी विविध स्थितियाँ बनती हैं ।

जब स्वरतंत्री सिमट जाती है और वायु अंदर से धक्का देकर बाहर निकलती है तब होने वाले स्वन सघोष कहलाते है । उसके विपरीत जब वायु को बाहर आने में कोई बाधा

नहीं पडती तब उत्पन्न होने वाले स्वन अघोष कहलाते है, तीसरी अवस्था में 'क्लीक' ध्वनियों का निर्माण होता है।

***   स्वरयंत्रमुख (काकल)**

स्वरतंत्रियों के बीच के खुले भाग को स्वरयंत्रमुख या काकल कहते है। काकल गले का भीतरी हिस्सा है जिसके आगे मुख की सीमा आरंभ होती हैं । उसी से होकर वायु अंदर-बाहर आती-जाती है।

***   स्वरयंत्रवरण (अभिकाकल)**

श्वासनली के द्वार पर आवरण के रूप में जीभ के आधार का छोटासा कोमल परदा अभिकाकल है इसका मुख्य कार्य है भोजन को श्वासनली में जाने न देना ।

***   कण्ठपीटक**

गले में इउभरा हुआ भाग कण्ठपीटक कहलाता है। उस स्थान पर श्वासनली और भोजननली है। विविध प्रकार की आवाजें निर्माण करने में यह सहायता करता है।

***   कण्ठमार्ग (गलबील, ग्रसनिका)**

नासिका विवर और स्वरयंत्रावरण के बीच जिव्हामूल के नीचे के स्थान को गलबील कहते हैं। यह एक तरफ नासिका विवर से मिलता है तो दूसरी तरफ मुख विवर से । ध्वनि उच्चारण में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

***   कण्ठ**

कोमल तालु के नीचे काकल के ऊपर के अवयव को कण्ठ कहते है। यहाँ से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियाँ 'कण्ठय' ध्वनियाँ कहलाती हैं ।

***   अलिजिव्हा -**

उसे अलिजिव्हा, घण्टी या कौवा भी कहते है। यह कोमल तालु का अंतिम भाग है। जो गले में पूंछ के समान लटकता है। यही से नासिका विवर और मुख विवर के रास्ते अलग फूटते है। इसकी विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न स्वनों का निर्माण होता है।

***   नासिका विवर**

मुख और नाक के बीच का रिक्त स्थान नासिका विवर कहलाता है। श्वास और नि:श्वास इसी तरह से आते जाते है। यहाँ से उत्पन्न होने वाले स्वन नासिक्य कहलाते हैं । प्रत्येक वर्ग का पाँचवा वर्ण ङ, ञ, ण, न, म यहाँ से उच्चरित होने वाले स्वन है।

***   मुख विवर**

कौवा के एक ओर नासिका विवर तो दूसरी ओर मुख विवर है। मुख-विवर स्वन उत्पादन का महत्त्वपूर्ण अंग है। मुख विवर में कोमल तालु, मूर्धा, कठोर तालु, वर्त्स, दाँत, जीभ,ओंठ आते है। इन स्थानों पर जीभ द्वारा हवा को रोक कर स्वन का निर्माण किया जाता है।

तालु के चार भाग है - कोमल तालु, कठोर तालु, मूर्धा तथा वर्त्स । जीभ इन स्थानों को स्पर्श करती है तब विभिन्न स्वनों का निर्माण होता है।

✻ जीभ (जिव्हा)

उच्चारण अवयवों में जीभ सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है। बिना उसके स्वन का उच्चारण करना संभव नहीं है। जीभ मुख-विवर के मध्य निचले भाग में होती है। जीभ अंदर जाती हैं, बाहर निकलती है, ऊपर उठती है, नीचे झुकती है, उलटती है, काँपती है। उसी कारण हम तरह तरह की ध्वनियों का उच्चारण कर पाते हैं ।

जीभ के जिव्हानोंक जिव्हा मध्य, जिव्हा पश्च, जिव्हामूल आदि विभिन्न भाग है। जिससे विभिन्न स्वनों का उच्चारण किया जाता है। स्वन उत्पादन में उस भाग द्वारा सामने वाले दातों को स्पर्श कर दन्त्य स्वन (त, थ, द, ध, न) का उच्चारण किया जाता है। मूर्धा को स्पर्श कर मूर्धन्य (ट, ठ, ड, ढ, ण) उच्चारित होते है। तो वर्त्स्य स्वन न, र, ल, स भी जिव्हा नोंक से स्पर्श करते हुए उच्चारित किये जाते हैं ।

i) जिव्हाग्र – जिव्हानोंक के पास वाले जीभ के आगे के भाग को जिव्हाग्र कहते हैं। उसकी सहायता से तालव्य स्वनों (च, छ, ज, झ, न) का निर्माण होता हैं ।

ii) जिव्हा मध्य – जीभ के मध्य के तीसरे भाग को जिव्हा मध्य कहते हैं । जिसे 'जिव्हाफलक' भी कहा जाता है।

iii) जिव्हापश्च - जिव्हा के पिछले चौथे हिस्से को 'जिव्हा पश्च' कहा जाता है। जो कोमल तालु के नीचे पडता है। यह हिस्सा कोमल तालु की ओर ऊपर उठ कर पश्चस्वरों का निर्माण करता है। आ, ओ और व्यंजन कण्ठस्वन क, ख, ग, घ उत्पन्न किये जाते हैं ।

iv) जीभ का अंतिम – हिस्सा जिहवामूल है। कौवे के पीछे का भाग जिहवामूल है यह ग्रसनी की दिवाल के सामने होता है। जिहवामूलीय स्वन विसर्ग और क, ख, ग, घ निर्माण होते हैं।

✻ ओंठ –

उच्चारण अवयव का अंतिम अवयव ओंठ हैं ये बाहरी अवयव हैं । ओंठ और अधर (नीचे का ओंठ) मिल कर हवा को रोकते हैं और ओष्ठ्य स्वनों (प, फ, ब, भ, म) का निर्माण होता हैं ।

3.2.4 स्वनों का वर्गीकरण

मनुष्य के कण्ठ और मुख-विवर से विभिन्न स्वनों का उच्चारण होता हैं । उच्चरित स्वनों की विविधता का बोध कोमल कठोर उच्चारण से होता है। प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट तरिका होता है। जिसके कारण वह पहचाना जाता है। भाषा सीखने के लिए उसका सही उच्चारण कैसे, कहाँ से, किसलिए किया जाए इसे ध्यान में रख कर ही स्वन वर्गीकरण प्रस्तुत हुआ है।

पाणिनि ने शिक्षा में स्वन वर्गीकरण के पाँच आधार बनाएँ हैं –स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुतान ।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक स्थान, करण, प्रयत्न और श्रवणीयता को स्वन वर्गीकरण का आधार मानते हैं। इनका संक्षेप में परिचय उस प्रकार हैं –

(1) **स्थान –**

नि:श्वास को अर्थात फेंफडों से बाहर निकलने वाली वायु को जिस स्थानपर बाधित किया जाता है, रोका जाता है उसे स्वन निर्माण का स्थान कहा जाता है। स्वरयंत्र से लेकर ओंठों तक इसके अनेक स्थान है। स्वर के अग्र, पश्च, मध्य भेद स्थान पर आधारित है। उत्पादन के स्वरयंत्र, उपाली जिहवा, अलिजिहवा, मूर्धा तथा कण्ठ, तालु, वर्त्स, दाँत, ओंठ यह स्वन निर्माण के स्थान है।

✻ **काकल्य –** मुख-विवर खुला रहता है। स्वरयंत्र से निकलने वाली हवा कण्ठ दूवार से घर्षण कर बाहर निकल जाती है। इसे 'स्वरयंत्री मुखी' अथवा 'काकल्य' ध्वनि कहते हैं । 'ह' तथा विसर्ग स्वनों का उच्चारण यहाँ से होता हैं ।

✻ **जिव्हामूलीय –** (उपाली जिव्हा) – जिव्हामूल और कण्ठ के पिछले हिस्से के स्थान पर उच्चरित 'जिहवामूलीय' कहलाते हैं । हिन्दी में प्रयुक्त अरबी स्वन क़, ख़, ग़ (नुक्तावाले) जिहवामूलीय स्वन हैं ।

✻ **कण्ठय –** कंठ से उच्चरित होने वाले स्वन कण्ठय हैं । कोमल तालु को संस्कृत में कंठ कहा जाता है। जीभ का पिछला हिस्सा कोमल तालु को स्पर्श कर हवा को रोकता हैं तब कण्ठ्य स्वन उच्चरित होते हैं।

उदा. क ख ग घ ङ – कण्ठय व्यंजन हैं ।

✻ **तालव्य –** जीभ का अगला हिस्सा तालु को स्पर्श कर बाहर आने वाली हवा को रोकता है, तब तालव्य स्वन उच्चारित होते हैं।

उदा. च, घ, ज, झ, त्र तथा य, श तालव्य स्वन हैं ।

✻ **मूर्द्धन्य –** जीभ का नोक उलटकर मूर्ध्दा को स्पर्श कर हवा को रोकता हैं, मूर्द्धन्य स्वन उच्चरित होते है।

उदा. ट, ठ, ड, ढ, ण, ऋ, ष मूर्ध्दन्य स्वन हैं ।

✻ **दंत्य –** जीभ का नोक दाँत के ऊपरी पंक्तियों को स्पर्श कर हवा को रोकता हैं, तब उच्चरित होने वाले स्वन दंत्य होते हैं ।

उदा. त, थ, द, ध, न, स दंत्य स्वन हैं ।

✻ **ओष्ठय –** ओठ को ओठ स्पर्श कर अथवा निचला ओठ ऊपर के दाँतों को स्पर्श कर हवा को रोकता हैं, तब उच्चरित होने वाले स्वन ओष्ठ्य होते हैं ।

उदा. प, फ, ब, भ, म ओष्ठ्य स्वन हैं । उन्हें दंत्योष्ठ्य भी कहा जाता है। तो 'व' दंत्योष्ठय हैं ।

इस तरह स्थान के आधार पर स्वनों का वर्गीकरण किया जाता है। भाषा के स्वनों का उच्चारण सीखने के लिए यह वर्गीकरण महत्त्वपूर्ण है।

(2) प्रयत्न –

स्वन वर्गीकरण का दूसरा आधार प्रयत्न है। प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं ।

(क) **भीतरी प्रयत्न –** ओठ से लेकर कण्ठ तक उच्चारण के लिए किए जानेवाले

प्रयत्न उसके अंतर्गत आते हैं। (ख) बाहरी प्रयत्न कण्ठ से बाहर स्वरतंत्रियों तक प्रयत्न बाहरी प्रयत्न कहलाते हैं ।

(क) भीतरी प्रयत्न –

भीतरी प्रयत्न दो प्रकार के हैं –

i) पूर्णत: अवरोधी – निर्वाह उच्छवास को वाग् अवयव के स्थान पर पूर्णतया रोका जाता है। उच्छवास को कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दाँत और ओठों के स्थानों पर रोका जाता है। स्पर्श स्वनों को 'स्पृष्ट' भी कहते हैं । हिन्दी के 'क' वर्ग से 'प' वर्ग तक के पच्चीस व्यंजन वर्ण स्पृष्ट हैं ।

ईषत्स्पष्ट स्वन वे होते हैं जिनके उच्चारण में हवा पूर्णतया रोकी नहीं जाती । हल्की सी अथवा स्पष्ट की तुलना में आधी रोकी जाती है। उस स्थिति में अर्ध्द स्वरों का निर्माण होता हैं जैसे – य, र, ल, व

ii) निर्अवरोधी –

इन स्वनों के उच्चारण के समय हवा कहीं भी रोकी नहीं जाती । उस स्थिति में स्वरों का उच्चारण होता है। विवृत और संवृत स्वर स्वन उच्चारित होते हैं । विवृत का अर्थ है (खुला) जेसे 'आ' स्वर ओ संवृत्त का अर्थ है बंद अर्थात जीभ स्वर सीमा तक ऊपर उठती है । इ संवृत्त स्वर स्वन है।

(ख) बाहरी प्रयत्न –

बाहरी प्रयत्न का अर्थ है – मुखविवर के बाहर किए जाने वाले प्रयत्नों स्वर तंत्रियों के प्रयत्न बाहरी प्रयत्न के अंतर्गत आते हैं । बाहरी प्रयत्न ग्यारह प्रकार के होते हैं ।

विवार – विवार का अर्थ है विवृत्त । अर्थात् खुला होना । स्वरतंत्रियाँ पूरी तरह से हट जाती हैं तब विवार प्रयत्न होता है। विवार में अघोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं ।

❊ **संवार –** संवार का अर्थ हैं संवृत्त, अर्थात् बंद । यह विवार के विपरीत अवस्था है। संवार में घोष ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं ।

❊ **श्वास –** स्वर तंत्रियों की दो अवस्थाएँ होती हैं – खुली (विवृत्त) बंद (संवृत्त) । खुली स्थिति में श्वास नि:श्वास की क्रिया निरंतर बाधारहित रूप से चलती है। नि:श्वास का बाधारहित बाहर निकलना श्वास प्रयत्न के अंतर्गत आता है।

❊ **नाद –** स्वरतंत्रियाँ मिल कर नि:श्वास में बाधा उत्पन्न करती है और नाद निर्माण होता है।

❊ **अघोष** – श्वास प्रयत्न में घर्षण का अभाव अघोष कहलाता है। व्यंजनों में अघोष पाया जाता है। प्रत्येक वर्ग का पहला, दूसरा वर्ण अघोष है। (जैसे क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ)

❊ **घोष –** स्वरतंत्रियों में होने वाले घर्षण का दूसरा नाम घोष है। सभी स्वर घोष है। वर्णमाला के तृतीय, चतुर्थ, पंचम वर्ण – घोष है (जैसे ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म)

* **अल्पप्राण –** प्राण का अर्थ हैं वायु और अल्प का अर्थ हैं थोडा । जिन स्वनों के उच्चारण में अल्पवायु का प्रयोग हो वे स्वन अल्पप्राण कहलाते हैं । प्रत्येक वर्ग के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण अल्पप्राण हैं – जैसे –

क, ग, ङ

च, ज. ञ

ट, ड, ण

त, द, न

प, ब, म

* **महाप्राण –** अल्पप्राण की तुलना में लगभग दुगुना वायु का प्रयोग इन स्वनों के निर्माण में होता है। प्रत्येक वर्ग का द्वितीय और चतुर्थ वर्ण महाप्राण हैं । जैसे –

ख, घ

छ, झ

ठ, ढ,

थ, ध

फ, भ

* उदात्त – उदात्त का अर्थ हैं, ऊपर उठा हुआ अर्थात् आरोही स्वर ।
* अनुदात्त – अनुदात्त का अर्थ है, नीचे गिरा हुआ अर्थात् अवरोही स्वर ।
* स्वरित – स्वरित का अर्थ हैं सम अर्थात् जो न आरोही हो और न अवरोही ।

3) **करण** – वागेंद्रियों में करण उन इंद्रियों को कहा जाता है, जो गतिशील होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर जो इंद्रियाँ स्वन उत्पादन में सहायता करती है, उन्हें 'करण' कहा जाता हैं, ये इंद्रियाँ चार हैं –

अ) अधर – नीचे का ओंठ अधर कहलाता है। ऊपर का ओंठ स्थिर रहता है परंतु नीचे का ओठ कभी ऊपर के ओठों को स्पर्श करता है तो कभी ऊपर की दंतपंक्तियों को, ऐसी स्थिति में दंत्योष्ट्य स्वनों का निर्माण होता हैं, इसलिए यह करण है।

ब) जिह्वा – जिह्वा सबसे अधिक गतिशील है, स्वन निर्माण के समय आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, उलटकर, टकराकर स्वनों को उत्पन्न करती है।

क) कोमलतालु – कोमलतालु स्थान है और करण भी जब जिव्हापश्च का इससे स्पर्श होता है तो कण्ठयस्वन (क वर्ग) का निर्माण होता है। यहाँ पर कोमलतालु स्थान है। जब वह नीचे-इतर जाकर अनुनासिक वर्ण के उच्चारण में सहायक बनता हैं, इसलिए यह करण है।

ड) स्वरतंत्री – वागेंद्रियों में स्वरतंत्रियाँ भी करण है। कभी खुलकर, कभी बंद होकर, कभी कंपन के दवारा स्वन निर्माण करने की क्षमता रखती है ।

(4) श्रवणीयता – श्रवणीयता से तात्पर्य ऐसे स्वन जो दूसरे स्वनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट सुनाई दे। दूर से भी वह अच्छी तरह सुन लें।

श्रवणीता के आधारपर स्वनों के तीन वर्ग बनाएँ हैं वह निम्न हैं –

अ) स्वर – ऐसी ध्वनियाँ हैं जिनका उच्चारण करते समय मुख–विवर या तो बहुत कम या बहुत अधिक खुला रहता है। बाहर निकलने वाली वायु मुख–विवर में कहीं भी बाधित हुए बिना बाहर निकल जाती है। स्वरों के उच्चारण में जिह्वा आदि उच्चारण अवयव मुख–विवर के किसी भी स्थान को स्पर्श नहीं करती।

ब) व्यंजन – व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में स्वरतंत्री से बाहर निकलनेवाली वायु कही न कही मुख तथा नासिका के सांधि–स्थल या मुख–विवर में कहीं बाधित होकर मुख या नासिका से निकलती है। जिह्वा तालु आदि स्थानों को स्पर्श करती है। इसलिए व्यंजनों को सामान्यत: स्पर्श तथा स्फोट ध्वनियाँ भी कहा जाता हैं ।

क) अंतस्थ – शब्दों में कभी–कभी किसी कम परिस्फुट के बाद तुलना में अधिक परिस्फुट स्वर आ जाने से पहला स्वर अत्याधिक ऱ्हस्व उच्चारित होता है ऐसे स्वर को अंतस्थ कहते हैं । जिन्हे अर्धस्वर भी कहा जाता है। कारण ये स्वर और व्यंजन के बीच के स्वन हैं । अर्धस्वर य और व दो माने गये हैं। (आजकल विद्‌वान र और ल को भी अंतस्थ मानते हैं ।

3.2.5 स्वर और व्यंजन

स्वन के दो प्रमुख भेद हैं – स्वर और व्यंजन, जिन स्वनों के उच्चारणों में नि:श्वास बिना किसी रुकावट के मुँह से बाहर निकलती है तब उन्हें स्वर–स्वन कहते हैं। स्वर के उच्चारण में नि:श्वास अवरुद्ध होता हैं । स्वर अधिक मुखर होते हैं । उसलिए स्पष्ट सुनाई देते है। व्यंजनों में ऐसी मुखरता नहीं है।

स्वर का उच्चारण निरंतर किया जा सकता है. व्यंजनों में ऐसा करना संभव नहीं है। जैसे अ, आ, का उच्चारण गायक कर लेता है पर ‘क’ का उच्चारण निरंतर नहीं किया जा सकता ।

स्वर बिना किसी व्यंजन स्वन की सहायता से उच्चारित होते हैं ।

व्यंजनों के उच्चारण में स्वर की सहायता लेनी पडती हैं। स्वर–स्वन सघोष हैं, व्यंजन सघोष–अघोष हैं। स्वरों के उच्चारण में जीभ विभिन्न मात्रा में उपर उठती है। इसलिए स्वर–रेखा जीभ के उपर उठने की सीमा होती हैं । व्यंजनों की ऐसी कोई रेखा नहीं है।

3.2.6 स्वरों का वर्गीकरण

स्वर वर्गीकरण के निम्न आधार हैं –

*** जिव्हा के विभाग**

स्वर स्वन के उच्चारण के समय यह देखा जाता हैं कि जीभ का अगला, बीच का या पिछला कौन सा हिस्सा किस उँचाई तक उठता है। उसकी इस क्रिया के आधारपर स्वरों को वर्गीकृत किया जाता हैं।

अ) जिव्हा के अग्रभाग द्वारा निर्मित होनेवाले अग्रस्वर - इ, ई, ए, ऐ ।

ब) जिव्हा के पश्चभाग द्वारा निर्मित होनेवाले पश्चस्वर ऑ, आ, इ, ऊ, ओ, औ !

क) जिव्हा के मध्यभाग द्वारा निर्मित होनेवाले केंद्रीय स्वर - अ ।

* **जिव्हा की ऊँचाई**

निःश्वास वायु जब मुख-विवर से बाहर निकलती हैं तो उसमें अवरोध तो नहीं किया जाता किंतु जिह्वा को ऊपर उठा कर नि:श्वास के बाहर निकलने के रास्ते को थोडा संकीर्ण कर दिया जाता है। यह संकीर्णता कहीं कम होती हे कहीं अधिक, इस आधारपर स्वरों के भी चार भेद हो जाते है - विवृत, अर्धविवृत्त, अर्धसंवृत्त, संवृत्तस्वर ।

i) विवृत्त – विवृत्त का अर्थ है खुला । इन स्वनों के उच्चारण में जीभ और मुख-विवर के ऊपरी भाग में अधिकतम स्थान खुला रहता है उसे विवृत्त कहते है। आ, आँ - विवृत्त स्वर हैं ।

ii) अर्धविवृत्त – विवृत्त की तुलना में आधा ऊपर उठता हैं, उसलिए मुख-विवर खुला रहता है। उस स्थिति में अर्धविवृत्त स्वरों का उच्चारण होता हैं ऐ, ऑ, अ, अर्धविवृत्त स्वर हैं।

iii) अर्धसंवृत्त – इन स्वरों के उच्चारण में जीभ अर्धविवृत्त से कुछ और ऊपर उठती हैं और मुख-विवर आधा संकरा हो जाता है। उन्हें अर्ध संवृत्त स्वर कहते हैं।. ओ. अर्धसंवृत्त स्वर हैं ।

iv) संवृत्त स्वर – जीभ मुख-विवर में इतनी ऊपर उठ जाती है कि तालु और ऊपर उठे जीभ की दूरी कम हो जाती है। यही स्थान स्वर रेखा का है। ऐसी स्थिति में उच्चारित स्वर संवृत्त कहलाते हैं । इ, ई, ऊ संवृत्त स्वर हैं ।

स्वरों के उच्चारण में औष्ठों स्थिती के आधार पर निम्न भेद बनते हैं -

क) वृत्ताकार - इ

ख) पूर्ण वृत्ताकार - ऊ

ग) अर्धवृत्ताकार - आ

घ) लंबवृत्ताकार - ए, इ

च) उदासिन - अ

* **उच्चारण समय**

स्वर के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। इस दृष्टि से स्वरों के कुल तीन भेद हैं -

क) ह्रस्व स्वर – इनके उच्चारण में एक मात्रा का समय व्यय होता है, जैसे अ, इ, उ ।

ख) दीर्घ स्वर – इनके उच्चारण में दो मात्रा का समय व्यय होता है। जैसे - आ, ई, ऊ, ऐ, ओ, औ, ऋ

ग) प्लुत स्वर – इनके उच्चारण में तीन मात्रा का समय लगता है।ओऽऽम्, में ओ इसी प्रकार का स्वर है। यह स्वर त्रैमात्रिक होता है। प्लुत स्वर के बाद अ ऽऽ लिखा जाता है।

* **कौए की स्थिति**

कौवा अथवा अलिजिह्वा की स्थिति के आधारपर स्वरों के दो भेद होते हैं ।

अ) निरनुनासिक स्वर – जिन स्वरों के उच्चारण के समय कौवा ऊपर उठकर नासिका विवर को बंद कर लेता है और नि:श्वास मुख से ही निकलता है तब निरनुनासिक स्वर (मौखिक) उत्पन्न होते हैं । अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ऐ, ओ, औ ।

ब) अनुनासिक स्वर – इनके उच्चारण में कौवा नासिक विवर और मुख–विवर दोनों की राह खुली रखता है जिससे कुछ हवा नाक से भी बाहर निकलती हैं । इस स्थिति में अनुनासिक स्वर उत्पन्न होते है – अँ, आँ, इँ, इँ, ऊँ, एँ, ऐँ आदि ।

* **जिह्वा के चल–अचल होने की स्थिति के आधार पर –**

अ) मूलस्वर – ऐसे स्वरों के उच्चारण में जिव्हा अचल रहती है – अ, आ, इ. ई, उ, ऊ

ब) संयुक्त स्वर – ऐसे स्वरों के उच्चारण में जीभ की स्थिति बदलती हैं, अर्थात्, जीभ चल रहती है – जैसे – ए – अ, इ, ऐ – अ, ई, ओ – अ, उ, औ – अ, ऊ

* **स्वर तंत्रियों की स्थितियों के आधार पर –**

घोष स्वर – ग, घ, ज, झ, ड, ढ आदि

इनके उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे के निकट आती हैं । वायु घर्षण से बाहर निकलती है। हिन्दी के सभी स्वर घोष हैं ।

अघोष स्वर – क, ख, च, छ, ट, ढ आदि

यह स्वर अवधी, ब्रज बोलियों में मिलते हैं ।

* **व्यंजनों का वर्गीकरण**

* **स्पर्श व्यंजन**

स्पर्श व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं जिनमें जिह्वा का मुख विवर के उपरी भाग में कही न कही स्पर्श होता है। इनके पाँच वर्ग हैं । क वर्ग (कंठ्य), च वर्ग (तालव्य), ट वर्ग (मूर्धन्य), त वर्ग (दंत्य), प वर्ग (ओष्ठ्य) ये स्पर्श ध्वनियाँ हैं ।

* **संघर्षी**

जिन व्यंजनों के उच्चारण में नि:श्वास बहुत अधिक संघर्ष के साथ नि:सृत होती हैं तथा जिनमें उष्म ध्वनि होती हैं, वे संघर्षी–व्यंजन हैं – जैसे स, श, ष, ह तथा विसर्ग (:) । फारसी की ख, ग, ज, फ ध्वनियाँ भी संघर्षी हैं । संघर्ष की प्रधानता के कारण ही इन ध्वनियों को संघर्षी कहते हैं ।

* **अनुनासिक**

मुख और नासिका दोनों से उच्चारित ध्वनि अनुनासिक कहलाती है। वर्णमाला में वर्गाक्षरों में अंतिम वर्ण (पंचम वर्ण) अनुनासिक हैं । जैसे ङ, ञ, ण, न, म आदि।

* **पार्श्विक**

जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिव्हानोंक ऊपर उठकर कठोर तालु है किसी भाग को स्पर्श कर के वायुप्रवाह को अवरुद्ध कर दे और नि:श्वास वायु दोनों पार्श्वो से होती हुई बाहर

निकलती है तब इन ध्वनियाँ को पार्श्विक कहते हैं। जैसे ल, ल्ह

*   **लुंठित या लोडित –**

जब मुखद्वार जिह्वा के अग्रभाग से दो तीन बार शीघ्र खुलता और बंद होता है उस समय उच्चारण होनेवाली ध्वनि लुंठित ध्वनि है। जैसे र ध्वनि लोडित है । ऱ्ह भी उसी प्रकार की ध्वनि है।

* **उत्क्षिप्त –**

ऐसे व्यंजनों के उच्चारण में जिहवा तालु के किसी भाग को झटके से स्पर्श करती है और अलग हो जाती हैं उन्हें उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं । ड, ढ ऐसी ध्वनियाँ हैं ।

*   **अर्ध स्वर –**

कुछ ऐसी ध्वनियाँ भी मिलती हैं जो व्यंजनों में गिनी जाती है । किंतु इनमें स्वर और व्यंजन दोनों के गुण विद्यमान रहने के कारण उन्हें न पूर्णतया स्वर कहा जा सकता है न व्यंजन । ऐसी ध्वनियों को अर्धस्वर कहा जाता है । ये स्वर और व्यंजन के बीच की स्थिति होती है। जैसे य, व अर्थात् ये व्यंजन कभी स्वर की तरह तथा कभी व्यंजन की तरह उच्चरित होते हैं ।

3.2.7 स्वनपरिवर्तन के कारण

स्वन परिवर्तन के अनेक कारण हैं जिनमें से प्रमुख कारण उस प्रकार हैं –

*   **प्रयत्नलाघव –**

स्वन परिवर्तन का सर्वाधिक प्रमुख कारण प्रयत्नलाघव है। जिसे मुख–सुख या मुखसौकर्य भी कहते है। कम से कम श्रम में अधिक से अधिक लाभ उठाना मनुष्य का स्वभाव है। यही स्वभाव भाषा के क्षेत्र में भी काम करता है। मनुष्य लघु प्रयत्न कर अधिकतम भावों को व्यक्त कर मुख को सुख देने का प्रयास करता है। जिन शब्दों के उच्चारण मुश्किल होते हे उन शब्दों के स्वन उच्चरित नहीं होते जैसे ... (सॉयकॉलॉजी पी का उच्चारण नहीं होता .. उच्चारण की सुविधा के लिए कुछ स्वन जोड दिये जाते हैं । जैसे स्कूल–इस्कूल, स्टेशन, इस्टेशन, स्नान–अस्नान आदि । प्रयत्न लाघव के कारण ही शब्द के लघुरूप भी बनते हैं । जैसे, उपाध्याय से ओझा,

सूत्रात्मकता या संक्षिप्तता भी प्रयत्न लाघव का ही परिणाम है, जैसे भाजपा (भारतीय जनता पार्टी) बीबीसी (ब्रिटीश ब्रॉडकॉस्टिंग कारपोरेशन); उपाधियों के नाम बी. ए., बी. कॉम., बी. एस. सीं.एम. एस. सी. आदि; पदों के नाम – व्ही. सी., डी. एस. पी., पी. एम. आदि; व्यक्तियों के नाम –आर.के. राधाकृष्णन, राजेश – राजू आदि । आगम. लोप, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण आदि स्वन की दिशाएँ इसी कारण निर्माण होती हैं ।

*   **अनुकरण की अपूर्णता –**

भाषा अनुकरण के द्वारा सीखी जाती है। स्वरयंत्र की विभिन्नता के कारण अनुकरण पूर्णता नहीं हो पाता है। एक ही स्वन का उच्चारण दो या दोन से अधिक व्यक्ति एक जैसा नहीं कर पाते । परंतु उनका अंतर इतना सूक्ष्म होता है कि वह आसानी से समझ में नहीं

आता । यह सूक्ष्म अंतर कालांतर में ज्यादा प्रभावशाली बनकर भाषा में परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं । अपूर्ण उच्चारण कई बार अज्ञान के कारण भी होता है। निश्चित या सही ज्ञान के अभाव में अनेक शब्द अशुद्ध उच्चरित हो जाते हैं, जिसे स्वन में परिवर्तन होता है। जैसे ब्रिज, बिरज, मंत्र-मंतर, कॉफी-काफी, टाईल-स्टाईल

अनुकरण की अपूर्णता वाग्यंत्र की भिन्नता के कारण भी होती है। विदेशी स्वनों के उच्चारण में प्राय: विकार आ जाता है।

जैसे कलेक्टर - कट्टर, बंदोपाध्याय - बैनर्जी यह अपूर्ण अनुकरण से आए हुए परिवर्तन है।

✻ **बलाघात -**

किसी शब्द को बोलते समय जिन स्वनों का उच्चारण बलपूर्वक किया जाता है वे सबल होकर रह जाती है परंतु इनके समीप के स्वन निर्बल होकर परिवर्तित या लुप्त हो जाते है। जैसे अभ्यंतर-भीतर, बिल्ब-बेल आदि ।

✻ **भावावेश -**

प्रेम, घृणा, आश्चर्य, क्रोध आदि भावों के समय व्यक्ति स्वनों का विशिष्ट उच्चारण करता है जैसे - राम-रामू, बेटी-बेटियाँ, राम-रामूडा

✻ **अज्ञान-अशिक्षा**

वक्ता की असावधानी, अज्ञान, अशिक्षा के कारण भी शब्दों के स्वन परिवर्तित हो जाते है। इससे वर्णविपर्यय या विषयीकरण समीकरण हो जाता हैं जैसे पुलिस-पुलस, डूबना-बूडना, लैंटर्न-लालटेन, रिपोर्ट-रपट, इंतकाल-अंतकाल आदि हो जाता है।

✻ **शीघ्र उच्चारण -**

कुछ लोक अतिशीध्रता से बोलते है जिससे अनेक शब्दों के रूप परिवर्तित हो जाते है। अक्षर विपर्यय संबंधी स्वन परिवर्तन का कारण यही खरा उच्चारण हैं, इससे स्थानीक परिवर्तन हो जाता है। शीघ्रता से बोलने के कारण शब्द एक-दूसरे में मिल जाते हैं । कितनी ही संधियाँ हो जाती हैं परंतु लिखित भाषा में इसका पता नहीं चलता । जैसे मास्टर - साहब -मास्साब, द्विवेदी - दूबे, जब ही - जभी, दूध दो - दुदधो आदि

✻ **प्रतिध्वनि प्रवृत्ति -**

कुछ लोग जब बोलते है तो उनकी बोलचाल में कुछ प्रतिध्वन्यात्मक शब्द अनायास आ जाते है जैसे नाश्ता - वाश्ता, रोटी-वोटी

✻ **लिपि की अपूर्णता -**

लिपि की अपूर्णता के कारण भी शब्द का सही उच्चारण असंभव हो जाता है और स्वन परिवर्तन घटित हो जाता है। रोमन लिपि के कारण हिन्दी के शब्द ऐसे हो गए - अशोक - अशोका, गुप्त-गुप्ता, याज्ञिक-यामिक आदि परिवर्तन घटित हुए हैं।

✻ **श्रुति -**

स्वन विकार का दूसरा मुख्य कारण है श्रुति । एक स्वन के उच्चारण के बाद दूसरे

स्वन का उच्चारण करने में जो अंतर आता है, उसे भाषाविज्ञान में श्रुतिक कहते है। यह परिवर्तन संयुक्त व्यंजनों में अधिक दिखाई देता है। इन्द्र - इन्दर, चंद - चन्दर ।

✻ **श्रुति के दो भेद हैं .**

✻ पूर्वश्रुति - इसे आदि स्वरागम भी कहते हैं - स्टूल-इस्टूल

✻ परश्रुति - अंत में आगम होता है। कर्म - करम, धर्म - धरम

✻ **उपमान -**

उपमान का अर्थ है समानता। शब्द के प्रचलित स्वनों के समान इससे मिलते - जुलते अन्य स्वनों का उच्चारण जब शब्द में होने लगता है तब स्वन परिवर्तन का उपमान कारण घटित होता है। जैसे - पैंतीस - के सादृश्यता पर सैतीस में अनुनासिकता आकर 'सैंतीस' शब्द बना । स्वर्ग के सादृश्यता पर नरक का नर्क हो गया । देहाती की सादृश्यता पर शहराती शब्द गढा गया है।

✻ **भौगोलिक कारण -**

स्वन उच्चारण पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पडता है। ऐसा माना जाता है कि जल, वायु , भूमि और भोजन मनुष्य के उच्चारण अवयव पर प्रभाव डालते है। शीतप्रधान वातावरण के व्यक्ति बोलते समय मुख कम खोलते है। इसलिए उनका दंत स्वनों का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता । त, ट में परिवर्तन हो जाता है अंग्रेजी में त नहीं है।

मानव वागेंद्रियों से स्वनों का उच्चारण करता है। उसकी रचना पर भौगोलिक वातावरण का प्रभाव पडता है। भूमि की उर्वरता और उससे उत्पन्न जीवन-यापन, खान-पान की सुविधा-असुविधा का परिणाम मनुष्य के शरीर पर होकर भाषा को प्रभावित करता है। यदि कोई देश मैदानी है, यातायात की सुविधा है तो संपर्क अधिक गहन होता है और उच्चारण में एकरूपता बनी रहती है। जबकी पहाडी घने जंगल में या बडी नदी के दूसरे किनारे पर रहने वाले लोगों का संपर्क कम होने के कारण स्थानीय और व्यक्तिगत प्रवृत्तियाँ उभरकर स्वन विकास द्वारा बोली भेद को जन्म देती है।

स्वनविकास अनेक रूपों में होता हैं - अघोषीकरण, सघोषीकरण, अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण । जैसे - सिंध - हिंद, सप्त - हप्त, स-का श आदि परिवर्तन भौगोलिक हैं। भौगोलिक प्रभाव के कारण शब्दों के अर्थो में भी परिवर्तन होता हैं । जैसे उष्ट्र का मूल अर्थ भैंसा था। रेगिस्तान में एक नये पशु को देखा तो उसे उष्ट्र जिसका अर्थ ऊँट हो गया।

✻ **राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ -**

राजनीतिक और सामाजिक स्थितियाँ स्वन विकार में सहायता पहुँचाती है। सुख-शांति संपन्न समाज में भाषा का उच्चारण व्यवस्थित, शुद्ध रूप में होता है जबकि अशांति, दरिद्रता में स्वन परिवर्तन तेजी से होता है । लोग शीघ्रता से बोलते है। फलत: निर्बल ध्वनियाँ लुप्त हो जाती है। फुसफुस स्वन अधिक मात्रा में उच्चरित होती हैं ।

सामाजिक उन्नति और अवनति भी भाषा पर विशेष प्रभाव डालतीहै। पढे-लिखें, और अनपढ शहराती देहाती के शब्दों में अंतर आता हे, जैसे गाय-गैय्या, कृष्ण-किसन आदि ।

राजनीतिक और सामाजिक कारणों से लोग अन्य भाषा का प्रयोग करने लगते है। तो उसकी स्वन व्यवस्था यहाँ की भाषा को प्रभावित करती है। मुसलमानों के आगमन के कारण अरबी, फारसी, तुर्की भाषाएँ भारत की राजभाषाएँ बनी और हिन्दी में नुक्तावाली स्वन का आगमन हुआ । तत्पश्चात् अंग्रेजी राजभाषा बनी। अंग्रेजी के आगमन से ऑ स्वन का हिन्दी में आगमन हुआ ।

✻ ऐतिहासिक (कालपरिवर्तन) –

इतिहास अर्थात् काल क्रमिक विकास स्वन परिवर्तन में योगदान देता है। किसी भी भाषा का उपलब्ध क्रमिक रूप देखने पर स्वन विकारों का पता चल जाता है। वैदिक स्वन संस्कृत, पालि, प्राकृत में अपभ्रंश से गुजरते हुए वर्तमान भाषा में आ गए है। द्रविडों के संपर्क के कारण संस्कृत में मूर्धन्य स्वन आए । जैसे अग्नि – अग्गि – आग, कर्म – कम्म – काम आदि परिवर्तन ऐतिहासिक हैं । विदेशी भाषाओं के कारण यहाँ की भाषाओं की शब्दावली, उच्चारण तथा वर्ण योजना में भी अंतर हुआ जैसे मुंबई–बम्बई–बॉम्बे, कालीकता– कैलकटा– कलकत्ता– कोलकत्ता आदि उदाहरण कालपरिवर्तन के है।

✻ सांस्कृतिक भिन्नता

वक्ताओं की सांस्कृतिक भिन्नता भी स्वन परिवर्तन का एक कारण है। शिक्षा, धर्म, संस्कारों की भिन्नता से ध्वनिप्रयोग में स्पष्टता दिखाई देती है। जैसे – भाषा का विधिवत् अध्ययन करने वाले तथा अशिक्षित व्यक्ति के उच्चारण में अंतर होता है। इसके पीछे उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती हैं । मुस्लिमों के सांस्कृतिक परिवेश से जुडे शब्द हैं नमाज, मजार, तसबीर, मन्नत, औलिया आदि, तो क्रिश्चनों के कारण चर्च, गिरिजाघर, मसीहा, फादर, सिस्टर, गॉड अपने विशिष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश को लेकर उपस्थित होते हैं।

सामाजिक व्यवहार जैसे – नमस्ते, प्रणाम, जयश्रीकृष्ण, थँक यू, सॉरी, प्लीज आदि शिष्टाचार संस्कृतियों के कारण भारतीय समाज में विकसित हुए हैं ।

इसतरह भाषा का विकास परिवर्तन के माध्यम से होता है।

✻ स्वन परिवर्तन की दिशाएँ –

(1) आगम

शब्द के आदि मध्य या अन्त में किसी नए स्वन (स्वर, व्यंजन, अक्षर) का आना ही 'आगम' कहलाता है। इसके विभिन्न रूप दिखाई देते हैं ।

✻ स्वरागम –

जब कोई स्वर–स्वन किसी शब्द के पूर्व, मध्य अथवा अंत में जुड जाता हैं तो स्वरागम कहलाता है।

✻ आदि स्वरागम

प्रारंभ में स्वर का आगमन । जैसे स्तुति – अस्तुति, स्त्री – इस्त्री

✻ मध्य स्वरागम

जहाँ शब्द के मध्य में स्वर का आगमन होता है – जैसे – मर्म–मरम, कर्म–करम ।

✻ **अंत स्वरागम**

शब्द के अंत में स्वर का आगमन होता है – जैसे – दवा – दवाई ।

✻ **व्यंजनागम**

आदि व्यंजनागम – शब्द के आरंभ में व्याजन आता है – अस्थि – हड्डी, और-हौर ।

मध्य व्यंजनागम – शब्द के मध्य में व्यजन आता है – वानर – बंदर, शाप – श्राप ।

✻ **अंत्य व्यंजनागमन –** शब्द के अंत में व्यंजन का आगमन होता हैं – भौं. – भौंह, रंग – रंगत

✻ **अक्षरागम –** अक्षर से आशय हैं स्वरयुक्त व्यंजन – उसके भी तीन प्रकार हैं –

✻ **आदि अक्षरागम –** स्फोट – विस्फोट

✻ **मध्य अक्षरागम –** खल – खरल

✻ **अंत्य अक्षरागम –** डफ – डफली

(2) **लोप :–**

आगम के विलोम की दिशा हैं लोप की, जिस प्रकार शब्दों में कुछ स्वनों का आगमन होता हैं उसी प्रकार कुछ स्वनों का लोप भी होता हैं । उच्चरित भाषा में लोप की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती हैं । प्रयत्न लाघव तथा बालघात के कारण लोप होता है। लोप के प्रकार भी आगम की तरह हैं

✻ **स्वर लोप –** स्वन का लोप होना स्वर लोप कहलाता है – आदि, मध्य, अंत्य यह स्वरलोप के प्रकार हैं –

✻ **आदिस्वर लोप –** अनाज – नाज, अगर – गर

✻ **मध्यस्वरलोप –** गरदन – गर्दन, डेपुटी – डिप्टी

✻ **अंतय स्वर लोप –** रीति – रित, पद्धति – पद्धत

✻ **व्यंजनलोप**

जब किसी शब्द के प्रारंभ में मध्य में व अंत्य में किसी व्यंजन का लोप हो जाता है तब, व्यंजनलोप होता है–

✻ आदि व्यंजनलोप – श्मशान – मशान, स्फूर्ति – फूर्ति

✻ मध्य व्यंजनलोप – प्रिय – पिय, कर्म – काम

✻ अंत्य व्यंजनलोप – सत्त्व – सत, आम्र – आम

✻ **अक्षरलोप :–**

स्वरयुक्त व्यंजन का लोप अक्षरलोप है । उसके निम्न प्रकार हैं –

✻ आदि अक्षर लोप – त्रिशूल – शूल, नेकटाय – टाय

✻ मध्य अक्षर लोप – फलाहार – फलार, गेहूँचना – गोचना

✻ अंत्य अक्षर लोप – नीलमणि – नीलम, द्विशाखिका – बैसाखी

✻ समअक्षर लोप – जब किसी शब्द में एक ही अक्षर दो बार आता हैं तो एक का लोप हो जाता है, उसे समअक्षर लोप कहा जाता है। जैसे – नाककटा – नकटा, कृष्णनगर – कृष्णगर, नंददुलारे – नंदुलारे

(3) विपर्यय –

शीघ्रता से बोलने के कारण कई बार शब्द के दो स्वन उलट–पुलट हो जाते हैं । उसे विपर्यय कहा जाता है ।

✻ **स्वरविपर्यय –** जब किसी शब्द में कोई स्वर आगे से पीछे या पीछे से आगे चला जाता है तो स्वर विपर्यय होता है, जैसे कुछ – कछु, पागल – पगला,

✻ **व्यंजनविपर्यय –** डूबना – बूडना, जलेबी – जबेली

✻ अक्षर विपर्यय – कोलतार – तारकोल, मतलब – मतबल

(4) समीकरण –

शब्द के जब एक स्वन, दूसरे स्वन को अपने समान बना लेता है तो उसे समीकरण कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं –

i) **पुरोगामी समीकरण –**

जब पहलेवाला स्वर व्यंजन बाद वाले को प्रभावित कर अपने समान बना लेता हैं तब पुरोगामी समीकरण होता है।

स्वरसमीकरण – जुल्म – जुलूम, सूरज – सुरूज ।

व्यंजन समीकरण – पत्र – पत्ता, चक्र – चक्का ।

ii) **पश्चगामी समीकरण –**

जहाँ बादवाला स्वन अपने पूर्ववाले स्वन को अपने समान बना लेता हैं तब पश्चगामी समीकरण होता है।

पश्चमागी स्वरसमीकरण – अंगुली – ऊँगली, इक्षू – उख

पश्चमागी व्यंजनसमीकरण – शर्करा – शक्कर, दण्ड – डण्डा

(5) विषमीकरण

समीकरण के विपरीत यह स्थिति है , इसलिए उसे असावर्ण्य भी कहते है । विषमीकरण में दो समान स्वन असमान हो जाते हैं । विषमीकरण के दो भेद हैं –

i) **पुरोगामी विषमीकरण**

जब दो समान स्वनों में पहलेवाला अक्षुण्ण रहे और दूसरा बदल जाए तो पुरोगामी विषमीकरण होता है । उसके भी स्वर और व्यंजन ऐसे दो भेद हैं –

✻ स्वर विषमीकरण – भित्त – भीत, पुरुष – पुरिस ।

✻ व्यंजन विषमीकरण – काक – काग, कंकण – कंगन।

ii) **पश्चगामी विषमीकरण –**

यदि बाद वाला अक्षुण्ण रहे और पहले वाला बदल जाए तो बाद वाले स्वन से

असमानता के कारण पश्चगामी विषमीकरण होता है । इसके भी स्वर और व्यंजन ऐसे दोन भेद हैं –

* **पश्चगामी स्वर विषयीकरण –** नुपूर – नेऊर, मुकूट – मौर
* **पश्चगामी –** व्यंजन विषयीकरण – नवनीत – लवनी, दरिद्र – दलिद्दर
* **मात्राभेद** – मात्राभेद से तात्पर्य है जब किसी शब्द में ऱ्हस्व से दीर्घ या दीर्घ से ऱ्हस्व मात्रा हो जाती है, तब मात्राभेद दिशा कहलाती है।
* **ऱ्हस्व से दीर्घ होना –** अद्य – आज, दुग्ध – दूध ।
* **दीर्घ से ऱ्हस्व हो जाना –** आषाढ – असाढ, आश्चर्य – अचरज
* **घोषत्व**

स्वनों में दोन प्रकार हैं घोष–अघोष । व्यंजन–अघोष–सघोष दोनों होते हैं, स्वर केवल घोष होते हैं। व्यंजनों में प्रत्येक वर्ग का पहला–दूसरा वर्ण अघोष होता हैं, तो तीसरा, चौथा, पाँचवा वर्ण घोष हैं ।

* **घोषीकरण –** शाक – साग, भक्त – भगत ।
* **अघोषीकरण –** मेघ – मेख, मदद – मदत ।
* **प्राणत्व –**

स्वन के उच्चारण में लगनेवाली हवा को प्राणत्व कहते हैं । जब यह प्राण अल्प लगता है तो अल्प प्राणिकरण होता है जिसे अंग्रजी में Despiration कहते हैं । प्रत्येक वर्ग का पहला, तीसरा, पाँचवा स्वर अल्पप्राण है ।

जैसे – भीख – भीक, भगिनी – बहिन ।

महाप्राणीकरण – महाप्राण स्वन दूसरा और चौथा है। पहला, तीसरा, पाँचवा स्वर यदि दूसरे, चौथे में परिवर्तित हो जाए तो महाप्राणीकरण होता है। जैसे – गृह – घर, हस्त – हाथ

* **उष्मीकरण –**

स्पर्श स्वन अर्थात् क, च, ट, त वर्ग के स्वन स, श, ष में परिवर्तित हो जाए तो उष्मीकरण की प्रवृति कहलाती है । इसी आधार पर भाषा परिवार का शतम् और केत्तुम्, परिवार बना है। केत्तुम वर्ग की स्वन शतम् वर्ग में परिवर्तित हो जाती हैं । जैसे – लैटिन कैन्टुम संस्कृत में शतम् हो जाता है। ग्रीक डेका संस्कृत में दश हो जाता है।

* **अनुनासिकीकरण –**

निरनुनासिक स्वन जहाँ कालांतर में अनुनासिक हो जाती हैं वहाँ अनुनासिकीकरण होता है। जैसे – सत्य – साँच, वक्र – बाँक

* **संधिकरण –**

जब शब्दों के मध्यवर्ती व्यंजन पहले स्वर में परिवर्तित होकर अपने समीपवर्ती स्वरों के साथ संधि कर लेता है तब यह संधिकरण की दिशा होती है। जैसे – शत – सऊ – सौ, आत्म – आप

(12) **भ्रामक व्युत्पत्ति –**

जब विदेशी अथवा अपरिचित शब्दों का उच्चारण स्वेछा से होने लगता है तब शब्द में विचित्र विकार घटित होते हैं । उसे भ्रामक व्युत्पत्ति कहते हैं । जैसे – इन्तकाल – अंतकाल, लॉर्ड – लाट

इस तरह स्वन विकास की दिशाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं ।

3.2.8 स्वनिम निर्धारण और भेद

भाषावैज्ञानिकों का मत हैं कि मनुष्य किसी भी स्वन का उच्चारण जीवन में एक ही बार कर सकता है। कारण एक स्वन को मनुष्य जितनी भी बार बोलेगा प्रत्येक बार बाद वाला स्वन पहले वाले स्वन से स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से अलग हो जाता है। जिससे उच्चारण भेद होता है ।

उच्चारण भेद का कारण स्वन की परिवेशगत भिन्नता हैं अर्थात कोई स्वन शब्द के प्रारंभ में, मध्य में, या अंत में है के निकट के स्वन कौनसे है? यही स्वन का परिवेश है।

बालू – जल्दी से बाल्टी खरीदने बाजार गया, कल ही गुम गयी थी।

बालू – ल – उच्चारण वर्त्स्य पार्श्विक, मूल रूप में उच्चारण ।

जल्दी – ल – द – स्वन के प्रभाव से दंत्य हो गया है।

बाल्टी – ल – ट ध्वनि के कारण मूर्धन्य हो गया है।

कल ही – ल – ह के प्रभाव से महाप्राण हो गया हैं जबकि वह अल्पप्रण है।

उपरोक्त उदाहरण के विवेचन से हमें ल के विविध रूप दिखाई देते हैं जो उच्चारित रूप हैं । इन उच्चरित रूपों को संस्वन (अलोफोन) कहते हैं। लेकिन इससे अर्थ भेद नहीं होता । ये सभी संस्वन मिल कर एक परिवार बनाते हैं । जो स्वनिम का परिवार होता है।

अब स्वनिम के बारे में हम विचार करेंगे,

स्वनिम किसी भाषा–विशेष की वह लघुत्तम इकाई है जो अर्थभेद करती है। इन्हीं स्वनिमों के कारण भाषा की वर्णमाला और लिपि चिह्न निर्माण किये जाते हैं ।

स्वनिम की परिभाषा –

डेनियल जोन्स – A Phoneme is a family of sounds in a given language which are related in Character and are used in such away what no one member ever occure in a word in the some phonetic context as any other member.

अर्थात् स्वनिम किसी भाषा का ऐसे स्वनों का एक परिवार होता है, जो अपने स्वभाव में परस्पर संबंद्ध होती है और जिनका प्रयोग उस प्रकार होता है कि जिस स्वनात्मक संदर्भ में एक सदस्य आता है, वहाँ दूसरे सदस्य का प्रयोग नहीं हो सकता ।

डॉ. बाबूराम सक्सेना – ''स्वनिम ऐसी मिलती–जुलती ध्वनियों (स्वनों) के समूह को कहते हैं जो एक–दूसरे से शब्दार्थ भेदकारी वैषम्य प्रदर्शित न करें।''

स्वनिम अर्थभेदक होते हैं । जब कि सस्वन अर्थ भेद उत्पन्न नहीं करते स्वनिमों की

अर्थभेदकता स्वनिमविज्ञानी पाईक के मत से इस प्रकार ढूँढी जाती हैं । स्वनशास्त्री के लिए वक्ता द्वारा उत्पादित सभी स्वन महत्त्वपूर्ण होते हैं । लेकिन स्वनिमविज्ञानी के लिए अर्थभेदकारी महत्वपूर्ण होते है। वह मनुष्य द्वारा उच्चरित प्रत्येक प्रतीकों को संग्रहित कर अर्थभेदक स्वनिमों का चयन कर भाषा का गठन करता हैं ।

प्रत्येक भाषा की अपनी विशेष स्वनिम व्यवस्था होती है। जैसे – हिन्दीभाषी 'पास' शब्द कहेगा तो बंगलाभाषी उसे 'पाश' कहेगा लेकिन हिन्दी में पास और पाश शब्द के अर्थ अलग–अलग हैं ।

स्वनिम निर्धारण का संबंध चार प्रकार से बताया जा सकता है –

(क) वक्ता जो बोलता है श्रोता उसे यथावत् अर्थ में ग्रहण करता है । तो (ख) वक्ता के उच्चारण में दोष है । इसलिए उसका सदोष उच्चारण श्रोता अभिप्रेत अर्थ को समझ लेता है। (ग) यदि वक्ता भिन्न ध्वनि का प्रयोग करता है तो श्रोताको अर्थबोध नहीं होता । (ख) वक्ता के भिन्न स्वन प्रयोग से श्रोता गलत अर्थ ग्रहण करता है। जैसे – पल – फल । इसलिए स्वनिम श्रवण पर अधिक निर्भर करता है।

* **स्वनिम के भेद –**

स्वनिम के भेद निम्ननुसार बनाएँ जा सकते हैं –

* **खण्ड स्वनिम**

खण्ड स्वनिम का विश्लेषण स्वतंत्र इकाई के रूप में किया जाता है। इनके उच्चारण में मात्रा, स्वर आदि गुणों की आवश्यकता नहीं है। ये स्वतंत्र होती है। किसी भाषा के स्वर और व्यंजन स्वन खण्ड स्वनिम कहलाते हैं । हिन्दी में स्वर–स्वनिम दस हैं और व्यंजन स्वनिम 35 हैं । खण्ड स्वनिम व्यक्त होते हैं (अ, इ, ई, ऊ) आदि स्वर क, ख, ग, घ आदि व्यंजन उसी वर्ग में आते हैं ।

* **खण्डेतर स्वनिम**

बिना इनके खण्ड स्वनिम का उच्चारण असंभव है। यह खण्ड स्वनिम सहायक रूप में ही प्रयुक्त हो सकते हैं। स्वतंत्र रूप में नहीं । यह सब भाषाओं में एक से नहीं होते हैं। खण्ड की अपेक्षा में अव्यक्त हैं । स्वर, आघात, विवृत, मात्रा, अनुनासिकता आदि के कारण भाषा में अर्थ भेद उत्पन्न होता है, अत: इन्हें खण्डेतर स्वनिम कहते हैं । अर्थात् जिन स्वनिमों को स्वर और व्यंजनों में अलग किया सकता हैं, ये खण्डेतर स्वनिम हैं । मात्रा, बालाघात, स्वराघात, अनुनासिकता, संगम (विवृत्त) आदि के कारण होने वाले अर्थ भेद

अर्थात् खंडेकर स्वनिम होते हैं जैसे –

(1) मात्रा :– कल – काल – बहु–बहू

(2) बलाघात :– किसी का उच्चारण हल्का और बलाघात शून्य होता है किसी का बलाघात युक्त ।

(3) स्वराघात :– स्वर परिवर्तन से अर्थ बदल जाता है, परंतु हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में स्वराघात का स्वनिमिक का महत्व नहीं है।

(4) अनुनासिकता :- हिन्दी में प्राय: सभी स्वरों के अनुनासिक प्रयोग मिलते हैं । इससे अर्थभेद होता हैं । जैसा - साँस - सास ।

(5) विवृत्त या संगम :- वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों के बीच, अर्थ की स्पष्टता के लिए दिये गये क्षणिक विराम को संगम कहते हैं । जैसे तुम्हारे-तुम हारे ।

विशिष्ट शब्दों के बोलने के लहजे से भी अर्थभेद होता है।

*** ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन -**

ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन का अर्थ है वह प्रतिलखन जो उच्चारण के अनुरूप हो । हम जो बोलते है वही लिखते भी है। बोलने और लिखने में सभी लिपियों में भिन्नता हैं जैसे अंग्रजी में Put ऐसा उच्चारण होता है। लेकिन Sun में यु का उच्चारण नहीं होता है। लिखा Talk और उच्चारण भिन्न होता है। हिन्दी में भी ऋषि, ऋण का उच्चारण रिशी, रिण, नागपुर का उच्चारण नाग्पुर होता है । परंपरागत प्रतिलेखन के उदाहरण हैं । ध्वन्यातमक प्रतिलेखन का दूसरा भेद है जिसमें जो लिखते है वही बोलते है। सामान्य लेखन में इसका ध्यान रखा जाता है। अत: लिपि के ध्वनिचिन्ह भाषा में जितने ध्वनिग्राम हैं उतने होना आवश्यक हैं ।

इस कमी को दूर करने के लिए उच्चारणपरक प्रतिलेखन का आविष्कार किया गया । यह प्रतिलेखन किसी भाषा का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करना होता हैं, तब प्रतिलेखन को आधार बनाया जाता है।

प्रतिलेखन के समय लिपि चिन्हों के साथ साथ उपचिन्हों को भी जोडा जाता है। यह उपचिन्ह दर्शाने वाले उदाहरण हैं - संवृत्त, विवृत्त, अघोष, बलाघात आदि ।

अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपिचिन्ह अर्थात् अल्फाबेट का निर्माण किया गया हैं । इन लिपिचिन्हों के कारण विश्व की है। येस्परसन की इच्छा के अनुसार परिषद के सदस्यों ने 1888 में इन लिपिचिन्हों का पहला प्रारूप बनया था । डेनियल जोन्स का विशेष योगदान इसमें है।

ध्वन्यात्मक नागरी लिपि के स्वर

	ओष्ठय	**तालव्य अग्र**	**तालव्य मध्य**	**तालव्य पश्च**
संवृत्त	ई ऊ	ई ई	-	ऊ ऊँ
अर्थसंवृत्त	ए ओ	ए ए	-	ओ ओ
अर्थविवृत्त	एँ ओं	एँ एॅ	एँ	ओ ओं
विवृत्त	आ आँ	ए	अऽ	आ

ध्वन्यात्मक नागरी लिपि के व्यंजन

	कंठ्य	**तालाव्य**	**मूर्ध्दन्य**	**दंत्य**	**ओष्ठ्य**
अल्प प्राण - अघोष	क्	क्	ट्	त्	प्
	ग्	ग्	ड्	द्	ब्
महाप्राण अघोष	ख्	श्	स्	ख्	ख्
सघोष-	-	ध्	ज्	-	घ्
पाश्विक	-	ल्	ल्	-	-

3.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* भाषा-ध्वनि उच्चारण में वाग्-अवयवों का योगदान स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

* स्वन परिवर्तन के कारण सोदाहरण समझाइए ।

....

....

....

* ध्वनि-वर्गीकरण के आधारों का विवेचन कीजिए ।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ

* स्वर और व्यंजन में अंतर

....

....

....

* स्वनिम निर्धारण

....

....

....

* स्वन परिवर्तन - आगम

....

....

....

* खंडेतर स्वनिम

....

....

....

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* व्यंजन की विशेषता लिखिए ।

....

....

....

* अल्पप्राण स्वन किसे कहते है ?

....

....

....

* जिह्वा की उँचाई के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण बताइए।

....

....

....

* 'करण' से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

* उच्चारण अवयवों के नाम लिखिए ।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए -

* अनुनासिक वर्ण के उच्चारण का स्थान कौनसा?
  अ) नासिका विवर   ब) मुख-विवर   क) गल बिल   ड) कंठ
* य र ल व क्या है?
  अ) व्यंजन   ब) अर्धस्वर   क) स्वर   ड) पश्चस्वर
* भाजपा, बी. ए आदि में स्वन परिवर्तन का कौनसा कारण है?
  अ) शीघ्र उच्चारण   ब) प्रयत्नलाघव   क) बालाघात   ड) लोप
* मतबल, नखलऊ शब्दों में स्वन परिवर्तन की कौनसी दिशा है?
  अ) विपर्यय   ब) विषमीकरण   क) आगम   ड) समीकरण

3.4 सारांश

भाषा का मूलार्थ स्वन उत्पादन करना अर्थात् बोलना है। भाषाविज्ञान में उसे स्वन कहा जाता है। स्वन उत्पादन जिन अवयवों से होता हैं उन्हें वाग् अवयव कहते है। भाषा का प्रयोग करना ही ध्वनियों का उच्चारण कर स्वननिर्माण करना है। इसलिए सही उच्चारण और सही सुनना ही अर्थप्रेषण है ।

स्वन भाषा की लघुतम इकाई है। जिस विज्ञान में स्वन का विशेष अध्ययन होता हैं इसे स्वनविज्ञान कहते हैं । अंग्रेजी में इसे Phonetics कहा जाता है। संस्कृत में उसके लिए शिक्षा शब्द का प्रयोग किया जाता है।

भाषाई उच्चारण के तीन आयाम हैं - उत्पादन, संवहन तथा श्रौतिकी.

वक्ता के द्वारा भाषा का उच्चारण करना, श्रोता द्वारा उसे हवाई स्वन तरंगों को अपने कानों द्वारा ग्रहण करने से कर्णपटल पर कंपन उत्पन्न होने से सुनाई देता है।

शरीर के जिन अवयवों से स्वन का उत्पादन होता है उन्हें उच्चारण अवयव, ध्वनियंत्र, स्वनयंत्र, वागयंत्र तथा वाग् अवयव कहा जाता है। उसमें फेंफडे, श्वास नली, भोजन नली, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री, स्वरयंत्र मुख, स्वरयंत्रावरण, कण्ठपीटीका, कण्ठमार्ग, कण्ठ, अलिजिह्वा, नासिका विवर, मुख-विवर जीभ, ओंठ का समावेश होता है।

मनुष्य के कण्ठ और मुख विवर से विभिन्न स्वनों का उच्चारण होता है। भाषा सीखने के लिए उसका सही उच्चारण कैसे, कहाँ से, किसलिए किया जाए उसे ध्यान में रखकर ही वर्गीकरण प्रस्तुत हुआ है।

स्वनवर्गीकरण के स्थान, करण, प्रयत्न और श्रवणीयता ये चार आधार माने गये है -

स्वन उत्पादन के स्थान के आधार पर काकल्य, जिहवामूलीय, कण्ठय. तालव्य, मूर्द्धन्य, दंत्य, ओष्ठय इस तरह वर्गीकरण किया जाता है।

प्रयत्न के भीतरी प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न दो भेद हैं ।

भीतरी प्रयत्न में पूर्णत: अवरोधी, निर्अवरोधी स्वन निर्माण होते हैं । बाहरी प्रयत्न में विवार संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये ग्यारह भेद हैं ।

गतिशील इंद्रियों को करण कहा जाता है। इसके आधार पर अधर, जिह्वा, कोमलतालु और स्वरतंत्री भेद हैं ।

श्रवणीयता के आधार पर स्वर, व्यंजन तथा अंतस्थ भेद हैं ।

स्वन के दो प्रमुख भेद हैं - स्वर और व्यंजन

स्वन वर्गीकरण के अनेक आधार हैं जैसे - जिह्वा के विभाग, जिह्वा की उँचाई, ओंठो की स्थिति, उच्चारण समय, जिह्वा के चल-अचल होने की स्थिति, स्वरतंत्रयों की स्थिति आदि ।

व्यंजनों का वर्गीकरण - स्पर्श व्यंजन, संघर्षी, अनुनासिक, पार्श्विक, लुंठित, उत्क्षिप्त, अर्धस्वर आदि में किया जाता हैं।

स्वन परिवर्तन के अनेक कारण हैं -

प्रयत्नलाघव, अनुकरण की अपूर्णता, बलाघात, भावावेश, अज्ञान, अशिक्षा, शीघ्र उच्चारण,

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भिन्नता आदि ।

स्वन परिवर्तन की आगम, लोप, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण, मात्रा भेद, घोषत्व, प्राणत्व, उष्मीकरण, अनुनासिकता, संधिकरण, भ्रामक व्युत्पत्ति यह दिशाएँ हैं । स्वनिम किसी भाषा-विशेष की वह लघुतम इकाई है जो अर्थभेद करती है। स्वनिम अर्थ भेदक होते हैं। प्रत्येक भाषा की अपनी विशेष स्वनिम व्यवस्था होती है। स्वनिम निर्धारण का संबंध चार प्रकार से बताया जाता है।

खण्ड स्वनिम तथा खण्डेतर स्वनिम ये स्वनिम के भेद हैं । किसी भाषा के स्वर और व्यंजन स्वन खण्ड स्वनिम कहलाती है। अत: खण्ड स्वनिम सहायक रूप में ही प्रयुक्त हो सकते हैं, स्वतंत्र रूप से नहीं । ये सब भाषाओं में एक से नहीं होते । मात्रा, बालाघात, स्वराघात, अनुनासिकता, संगम आदि के कारण होने वाले अर्थभेद अर्थात् खण्डेतर स्वनिम होते हैं ।

ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन का अर्थ है वह प्रतिलखन जो उच्चारण के अनुरूप हो । जो बोला जाता हैं वही लिखा जाता हैं बोलने और लिखने में सभी लिपियों में भिन्नता है। इसलिए उच्चारण परक प्रतिलेखन आविष्कार किया गया । लिपिचिन्ह और उपचिन्हों के जरिए विश्व की किसी भी भाषा का उच्चारण लिखा जाता है। जिसका संबंध आंतरराष्ट्रीय ध्वनिपरिषद् से है। 1888 में उस परिषद के सदस्यों ने इन लिपिचिह्नों का पहला प्रारूप बनाया है ।

3.5 शब्दार्थ, टिप्पणी

स्वन - ध्वनि

विवृत्त - खुला

संवृत्त - बंद

स्वनिम - ध्वनिग्राम, अर्थभेदकारी तत्त्व

* स्वंस्वन - संध्वनि अर्थभेद उत्पन्न न करने वाली परंतु मूल उच्चारण से भिन्न उच्चारण
* भौतिकी - श्रोतिकी कर्णगोचर - कानों द्वारा ग्राह्य जैसे रेडियों को हम केवल सुन सकते है

3.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों के उच्चारण पर ध्यान दीजिए ।
* उच्चारण के अवयवों की सूची तैयार कीजिए ।
* स्वन परिवर्तन के कारणों की चर्चा कीजिए ।
* स्वर-व्यंजन की तालिका प्रस्तुत कीजिए ।

3.7 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* भाषाविज्ञान प्रवेश - डॉ. भोलानाथ तिवारी
* भाषिकी हिंदी भाषा - डॉ. तेजपाल चौधरी

इकाई – 4
रूप एवं रूपिम विज्ञान

अनुक्रम

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 विषय विवरण
4.2.1 रूप (पद) की परिभाषा
4.2.2 संबंधत्व और उसके भेद, धातु, प्रातिपदिक, और पद
4.2.3 रूपिम का स्वरूप
4.2.4 रूपिम के भेद
4.2.5 रूप स्वनिम विज्ञान
4.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 शब्दार्थ, टिप्पणी
4.6 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य
4.7 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

* रूप की परिभाषा और स्वरूप को जान सकेंगे ।
* सबंधतत्व और भेदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
* रूप-संरूप-रूपिम के स्वरूप में साम्य-वैषम्य को समझ पाएंगे ।

4.1 प्रस्तावना

अर्थ सम्प्रेषण का सर्वोत्तम साधन भाषा है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई स्वन है। पर अर्थवत्ता की दृष्टि से शब्द है। क, च, ट, प, ल स्वन है परंतु इनका कोई अर्थ नहीं है। कल, हल, चल, पल आदि स्वन समूह अर्थ को प्रकट करते है अत: वे शब्दसमूह कहलाते हैं ।

शब्द अर्थतत्त्व हैं परंतु इनका ज्यों का त्यों वाक्य में प्रयोग नहीं हो सकता । वाक्य

भाषा की महत्तम इकाई है । कारण वाक्यों से भाषा बनती है जैसे मैं, पुस्तक, पढ यह तीन शब्द हैं पर तीनों एक साथ आने पर भी सही अर्थ नहीं दे पाते हैं । सही अर्थ के लिए – मैं पुस्तक पढूंगा – क्या मैं पुस्तक पढूँ? उस तरह वाक्य बनाना होगा । वाक्य के शब्दों में यह जो परिवर्तन होता है उसका जिस विज्ञान में अध्ययन किया जाता है उसे रूपविज्ञान कहते है।

कोश में दिये हुए शब्दों के अर्थ होते हैं पर जब वें वाक्य में प्रयुक्त होते हैं तो उसे शब्द के रूप बदलते है। जैसे पढ, धातु के रूप है –पढना, पढ़ता हैं, पढ रहा हैं, पढ रहा होगा, पढा, पढेगा, पढूँ, पढ कर, पढता, पढने को आदि अनेक शब्द बनते हैं जिन्हें रूप कहते हैं ।

शब्द (अर्थतत्त्व) + विभक्ति (संबंधतत्त्व) बन कर 'रूप' बनता हैं । रूप में अर्थ और संबंध दोनों तत्त्व होते हैं ।

रूपिम का निर्धारण रूप के अर्थवान् खण्डों को अलग कर किया जाता है उसलिए भोलानाथ तिवारी सही कहते है कि "भाषा या वाक्य की अर्थवन् लघुत्तम इकाई रूपिम है।"

रुपिम बनते समय स्वनिम परिवर्तन घटित होते हैं । जैसे घोडा और दौडना शब्द मिलकर रूपिम घुडदौड बना। घोडा का घुड बनना स्वनिमिक परिवर्तन है। इन सबका अध्ययन उस इकाई में हम करेंगे ।

4.2 विषय – विवरण

4.2.1 रूप (पद) की परिभाषा

वाक्य में प्रयुक्त किये जाने योग्य शब्द रूप पद कहलाते हैं। शब्द का वाक्य में प्रयोग तभी हो सकता है जब उसके साथ विभक्ति प्रत्यय का प्रयोग किया जाए ।

रूप को पद का पर्याय मान लिया है। अंग्रेजी में morph शब्द का प्रयोग उसके लिए किया जाता है।

जब हम अपनी अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करते है, तो भाषा, अनेक छोटे-बडे वाक्यों का समूह होती है उसलिए भाषा की इकाई वाक्य को माना गया है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द ही पद कहलाते है। वाक्य का विश्लेषण हम पदों में कर सकते है। रूप विज्ञान या पदविज्ञान के अंतर्गत रूप या पद का विचार किया जाता है।

पाणिनि के अनुसार – सुबन्त तथा तिडन्त को 'पद' कहते हैं । यही रूपों का समूह वाक्य कहलाता है।

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के मत से – उस शब्द को रूप कहते हैं जो विभक्ति, प्रत्यय या परसर्गो का संयोग ग्रहण कर तथा वाक्य में प्रयुक्त होकर अर्थबोध एवं भावबोध में समर्थ होता है।

ए डिक्शनरी ऑफ लिग्विंस्टीक में मारिओ पेई ने पद की परिभाषा इस प्रकार दी है – जब ध्वनियों के किसी समूह में व्याकरणिय प्रयोग के अनुसार अर्थ का बोध कराने की शक्ति होती है तब इस ध्वनि समूह को पद कहते है।

The word may be defined from the machanical standpoint as a

succession of speech sounds conventionally arranged, it may also be defined from the semantic end as the most elementory speech unit of meaning - Mario Pei

4.2.2 संबंध तत्व और उसके भेद

भिन्न-भिन्न भाषाओं में संबंधतत्व को दर्शानेवाली पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने वाक्य के दो तत्व बताएँ हैं - अर्थतत्त्व तथा संबंधतत्त्व ।

उदाहरणार्थ - छात्र ने अध्यापक से प्रश्न पूछा । उस वाक्य में छात्र, अध्यापक, प्रश्न, पूछना ये चार शब्द भावविशेष के बोधक हैं । इस प्रकार के भावविशेष बोधक तत्त्व को अर्थतत्त्व कहा जाता हैं, ने, से आदि चिह्न सम्बधबोधक तत्त्व या संबंधतत्त्व कहे जाते हैं।

जो मानसिक प्रतिमाओं के भावों की अभिव्यक्ति करते हैं उन्हें अर्थतत्त्व कहा जाता है। इस उदाहरण में छात्र, अध्यापक, प्रश्न, पूछना यह अर्थतत्त्व हैं । संबंधतत्व उन तत्वों को कहते हैं, जो उक्त प्रकार के व्यक्त भावों में परस्पर संबंध की अभिव्यक्ति करते हैं । जैसे ने, से, आ आदि । केवल अर्थतत्व पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ होते हैं । अत: संबंधतत्वों की आवश्यकता होती हैं । 'ने' लगाने से ज्ञात होता हैं कि छात्र कर्ता है, 'से' लगाने से ज्ञात होता है कि अध्यापक - कर्म है, पूछना, पूछा (आ) से ज्ञात होता है की भूतकाल की क्रिया है। वाक्य में कहीं भी प्रयुक्त होने पर अर्थतत्व वही रहता है किन्तु संबंधतत्व प्रयोग के अनुसार बदल सकता है। जैसे ''राम ने मोहन को डण्डे से पीटा।''

इस वाक्य में राम, मोहन, डण्डा तथा पीटना अर्थतत्व हैं । वाक्य में कही भी प्रयुक्त होने पर उनका अर्थ वही रहेगा । ने, को, से तथा आ यहाँ संबंधतत्व हैं जो अपने अपने अर्थतत्व का संबंध वाक्य के दूसरे पदों से बतला रहे हैं । ने बतला रहा हैं कि राम पीटने वाला है, को बतला रहा हैं कि मोहन पीटनेवाला है, से बतला रहा है कि पीटने का साधन डण्डा है (करण) तथा पीटा (पीटना-आ) में आ बतला रहा है कि पीटने की क्रिया भूतकाल में हुई थी ।

उसके विपरीत यदि संबंधतत्व को हटा कर केवल अर्थतत्व का प्रयोग किया जाएगा तो वाक्य कोई भी अर्थ स्पष्ट नहीं होगा । अत: अर्थतत्व के साथ संबंधतत्व को जोड कर ही पद बनाएँ जाते है तथा वाक्य में पदों का ही प्रयोग होता है।

अर्थात् मूल शब्द को संबंधतत्व के साथ जोडने पर वाक्य, वाक्य में प्रयोग किया जाने पर ही योग्य वाक्य बनता है। प्राय: सभी भाषाओं में संबंधतत्वों का प्रयोग होता है। भाषावैज्ञानिकों को संसार में बोली जाने वाली भाषाओं के आधारपर संबंधतत्वों के प्रकार इस प्रकार बताएँ हैं -

* **संबंधतत्वों के भेद -**
* **स्वतंत्र संबंधतत्व -**

कई भाषाओं में संबंधतत्व अर्थतत्व के साथ न जुड कर अपनी पृथक् सत्ता बनाएँ रख कर कार्य करते हैं । जैसे अंग्रेजी के to, on, upon, of, from आदि तो हिन्दी में वे, को, से , में पर, के लिए आदि स्वतंत्र संबंधतत्व हैं ।

* प्रत्यय - संबंधतत्व -

प्रत्यय संबंधतत्व अर्थतत्व के आदि, मध्य या अन्त में कहीं भी जुड सकते हैं । जैसे –

प्रारंभ में जुडने वाले प्रत्यय उपसर्ग कहलाते हैं – जैसे – प्रदेश, आहार, दुर्जन, सुशील, कुरूप आदि संस्कृत में बाईस उपसर्ग हैं । अंग्रेजी में भी इस प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं – Call-recall Office - Head Office आदि ।

अर्थतत्व के मध्य में जुडनवाले संबंधतत्त्व को मध्य प्रत्यय कहते है। हिंदी की प्रेरणार्थक कियाएँ मध्यप्रत्यय के उदाहरण हैं । जैसे – खाना, खिलाना (आ), खिलवाना (वा) । अन्तप्रत्यय को विभक्ति प्रत्यय कहते हैं, जो शब्द के अंत में जुडता है जैसे – लिंग सूचक प्रत्यय आ – ई है। लडक (आ) – लडका, लडक (ई) लडकी

✻ **स्वन प्रतिस्थापन – संबंधतत्व –**

स्वन के दो प्रकार हैं – स्वर और व्यंजन । स्वन प्रतिस्थापन भी संबंधतत्व का कार्य करते हैं । जैसे – अरबी – क–त–ब, किताब (पुस्तक), कुतुब (पुस्तकें)

हिंन्दी में चल–चला

व्यंजन प्रतिस्थापना के उदाहरण में अंग्रेजी का उदाहरण प्रस्तुत है, Send (भेजना), Sent (भेजा) – में 'ड' के स्थान पर 'टी' के प्रतिस्थान से वर्तमानकालीक क्रिया भूतकालीक हो गई है।

✻ **शब्द प्रतिस्थापन – संबंधतत्व –**

कभी – कभी एक शब्द के स्थान पर पूर्णतया नया शब्द आ जाता है। उसे शब्दादेश कह सकते है। यह नया आने वाला शब्द संबंधतत्व का कार्य करता है। जैसे – हिंदी में जाना (क्रिया) वर्तमानकालीन है तो 'गया' भूतकालीन है। अंग्रेजी और संस्कृत में भी ऐसा ही होता है।

✻ **स्वनगुण – संबंधतत्व –**

स्वन–गुण तीन हैं – मात्रा, सुर, बलाघात । यह तीनों संबंधतत्व को सूचित करते हैं ।

मात्राएँ दो होती हैं – ऱ्हस्व–दीर्घ । हिन्दी की प्रेरणार्थक क्रियाएँ मात्रा–भेद के उदाहरण है । जैसे सुनना (स्वयंद्वारा सुनने की क्रिया करना), सुनाना (दूसरे को सुनाने की क्रिया बोध)

सुर–चीनी भाषा सुरप्रधान है । सुर परिवर्तन से एक ही शब्द के भिन्न अर्थ होते हैं । बलाघात – बल के कारण संज्ञा क्रिया में परिवर्तित हो जाती है। अंग्रेजी बलाघात प्रधान भाषा है।

✻ **शून्य – संबंधतत्व –**

कई बार केवल अर्थतत्व ही संबंधतत्व को सूचित करता है। हिन्दी में आज्ञार्थक क्रियाएँ इस श्रेणी की हैं – जा – तू जा, चल – तू चल ।

हिंन्दी में वचन तथा लिंग सूचक ऐसे शब्द हैं । एकवचन – लिंग वचन स्त्रीलिंग – पुल्लिंग दोनों का दूधोतन करते हैं । जैसे – मक्खी, छिपकली, शक्कर आदि ।

✻ **शब्दस्थान – संबंधतत्त्व –**

वाक्य में शब्द के स्थान से भी संबंधतत्व का बोध होता है। समास में स्थान का

महत्त्व है। जैसे मल्लग्राम –मल्लों का गाँव, ग्राममल्ल – गाँव का मल्ल

* **आवृत्ति संबंधतत्त्व –**

शब्द की आवृत्ति से भी संबंध प्रकट होता है। जैसे – हिन्दी में 'दिन – दिन' का अर्थ हर दिन होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता हैं कि भाषा कई प्रकार संबंधतत्त्वों का प्रयोग करती है।

* **धातु**

इंग्रजी का 'रूट' शब्द हिन्दी में 'धातु' कहलाता है। धातु का अर्थ है मूल तत्त्व । उसी आधार पर वैद्यकशास्त्र में वात, पित्त, कफ के मूलतत्त्व के रूप में धातु शब्द का प्रयोग होता है।

भाषा में धातु का अर्थ है क्रिया या शब्द का मूलतत्व । कामताप्रसाद गुरू धातु की परिभाषा देते हुए लिखते हैं –

''जिस मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है उसे धातु कहते है ।'' जैसे – खाना, पिना, जाना, लिखना, हँसना, बैठना आदि विकारी शब्द हैं । इन शब्दों में से 'ना' हटा देने पर जो शब्द बचता हैं वह धातु हैं ।

धातु के निम्न प्रकार है –

* सकर्मक – अर्थात् जिस धातु या क्रिया का कर्म हो, अर्थात् धातु से व्यक्त व्यापार का फल कर्ता के अलावा दूसरे पर पडे उसे सकर्मक कहते है। जैसे – विजय चाय पीता है। उस वाक्य में चाय कर्म है। इसलिए क्रिया कर्म पर होती है।
* अकर्मक – जिस धातु से व्यक्त व्यापार का फल कर्ता पर पडता है उसे अकर्मक कहते है। जैसे – हँस, बैठ, आदि ।
* उभय – यह सकर्मक और अकर्मक दोनों ही होते हैं। जैसे – 'भर' धातु । मीना पानी भरती है। पानी से घडा भरता है।

प्रेरणा के आधार पर धातु के दो प्रकार होते हैं –

* **मूल धातु–चल, देख, सुन, पी, लिख ।**
* **दो – प्रेरणार्थक धातु –** इससे प्रेरणा देने का भाव व्यक्त होता है।
* **चलना –** चलाना (प्रथम प्रेरणार्थक), चलवाना (द्वितीय प्रेरणार्थक)
* **प्रातिपदिक –**

'प्रातिपदिक' का अर्थ है जो प्रतिपद् अर्थात् रूप हो । पाणिनि के मत से धातु और प्रत्यय के अलावा कोई भी शब्द प्रातिपदिक हैं ।

प्रातिपदिक के अंतर्गत वचन, गुण (विशेषण), सर्वनाम, अव्यय, तध्दित, कृदन्त, समास, जाति, संख्या और संज्ञा इन नौ बातों का समावेश होता है। ऐसा वार्तिककार का कथन है।

* पद – जिसमें सुब् और तिङ् विभक्तियाँ लगाई हो उसे पद कहते है । पद के कारण

लिंग, वचन, काल, कारक और वाच्य का बोध होता है। उदा. – जा/जाना जाता/जाती/जाते/ गया/ गई/गए/जाऊँगा/जाऊँगी/जाएँगे आदि अर्थबोध होता है।

मैं जाता हूँ – इसमें मैं हूँ – कर्तृवाच्य बोधक है। सामान्य वर्तमानकाल की सूचना देता है। निश्चित अर्थ की सूचना देता है। उत्तम पुरुष में है, और पुल्लिंग है। इतनी सूचना प्रातिपदिकों के जुडने पर पद के द्वारा मिलती है।

4.2.3 रूपिम का स्वरूप

रूपिम का विचार करते समय सबसे पहले रूप और रूपिम में अंतर देखेंगे । संबंधतत्व से युक्त प्रतिपदिक ही रूप है। जैसे – दीपिका पुस्तक पढेगी – उस वाक्य में तीन रूप है – जो इस प्रकार हैं –

(1) दीपिका

(2) पुस्तक

(3) पढेगी

दीपिका और पुस्तक इसमें शून्य संबंधतत्व है। तो पढेगी शब्द में –

पढ + ए + ग + ई ऐसे चार अर्थवान् खण्ड है।

इसमें पढ मूल रूपिम है। 'ए' अन्य पुरुष एकवचन का संबंधतत्व है, 'ग' सामान्य भविष्यकाल का सूचक है तो 'ई' स्त्रीलिंग एकवचन का सूचक है।

ऊपर के दो शब्द दीपिका और पुस्तक का भी खण्डों में विभाजन हो सकता है। जैसे दी + पि + का, पु + स्त + क परंतु यह अर्थवान खण्ड नहीं है। रूपिम का निर्णय रूपों के अर्थवान् खण्डों के आधार पर किया जाता है । जैसे – उपर्युक्त वाक्य में तीन रूप हैं । लेकिन रूपिम छह हैं – दीपिका, पुस्तक, पढ, ए, ग, ई

''रूप के अर्थवान् खण्डों को 'रूपिम' कहते हैं ।''

ग्लीसन के मत से रूपिम लघुतम, व्याकरणिक, अर्थवान् रूप है। तो डॉ. भोलानाथ तिवारी के मत से भाषा या वाक्य की अर्थवान लघुतम इकाई रूपिम है।

रूपिम विज्ञान की आधारभूत इकाई 'रूपिम' है।

*** संरूप और रूपिम –**

एक ही रूपिम के एक से अधिक समान अर्थवाले परंतु परिपूरक वितरणवाले रूपों को संरूप कहते हैं। इस परिभाषा में दो बातें बताई हैं कि रूपिम समानार्थी होते हैं । यह रूप परिपूरक वितरण में आते हैं इसलिए इन रूपों में आपसी टकराव नहीं होता । जैसे –

मैं घर जाता <u>हूँ</u> ।

हम घर जाते <u>हैं</u> ।

तुम घर जाते <u>हो</u> ।

आप घर जाते <u>हैं</u> ।

गोपाल घर जाता <u>है</u> ।

वर्तमानकाल 'होना' क्रिया के रूप उपरोक्त वाक्यों में प्रयुक्त हुए हैं । जैसे – हूँ/हैं/हो/हैं/है । यह सारे रूप संरूप कहलाते हैं क्योंकि इनका अर्थ समान है ।

4.2.4 रूपिम के भेद

रूपिम के भेदों के चार आधार हैं –

क) प्रयोग के आधार पर

ख) रचना के आधार पर

ग) अर्थद्‌योतन और संबंध द्‌योतन के आधार पर

घ) खण्डीकरण के आधार पर ।

क) प्रयोग के आधार पर –

वाक्य में रूपिम के प्रयोग की स्थिति को ध्यान में रख कर यह भेद दिया गया है। प्रयोग के आधार पर रूपिमों के अलग–अलग रूप हैं –

* **मुक्त रुपिम –** दिलीप डाक घर जाकर पत्र लेता है – उसमें दिलीप, पत्र, डाकघर मुक्त रूपिम हैं । कारण यह स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हो सकते हे और अर्थाभिव्यक्ति भी स्वतंत्र हो सकती है।

* **बद्ध रुपिम –** जब रूपिम वाक्य में दूसरे के साथ जुडकर ही आते हैं तब उन्हें 'बद्ध रूपिम' कहते हैं । लिंग, वचन, कारक के सूचक प्रत्यय बद्ध रूपिम हैं, यह स्वतंत्र रूप से अर्थ प्रकट नहीं करते । उदा. लडका–आ, लडकियाँ –इयाँ, लालिमा–इमा–बद्ध रूपिम हैं ।

* **मुक्त बद्ध रूपिम –** जो रूपिम दिखाने में स्वतंत्र पर अर्थ की दृष्टि से बद्ध होते हैं – उन्हें मुक्तबद्ध रूपिम कहते हैं ।

हिन्दी के कारक – प्रत्यय मुक्त–बद्ध रूपिम के उदाहरण हैं । जैसे – राम ने रावण को बाण से मारा ।

ख) रचना के आधार पर –

शब्द की रचना को आधार बना कर यह रूपिम निर्धारित किए गए हैं । जब केवल अर्थतत्व के माध्यम से रूपिम की रचना होती हैं तो उन्हें 'मूल रूपिम' कहते हैं । इसमें संबंधतत्त्व नहीं जुडता जैसे–

कमल घर चल । इस वाक्य में तीनों शब्द मूल रूपिम हैं । अन्य उदाहरण हैं – सुख–दुःख, भला–बुरा, रोटी–कपडा या विभिन्न संज्ञाएँ–पुस्तक, पेन, घडा, नल आदि ।

जब दो या अधिक रूपिमों से निर्माण होता हैं तो उसे 'संयुक्त रूपिम' कहते हैं । इसमें एक अर्थतत्त्व होता है, एक संबंधतत्व होता है। जैसे – लडकियाँ–बच्चे, सुंदरता आदि।

जब दो या अधिक अर्थतत्त्व के योग से रचना होती है तो उसे 'मिश्रिम रूपिम' कहते हैं। जैसे – राजमहल, लोकसभा, विश्वविद्‌यालय, जनहित, विधानसभाध्यक्ष ये मिश्रित रुपिम के उदाहरण हैं ।

ग) अर्थद्योतन और संबंध द्‌योतन के आधार पर –

अर्थदर्शी रूपिम वे होते है जो वाक्य में अर्थतत्व के रूप में प्रयुक्त होते हैं । संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय आदि अर्थदर्शी रूपिम हैं –

जैसे - टेबल, कुर्सी, दरी, रूमाल, विजय, मकान (संज्ञा)

मैं, तुम, आप, हम (सर्वनाम)

गाना, हँसना, दौडना, लेना - (क्रिया)

लाल, काला, गोरा, सुंदर, इमानदार (विशेषण)

कब, कहाँ, यहाँ, वहाँ, वहा, धीरे-धीरे (अव्यय)

तो संबंधदर्शी रूपिम के अंतर्गत लिंग,. कारक, वचन, काल, पुरुषसूचक प्रत्यय आते हैं ।

घ) खण्डीकरण के आधार पर -

खण्ड रूपिम जिन रूपिमों के खण्ड या टुकडे किये जाते हैं, उन्हें खण्ड रूपिम कहा जाता हैं ।

जैसे - बैलगाडी - बैल + गाडी, डाकघर - डाक + घर, प्रचार - प्र + चार, लताएँ - लता + एँ

खण्डेतर अर्थात् अखण्ड रूपिम - ऐसे रूपिमों के खण्ड टुकडे नहीं किये जाते हैं । बलाघात या सुर इसके उदाहरण हैं ।

4.2.5 **रूप स्वनिम विज्ञान**

दो या उससे अधिक रूपिमों के योग से जो रचनात्मक या स्वनिम का परिवर्तन होता हैं इसका अध्ययन रूप स्वनिम विज्ञान में किया जाता है। जैसे - घोडा + दौड = घुडदौड

सत् + जन = सज्जन

मीठा + आई = मिठाई

घोड + दौड में संधि की कोई स्थिति नहीं है। रूप स्वनिमगत परिवर्तन से घुडदौड शब्द निष्पन्न हुआ है। रूप स्वनिम परिवर्तन जुडने वाले दो रूपिमों में कहीं भी हो सकता है।

जैसे - घु बने शब्द में ओ - आ में परिवर्तित हुआ है।

रूपस्वनिमिक परिवर्तन अर्थतत्व और संबंधतत्व के मध्य में भी होता हैं । संधि में ऐसा नहीं होता है।

लडकी + ओ - लडकियों - की दीर्घ-ऱ्हस्व में परिवर्तित होना और य स्वन का आगमन है।

लडका + ओं - लडकों - आ का लोप ओं का आगमन। इन सारी बातों का अध्ययन रूप स्वनिम विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। रूप-स्वनिमिक परिवर्तन का क्षेत्र अधिक व्यापक है।

4.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न -

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* संबंधतत्त्व और उसके भेदों की चर्चा कीजिए ।

....

....

....

* रूपिम की परिभाषा बताते हुए उसके विभिन्न भेदों का विवेचन कीजिए ।

....

....

....

घ) टिप्पणियाँ

* धातु के प्रकार

....

....

....

* पद

....

....

....

* रूप और रूपिम

....

....

....

* रूपिम के भेदों के आधार

....

....

....

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

* रूप की परिभाषा बताइए ।

....

....

....

* प्रातिपादिक के अंतर्गत किसका समावेश होता है?

....

....

....

* प्रयोग के आधार पर रूपिमों के प्रकार बताइए?

....

....

....

* सकर्मक, अकर्मक और उभय किसके प्रकार है?

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए -

* वाक्य में प्रयुक्त किये जाने योग्य शब्द क्या कहलाता है?

  अ) पद ब) अर्थ क) धातु ड) प्रत्यय

* मात्रा, सुर और बलाघात को क्या माना गया है?

  अ) अर्थतत्व ब) संबंधतत्व क) स्वन-गुण ड) रूपिम

* डाकघर, बैलगाडी शब्द-रूपिम का कौनसा भेद है?

  अ) खण्ड रूपिम ब) खण्डेतर रूपिम क) संबंधदर्शी ड) मिश्र रूपिम

* रूपिमों के कितने आधार है?

  अ) दो ब) तीन क) चार ड) छह

4.4 सारांश

भाषा की इकाई वाक्य है। वाक्य के खण्ड शब्द होते है। शब्दों का अर्थ होता है। जो कोश में होता है वह शब्द का शुद्ध रुप है। यह अर्थतत्व कहलाता है लेकिन यह शब्द वाक्य में ज्यों के त्यों प्रयुक्त नहीं होते । इनमें संबंधतत्व जुडता है जिसे रूप कहते है। इन संबंधतत्वों के कारण ही वाक्य से लिंग, वचन, काल, वाक्य का बोध होता है।

संबंधतत्व और अर्थतत्व - छात्र, अध्यापक, पुस्तक, अर्थतत्त्व है, ने, को, से, ये हिंदी के प्रत्यय या संबंधतत्त्व है।

रूपिम - रूप का अर्थवान खण्ड होता है। रूपिम के भेदों के चार आधार है - प्रयोग, रचना, अर्थद्योतन संबंध द्योतन और खण्डीकरण ।

रूप-रूपिम के योग से जो ध्वन्यात्मक परिवर्तन होता है उसका अध्ययन रूप-स्वनिम विज्ञान में किया जाता है।

जैसे - सत् और जन मिल कर शब्द बना - सज्जन अर्थात् यहाँ - सत् शब्द का त् ज् में परिवर्तित हो गया।

इन बातों का अध्ययन स्वनिम विज्ञान में किया जाता है । रूपिम को कुछ लोग रूपग्राम, पदग्राम भी कहते हैं ।

4.5 शब्दार्थ, टिप्पणी

खण्ड - टुकडा - विभाजन

धातु - शब्द का मूल रूप

खण्डेतर - अखण्ड बिना टुकडे वाला

* रूप - लिंग, वचन, काल, कारक के कारण शब्द में होने वाला परिवर्तन।
* रूपिम - संबंधतत्व जो अर्थ व्यक्त करता है।

4.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

- संबंधतत्त्वों के भेदों के आधार पर उदाहरण लिखिए।
- धातु का अर्थ बताकर दस धातुओं के आधार पर शब्द बनाइए ।
- रूपिम भेदों की तालिका तैयार कीजिए ।
- अर्थतत्त्व को सोदाहरण समझाइए ।

4.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- भाषाविज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
- भाषाविज्ञान के अधुनातन आयाम – डॉ. अंबादास देशमुख

इकाई - 5
वाक्य विज्ञान

अनुक्रम

5.0 **उद्देश्य**

5.1 **प्रस्तावना**

5.2 **विषय विवरण**

  5.2.1 **वाक्य का स्वरूप**

  5.2.2 **अभिहितान्वयवाद (पद वाद)**

  5.2.3 **अन्विताभिधानवाद (वाक्यवाद)**

  5.2.4 **वाक्य में भेद**

  5.2.5 **वाक्य विश्लेषण**

  5.2.6 **निकटस्थ अवयव विश्लेषण**

5.3 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

5.4 **सारांश**

5.5 **शब्दार्थ**

5.6 **स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य**

5.7 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

5.0 उद्देश्य

- ✻ भाषा में वाक्य का महत्त्व जान सकेंगे ।
- ✻ वाक्य का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ✻ वाक्य के भेद एवं वादों से परिचित होंगे ।
- ✻ वाक्य का विश्लेषण कर सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

वाक्यविज्ञान में वाक्य रचना का अध्ययन भाषाविज्ञान के आधार पर किया जाता है। ध्वनियों के संयोग से शब्द का निर्माण होते हैं । जो शब्द वाक्यों में प्रयुक्त होने के योग्य होते हैं उन्हें पद या रूप कहते है। रूपों का समूह ही वाक्य है। भाषा की महत्तम इकाई वाक्य है।

भाषा यदि भावों और विचारों की संवाहक है तो उनके संवाहक वाक्य ही है। भाषा का नियंता व्याकरण है और व्याकरण वाक्यों का ही विश्लेषण करता है न कि शब्दों का। यदि वाक्य नहीं होते तो सम्प्रेषण की पूर्णता नहीं दिखाई देती ।

आधुनिक शिक्षाशास्त्रीयों ने इस सच्चाई को ध्यान में रख कर ही भाषा अधिगम प्रक्रिया वाक्य से शुरू की है। छोटे बच्चे का पहला पाठ कमल चल, मगन घर चल, बाद में बच्चे वाक्यों को तोड कर कमल और बाद में क म ल से सीखते हैं । वर्णमाला से शब्द और शब्द से वाक्य ऐसी अध्ययन करने की प्रक्रिया चलते रहती है।

5.2 विषय विवरण

5.2.1 वाक्य का स्वरूप

भर्तृहरि ने अपने ग्रंथ 'वाक्यपदीय' में लिखा है

पदे व वर्णा: विद्यते वणेष्णवयवा: च न ।

वाक्यात् पदानाम् अत्यंत प्रविवेको न कश्यन ।।

अर्थात् पद में वर्ण और वर्णो में अवयव नहीं होते । वाक्य से पृथक् पदों की कोई निजी पहचान नहीं होती। इस प्रकार भर्तृहरि के मत से भाषा की पूर्ण इकाई 'वाक्य' ही है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार वाक्य में योग्यता, आकांक्षा, आसक्ति से युक्त पदों की रचना होती है।

''वाक्यं स्माद् योग्यताकांक्षा सक्तियुक्त: पदोच्चय:।''

आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा में वाक्य के तत्वों का विवेचन हुआ है जो वाक्य के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। उनका विवेचन निम्न हैं –

* **योग्यता** – पदों में पारस्परिक संबंध की योग्यता या क्षमता ही 'योग्यता' कहलाती है। अर्थात् पदों के अन्वय में कोई बाधा न हो । पदों में बाधा दो प्रकार की होती है – अर्थमूलक तथा व्याकरणमूलक जैसे – पेड को आग से सींचता है। इसमें 'आग' से सींचा नहीं जाता, इसलिए वह योग्यता वाला पद नहीं है। दूसरे लिंग, विभक्ति, वचन, विशेषण, व्याकरण, कारक आदि व्याकरण के शब्द रूपों का उचित प्रयोग होना चाहिए । 'सुमन जाता है' – में लिंग के कारण बाधा है। यहाँ व्याकरणमूलक योग्यता का अभाव है। इन दोनों बातों का उचित प्रयोग 'योग्यता' कहलाता हैं ।

* **आकांक्षा** – 'आकांक्षा' का अर्थ है अपेक्षा या जिज्ञासा का बने रहना । इस जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य अपूर्ण रहता है। जैसे – रमेश, कहने से वाक्य पूरा नहीं होता। जिज्ञासा बनी रहती है। पढता है, कहने पर आकांक्षा फिर भी बनी रहती है – क्या पढना है – 'पुस्तक' कहने से यह पूर्ण होती है। रमेश पुस्तक पढता है यह आकांक्षा से युक्त वाक्य है।

* **आसक्ति (सान्निधि)** – 'आसक्ति' का अर्थ है समीपता इसको ही सान्निधि कहते है। समीपता से अभिप्राय हैं वाक्य में प्रयुक्त पद क्रमबद्ध रूप में उच्चरित हो । आवश्यकता से अधिक समय देने पर पदों का क्रम टूट जाएगा और वाक्य नहीं बनेगा । कोई

सबेरे कहे – में खाना और दोपहर कहेगा – नहीं खाऊंगा तो उसका कोई अर्थ नहीं होगा । इसलिए समय की समीपता या सन्निधि आवश्यक है जिससे वाक्य क्रमबद्ध हो सके ।

इन तीनों के अलावा सार्थकता और अन्विति इन दो तत्वों का समावेश आधुनिक भाषाविदों ने किया है।

सार्थकता का अर्थ है – वाक्य में प्रयुक्त सभी पद सार्थक हो । जैसे – कमल फूल है। में सभी पद सार्थक है ।

अन्विति का अर्थ है व्याकरण की दृष्टि से लिंग, वचन, पुरुष, कारक की अन्विति हो ।

इस स्वरूप को देखने के पश्चात् डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा के शब्दों में वाक्य को परिभाषित कर सकते हैं, ''भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है ।''

5.2.2 अभिहितान्वयवाद (पदवाद)

आभिहितान्वयवाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं । उनके द्वारा प्रतिपादित मत को अभिहितान्वयवाद कहा जाता है। उनके मत से,

'अभिहितानां पदार्थानाम् अन्वय: ।'

अर्थात् पद अपने अर्थ को कहते है और उनका वाक्य में अन्वय हो जाता है। उस अन्वय से एक विशिष्ट प्रकार का वाक्यार्थ निकलता है। उस वाद को पदवाद कहा जाता है।

भारतीय दर्शनशास्त्र में वाक्य और पद के महत्त्व को लेकर शुरू से ही विवाद रहा है। इस विवाद से दो मत सामने आते है उनमें से यह अभिहितान्वयवाद है। यह वाद पदों को महत्त्व देता है, इसलिए उसे पदवाद कहा गया ।

5.2.3 अन्विताभिधानवाद (वाक्यवाद)

इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट के शिष्य आचार्य प्रभाकर गुरु हैं । उनके मत का नाम अन्विताभिधानवाद हैं । उनका मानना हैं,

'अन्वितानां पदार्थानाम् अभिधानम्'

अर्थात् वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्‌यमान रहते हैं । इस वाद में वाक्य का महत्त्व है। इसलिए यह 'वाक्यवाद' के नाम से भी जाना जाता है।

अन्विताभिधानवाद के अनुसार पदों की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती है। वे वाक्य में अन्वय है और वाक्य विश्लेषण से उनका अर्थ निकलता है। आधुनिक भाषाविज्ञान उसी मत का समर्थन करता है।

पद तथा वाक्य के महत्त्व को इन दो विभिन्न मतों ने अपनी दृष्टि से देखा है। इनके अपने विभिन्न मतों के कारण ही पदवाद और वाक्यवाद यह दो वाद सामने आए ।

5.2.4 वाक्य के भेद

वाक्य भेद के पाँच आधार माने गये हैं –

1) आकृति के आधार पर वाक्य के भेद –

आकृति का अर्थ है रूपतत्व । अर्थात अर्थतत्व और संबंधतत्व का योग । संसार की भाषाओं को इस आधार पर वर्गीकृत किया गया हैं

अ) अयोगात्मक –

इसमें सभी पदों की सत्ता स्वतंत्र होती है। पदों का निर्माण अर्थ और संबंध तत्व के योग से नहीं होता है।

स्थान से ही व्याकरणिक संबंधो का ज्ञान होता है। शब्द के स्थान बदलने पर अर्थ में अंतर आ जाता है । इस प्रकार के वाक्य चीनी आदि भाषाओं में पाए जाते है। भाषा के आयोगात्मकत्ता के साथ साथ शब्द के स्थान का महत्त्व बढ जाता है।

ब) योगात्मक

इसमें संबंधतत्व के योग से रूपों का निर्माण होता है। जिसे 'समासप्रधान' भाषा कहते है । योगात्मक के तीन रूप हैं –

i) प्रश्लिष्ट योगात्मक (समासप्रधान)

इस प्रकार के वाक्यों में शब्द परस्पर मिल–जुल जाते हैं तथा इनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाता हैं । वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि के जुडे रहने से वाक्य एक शब्द बन जाता हैं । दक्षिण अमेरिका की चेरों की भाषा और बास्क भाषा में इसके उदाहरण मिलते है। कुछ बोलियों में भी इसके उदाहरण मिल जाते हैं ।

ii) अश्लिष्ट योगात्मक (प्रत्यय प्रधान)

उस प्रकार के वाक्यों में प्रत्ययों की बहुलता होती हैं । प्रत्यय जोडकर शब्द तथा वाक्य बनाएँ जाते हैं । मूल शब्द तथा प्रत्यय स्पष्ट दिखाई देते हैं । अर्थात् ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्त्व और संबंधतत्व अश्लिष्ट ढंग से मिले हुए होते हैं । तुर्की, द्रविड आदि प्रत्यय प्रधान भाषाओं की वाक्यरचना इसी प्रकार की है।

iii) श्लिष्ट योगात्मक (विभक्ति प्रधान)

इस प्रकार के वाक्यों में विभक्तियों की प्रधानता रहती हैं। ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय मिले हुए (श्लिष्ट) होते हैं । इनमें प्रकृति और प्रत्यय को अलग अलग करना कठिन होता हैं । धातु के साथ विभक्तियाँ इस प्रकार मिल जाती है कि उनका अस्तित्व पृथक् नहीं रहता हैं । संस्कृत, ग्रीक, लैटिन इसी प्रकार के भाषाएँ हैं ।

2) रचना के आधार पर वाक्य के भेद

व्याकरण संबंधी रचना के आधारपर वाक्य के तीन भेद हैं –

*** साधारण या सरलवाक्य –**

इसमें एक कर्ता और एक क्रिया होती है जैसे – मुझे किताब चाहिए । लडका स्कूल गया आदि ।

*** संयुक्त वाक्य –**

इसके खण्ड आसानी से किये जा सकते है। कुछ सरल वाक्यों अथवा सरल और मिश्र वाक्यों को जोडने से इस प्रकार के वाक्यों की रचना होती है। जैसे – मै घर जाऊँगा और सारे काम आज ही निपटाऊँगा ।

इसमें एक प्रधान वाक्य तथा एक या अनेक आश्रित उपवाक्य होते है। मिश्र वाक्य

में प्रथम वाक्यांश के बाद दूसरे की आकांक्षा बनी रहती है। जैसे – मैं चाहता हूँ, तूम बडे बनो और नाम कमाओ ।

3) **अर्थ के आधार पर –**

इसके आधारपर वाक्यों के अनेक प्रकार हो सकते हैं । जिनमें से प्रमुख भेद उस प्रकार हैं –

* विधिसूचक – निधि कॉलेज गई है।
* निषेधसूचक – उसने आज पढाई नहीं की ।
* आज्ञासूचक – चलो, बाहर जाओ!
* इच्छासूचक – मैं चाहता हूँ तुम जीवन में कुछ कर दिखाओ ।
* संभावनासूचक – शायद वह घर पहुँच गया हो ।
* संदेहसूचक – वह आएगा कि नहीं ।
* प्रश्नार्थक – तुम्हारा नाम क्या है?
* विस्मयादिबोधक – अरे! यह सब कैसे हो गया?
* संकेतार्थ – तुम पढाई करते तो उत्तीर्ण हो जाते ।

इन प्रकारों के अलावा स्वर के आधार पर (लहज) भी विभिन्न भाव या अर्थ की अभिव्यक्ति की जा सकती है।

4) **क्रिया के आधार पर**

प्रत्येक वाक्य में क्रिया प्रत्यय या अप्रत्यक्ष रूप से विद्‌यमान रहती है। संस्कृत, बंगला, लैटिन आदि भाषाओं में बिना क्रिया के भी वाक्य मिलते हैं । परंतु सामान्य रूप से वाक्य क्रिया से युक्त ही होता है। इस दृष्टि से क्रिया के आधार पर वाक्य के दो भेद होते हैं –

i) क्रियायुक्त वाक्य –

सामान्य तथा सभी भाषाओं में एक वाक्य में एक क्रिया होती है। अधिकांश वाक्य इसी तरह के होते हैं । जैसे – मैं पढाई करता हूँ। माँ खाना बना रही है। बच्चों को खेलना पसंद हैं, आदि ।

ii) क्रियाहीन वाक्य –

इनमें क्रिया नहीं होती इसलिए इन्हें क्रियाहीन वाक्य कहा जाता हैं । ऐसे वाक्य क्रिया के न होने पर भी पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं । प्रश्न तथा उत्तर दोनों में क्रिया का प्रयोग नहीं दिखाई देता हैं । समाचार पत्रों के शीर्षकों में, विज्ञापनों में भी क्रिया का प्रयोग नहीं रहता हैं । जैसे – ठण्डा-ठण्डा, कूल-कूल, इसीतरह मुहावरे तथा लोकोक्तियों में भी क्रिया का प्रयोग नहीं होता हैं, जैसे – दीपक तले अंधेरा। बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद? आदि।

(5) **शैली के आधार पर –**

शैली के आधार पर वाक्य के तीन भेद किये जाते हैं –

i) शिथिल वाक्य

शिथिल वाक्य उन्हें कहा जाता है जिनके माध्यम से वक्ता बिना किसी अलंकरण का सहारा लिए सीधे-सादे ढंग से अपनी बात कहता है, जैसे - कथावाचक की कथा कहने की शैली शिथिल वाक्य की होती है।

ii) समीकृत वाक्य

ऐसे वाक्य में संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जिसकी लाठी उसकी भैंस, कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली । समीकृत वाक्य सन्तुलन आदि गुणों के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते है । साम्यमूलक या वैषम्यमूलक संगति के द्वारा वक्ता जब अपने भावों को व्यक्त करता हैं तो उसे समीकृत वाक्य कहा जाता है।

iii) आवर्तक वाक्य

उसमें कथनीय वस्तु अंत में दी जाती है। श्रोता की जिज्ञासा अंतिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण होती है। वाक्य को उत्सुकता, जिज्ञासा बनाएँ रखने के लिए अगर, यदि, और, तथा आदि लगा कर लम्बा किया जाता है। जैसे - जीवन में परिश्रम करोगे, विश्वास रखोगे, इमानदारी से काम करोगे और सबको साथ लेकर चलोगे तो अवश्य ही सफलता पाओगे ।

5.3.5 वाक्य विश्लेषण

सामान्यतया प्रत्येक भाषा में कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण आदि का स्थान निश्चित नहीं है। विश्व की समस्त भाषाओं में वाक्य रचना की पद्धति एक प्रकार की नहीं हैं । इस कारण उनके वाक्यों का विश्लेषण भी एक प्रकार से नहीं किया जा सकता है।वाक्य विश्लेषण के स्वरूप को जानने पर उसकी संरचना समझने में आसानी होती है। वाक्य विश्लेषण के तीन आधार है -

1) उद्देश्य और विधेय -

वाक्य के दो अंग माने जाते हैं - उद्देश और विधेय । वाक्य का वह खंड जिसके बारे में कुछ कहा जाए, उसे उद्देश्य कहते हैं । प्राय: कर्ता उद्देश्य होता है। जैसे- मैं खाता हूँ - रमेश पढ रहा है। इन वाक्यों में उद्देश्य कर्ता है। उद्देश्य अधिकतर संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि होते हैं ।

यदि कर्ता उद्देश्य है तो क्रिया विधेय है। विधेय में क्रिया तथा क्रिया का विस्तार कर्म से होता है। अर्थात् वाक्य का वह अंश विधेय है जो उद्देश्य के बारे में सूचना देता है। सुमन पढ (उद्देश्य-विधेय) - सुमन प्रेमचंद जी की कहानी कफन पढ । विधेय का विस्तार कर्म से, क्रिया का विस्तार करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, कारक के अनुसार भी होता है।

2) उपवाक्य

यदि कोई वाक्य, एक से अधिक वाक्य से मिल कर बना हो तो वे वाक्य मुख्य वाक्य के उपवाक्य है। जैसे जब वह आया मैं पढ रहा था । (उद्देश्य-विधेय) मैं पढ रहा था । (मैं उद्देश्य पढ - विधेय) इन दो वाक्यों से मिल कर उपरोक्त वाक्य बना है।

उपवाक्य के दो प्रकार हैं – प्रधान या मुख्य उपवाक्य तथा आश्रित उपवाक्य जैसे – उपरोक्त उदाहरण में मैं पढ रहा था – प्रमुख वाक्य है, अनाश्रित है, जब वह आया यह प्रमुख वाक्य नहीं है। वह प्रमुख उपवाक्य का समय बता रहा है, इसलिए वह आश्रित उपवाक्य है।

3) **अग्र और पश्चवाक्य**

अर्थात् पहलेवाला और बादवाला ये दो हिस्से वाक्य के स्वभावतः होते है। बोलते समय कभी–कभी पूरे वाक्यों को या वाक्यांशों को दुहराया जाता है। पहले वाक्यका आ आधा भाग या कुछ भाग पुन: दूसरे वाक्य में आ जाता है और दूसरे वाक्य का कुछ हिस्सा तीसरे में आ जाता है।

साहित्य में या कथा कहने वाले व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त भाषा में इस प्रकार के वाक्य बहुतायात से पाये जाते हैं ।

5.2.6 निकटस्थ अवयव विश्लेषण

वाक्य का अध्ययन निकटस्थ अवयवों में विभाजन करके भी किया जाता है। इसके लिए वाक्य में एक से अधिक पदों का होना अनिर्वाय है। 'निकटस्थ' का अर्थ यहाँ स्थान की दृष्टि से न होकर अर्थ की अवयवों को निकटस्थ दृष्टि से करीब है।

जो व्याकरणिक इकाई दो या अधिक अवयवों से मिल कर बनती हैं उसे 'निकटस्थ अवयव' कहते हैं ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार – कोई रचना जिन दो या अधिक अवयवों से मिल कर बनती है, उनमें से प्रत्येक निकटस्थ अवयव कहलाता है।

डॉ. देवीशंकर अवस्थी उन्हें समीपी संघटक कहते है। अर्थात् शब्दानुक्रमों की सार्थक योजना को संघटन कहा जाता है।

व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य में एक कर्ता होता है, एक क्रिया होती है, क्रिया सकर्मक हो तो एक कर्म होता है और वाक्यार्थ की आवश्यकतानुसार अन्य कारक भी होते है। ये वाक्य के अनिवार्य घटक होते है। कई बार ये एकाकी होते है। कभी उनके साथ विशेषण, संबंधकारक के विशेषण रूप, क्रियाविशेषण आदि भी जुड जाते हैं जैसे –

* विजय घर जाता है।

  पडोस में रहने वाला विजय घर जाता है।

* यह फूल है।

  यह फूल **गुलाब का** है।

* कई रेलवे के कर्मचारी हडताल पर थे ।

इस वाक्य में निकटस्थ अवयव का विशेषण कई यह रेलवे के पास दिखाई देता है। लेकिन अर्थ की दृष्टि से वह कर्मचारी के निकट का है। निकटस्थ अवयव के कारण हमें सही अर्थबोध होता है। नहीं तो अर्थभ्रम की संभावना बनी रहती है।

उपर्युक्त प्रथम तथा द्वितीय उदाहरण में पडोस में रहने वाला तथा गुलाब का क्रमश: विजय तथा फूल के अवयव हैं । उन्हें ही निकटस्थ अवयव कहा जाता हैं ।

5.3 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घेत्तरी प्रश्न –

✻ वाक्य की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

✻ वाक्य के भेदों का सम्यक् परिचय दीजिए ।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ

✻ अभिहितान्वयवाद

....

....

....

✻ अन्विताभिधानवाद

....

....

....

✻ शैली के आधार पर वाक्य के भेद

....

....

....

✻ वाक्य विश्लेषण

....

....

....

ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न –

✻ आकांक्षा' का अर्थ बताइए ।

....

....

....

* सार्थकता से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

* प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य समझाइए ।

....

....

....

* अग्रवाक्य और पश्चवाक्य क्या है?

....

....

....

छ) सही पर्याय लिखिए

* उद्देश्य-विधेय किसके अंग है ?

  अ) वाक्य क) पद ख) शब्द ड) ध्वनि

* कुमारिल भट्ट का वाद कौनसा है ?

  अ) शब्दवाद ख) पदवाद क) वाक्यवाद ड) ध्वनिवाद

* योग्यता से क्या तात्पर्य है?

  अ) पदक्रम ख) अलगाव क) पारस्परिक संबंध ड) समीपता

* बाहर जाओ - वाक्य का कौनसा भेद है?

  अ) संकेत ख) प्रश्न ग) आज्ञा ड) विधि

5.4 सारांश

पदों का समूह वाक्य कहलाता है। भाषा की महत्तम इकाई वाक्य है। वाक्य पूर्णभावाभिव्यक्ति कराता है। सोचना, समझना, बात करना, लिखना सब वाक्यों के माध्यम से संपन्न होता हैं ।

भर्तृहरि के मत से भाषा की पूर्ण इकाई वाक्य ही है।

आचार्य विश्वनाथ के मत से योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति युक्त के पदों के समूह को वाक्य कहते हैं ।

तो डॉ. देवेंद्रनाथ शर्मा भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य मानते हैं । वाक्य और पद के महत्त्व को प्रकट करने वाले दो वाद भाषाशास्त्रियों में रहे हैं - पदवाद और वाक्यवाद ।

पहला वाद है – अभिहितान्वयवाद – उसके प्रवर्तक कुमरिल भट्ट हैं । इसमें पद को महत्त्व देते हैं । इसलिए इसे 'पदवाद' भी कहते है।

दूसरा वाद – अन्विताभिधानवाद है – इस वाद के प्रवर्तक आचार्य प्रभाकर गुरु हैं । ये मानते हैं कि पदों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती इसलिए यह 'वाक्यवाद' भी कहलाता है।

वाक्य के भेदों के पाँच आधार हैं –

(1) **आकृति के आधार पर –** आकृति के आधार पर में आकृति का अर्थ है अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व का योग ।

अयोगात्मक वाक्य में सभी पदों की सत्ता स्वतंत्र होती हैं । स्थान से संबंधतत्व का ज्ञान होता है।

योगात्मक – संबंधतत्त्वों के योग से रूपों का निर्माण होता हैं । योगात्मक के तीन रूप है –

प्रश्लिष्ट योगात्मक – कर्ता, क्रिया एक ही पद में समाहित होता है।

अश्लिष्ट योगात्मक – वाक्य के पदों में प्रत्ययों का योग रहता हैं । तुर्की, द्रविड भाषाएँ उसके उदाहरण हैं ।

श्लिष्ट योगात्मक – प्रत्यय प्रधान भाषा होती है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन इसके उदाहरण हैं ।

(2) **रचना के आधार पर –** तीन प्रकार के वाक्य होते हैं –

साधारण या सरल वाक्य (एक कर्ता, एक क्रिया)

संयुक्त वाक्य (दो वाक्यों का योग)

मिश्र वाक्य (एक प्रधान वाक्य और उसके आश्रित अनेक प्रधान उपवाक्य)

(3) **अर्थ के आधार पर –**

विधि–निषेध, आज्ञा, इच्छा, संभावना, संदेह, प्रश्न, आश्चर्य, संकेत आदि वाक्यों के प्रकार अर्थ के आधारपर बनते हैं ।

(4) **क्रिया के आधार पर –**

वाक्य में क्रिया के होने या न होने के आधार पर वाक्य के दो भेद बनाएँ जाते हैं – क्रियायुक्त वाक्य और क्रियाहीन वाक्य ।

(5) **रचनाशैली के आधारपर –**

शिथिल. समीकृत और आवर्तक ऐसे तीन प्रकार के वाक्यों की रचना इसके अंतर्गत होती है।

वाक्य विश्लेषण के तीन आधार माने गये हैं – उद्देश्य और विधेय । उद्देश कर्ता होता हैं और विधेय क्रिया। उपवाक्य में, दो वाक्यों के योग से उपवाक्य बनते है। जो संज्ञा, विशेषण, क्रिया विशेषण उपवाक्य कहलाते हैं ।

वाक्य भेद का तीसरा आधार अग्र और पश्च हैं । जो आवृत्तिमूलक वाक्य होते हैं । लोककथा कहने वाला वाक्यों को दुहरा कर अपनी बात कहता है जो अग्रवाक्य – पश्चवाक्य के रूप ही हैं ।

वाक्य की संरचना में वाक्य का अध्ययन निकटस्थ अवयवों में विभाजन कर के भी किया जाता हैं । आधुनिक भाषावैज्ञानिकों ने निकटस्थ अवयव या समीपी संगटक को भी संरचना का आधार माना है। निकटस्थ अवयव स्थान की दृष्टि से न होकर अर्थ की दृष्टि से निकट होनेवाली व्याकरणिक इकाई होती है।

5.5 शब्दार्थ

पद – संबंधतत्व से युक्त शब्द (अर्थतत्व)

अन्विति – अर्थात् अन्वय – विश्लेषण से प्राप्त अर्थ

प्रश्लिष्ट – अधिक घुल–मिलना

विधि – स्वीकारात्मक

5.6 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य

* वाक्य भेदों की तालिका तैयार कीजिए ।
* मराठी और हिन्दी वाक्यों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ।
* पदवाद एवं वाक्यवाद को विविध उदाहरणों से समझाइए ।

5.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* भाषाविज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह
* भाषाविज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी

इकाई - 6
अर्थविज्ञान

अनुक्रम

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विषय विवरण

- 6.2.2 अर्थ की अवधारणा, शब्द और अर्थ का संबंध
- 6.2.2 अर्थबोध के बाधक तत्त्व
- 6.2.3 अर्थ प्रतीति
- 6.2.4 अर्थ परिवर्तन के कारण
- 6.2.5 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

6.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 शब्दार्थ,

6.6 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य

6.7 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

- ✻ भाषा की लघुत्तम इकाई शब्द और अर्थ के संबंध को जान पाएंगे ।
- ✻ अर्थ प्रतीति के आधार पर शब्दों के प्रकार बना पाएंगे।
- ✻ शब्द में होने वाले अर्थ परिवर्तन की दिशाओं तथा कारणों से परिचित होंगे ।

6.1 प्रस्तावना

भाषा का मुख्य प्रयोजन है अपनी बात को दूसरों तब संप्रेषित कर सके । शब्द से भाषा का शरीर बना है। इस शरीर में प्राणतत्व अर्थ है। अर्थ ही भाषा का सारतत्व है, यह मानसिक प्रतीति है जो वक्ता और श्रोता को जोडने का काम करती है। यास्क मुनि ने लिखा है कि जो अर्थ जाने बिना वेदाध्ययन करता है वह केवल भारवाही है। इसलिए शब्द शरीर हे, रूप अर्थ हैं, आत्मा अनुभूति है।

महाभारत के वनपर्व, शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त, न्यायमीमांसा, व्याकरणशास्त्र, वाक्यपदीय में अर्थतत्व के बारे में विचार हुआ है।

19 वीं शती में माईकेल ग्रीस ने Semantics शब्द का प्रयोग किया है। 1902 में इडेव्हिलर ने सिमेन्टिक्स को व्याख्यायित किया, 'सिमेन्टिक्स' ऐतिहासिक शब्दार्थ का नियम, शब्दों में, अर्थो में परिवर्तन के विकास और इतिहास का क्रमबद्ध विचार विमर्श है।

अर्थविज्ञान में अर्थ का स्वरूप, शब्द और अर्थ का संबंध, अर्थबोध किस तरह होता है, उसके साधन क्या हैं? अर्थबोध के बाधक तत्व कौनसे हैं? अनेकार्थी शब्द के अर्थ का निर्णय कैसे लिया जाता है? अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ कौनसी है? अर्थ परिवर्तन के कौन-कौन से कारण हैं आदि बातों का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'अर्थविज्ञान' कहलाता है। अर्थात् अर्थ के विभिन्न पक्षों का जिसमें वैज्ञानिक अध्ययन होता है, उसे अर्थविज्ञान कहते है।

6.2 विषय विवरण

6.2.1 अर्थ की अवधारणा शब्द और अर्थ का संबंध

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार - ''किसी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, ध्वनि, मुहावरा, लोकोक्ति आदि) की किसी भी इंद्रिय (प्रमुखत: कान, आँख, किन्तु अपवादत: नाक, जीभ, त्वचा) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती हैं, वही अर्थ है।''

भाषा की परिभाषा में सार्थक ध्वनियों का समूह इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। अर्थात भाषा में निरर्थक शब्दों को ध्वनिसमूहों को स्थान नहीं होता है। अर्थ के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं है और प्रत्येक सार्थक शब्द अपना एक अर्थ या भाव या विचार अवश्य रखता है इसलिए सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि, शब्द के उच्चारण के द्वारा जो प्रतीति होती हैं उसे अर्थ कहते है।

आचार्य पाणिनि अर्थ को भाषा का सार मानते हैं । कारण अर्थ को प्रकट करने के लिए ही भाषा का सहारा लिया जाता है।

किसी शब्द से इसके अर्थ का ज्ञान दो प्रकार से होता हैं - एक तो स्वयं द्वारा किसी चीज का अनुभव कर तो दूसरे, दूसरों के अनुभव के ज्ञान पर उस चीज का अनुभव करना । कुछ अनुभव ऐसे हैं जो स्वयं द्वारा लिये नहीं जा सकते - जैसे - स्वर्ग - ईश्वर आदि तब जानकार व्यक्ति से इसका ज्ञान होता है। उस तरह दोनों रूपों में अर्थ की प्रतीति होती है। अर्थ के बिना भाषा और शब्द का कोई महत्व नहीं होता है।

※ शब्द और अर्थ का संबंध

शब्द और अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू है। शब्द शरीर हैं तो अर्थ को आत्मा कहा जाता है। इतना अभिन्न संबंध शब्द और अर्थ का है। बात कहने के लिए शब्दों का ही सहारा लिया जाता हैं । यह शब्द भाषा के प्रतीक हैं । कालिदास इन्हें गौरीशंकर की उपमा देते हैं तो, तुलसीदास सीता-राम की भाँति इन्हँ अभिन्न कहते हैं ।

भाषा के ये प्रतीक शब्द अर्थबोध कराते हैं । कारण शब्द से किसी निश्चित वस्तु

या अर्थ का बोध होता है। कुछ अपवादों को छोड दिया जाए तो शब्द और अर्थ का कोई नैसर्गिक संबंध नहीं है। समाज द्वारा यह संबंध मान लिया गया है। उसी के अनुसार शब्द के साथ बिम्ब या वस्तु का मानसिक रूप सामने आ जाता है। हर शब्द या ध्वनि के निश्चित प्रतीक होते हैं । जन्म के बाद समय के साथ जैसे-जैसे चेतना का विकास होता है वैसे वैसे परिवेश की वस्तुओं से मनुष्य की पहचान होती जाती हैं । प्रत्येक वस्तु के साथ जुडा शब्द (प्रतिक) मनुष्य के मस्तिष्क में बिम्ब अंकित करता है। उसलिए अनेक बार वस्तु के सामने न होने पर भी हम मानस में उसे देख सकते हैं । इस तरह वस्तु और उसका वाचक शब्द मनुष्य के मन पर संस्कार करता है। यह क्रिया एक ही समय में घटित होने से वस्तु देखते ही उससे जुडा शब्द भी सामने आ जाता है। 'इमली' का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाना या 'शेर' कहते ही भय के भाव को महसूस करना इन दोनों की अभिन्नता के ही उदाहरण हैं । वस्तु के सामने न होने पर भी उसकी प्रतीति उससे जुडे अर्थ के कारण ही होती है। जिसका बिम्ब हमारे मानस पर अंकित होता है। इस तरह शब्द तथा अर्थ का संबंध विद्‌वानों के द्‌वारा अनेकानेक रूपों में बताया गया हैं।

6.2.2 अर्थबोध के बाधक तत्व

विद्‌वानों के द्‌वारा अर्थबोध के बाधक तत्वों का भी विचार किया गया हैं । डॉ. सुधाकर कलावडे ने अर्थबोध (संकेतग्रह) के निम्न बाधक कारणों का उल्लेख किया हैं ।

*** समानाधिकरण का अभाव -**

वक्ता तथा श्रोता के बीच समानाधिकरण का अभाव होने से अर्थबोध नहीं होता है। समानाधिकरण के अनेक मुद्दों की चर्चा उन्होंने की हैं । उदाहरणार्थ-

अ) भाषिक समानाधिकरण

वक्ता तथा श्रोता का एक ही भाषा का प्रयोग होना आवश्यक है। श्रोता केवल हिन्दी जाननेवाला ही होगा तो अन्य भाषा के शब्द (विशेषत: प्रादेशिक-विदेशी) उसके लिए निरर्थक सिद्ध होंगे । वह शब्दों का अर्थ जान नहीं पाएगा । ऐसे में दो भाषा जानने वाले (दुभाषिया) की सहायता से अर्थ को जाना जा सकता है ।

ब) बौद्‌धिक समानाधिकरण

वक्ता तथा श्रोता के बौद्‌धिक स्तर में समानता का होना आवश्यक है। बिना एक ही बौद्‌धिक स्तर के अर्थबोध नहीं होगा । जैसे - साहित्य से जुडे विषय, दर्शन, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र आदि को समझने के लिए विशेष बौद्‌धिक स्तर अपेक्षित है, वह श्रोताओं में न होने से उनकी समझ में यह बाते नहीं आ पाएगी। वक्ता के द्‌वारा भाषिक स्तर उँचा उठाने के लिए या पांडित्य प्रदर्शन के लिए अलग भाषा का प्रयोग किया गया तो श्रोता आपस में बातचीत करने लग जाएंगे इसलिए भाषिक समान स्तर आवश्यक है।

क) भावात्मक समानाधिकरण

यह काव्य-कविता के प्रसंग में आवश्यक है। कारण कविता का सौन्दर्य शब्द के अर्थ तक ही सीमित नहीं होता । कविता की अनुभूति एवं रमणीयता सहृदय ही ग्रहण करता है।

✻ संकेत का विसमरण

शब्द के अर्थ को जानने के बाद उसे याद करना आवश्यक होता है परंतु कई बार शब्द का अर्थ जानने के बावजूद ऐन वक्त पर उसका विसमरण होने से अर्थबोध में बाधा पडती है। अनेक नये शब्द या जिन शब्दों का प्रचलन कम हैं ऐसे शब्दों के बारे में यह बात देखी जाती है।

✻ भ्रान्त अर्थज्ञान

शब्दों का सही ज्ञान न होने पर उसके संबंध में भ्रांत धारणा निर्माण होती है। विशेषत: अंग्रेजी शब्दों को लेकर यह बात दिखाई देती है। जैसे - स्टाइल टाहलस के अर्थ में, नेबर (पडोसी के अर्थ में) यह भ्रांत अर्थज्ञान के कारण है।

✻ संस्कारजन्य दृढता का अभाव

शब्द के अर्थ की पुनरावृत्ति करने से वह तर्क मन में दृढ हो जाता है जो शब्दों के सही ज्ञान के लिए आवश्यक है। इसलिए बोध से अधिक महत्व आवृति को दिया गया है। उपयुक्त कारणों के अलावा अतिदूरता (वक्ता - और श्रोता के बीच दूरी का अधिक होना), अतिसमीपता (बिलकुल कानों के पास आकर बोलने से) ज्ञानेंद्रिय में दोष होने से (आँखों से दिखाई न देना, कानों से सुनाई न देना) मन की एकाग्रता का न होना, वक्ता का अत्यंत धीमी आवाज में बोलना, अनेक व्यवधानों जैसे - शोरगुल का होना, दो वक्ताओं की आवाजें एक दूसरे में मिल जाना आदि अनेक कारण अर्थबोध में बाधा निर्माण करते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अर्थबोध लिए केवल शब्दों का होना पर्याप्त नहीं हैं, इसके अलावा भी कई बातें ऐसी हैं जो अर्थबोध के लिए आवश्यक हैं ।

6.2.3 अर्थ प्रतीति

ध्वनि या शब्द के साथ वस्तु का संबंध स्थान ही अर्थबोध या संकेतग्रह कहलाता है। प्रतिभा, ज्ञान, अनुभव और ग्रहणशक्ति अलग-अलग होने के कारण अर्थ का स्वरूप निश्चित करना कठिन हो जाता है। कारण एक ही शब्द विभिन्न संदर्भो में अलग-अलग अर्थ का वाचक हो जाता है। इनता ही नहीं एक ही शब्द भिन्न स्थितियों में मानसिक दशा के कारण भिन्न-भिन्न अर्थो में प्रकट होता है, तब अर्थप्रतीति सही रूप से करना कठिन हो जाता है। भारतीय परंपरा में अर्थप्रतीति के आठ साधन माने गये है जो अस प्रकार है -

✻ **व्यवहार -** अर्थबोध के लिए व्यवहार सबसे ज्यादा उपयोगी और प्रमुख साधन है । मनुष्य जन्म से लेकर विभिन्न अवस्थाओं में संसार की सभी वस्तुओं का ज्ञान जैसे - वस्तुओं के नाम, व्यक्तियों के नाम, परिवेश - आदि व्यवहार से ही प्राप्त करता है। वस्तु-व्यक्ति देखकर ही उनके नाम बच्चे को बताएँ जाते हैं, जैसे जैसे वह बडा होता है। उसका व्यवहार का दायरा (स्कूल आदि) भी बढ़ता जाता है और बाद में बडा होने पर वह स्वयं ही ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता अर्जित कर लेता है। इसलिए व्यवहार अर्थबोध का महत्त्वपूर्ण साधन है।

✻ **आप्त वाक्य-** किसी वस्तु का यथार्थ चित्रण करने वाले को आप्त वाक्य कहा जाता है। जो बात व्यवहार से नहीं जानी जा सकती उसके बारे में किसी विद्वान, सिद्ध, संतों की बात से जानने का प्रयास करना । जैसे - ईश्वर, मोक्ष, स्वर्ग आदि के बारे में आप्तवाक्य से ही जाना जा सकता है।

* **व्याकरण –** व्युत्पति, अन्वय, समास, शब्द, रूप आदि व्याकरण के विषय हैं, जिनसे अर्थबोध होता हैं । शब्दों के अर्थगत् सूक्ष्म भेद को स्पष्ट करने में व्याकरण ही मदद करता है।

* **कोश**

कोश की सहायता से अनेक अज्ञान शब्दों के अर्थ को जाना जा सकता अ भाषाज्ञान के लिए कोश की उपयोगिता बहुत ही अधिक है। कोश ज्ञात शब्दों के आधाार पर अज्ञात शब्दों का अर्थबोध कराते हैं । एक शब्दों के अनेक अर्थो के संबंध में कोश सहायता करता है।

* **उपमान**

सदृश्य वस्तु बता कर किसी शब्द का अर्थ बताना, उसे समानता या सादृश्यता कहा जाता है। समानता से आशय रूप, गुण, स्वभाव तथा कर्म आदि की सादृश्यता है। किसी की निडरता के लिए उसे शेर की उपमा देना – सादृश्यता है।

* **वाक्यशेष (प्रकरण)**

प्रकरण का अर्थ है प्रसंग । जब किसी शब्द के अनेक अर्थ होत है तब व्यक्ति उस शब्द का अर्थ प्रकरण से ग्रहण करता है। जब कोई व्यक्ति किसी वाक्य में विशेष शब्द का व्यवहार करता है, तब वह उसके अनेक अर्थो के होते हुए भी केवल एक अर्थ में लेता है और प्राय: श्रोता भी उसे उसी अर्थ में ग्रहण करता है।

* **विवृति या व्याख्या**

कभी–कभी अनेक शब्द ऐसे होते है जिन्हें केवल अर्थ देकर स्पष्ट नहीं किया जा सकता । उसके लिए व्याख्या की आवश्यकता होती है। विशेष रूप से पारिभाषिक शब्द, तकनीकी या दार्शनिक शब्द बिना व्याख्या किये समझाए नहीं जा सकतें ।

* **प्रसिद्ध पद का सान्निध्य**

प्रसिद्ध या ज्ञान शब्दों की निकटता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात हो जाताहै। उसके लिए कोश देखने की आवश्यकता नहीं होती ।

इन विभिन्न साधनों का महत्त्व अर्थनिर्णय में अनन्यसाधारण है। बिना इनके अर्थज्ञान संभव नहीं है।

6.2.4 अर्थपरिवर्तन के कारण

शब्द के द्वारा मनुष्य भाव तथा अर्थ को सम्प्रेषित करता है। प्रत्येक शब्द का अर्थ अवश्य होता है पर व्यक्ति, परिवेश, संदर्भ, समय, प्रसंग के साथ वह परिवर्तित होता है। शब्दों के अर्थों में यह बदलाव कैसे आता है, शब्द का यह अर्थपरिवर्तन किन स्थितियों में होता है यह देखा जाता है। अर्थपरिवर्तनों के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ कारणों की चर्चा करेंगे –

* **बल का अपसरण**

किसी शब्द के उच्चारण में यदि एक ध्वनि पर बल दिया जाएँ तो दूसरी ध्वनियाँ निर्बल होकर समाप्त हो जाती है। तब बल का अपसरण अर्थभेद निर्माण करता है। जैसे –

'गोस्वामी' शब्द पहले गायों के स्वामी के लिए प्रयुक्त होता था । गाय धन का प्रतीक थी और धार्मिक दृष्टि से पूजनीय थी। इसलिए सन्मानित और धार्मिक व्यक्ति गोस्वामी कहलाता था । आगे चल कर 'इंद्रियों का स्वामी' अर्थात् संत पुरुष के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ । वर्तमान में 'तुलसीदास' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

इसी तरह 'ड्रेस' शब्द फ्रेंच और पुरानी अंग्रेजी में इसका अर्थ हैं सीधा करना, कहना, सफाई करना, सजाना । जैसे - घाव की पट्टी करना, ड्रेसींग, बच्चों की स्कूल की पोशाख आदि ।

※ पीढी परिवर्तन

दो अथवा इससे अधिक पीढियों के बाद जो अन्य परिवर्तन आते है उनके साथ-साथ भाषा और अर्थ में भी परिवर्तन आते है। शब्द तो वही रहता हैं पर वस्तु नई हो जाती है 'पत्र' शब्द-प्रारंभ में लोग पेड के पत्ते पर या पत्र पर लिखते थे उसे 'पत्र' कहा जाता था । बाद में भोज वृक्ष की छाल को लेखन सामग्री के रूप में उपयोग में लाया जिसे 'भोजपत्र' कहते हैं । धातु की तख्तियों पर भी लिखा जाता है जिन्हें ताम्रपत्र, रजतपत्र कहते हैं । धातु के पतले वर्ख को भी पत्र कहा जाता है। वर्तमान में कागज पर लिखा जाता है वह पत्र कहलाता है। लिखित संदेश का साधन पत्र है। कुशल, प्रवीण ऐसे ही शब्द हैं ।

※ परिवेश परिवर्तन

भौगोलिक, सामाजिक, भौतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश के कारण शब्दों के अर्थ में परिवर्तन आता है।

भौगोलिक वातावरण के कारण शब्दों के अर्थ में आए हुए परिवर्तन के उदाहरण है - कॉर्न, उष्ट्र आदि। अंग्रेजी में कॉर्न जिसका अर्थ गेहू है। स्कॉटलैंड में बाजरा और अमेंरिका में मका है।

ऋग्वेद में उष्ट्र शब्द भैंसा वाचक है, मरुभूमि में आर्यों ने ऊँट को देखा तो उष्ट्र शब्द का प्रयोग ऊँट के अर्थ में किया गया ।

सामाजिक परिवेश के कारण अर्थ बदल जाता है। घर में बहन के अर्थ में प्रयुक्त सिस्टर शब्द, अस्पताल में नर्स हैं तो चर्च में ईसाई उपदेशिका के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

भौतिक परिवेश के कारण भी अर्थपरिवर्तन होता है। जैसे - शीशा का अर्थ है दर्पण, दूसरा अर्थ है धातु, तीसरा अर्थ है काँच ।

सांस्कृतिक परिवेश में शब्द के अर्थ बदल जाते हैं । जैसे - चावल, अक्षता, भात का उदाहरण लिया जा सकता हे ।

राजनीतिक परिवेश के कारण अर्थपरिवर्तन होते है। जैसे - पार्टी (राजनीतिक दल), होम मिनिस्ट्री (गृहमंत्रालय) आयोग आदि राजनीतिक परिवेश के शब्द हैं ।

※ अज्ञान या भ्रांति

अज्ञान तथा भ्रांति के कारण शब्दों में नया अर्थ आ जाता हैं । जैसे - असूर शब्द पहले देववाचक था। असूर में का 'अ' निषेधसूचक समझ लिया गया । उसलिए असूर शब्द

का अर्थ हो गया असूर, राक्षस । निखालिस, नेबरर शब्द उसके उदाहरण हैं । जिनमें 'नि' की तथा 'र' की आवश्यकता नहीं है। नेबर को नेबरर खालिस को निखालिस कहना अज्ञान सूचक है।

※ अंधविश्वास

लोक में प्रचलित गहन विश्वास के कारण शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है। विश्वास है कि अपने गुरू का अपने बडे बेटे का, पत्नी, पति का नाम नहीं लेना चाहिए, नाम लेने से उम्र घट जाती है। इसलिए इनका नाम प्रकारांतर से लिया जाता है। जैसे - गुरू के लिए आचार्य जी, गुरूजी, भगवान आदि। पति के लिए मुन्ने के पापा, पत्नी के लिए घरवाली, मुन्ने की अम्मा, इतना ही नहीं तो लोक विश्वास है कि सुबह-सुबह कंजूष आदि कहने से भोजन नहीं मिलता । रात में बिच्छू-साँप आदि के लिए कीडा-जानवर आदि कहते हैं ।

※ लाक्षणिकता अथवा आलंकारिक प्रयोग

साहित्य प्रकार अपने भावों को आकर्षक कलात्मक तथा सुंदर रीति से प्रस्तुत करते हैं । इसके द्‌वारा प्रयुक्त शब्द नवीन अर्थ में प्रचलित हो जाता है। इनके प्रयोग से अर्थ में विशेषता और नवीनता आ जाती है। जैसे - मीठे बोल, कटु अनुभव,रूखी हँसी, चाँद का मुख, रेगिस्तानी हरियाली, सुराही-सी गर्दन, चार चाँद लगा आदि शब्दों के प्रयोग लाक्षणिकता के उदाहरण हैं जो विशेष अर्थ प्रदर्शित करते हैं । काव्य में इस प्रकार आलंकारिकता का प्रयोग अधिकता से दिखाई देता है।

※ अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेना

एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्द के जाने से उसके अर्थ में परितर्वन हो जाता है। वह शब्द नया अर्थ देने लगता है। जैसे - फारसी में 'मुर्ग' शब्द पक्षीवाचक है, संस्कृत में मृग शब्द पशुवाचक है, तो हिन्दी में मृग शब्द का अर्थ 'हिरन' हो गया है । 'मुर्ग' का अर्थ मुर्गा (पक्षी विशेष) हो गया है।

अंगरेजी 'क्लॉक' शब्द घडीवाचक था। गुजराती में 'कलाक' का अर्थ एक घण्टा हो गया ।

हिन्दी की 'नीला' शब्द गुजराती में 'लिलो' होकर हरे रंग का अर्थ देता है।

※ नवीन वस्तुओं का नामकरण

मनुष्य अपनी आवश्यकतों के अनुसार नवीन वस्तुओं का निर्माण करता हैं, साथ ही वैज्ञानिक अनुसंधान भी निरंतर होता रहता है। ऐसी स्थिति में नई वस्तु के निर्माण के बाद अपनी सीमित शब्द संपत्ति के द्‌वारा उनका नामकरण करता अ शब्द वही रहते हैं पर अर्थ नया आ जाता है।

जैसे - कलम शब्द के लिए वर्तमान में पेन शब्द का प्रयोग किया जाता है। टाईपराइटर के लिए हिन्दी में कोई शब्द नहीं था, पर टाँकने की कला थी, इसलिए 'टंकन' शब्द आया रेडियो के लिए आकाशवाणी, सैटेलाईट के लिए उपग्रह, दण्ड यानी 'जुर्माना' शब्द प्रचलित हुए ।

※ अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग

मनुष्य उन्हीं शब्दों का प्रयोग करना चाहता है जो सुनने में अच्छे लगे, जिससे मनुष्य की सभ्यता, सुरूचि प्रतिबिंबित होती है । भाषा भी इस तरह संस्कारों की, रूचियों की अभिव्यक्ति का साधन है। कई बातें अश्लिलता के अंतर्गत आती है। जो मनुष्य के ह्रदय में लज्जा उत्पन्न करती है। जैसे – मलमूत्र–त्याग संबंधी बात कहने के लिए दीर्घशंका, लघुशंका, मैदान जाना आदि का प्रयोग किया जाता हैं । जुगुप्सा जिन वस्तुओं को देख कर घृणा निर्माण होती हैं, वे बातें, वस्तुएँ समाज वर्ज्य मानता हैं । जैसे – नाक बहना, मख्खियाँ भिनभिनाना आदि प्रयोग शिष्टता के अनुकूल नहीं माने गये हैं । अमंगल – मृत्यु आदि से संबंधित शब्दों का उच्चारण मनुष्य सीधे–सीधे नहीं करता, उन्हें प्रकारांत से कहता हैं । जैसे – गोलोक सिधारना, पंचतत्त्व में विलीन होना, शांत होना । चेचक की बीमारी को माता, आई कहना, दुकान बंद करने को दुकान बढाना, दीपक का बूझना न कहकर दीपक बडा किया कहना आदि । किसी स्त्री के पति की मृत्यु होने को, माँग धुल जाना, माँग सूनी होना, चुडी बडी होना, कहा जाता है।

ऐसे कई उदाहरण हमें दिखाई देते हैं जो लज्जा, घृणा, भय, अमंगल, बडी बीमारी से जुडे हैं , उनके लिए सुश्राव्यता का प्रयोग किया जाता है।

✼ सामान्य के लिए विशेष शब्द का प्रयोग

कभी कभी ऐसा होता हैं कि कोई एक शब्द ही उस वर्ग का प्रतिनिधि होकर सूचना करने लगता है 'स्याह' शब्द से बना है स्याहीं शब्द । स्याही का रंग काला होता था – लेखन के काम आने वाला द्रव पदार्थ, पर आज नीले, हरे, लाल या अन्य किसी भी रंग की स्याही के लिए इस शब्द का ही प्रयोग होता है।

इसी तरह 'सब्ज' का अर्थ होता है हरा । 'सब्जी' का अर्थ है हरी तरकारी परंतु आज सभी तरकारी के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। आलू, दाल, बेसन भी आज सब्जी के अर्थ में ही प्रयुक्त किये जाते हैं ।

✼ अधिक शब्दों क लिए एक शब्द का प्रयोग करना (प्रयत्नलाघव)

मनुष्य कम से कम श्रम में अधिक से अधिक काम करना चाहता है। भाषा में भी उसकी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है । स्वन विज्ञान में उसी मुखसौकर्य का विवेचन किया जाता है। कुछ अ न्य उदाहरणों में इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते है। जैसे – बाइसिकल को साइकिल, रेल्वे स्टेशन को स्टेशन, मोटरगाडी को गाडी कहना आदि ।

✼ प्रकरण भिन्नता

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते है। प्रसंगानुकूल प्रकरण के आधार पर उस शब्द का वैसा ही अर्थ लगा लिया जाता है। हर एक व्यक्ति, एक शब्द को उसी अर्थ में नहीं लेता जिस अर्थ में दूसरा ग्रहण करता है। जितनी समुदाय की घनिष्ठता कम होगी उतना अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

उपर्युक्त अर्थपरिवर्तन के कारणों के अलावा भी कई कारण है। जैसे – सामान्य व्यवहार में आने वाले शब्द, अर्थगत अनिश्चितता, एक ही शब्दों के दो रूपों का प्रचलन, शब्दों के प्रयोग की अतिशयता, साहचर्य के कारण गौण अर्थ की प्रमुखता, पुनरूक्ति,

नमुना प्रदर्शन, शिष्टाचार, भावावेश, व्यंग्य आदि अनेक कारण दिखाई देते हैं ।

6.2.5 अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ

भाषाविज्ञान की शाखा अर्थविज्ञान में शब्दों के अर्थ का अध्ययन किया जाता है। अर्थ कैसे बदलता है? अर्थपरिवर्तन कभी निश्चित रूप में एक जैसा नहीं होता, वह कब होता है? कितने समय के बाद होता हैं किन शब्दों को लेकर होता हैं इसके बारें में निश्चित नहीं कहा जा सकता । अर्थपरिवर्तन अनेक दिशाओं में होता है। कभी किसी शब्द का अर्थ व्यापक बन जाता है तो कभी वह संकुचित अर्थ देने लगता है। कभी उसका पुराना अर्थ परिवर्तित होकर नया अर्थ देने लगता है तो कभी शब्दों के अच्छे या कभी बुरे अर्थ भी निकलते हैं । अर्थपरिवर्तन की यह प्रक्रिया जिस दिशा में होती है, इसके अध्ययन को भाषाविज्ञान में अर्थविकास या अर्थ-परिवर्तन की दिशा कहा जाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अर्थपरिवर्तन की तीन दिशाएँ प्रस्तुत की हैं -

*** अर्थविस्तार**

अर्थविस्तार से तात्पर्य है, अर्थ का व्यापक या विस्तृत हो जाना । अर्थात् पहले कोई शब्द सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता है और बाद में वह अधिक व्यापक स्तर पर प्रयुक्त होने लगे तो वह 'अर्थविस्तार' कहलाता है। जैसे - 'तेल' शब्द जो मूलत: तील के तत्व या सार के लिए प्रयुक्त होता था 'तील' का सार यानी तेल, पर कालांतर में अन्य तेल को भी तैल ही कहा जाने लगा । जैसे - नारियल का तेल, मूँगफली का तेल, बादाम का तेल, सरसो का तेल, इतना ही नहीं लौंग तेल या मिट्टी का तेल या घासलेट - अर्थात् जो मात्र 'तील' तक सीमित था उसका क्षेत्र व्यापक बन गया।

प्रवीण, कुशल, गवेषणा, पंडित, अभ्यास, स्याही अर्थविस्तार के उदाहरण हैं ।

कई बार बडे प्रसिद्ध महत्व के व्यक्तिवाचक शब्द भी जातिविषयक बन कर अपने अर्थ का विस्तार करते है। जैसे - गांधी, हिटलर, कालिदास, प्रेमचंद, चाणक्य आदि ।

*** अर्थसंकोच**

जब कोई शब्द अपना व्यापक अर्थ छोडकर सीमित या संकुचित रूप में प्रयुक्त होने लगता है तब अर्थपरिवर्तन की यह दिशा 'अर्थसंकोच' कहलाती है।

सभी भाषाओं में अर्थसंकोच की मूल प्रवृत्ति मिलती है। वास्तव में भाषा आरंभ के काल में सभी शब्द सामान्य रहे होंगे परंतु विकास के साथ साथ विशिष्ट की भावना होते गई और अर्थसंकोच होता गया । परिस्थितियों के कारण, मनुष्य स्वयं अपनी आवश्यकता के अनुसार अर्थभेद करने की शक्ति रखता है जिससे अर्थसंकोच होता है।

अर्थसंकोच का प्रसिद्ध उदाहरण है 'मृग्' ! संस्कृत का यह शब्द पहले 'पशु' सामान्य के अर्थ में चलता था उसलिए सिंह के लिए मृगराज, मृगेन्द्र, मृगपति शब्द का प्रयोग किया जाता है। बाद में मृग शब्द केवल हिरन के अर्थ में सीमित हो गया । जबकि सिंह केवल हिरनों का स्वामी नहीं है बल्कि जंगल के सभी पशुओं का स्वामी हैं । इसलिए शिकार के लिए मृगया शब्द प्रसिद्ध है।

इस तरह के अनेक उदाहरण भाषा में मिल जाते हैं । जैसे - आदित्य, दुर्लभ, सर्प,

भार्या, श्राद्ध, सब्जी आदि।

अर्थसंकोच कई कारणों से होता हैं । समास (हरी–भरी) उपसर्ग (प्रताप, अनुताप, संताप) विशेषण (अम्बर – श्वेतांबर, दिगंबर, नीलाम्बर) पंकज, 'कमल' के अर्थ में संदर्भ या प्रसंग (दवा की गोली, बंदूक की गोली) जलज, पर्वत, सभ्य आदि अर्थसंकोच के उदाहरण हैं ।

*   **अर्थादेश**

अर्थादेश में किसी शब्द के अर्थ में इतना अंतर आ जाता है कि इस शब्द का मूल अर्थ ही समाप्त हो जाता है और उसके स्थान पर नवीन अर्थ आ जाता है। आदेश का अर्थ ही हैं परिवर्तन । इसमें अर्थ न संकुचित होता हैं न विस्तृत । उसके विपरीत एक अर्थ के स्थान पर दूसरा अर्थ आ जाता हैं । उसमें मुख्य अर्थ के साथ एक गौण अर्थ भी चलता है। बाद में गौण अर्थ ही मुख्य का स्थान ले लेता है। ऐसा भाव साहचर्य के कारण होता है। जैसे – 'मौन' शब्द का मूलार्थ था मुनि संबंधी या मुनियों द्वारा किया जाने वाला आचरण । पहले मुनि ही मौन रखते थे । बाद में उसके स्थान पर चुप्पी यह अर्थ ग्रहण किया जाने लगा ।

अर्थादेश के अंतर्गत अच्छे या बुरे अर्थपरिवर्तन के आधार पर दो दिशाएँ और बनायी गई हैं वे हैं अर्थापकर्ष और अर्थोत्कर्ष ।

i)   अर्थापकर्ष –

जब शब्दों के अर्थ अच्छे से बुरे बन जाते है या जब अर्थ गिर जाता हैं तो उसे अर्थापकर्ष कहते है।

तत्सम शब्द और तदभव शब्द में अंतर आकर शब्दों के अर्थ गिर जाते है। जैसे – गर्भिणी (स्त्री के लिए), गाभिन (पशु के लिए) महाजन, गुरु, दादा, आदि शब्द अपने अच्छे अर्थ को त्याग कर नये अर्थ प्रकट करने लगे हैं । जिन अर्थो और भावों को समाज गोपनीय समझता है इनको प्रकट करने वाले शब्द भी अपना प्रभाव और गौरव खो बैठते है। उस तरह अर्थ का अपकर्ष होता है।

ii)   **अर्थोत्कर्ष –** यह अर्थापकर्ष के बिलकुल विपरीत है। अर्थोत्कर्ष का अर्थ है, अर्थ का उत्कर्ष अर्थात् पहले निकृष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द कालांतर में उच्च तथा अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। उसके उदाहरण अत्यल्प मिलते हैं । 'साहसी' शब्द का उदाहरण सर्वज्ञात है जो संस्कृत में डाकू, दुराचारी के लिए प्रयुक्त होता था तो अब हिम्मतवाला के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कर्पट, मुग्ध उसी तरह के उदाहरण हैं ।

6.3   स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न –

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

*   अर्थ परिवर्तन के कारणों की चर्चा कीजिए ।

....

....

....

* अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का सोदाहरण विवेचन कीजिए ।

....

....

....

क) टिप्पणियाँ

* अर्थ प्रतीति

....

....

....

* शब्द और अर्थ का संबंध

....

....

....

* अर्थबोध के बाधक तत्त्व

....

....

....

* अर्थविस्तार

....

....

....

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* अर्थसंकोच का एक उदाहरण स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

* अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ कौनसी है ?

....

....

....

* ‘अर्थादेश’ का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

* अर्थोत्कर्ष का एक उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए –

* ‘तेल’ शब्द अर्थ परिवर्तन की किस दिशा का उदाहरण है ?
  अ) अर्थविस्तार ब) अर्थसंकोच क) अर्थोत्कर्ष ड) अर्थापकर्ष
* पीढी परिवर्तन का कौनसा शब्द है?
  अ) पत्र ब) मृग क) सब्ज ड) दर्पण
* बहन, उष्ट्र, शीशा शब्द परिवर्तन के किस कारण में समाविष्ट होते है ?
  अ) लाक्षणिक ब) पीढी क) परिवेश ड) अंधविश्वास

6.4 सारांश

भाषा अर्थवान् स्वनों का समूह है। शब्द शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा है। अर्थतत्व के संबधं में ऋग्वेद, महाभारत के वनपर्व, शतपथ ब्राह्मण, निरूक्त, न्यायमिमांसा, व्याकरणशास्त्र, वाक्यपदीय में विचार किया गया है।

19 वीं शती में माइकेल ग्रीस ने ‘सिमेटिक्स’ शब्द का प्रयोग किया जो शब्दार्थ का नियम, शब्दों के अर्थे में परिवर्तन के विकास और इतिहास का ऋणबद्ध विचार विमर्श है। अर्थविज्ञान में अर्थ का स्वरूप, शब्द और अर्थ का संबंध, अर्थबोध किस तरह होता है इस का अध्ययन किया जाता है।

किसी शब्द से अर्थ का ज्ञान स्वयं किसी चीज का अनुभव करके होता है या फिर दूसरों के अनुभवद्वारा होता है, इन दोनों रूपों में अर्थ की प्रतीति होती है।

शब्द और अर्थ का संबंध अभिन्न है। शब्द भाषा के प्रतीक हैं जो अर्थबोध कराते है। शब्द से ही किसी निश्चित वस्तु के अर्थ का बोध होता है। कारण प्रत्येक वस्तु के साथ जुडा शब्द (प्रतीक) मनुष्य के मस्तिष्क में बिम्ब अंकित करता है उसलिए वस्तु देखते ही इससे जुडा शब्द भी सामने आ जाता है। शब्द और अर्थ को लोकर विदवानों ने अनेक मत प्रस्तुत किये है।

शब्द का अर्थ इतना सीमित नहीं है। प्रतिभा, ज्ञान, अनुभव और ग्रहणशक्ति, भिन्न होने से अर्थ का स्वरूप भिन्न हो जाता है। कारण एक ही शब्द विभिन्न संदर्भो में अलग-अलग अर्थ का वाचक हो जाता है। ऐसी स्थिति में शब्द के अर्थ की प्रतीति करना कठिन होता है।

भारतीय परंपरा में अर्थबोध के साधनों का उल्लेख किया गया है। ध्वनि या शब्द के

साथ वस्तु का संबंध स्थापन ही अर्थबोध या संकेतग्रह कहलाता है। व्यवहार,. आप्तवाक्य, व्याकरण, उपमान, कोश, वाक्यकोष, विवृत्ति या व्याख्या तथा प्रसिद्ध पद का सान्निध्य यह अर्थप्रतीति के साधन बनाये गये हे जो अर्थ निर्माण करते हैं ।

भाषावैज्ञानिकों ने अर्थ परिवर्तन के कारणों में प्रमुख हैं, बल का अपसरण, पीढी परिवर्तन, परिवेश परिवर्तन (भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, राजनीतिक) अज्ञान या भ्रांति, अंधविश्वास, लाक्षणिकता अथवा आलंकारिता का प्रयोग, व्यंग्य अन्य भाषाओं से शब्द उधार लेना! नवीन वस्तुओं का नामकरण, अशोभन के लिए शोभन, सुश्राव्यता, सामान्य के लिए विशेष शब्द का प्रयोग, अधिक शब्दों के लिए एक शब्द का प्रयोग, प्रकरण भिन्नता आदि ।

अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ अर्थविस्तार, अर्थसंकोच और अर्थादेश तथा अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष पर भी विचार किया है।

अर्थविस्तार का अर्थ है अर्थ का व्यापक या विस्तृत हो जाना । 'तेल' शब्द मूलत: तिल्लि के तेल के लिए प्रयुक्त होता था परंतु आज मिट्टी का तेल, नारियल का तेल, मूँगफली का तेल आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसतरह प्रवीण, कुशल,गवेषणा शब्द भी अर्थविस्तार के उदाहरण हैं ।

शब्द जब अपना व्यापक क्षेत्र छोडकर सीमित अथवा संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है तब वह अर्थसंकोच कहा जाता हैं । उदाहरण. - मृग, सब्जी, दुर्लभ आदि ।
अर्थादेश में उस शब्द के मूल अर्थ के स्थानपर नया अर्थ आ जाता है।
इसकी दो दिशाएँ बनती हैं - अर्थापकर्ष में अर्थ गिर जाता हैं । जैसे - गर्भिणी (स्त्री के लिए) गाभिन (पशु के लिए) महाजन, गुरु, दादा उसी के उदाहरण हैं । तो अर्थोत्कर्ष का अर्थ हैं अर्थ का उत्कर्ष ।

साहसी जो संस्कृत में दुराचारी, डाकू के लिए प्रयुक्त होता था बाद में हिम्मतवाला के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा । मुग्ध, कर्मट उसी तरह के शब्द है। अर्थपरिवर्तन की ये तीन दिशाएँ बताई गई हैं ।

6.5 शब्दार्थ

अशोभन	-	जो सभ्य नहीं, शोभा न दे
शब्द	-	भाषाध्वनियों का अर्थवान् समूह

6.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* अर्थविस्तार के अन्य पाँच उदाहरणों की सविस्तर चर्चा कीजिए ।
* अर्थसंकोच के उदाहरणों का संकलन करके अर्थ समझने का प्रयत्न करो ।
* शब्द और अर्थ की प्रतीति को समझाइए ।

6.7 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* मुग्धबोध भाषाविज्ञान - डॉ. रामेश्वर, दयालु अग्रवाल
* सरल भाषाविज्ञान - डॉ. पितांबर सरोदे, डॉ. विश्वास पाटील

इकाई - 7
प्राचीन एवं मध्यकालीन
भारतीय आर्यभाषाओं का स्थूल परिचय

अनुक्रम

7.0 **उद्देश्य**

7.1 **प्रस्तावना**

7.2 **विषय–विरण**

  7.2.1 **प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ**

  7.2.2 **मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ**

7.3 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

7.4 **सारांश**

7.5 **शब्दार्थ**

7.6 **स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य**

7.7 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

7.0 उद्देश्य

* भारत में प्रयुक्त भाषाओं के वर्गीकरण को जान सकेंगे ।
* भारतीय आर्य भाषाओं से परिचित हो सकेंगे ।
* प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास से परिचित हो सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

भारतवर्ष एक विशाल देश है। उसमें विभिन्न प्रदेश, विभिन्न अंचल, विभिन्न जाति, विभिन्न समूह निवास करते हैं । विभिन्नता इस देश की विशेषता हैं, अत–एव यहाँ प्रयुक्त भाषाएँ भी विविध और अनेक है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार भारत में 179 समृद्ध एवं विकसित भाषाएँ हैं, और लगभर 544 बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं । इन सभी भाषाओं को अध्ययन की सुविधा के लिए दो मुख्य वर्गो में विभाजित किया जाता हैं 1) आर्य भाषाएँ 2) आर्येत्तर भाषाएँ ।

1) आर्य भाषाएँ – आर्य भाषाओं के विकास को तीन कालखंडों में विभाजित किया जा सकता हैं ।

अ) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ - 1500 ई. पू. से 500 ई. पू.

आ) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ - 500 ई. पू. से. 1000 ई

इ) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ - 1000 ई. से आजतक

(अ) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ -

उस काल की भाषा दो रूपों में मिलती हैं ।

(i) वैदिक संस्कृत

यह विश्व की प्राचीन भाषा हैं । इस भाषा में चार वेद लिखें गये हैं ।

ii) **लौकिक संस्कृत -**

लैकिक संस्कृत वैदिक भाषा से भिन्न थी । वैदिक भाषा की कई ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में पूर्णतया बदल गयी थी।

(आ) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ - उसके तीन कालखंड हैं -

i) पालि काल - 500 इ. पू. से 0 ई. तक

ii) प्राकृत काल - 0 ई. से 500 ई तक

iii) अपभ्रंश काल - 500 ई. से 1000 ई ।

इ) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास ई. 1000 से प्रारंभ हुआ हैं । उसे पाँच वर्गों में विभाजित किया जाता हैं

(i) पैशाची - सिन्धी, लहंदा और पंजाबी ।

(ii) शौरसेनी - पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाडी हिंदी, गुजराती

(iii) अर्धमागधी - पूर्वी हिंदी ।

(iv) मागधी - बिहारी हिंदी, बंगला, असीमया और उडिया ।

(v) महाराष्ट्री - मराठी ।

(2) **आर्येत्तर भाषाएँ -**

भारत में अनार्य भाषा बोलने वालों के चार वर्ग हैं -

(i) द्रविड परिवार

(ii) आग्नेय, आस्ट्रिक या मुंडा परिवार ।

(iii) तिब्बति, चीनी या ब्राह्मी परिवार ।

(iv) अनिश्चित भाषा परिवार ।

द्रविड परिवार के अंतर्गत दक्षिण भारत का क्षेत्र आता है। इसके अंतर्गत तेलगु, कन्नड, तमिल और मलियालम भाषाएँ आती हैं ।

आग्नेय परिवार का क्षेत्र भारत का उत्तर पश्चिमी क्षेत्र हैं । इस परिवार में लगभर बीस भाषाएँ बोली जाती हैं जिनमें मुंडा भाषा प्रमुख है।

तिब्बत्ति परिवार की भाषाओं का एक छोर तिब्बत और दूसरा छोर चीन होने के कारण

इसका नाम तिब्बत्ति चीनी पडा है। उस परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं – लद्दाखी, नेवासी, बोरी, मेईतेई, आओ, सेमा, अंगामी ।

अनिश्चित भाषा परिवार के अंतर्गत दो भाषाएँ आती हैं – बुरूशास्की और अण्डमानी ।

इस प्रकार भारतीय भाषाओं के दो वर्गों (आर्य और आर्येत्तर) में भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं का अंतर्भाव हैं ।

7.2 विषय–विवरण

विश्व में भारत एक मात्र ऐसा देश हैं जहाँ हर क्षेत्र में विविधता परिलक्षित होती हैं । इस देश में अनेक जाति, धर्म सम्प्रदाय की भाषाएँ हैं । भाषा और बोलियों की दृष्टि से भारत समृद्ध है। यहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं, अत: उनका अध्ययन तभी संभव हो सकता है जब उनका वर्गीकरण किया जाय । उस दृष्टि से मुख्यत: दो वर्ग किए जाते हैं ।

7.2.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ –

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के अंतर्गत वैदिक एवं लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते हैं –

* **वैदिक संस्कृत –**

यह संसार की प्राचीनतम भाषा है। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नामक चार वेद लिखें गए है। असके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों और उपनिषदों की भाषा वैदिक संस्कृत ही है। यास्क और पाणिनि के पूर्व की भाषा को वैदिक भाषा, वैदिक संस्कृत या प्राचीन संसकृत कहा जाता है। इस काल के साहित्य को विद्वानों ने मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा हैं – संहिता ब्राह्मण और उपनिषद संहिता के अंतर्गत चारों वेद, ब्राह्मण भाग के अंतर्गत कर्मकाण्ड की व्याख्याएँ, वैदिक ऋषियों के आध्यात्मिक चिंतन से पूर्ण उपनिषदों में ज्ञान काण्ड की चर्चा है।

वैदिक भाषा में मूल भाषा की अधिकतर ध्वनियाँ सुरक्षित है। बाह्य प्रभाव के कारण कुछ नयी ध्वनियाँ आ गई थी और कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो गयी । वैदिक भाषा की ध्वनियों का विवेचन निम्न प्रकार से किया गया है –

* स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ , ॡ, ए, ऐ, ओ, औ ।
* वैदिक भाषा में स्वर था, उसका दीर्घ रूप ॠ था । ॡ भी स्वर थी और उसका दीर्घ रूप नहीं था बाद में ये दोनों ध्वनियाँ आक्षरिक हो गयी ।

ए. ऐ. ओ, औ संयुक्त स्वर थे इनका उच्चारण क्रमश: अइ, इ, आ,. अउ और आउ होता था ।

* **व्यंजन –**

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह ।

यह भाषा स्वर प्रधान तथा श्लिष्ट योगात्मक होने के कारण अत्यंत जटिल मानी जाती थी । वैदिक भाषा में संधियों और समासों का इतना प्रचलन नहीं था जितना आगे चलकर

लौकिक संस्कृत में दिखाई देता है।

* **वैदिक भाषा की विशेषताएँ –**

वैदिक भाषा को आज के शब्दों में विशेष 'ग्रंथ भाषा' (Literary Language) और लौकिक भाषा को उस काल की 'मुखभाषा' Spoken language कहा जाता है। वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

* वैदिक भाष में तीन स्वर – उदान्त, अनुदात्त, तथा स्वरित थे
* स्वराघात का बहुत महत्व था; स्वर की अशुद्धता पर अनर्थ की संभावना बढ जाती थी।
* वैदिक भाषा श्लिष्ट योगात्मक है, अत: यहाँ ध्वनि तत्व की स्वतंत्र सार्थकता नहीं होती ।
* वैदिक रूप रचना में जटिलता के साथ वैविध्य भी हैं।
* उसमें लृ स्वर का बहुलता से प्रयोग होता है।
* उपसर्गो का प्रयोग स्वतंत्र रूप से दिखाई देता हैं ।
* शब्द रूपों के स्तर पर भी इस भाषा में अनेक रूपता दिखाई देती है।
* वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वर की प्रमुखता है।
* वैदिक धातु रूपों में द्वित्व रूप, धातु से अ का आगम तथा धातु एवं तिडन्त प्रत्यय के बीच विभिन्न विकरणों का प्रयोग देखा जा सकता है।

लौकिक संस्कृत –

लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत के परिवर्तित रूपों से विकसित हुई है। इसे 'क्लासिकल संस्कृत' या 'देवभाषा' भी कहा जाता है। इसके अस्थिर रूपों की विविधता को एकरूपता प्रदान करने में पाणिनि का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्कृत भाषा का परिनिष्ठिकरण किया । संस्कृत व्याकरण 'अष्टाध्यायी' की रचना की । वैदिक भाषा में प्रचलित संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया के अनेक रूपों और विकल्पों के स्थान पर एक रूप निश्चित कर उन्होनें देववाणी या लौकिक संस्कृत का ऐसा व्याकरण तैयार किया कि वह जनभाषा के रूप में प्रचलित हो गयी । लौकिक संस्कृत में उच्चकोटि का साहित्य रचा गया । जैसे – रघुवंश, मेघदूत, शिशुपाल वध, नैषधचरित्र । इन महाकाव्यों के अतिरिक्त कालिदास, भवभूति–भास आदि के दुवारा नाटकों की रचा हुई हैं ।

लौकिक संस्कृत की ध्वनियों के संदर्भ में डॉ. राजकिशोर सिंह कहते हैं कि ''वैदिक संस्कृत की संपूर्ण ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में सुरक्षित हैं । उच्चारण की दृष्टि से कुछ अंतर अवश्य आ गया हैं ।'' जैसे – ऐ और औ का उच्चारण संयुक्त स्वरों के रूप में न होकर मूल स्वरों के रूप में होता है। ऐ और औ के उच्चारण में भी अइ, अउ परिवर्तन दृष्टिगत होता हैं । तो अनुस्वार का उच्चारण प्राय: अनुनासिक के समान दिखाई देता हैं । लौकिक संस्कृत बलाघात प्रधान भाषा थी। लौकिक संस्कृत में तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुब्रीहि, द्विगु अव्ययीभाव समास मिलते हैं ।

* वैदिक और लौकिक संस्कृत में अंतर –
* वैदिक में स्वरों की संख्या अधिक तो लौकिक संस्कृत में कम है तथा उसमें लृ स्वर का लोप हुआ है।
* शब्द भेद की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त अंतर है। वैदिक में प्रयुक्त अवस्तु, ईम, उकथ आदि शब्द प्रयोग लौकिक में नहीं मिलते।
* वैदिक में उपसर्ग धातुओं से भिन्न प्रयुक्त तो लौकिक में धातु से संबंद्ध होते हैं ।
* **लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ –**

(1) लौकिक संस्कृत में तीन लिंग, तीन वचन प्रयुक्त होते हैं ।

(2) इसमें कर्तृ, कर्म, भाव इन तीन 'वाच्य' का प्रयोग और आठ कारक हैं ।

(3) इसमें उत्तम मध्यम, प्रथम तीन पुरुष प्रयुक्त होते थे।

(4) इसमें दस लकार थे – लट्, लिट्, लुट्, लोट, विधिलिङ्, आर्शिलिङ्, लेट् तथा लेड् ।

(5) तद्धित तथा कृदन्त दोनों प्रकार के प्रत्ययों का प्रचलन था ।

7.2.2 **मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ –**

भारतीय आर्यभाषा के विकास की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का काल महत्त्वूर्ण है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के व्याकरणिक नियमों की जटिलता के कारण उसका जनसामान्य में प्रयोग कठिन को गया था तथा संस्कृत भाषा विकास के क्रम में जनमानस से दूर हो गई । भाषा के नियम के अनुसार इसका अपभ्रंश रूप प्रचलित हो गया । संस्कृत केवल शिक्षितों की भाषा हो गयी । मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा जनसामान्य तक पहुँच चुकी थी । मध्यकालीन आर्यभाषा के संबंध में डॉ. उदयनारायण तिवारी ने हिंदी भाषा का उद्भव और विकास में लिखा हैं कि व्याकरण के नियमों के जकड जाने पर संस्कृत का विकास रूक गया, परंतु बोलचाल की भाषा निरंतर विकसित होती जा रही थी । समस्त उत्तरापथ में आर्यो के प्रसार के साथ प्राचीन आर्यभाषा के रूप में परिवर्तन होता जा रहा था । भाषा में कालगत एवं स्थानगत भिन्नताएँ बढती जा रही थी और ई. पू. छठी शताब्दी तक प्राचीन भारतीय आर्यभाषा विकास के मध्य स्तर तक पहुँच गयी ।

सुनितिकुमार चटर्जी ने मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का नामकरण इस प्रकार किया हैं – आदिरूप, संक्रमणकालीन रूप, द्वितीय रूप और परवर्ती रूप । इसी के साथ उदयनारायण तिवारी, भोलानाथ तिवारी ने मध्यकालीन आर्य भाषाओं का विभाजन किया है। इन सभी विद्ववानों को दृष्टिपथ में रखते हुए डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय के विभाजन को स्वीकृत किया जा सकता है, जो इस प्रकार है –

क) आदि काल – 200 ई. पू. से 200 ई. तक – पालियुग

ख) मध्य काल – 200 ई. से 600 ई तक – प्राकृत युग

ग) उत्तर काल – 600 ई. से. 1000 ई तक अपभ्रंश युग

क)   आदिकाल या पालि युग

पालि भाषा का विकास हुआ । अपनी निष्पत्ति, व्युत्पति, नाम, अर्थ, क्षेत्र तथा प्रारंभिक स्वरूप आदि को लेकर पालि भाषा विकसित भाषा मानी जाती है। 'पालि' शब्द का मूल अर्थ है – मूलपाठ, बुद्धवचन, प्राचीन ग्रंथों में 'पालि' शब्द का प्रयोग पंक्ति के अर्थ में मिलता है। आचार्य बुद्धघोष ने पालि शब्द का प्रयोग बुद्धवचन एवं पाठ के अर्थ में किया है। आचार्य बुद्धघोष ने उसका संबंध बुद्ध की वाणी या उपदेशों से स्थिर किया है। यह माना जाता है कि पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'परियाय' से हुई है यथा – परियाय – पलियाय – पालियाय – पालि । 'पालयति रक्षतीति पालि' अर्थात् जिस भाषा से बुद्ध के वचनों की रक्षा हुई हैं वह पालि है। इतना निश्चित है कि मगध को ही पालि का मूल क्षेत्र माना जाता है । वास्तव में पालि बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ साथ न समग्र भारत की भाषा बन गई वरन उस युग में उसका अंतरराष्ट्रीय महत्त्व स्थापित हो चुका था । उसका प्रचार चीन, जपान और लंका तक परिव्याप्त था ।

पालि भाषा की निम्नलिखित भाषा वैज्ञानिक विशेषताएँ हैं – संस्कृत से पालि में पर्याप्त अंतर आ गया हे –

* स्वरों में ऋ, लृ, ऐ, औ, लुप्त हो गये ।
* ऋ के स्थान पर कहीं इ तथा कहीं अ हो गया
* 'म' ध्वनि अनुस्वार में बदल गई तथा विसर्ग (:) का प्रयोग समाप्त हो गया, और अ के साथ विसर्ग (:) के स्थान पर ओ का प्रयोग होने लगा । जैसे रामः रामो
* श, ष, स, में केवल स रहा गया ।
* व्यंजनान्त पद स्वरान्त हो गये । यथा – भगवान – भगवा
* दंत्य ध्वनियों का मूर्धन्यीकरण हो गया ।
* नाम तथा धातु रूपों में द्विवचन समाप्त हो गया ।
* आत्मनैपद का प्रयोग कम होने लगा ।
* र और वा के संयोग पर रा लुप्त हो गया । सर्व –सव्वा।
* संयुक्त व्यंजनों में परिवर्तन हुआ तथा व्यंजन द्वित्व हो गये ।
* यदि दोनों व्यंजन अंतस्थ हो तो र, वा लुप्त हो जाते हैं । जैसे – दुर्लभ – दुल्लभ ।
* संयुक्त व्यंजन में पहला नासिक्य हो तो संयुक्त व्यंजन बना रहता है – दन्त, शान्त ।
* संयुक्त व्यंजन के पहले का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है – सूत्र – सुत्र, मार्ग – मग्ग
* वैदिक संस्कृत की तरह पालि वैविध्य से पूर्ण स्वच्छंद प्रवृत्ति की भाषा हैं, संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से सीमित हो गई हैं, जबकि पालि स्वतंत्र रही है।
* वैदिक संस्कृत की अनेक ध्वनियाँ पाली में लुप्त हो गई हैं ।
* पालि में द्विवचन की प्राय विरलता है।
* पालि में ऋ, ॠ, लृ, ऐ और औ ध्वनियों का लोप हो गया हैं ।
* पालि में तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता हैं ।

* पालि में सरलता की प्रवृत्ति बहुतायत है। पालि और प्राकृत का ध्वनि समूह प्राय: समान है।
* पालि में शब्द व्यंजनान्त न होकर स्वरान्त हो गये हैं।
* संस्कृत विद्वानों की भाषा और पालि जन सामान्य की भाषा मानी जाती है।

(ख) प्राकृत भाषा –

मध्यकाल में 'प्रयुक्त भाषा' प्राकृत भाषा के नाम से जानी जाती है। जिस समय पालि उत्तर भारत की भाषा बन रही थी । इसी समय साधारण जनता की भाषा में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हो रहा था । जनता की भाषा प्राकृत कहलायी । 'प्राकृत' शब्द का अर्थ है जो पहले बनी, सृजित हुई या जिसका गढाव-रचाव पहले हुआ ।

प्राकृत भाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए डॉ. हिरालाल जैन ने लिखा हैं कि ''प्राकृत साहित्य अपने रूप एवं विषय की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के सर्वांग परिशिलन के लिए उसका साथ अद्वितीय है। उसमें उन लोकभाषाओं का प्रतिनिधित्व पाया जाता है जिन्होंने वैदिक काल एवं संभवत: उससे भी पूर्व काल से लेकर देश के नाना भागों को गंगा, यमुना आदि महानदियों के समान प्रवाहित किया है और उसकी साहित्यिक भूमि को उर्वरा बनाया है।'' व्यापक अर्थो में आर्य भाषाओं के द्वितीय चरण की तीन भाषाएँ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश 'प्राकृत' कहलाती है । परंतु सीमित अर्थो प्राकृत नाम साहित्यिक प्राकृतों के लिए प्रयुक्त होता है। विद्वान यह भी मानते हैं कि संस्कृत से पहले जो पैदा हुई वह प्राकृत है। नैसर्गिक रूप में यह वैदिक काल के पूर्व भी वर्तमान थी । वैदिक भाषा को स्वयं उस काल में प्रचलित प्राकृत बोलियों का साहित्यिक रूप माना जाता रहा । प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' में यह उल्लेख है कि जिस प्रकार जल समुद्र में प्रवेश करता है और भाप बनकर पुन: समुद्र से बाहर आता है इसी प्रकार प्राकृत से सब भाषाओं का उगम होता है और उसी में सब भाषाऐं फिर समाहित हो जाती है यह 'प्राकृत' शब्द का व्यापक अर्थ है। भाषा का यही स्वच्छंद रूप स्थानगत और कालगत विभिन्नताओं के कारण 500 ई. पूर्व से 1000 इ. तक पालि प्राकृत, अपभ्रंश, भाषा के रूप में विकसित हुआ । प्राकृत उस काल में लोकप्रिय भाषा बन गयी थी । राजशेखर ने स्पष्ट किया हैं कि – प्राकृत भाषा स्त्री के समान सुकुमार और संस्कृत पुरुष के समान कठोर है। इस बात की भी पुष्टि मिलती है कि प्राकृत अपने साहित्यिक रूप में कविता, नाटक और धर्म ग्रंथों की उन्नत भाषा थी । इसमें रचा गया साहित्य उदात्त कोटि का माना जाता है।

प्राकृत भाषा के संदर्भ में विद्वानों में विभिन्न मत दिखाई देते हैं । डॉ. पी. डी. गुणे की मान्यता है कि प्राकृतों का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ वर्ममान था । इन्हीं प्राकृतों से परवर्ती साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ । वेदों और पंडितों की भाषा के साथ-साथ यहाँ तक कि मंत्रों की रचना के समय भी एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो पंडितों की भाषा से अधिक विकसित थी । इस भाषा में मध्यकालीन भारतीय बोलियों की प्राचीनतम अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ वर्तमान थी । डॉ. श्यामसुंदर दास प्राकृत की व्युत्पत्ति संस्कृत से मानते है, जबकि डॉ. रामविलास शर्मा प्राकृत को जन साधारण की भाषा न मानकर साहित्यिक भाषा स्वीकार करते है। डॉ. राजकिशोर सिंह के अनुसार प्राकृत

जनभाषा थी, किंतु क्रमश: अशोक के द्‌वारा अपनाये जाने तथा शिलालेख आदि के माध्यम से वह साहित्यिक भाषा बन गई । साहित्यिक भाषा बन जाने पर उसके व्याकरण की ओर ध्यान दिया जाने लगा अंतत: यह भाषा संस्कृत की भाँति व्याकरण से बाँध दी गयी ।

✻ प्राकृत के प्रमुख भेद –

विभिन्न विद्‌वानों ने प्राकृत के अलग–अलग भेद माने हैं । परंतु धर्म, साहित्य तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित भेद माने जाते हैं –

1) धर्म के आधारपर प्राकृत के चार भेद हैं –
   पालि, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्रीय, जैन – शौरसेनी
2) साहित्य के आधार पर भी उसके चार भेद हैं – महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची
3) भाषाविज्ञान की दृष्टि से प्राकृत के पाँच भेद हैं – मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची

इस प्रकार भाषावैज्ञानिक एवं साहित्यिक दृष्टि से प्राकृत के मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी एवं पैशाची महत्त्वपूर्ण भेद माने जाते हैं ।

✻ मागधी –

मगध देश में बोली जाने के कारण उसका नामकरण मागधी है। दूसरे शब्दों में पूर्व में बिहार के प्राचीन मगध राज्य के नाम पर उसका नामकरण मागधी हुआ है। यह गौतम बुद्ध के उपदेशों की भाषा कही जाती थी, कतिपय विद्‌वानों का मत है कि भगवान बुद्ध जिस भाषा में उपदेश दिया था वह नि:संदेह मागधी थी पालि नहीं । मागधी का कोई स्वतंत्र साहित्य उपलब्ध नहीं होता । केवल पूर्वी क्षेत्र के शिलालेखों तथा संस्कृत नाटकों में निम्नवर्ग के पात्रों की भाषा मागधी थी । शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक में निम्न पात्रों के संवादों में यही भाषा प्रयुक्त की गई है। बिहारी, हिंदी, बंगला, उडिया तथा असामी का विकास उसी भाषा से हुआ है।

मागधी की भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

✻ ष और स का श हो जाता हैं, यथा सप्त–शप्त ।

✻ र की जगह ल हो जाता हैं, यथा राजा – लाजा ।

✻ मागधी में स्व और र्थ का स्त हो जाता हैं । यथा उपस्थित – उपस्तिद ।

✻ कही कही ज के स्थान पर य मिलता हैं । यथा जानाति – यावादि ।

✻ प्रथमा विभक्ति के रूपों में ए विभक्ति होती हैं, यथा धम्मे ।

✻ अर्धमागधी –

मागधी और शौरसेनी के बीचवाले प्रदेश की भाषा अर्धमागधी कही गई है। दूसरे शब्दों में यह कौशल जनपद की भाषा थी । यह मागधी, शौरसेनी के बीच की अर्थात् मध्य की भाषा होने के कारण उसमें दोनों प्राकृतों की प्रवृतियाँ मिलती है।अर्धमागधी में जैन संप्रदाय का धार्मिक साहित्य मिलता है, दूसरे शब्दों में जैन धर्म की यह प्रधान भाषा थी । पूर्वी हिंदी इसीका

विकसित रूप हैं । इसका केंद्र अवध प्रदेश हैं । अश्वघोष के नाटकों, अशोक के शिलालेखा में, मुद्राराक्षस, प्रबोध चंद्रोदय में इसका प्रयोग मिलता है।

इस भाषा की भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ उस प्रकार हैं –

* श, ष, स के स्थान पर महत्त्व स का प्रयोग होता है।
* च वर्ग के स्थान पर त वर्ग तथा दन्त्य के स्थान पर मूर्धन्य का प्रयोग होता है। उदा. चिकित्सा तेइच्छा, क का ग होता हैं उदा. एक – एग
* स्वर मध्यम व्यंजनों का लोप और उसके स्थान पर य का उपयोग होता है, यथा सागर – सायर ।
* गद्य और पद्य की भाषा में अंतर पाया जाता है, जैसे – मागधी की तरह गद्य में जब ए का प्रयोग होता है तो पद्य में शौरसेनी की तरह ओ का प्रयोग होता है।
* अर्धमागधी में इ, ए और ऊ, ओ का परस्पर विनिमय पाया जाता है। यथा इदिस – एदिस – इदृशः तूण – तोण
* **महाराष्ट्री –**

विद्वानों ने साहित्यिक दृष्टि से सभी प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत को श्रेष्ठ माना है। इसे स्टैन्डर्ड प्राकृत या उत्तम प्राकृत भी कहा जाता है। महाराष्ट्री प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। प्रवरसेन कृत 'सेतुबंध' नामक सुप्रसिद्ध काव्य तथा गाहासतसई, रावणवहो, वज्जालग आदि महाराष्ट्री प्राकृत की मूल्यवान संपदा है। काव्य भाषा के रूप में इसका प्रचार पूरे उत्तर भारत में था । कालिदास, हर्ष के नाटकों की भाषा भी यही रही है।

इस भाषा की भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

* कोमलता इसकी प्रथम विशेषता हैं ।
* दो स्वनों के मध्यवर्ती व्यंजन का लोप हो जाता है। यथा नुपूर – नेउर, प्राकृत – पाउअ
* अल्पप्राण व्यंजन की जगह ह का प्रयोग होता हैं, जैसे मुख – मुह ।
* उष्म वर्णों श, ष, स, का ह हो जाता हैं, यथा दश – दह ।
* सामासिक पदों में ऱ्हस्व का दीर्घ और दीर्घ का ऱ्हस्व होता है, यथा – सत्तावीसा – सप्तविंशति
* **शौरसेनी –**

शूरसेनी अर्थात् मथुरा के आसपास की भाषा होने के कारण इसे 'शौरसेनी' कहा जाता है। इस भाषा में विशेष परिवर्तन न होने के कारण यह संस्कृत से अधिक प्रभावित है। संस्कृत नाटकों में स्त्री तथा सामान्य पात्र, गद्य में इसी शौरसेनी का प्रयोग करते थे । शौरसेनी से ही वर्तमान हिंदी गद्य का विकास हुआ है इसमें सरलता, सरसता, श्रवणसुख अधिक है । अंतः यह लोकप्रिय भी हुई है। अवन्ती तथा अभीरी इसके अन्य स्थानीय रूप माने जाते हैं । अश्वघोष के नाटकों में शौरसेनी का प्रयोग मिलता है। 'कर्पूरमंजरी' का गद्य इसी में है।

इसकी भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

* उसमें क्ष का क्ख हो जाता है, जैसे चक्षु – चक्खु
* संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति उसकी एक विशेषता है।
* य प्रत्यय का रूप शौरसेनी में इय हो जाता है।
* दो स्वरों की मध्यवर्ती ध्वनियाँ द, ध अपरिवर्तनीय ही रहती है, यथा क्रोधः – क्रोधो ।
* यहाँ द्विवचन का अभाव हो गया है। संयुक्त व्यंजनों का सरलीकरण, जैसे उत्सव – ऊसव

* **पैशाची –**

पश्चिमी उत्तर भारत अर्थात् वर्तमान पाकिस्तान और अफगाणिस्तान पैशाची का क्षेत्र है। प्राकृत भाषाओं में पैशाची बहुत प्राचीन है। डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री का मत हैं कि उसकी गणना पालि, अर्धमागधी, शिलालेखी, प्राकृत के साथ की जाती है।। पिशाच जाति के लोगों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण उसे 'पैशाची' कहते हैं। वास्तव में पिशाच एक जाति थी जिसका उल्लेख महाभारत में भी हुआ है।। कालांतर में यह शब्द भूतप्रेत के अर्थ में रूढ हो गया और पैशाची को 'भूत भाषा' कहा जाने लगा । संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग मिलता है। स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' पैशाची की उल्लेखनीय रचना है।

इसकी भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

* पैशाची में ष और श के स्थान पर स मिलता है। विषम – विसमो, शोभित – सोभित
* पैशाची में म के स्थान पर न का प्रयोग मिलता है।
* सघोष ध्वनि अघोष हो जाती है। यथा गगन – गकन।
* ण के स्थान पर न होता है। गुण – गुन, गण – गन
* ट के स्थान पर विकल्प से त का आदेश होता है। कुतुम्बंक – कुटुम्बकम् हलन्त

ग) अंपभ्रश की विशेषताएँ एवं भेद

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का अंतिम चरण 'अपभ्रंश' कहा जाता है। वास्तव में अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच सेतु है। विद्वानों ने उसके लिए अपभ्रंश, अवहंस, अवहत्थ, अवहट्ठ, अवहठ तथा अवहट्ट आदि नामों का प्रयोग किया हैं ।

अपभ्रंश में 'भ्रंश' का अर्थ है पतन या अपने मूल स्थान से च्यूत होना । इस तरह अपभ्रंश का अर्थ हुआ अधिक नीचे पडना या यह भी कह सकते है कि जो भाषा 'भ्रंश' को प्राप्त हो गई वह अपभ्रंश नाम से पहचानी गई । इसके अतिरिक्त हिंदी कोश में अपभ्रंश के कई अर्थ हैं यथा नीचे गिरना या पतन ।

* भ्रष्ट शब्द–भ्रष्टाचार, अशुद्ध शब्द चाहे वह व्याकरण के नियमों के विपरीत हो चाहे वह ऐसे अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो जो संस्कृत न हो ।

* **भ्रष्ट भाषा**

कतिपय विद्वान यह मानते हैं कि अपभ्रंश शब्द के प्रथम प्रयोगकार महर्षि पतंजलि हैं ।

श्लोक और सूत्र बताते हैं कि अपभ्रंश कभी राजस्थान की प्रमुख भाषा थी । कुछ लोक इसे मिर्जापुर जिले के अभीरों की भाषा मानते हैं । आचार्य भरत ने उसे विभ्रष्ट कहा है।भामह ने छठीं सदी में अपभ्रंश को संस्कृत, प्राकृत के समान एक भाषा कहा हैं । राजेशखर ने उसे मारवड और सौराष्ट्र की भाषा कहा है।

* **अपभ्रंश के भेद –**

भाषा वैज्ञानिकों के अपभ्रंश के दो से लेकर सत्ताईस भेद माने हैं । प्राचीन विव्दानों ने नागर, उपनागर, ब्राचड तीन अपभ्रंशों का उल्लेख किया हैं । भोलानाथ तिवारी ने प्राकृतों के आधार पर शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकैय, ब्राचड इन छः अपभ्रंशों का अस्तित्व स्वीकार किया हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे प्राकृत का ही परवर्ती रूप मानते हैं, तो सुनिती कुमार चटर्जी इसे भारतीय आर्यभाषाओं की कडी के रूप में स्वीकार करते हैं । डॉ. नामवर सिंह पूर्व और पश्चिमी दो भेद मानते हैं । इस प्रकार अपभ्रंशों के भेदों के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं । परंतु अधिकांश अपभ्रंश के प्रमुख भेद हैं – शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री ।

इस भाषा की भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

* **अपभ्रंश**

  में प्राय: वही ध्वनियाँ थी जो संस्कृत से चली आ रही थी ।
* अपभ्रंश में अंतिम स्वर ऱ्हस्व होने की प्रवृत्ति बढ गयी । यथा – गर्भिणी – गाम्बिणि
* अपभ्रंश में म का वँ हो गया । यथा – आमलक – आवँलअ, कमल – कवँल
* व का ब पष्ण का न्ह, क्ष का क्ख या च्छ हो गया । यथा वचन – बक्षण, पक्षी – पच्छी
* ड,द, न, र के स्थान पर ल का प्रयोग होने लगा । यथा – प्रदीप्त – पलित्त
* व्यंजन द्वित्व के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग होने लगा । कर्म – कम्म – कामु
* लिंग, वचन और कारक विभक्तियाँ कम हो गयी ।

7.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दीजिए ।

....
....
....

* मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दीजिए।

....
....
....

* पालि भाषा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसकी भाषावैज्ञानिक विशेषताएँ बताइएँ ।

....

....

....

* प्राकृत भाषा का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।

....

....

....

(ख) टिप्पणियाँ

* वैदिक संस्कृत

....

....

....

* लौकिक संस्कृत

....

....

....

* मागधी

....

....

....

* शौरसेनी

....

....

....

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* प्राचीन आर्यभाषा के भेद लिखिए?

....

....

....

* गौतमबुद्ध के उपदेशों की भाषा कौनसी थी ?

....

....

....

* प्राकृत की रचनाओं के चार नाम लिखिए ।

....

....

....

* प्राकृत भाषा की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।

....

....

....

* जैन संप्रदाय के धार्मिक ग्रंथों के नाम लिखिए।

....

....

....

(घ) सही पर्याय लिखिए –

* किस भाषा को देवभाषा कहा जाता है?

  (अ) मागधी ब) शौरसेनी क) महाराष्ट्री ड) संस्कृत

* पालि युग की समय सीमा कौनसी है?

  अ) 200 इ. पू. से 1000 ई तक ब) 200 इ. पू. से 600 ई तक

  क) 600 इ. से 1000 ई तक ड) इनमें से कोई नहीं

* अवन्ती तथा अभीरी किस भाषा के रूप है ?

  अ) शौरसेनी ब) वैदिक क) लौकिक संस्कृत ड) अर्धमागधी

7.4 सारांश

हिंदी भाषा के विकास क्रम को तीन भागों में विभाजित किया गया हैं । प्राचीन भारतीय आर्यभाषा, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक भारतीय आर्यभाषा । प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के अंतर्गत दो रूप मिलते हैं – वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत । वैदिक संस्कृत के अन्य नाम हैं वैदिकी छन्दस, प्राचीन संस्कृत आदि । लौकिक संस्कृत को क्लासिकल संस्कृत या देवभाषा भी कहा जाता है। पाणिनि का संस्कृत व्याकरण 'अष्टध्यायी' इसी प्रयास का प्रतिफल है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के भी तीन चरण माने गये हैं – प्रथम चरण को पालि भाषा का विकास युग कहा जाता है। जब संस्कृत साहित्यिक स्तर पर सर्वोत्कृष्ट थी तब पाली भाषा ग्रामीण भाषा के रूप में विद्‌यमान थी । बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ पालि भाषा का विकास होने लगा और वह तत्कालीन राष्ट्रीय भाषा बन गई । बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गये । पालि भाषा का विकास क्षेत्र पाटली पुत्र को माना गया है और इसका विकास मागधी के आधार पर बनाया गया है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के विकास का चरण प्राकृत का है। प्राकृत भगवान महावीर के उपदेशों के साथ दर्शन और साहित्य की भाषा बनी । 'प्राकृत' का अर्थ हैं सामान्य जन की भाषा । प्राकृत अत्यंत ललित एवं मधुर भाषा थी । इसका साहित्य विपुल था । कालिदास के नाटकों में निम्न वर्गीय पात्रों ने इसी का प्रयोग किया है। प्राकृत के देश

भेदानुसार अनेक रूप मिलते हैं, जिनमें पैशाची, अर्धमागधी, मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री प्रमुख हैं ।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का तीसरा चरण अपभ्रंश है। अपभ्रंश नाम सर्वप्रथम महर्षि पंतजलि द्वारा प्रयुक्त हुआ हैं । 'अपभ्रंश' का अर्थ हैं बिगडा हुआ । संस्कृत के वैयाकरणों ने संस्कृत के अतिरिक्त समस्त भाषाओं को अपभ्रष्ट कहा है। किंतु अभीरों की भाषा को अपभ्रंश कहा है। वस्तुत: विभिन्न प्राकृतों से जिन भाषाओं का विकास हुआ उन भाषाओं को अपभ्रंश कहा गया है। स्वयंभू तथा पुष्पदंत जैसे श्रेष्ठ कवियों ने अपभ्रंश भाषा में काव्य रचना करके इस भाषा को गौरव प्रदान किया । प्राकृतों के अनुसार अपभ्रंशों के भी भेद माने जाते हैं । शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी, प्राकृत से मागधी अपभ्रंश, महाराष्ट्री प्राकृत से महाराष्ट्री अपभ्रंश, अर्धमागधी प्राकृत से अर्धमागधी अपभ्रंश, तथा पैशाची प्राकृत से पैशाची अपभ्रंश ।

7.5 शब्दार्थ

संक्रमणकाल – एक काल या युग से दूसरे काल या युग में प्रवेश करना

परवर्ती – बाद के

शिलालेख – पत्थरों पर लिखा गया लेख

परिशिलन – मनन पूर्वक अध्ययन

परिनिष्ठिकरण – मानकीकरण

7.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* लौकिक संस्कृत में लिखे गये साहित्य की सूची बनाइए ।
* प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की तालिका तैयार कीजिए ।
* वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के अंतर को समझने का प्रयत्न कीजिए ।
* अपभ्रंश की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध ग्रंथों का परिचय प्राप्त करो ।

7.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* आधुनिक भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
* समाज भाषा विज्ञान की भूमिका – डॉ. तेजपाल चौधरी
* हिंदी भाषा का उदभव और विकास – डॉ. उदयनारायण तिवारी

इकाई - 8
हिंदी की बोलियाँ, वर्गीकरण तथा सामान्य परिचय

अनुक्रम

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 विषय–विवरण
 8.2.1 हिंदी बोलियों का वर्गीकरण तथा सामान्य परिचय
 8.2.2 खडी बोली का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय
 8.2.3 ब्रज बोली का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय
 8.2.4 अवधी बोली का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय
 8.2.5 दक्खिनी हिंदी का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय
8.3 स्वयं अध्यय के लिए प्रश्न
8.4 सारांश
8.5 शब्दार्थ
8.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
8.7 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

* हिंदी की विविध बोलियों का क्षेत्र एवं विशेषताओं से अवगत होंगे ।
* हिंदी बोलियों में लिखे गये साहित्य से परिचित होंगे।
* अपने क्षेत्र में और विविध क्षेत्रों में बोली जाने वाली हिंदी के अंतर को समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

भाषा अंतरात्मा की प्रकाशिका होती है। अपने विविध रूपों में भाषा समग्र समाज में व्याप्त होती है। युगों–युगों की संचित सभ्यता एवं संस्कृति की संरक्षिका के रूप में भाषा सामाजिक – सांस्कृतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है। स्पष्टता व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक भाषा उसके साथ रहती हैं; व्यक्ति की सही पहचान उसकी भाषा से ही होती है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र की भाषा मनुष्य द्वारा प्रयुक्त होकर ही अपनी सामाजिकता की सार्थकता सिद्ध

कर सकती है। मानव जाति के विकास उत्थान एवं पतन में भाषा की अहम भूमिका होती है। भारत एक विशाल महाद्वीप है जहाँ भाषा और बोलियों का भंडार है। भारत भाषा और बोलियों की दृष्टि से विश्व का सर्वाधिक समृद्ध देश कहा जाता है। डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार भारत में 179 समृद्ध एवं विकसित भाषाएँ हैं और 544 बोलियाँ प्रचलित हैं । सभी भाषाओं और बोलियों के अध्ययन के सुविधा के लिए मुख्यत: दो वर्गो में विभाजित किया जाता हैं । आर्य भाषाएँ और आर्येतर भाषाएँ। आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं । आर्य भाषाओं का प्रारंभ ई. पू. 2500 से माना गया है। इसी कारण भारतीय आर्यभाषाओं को तीन भागों में विभाजित किया जाता हैं – प्राचीन भारतीय आर्य भाषा जिसका काल विभाजन के अनुसार समय 2500 ई. पू. से 500 ई. पू. तक माना गया है। इसके पश्चात् मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का 500 इ. पू. से 1000 ई. तक और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का कार्यकाल 1000 ई.से अद्यतन माना गया है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा विकास क्रम के अनुसार वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत इन दो भागों में विभाजित की गई हैं । मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के अंतर्गत पाली का विशेष महत्त्व है। जिसे प्रथम प्राकृत कहा जाता है। मध्यकालीन आर्य भाषाओं को तीन विभागों में विभाजित किया गया हैं । प्रथम प्राकृत, द्वितीय प्राकृत एवं तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश का समावेश किया जाता है । आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अंतर्गत पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, हिंदी पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी और पहाडी हिंदी का समावेश किया जाता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास मध्यकालीन अपभ्रंश भाषाओं से हुआ हैं । इस प्रकार हिंदी की बोलियों का अस्तित्व सहस्त्रों वर्षों का है। यह अपने–अपने क्षेत्र में विकसित होती रही है।

8.2 विषय–विवरण

8.2.1 हिंदी बोलियों का वर्गीकरण तथा सामान्य परिचय

हिंदी भारत के एक विस्तृत भूभाग में बोली जाने वाली समृद्ध-संपन्न भाषा है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसे पाँच उपभागों में विभाजित किया जाता है। जिसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता हैं –

(1) पश्चिमी हिंदी – खडी बोली (कौरवी), बांगरू (हरियाणवी), ब्रज, बुंदेली, कन्नौजी

(2) राजस्थानी हिंदी – मारवाडी (प. रा.), जयपुरी (पू. रा.), मेवाती, मालवी

(3) पूर्वी हिंदी – अवधी, बघेली, छत्तीसगढी

(4) बिहारी हिंदी – भोजपुरी, मगही, मैथिली

(5) पहाडी हिंदी – पश्चिम पहाडी, मध्यवर्ती पहाडी, कुमायूँनी, गढवाली

इन विविध बोलियों का अपना–अपना विशेष क्षेत्र रहा है। लोकसाहित्य, लोकव्यवहार स्थानीय बोलियों में ही होता हैं तथा साहित्य लेखन भी किया जा रहा है। ब्रज, अवधी, खडीबोली, मारवाडी, राजस्थानी, मैथिली आदि हिंदी की बोलियों में अनेक काव्य, महाकाव्य, गीति काव्य रचनाएँ मिलती हैं । विद्यापति, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई की

रचनाएँ हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है।

हिंदी अनेक बोलियों के समूह से बनी भाषा है। किंतु प्रत्येक बोली का अपना स्वतंत्र क्षेत्र, स्थान, विशेषता रही है। अत: इनका साहित्यिक, ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक परिचय आवश्यक है।

8.2.2 खडी बोली

खडी बोली का ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक परिचय

पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत बोली जाने वाली बोलियों में खडी बोली प्रमुख बोली जाती है। कुरू प्रदेश की मुख्य बोली होने के कारण इसे 'कौरवी' भी कहा जाता है। खडी बोली को यह नाम राहुल सांस्कृत्यायन ने दिया हुआ हैं । गंगा-जमुना के उत्तर दोआब की यह प्रमुख बोली है। शुद्ध रूप में खडी बोली सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, देहरादून के मैदानी भाग, बुलन्द शहर के उत्तरी क्षेत्र में बोली जाती है। उत्तर पूर्व में गंगा के उस पार बिजनौर, मुरादाबाद और रामपुर जनपद तक खडी बोली बोली जाती है। हरियाणा के अम्बाला और कुरूक्षेत्र तक के प्रदेश भी खडी बोली की परिधि में आते हैं ।

बोली के संदर्भ में 'खडी' नाम का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1800 में लल्लूलाल ने किया था । आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने 'खडी' शब्द का अर्थ प्राकृत एवं ठेठ बताया हैं । गिलक्रिस्ट एवं डॉ. हरदेव बाहरी की मान्यता हैं कि यह प्रचलित और स्टॅण्डर्ड (पीरनिष्ठित या खरी) भाषा के रूप में क्रमश: विकसित हुई है, इसलिए इसका नाम 'खडीबोली' पडा । अन्य बोलियों के साहित्य की दृष्टि से खडी बोली का साहित्य अधिक समृद्ध माना जाता है। गत 100 वर्षों में यह बोली साहित्य की प्रत्येक विधा की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी है। साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भी इसे अभूतपूर्व महत्व प्राप्त है।

खडी बोली की ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक विशेषताएँ –

* खडी बोली में स्वरों का उच्चारण - दीर्घ, प्रदीर्घ तथा ऱ्हस्व और अतिऱ्हस्व स्तरों पर होता है।
* स्वराघात युक्त दीर्घ स्वर के बाद के व्यंजन का खडी बोली में द्वित्व हो जाता हैं तब दीर्घ स्वर ऱ्हस्व हो जाता है। द्वित्व व्यंजन के पूर्व का ई-इ, इ-ऊ तथा ए-ऐ में परिणत हो जाता है। जैसे बाप-बाप्पू, वासन-वासन्ह, गाडी-गाड्डी , मोटा - मोट्टा आदि ।
* खडी बोली के शब्द दीर्घ स्वरान्त अथवा व्यंजनान्त होते हैं ।
* ए स्वर की तीन स्थितियाँ मिलती हैं, यथा -

क) दीर्घ - बटेर में आदि (ख) अदीर्घ - एक्का, सोए, गये आदि । ग) ऱ्हस्व -कुछेक, दसेक आदि ।

* ओ स्वर भी तीन स्थितियों में प्रयुक्त होता है।
* ए का उच्चारण ए, ऐ के बीच का तथा और का उच्चारण ओ, औ, औ के बीच का होता है।

*   स्वर लोप की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है, यथा - पंडित -पंडत, इलाज - लाज ।

*   प्राय: समस्त स्वर सानुनासिक रूप में भी मिलते हैं, यथा - मंगता, आँक, बिंदी, गई, गुँगा, सोंठ ।

*   महाप्राण व्यंजन के बाद आने वाला दूसरा महाप्रण व्यंजन अल्पप्राण हो जाता है, यथा - झूठ -झूट, भीख-भीक, भाभी-भाबी आदि ।

*   कभी-कभी उपर्युक्त नियम के अपवाद भी मिलते है - अर्थात् अकेले महाप्राण भी अल्पप्राण हो जाते है, जैसे -तुम्हारा - तुमारा, गुच्छा - गुच्चा, समझ - समज आदि । इसके अतिरिक्त भी कुछ परिवर्तन द्रष्टव्य है - पहलवान का पैलवान, साहब का साब ।

*   प्राय: ड और ढ का उच्चारण नहीं होता (वर्तमान समय में ड का उच्चारण होने लगा है) यथा - गुढ - गुढ़, बूढा - बूढ़ा आदि ।

*   ड और ढ का प्रयोग शब्द के आदि में नहीं पाया जाता है।

*   र का ड ड का र भी हो जाता है, यथा - चपरासी चपडासी, कुडक का कुर्क आदि ।

*   संयुक्त व्यंजन आदि और अन्त में नहीं आते, मध्य में आते हैं ।

*   खडी बोली के संज्ञा रूप परिनिष्ठत हिंदी के समतुल्य होते है पर आकारान्त, संज्ञाओं के तिर्यक् के बहुवचन रूपों में अन्त में ओ तथा ऊँ प्रयुक्त होते हैं । जैसे पुल्लिंग रूपों में घोड्डा - घोडडे, घोड्डे -घोड्डों स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए क्रमश: ई इया नी आनी और अन, अण स्त्री प्रत्यय लगते । जैसे - धीमरी, गुठिया, मोरनी, धोबन, पंडितानी ।

*   व्यवसायवाची संज्ञाओं के तीन रूप मिलते हैं , यथा - चमार - चमरा -चमररा ।

* पर की अपेक्षा पै, पे का प्रयोग अधिक है।

* सर्वनाम के - मैं, हम, तू तै, तुम, तम ऊ, ओ, ओह, वे, ई, ये, येह, आप, आपणा, जो, जे जौण रूप प्रचलित हैं । कोई के स्थान 'पर को' का प्रयोग होता है।

*   संख्यात्मक विशेषणों के ग्यारै, बारै, छयालिस, उणसठ, पिचासी, बाणवै, तिगणा, चौगणा आदि रूपों का प्रयोग ।

*   क्रिया रूप में वर्तमान काल रूप -

एकवचन - हूँ, हे, बहुवचन में क्रमश: हे, हो, रूप में तथा भूतकालीन रूप था लगाकर बनते हैं ।

*   अव्यय - कब, जब, तब के साथ ही कद, जद, तद का प्रयोग मिलता है। उसी प्रकार इव (अय), कधी (कभी), क (कितने), लक, लों (तक) आदि का प्रयोग होता हैं ।

*   खडी बोली में पंजाबी के प्रभाव के कारण द्वित्व प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं जैसे - धोती - धोत्ती, बेटा- बेट्टा।

*   राजस्थानी के प्रभाव स्वरूप 'ण' की प्रवृत्ति भी व्याप्त है जैसे - कौन -कौण, अपना - आपणा ।

*   श, ष, और स, में केवल दन्त्य स ही विद्यमान है, जैसे सरीफ (शरीफ)

8.2.3 ब्रज बोली का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय

ब्रजभाषा पश्चिमी हिंदी की बोलियों में सबसे अधिक मधुर कोमल एवं महत्वपूर्ण भाषा है। उसे 'ब्रजभाखा' भी कहते है। 'ब्रज' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पशु समूह या चरागाह के अर्थ में हुआ है। डॉ. प्रभुदयाल मित्तल के अनुसार ब्रज शब्द के तीन अर्थ हैं – गोएठ, मार्ग या वृन्द । मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में ब्रज, बृज अथवा बिरज शब्द सामान्यतया मथुरा और उसके आसपास के क्षेत्रों का द्योतक है। गंगा–यमुना का दोआब अंतर्वेद कहलाता है। इसी कारण ब्रजभाषा को अन्तर्वेदी नाम से भी जाना जाता है। भिखारीदास द्वारा 1725 ई. में ब्रजभाषा का प्रयोग सर्वप्रथम हुआ था ।

शौरसेनी अपभ्रंश से ब्रजभाषा का विकास माना जाता है। मथुरा का एक प्राचीन नाम 'शूरसेन' भी रहा है। यह आगरा, मथुरा, बुलन्दशहर, ग्वालियर, अलीगढ, एटा, मैनपुरी, धौलपुर, भरतपुर, गुडगाँव के इलाकों में बोली जाती है। चौदहवीं शती के ब्रजभाषा का साहित्य मिलता है। 16 वीं शती के मध्य तक ब्रजभाषा संपूर्ण मध्यप्रदेश की प्रतिनिधि भाषा हो चुकी थी । ब्रजभाषा में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। आदिकाल में जहाँ अपभ्रंश और अवहट्ठ को प्रभावित करती है। वही मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में यह साहित्य की भाषा बन गई । परिनिष्ठित हिंदी के गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित होने के कारण यह बोली के बदले भाषा की संज्ञा से विभूषित हुई । समूचा कृष्णभक्ति साहित्य, रीतिकालीन साहित्य उसी भाषा में लिखा गया है। सूरदास, नंददास, केशव, बिहारी, देव, मतिराम, घनानंद रसखान, सोमनाथ भक्ति एवं रीतिकाल में ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि हुए है।। इतना ही नहीं मुसलमान बादशाह जहाँगीर, शाहजहाँ रहीम तथा मिर्जा खाँ आदि ने भी उस भाषा में रचनाएँ प्रदान की है। आधुनिक काल के प्रणेता भारतेन्दु, रत्नाकर ने भी ब्रजभाषा में श्रेष्ठ साहित्य लिखा है। लोकसाहित्य की दृष्टि से भी ब्रज संपन्न भाषा है। ब्रज का लोकसाहित्य विभिन्न संस्कृतियों के संगम से ओतप्रोत है। ब्रजभाषा के मधुर शब्द प्रत्येक को मोहित एवं आकर्षित करने की शक्ति रखते है। ब्रजभाषा के लिए नागरी, कैथी और अंशत: फारसी, लिपि का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा की अनेक बोलियाँ हैं – भुक्खा, अन्तर्वेदी, जादोवाटी, डांगी आदि ।

ब्रजभाषा की ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक विशेषताएँ –

* ब्रजभाषा में ऋ को छोडकर हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियाँ हैं । लेखन में कभी–कभी उसका प्रयोग मिलता हैं परन्तु उच्चारण में यह 'र' या 'रि' ही है।
* इसमें प्राय: सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी मिलते हैं, यथा हँसत, आँखियाँ, नाहिं, नैंनु, सोंह, मौंह ।
* श, स, ष के स्थान पर केवल 'स' का प्रयोग होता है।
* ह व्यंजन का लोप हैं जैसे बहू – बइ, बारह – बारा।
* ण के स्थान पर प्राय: न का प्रयोग होता है। तरुण – तरुन, प्रवीण – प्रवीन ।
* ल और र में विपर्यस मिलता है, जैसे भोली – भोरी, बादल –बादर, काला–कारो, लडका–लरिका, घोडा – घोरा, थोडा – थोरा ।

* अँ उदासीन स्वर प्राय: शब्द के अंत में आता हैं, जैसे बहु – बहुअँ, बढ – बढअँ ।

* इ और उ को ऱ्हस्व रूप शब्दान्त में ही प्राप्त होते हैं जैसे – किमिं, बहुदि, अम्मु, करि आदि ।

* हिंदी के जिन पदों के अंत में ए, ओर होते है, इनके स्थान पर ऐ, औ पाए जाते है, जैसे – करै, ऊधौं ।

* व्यंजनों के अल्पप्राण कर देने की प्रवृत्ति है, जैसे – हाथ – हात, भूखा – भूका, तुम्हारा – तुमारो, धंधा – धंदा आदि ।

* आ, ओ आदि दीर्घ स्वरों के बाद का व, म से परिवर्तित हो जाता है। यथा – मनावन – मनामन, बावन – वामन ।

* व्यंजन संयोग से द्वित्व की प्रवृत्ति पाई जाती है । यथा बादशाह – बास्सा, एकादशी – एकास्सी, अर्जी – अज्जी।

* ब्रजभाषा ओकार बहुला है। खडी बोली और मानक हिंदी की आकारान्त संज्ञाएँ, सर्वनाम विशेषण और क्रियाएँ ब्रजभाषा में ओकारान्त हो जाते है, जैसे – छोरो (लडका), मेरो (मेरा), बडा (बडा) आयो (आया)

* रूपों में काफी भिन्नता हैं । संज्ञा शब्दों का स परसर्ग बहुवचन कही तो मानक हिंदी की तरह ओ लगकर बनता है, जैसे घरों में तो कही पूर्वी हिंदी की तरह इन लगकर जैसे लरिकन कूँ (लडकों को) अन प्रत्यय स्त्रीलिंग शब्दों में अधिक पाया जाता है, जैसे – गलियन में (गलियों में, सखियन सों (सखियों से)

* परसर्गो में कूं कैं (को) ते, तें (से) माँह, माँझ (में) लौं (तक) आदि मानक हिंदी से भिन्न है।

* सर्वनामों में उत्तम पुरुष के – हौ (मैं), मो (मुझ), हमारो (हमारा) तथा मध्यम पुरुष के – तूँ (तू), तैं (तू), तो (तुझ), तिहारो (तुम्हारा), आदि प्रयुक्त होते हैं ।

* क्रिया के रूपों में हुतो (था), हुते (थे), हुती (थी), भयो (हुआ), भये (हुए), भई (हुई), का प्रचलन है। तो क्रियार्थक संज्ञा के देखनो, चलनो के साथ देखिवो, चलिवो जैसे रूप भी मिलते हैं ।

* अव्ययों में इन (यहाँ), उन (वहाँ), जिन (जहाँ), कत (कहाँ), जिमि (जैसे), किमि (कैसे), मनहुँ (मागे), अजहुँ (अभी) नेकु (तानिक), मानक हिंदी से पर्याप्त भिन्न है।

8.2.4. अवधी बोली का ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय

अर्धमागधी से विकसित पूर्वी हिंदी की बोलियों में अवधी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। छठीं शताब्दी के आसपास भारत जिन सोलह महा जनपदों में विभाजित था उनमें 'कौशल' भी था । प्राचीन कौशल राज्य का आधुनिक नाम 'अवध' है। अवध प्रांत के आधार पर ही इस क्षेत्र की बोली का नाम 'अवधी' पडा है। डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार उसे 'पूरबिया' भी कहा गया है। बैस राजपूतों के प्रदेश बैसवाडा के अंतर्गत अवधी भाषी लखनऊ उन्नाव, रायबरेली और फतेहपुर जिले है। इस आधार पर बैसवाडी को अवधी की उपबोली के रूप में स्वीकार किया जाता है। डॅ.ग्रियर्सन अवधी की उत्पत्ति अर्धमागधी से आचार्य रामचंद्र

शुक्ल नागर अपभ्रंश से, डॉ. बाबूराम सक्सेना पालि से तथा डॉ. नामवर सिंह अर्धमागधी से मानते हैं ।

अवधी की तीन विभाषाएँ मानी जाती हैं – पश्चिमी, केंन्द्रीय तथा पूर्वी । लखीमपुर, खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव तथा फतेहपुर की अवधी पश्चिमी बहराइच, बाराबंकी तथा रायबेली की केंद्रीय एवं गौंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर तथा मिर्जापुर की अवधी पूर्वी के अंतर्गत आती हैं । यही अवधी का क्षेत्र हैं, दक्षिण में इसीकी उपबोलियाँ और उत्तर में नेपाली भाषा है।

अवधी भाषी क्षेत्र को उत्तर में हिमालय (नेपाल) पूर्व में भोजपुरी भाषी प्रदेश, दक्षिण में बघेली और पश्चिम में बुंदेली और कनौज का क्षेत्र है।बघेली और छत्तीसगढी वस्तुत: अवधी से ही सम्बद्ध भाषाएँ है। उसका क्षेत्रफल साढे पैंतीस हजार वर्गमील है। अवधी प्रदेश में अवध के पूरे ग्यारह जिले, हरदोई का अधिकांश भाग फत्तेहपुर, इलाहाबाद का पूरा जिला और कानपुर के अकबरपुर तथा हेरापुर तहसीलों को छोड सारा जिला, चुनार और दुध्दी तहसीलों को छोड मिर्जापुर का सारा जिला जौनपुर का जिला (केराकत को छेड) एवं बस्ती का हरैया तहसील सम्मिलित है।

अवधी साहित्य की संपन्नता सर्व विदित है। मध्यकाल से ही इसमें साहित्यिक रचनाएँ होने लगी थी । भक्तिकाल का प्रेमाख्यान काव्य, रामभक्ति साहित्य, सूफी काव्य अधिकांश मात्रा में अवधी में ही रचे जा रहे थे । विश्वप्रसिद्ध श्रीरामचरित मानस (तुलसीदास कृत) तथा जायसीकृत पदमावत अवधी की ही रचनाएँ है। वीर रस प्रधान रचनाएँ भी अवधी में लिखी गई है। जगतिक का आल्हाखण्ड अवधी की प्रथम रचना है। सूफी कवियों में जायसी के अतिरिक्त कुतुबन, मंझन, उसमान, नूरमुहम्मद, शेख रहीम, आलम, सबलसिंह, मुल्ला दाऊद, स्वामी अग्रदास जानकीशरण तथा महाराज रघुराजसिंह जैसे रामभक्त कवियों ने अवधी को ही अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम बनाया । इसीके साथ बलभद्रप्रसाद दीक्षित, सत्यधर शुक्ल, रूपनारायण त्रिपाठी, उन्म प्रतापगढी, बंसीधर शुक्ल आदि कवियों ने भी अवधी में रचनाएँ की हैं । सम्प्रति, अवधी में विविध विषयों पर लेख एवं कहानियों का आकाशवाणी से प्रसारण होता रहता हैं ।

अपनी ध्वन्यात्मक और पदात्मक विशेषताओं के कारण अवधी भाषा वैज्ञानिकों के आकर्षण का केंद्र रही है। अवधी की ध्वनियाँ मानक हिंदी से भिन्न है। जिनका निरूपण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है –

अवधी की ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक विशेषताएँ –

* अवधी में ऐ का उच्चारण अई और औ का अउ की भाँती होता है। जैसे – कैसे – कउसे, औरत –अऊरत ।

* ण ध्वनि का अभाव है उसके स्थान पर न तथा ड के स्थान पर र का प्रयोग होता है यथा – कारण–कारन, चरण–चरन, लडाई – लराई ।

* ड़ , ढ़ शब्द के आदि में आते है ड़ , ढ़ मध्य और अंत में ।

* व की जगह ब या उ ओर ष की जगह ख बोला जाता है। जेसे – विश्वामित्र – बिस्वामित्र, विषय – विसय, हर्षित – हरखित, वकील – उकील आदि ।

* ह और ओ में य और व श्रुति सुनाई पडती है, जैसे एक – यक, थोडा – थवाड आदि ।

* अवधी में संज्ञाओं के तीन रूप मिलते है – सामान्य, दीर्घ या दीर्घत्तर, जैसे – घोडा – घोडना – घौडौना ।

* बहुवचन का ओ अवधी में अन हो जाता है। जैसे, लडको को – लरिकन को ।

* क्रिया रूपों में होना किया के है, अहैं के अतिरिक्त आटे और बाटे रूप भी मिलते हैं ।

भूतकाल में भवा भए और रहा, रहे रूप हैं । चला के अतिरिक्त चलेऊ और स्त्रीलिंग में चलिउ रूप पाया जाता है। क्रियार्थक कृदन्त 'ब' प्रत्यय से बनते हैं, जैसे – करब – करना, देखब – देखना ।

* सर्वनामों में मारे –मेरा, तोर–तेरा,इ–वह, ओ– उस, ई–यह, ए–उस, जे–जो, के–कौन, काहे –क्यों ।

* कभी–कभी विशेषण में लिंग परिवर्तन होता है, जैसे पु–आपन, स्त्री – आपनि, पु – एसे, स्त्री – ऐसी

* संख्यावाची विशेषण है – एकु – याकु, दुइ, तीनि, पान, छा, नउ, गेरा, सोरा, ओनउस, ओन्तीस, पाँचव, पाऊ, आदि ।

* अव्ययों से बहोरि – फिर, की नाई – की तरह, अवसि –अवश्य, हमि – यो, जिमि –ज्यों, किमी – कैसे, बेगी –जल्दी, इहाँ – यहाँ, उँहाँ – वहाँ, सौं – सँऊ, जति – नहीं आदि मानक हिन्दी से भिन्न हैं ।

8.2.5 दक्खिनी हिंदी ध्वन्यात्मक और पदात्मक परिचय

हिंदी के लिए समय–समय पर विविध नामो का उल्लेख होता रहा हैं । हिंदुओं की भाषा के रूप में हिंदवी नामकरण का आधार जातिगत रहा है । तो उसके बनावटी और मिश्रित रूप को देखते हुए उसे 'कृत्रिम भाषा' (रेखता) कहा गया । दक्षिण के मुसलमानों की भाषा के रूप में उसे 'दक्खिनी' कहा गया, राजनीतिक पृष्ठभूमि के आधार पर उसका नाम 'हिंदुस्तानी' किया गया ।

दक्खिनी की गणना पश्चिमी हिंदी की बोलियो में की जाती है। हिंदी की उस विभाषा के स्वरूप के संबंध में विद्वानों की कतिपय , धारणाएँ रही हैं । कुछ लोग उसे दक्षिण की हिंदी के अर्थ में दक्खिनी हिंदी कहते है तो कुछ लोग 'दक्षिण भू भाग में रहने वाला के अर्थ' में उसे स्वीकार करते है। चौदहवीं – पंद्रहवीं शताब्दी में जो मुसलमान शासक उत्तर से दक्षिण में गये, उनके सिपाही और अन्य कर्मचारी दक्षिण में ही बस गये । गोलकुण्ड, बीजापुर, गुलबर्गा आदि रियासतों में ऐसे लोगों की संख्या काफी बडी थी । अत: इन राज्यों में दक्खिनी हिंदी विकसित होती रही । प्राचीन साहित्य में दक्षिण तथा दक्षिणाापथ शब्द का प्रयोग होने लगा । इस काल में गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के मध्य के प्रदेश को दक्खिन तथा भाषा को दक्खिनी कहा गया । दक्खिनी हिंदी को हिंदवी, दकनी, देहलवी, जबाने हिंदुस्थान, मुजरी, दक्खिनी, हिंदी दक्खिनी उर्दू, मुसमानी दक्खिनी,

दक्खिनी हिंदुस्तानी आदि नामों से संबोधित किया जा रहा हैं । जिसके संदर्भ में विद्वानों के तर्क एवं विचार भिन्न भिन्न रहे हैं । जॉर्ज गियर्सन के मतानुसार, 'दक्खिनी हिंदी हिंदुस्तानी का एक रूप है। जिसका प्रयोग दक्षिण के मुसलमान प्रमुख रूप से करते थे । तो गार्सा-द-तासी के विचार से 'दक्षिण में व्यवहृत हिंदू-मुसलमानों की मिश्रित भाषा ही दक्खिनी भाषा है। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी के इस संदर्भ में विचार अधिक स्पष्ट है - ''उत्तर भारतीय मुसलमान दक्षिण में अपनी बोलियों को भी साथ लेते गये । वहा जाने के बाद भी उन्होंने अपनी उत्तर भारतीय देशज भाषा को ही अपनाये रखा तथा तत्कालीन हिंदुओ में असका नाम 'मुसलमानी' पड गया । ... और दक्खिनी या दकनी कहलाने लगी ।'' कुछ विद्वानों ने दक्खिनी को खडी बोली का एक विशिष्ट रूप अथवा परंपरा माना है।

18 वी शताब्दी में निजाम राज्य की स्थापना के पश्चात् दक्खिनी हिंदी को अधिक संरक्षण प्राप्त हुआ और उसके प्राचीन साहित्य को बचाया गया । दक्खिनी हिंदी एक समृद्ध साहित्यिक भाषा रही हैं । ख्वाजा बंदानवाज (1318-1432) दक्खिनी के प्रथम ग्रंथकार माने जाते हैं । उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है - 'मिराजुल आशिकीन' जो दक्खिनी हिंदी का प्राचीनतम ग्रंथ के रूप में प्रमाणित है। 15 वीं शताब्दी के निजामी दक्खिनी हिंदी के प्रथम कवि रहे हैं । दक्खिनी हिंदी के साहित्य में तत्सम तथा तद्भव शब्दों के साथ-साथ अरबी -फारसी के शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं । खडी बोली, पंजाबी, ब्रज, अवधी, तमिल, तेलुगु, शब्दों का प्रयोग भी दृष्टत्व है। खुसरो मसउद, फरिउद्दीन,गेसूदराज, मुहम्मद हुसैनी, मुल्ला वजही, गवासी, कुल्ली, कुतुबशाह आदि अनेक कवियों ने दक्खिनी में प्रेम काव्य लिखे हैं।

✻ दक्खिनी हिंदी की ध्वन्यात्मक एवं पदात्मक विशेषताएँ -

✻ दक्खिनी हिंदी खडी बोली का ही एक रूप हैं । उसमें खडी बोली की ळ ध्वनि के अतिरिक्त सभी ध्वनियाँ विद्यमान हैं । क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का प्रयोग होता हैं जैसे - क़ौम, ख़बर, ग़ैर, ज़िदगी, फ़ायदा आदि ।

✻ द्वित्व की प्रवृत्ति खडी बोली से अधिक पाई जाती है। सूखा-सुक्का, मीठा-मिट्ठा, पका-पक्का आदि ।

✻ दक्खिनी हिंदी में उ और औ के मध्य का स्वर मिलता है।

✻ दीर्घ स्वरों के ऱ्हस्व होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे - आदमी - अदमी ।

✻ दो मूर्ध्यन्य ध्वनियों के साथ-साथ प्रयुक्त होने पर पूर्ववर्ती ध्वनि दन्त्य हो जाती है। जैसे - खण्डी - थंडी, डाट - दाट ।

✻ अन्त्य व्यंजन में बलाघात के कारण द्वित्व की स्थिति जैसे - तल्ली, दत्ती आदि ।

✻ दक्खिनी हिंदी में महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती है। देख - देक, रखते - रकते ।

✻ शब्द के मध्य में स्थित ह का लोप हो जाता है, जैसे ठहरते - ठैरते ।

✻ न्द और न्ध की जगह दक्खिनी में न, न्ह हो जाते है, जैसे - चान्दनी - चाननी, बांधना - बान्हना ।

✻ स्त्रिलिंगी शब्दों का बहुवचन आँ प्रत्यय लगकर बनता है, जैसे - आँखाँ, बाताँ ।

* सर्वनामों में हमन या हमना (हम), तुमन या तुमना (तुम) का प्रयोग
* अन्त्य अल्पप्राण के कारण मुजे और तुजे रूप बनते है।
* परसर्गों में कर्म का कूँ खडी बोली के समान हैं, करण का सूँ, ब्रजभाषा से और सम्बंध का के अवधी से मिलता है।
* दक्खिनी हिंदी की क्रिया कर्तृवाच्य की होती है।
* वर्तमान काल पुल्लिंग में ता और स्त्रीलिंग में त्या जोडा जाता है।
* भूतकाल के रूपों में या जोडा जाता हैं, जैसे - दौडया, बोल्या
* भविष्यकाल में गा, गे, गी के अतिरिक्त स प्रत्यय भी लगते है, जैसे - जासी
* क्रियार्थक संज्ञा के रूप निर्माण में अन्त में न जोडा जाता है - करन, देखन ।
* क्रिया से कर्तृवाचक शब्द 'हारा' प्रत्यय लगाकर बनाता है। जैसे - करनहारा, समजन हारा ।
* अव्यय - सात - साथ, कने - पास, भौत - बहुत, ताल, उस समय, की, क्यों आदि रूप है।

8.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* खडी बोली की साहित्यिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।

....
....
....

* ब्रज बोली का परिचय दीजिए ।

....
....
....

* अवधी का क्षेत्र तथा साहित्यिक उल्लेख करते हुए ध्वन्यात्मक विशेषताएँ समझाइए ।

....
....
....

* दक्खिनी के योगदान पर प्रकाश डालिए ।

....
....
....

ख) टिप्पणियाँ

✻ खडी बोली का क्षेत्र

....

....

....

✻ ब्रज की पदात्मक विशेषता

....

....

....

✻ अवधी की प्रसिद्ध रचनाएँ

....

....

....

✻ ब्रज की ध्वन्यात्मक विशेषता

....

....

....

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

✻ अवधी के विविध भेद लिखिए ।

....

....

....

✻ ब्रज के प्रमुख दो कवि और उनकी रचनाओं के नाम लिखिए ।

....

....

....

✻ खडी बोली की चार ध्वन्यात्मक विशेषताएँ लिखिए ।

....

....

....

✻ अवधी की प्रसिद्ध रचनाएँ कौनसी?

....

....

....

* दक्खिनी की चार पदात्मक विशेषताएँ लिखिए ।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए

* खडी बोली नाम का सबसे पहला प्रयास किसने किया?

  अ) चंद्रबली पांडेय ब) लल्लूलाल क) हरदेव बाहरी ड) गिलक्राइस्ट

* सूरदास, रसखाना, बिहारी ने किस बोली में काव्य किया है?

  अ) ब्रज ब) अवधी क) खडीबोली ड) दाक्खिनी

* रामचरितमानस पदमावत आदि रचनाएँ किस बोली में लिखी है?

  अ) दक्खिनी ब) राजस्थानी क) अवधी ड) ब्रज

8.4 सारांश

* हिंदी का सम्बन्ध भारोपीय परिवार से रहा है। हिंदी का भौगोलिक क्षेत्र अत्यंत व्यापक – विस्तृत है। इसलिए भारत की केंद्रीय भाषा के रूप में सर्वमान्य है। वास्तव में हिंदी पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी और पहाडी हिंदी के अंतर्गत आने वाली सत्रह बोलियों का महत्तम सामपवर्तक है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तरांचल तथा छत्तीसगढ की मातृभाषा हिंदी है। आज संपूर्ण हिंदी भाषी क्षेत्र के पाँच बोली वर्ग हैं, जिसके अंतर्गत सत्रह बोलियाँ हैं ।

प्रथमवर्ग पश्चिमी हिंदी बोलियों के अंतर्गत खडी बोली, बाँगरू, ब्रज, बुंदेली और कन्नौजी बोलियों का समावेश होता हैं । खडी बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। इसे कौरवी भी कहा जाता है। बाँगरू का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। इसे हरियाणवी भी कहते है। ब्रज भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है । यह पश्चिमी हिंदी की प्रमुख बोली है । बुंदेली बोली बुंदेले राजपुतों की प्रमुख बोली है और शौरसेनी अपभ्रंश से निकली कन्नोज ब्रज भाषा के समाप्त होने के कारण कई लोग इसे ब्रज भाषा की उपबोली मानते हैं ।

पूर्वी हिंदी की बोलियों के अंतर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढी की गणना होती है। पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली का क्षेत्र अवध है। इसे कोसली और बैसवाडी नाम से भी जाना जाता है। बघेली का प्रमुख केंद्र रीवाँ है। उसलिए उसे रिवाँई नाम से जाना जाता है। संपूर्ण छत्तीसगढ में बोली जाने वाली बोली छत्तीसगढी कहलाती है।

हिंदी भाषा के तीस बोलीवर्ग हैं, राजस्थानी हिंदी में चार बोलियाँ समाविष्ट हैं, जो शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित है । जिसमें मारवाडी का संबंध मरू–भूमि से है, मेवाती बोली को राजस्थानी बोली की कुंजी कहा जाता है। जयपुरी बोली को ढूंढानी नाम से भी जाना जाता है। उसमें राजस्थानी की सभी विशेषताएँ समाहित है। चौथी मालवी बोली, उज्जैन के समीपवर्ती प्रदेश मालव की प्रमुख बोली है। बिहारी हिंदी बोली वर्ग में

भोजपुरी, पश्चिमी बिहारी की बोली है। यह हिंदी की सबसे बडी बोली है। मगदी मगध प्रदेश की भाषा मागधी का आधुनिक नाम है। मैथिली बोली मिथिला क्षेत्र में बोली जाती है। उसकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश के मध्य रूप से मानी जाती है।

पहाडी हिंदी की बोलियाँ हैं कुमायूँनी और गढवाली जो पहाडी क्षेत्र में बोली जाती है।

इस विवेचन से स्पष्ट हैं कि हिंदी की बोलियों का यह वर्गीकरण ऐतिहासिक दृष्टि तथा भाषावैज्ञानिक बोधगम्यता के आधार पर किया गया है।

8.5 शब्दार्थ

उत्थान - उन्नति

मरूभूमि - रेगीस्तान

दोन आब - दो नदियों के बीच का प्रदेश

द्रष्टव्य - देखने योग्य

विपर्यय - उलट-पुलट, अव्यवस्था

अद्‌यतन - आजतक

8.6 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य

- ✻ खडीबोली के प्रसिद्ध महाकाव्यों की सूची प्रस्तुत कीजिए ।
- ✻ कृष्णभक्ति साहित्य की विशेषता समझाइए।
- ✻ अवधी बोली से संबंधित अन्य रचनाओं का संकलन कीजिए ।
- ✻ ब्रज और अवधी के शब्दों की (पचास) सूची तैयार कीजिए ।

8.7 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- ✻ भाषा विज्ञान का रसायन - कैलाशनाथ पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
- ✻ भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र - डॉ. कपिलदेव त्रिवेदी, विश्वविद्‌यालय प्रकाशन, वाराणसी
- ✻ भाषा और भाषा विज्ञान - डॉ. तेजपाल चौधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर

इकाई - 9
हिंदी शब्द निर्माण –उपसर्ग, प्रत्यय, समास

अनुक्रम

9.0 **उद्देश्य**

9.1 **प्रस्तावना**

9.2 **विषय विवरण – हिंदी शब्द निर्माण**

  9.2.1 **उपसर्ग**

  9.2.2 **प्रत्यय**

  9.2.3 **समास**

9.3 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

9.4 **सारांश**

9.5 **शब्दार्थ**

9.6 **स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य**

9.7 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

9.0 उद्देश्य

* हिंदी शब्द निर्माण में उपसर्ग और प्रत्ययों के महत्त्व को समझाना ।
* उपसर्ग और प्रत्ययों से बने शब्दों के विशेष अर्थ को समझना ।
* नए शब्दों से हिंदी शब्द भंडार एवं भाषिक सौंदर्य से परिचित होना ।

9.1 प्रस्तावना

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है। शिक्षित हो या अशिक्षित हो आदिवासी हो या सुदूर क्षेत्र का निवासी हो सभी परस्पर आदान–प्रदान के लिए भाषा का प्रयोग करते है। भाषा व्यवस्थित होनी चाहिए क्योंकि व्यवस्थित भाषा से ही भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति की जाती है। भाषा को व्यवस्थित रूप देने का कार्य व्याकरण करता है। व्याकरण का उद्देश्य होता है भाषा के सर्वसामान्य रूप को प्रस्तुत करना विकल्प वाले शब्दों का निर्देश करना, अशुद्ध–शुद्ध शब्दों का परिचय देना, इनका समुचित प्रयोग करना सिखाना, भाषा के नियमबद्ध सुव्यवस्थित रूप की जानकारी देना अत: व्याकरण में केवल सार्थक शब्दों का विवेचन किया जाता है।

भाषा में कुछ वर्ण समूह ऐसे होते है जिनका स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं होता किंतु जब वे किसी शब्द के साथ जुड जाते है तब वे सार्थक बनते है। ऐसे स्वतंत्र ध्वनियों को 'शब्दांश' कहते है। कारक चिह्न, क्रिया-प्रत्यय, उपसर्ग, प्रत्यय चार प्रमुख भेद है। इनके संयोग या जोड से नए नए शब्द तैयार होते है। कभी कभी दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर नया शब्द बनाया जाता हैं तब उस योग को समास कहते है। शब्द भंडार से ही भाषा की समृध्दि, संपन्नता स्पष्ट होती है। उस इकाई में उपसर्ग, प्रत्यय और समास के द्वारा हिंदी शब्द निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन किया जा रहा है।

9.2 विषय – विवरण

हिंदी शब्द निर्माण – भाषा में प्रयुक्त शब्दों के भंडार को उस भाषा की शब्द संपदा कहा जाता है। शब्दो से ही भाषा का रूप विचार, भाव, अनुभव, मूल्य, आचार, व्यवहार का पता चलता है। शब्दों में जितनी अधिक संप्रेषण शक्ति होती है उतनी ही वह भाषा समृद्ध और शक्तिशाली मानी जाती है। भाषा में शब्दों का अत्यधिक महत्व रहा हैं । सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तन के साथ साथ नए नए आविष्कारों के कारण नए शब्दों का निर्माण होता रहा हैं ।

हिंदी की शब्द संपदा अत्यंत विस्तृत व्यापक है। अर्थ तो शब्द की शक्ति है किंतु भाषागत प्रयोग में केवल शब्दों का प्रयोग नहीं होता । रचनात्मक दृष्टि से मूल शब्दों के आगे या अंत में कुछ शब्दांश जोड कर नए शब्द निर्माण किए जाते है। अर्थात् उपसर्ग या प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है तो कभी दो रूढ शब्दों को जोड कर समास की प्रक्रिया द्वारा नए शब्द का निर्माण किया जाता है।

9.2.1 उपसर्ग

जो शब्दांश शब्द के आरंभ में जुडकर उसके अर्थ में विशेषता या परिवर्तन उत्पन्न करते है उन्हें उपसर्ग कहते हैं। 'उपसर्ग' शब्द का शाब्दिक अर्थ है निकट बैठकर नया अर्थ बना देने वाला । उनका स्वतंत्र अर्थ, अस्तित्व नहीं होता और वाक्य में स्वतंत्र रूप में प्रयोग भी नहीं होता । एक ही उपसर्ग भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ जुडने से भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं ।

उदाहरण – वि. उपसर्ग से बने हुए शब्द – विज्ञान, विदेश, वियोग, विनाश, विज्ञापन आदि ।

हिंदी में हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत के और उर्दू के उपसर्ग भी मिलते हैं; तत्सम शब्दों के साथ संस्कृत के और तद्भव शब्दों के साथ हिंदी उपसर्गो का प्रयोग होता है

* **संस्कृत के हिंदी में आए हुए उपसर्ग और शब्द रूप**
* अति – अतिरिक्त, अत्यंत, अत्याचार, अत्यावश्यक, अतिव्याप्ति, अतिक्रमण, अत्युक्ति
* अधि – अध्यात्म, अध्यक्ष, अधिपति, अधिनियम, अधिष्ठाता
* अनु – अनुकरण, अनुक्रम, अनुशासन, अनुवाद, अनुचर, अनुपात, अनुरूप, अनुस्वार,

अनुशीलन, अनुबंध, अनुग्रह, अनुष्ठान.

* अप – अपव्यय, अपकर्ण, अपकीर्ति, अपभ्रंश, अपभ्रष्ट, अपशब्द, अपहरण, अपवाद, अपशकून

* अभि – अभिप्राय, अभिज्ञान, अभिरूप, अभिलाषा, अभिमान, अभिसार, अभियान, अभियोग, अभिनव, अभिशाप.

* अव – अवगत, अवलोकन, अवसान, अवज्ञा, अवतार, अवनति, अवशेष, अवधान, अवधारणा

* आ – आरक्त, आगमन, आकर्षण, आजन्म, आरंभ, आक्रमण, आदान, आचरण, आजीवन, आमरण, आमुख

* दूर – दुर्दशा, दुर्जन, दुर्लभ, दुराचार, दुर्गुण, दुर्बल, दुष्कर्म

* नि – निवास, नियुक्त, निदान, निमग्न, नियम, निबंध, निपट, निलय, निदर्शन, निरूपण, निपात

* परि – परिजन, परिपूर्ण, परिवर्तन, परिशीलन, परिदर्शन, परिधि, परिरंभ, परियोजना, परिकल्पना

* निर – निरवलंबी, निर्भय, निर्वाह, निर्वास, निर्मल, निर्मम

* प्र – प्रदान, प्रसिद्ध, प्रचार, प्रसार, प्रपंच, प्रताप, प्रयोग, प्रबल, प्रलंब प्रस्थान

* प्रति – प्रतिकार, प्रतिक्षण, प्रतिध्वनि, प्रतिदिन, प्रतिनिधि, प्रतिवादी, प्रतिकूल, प्रतिव्यक्ति

* वि – विमुख, विनय, विग्रह, वियोग, विभाग, विनाश, विज्ञान

* सम – संगम, संकल्प, संतोष, संयोग, संहार, संग्राम,. सम्मुख, संसर्ग, संस्कार

* सु – सुगम, सुकर्म, सुपुत्र, सुकृत, सुदूर, सुयश, सुकवि, सुवास

* उप – उपकूल, उपनिवेश, उपदेश, उपनाम, उपासना, उपवन, उपभेद, उपभाषा, उपमंत्री

* उत्–उद् – उत्कर्ष, उत्साह, उत्थान, उद्गार, उद्भव, उद्गम

* कु. क – कुकर्म, कुरूप, कुपूत्र, कपूत आदि

* **उर्दू से हिंदी में आए हुए उपसर्ग और शब्द रूप –**

* कम – कमजोर, कमउम्र, कम कीमत, कमबख्त, कमसिन

* खुश – खुशदिन, खुशकिस्मत, खुशहाल, खुश खबरी, खुशबू, खुशनसीब, खुशमिजाज,

* गैर – गैरहाजिर, गैरकानूनी, गैरमुमकिन, गैरसरकारी, गैरजात

* दर – दरअसल, दरमियान, दरहकीकत

* ना – नाराज, नापसंद, नालायक, नादान, नाचीज, ना उम्मिद

* बे – बेरहम, बेगुनाह, बेईमान, बेहोश, बेवफा, वेअक्ल, बेपर्दा, बेचैन, बेवकूफ, बेकसूर, बेवफा

* बद – बदनाम, बदसूरत, बदहजमी, बदबू, बदनियत, बदकिस्मत

* ब, बा, बिल, बर – बदौलत, बाकायदा, बिल्कुल, बरदाश्त
* ला – लाइलाज, लापरवाह, लापता, लाजवाब, लावारिस, लाचार
* सर – सरदार, सरपंच, सरहद, सरताज, सरफरोशी
* हर – हररोज, हरमाह, हरसाल, हरएक, हरतरह, हरघडी, हमराह, हरचीज, हमराज
* **हिंदी के उपसर्ग और बने हुए शब्द रूप –**
* अ – अचेत, अथाह, अछूत, अटल, अलग, अजान, अमोल, अपढ, अज्ञान, अमूल्य, अगाध, अहित, अस्थायी, अस्वीकार
* अन – अनपढ, अनमोल, अनजान, अनगिनत, अनहोनी, अनबन, अनाचार, अनबोल
* अध – अधमरा, अधजला, अधखिला, अधपका, अधसेरा, अधबुना
* उन – उनतीस, उनसठ, उन्नीसी, उनहत्तर, उनचार
* औ – औरत, औगुन, औघट, औसर, औदसा
* दु – दुबला, दुकाल, दुधार, दुहरी, दुलार, दुसाध
* नि – निकम्मा, निखरा, निडर, निहत्था, निगोडा, निरोगी, निपूता, निठल्ला, निचला, निधडक
* बिन – बिनदेखा, बिनजाने, बिनखाए, बिनव्याहा, बिनमांगे, बिनकाम, बिनबोया
* क, कु – कपूत, कुचाल, कुपात्र, कुख्यात, कुअवसर, कुविचार
* स. सु – सुपूत, सुडौल, सुजान, सुघड, सुदृढ, सुरक्षा, सुपात्र, सजग, सरस, सगोत्र, सपूत, सहित आदि ।

9.2.2 प्रत्यय

जो शब्दांश शब्दों के अंत में जुडकर इनके अर्थ को बदल देते हैं । उन्हें प्रत्यय कहा जाता हैं ।जैसे –पंक शब्द का अर्थ है कीचड किंतु उसके अंत में ज जोडने से 'पंकज' शब्द बनता है जिसका अर्थ हैं कीचड में जन्म लेने वाला (कमल) सामान्य अर्थ से एकदम अलग अर्थ बन जाता है।

प्रत्ययों के प्रमुख दो भेद माने जाते हैं –

i) कृत्प्रत्यय और

ii) तद्धित प्रत्यय

i) कृत्प्रत्यय – जो शब्दांश धातुओं के अंत में जुडकर अर्थ में परिवर्तन (संज्ञा, विशेषण बनाते है) लाते हैं उन्हें 'कृत्प्रत्यय' कहते हैं और कृत्प्रत्ययों के पांच प्रकार हैं – कर्तृवाचक कर्मवाचक, करणवाचक, भाववाचक और क्रियावाचक । इनके प्रत्यय हैं –

क, ई, हार ऐया, वैया, अक्कड, अऊ, आकू, इयल, आका, आक, आव, ऐत, ने वाला, ऐरा,इया, नी, ना, औना, हुआ, अन, ऊ, आ, आन, आई, आवट, अंत, इयल, आहट, ता, हुआ, ता, या, कर, ते, ही, ते, ते आदि

उदाहरण – क – पाठक, कारक, गायक, नायक, वाचक

ई – त्यागी, उपकारी, अपराधी

हार – खेलनहार, होनहार, देनहार, मरनहार, राखनहार, सिरजनहार

ऐया/वैया – गवैया, खिवैया, खवैया, पढैया, रखैया, सुनवैया

अक्कड – भुलक्कड, पियक्कड, घुमक्कड, कुदक्कड, बुझक्कड,

आऊ – कमाऊ, खाऊ, इडाऊ,. बिकाऊ, चलाऊ, जडाऊ. दिखाऊ

आकू/आलू – लडाकू, झगडालू

इयल – अडियल, सडियल, मरियल

आका – धमाका, लडाका

आक – तैराक, फिराक

आव – चढाव, जमाव, घुमाव, पडाव, लगाव, बचाव

ऐत – लठैत,. लडैत

ने वाला – पढनेवाला, खेलनेवाला, जानेवाला, खानेवाला

ऐरा – लुटेरा, बसेरा, कसेरा.

इया – बढिया, जडिया, गुनिया, धुनिया, दुधिया

नी – चटनी, ओढनी, सूंघनी

ना – खाना, जाना, ओढना, गाना

औना – खिलौना, बिछौना, भगौना

हुआ – पढा हुआ, देखा हुआ, लिखा हुआ, सुना हुआ

अन – करन, दक्कन, बेलन, झाडन

ऊ – झाडू, मारू. बिगाडू, ढालू

आ – मेला, भटका, भूला, झूला

आन – मिलान, उडान, प्रस्थान, चालान, खुदान

आई – कमाई, लडाई, चढाई, सिलाई, भलाई

आहट – घबराहट, चिल्लहट, गुर्राहट, डगमगाहट

अंत – भिडंत, रटंत, घडंत

इश – परवरिश, कोशिश, वारिश, मालिश

आहट – बनावट, मिलावट, थकावट, दिखावट

ता हुआ – आता हुआ, जाता हुआ, पढता हुआ

ता, ती – बढता, चढता, चलता, रमता, बहता, डूबता, बढती, घटती

या – सोया, खोया, बोया, पिया

कर – जाकर, खाकर, सोकर, गाकर, पाकर, हँसकर, पढकर

ते ही – सोते ही, चलते ही, खाते ही, लडते ही

ते ते – आते-आते, जाते-जाते, खाते-खाते, बैठते- बैठते

ii) **तद्धित प्रत्यय –** जो प्रत्यय क्रिया से भिन्न अर्थात् संज्ञा विशेषण, सर्वनाम और अव्ययों के बाद लगते है और प्राय: संज्ञा और विशेषण बनाते है, उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते है। तद्धित प्रत्ययों की संख्या बहुत है और प्रकार भी अधिक है, जैसे कर्तृवाचक, भाववाचक, संबंधवाचक, लघुतावाचक, पूर्णार्थक, सादृश्यवाचक, गुणवाचक, स्थानवाचक, क्रमवाचक, स्त्रीलिंगवाचक, बहुवचनवाचक इनके प्रत्यय है –

इक, इमा, इय, आर, ई, इया, ईला, ईन, एरा, ऐला, वाला, वान, कार, दार, हार, हारा, डा, डी, आ, री, पन, वाँ, सरा, आऊ, वी, त्व, औती, आना, एँ, याँ, नाक, मंद, लु, बान, वन्त, गी आदि । संस्कृत, उर्दू और हिंदी के तद्धित प्रत्ययों के उदाहरण देखिए –

इक – धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक

इमा – लालिमा, कालिमा, हरीतिमा, नीलिमा.

एय – गांगेय, कौंतेय, राधेय, पौरूषेय

ई – गरीबी, दशरथी, बंगाली, गुजराती, चोरी, नरमी, बुराई

इया – दुखिया, रसोइया, डिबिया, बिटिया, खटिया, रसिया

ईला – रसीला, जहरीला, बर्फीला

ईन – इन – नमकीन, शौकीन, रंगीन, मलिन, धोबिन, लुहारिन

एरा – सपेरा, लुटेरा, चितेरा, चचेरा, मौसेरा, फुफेरा, ममेरा

ऐला-एलू, ऐल – विषैला, घरेलू, खपरैल, छपरैल

वाला – इक्केवाला, घरवाला, दूधवाला, टांगेवाला, कलकत्तेवाला

वान – गाडीवान, धनवान, रूपवान

कार – पत्रकार, कलाकार, साहित्यकार, चित्रकार

दार – दुकानदार, ईमानदार, जमींदार, कर्जदार

हार, हरा – चाखनहार, राखनहारा,. पनिहारा, भुतरह, छुतरह

हारा – लकडहारा, चुडिहारा

डा, डी – मुखडा, बछडा, दुखडा, पंखुडी, गठडी, संदुकडी, पगडी

आ, अंत – भूखा, प्यासा, मैला, लडत, भिडंत

पन – लडकपन, बचपन, घुटपन

वाँ, सरा – पाँचवाँ, साँतवा, दसवाँ, दूसरा, तीसरा

आऊ, आर – दिखाऊ, पंडिताऊ, उपजाऊ, सुनार, लुहार, कुम्हार

वी, त्व – मेंधावी, तपस्वी, मायावी, नारीत्व, मनुष्यत्व, गुरुत्व

औती, आना – बपौती, बुढौती, रोजाना, जनाना, मर्दाना, नजराना

एँ – सडके, पुस्तके, बोतले, मालाएँ

याँ - बेटियाँ, चुहियाँ, बुढियाँ, चिडियाँ, बोरियाँ

नाक - दर्दनाक, खतरनाक, शर्मनाक

मंद - जरुरतमंद, फायदेमंद, अक्लमंद

लु. ला - दयालु, कृपालु, शंकालु

जा - भानजा, भतीजा.

वन्त - कुलवंत, दयावंत

गी - जिंदगी, मर्दानगी

आस, आल - मिठास, खटास, भडास, ससुराल, ननिहाल

गर, गार - बाजीगर, कारीगर, मददगार

बान - बागबान, मेजबान

दान - कलमदान, नाबदान, कदरदान आदि

9.2.3 **समास**

हिंदी भाषा में संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत के अनेक सामासिक शब्दों का प्रयोग हिंदी में हो रहा हैं इसलिए समास का अध्ययन आवश्यक हैं। 'समास' का अर्थ हैं संक्षेप। कम शब्दों में अधिकाधिक अर्थ प्रकट करना भावसौंदर्य निर्माण करना समास का उद्देश्य है।

दो या दो से अधिक शब्द मिलाकर एक नया शब्द बनता है। तब उस योग को 'समास' कहते है। मिले हुए शब्दों को समस्तपद कहते है। समास करते समय पहले पद या पदों की विभक्तियों या और आदि अव्ययों का लोप होता है। जैसे - राम का दास - रामदास

कृष्ण और अर्जुन - कृष्णार्जुन

स्पष्ट हैं समास में शब्दों का नहीं पदों का परस्पर संबंध होता हैं। अनेक बार समास के बाद संधि होती है।

जैसे - धन का आगम में का लुप्त हो जाने पर दीर्घ संधि से शब्द बनता हैं - धन + आगम - धनगम

समस्तपद जिन शब्दों के मेल से बनते हैं वे 'समास खंड' कहलाते हैं। समस्त पद के खंड करके उनका परस्पर संबंध दिखाने की पद्धति को विग्रह कहते है। उक्त उदाहरण में विभक्ति का लोप हो गया है और विग्रह करने पर पुन: दिखाई देती है।

समास के अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वंद्व भेद माने जाते है। इनका संक्षिप्त सोदाहरण विवेचन निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

1) **अव्ययीभाव समास - (पूर्वपद प्रधान)**

जिस समास में पहला खंड अव्यय प्रधान हो और समस्तपद से अव्यय का बोध हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। यह क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। असमें कुछ

शब्द लुप्त हो जाते हैं और उनके बदले पहले अव्यय आ जाता हैं ।

उदाहरण - प्रतिदिन (दिन-दिन), यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार),
एकाएक (एक होते ही), हाथोहाथ (हाथ से हाथ),
आजन्म (जन्मभर), पहले-पहल (सबसे पहले),
बेखट के (खटके के बिना), भरपेट (पेट को भरकर),
यथाविधि (विधि के अनुसार), आमरण (मरण तक),
निडर (बिना डर के), व्यर्थ (बिना अर्थ का),
यथा संख्य (संख्या के अनुसार), साफ-साफ (बिल्कुल साफ),
आजीवन (जीवनभर), आजन्म (जन्म से लेकर),
यथामति (प्रति के अनुसार), बीचोंबीच (ठीक बीच में),
सकुशल (कुशल के साथ), बेशक (बिना संदेह),
हररोज (रोज रोज), बेकायदा (फायदे के बिना), आदि

2) **तत्पुरुष समास - (उत्तरपद प्रधान)**

जिस समास में दूसरा पद प्रधान होता है और पहले खंड के विभक्ति चिह्नों (परसर्गो) का लोप कर दिया जाता है, उसे तत्पुरुष समास कहते है -

उदाहरण - (राजा का कुमार) राजकुमार, (राजा का भवन) राजभवन

तत्पुरूष समास में कारकों के आधार पर छह भेद बनते है।

कर्म, करण,संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण

i) कर्मतत्पुरुष समास - इसमें परसर्ग 'को' का लोप हो जाता है।

उदाहरण - माखनचोर (माखन को चुरानेवाला), काशीगत (काशी को गत)

ii) करणतत्पुरुष समास - इसमें से, व्दारा का लोप होता है -

उदाहरण - ईश्वरदत्त (ईश्वर से दत्त)बिहारी रचित (बिहारी दूवारा रचित)

iii) संप्रदान तत्पुरुष समास - 'के लिए' का लोप हो जाता है -

रसोई घर - (रसोई के लिए घर) सभाभवना (सभा के लिए भावन)

iv) अपादान तत्पुरुष समाप्त -इसमें 'से' का लोप होता है -

धर्मभ्रष्ट (धर्म से भ्रष्ट) रणबिमुख (रण से विमुख)

v) संबंध तत्पुरुष समास - इसमें 'का' का लोप होता है।

सेनापति (सेना का पति), राजवंश (राजा का वंश)

vi) अधिकरण तत्पुरुष समास - इसमें 'में' 'पर' का लोप होता हैं -

गृहप्रवेश (गृह में प्रवेश) वनवास (बन में वास)

घुडस्वार (घोडे पर सवार,) आपबीती - (आप पर बीती)

अन्य उदाहरण -

* कर्म - शरणागत, ग्रामगत, स्वर्गगत, यशप्राप्त, जलपिपासु, परलोकगमन,

* करण - मुँहमांगा, कष्टसाध्य, गुणयुक्त, गुणहीन, मनचाहा, मनमाना, गुरुदत्त, दोषपूर्ण, कालिदासकृत, ज्ञानयुक्त, रेखांकित, हस्तलिखित, कलंकयुक्त,

* संप्रदान - बलिपशु, सत्याग्रह, हथघडी, युद्धभूमि, मार्गव्यय, पाठशाला, प्रयोगशाला, विद्यालय, राहखर्च, देशभक्त , हथकडी,

अपादान - धनहींन, जातिच्युत, लक्ष्यभ्रष्ट, भयभीत, पथभ्रष्ट, आशातीत, धर्मविमुख, देशनिकाला, कामचोर, जन्मांध

* संबंध - यमुनातट, कनकघट, पराधीन, राजदरबार, विद्याभ्यास, नगरसेठ, वायुसेना, भारतरत्न, देवालय, अमृतसर, प्रेमसागर, दिनचर्या, कुलदीप, राष्ट्रपतिभवन, विद्याभंडार, सूर्यपुत्र, दिनचर्या, सचिवालय

* अधिकरण - दानवीर, रणवीर, कला प्रवीण, देशाटन, आत्मविश्वास, विचारमग्न, जलमग्न, स्नेहमग्न, कविश्रेष्ठ

अन्य - दिवाक्र, प्रभाकर, कुंभकार, अनाचार (न आचार) नालायक (नालायक) प्रगत (सब से बढा हुआ) उपनद (उपनद) पर्णशाला (पर्ण से निर्मित शाला) दहीबडा (दही में डूबा बडा) आदि ।

* तत्पुरुषसमास का दूसरा नाम हैं कर्मधारय । इसमें विशेषण - विशेष्य या उपमेय उपमान का मेल हो और विग्रह करने पर दोनों खंडों में एक ही कर्ता कारक की प्रथमा विभक्ति रहे, उसे कर्मधारय कहते हैं ।

उदाहरण - विशेषण-विशेष्य रक्तकमल (रक्त जो कमल), नीलांबर (नीला जो अंबर), महाराजा (महान जो राजा) भलामानस (भला जो मानस) नराधम (अधम जो नर), पुरुषोत्तम (उत्तम जो पुरुष) महादेव (महान जो देव) परमानंद (परम जो आनंद), पीतांबर (पीला जो अंबर) चंद्रमुख (चंद्रमा के समान मुख) कमलनयन (कमल के समान नयन), विद्याधन (विद्यारूपी धन), संसारसागर (संसार रूपी सागर) करकमल (कर रूपी कमल), ग्रंथरत्न (ग्रंथ रूपी रत्न) वचनामृत (वचन रूपी अमृत) आदि ।

* द्विगु - यह भी कर्मधारय का ही भेद हैं जिस कर्मधारय समास का पहला पद संख्यावाचक होता और जिससे एक समुदाय का बोध होता हैं, उसे द्विगु समास कहते हैं।

उदाहरण - नवग्रह (नव जो ग्रह), दोपहर (दो जो दहर), चौमास (चारमासों का समाहार), पंचतंत्रों (पाँचतंत्रों का समाहार), अठन्नी (आठ आनों का समाहार), पंसेरी (पाँच सेरों का समूह), त्रिवेणी (तीन वेणियों का समूह) आदि । प्राय: वैयाकरण कर्मधारय और द्विगु को तत्पुरुष समास के उपभेद मानते हैं।

३) बहुव्रीहि समास -

इसमें दोनों घटकों की अप्रधानता होती है किंतु कोई अन्य अर्थ प्रधान हो और वाला अर्थ पाया जाता है, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं -

उदाहरण - दशानन (न दश है आनन जिसके वह - रावण)

भालचंद्र (जिसके भाल पर चंद्र है - शंकर)

पीतांबर - (पीत है अंबर जिसका = विष्णु)

शूलपाणी (शूल है पाणि में जिसके विष्णु)

नीलकंठ - (नीला है कंठ जिसका - शिव

गिरीधारी - (गिरी को धारण करनेवाला श्रीक़ृष्ण)

चतुरानन - (चतुर (चार) हैं आनन जिसके - ब्रह्मा

(4) **द्वंद्व समास –** जिसमें समस्तपद प्रधान होते हैं और विग्रह करने से योजक में और शब्द लगता है, उसे द्वद्वं समास कहते हैं -

उदाहरण -पाप-पुण्य (पार और पुण्य) दाल-रोटी (दाल और रोटी) दाल-भात, दिन-रात, हाथ-मुँह, राम-सीता, राधा-कृष्ण आदि

द्वद्वं समास में और तथा व एवं अथवा वा आदि का लोप हो जाता है। उसके तीन भेद हैं -

i) इतरेतर द्वंद्व - जहाँ दोनों पदों में और निहित होता हैं

उदाहरण - राधा-कृष्ण, माता-पिता, मामा-मामी, चाचा-चाची आदि ।

ii) वैकल्पिक - यह समास अथवा के रूप में प्रयुक्त होता है -

उदाहरण - सुख-दुख, हानि-लाभ, पाप-पुण्य, रात-दिन, धनी-निर्धन आदि ।

iii) समाहार द्वंद्व - जहाँ दोनों पदों के अतिरिक्त वस्तुओं का बोध होता हैं । दाल-रोटी, पान-सुपारी, खान-पान आदि ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिंदी भाषा में इन समस्त शब्दों, समासों का बडी सहजता से प्रयोग होता रहा । भाषिक सौंदर्य की वृद्धि के साथ ही इनसे भावों की सूक्ष्म, गंभीर, सहज अभिव्यक्ति होती हैं, भाषा प्रौढ, प्रगल्भ बनती है। हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने समास प्रधान शैली के प्रयोग से भाषा को प्रगल्भ बनाया है।

9.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* उपसर्ग की परिभाषा बताकर संस्कृत से आए हुए उपसर्गो के उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

* उपसर्ग की परिभाषा स्पष्ट करते हुए हिंदी के उपसर्गो के उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

* प्रत्यय के स्वरूप को समझाते हुए कृत्प्रत्ययों के उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

* तद्धित प्रत्ययों के उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

* समास की व्याख्या देते हुए समास के विग्रहयुक्त उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

* उपसर्ग और प्रत्ययों के उदाहरण देकर उनका महत्त्व लिखिए ।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ –

* उर्दू के उपसर्ग

....

....

....

* हिंदी के उपसर्ग

....

....

....

* प्रत्ययों के प्रकार

....

....

....

* कृत्प्रत्यय

....

....

....

* तद्धित प्रत्यय

....

....

....

ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

✻ संस्कृत के एक उपसर्ग से चार शब्द बनाइए ।

....

....

....

✻ हिंदी के उपसर्गों को अलग कीजिए - अनपढ, अधपका

....

....

....

✻ आऊ प्रत्यय से चार शब्द बनाइए ।

....

....

....

✻ आई, आन प्रत्यय से दो दो शब्द बनाइए ।

....

....

....

✻ कृप्रत्ययों के चार उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

✻ समास के चार उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

घ) सही पर्याय लिखिए

✻ क्रिया से भिन्न शब्दों के अंत में लगनेवाले प्रत्यय को क्या कहते है?
अ) तद्धित ब) कृत क) शब्द ड) उपसर्ग

✻ समास का अर्थ क्या है?
अ) विभक्ति, ब) संक्षेप, क) संबंध ड) पद

✻ विज्ञान, विदेश, वियोग किसके उदाहरण है?
अ) प्रत्यय ब) तद्धित क) समास ड) उपसर्ग

9.4 सारांश

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है किंतु व्यवस्थित भाषा से ही सहज, स्पष्ट अभिव्यक्ति संभव है। भाषा को सुव्यवस्थित रूप व्याकरण देता अ व्याकरण में केवल सार्थ शब्दों का विवेचन होता है। अत: शब्दों का ज्ञान, प्रयोग, उनकी लिखावट में उपसर्ग, प्रत्यय समासों का उपयोग नए-नए शब्दों के निर्माण की जानकारी मिलती है। भाषा में जो वर्ण समूह होते हैं तो कुछ स्वतंत्र उनका प्रयोग होता है तो कुछ स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त नहीं होते । वे हैं उपसर्ग प्रत्यय, समास आदि ।

किसी भी भाषा की श्रेष्ठता उसके शब्दभंडार पर आधृत होती है क्योंकि शब्दों में ही अर्थ निष्पत्ति की शक्ति होती है। भाव, विचार उपचार आदि की संप्रेषण शक्ति भाषा में प्रयुक्त शब्दों से ज्ञात होती है। भाषा में प्रयुक्त शब्दों में शब्दांश उपसर्ग, प्रत्यय जोडे जाते हैं । इनसे अनेक शब्दों का निर्माण किया जाता हैं ।

शब्द के आरंभ में जुडकर उसके अर्थ में विशेषता निर्माण करनेवाले शब्दांश उपसर्ग हैं । तो शब्द के अंत में जुडकर अर्थ परिवर्तन करने वाले शब्दांश प्रत्यय कहलाते है। कृत्प्रत्यय और तद्धितप्रत्यय उसके भेद है। अत: समास कम शब्दों में अधिक अर्थ बताते है। नए-नए शब्द निर्माण करके भाषा का सौंदर्य बढाते है।

9.5 शब्दार्थ

संप्रेषण - भेजना (विचारादि), पहुँचाना

तत्सम - संस्कृत के समान

आविष्कार - प्रगति, विकास

9.6 स्वध्याय -क्षेत्रीय कार्य

* उपसर्ग और प्रत्यय के अंतर को समझने का प्रयत्न कीजिए
* उपसर्ग और प्रत्ययों के द्‌वारा बने हुए शब्दों की उपयुक्तता लिखिए ।
* समासों के विविध उदाहरणों का विग्रह बताकर अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
* उपसर्गो की प्रदीर्घ सूची तैयार कीजिए ।
* कृत्प्रत्यय और तद्धित प्रत्ययों के उदाहरण दीजिए ।

9.7 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* प्रयोजनमूलक हिंदी - पत्र लेखन एवं टिप्पणी - डॉ. उर्मिला पाटील, अतुल प्रकाशन, कानपुर स. 2004
* मानक व्यावहारिक हिंदी व्याकरण तथा रचना - श्यामजी वर्मा, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली सं. 2002
* अभिनव भाषा - प्रयोग एवं निबंध रचना - डॉ. राधेश्याम वर्मा. आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली से 2001
* भाषाविज्ञान के आधुनातन आयाम एवं हिंदी भाषा - डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन कानपुर.

इकाई - 10
हिंदी भाषा का व्याकरण

अनुक्रम

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 विषय - विवरण
 10.2.1 अविकारी - संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया
 10.2.2 अविकारी - अव्यय - क्रियाविशेषण, संबंधबोधक समुच्चयबोधक, विस्मयादि बोधक
 10.2.3 लिंग, वचन, कारक परिचय
10.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
10.4 सारांश
10.5 शब्दार्थ
10.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य
10.7 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

* भाषा में प्रयुक्त शब्दों के रूप एवं महत्त्व को समझेंगे ।
* व्याकरणिक दृष्टि से शब्दों के विभिन्न भेदों से परिचित होंगे ।
* शब्द के भेदों एवं प्रयोग की जानकारी प्राप्त करके स्वयं भाषिक प्रयोग करने का प्रयत्न करेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

भाषा मूलतः ध्वनि, रूप, पद, शब्द समूह के द्‌वारा भाव-अर्थ संप्रेषण करने का साधन है। भाषा में प्रयुक्त शब्द विविध बातों का बोध कराते हैं । भाषा में प्रयुक्त सभी शब्द सार्थक नहीं होते, न केवल शब्दों से अर्थ संप्रेषण होता हैं । अर्थात् इन शब्दों के साथ कारक चिह्न, उपसर्ग, प्रत्ययादि जोड़ने से नया शब्द रूप 'पद' कहलाता हैं, तभी वे सार्थक बनते है।

भाषा की अभिव्यक्ति का मूल आधार शब्द ही होते हैं। इनसे व्यक्ति भाव-भावनाएँ,

विचारों की अभिव्यक्ति करता है। उनकी भाषा में प्रयुक्त शब्दों के समूह को 'शब्द-भंडार' कहते है। किसी भी भाषा में शब्दों की गणना करना असंभव है क्योंकि निरंतर प्रयोग, सभ्यता के विकास के साथ परिवर्तन-विकास प्रक्रिया से शब्दों की संख्या घटती नहीं बढ़ती ही है। अतःभाषा में एकार्थी, अनेकार्थीं, समानार्थी, विलोमार्थी, सामान्य, तकनीकी, तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, रूढ़, यौगिक आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जिसे भाषा का शब्द भंडार समृद्ध-संपन्न होता है। उस भाषा को लोकमान्यता सहज ही मिलती है। हिंदी भाषा का शब्दभंडार अत्यंत समृद्ध है। इन शब्दों का व्याकरणिक दृष्टि से अध्ययन आवश्यक है। किसी भी भाषा का प्रयोग करते समय उसके शब्द और शब्दों के अर्थ को समझना अनिवार्य होता है अतः उसका व्याकरण बद्ध रूप एवं संरचना समझना आवश्यक है। प्रत्येक भाषा व्याकरण बद्ध होती है और उसका व्यावहारिक तथा मानक रूप भिन्न भिन्न होता है इसलिए शब्दों के प्रयोग में संज्ञा, विशेषण, लिंग कारक आदि की जानकारी व्याकरण से संभव है। व्याकरण का उद्देश्य शब्दों के विश्लेषण के साथ ही भाषा के सर्वसामान्य रूप को प्रस्तुत करना, भाषा के नियमबद्ध, सुव्यवस्थित एवं मानक रूप की जानकारी देना, शब्दों का विस्तृत ज्ञान एवं प्रयोग करना सीखाना है। अतः विविध क्षेत्रों का ध्यान रखकर ही शब्द, शब्दरूप एवं भाषा का प्रयोग करना चाहिए ।

10.2 विषय-विवरण

प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी व्यवस्था-संरचना होती है और व्याकरण भी स्वतंत्र होता है। भाषा में प्रयुक्त विविध शब्द एवं शब्द समूह का ज्ञान आवश्यक हैं । हिंदी भाषा का शब्द भंडार समृद्ध तथा संपन्न हैं । व्याकरणकारों ने अध्ययन की सुविधा के लिए शब्दों का वर्गीकरण किया हैं । इनके ज्ञान से भाषिक प्रयोग आसानी से किया जा सकता है और भाषा की शुद्धता का भी ध्यान रखा जा सकता है।

10.2.1 व्याकरणिक प्रयोग की दृष्टि से शब्दों के भेद निम्न है

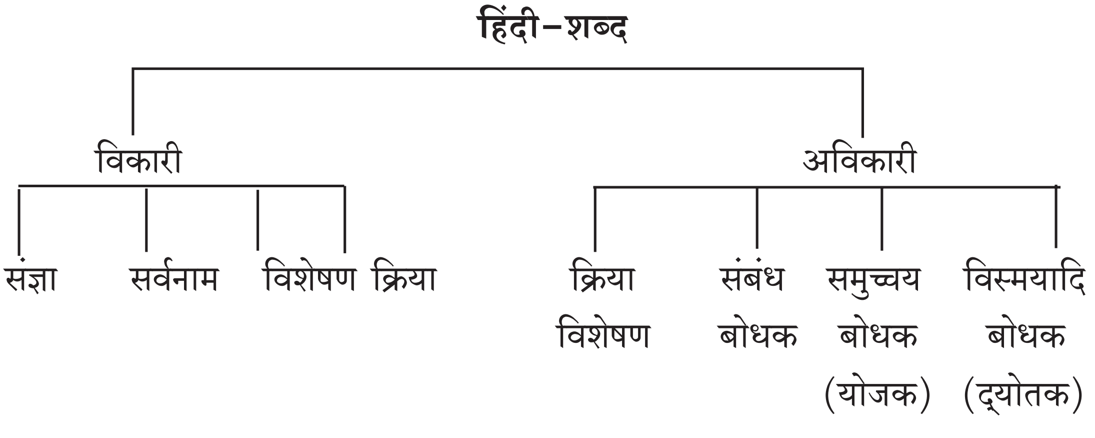

क) विकारी - जिन शब्दों में विकार या परिवर्तन होते हैं उन्हें विकारी शब्द कहते हैं । संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया - यह सब विकारी शब्द हैं क्योंकि लिंग, वचन, कारक आदि से इनके रूप बदलते हैं -

उदाहरण -

संज्ञा - लड़का, लड़के ने, लड़के के लिए ।

सर्वनाम - वह, वे उसका, उन्होंने ।

विशेषण - काला, काले, काली ।

क्रिया - जाता हैं, गया, जाएगा, जाएगी, जाएंगे ।

ख) अविकारी – जिन शब्दों के रूप में परिवर्तन नहीं होता, जो हमेंशा एक–जैसे रहते हैं उन्हें अविकारी कहते हैं ।

जैसे - क्रियाविशेषण - जल्दी–जल्दी, धीरे–धीरे ।

संबंधबोधक - ऊपर, नीचे, आगे, पीछे ।

समुच्चयबोधक - और, किंतु, अथवा, यदि, अगर, मगर ।

विस्मयदिबोधक - अहा, अरेरे, वाह–वाह, छिः।

इन शब्दों का विस्तृत परिचय –

* संज्ञा – किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान या भाव के नाम को संज्ञा कहते हैं । उदाहरण – – श्याम, पुस्तक, मुंबई, चतुरता, आदि ।

संज्ञा के निम्न पाँच भेद माने गए हैं –

1. व्यक्तिवाचक, 2. जातिवाचक, 3 भाववाचक, 4. समूहवाचक,
5. द्रव्यवाचक

1.1. **व्यक्तिवाचक संज्ञा –** किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु विशेष का बोध करानेवाली संज्ञाएँ व्यक्तिवाचक कहलाती है। उदाहरण – राम, दिल्ली, गंगा, ताजमहल, तुलसीदास आदि ।

1.2. **जातिवाचक संज्ञा –** जिन संज्ञाओं से एक जाति के सब पदार्थों या व्यक्तियों का बोध होता है, वे जातिवाचक संज्ञाएँ कहलाती हैं । उदाहरण – मनुष्य, पर्वत, वृक्ष, पुस्तक, कवि, फूल आदि ।

1.3. **भाववाचक संज्ञा –** जिन संज्ञाओं से पदार्थ के धर्म, गुण, दोष, अवस्था, व्यापार आदि भाव स्पष्ट होते हैं, वे भाववाचक संज्ञाएँ हैं । उदाहरण – कठोरता, मिठास, बचपन, हर्ष, वीरता आदि।

1.4. **समूहवाचक संज्ञा –** जो संज्ञा शब्द किसी एक व्यक्ति के वाचक न होकर समूह के वाचक होते हैं, उन्हें समूहवाचक संज्ञा कहते हैं । उदाहरण – –कक्षा, सेना, भीड़, संघ, गण, टोली, मंडली, पुस्तकालय आदि ।

1.5. **द्रव्यवाचक संज्ञा –** जिन संज्ञा–शब्दों से उस पदार्थ का बोध होता हैं जिससे वह बना है, उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं । उदाहरण – – लोहा, सोना, चांदी, पानी, तेल. घी, मिट्टी, सब्जी, फल आदि।

संज्ञा बनाने की कुछ विशेष बातें –

*** व्यक्तिवाचक संज्ञा से जातिवाचक संज्ञा –**

जब व्यक्तिवाचक संज्ञा व्यक्ति विशेष का बोध न कराके उस व्यक्ति के गुणदोषों से युक्त अनेक व्यक्तियों का बोध कराती है तब वह व्यक्तिवाचक से जातिवाचक संज्ञा बन जाती है –

उदाहरण – आज हमारे देश में सीता और सावित्री का अभाव नहीं है।

कलियुग में अनेक विभीषण पैदा हो गए है।

✻ जातिवाचक संज्ञाएँ प्रायः एकवचन और बहुवचन में प्रयुक्त होती है –
उदाहरण – माला–मालाएँ, कुत्ता–कुत्ते, पुस्तक–पुस्तकें आदि ।

✻ व्यक्तिवाचक और भाववाचक संज्ञाएँ प्रायः एकवचन में ही प्रयुक्त होती है– उदाहरण – – लाहौर, वाराणसी, इंदिरा गांधी, वीरता, सत्य, अहिंसा आदि ।

✻ भाववाचक संज्ञाएँ कुछ स्वतंत्र तो कुछ जातिवाचक संज्ञा, क्रिया, विशेषण, सर्वनाम, अव्यय से बनती है –

उदाहरण – –

✻	जातिवाचक संज्ञा से	–	लड़का < लड़कपन, मित्र < मित्रता
✻	क्रिया से	–	पढ़ना < पढ़ाई, चुनना < चुनाव, पालना < पालन, लड़ना < लड़ाई, घबराना < घबराहट आदि
✻	सर्वनाम से	–	अपना < अपनात्व, अपनापन, मम–ममत्व, ममता, स्व < स्वत्व, पराया < परायापन, निज < निजत्वादि ।
✻	विशेषण से	–	पंडित < पांडित्य, नीच < नीचता, कटु < कटुता, चतुर < चतुराई, चतुरता, तीखा < तीखापन आदि ।
✻	संज्ञा से	–	बूढ़ा < बूढ़ापा, युवा < यौवन, भार < भारीपन, इन्सान < इन्सानियत, स्वामी < स्वामित्व, कुमार < कौमार्य
✻	अव्यय से	–	वाह वाह < वाहवाही, हा हा < हाहाकार, दूर < दूरी, आदि

✻ **सर्वनाम –** संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होनेवाले शब्द को 'सर्वनाम' कहते हैं । वाक्य में बार–बार होनेवाली संज्ञा की आवृत्ति को सर्वनाम टालता हैं और सर्वनाम का प्रयोग करता है।

उदाहरण – – मैं, वह, तुम यह, कोई आदि सर्वनाम हैं ।

सर्वनाम के छः भेद

पुरूषवाचक	निश्चयवाचक	अनश्यिचवाचक	प्रश्नवाचक	संबंधवाचक	निजवाचक
(मैं,हम,तुम)	(यह, वह)	(करेई, क्या)	(कौन, क्या)	(जो, से)	(आप, खुद)

* पुरूषवाचक सर्वनाम – कहने, सुनने वाले या किसी दूसरे के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग किया जाता हैं, इन्हें पुरूषवाचक सर्वनाम कहते हैं । इसके तीन भेद हैं

* उत्तम पुरूषवाचक – केवल अपने लिए उसका प्रयोग होता है –
(मैं, मेरी, हम)
* मध्यम पुरूषवाचक – वक्ता, श्रोता, पढ़ने वाले के लिए प्रयुक्त –
(तू, तुम, आप)
* अन्य पुरूषवाचक – वक्ता किसी अन्य के लिए प्रयुक्त करता है –
(यह, वह,वे,उसे)

* पुरूषवाचक सर्वनाम के प्रयोग के संदर्भ में निम्न बातों का ध्यान रखें –

1. आत्मीयता, अपने से कम आयुवाले, ईश्वर के लिए 'तू' का प्रयोग
2. आदरणीय, श्रद्धेय व्यक्ति के लिए 'आप' सर्वनाम का प्रयोग यह एक वचन और बहुवचन के लिए प्रयुक्त होता है।
3. अभिमान, क्रोध व्यक्त करने के लिए 'हम' का प्रयोग
4. संपादक, लेखक, अधिकारी व्यक्ति एकवचन के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करते है।
5. यह–वह का बहुवचन रूप ये और वे सम्माननीय व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किए जाते है।

* **निश्यचवाचक सर्वनाम –** जिन शब्दों से किसी दूरवर्ती या निकटवर्ती व्यक्ति, प्राणी, वस्तु, घटना–व्यापार का निश्चित बोध होता है, उन्हें निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं –

उदाहरण – प्रजा यह चाहती है कि भारत का नाम रोशन हो ।

यह सबकुछ अच्छा है। वह ठीक से नजर नहीं आता ।

* **अनिश्चयवाचक सर्वनाम –** जिनसे निश्चित वस्तु या व्यक्ति आदि का बोध नहीं होता उन्हें अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं –

उदाहरण – – दरवाजा खटखटाया और कोई आया ।

सब्जी में कुछ पड़ गया, उसे निकालकर फेंक दो ।

* **संबंधवाचक सर्वनाम –** जो किसी उपवाक्य में प्रयुक्त संज्ञा या सर्वनाम से अन्य सर्वनाम के साथ संबंध प्रकट करते हैं –

उदाहरण – – जैसा करोगे वैसा भरोगे ।

जो परिश्रम 'करेगा उसे ही सफलता मिलेगी ।

* प्रश्नवाचक सर्वनाम – जिन सर्वनाम से किसी व्यक्ति, प्राणी, वस्तु क्रिया– व्यापार आदि के संबंध में प्रश्न का बोध होता है, उन्हें प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं –

उदाहरण – – सबसे पहले कौन जाएगा?

आप क्या खाना खाओगे?

* निजवाचक सर्वनाम – जिन सर्वनामों का प्रयोग स्वयं अपने लिए किया जाता है, –

उदाहरण – – हमे अपने देश के लिए कुछ तो करना होगा ।

मैं स्वयं लेकर आऊंगा ।

✼ **सर्वनामों के प्रयोग में निम्न बातों पर ध्यान रखें –**

i) स्त्रीलिंग, पुल्लिंग के आधार पर सर्वनामों में परिवर्तन नहीं होता ।

उदाहरण – मैं, तू, वह । किंतु संबंधकारक में लिंग के कारण परिवर्तन होता है–

उदाहरण – – मेरा–मेरी, तेरा–तेरी, उसका–उसकी आदि

ii) वचन और कारक के आधार पर सर्वनाम में परिवर्तन होता है –

मैं–तू, वह–यह – हम, तुम, वे, ये में बदल जाते हैं ।

iii) मैं,तू यह, वह में विभक्तियाँ जोड़कर लिखें –

उदाहरण – मैंने, तुझे, उसका, उसको । दोहरी विभक्ति में पहली जोड़े दूसरी नहीं । जैसे -- मेरे लिए, उसके लिए ।

* **विशेषण –** जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम की (गुण, दोष, सांख्या, परिमाण आदि का बोध) विशेषता बताते हैं, इन्हें 'विशेषण' कहते हैं ।

उदाहरण – – <u>काला</u> <u>घोड़ा</u>, मैले कपड़े, <u>अच्छी</u> पुस्तक आदि ।

विशेषण के चार भेद है

गुणवाचक | संख्यवाचक | परिमाणवाचक | सार्वनामिक

✼ गुणवाचक विशेषण – जो शब्द किसी व्यक्ति या वस्तु की संज्ञा के गुण, दोष, आकार, रंग अवस्था, स्थिति आदि का बोध कराते हैं उसे गणुवाचक विशेषण कहते हैं ।

उदाहरण – – हरी सब्जी, विशाल आंगन, क्षणभंगुर जीवन आदि ।

गुणवाचक विशेषण के गुणबोधक, दोषबोधक, रंगबोधक, कालबोधक, स्थानबोधक, गंधबोधक, अवस्थाबोधक, दिशाबोधक, दशाबोधक, आयुबोधक, आकारबोधक, स्पर्शबोधक, आदि भेद हैं इनके क्रमशः उदाहरण –

गुणबोधक	–	अच्छा, नम्र, सुशील, दानी
दोषबोधक	–	बुरा, खराब, कंजूस, उद्धत
रंगबोधक	–	काला, नीला, पीला, नवरंग, जामुनी
कालबोधक	–	प्राचीन, नवीन, पाक्षिक, दैनिक, साप्ताहिक
स्थानबोधक	–	दिल्लीवाला, जयपुरी, देशी, विदेशी, पहाड़ी
गंधबोधक	–	खुशबूदार, बदबूदार, सुगंधित, सौंधी
अवस्थाबोधक	–	नम, गीला, सूखा, जला हुआ, पनीला, शुष्क, आर्द्र
दिशाबोधक	–	पूर्वी, पश्चिमी, ऊपरी, बाहरी
दशाबोधक	–	अस्वस्थ, रोगी, निरोगी, चंगा, बीमार
आयुबोधक	–	युवा, वृद्ध, बाल, किशोर
आकारबोधक	–	छोटा, बड़ा, लंबा, बौना, चौकोर, गोलाकार.

स्पर्शबोधक –कोमल, कठोर, सख्त, ठंडा, गर्म आदि

* **संख्यात्मक विशेषण –** जो विशेषण किसी व्यक्ति, प्राणी या वस्तु की (संज्ञा, सर्वनाम) की संख्या से संबंधित विशेषता का बोध कराता है उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहा जाता हैं –

उदाहरण – टोकरी में दो दर्जन आम हैं । क्लास में तीस लडके हैं ।

संख्यावाचक विशेषण के मुख्य दो भेद हैं –

*. **निश्चित संख्यावाचक –** इसमें संख्या का निश्चित बोध होता है –

उदाहरण – दस लडकियाँ, पाँच पुस्तकें, बारह केले, चार गाँव आदि ।

* **अनिश्चित संख्यावाचक –** इसमें निश्चित संख्या का बोध नहीं होता.

उदाहरण – थोड़े बहुत लोग, अगणित व्यक्ति, ढ़ाई सेरचावल, पहला नंबर, दुगुना ब्याज, दसों की टोली, सतसई, चालीसा, एक-एक, प्रत्येक आदि । इसके पूर्ण, अपूर्ण, क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक, समुदाय, समुच्चयवाचक भेद हैं ।

* **परिणामवाचक विशेषण –** जो शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की माप-तौल या मात्रा संबंधित बोध कराते हैं उन्हें परिणामवाचक विशेषण कहते हैं ।

उदाहरण –एक लीटर दूध, दस मीटर कपडा, कुछ केले, आदि ।

परिणामवाचक विशेषण के दो भेद हैं ।

* **निश्चितपरिमाण वाचक–** इसमें किसी संज्ञा या सर्वनाम के निश्चित परिमाण का बोध होता है।

उदाहरण – दो किलो चीनी, चार लिटर दूध, दो मीटर कपड़ा

* **अनिश्चित परिमाणवाचक –** जिन विशेषणों के द्वारा संज्ञा या सर्वनाम के निश्चित परिमाण का बोध नहीं होता –

उदाहरण – – टोकरी से कुछ सेब ले जाओ । थोडा पानी पिलाओ । लड्डू में बहुत घी लग गया ।

* **सर्वनामिक विशेषण –** जो सर्वनाम सार्वनामिक रूप में प्रयुक्त होता है – उसके चार भेद हैं –

क) निश्चयवाचक – संकेतवाचक, सार्वनामिक विशेषण –

उदाहरण – क्या यह मकान आपका है?

ख) अनिश्यिचवाचक सार्वनामिक विशेषण –

उदाहरण – बस में कुछ भी खाने को नहीं मिलेगा ।

ग) सार्वनामिक विशेषण –

उदाहरण –कौनसी पुस्तक तुम्हें चाहिए?

ध) संबंधवाचक सार्वनामिक विशेषण

उदाहरण – जो पुस्तक परसो खरीदी थी, वह खो गई ।

* विशेषण निम्न प्रकार से बनाये जाते हैं -

संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रिया (धातुओं) में प्रत्यय लगाकर बने विशेषण -

उदाहरण - संज्ञा से -

इक = अर्थ < आर्थिक , पुराण < पौराणिक, सेना < सैनिक,

इत = अंक < अंकित, लक्ष्य < लक्षित, मोह < मोहित

इम = आदि < आदिम, अंत < अंतिम, अग्र < अग्रिम

ई = रोग < रोगी, अनुराग < अनुरागी, नाम < नामी

ईय = भारत < भारतीय, प्रांत < प्रांतिय, शासक < शासकीय,

इल = रंग < रंगीन, नमक < नमकीन, युग < युगीन

ईला = जोश < जोशीला, चमक < चमकीला, रंग < रंगीला आदि

इन प्रत्ययों के अतिरिक्त भी दूर, निष्ठ, नीय, मान, मती, मय, य, रत, वान, वती, शाली, वी एरा, वाला, शील, आलू आदि प्रत्ययों से विशेषण बनाए जा सकते हैं ।

* सर्वनाम से विशेषण -

उदाहरण - यह < उसका, वह < उसका, आप < अपना, तू < तेरा, हम < हमारा मैं < मेरा, मुझसा

* धातु या क्रियाओं से विशेषण - (प्रत्यय जोड़कर)

उदा.- कट < कटा, फट < फटा, पालना < पालक, तैरना < तैराक, चलाना < चालक, भागना < भगोड़ा, बिना < बिकाऊ, कमाना < कमाऊ, झगडना < झगडालू, घटना < घटिया, लूटना < लुटेरा, भूलना < भुलक्कड़, घूमना < घुमक्कड, गाना < गाने वाला, पढ़ना < पढ़नेवाला आदि

* अव्ययों को प्रत्यय जोड़कर बने विशेषण -

इ - बाहर < बाहरी, भीतर < भीतरी, ऊपर < ऊपरी

आ - नीचे < निचला, पीछे < पिछला

* उपसर्गों (अ, नि, निः, दुः, दु, ,स, बे, ला आदि) को संज्ञाओं में जोड़कर विशेषण बनते हैं -

अयोग्य, असमर्थ, अचल, अबोध; निकम्मा, निडर, निर्गुण, निर्भय, निर्दोष, दुर्जन, दुर्बल, दुःसह, दुधार, दुबला, सपूत, सफल, सजीव, सचित्र, बेचारा, बेहोश, बेईमान, बेकसूर, लावारिस, लाचार, लापता, आदि ।

* **क्रिया**

जिस शब्द या शब्द समूह से किसी कार्य के करने, होने या किसी प्रक्रिया में होने का बोध होता है, उसे क्रिया कहते हैं ।

उदाहरण - विभा खाना खा रही है।

गतिक पुस्तक पढ़ रहा है।

*   क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं (जैसे–खा, पढ़, जा चल आदि) और धातु में 'ना' प्रत्यय लगाए हुए रूप को क्रिया का सामान्य रूप कहते हैं – (पढ़ना, खाना, चलना, जाना, लिखना, बोलना आदि)

*   धातुओं के मूल, व्युत्पन्न और नाम धातु भेद हैं –

उदाहरण -- मूल धातु – सोना, पढ़ना, जाना

व्युत्पन्न धातु – पीना < पिलाना, दिखाना, करवाना आदि

*   संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण शब्दों में प्रत्यय लगाकर बनी हुई क्रियाएँ नाम धातु हैं –

उदाहरण – – लालच < ललचाना, वात < बतियाना, लाज < लजाना, चिकना < चिकनाना, मोटा < मुटाना, साठ < सठियाना, अपना < अपनाना । ध्वनि के अनुकरण पर खटखट < खटखटाना, झनझन < झनझनाना आदि क्रियाएँ बनाई जाती हैं ।

*   क्रिया के अर्थ, संरचना के आधार पर निम्न भेद हैं –

*   अर्थ के आधार पर क्रिया के सकर्मक और अकर्मक भेद हैं ।

i)   सकर्मक क्रिया – जिस क्रिया का कार्य फल कर्म पर पड़ता हैं उसे सकर्मक कहते हैं –

उदाहरण – – नीता आम खाती है । मनिष पुस्तक पढ़ रहा है।

ii)   अकर्मक क्रिया – जिस क्रियाओं में कर्म नहीं होता, उनके व्यापार का फल कर्त्ता पर पड़ता है वे अकर्मक क्रियाएँ हैं –

उदाहरण – बबूल रोता है। मीना सोती है। इन वाक्यों में कौन से प्रश्न करने से उत्तर मिलता है जो कर्ता है।

सकर्मक एवं अकर्मक क्रिया के अनेक भेद हैं ।

*   **संरचना के आधार पर क्रिया के भेद चार माने गए हैं –**

क्रिया के भेद

I. संयुक्त   II. नामधातु   III. प्रेरणार्थक   IV. पूर्व कालिक

I.   **संयुक्त क्रिया –** जब दो या अधिक क्रियाएँ मिलकर किसी पूर्ण क्रिया बनाती है, उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं – उदाहरण – वह सो चुका है –सोना, चुकना – इन दो क्रियाओं का योग

वह इठ गया है --उठना, जाना

आरंभ, अवकाश, समप्ति, शक्ति, पूर्णता, निरंतरता, विवशता आदि अर्थों में संयुक्त क्रियाएँ आती है।

जैसे – पानी बरसने लगा (आरंभ),   मैं पेड काट सकता हूँ (शक्ति)

मुझे जाने दो (अवकाश),   मैं पढ़ना चाहता हूँ (इच्छा)

वह काम कर चुका (समाप्ति),   आगे बढ़ते रहो (निरंतरता)

उसे परिश्रम करना पड़ा (विवशता बोध)

II. **नाम धातु –** जो शब्द (संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम) धातु के समान प्रयुक्त होते हैं, उन्हें नाम धातु और उनसे बननेवाली क्रियाएँ नामधातु क्रिया हैं –

उदाहरण -- गर्म < गर्मा (नामधातु) < गर्माना क्रिया रूप

लात < लतिया < लतियाना क्रिया रूप

रंग < रंग < रंगना, टिमटिम < टिमटिमा < टिमटिमाना आदि ।

III. **प्रेरणार्धक क्रिया –** जिस क्रिया से पता चलता है कि कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे को करने की प्रेरणा देता हे उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं – उदाहरण – मीना बेटी से पत्र <u>लिखवाती</u> है।

✻ अकर्मक से सकर्मक (प्रेरणार्थक)– प्रायः सभी अकर्मक धातुएँ प्रेरणार्थक बनने पर सकर्मक हो जाती है।

उदा. – अकर्मक	सकर्मक (प्रेरणार्थक)
विहा हँसती है।	गतिक विहा को हँसाता है।
मीना सोती है।	नंदिनी मीना को सुलाती है।

✻ यदि अकर्मक धातु को प्रेरणार्थक बना दिया जाएँ तो वह सकर्मक बन जाती है और उसी प्रेरणार्थक क्रिया को किसी तीसरे व्यक्ति से कराया जाएँ तो वह अकर्मक धातु द्विकर्मक बनती है –

उदाहरण – –अर्कमक	सकर्मक(प्रेरणार्थक)	द्विकर्मक
डरना	डराना	डरवाना
दौडना	दौड़ाना	दौड़वाना
पिसना	पिसाना	पिसवाना
टूटना	तोड़ना	तुडवाना

✻ सकर्मक प्रेरणार्थक क्रिया दो प्रकार की होती हैं –

उसमें प्रेरक कर्ता और प्रेरित कर्ता – दो कर्त्ता होते हैं । इसलिए उसके पहली प्रेरणार्थक क्रिया और दूसरी प्रेरणार्थक क्रिया दो भेद हैं ।

✻ पहिली प्रेरणार्थक क्रिया में (दूसरे से काम करवाना) स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता – उदाहरण – वीणा बच्चे को गीत सुनाती है।

✻ दूसरी प्रेरणार्थक क्रिया में दूसरे से काम करवाने की क्रिया किसी तीसरे से करवाना स्पष्ट दिखाई देता है – उदाहरण – मोहिनी वीणा से बच्चे को गीत सुनवाती है।

✻ सकर्मक धातुओं से द्वि प्रेरणार्थक क्रिया –

उदाहरण –	सकर्मक मूल धातु	पहिली प्रेणार्थक क्रिया	दूसरी प्रेरणार्थक क्रिया
	पढ़ना	पढ़ाना	पढ़वाना
	छोड़ना	छुड़ाना	छुड़वाना

खेलना	खिलाना	खिलवाना
बोलना	बुलाना	बुलवाना
सीनी	सीलाना	सिलवाना
धोना	धुलाना	धुलवाना आदि

IV **पूर्वकालिक क्रिया –** किसी क्रिया से पहले यदि अन्य क्रिया आए तो उसे पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं अर्थात् जहाँ एक कार्य समाप्त होकर दूसरा कार्य किया जाएँ। इस प्रकार की क्रिया या तो मूल रूप में या कर, करके, का प्रयोग करके होती हैं –

उदाहरण – – विहा खाना <u>खाकर</u> सो गई।

गतिक ने पाठ <u>पढ़कर</u> आराम किया।

वह जहर खाते <u>ही</u> मर गया।

10.2.2 अविकारी शब्द (अव्यय)

जिनमें लिंग, वचन, पुरूष, काल आदि से कुछ परिवर्तन (विकार) नहीं होता उन्हें अविकारी या अव्यय कहते हैं – उनका परिचय निम्न प्रकार का हैं –

* **क्रिया विशेषण –** जो अव्यय क्रिया की विशेषता प्रकट करते है, उन्हें क्रिया विशेषण कहते हैं – उदाहरण – – <u>धीरे</u> चलो। <u>जल्दी</u> करो।

क्रिया विशेषण के चार भेद माने गए हैं –

1. **कालवाचक क्रिया विशेषण –** क्रिया के होने का समय का बोध जिससे होता है उन्हें कालवाचक क्रियाविशेषण कहते हैं। इसके समयबोधक, अवधिबोधक, पौनःपुन्य (आवृत्ति) बोधक उपभेद हैं।

उदाहरण –– कालवाचक क्रिया विशेषण हैं – अब, कब, जब, तब, आज, कल, परसो, अभी, कभी, फिर, तुरंत, सवेरे, पहले, पीछे, नित्य, निरंतर, कभी–कभी, लगातार, दिनभर, रातभर, इतनी देर, बार–बार, बारंबार, बहुधा, घड़ी–घड़ी, एक–दूसरे, हर–बार आदि।

2. **स्थान वाचक क्रिया विशेषण –** जिन क्रिया विशेषणों के द्वारा स्थान का पता चलता है, इसके स्थिति, दिशा, विस्तार बोधक तीन उपभेद हैं।

उदाहरण – – स्थानवाचक क्रिया विशेषण हैं – यहाँ, वहाँ, जहाँ, तहाँ, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, सामने, साथ, बाहर, भीतर, पास, निकट, समीप, सर्वत्र, अन्यत्र, इधर, उधर, किधर, दूर, अलग, दायें, बायें, आरपार, चारो ओर, उस जगह आदि।

3. **रीतिवाचक क्रिया विशेषण –** ऐसे, वैसे, कैसे, तैसे, मानो, यथा, तथा, अचानक, धीरे, एकाएक, यथाशक्ति, अवश्य, बेशक, दरअसल, सचमुच, सही, यथार्थ में, विशेषतः, शायद, कदाचित, ठीक, जी, जी हाँ, क्यों, क्योंकि, नहीं, मत, धडाधड़, गटगट, आदि रीतिवाचक क्रिया विशेषण हैं। जिस क्रिया से रीति का बोध होता हैं वह रीतिवाचक क्रियाविशेषण हैं।

4. **परिमाण वाचक क्रिया विशेषण –** जिन क्रियाविशेषणों से या के नाप–तौल का

बोध होता है। उसके अधिकता, न्यूनता, पर्याप्ति, तुलना, श्रेणी बोधक आदि उपभेद हैं ।

परिमाण वाचक क्रिया विशेषण - इतना, उतना, जितना, कितना, बड़ा, भारी, खूब, अतिशय, थोड़ा-तनिक, प्रायः , केवल, चाहे, इति, तिल-तिल, बारी-बारी से, थोड़ा थोड़ा, यथाक्रम आदि।

* **संबंधबोधक –** जो अव्यय संज्ञा या सर्वनाम शब्दों के बाद आकर उनका वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ संबंध बताते हैं, इन्हें 'संबंधबोधक' अव्यय कहते हैं ।

उदाहरण - - मोहन वीणा के साथ वन में गया ।

सिपाही के सामने चारे ने चोरी की ।

काल, स्थान, दिशा, साधन, हेतु, विरोध, सादृश्य, सहचर, पार्थक्य, विनिमय, वाचक अर्थों के आधार पर संबंधबोधक के उपभेद किए गए हैं -

उदाहरण -- बिना, सिवाय, अलावा, हटकर, की अपेक्षा, मात्र, तक आदि ।

※ रूप रचना के आधार पर – संबंधबोधक के दो भेद हैं –

अ) मूल संबंधबोधक - जो अव्यय अपना स्वतंत्र रूप रखते हैं -

उदाहरण - - बिना, साथ, तरह, भाँति आदि ।

ब) भौगिक संबंधबोधक - जिन अव्ययों की रचना संज्ञा, विशेषण, क्रिया एवं क्रियाविशेषण आदि से होती है -

उदाहरण -संज्ञा से-बदला बदले (बदला + ए)

सहारा-सहारे (सहारा+ए)

विशेषण से -पहला + ए = पहले,

क्रिया से -मर + ए = मारे, जाने आदि

क्रिया विशेषणसे -ऊपर, भीतर, नीचे, पीछे आदि.

संबंधबोधक के कुछ उदाहरण -धन के बिना जीवन निरर्थक है।

चाणक्य के समान राजनीतिज्ञ है?

वह नदी के किनारे तक पहुँचा ।

वह नीचे रहता है।

वह कमरे के अंदर सोया है।

*** समुच्चय बोधक (योजक अव्यय) –**

दो शब्दों, वाक्यों या वाक्यांशों को मिलाने वाले अव्यय को समुच्चयबोधक कहते हैं ।

उदा.- वीणा और मीना स्कूल को जाते हैं ।

मनीष या मोहन कल गाँव जाएगा ।

समुच्चयबोधक अव्यय के प्रमुख तीन भेद हैं - संयोजक, विकल्पक, विरोधदर्शक और तथा, एवम् संयोजक हैं, या, कि, चाहे, वा, अथवा विकल्पक हैं, पर, परंतु, किंतु, लेकिन, मगर, बाल्कि, अपितु आदि विरोधक शब्द हैं।

उदाहरण -बहुत प्रयत्न करने पर भी मोहन अनुत्तीर्ण हो गया ।

अगर समय पर दवा नहीं लोगे तो अधिक नुकसान होगा ।

रमा और शांति साथ साथ ही गई हैं ।

संभाजी साहसी ही नहीं अपितु स्वाभिमानी भी था ।

* **विस्मयादिबोधक या द्योतक –** जिन शब्दों के बोलने, लिखने से, हर्ष, विस्मय, शोक, लज्जा, व्यथा, घृणा आदि मनोभाव प्रकट होते हैं उन्हें विस्मयादिबोधक अव्यय कहते हैं ।

इसके अनेक भेद हैं - हर्ष, शोक, तिरस्कार, स्वीकार, विस्मय, संबोधन, घृणा, भय, सूचना, बोधक, संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया भी विस्मयादिबोधक बन जाते हैं ।

उदाहरण -- शाबास! तुम यह प्रतियोगिता जीत गए!

हे राम! यह क्या जीवन जीना है?

छिः छिः! कितनी गंदगी फेली है।

हाँ मैं आपके मत को मानता हूँ ।

अरे! आप यहाँ तक कैसे पहूँच पाए ।

अरी, सखी तुम अपना कहना पूरा तो करो !

बापरे! इतना बड़ा साँप ।

बच्चों! बस आ रही है।

राम, राम ! शिव, शिव हरे हरे ! बाप रे

कितना सुंदर दृश्य है !

यह कौन गा रहा है ।

चल हट! निकला जा मेरे घर से !

10.2.3 लिंग, वचन एवं कारक

संज्ञा का कुछ तत्वों से रूपांतर या परिवर्तन होता है । वे विकारक तत्व तीन हैं - 1) लिंग, 2) वचन, और 3) कारक

1) लिंग - लिंग का अर्थ हैं निशान, चिह्न । जिस चिह्न से ज्ञात होता है कि संज्ञा शब्द पुरूष जाति का है या स्त्री जाति का, उसे 'लिंग' कहते हैं ।

उदाहरण -गाय-बैल, माता-पिता, लड़का-लड़की, दूध, दही नगर आदि

✻ हिंदी में दोन लिंग माने जाते हैं -

अ) पुंल्लिंग - जो शब्द पुरूष जाति का बोध कराते हैं उन्हें पुंल्लिंग कहा जाता हैं ।

उदाहरण -पुरूष, सिंह, बेल, मोर, वृक्ष, राम आदि ।

आ) स्त्रीलिंग - जो शब्द स्त्री का बोध कराते हैं, इन्हें स्त्रीलिंग कहा जाता हैं ।

उदाहरण -स्त्री, गाय. मोरनी, मेज, खिड़की, चिट्ठी आदि ।

✻ लिंग की पहचान – साधारणतः हिंदी में लिंग की पहचान शब्द का अर्थ एवं शब्द का रूप इन दो आधारों पर की जाती है। लिंग की जानकारी के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाएँ –

✻ प्राणियों के समुदाय को व्यक्त करनेवाली पुल्लिंग – स्त्रीलिंग संज्ञाएँ –

// पुल्लिंग – परिवार, दल, संघ, समूह, समाज, वर्ग, देश, राष्ट्र, राज्य, प्रशासन, मंडल, मंत्रिमंडल, स्कूल, कॉलेज, विद्यालय आदि ।

// स्त्रीलिंग – सभा, जनता, फौज, सेना, मंडली, कमेटी, टोली, सरकार, पुलिस, भीड़, संसद, राज्यसभा, पाठशाला आदि ।

✻ प्राणिवाचक शब्दों का नित्य प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है – कोयल, चील, लोमड़ी, गिलहरी, मक्खी, तितली, मैना, मकड़ी आदि ।

// पुल्लिंग – मच्छर, खटमल, कौआ, चीता, खरगोश, तोता आदि । // कुछ शब्दों के साथ नर या मादा शब्द जोड़कर लिंग बनाया जाता हैं –उदाहरण -- नर, चीता, मादा चीता, नर कोयल, मादा कोयल आदि ।

✻ **पदवाची शब्द स्त्रीलिंग – पुंल्लिंग में समान होते हैं –**

उदाहरण – राष्ट्रपति, मंत्री, डॉक्टर, प्रिंसिपल, खजांची, खिलाड़ी आदि ।

✻ शरीर के कुछ अंग पुंल्लिंग तो कुछ स्त्रीलिंग होते हैं –

पुंल्लिंग – सिर, बाल, कान, हाथ, होंठ, पैर, अंगूठा, घुटना आदि ।

स्त्रीलिंग – आँख, नाक, जिभ, ग्रीवा, कमर, कलाई, वेणी आदि ।

✻ **संस्कृत के पुंल्लिंग तथा नपुसक लिंग शब्द हिंदी में पुंल्लिंग होते हैं – और स्त्रीलिंग शब्द स्त्रीलिंग में ही रहते हैं –**

पुंल्लिंग – देश, धन, सागर, घृत, पुष्प, पर्वत, प्रभात, (अपवाद – देह, आत्मा आदि)

स्त्रीलिंग – आशा, कृपा, दया, रजनी, नदी (अपवाद – देवता आदि)

✻ हिंदी में पुल्लिंग की पहचना–

क) देशों के नाम	–	भारत, रुस, चीन, जापान आदि ।
ख) पर्वतों के नाम	–	हिमालय, सुमेरू, विंध्य, गिरनार, अबू आदि ।
ग) ग्रहों के नाम	–	सूर्य, चंद्र, बुध, शनि (अपवाद पृथ्वी) आदि ।
घ) पेडों के नाम	–	पीपल, नीम, वट, अशोक (अपवाद–इमली) आदि ।
ड) अनाज एवं फल	–	गेहूँ, चना, बाजरा, चावल (अपवाद–मका, उडद) आदि । आम, अमरुद, केला, नींबू (अपवाद– लीची, जामुन आदि)
च) द्रवपदार्थ एवं धातु	–	घी, तेल, पानी, दूध (अपवाद–छाछ, लस्सी,चाय) सोना, लोहा, तांबा, पन्ना, इस्पात (अपवाद–चांदी, मणि..)
छ) दिन एवं महीने	–	सोम, मंगल, बुध आदि मार्च, अप्रैल, जून, चैत्र, बैसाख आदि (अपवाद – जनवरी, फरवरी, मई, जुलाई)

ज) समय - युग, वर्ष, मास, सप्ताह, दिन, क्षण, प्रभात आदि
(अपवाद - शत, संध्या, घड़ी आदि)

झ) आ, आप. आव, पन, त्व, ना, आर, खाना, आदि प्रत्ययों से बने शब्द - भूखा, छोटा, मोटा, बुढापा, मोटापा, चुनाव, बचाव, बचपन, पीलापन, महत्व, गुरूत्व, सोना, गाना, विचार, लुहार, आकार, दवाखाना आदि ।

* स्त्रीलिंग की पहचान -

क) नदीयों का नाम - गंगा, गोमती, सिंधु, कोसी आदि

ख) तिर्थ - नक्षत्र - द्वितीया, तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, रोहिणी, भरणी आदि

ग) भाषा - लिपि - हिंदी, संस्कृत, पंजाबी, देवनागरी, फारसी, रोमन आदि

घ) संस्कृत के वे शब्द जिनके अंत में आ, इ प्रत्यय लगे हैं -

जैसे - लता, विद्‌या, ममता, कृपा, शांति, तिथि, हानि, शक्ति आदि।

* वे शब्द जिनके अंत में ई, आई, आहट, ता प्रत्यय लगते हैं -

जैसे - लड़ाई, चढ़ाई, बुढ़िया, डिबिया, ताई, चिठ्ठी, नदी, घबराहट, चिल्लाहट, मित्रता, सुंदरता, आदि

* प्रत्यय जोड़कर बने पुंल्लिंग से स्त्रीलिंग शब्द -

अ - ई, आ - ई, आ - इया, कर देने से पुल्लिंगी शब्द स्त्रीलिंग बन जाते हैं -

उदाहरण - - देव - देवी, गोप - गोपी, कुमार - कुमारी, लडका - लडकी, चाचा - चाची, दादा - दादी, कुत्ता - कुतिया, बुढ़ा - बुढ़िया, चुहा - चुहिया,

* पुंल्लिंग शब्दों के अंत में इन, आइन, नी, आनी जोडने से स्त्रीलिंग बनते हैं -

उदाहरण - - माली - मालिन, जुलाहा - जुलाहिन, नाती - नातिन, मालिक - मालकिन, ठाकुर - ठकुराइन, पंडित - पंडिताइन, जाट - जाटनी, सिंह - सिंहनी, सेठ - सेठानी, नौकर - नौकरानी, स्वामी - स्वामिनी, रोग - रोगिणी आदि ।

* कुछ पुल्लिंग शब्दों के अंतिम अक - इका, मान - वान, मती - वती करने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं -

उदाहरण - नायक - नायिका, सेवक - सेविका, बालक - बालिका, श्रीमान - श्रीमती, भगवान भगवती, रूपवान - रूपवती आदि

* प्रत्यय जोडे बिना बननेवाले स्त्रीलिंग शब्द

पिता-माता, पति-पत्नी, बैल-गाय, पुरूष-स्त्री, नर-नारी, वर-वधू, राजा-रानी आदि ।

2. वचन

किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तुओ की संख्या के बोध को 'वचन' कहा जाता हैं । जैसे लडका-लडके, पुस्तक-पुस्तकें,

हिंदी में वचन दो हैं - I. एकवचन, II. बहुवचन

I. एकवचन - शब्द के जिस रूप से केवल एक वस्तु का बोध होता हैं, तब उसे

‘एकवचन’ कहते हैं । जैसे – लड़का, पुस्तक, नदी, चिड़िया आदि ।

II. बहुवचन – शब्द के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध हो, तब उसे बहुवचन कहते हैं । जैसे – लडकें, पुस्तकें, नदियाँ, चिडियाँ आदि ।

* वचन की पहचान – आदर या सम्मान के लिए आदरार्थक बहुवचन का प्रयोग होता है –

उदाहरण – – बहन जी आ रही हैं ।, आपका नाम क्या हैं?

* स्वाभिमान, अधिकार, लोक व्यवहार में छोटी आयु वाले और प्रिय व्यक्तियों के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है –

उदाहरण –हम तुम्हें अच्छी सलाह दे रहे हैं ।

तुमने हमे क्या समझ रखा हैं ।

बेटा, तुम जाकर खेलो ।

* कुछ शब्द हमेशा बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं –

उदाहरण – – दर्शन, समाचार, हस्ताक्षर, प्राण, लोग आदि

आपके दर्शन तो दुर्लभ हो गए ।

उनके हस्ताक्षर बहुत सुंदर हैं ।

* **समुदाय सूचक** – साथ, गण, जन, समहू, वृंद , वर्ग आदि एक वचन के संज्ञा शब्दों के साथ जोड़ने से बहुवचन बनता है –

उदाहरण –– अध्यापक गण परिचर्चा कर रहे हैं ।

अधिकारी वर्ग काम में व्यस्त हैं ।

किंतु जिन शब्दों के अंत में जाति, सेना, दल शब्द प्रयुक्त होते हैं तब उनका प्रयोग एक वचन में होता हैं –

उदाहरण – – स्त्री जाति के लिए तो शिक्षा एक वरदान है।

कॉंग्रेस दल अनेक वर्षों से सत्ता में है।

* व्यक्तिवाचक, भाववाचक, जातिवाचक संज्ञाएँ एकवचन में प्रयुक्त होती है –

उदाहरण –– विहा खेल रही है। वह झूठ नहीं बोलता ।

मीना पढ़ती है। सच की जीत होती है।

सोना महँगा है। पीतल उपयोगी धातु है।

* कभी कभी संज्ञा शब्दों के एकवचन, बहुवचन में समान रूप होते है –

उदाहरण –– लंबा हात – लंबे हाथ, राम का भाई – राम के भाई । अर्थात् उसका ज्ञान विशेषण, कारक या क्रिया से होता है।

* एकवचन स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों में अ के स्थान पर एँ लगाने से –

उदाहरण –– नीति – नीतियाँ, तिथि – तिथियाँ, टोपी – टोपियाँ, रोटी – रोटियाँ आदि ।

* इकारांत और ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों में इ, ई, के बाद याँ, इयाँ लगाने से –

उदाहरण – – नीति – नीतियाँ, सखी – सखियाँ, मछली – मछलियाँ आदि ।

* पुंल्लिंग आकारांत शब्दों के अंतिम आ को ऐ करने से -

उदाहरण -- पंखा - पंखे, घोड़ा - घोड़े, केला - केले आदि ।

* आकारांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत, ऊकारांत, पुंल्लिंग शब्द विभक्तिरहित होने पर एकवचन, तथा बहुवचन में समान होते हैं -

उदाहरण -- बालक खेल रहा है।, बालक खेल रहे हैं ।

कवि, विद्‌यार्थी, साधु, डाकू, आदि शब्द रूप दोनों वचनों में समान होते हैं ।

* जब सभी प्रकार के पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग शब्द कारकों की विभक्ति सहित प्रयोग में आते हैं तो इनके साथ प्रायः ओ जोड़ा जाता है और वे बहुवचन बन जाते हैं -

उदाहरण -- आकारांत, इकारांत, ओकारांत 'ओ' जोड़ने से; अंतमें अ, आ, को 'ओ' करने से, इकारांत तथा ईकारांत में 'यों' और ई को 'इ' करने से, ऊकारांत 'ओ' लगाने तथा ऊ को 'इ' करने से, जिन शब्दों के अंतमें या होता हैं उनमें 'ओं' जोडने से बहुवचन बन जाते हैं-

जैसे -कन्याओं ने, साधुओं ने, गौओं के लिए;

आँखों से, घरों में, वृक्षों पर, भालों से;

कवियों से, धोबियों से, जातियों से, बहुओं से, भालुओं से,

गुड़ियों को, मुखियों को, बुढ़ियों को;

* आकारांत शब्दों के अतिरिक्त अन्य पुंल्लिंग शब्दों के कर्त्ता कारक में एकवचन, बहुवचन एक जैसे रूप होते हैं -

उदाहरण -- मुनि, हाथी, गुरु, दादा, मामा, देवता, राजा, चंद्रमा आदि

3. कारक

जो करता है या क्रिया की निष्पत्ति में जो सहायक होता है उसे 'कारक' कहते हैं । वाक्य में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम, आदि शब्दों का वाक्य के अन्य (विशेषतः क्रिया से) शब्दों से संबंध बतानेवाले शब्द-रूप को 'कारक' कहते हैं । कारकों का रूप प्रकट करने के लिए उनके साथ जो चिह्न लगते हैं उन्हें 'विभक्ति' कहते हैं । स्वतंत्र शब्दों के रुप में विभक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता । उनका काम हैं शब्दों का संबंध दिखलाना । सर्वनामों के साथ इन्हें जोड़ा जाता हैं और संज्ञाओं से अलग करके लिखा जाता हैं ।

* हिंदी में कारक आठ माने गए हैं -

	कारक	विभक्ति चिह्न	वाक्य में प्रयोग
I.	कर्त्ता	शून्य, ने	रोहन रोटी खाता है।
			रोहन ने रोटी खाई ।
II.	कर्म		शून्य, को मीना को पत्र मिला ।
			मीना ने बेटे को मारा ।
III.	करण		से (द्‌वारा) मीना कलम से लिखती है।

IV.	संप्रदान		को, के लिए याचक को रोटी दे दो। रोगी के लिए दवा ले आओ ।
V.	अपादान		से (अलग होना) हिमालय से गंगा निकली ।
VI.	संबंध		का,(की, के, आदि) मीना का बटुआ । रमा की पुस्तक । प्रेमचंद के उपन्यास ।
VII.	अधिकरण	में, पर	खाने में क्या है? बच्चे छत पर हैं ।
VIII.	संबोधन		हे, अरे हे राम! हमारी रक्षा करो! अरे! यह अपने क्या किया?

*** कारकों का सामान्य परिचय –**

1. कर्ताकारक – वाक्य में क्रिया के करनेवाले का बोध कराने वाला शब्द 'कर्ताकारक' है –

उदाहरण – मोहन बाजार गया।, मोहन ने सब्जियाँ खरीदी ।

2. कर्मकारक – संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप पर क्रिया का फल पड़ता हैं उसे 'कर्मकारक' कहते हैं–

उदाहरण -- राम ने रावण को मारा । रमा ने पुस्तक पढ़ी है।

3. करणकारक – संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप से क्रिया के साधन का बोध होता है, उसे 'करणकारक' कहते हैं –

उदाहरण -- सविता ने कलम से पत्र लिखा ।

रमा ने कैची से कपड़ा काटा ।

विभक्ति के अलावा अन्य चिह्नों का भी प्रयोग किया जाता हैं –

उदाहरण -- मंत्री को स्त्रियों द्वारा घेर लिया गया ।

4. **संप्रदानकारक –** संप्रदान का अर्थ है देना । संज्ञा, सर्वनाम का वह रुप जिसे कुछ दिया जाएँ या जिसके लिए (कर्ताद्वारा) कुछ किया जाएँ, उसे संप्रदानकारक कहते हैं –

उदाहरण -- जजमान ने ब्राह्मण को दक्षणा दी ।

बच्चों के लिए पिता ने बहुत कष्ट उठाए हैं ।

5. **अपादानकारक –** संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप से अलग होने, निकलने, डरने, सीखने, लजाने, तुलना करने आदि भावों का ज्ञान होता हैं, उसे अपादानकारक कहते हैं –

उदाहरण -- बच्चा छत से गिर पड़ा । बच्चे बंदर से ड़रते हैं ।

मीना गुरु से नृत्य सीखती है। मीना अपने जीजाजी से लजाती है।

राहुल अतुल से होशियार है। मेरा घर स्कूल से दूर है।

मैं कल से पढ़ाई करूंगा । खाना बनाते समय गैस से थोडा दूर हटो ।

6. **संबंधकारक** – संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप से उनका संबंध अन्य वस्तुओं या व्यक्तियों से जाना जाए, उसे संबंधकारक कहते हैं –

उदाहरण -- रिशता, अधिकार, परिमाण, प्रयोजन मूल्य आदि का ज्ञान इस कारक से होता है –

जैसे–यह विहा की पुस्तक है। कश्मीर का प्राकृतिक सौंदर्य अद्वितीय है।

राम दशरथ के पुत्र हैं । ये देश के प्रधान मंत्री हैं ।

गाँव सौ मील की दूरीपर है। अकाल के कारण पीने का पानी कम है।

यह साठ रुपये की पुस्तक है।

7. **अधिकरण कारक** – संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप से क्रिया के आधार (स्थान, समय, अवसर आदि) का ज्ञान होता है, उसे अधिकरण कारक कहते हैं –

उदाहरण -- बच्चे छत पर खेल रहे हैं । घड़ी मे चार बजे है।

अब तो देश के ऊपर विपत्ति ही आई है।

उसी के बीच मीरा वहाँ पहुँच गई ।

कपडे अलमारी के अंदर रखे हैं ।

8. **संबोधन कारक** – संज्ञा, सर्वनाम के जिस रूप से किसी को पुकारा या संबोधित किया जाता है उसे संबोधन कारक कहते हैं –

उदाहरण – अजी! अब तो उठिए ।

अरेरे! उसके साथ बहुत बुरा हुआ ।

10.3 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

✻ हिंदी भाषा की संरचना में संज्ञा, सर्वनाम का महत्व सोदाहरण बताइए ।

....

....

....

✻ विशेषण तथा क्रिया का भाषागत महत्व लिखिए ।

....

....

....

* हिंदी में लिंग, वचन की सोदाहरण चर्चा कीजिए ।

....

....

....

* हिंदी विकारी-अविकारी शब्दों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

....

....

....

(ख) टिप्पणियाँ –

* हिंदी में संज्ञाओं का प्रयोग

....

....

....

* विकारी शब्द

....

....

....

* अविकारी शब्द

....

....

....

* हिंदी में कारकों का प्रयोग

....

....

....

(ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* संज्ञा किसे कहते हैं ?

....

....

....

✼ सर्वनाम की परिभाषा बताकर एक उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

✼ विशेषण के दो भेद और दो उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

✼ हिंदी में प्रयुक्त लिंग और उनके दो-दो उदाहरण लिखिए ।

....

....

....

✼ हिंदी में बहुवचन के चार उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

✼ 'कारक' किसे कहते हैं । एक उदाहरण दीजिए ।

....

....

....

✼ 'विकारी' शब्द का तात्पर्य लिखिए ।

....

....

....

✼ 'अविकारी' शब्द किसे कहते हैं?

....

....

....

(घ) सही पर्याय लिखिए –

* 'राम, सीता, दिल्ली, आगरा, गंगा, जमुना, तुलसीदास, आदि किस प्रकार की संज्ञा है–
  अ) जातिवाचक ब) व्यक्तिवाचक क) भाववाचक ड) द्रव्यवाचक
* मैं, मैंने, मुझे, मुझसे आदि शब्द व्याकरण की किस कोटि में आते है?
  अ) सर्वनाम, ब) संज्ञा, क) विशेषण, ड) क्रिया
* संख्यावाचक विशेषण का उदाहरण कौनसा हैं?
  अ) तीस छात्र, ब) मीठा दूध क) अच्छा लड़का, ड) हरी सब्जी
* हिंदी में कारकों की संख्या कितनी है ?
  अ) छह ब) सात क) आठ ड) पॉच
* दोन या दो से अधिक क्रियाओं के योग से बनी क्रिया को क्या कहते है ?
  अ) अकर्मक ब) सकर्मक क) संयुक्त ड) प्रेरणार्थक
* स्त्री, नारी, औरत, गाय, मोरनी, आदि शब्दों का लिंग कौनसा है?
  अ) पुंल्लिंग ब) स्त्रीलिंग क) उभयलिंग ड) नपुसकलिंग

10.4 **सारांश**

भाषा भावों विचारों के संप्रेषण का माध्यम है। ध्वनि रूप-पद, शब्दादि भाषा के आधारभूत तत्व हैं । समृद्ध शब्दभंडार पर भाषा की श्रेष्ठता अवलंबित होती है। अर्थात् भाषा की अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार शब्द होते हैं जिनसे भाषा का अर्थसौंदर्य बढ़ाया जाता है। अतः शब्दों का अर्थ, प्रयोग आदि की जानकारी आवश्यक है। भाषा की संरचना में व्याकरण का योगदान होता है।। प्रत्येक भाषा की संरचना, व्याकरण भिन्न-भिन्न होता है। भाषा में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द का विश्लेषण व्याकरण से संभव होता है।

व्याकरण भाषा की रचना, रूप आदि की अर्थात् मानक रूप की जानकारी देता है और शब्दों का ज्ञान और प्रयोग करना सीखाता है। हिंदी भाषा समृद्ध-संपन्न है। उसमें देशज, विदेशी, तत्सम, तद्भव, आदि अनेक प्रकार के शब्दों को पचाने की क्षमता है। शब्द-भंडार का व्याकरणकारों ने अध्ययन की सुविधा के लिए विकारी (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया), अविकारी अर्थात् अव्यय (क्रियाविशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादि बोधक) भेद किए है।

भाषिक प्रयोग में संज्ञा, सर्वनाम आदि के प्रयोग के संदर्भ में व्याकरणिक नियमों की जानकारी उदाहरणों द्वारा दी गई हैं, इनके उपभेदों को भी समझाया गया है।

संज्ञा आदि के परिवर्तन या विकार के महत्त्वपूर्ण तत्व, लिंग, वचन तथा कारकों का विवेचन सोदाहरण किया गया है। वाक्य में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम आदि का वाक्य के अन्य शब्दों के साथ संबंध बताने वाले 'कारक' की जानकारी आवश्यक है। इनके बिना भाषा में अशुद्धता आ सकती है। अहिंदी भाषिकों के लिए यह जानकारी अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयुक्त है।

10.5 शब्दार्थ

आवृत्ति - शब्द या वर्ण का बार-बार आना

परिमाण - माप-तौल

10.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

- ✻ विकारी शब्दों की सूची तैयार कीजिए ।
- ✻ अविकारी शब्दों की तालिका प्रस्तुत कीजिए ।
- ✻ लिंग, वचन की परिभाषा बताकर उसके दस-दस उदाहरण लिखिए ।
- ✻ हिंदी के कारकों का परिचय दीजिए ।
- ✻ हिंदी शब्द समूह पर अपने विचार लिखिए ।

10.7 संदर्भ -अतिरक्ति अध्ययन के लिए पुस्तकें -

- ✻ मानक व्यावहारिक हिंदी व्याकरण तथा रचना - श्यामजी गोकुल वर्मा
- ✻ हिंदी व्याकरण और रचना - डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल
- ✻ प्रयोजनमूलक हिंदी (पत्र लेखन एवं टिप्पणी) - डॉ. उर्मिला पाटील

इकाई - 11
देवनागरी लिपि

अनुक्रम

11.0 **उद्देश्य**

11.1 **प्रस्तावना**

11.2 **विषय - विवरण**

  11.2.1 **देवनागरी लिपि की विशेषताएँ**

  11.2.2 **देवनागरी लिपि का मानक रूप**

  11.2.3 **संगणक की दृष्टि से देवनागरी लिपि की उपादेयता**

11.3 **स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न**

11.4 **सारांश**

11.5 **शब्दार्थ**

11.6 **स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य**

11.7 **संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

11.0 उद्देश्य

* देवनागरी लिपि के उद्‌भाव और विकास को समझ सकेंगे ।
* देवनागरी लिपि के स्वरूप एवं विशेषताओ को समझ सकेंगे ।
* संगणक की दृष्टि से देवनागरी लिपि की उपादेयता को समझेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने मन के भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता हैं । सामने उपस्थित होने पर व्यक्ति एक-दूसरे से भाषा के माध्यम से बोलकर भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। किंतु सुदूर होने पर लिखित रूप में अर्थात् लिपि के माध्यम से अपने भावों और विचारों को संप्रेषित करते हैं । वस्तुतः भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करने वाले यादृच्छिक वर्ण प्रतिकों की परंपरागत व्यवस्था 'लिपि'

कहलाती है। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया ने लिपि के स्वरूप के संबंध में लिखा है कि वर्णमाला के पश्चात् इन ध्वनियों को सांकेतिक चिह्नों में लिपिबद्ध किया जाता है। इन सांकेतिक चिह्न विशेष की संज्ञा 'लिपि' है। डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव के अनुसार 'लिपि' संस्कृत भाषा के 'लिप्यते' शब्द से बना है। जिसका अर्थ है – 'लिपन करता' 'लेप करना' जब मानव की शाब्दिक अभिव्यक्ति को सांकेतिक चिह्नों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए इन चिह्ननों पर उसका अर्थ लेपन किया जाता है तब 'लिपि' का जन्म होता है। मनुष्य ने अपने भावों और विचारों की प्रतीक ध्वनि और शब्दों के लिखित रूप के लिए जिन चिह्नों को अपनाया वे सामूहिक रूप में लिपि कहलाने लगे । भाषाविज्ञान कोशकार के अनुसार – 'भाषा का आधार ध्वनि है, जो श्रव्य या कर्ण गोचर होती है। उसे दृष्टिगोचर कराने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया जाता हैं 'लिपि' या उन्हें 'लिपि चिन्ह'' कहते हैं।

11.2 विषय–विवरण

भारतीय लिपि की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है। हम इस विकासात्मक सोपानों को निम्न प्रकार से अंकित कर सकते है –

1. **चित्रलिपि –** लिपि का पुरातन और प्रारंभिक रूप चित्रात्मक रहा है। उदाहरण – यदि पहाड़ को लिपिबद्ध करना है तो ऊँची–नीची रेखाएँ खींची जाती थी । इसी प्रकार किसी वस्तु या प्राणी की अभिव्यक्ति को स्थायित्व देने के लिए चित्र बना दिये जाते थे ।
2. **सूत्रलिपि –** जिन सूक्ष्म भावों को चित्रलिपि के माध्यम से लिपि बद्ध नहीं कर पाते थे उन्हें मूर्तरूप देने के लिए सूत्रों का प्रयोग हुआ होगा । प्राचीन काल में सूत्र (सूत) रस्सी, या वृक्ष की छाल सें गाठें बना देते थे । रंग–बिरंगे सूत या डोरे में मूंगा, मोती गुंथकर संकेत करते थे । भाव प्रकाश की इस विशेष पद्धति को 'सूत्र लिपि' नाम से अभिहित किया गया ।
3. **भावलिपि –** विशिष्ट भावबोधन के लिए जिन चित्रात्मक स्रोतों का उपयोग लिखित रूप में किया जाता है, सामान्यतः उसे भावलिपि कहते हैं । यथा– चित्रलिपि में सूर्य लिखने के लिए केवल एक गोला बनाया जाता था किंतु भाव लिपि में उसके तेज और ऊर्जा को प्रदर्शित करने के लिए उसमें किरणें दिखाई गई । आज के व्यंग्य चित्र भाव लिपि के श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है।
4. **प्रतीकलिपि –** इसमें सूक्ष्म संकेतों के माध्यम से किसी वस्तु अथवा बात की सूचना दिया करते थे । केवल भारत में ही नहीं विश्व के कई देशों में प्रतीकों के माध्यम से संदेश भेजे जाते थे । यह प्रणाली बहुत क्लिष्ट थी । आज भी इस लिपि के उदाहरण बहुतायात मिलते है, जैसे–विवाह के अवसर पर हल्दी या सुपारी भेजकर बारात में शामिल होने का निमंत्रण देना, युद्ध के मैदान में श्वेत झंडे को देखकर संधी की प्रार्थना समझ लेना ।
5. **ध्वनिलिपि –** लिपि की विकास यात्रा का यह अंतिम सोपान है। आधुनकि युग की अधिकांश प्रगतिशील लिपियाँ ध्वन्यात्मक हैं । इनमें प्रयुक्त संकेत किसी भाव या तथ्य को व्यक्त न कर केवल उच्चरित ध्वनि को प्रकट करते हैं । अरबी, हिब्रू, रोमन, ग्रीक तथा देवनागरी आदि ध्वनियाँ ध्वनिमूलक लिपियाँ है।

भारतीय लिपियों का इतिहास ई.पू. 3101 से प्रारंभ होता है। जैनों के ग्रंथ में 18 और बौद्धों

के ग्रंथों में 64 लिपियों का उल्लेख हैं । भारतीय प्राचीन लिपियों में मुख्य रूप से ब्राह्मी, खरोष्ठी, मौर्य, द्राविडी, गुप्त आदि लिपियाँ मुख्य हैं । ईसा पूर्व 500 से लेकर 300 ई.पू. तक ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियाँ प्रचलित थी । देवनागरी हिंदुस्तान की सर्वाधिक लोकप्रिय लिपि है। भाषा वैज्ञानिकों ने देवनागरी की वैज्ञानिकता की प्रशंसा की है। इतना ही नहीं इसे विश्व की संपूर्ण लिपियों में श्रेष्ठ, सुपाठय और आदर्श माना है।

देवनागरी के लिए प्राचीन युग में 'नागरी' नाम प्रचलित था । कालांतर में नागरी के साथ देव शब्द जोड़कर 'देवनागरी' बना दिया गया । कुछ लोगों का मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसे नागरी कहा गया । तो कुछ विद्वान नगर में प्रचलित होने के कारण इसका नामकरण नागरी हुआ ऐसा मानते है। आदर्श लिपि के पाँच गुण माने जाते हैं । यथा - लिपि का स्वदेशी होना प्रयोग की व्यापकता, प्रयोग की प्राचीनता, देश में प्रचलित अन्य लिपियों से निकट संबंध, प्रयोग की बहुसंख्याकता। देवनागरी लिपि में यह सभी गुण विद्यमान हैं ।

11.2.1 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

* देवनागरी लिपि में पाँच गुण दिखाई देते हैं । एक तो वह भारतीय है। दूसरा उसका प्रयोग व्यापक रूप में होता है। प्रयोग की प्राचीनता है। देश में प्रचलित अन्य लिपियों से इस लिपि का निकट संबंध है। प्रयोग की बहुसंख्यकता है। देवनागरी लिपि की विशेषताओं को भाषा वैज्ञानिकों ने रेखांकित किया हैं । आदर्श या वैज्ञानिक लिपि में जितनी विशेषताएँ होनी चाहिए वे सभी देवनागरी लिपि में परिलक्षित होती है। यह माना जाता हैं कि विश्व की सभी लिपियों में यह लिपि सर्वप्रधान, सुंदर, सरल, अधिक, निर्दोष, तथा वैज्ञानिक है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता भारतीय ही नहीं पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक ब्लूम फिल्ड, हेनरी स्वीट, बेबर, डी.के. वूलर आदि ने भी स्वीकार किया हैं । वैज्ञानिकता की दृष्टि से देवनागरी के समान संसार की कोई लिपि नहीं है, ऐसा सभी लिपि-वैज्ञानिकों का मत हैं । इस परिप्रेक्ष्य में देवनागरी लिपि की विशेषताओं का विवेचन निम्नांकित रूप में किया जा सकता हैं -

* एक सार्केतिक चिह्न के लिए एक ही ध्वनि - एक सांकेतिक चिह्न से एक ही ध्वनि का बोध देवनागरी लिपि की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। देवनागरी लिपि में सभी लिपि चिह्नों के वही नाम है। जिन ध्वनियों के लिए उनका प्रयोग किया जाता है। रोमन लिपि के समान चिह्नों की पुनरावृत्ति नहीं है। यहाँ तक कि 'स', 'श', 'ष' भिन्न-भिन्न होने के कारण अलग-अलग ध्वनियों को व्यक्त करते हैं ।

* एक ध्वनि के लिए एक ही स्वतंत्र सांकेतिक चिह्न - देवनागरी लिपि में प्रत्येक स्वर के दीर्घ और ह्रस्व रूप के लिए पृथक्-पृथक् संकेत चिह्न विद्यमान हैं । अर्थात् इसमें एक ध्वनि के लिए कई वर्ण प्रयुक्त नहीं होते हैं । सभी स्वरों की मात्राएँ भी सुनिश्चित है। अतएव इसमें उच्चारण संबंधी किसी प्रकार का भ्रम संभव नहीं है। अन्य लिपियों से तुलना करने पर देवनागरी लिपि की यह विशेषता अधिक स्पष्ट हो सकती है। उर्दू में अकेले 'त' के लिए दो वर्ण 'ते'और 'तोय' 'स' के लिए तीन वर्ण 'सीन', 'स्वाद' 'से' का प्रयोग होता है। रोमन लिपि

में 'श' को प्रयुक्त करने के लिए कई चिह्न प्रयोग में लाये जाते हैं यथा – Shugar, Shoe, Nation, Ocen। डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा इस विशेषता के संबंध में लिखते हैं कि 'रोमन एवं उर्दू में एक वर्ण के अनेक उच्चारण और अनेक वर्णों का एक उच्चारण प्रसिद्ध है। साथ ही उसके स्वरों एवं व्यंजनों की क्रमहीनता तथा जटिलता अवैज्ञानिकता है। इसके विपरीत देवनागरी लिपि में एक वर्ण का एक ही उच्चारण होता है और वर्णों का विन्यास ध्वनिविज्ञान के सर्वोच्च सिद्धान्तों के अनुकूल है।'

❊ वर्णों और रूपों में वैज्ञानिक क्रमबद्धता – देवनागरी लिपि के अक्षरों का वर्गीकरण वेज्ञानिक रीति से किया जाता है। नागरी वर्णमाला स्वर और व्यंजन के नाम से अभिहित है और इन स्वरों एवं व्यंजनों का वर्गीकरण ध्वनि–वैज्ञानिक पद्धति से उच्चार, स्थान एवं प्रयत्नों के आधार पर किया गया है। इस लिपि में प्रथम असंयुक्त स्वर, संयुक्त स्वर, फिर व्यंजन और संयुक्त व्यंजन आदि एक वैज्ञानिक क्रम में नियोजित है। डॉ. हरदेव बाहरी मानते हैं कि व्यंजनों में पहले पच्चीस स्पर्श है, फिर अंतस्थ और उष्म । स्पर्शी के पाँच वर्ग हैं । वर्ग के पहले और दूसरे अघोष है पहले अल्पप्राण, दूसरे महाप्राण और पाँचवें अनुनासिक हैं । व्यंजनों के उच्चारण के अनुसार वर्गीकरण देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसे –

क वर्ग की ध्वनियाँ	–	कण्ठ्य
च वर्ग की ध्वनियाँ	–	तालव्य
ट वर्ग की ध्वनियाँ	–	मूर्धन्य
त वर्ग की ध्वनियाँ	–	दन्त्य
प वर्ग की ध्वनियाँ	–	ओष्ठ्य

❊ **ध्वनि और लिपि में सामंजस्य –** इस लिपि में वे ही ध्वनियाँ लिपिबद्ध की जाती है जिनका उच्चारण हमें करना होता है।। दूसरे शब्दों में देवनागरी लिपि में जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है, जिन शब्दों का उच्चारण न हो ऐसे अनावश्यक शब्दों की भर्ती करना इस लिपि का स्वभाव नहीं है । इसके विपरीत रोमन लिपि में मूक (Silent) अक्षरों का समावेश होता हैं जैसे– knife, में K, Walk में L; Hour में H, Year में Y Debt में b; watch में t आदि । देवनागरी लिपि में इस प्रकार की विसंगतियाँ नहीं हैं; इसलिए कहा जा सकता है कि इस लिपि में ध्वनि ओर लिपि में पूर्ण सामंजस्य है।

❊ **उच्चारण की सुनिश्चितता –** विशुद्ध उच्चारण की विश्वसनियता देवनागरी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यहाँ उच्चारण सुनिश्चित है जैसे – देवनागरी में 'क' ध्वनि का बोधन केवल 'क' चिह्न है। इसके विपरीत रोमन में अकेले 'क' ध्वनि के लिए कई अक्षर हैं, अतः 'क' ध्वनि के लिए किस चिह्न का प्रयोग करें यह एक समस्या बनी हुई है। जैसे Car, Chemistry, Neck, King, Queen अर्थात् 'क' ध्वनि के लिए यहाँ पाँच ध्वनि चिह्नों का प्रयोग होता हैं । C कभी Car, में 'क' कहलायेगा तो वही City में 'स' बन जायेगा । परंतु देवनागरी वर्णों के उच्चारण का एक नियम है, एक सिद्धान्त है सभी वर्णो का यहाँ सपाट और कलात्मक उच्चारण होता है।

* **स्पष्ट और सरल वर्तनी** – देवनागरी वर्णमाला इतनी आसान और स्पष्ट है कि एक बार इसे सीख लेने पर उसकी वर्तनी को रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती । केवल शब्दों का शुद्ध उच्चारण समझ लेना पर्याप्त होता है। देवनागरी में संयुक्त वर्ण रचना की विलक्षण क्षमता है। जो इसके वैज्ञानिक, पूर्णता तथा संतुलन के निदर्शन है।

* **अक्षरों की लिखावट में समानता** – देवनागरी लिपि में छोटे-बड़े अक्षरों का अनावश्यक वर्गीकरण नहीं है। चाहे वह लेखन हो या मुद्रण, सभी अक्षर-भले ही वाक्य की शुरूआत करनी हो या वाक्य का समापन इनका आकार समान होगा । लेकिन रोमन लिपि में दो रूप होते हैं बड़े अक्षर (Capital Letters) और छोटे अक्षर (Small Letters)

* **थोडे में अधिक भावाभिव्यक्ति की क्षमता** – रोमन लिपि की तुलना में देवनागरी वर्णों को लिखने में समय, श्रम और स्थान की बचत होती है। जिस भाव की अभिव्यक्ति में देवनागरी में कम वर्णों का प्रयोग होता है उसके लिए रोमन में कई निरर्थक शब्द प्रयुक्त होते हैं । जैसे Committee में नौ अक्षर है जब कि उच्चारण में केवल तीन अक्षर प्रयुक्त होते हैं ।

* **ध्वन्यात्मकता की अन्यतम विशेषता** – देवनागरी में विश्व की किसी भी भाषा की समस्त ध्वनियों को अंकित करने की निजी विशेषता है। क्योंकि यह धवन्यात्मक तथा स्वनिमात्मक प्रतिलेखन, लिप्यंतरण के सर्वथा अनुकूल है। देवनागरी के इस गुण की प्रशंसा सभी विद्वानों ने की हैं । रोमन में जहाँ एक वर्ष के लिए अनेक उच्चारण, अनेक वर्ण का एक उच्चारण, स्वरों तथा व्यंजनों का व्यतिक्रम प्रसिद्ध है, वही देवनागरी में एक वर्ण का एक ही उच्चारण , स्वर तथा व्यंजन की अलग-अलग सजावट, घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण आदि का वैज्ञानिक क्रम-विद्वानों को विस्मयाविमुग्ध कर देता है ।

* **तकनीकी तथा वैज्ञानकि एवं दुर्लभ ज्ञान राशि के संचय की अपूर्व लिपि** – देवनागरी तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रयोग की दृष्टि से सर्वोत्तम लिपि है। कतिपय विद्वानों का मत हैं कि देवनागरी तकनीकी दृष्टि से पिछड़ी हुई है। उनके अनुसार देवनागरी वर्षों के आकार जटिल है। जो काम अंग्रेजी में 52 टाईपों से चल जाता हैं; इसके लिए देवनागरी में 450 टाईप काम में लाने पड़ते हैं । इस संदर्भ में अंग्रेजी में वर्णों की कूल संख्या 26 है किन्तु रोमन का प्रत्येक वर्ण अपने चार रूप रखता हैं इस तरह इनकी संख्या 104 माननी चाहिए । देवनागरी के संयुक्ताक्षरों में कठिनाई कम और स्थान बचत का लाभ अधिक है। रोमन में प्रत्येक वर्ण पूर्ण लिखा जाता है। इस तरह 1976 में भारत सरकार की वर्तनी सुधार समिति ने देवनागरी के मुद्रण पर अनेक संशोधन किये हैं ।

11.2.2 देवनागरी लिपि का मानक रूप

देवनागी लिपि रोमन तथा अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। यद्‌यपि यह लिपि वैज्ञानिक है किंतु उसमें अभी भी अनेक त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियों के कारण ही उसका बार-बार मानक रूप बनाने का प्रयास विद्‌वानों के द्‌वारा किया गया हैं । देवनागरी लिपि में जो कमियाँ थी उन्हें दूर करने के प्रयास समय-समय पर होते रहे है। यह सुधार तीन स्तरों पर होता रहा हैं - व्यक्तिगत, संस्थागत एवं शासनगत। व्यक्तिगत रूप से सुधार करने वालों में महाराष्ट्र के श्री गोविंद महादेव रानडे है , सुनिति कुमार चटर्जी, श्रीनिवास और सावरकर

बंधुओं तथा लोकमान्य तिलक ने भी अपने-अपने स्तर पर नागरी लिपि में सुधार के सुझाव दिये हैं । इस प्रयास को गांधी जी का भी समर्थन था । लोकमान्य तिलक ने सन 1904 में अपने पत्र 'हिंदी केसरी' में देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया । इन्होंने सन् 1926 में 'टाईपों' मे छटाँई करते हुए 190 टाईपों का एक फाँट तैयार किया जिसे 'तिलक टाईप' कहा जाता है। लोकमान्य तिलक ने देवनागरी अक्षरों की 'लोतो टाईप कंपोजिंग मशीन' का प्रबंध कर लिया था और उनका मराठी पत्र 'केसरी' उसी मशीन द्वारा कंपोज किया जाता था । गोपाल कृष्ण गोखले ने राष्ट्रलिपि देवनागरी कार्य योजना के कार्यान्वयन में सहयोग दिया था । बालमुकुंद गुप्ता ने सन 1902 में साप्ताहिक हिंदी पत्र 'भारत मित्र' के माध्यम से संपूर्ण भारत वर्ष के लिए एक सार्वजनिक लिपि देवनागरी का स्वप्न देखा । उनके ही शब्दों में ''यूरोप में कुल सोलह देश है, जिनमें भाषाओं के पार्थक्य के बावजूद लिपि की एकता है। किंतु भारत वर्ष में अक्षरों की विचित्र गति है। अक्षरों की गति निराली है। उसके पश्चात् बाबू श्यामसुंदरदास, आचार्य महावीरप्रसाद त्रिवेदी, पंडित मदन मोहन मालवीय, न्यायमूर्ति शारदाचरण मिश्र आदि ने देवनागरी लिपि को अपनाने का आग्रह किया । सन् 1939 में इंदौर में हुए हिंदी साहित्य संमलेन में महात्मा गांधी के सभापतित्व में 'नागरी लिपि सुधार समिति' बनाई गई । समय-समय पर देवनागरी के मानक रूप कें संबंध में विद्वानों द्वारा चर्चा की जाती रही। इनमें काका कालेलकर, विनोबा भावे का योगदान विशेष रहा हैं ।

राष्ट्रभाषा परिषद् वर्धा द्वारा प्रकाशित की जाने वाली पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में काका कालेलकर ने लोकनागरी के माध्यम से तथा विनोबा भावे ने देवनागरी के मानकीकरण एवं उसको अखिलदेशीय लिपि बनाने के लिए बड़ा कार्य किया । यह तय किया गया कि लिपि के मानकीकरण के लिए निम्नलिखित सुझावों को स्वीकृत किया जाएँ -

✻ लिखने में शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है परंतु छपाई में यह आवश्यक है।

✻ प्रत्येक वर्ण ध्वनियों को उच्चारण क्रम के अनुसार लिखा जाएँ ।

✻ 'र' , 'व' के स्थान पर गुजराती 'ख' लिखा जाए ।

✻ गुजराती, मराठी तथा दक्षिण भाषाओं के मूर्धन्य 'ळ' के स्थान पर 'ल' चिह्न का प्रयोग किया जाएँ ।

✻ स्वरों एवं व्यंजनों में समानता लाने के लिए सावरकर बंधुओं द्वारा सुझाई गई 'अ' की बाराखड़ी का प्रयोग किया जाए यथा - अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ के रूप में प्रयुक्त हो ।

✻ पूर्ण विराम का चिह्न खड़ी पाई (।) हो ।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के सुझावो को दृष्टि में रखकर मानक देवनागरी लिपि का रूप निश्चित किया गया । सन् 1962 में देवनागरी लिपि का मानक रूप निश्चित किया गया । उसका वर्तमान रूप उस प्रकार है -

स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

मात्राएँ -(क पर आधारित) क, का, कि, की, कु, कू, कृ, के, कै, को, कौ

अनुस्वार - कं
अनुनासिक - कँ
विसर्ग - कः

व्यंजन -	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
	च्	छ्	ज्	स्	ञ्
	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
			ड़	ढ़	
	त्	थ्	द्	ध्	न्
	प्	फ्	ब्	भ्	म्
	य्	र्	ल्	व्	ळ्
	श्	ष्	स्	ह्	

स्वीकृत संयुक्त स्वर - क्ष, त्र, ज्ञ, श्र
हलन्त चिह्न - उदाहरण-क्
गृहित स्वर - जैस ऑ (डॉक्टर, कॉलेज, कॉलनी) और ख़, ज, फ़, को मान्यता दी गई ।

✻ संयुक्त व्यंजनों के लिखने की चार शैलियाँ निश्चित की गई ।

1. पाई वाले व्यंजन - पाई हटाकर - न्याय, प्यास
2. बिना पाई वाले व्यंजन हलन्त कर - विद्वान, वाङ्मय, ब्रह्मा
3. क और फ का प्रयोग - वक्त, दफ्तर
4. र का संयोग क) क्रम, प्रकार
   ख) कर्म, आर्य
   ग) कृष्ण, पृष्ठ
5. देवनागरी अंक - १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०
6. भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10

11.2.3 संगणक की दृष्टि से देवनागरी लिपि की उपादेयता

✻ संगणक की दृष्टि से देवनागरी लिपि की उपादेयता -

देवनागरी लिपि संसार के हर क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है। वस्तुतः यह लिपि विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि मानी जाती है क्योंकि इसमें जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है, जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। आज का युग वैज्ञानिक युग है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र विज्ञान से व्याप्त हो चुका है। विज्ञान के आविष्कारों ने मानव जीवन शैली में आमूलाग्र परिवर्तन कर दिया है। आधुनिक टेक्नॉलॉजी के विकास में कॅम्प्यूटर का आविष्कार युगांतकारी घटना है। आज जीवन के हर क्षेत्र में

संगणक का प्रचुरता से उपयोग किया जा रहा है। भाषिक अध्ययन और विश्लेषण भी इससे अछूता नहीं हैं । यह एक ऐतिहासिक संयोग ही हैं कि कॅम्प्यूटर का विकास पहले ऐसे देशों में हुआ जिसकी भाषा मुख्यतः अंग्रेजी या रोमन लिपि पर आधारित यूरोपिय भाषा थी। कदाचित यही कारण है कि रोमन तर भाषाओं में कॅम्प्यूटर सांधित भाषा विश्लेषण का कार्य कुछ देरी से आरंभ हुआ । इस बात में कोई संदेह नहीं है कि रेखिक लिपि होने के कारण रोमन के माध्यम से सूचना–संसाधन का कार्य अपेक्षाकृत सहज भी है। परंतु इस बात का कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोम लिपि को या अंग्रेजी को ही संगणक की आदर्श भाषा या लिपि माना जाए ।

संगणक मूलतः प्राकृतिक भाषाओं को ग्रहण कर अपना संपूर्ण कार्य करता है। देवनागरी जैसी अन्य लिपि चिह्नों का समावेश भी संगणक में किया जा सकता है। लिपि कोई भी हो संगणक में सांस्कृतिक चिह्नों के रूप में पर्याय के रूप में मानी जाती है। संगणक की दो संकेतों की अपनी स्वतंत्र गणितीय भाषा है और इसीसे अपनी भाषा को ग्रहण करके सारे कार्य करते है। इसलिए संगणक को किसी भी भाषा की लिपि को अपनाने में कोई तकनीकी बाधा नहीं है। अमेरिकी वैज्ञानिक 'रिक ब्रिग्ज' की यह धारणा है कि संस्कृत भाषा संगणक प्रोग्राम की दृष्टि से आदर्श भाषा है इसलिए देवनागरी में संगणक का काम करना कठिन नहीं है।

देवनागरी को संगणक की भाषा में रूपांतरित करने की दिशा में हार्डवेअर एवं सॉफ्टवेअर के रूप में पर्याप्त प्रयास किये जा रहे है। जिससे संगणक पर हिंदी में काम करना आसान हो सके ।

शब्द संसाधन के रूप में सर्वप्रथम अमेरिकी 'जोसेफ ब्रोकर' ने उस दिशा में प्रयास किया । 'स्टार' नाम से प्रचलित प्रणाली के अंतर्गत मूलपाठ का कुंजीयन रोमन लिपि में करके अपेक्षित लिपि में इसका लिप्यंतरण और मुद्रण किया जाता है। भारतीय भाषाओं में वर्णमाला का क्रम समान होने के कारण उनका आंतरिक संदेश भी समान होता है। किंतु रेखिय रूप में बाहरी संदेश में कमोवेश भिन्नता रहती है। इस मूलभूत आंतरिक समानता को केंद्र में रखकर ही इलेक्ट्रॉनिक विभाग भारत सरकार ने उर्दू को छोड़कर सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान कोड स्वीकार किया हैं । इसे 'इस्की' 8 कोड (ISCI-8) कहा जाता हैं । इसमें रोम लिपि के अक्षरों को भी समाहित किया जाता है।

आय.टी.आय. मद्रास में एक प्रणाली का विकास किया जा रहा है। जिसके माध्यम से हिंदी में उच्चरित वाक्यों का संगणक की सहायता से नागरी लिपि में रूपांतरण किया जायेगा और इसी प्रकार नागरी लिपि में अंकित पाठों को संगणक के मॉनिटर पर कुंजियन करके ध्वनि में रूपांतरी किया जायेगा ।

सन् 1992 में आय. आय. टी. कानपुर में आयोजित सी. पी. ए. एल. – 2 में डॉ. सिंग के द्वारा संगणक के माध्यम से हिंदी का वाक्य परक विशलेषण प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया । डॉ. हेमंत दरबारी ने सी–डॅक की पुष्टि की। आज प्रो. आर. एम. के सिन्हा के निर्देशन में कानपुर आय आय टी में अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद का प्रयास प्रारंभ हो चुका है।

संगणक के माध्यम से शब्द संसाधन, लिप्यंतरण, कोश निर्माण, मशीनी अनुवाद,

पर्यायवाची कोश आदि का विकास हुआ है। कम्प्यूटर सांधित भाषा शिक्षण आय. आय. टी. (मद्रास) में शुक्ल ने ऐसी प्रणाली का विकास किया जिसकी सहायता से हिंदी माध्यम से सभी विषय पढ़ाए जा सकते हैं ।

भारतीय भाषा संस्थान मैसूर, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा आदि ने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के शिक्षण के लिए विशेषतः सॉफ्टवेअर तैयार किया है। अमेरिका के डॉ. तेज भाटिया भी इसी दिशा में प्रयत्नशील है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हैद्रराबाद, मद्रास, के उच्चशिक्षा शोध संस्था में हिंदी भाषा के माध्यम से अनेक संगणक पाठ्यक्रम चलाये जा रहे है।

समग्रतः संगणक की दृष्टि से देवनागरी लिपि ने आशातीत सफलता प्राप्त की हैं । इसी आधार पर कहा जा सकता हैं कि संगणक के क्षेत्र में देवनागरी लिपि की उपयोगिता एवं सार्थकता असंदिग्ध है।

11.3 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

✻ देवनागरी लिपि की विशेषताओं को समझाइए ।

....

....

....

✻ देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

✻ देवनागरी के मानक-रूप को स्पष्ट कीजिए ।

....

....

....

✻ संगणक की दृष्टि से देवनागरी की उपादेयता बताइए ।

....

....

....

ख) टिप्पणियाँ –

✻ भारत में प्रचलित लिपियाँ

....

....

....

✻ देवनागरी की दो विशेषताएँ

....

....

....

✻ देवनागरी का मानक–रूप

....

....

....

✻ देवनागरी की उपादेयता

....

....

....

(ग) एक वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

✻ 'लिपि' शब्द का तात्पर्य समझाइए ।

....

....

....

✻ भारत में प्रचलित लिपियों के नाम लिखिए ।

....

....

....

✻ देवनागरी लिपि के विशेष गुण कौनसे है?

....

....

....

✻ भारतीय लिपि के विकास में सहायक लिपियों के नाम लिखिए ।

....

....

....

(घ) सही पर्याय लिखिए –

* हिंदुस्तान की सबसे लोकप्रिय लिपि कौनसी है?

अ) चित्र ब) सूत्र क) देवनागरी ड) प्रतीक

* देवनागरी का मानक रूप कब निश्चित किया गया?

अ) सन् 1962 ब) सन् 1949 क) सन् 1948 ड) सन् 1950

* लोतो टाईप कंपोजिंग मशीन का प्रबंध किसने किया था ?

अ) म. गांधी ब) लोकमान्य तिलक क) कालेलकर ड) विनोबा भावे

11.4 **सारांश**

भाषा अपने मूल रूप में ध्वनियों पर आधारित होती हैं । ध्वनियों को ही हम उच्चारित करते है और श्रवण करते हैं । इसके लिखित रूप के लिए लिपि एकमात्र माध्यम है। देवनागरी तथा अन्य समस्त उत्तर भारतीय लिपियों का विकास प्राचीनतम भारतीय लिपि से हुआ है। देवनागरी लिपि को विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ हैं । भारत में प्राचीन काल में ब्राह्मी और खरोष्टी दो लिपियाँ प्रचलित थी । देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी से हुआ है। अशोक के द्वारा खुदवाये गये शिलालेखों की लिपि खरोष्टी है। वस्तुतः खरोष्टी इस युग में सीमित क्षेत्र की लिपि थी और ब्राह्मी संपूर्ण भारत की । प्राचीन नागरी लिपि के विकसित होने पर इसके पश्चिमी रूप से आधुनिक नागरी या देवनागरी लिपि का प्रादुर्भाव हुआ । डॉ. धीरेंद्र वर्मा मानते है कि राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, विंध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में जो शिलालेख एवं ताम्रपत्र मिलते है वे नागरी लिपि में ही लिखें गये थें ।

देवागरी लिपि के नाकमकरण के संदर्भ में विभिन्न मत है। कुछ विद्वान मानते है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों में इसका प्रचार था इसलिए इसका नाम 'देवनागरी' पड़ा है। कुछ विद्वान नगरों एवं नागरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम देवनागरी हुआ ऐसा मानते हैं । एक मत यह भी रहा है कि पाटलिपुत्र को नागर और चंद्रगुप्त द्वितीय को देव कहा जाता था उन्हीं के नाम पर लिपि का देवनागरी लिपि नामकरण हुआ ।

यह निर्विवाद है कि देवनागरी लिपि विश्व की सभी लिपियों में श्रेष्ठ मानी जाती है। यह ध्वन्यात्मक लिपि हैंऔर उसकी प्रमुख विशेषता उसकी सरलता है । इसकी विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है – यह एक व्यवस्थित रूप से निर्मित लिपि है। इसकी ध्वनियों का क्रम वैज्ञानिक है। इसमें अल्पप्राण ध्वनि के बाद महाप्राण ध्वनिसूचक चिह्न है। प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष ध्वनियाँ हैं और फिर सघोष। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो ध्वनियाँ अघोष तथा अंतिम तीन ध्वनियाँ सघोष हैं । प्रत्येक वर्ग की नासिक्य ध्वनि उस वर्ग के अंत में है। छपाई एवं लिखाई के लिए एक ही रूप है। जबकि रोमन लिपि के छोटे और बड़े दो रूप क्रमशः पाये जाते हैं । इस लिपि में स्वरों के ऱ्हस्व और दीर्घ भेद हैं तथा स्वरों की मात्राएँ निश्चित हैं । प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग–अलग लिपि चिह्न, एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न हैं । उच्चारण एवं लेखन में समानता,

जो लिखा जाता है वही उच्चरित होता है, मुद्रण और टंकन की दृष्टि से सरलता से देवनागरी लिपि ही महत्त्वपूर्ण लिपि है।

देवनागरी लिपि के मानकीकरण तथा सुधारों का एक जीवंत इतिहास है। प्रत्येक समाज में एक आदर्श वर्ग होता है। उस आदर्श वर्ग में प्रयुक्त होने वाली भाषा ही उस समाज की मानक भाषा कही जाती है। अर्थात् भाषा का मानक रूप उसकी संरचना अथवा शुद्धता द्वारा नहीं अपितु समाज की सामूहिक स्वीकृति द्वारा निश्चित होता है अतः सामाजिक स्वीकृति प्राप्त भाषा का रूप ही किसी भाषा का मानक रूप होता है। मानकीकरण की प्रक्रिया में चार बातें महत्त्वपूर्ण है। चयन, प्रसार, प्रयोग और स्वीकृति ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संगणक एवं मुद्रण की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर देवनगरी लिपि के मानकीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई अतएव सन् 1974 केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने वर्तनी समिति गठित की । उसकी उपयोगिता के कारण ही लीला हिंदी प्रबोध सॉफ्टवेअर की सहायता इस व्यवस्था के द्वारा शब्दों में वर्णों का मानक उच्चारण सुना जा सकता है। इसी प्रकार उच्चारण सुनकर अपनी वाणी रेकॉर्ड कर सकतें है और मानक उच्चारण से उसकी तुलना भी कर सकते है।

11.5 शब्दार्थ

मानक	–	सर्वमान्य स्तर, अंग्रेजी में उसके लिए 'स्टॅन्डर्ड' शब्द प्रचलित हैं।
चक्षुग्राही	–	जिसे आँखों से ग्रहण किया जाये ।

11.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

- देवनागरी लिपि के मानक रूप की तालिका तैयार कीजिए ।
- भारत में प्रचलित लिपियों की जानकारी प्राप्त कीजिए ।
- आप के आस-पास के विभिन्न भाषिकों की लिपियों को समझने का प्रयत्न करें ।

11.7 संदर्भ –अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें –

- आधुनिक भाषाविज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
- भाषा और भाषाविज्ञान – डॉ. तेजपाल चौधरी
- भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा – डॉ. हणमंत पाटील

एम . ए . हिन्दी द्वितीय वर्ष

पेपरः 3

हिंदी साहित्य का इतिहास

3. विशेष स्तर : हिंदी साहित्य का इतिहास

पाठ्यक्रम

* **आदिकाल –**

1. हिंदी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण के आधार, भाषा, साहित्य, प्रथम साहित्यकार।
2. आदिकाल के विविध नाम – चारणकाल, सिद्ध–सामंत काल, वीरगाथा काल और नामकरण के आधार।
3. आदिकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव।
4. रासो साहित्य परंपरा– रासो शब्द के अर्थ, रासो के प्रकार पृथ्वीराज रासो की कथ्यगत और शैलीगत विशेषताएँ।
5. अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और उनका हिंदी साहित्य पर प्रभाव।
6. सिद्ध साहित्य का परिचय और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ।
7. नाथपंथी साहित्य की विषय और शैलीगत प्रवृत्तियाँ।
8. गोरखनाथ, विद्यापति और अमीर खुसरो का साहित्यिक परिचय।

* **भक्तिकाल –**

9. भक्ति आंदोलन का सामान्य परिचय और विविध संप्रदाय
10. भक्तिकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव।
11. निर्गुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ, निर्गुण भक्तिमार्ग के दो भेद – प्रेममार्ग एवं ज्ञानमार्ग – दोनों की परंपरा एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ।
12. ज्ञानमार्ग के प्रतिनिधि कवि – कबीर का साहित्यिक परिचय।
13. प्रेममार्ग के प्रतिनिधि कवि जायसी का साहित्यिक परिचय।
14. सगुण भक्ति साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, सगुण भक्तिमार्ग के दो भेद, रामभक्ति एवं कृष्णभक्ति, दोनों की परंपरा एवं प्रवृत्तियाँ।
15. रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास का साहित्यिक परिचय।
16. कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि –रसखान, सूरदास और मीरा का साहित्यिक परिचय।
17. नीति कवि रहीम का साहित्यिक परिचय।

* **रीतिकाल –**

18. रीतिकाल के विविध नाम और उनके आधार।
19. रीतिकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव ।
20. रीतिकालीन साहित्य की विषयगत और शैलीगत प्रवृत्तियाँ।

21. रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त काव्यधाराओं का परिचय।

22. आचार्यत्व और कवित्व की परंपरा।

23. रीतिकालीन कवियों का साहित्यिक परिचय - केशवदास, `व, चिंतामणी, भिखारीदास, बिहारी, घनानंद, भूषण, सेनापति, मतिराम, पद्माकर।

* **आधुनिक काल -**

गद्य :

24. परिस्थितियाँ- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ एवं उनका प्रभाव।

25. उपन्यास विधा का विकास - प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंदोत्तर युग।६

26. कहानी विधा का विकास - स्वातंत्र्यपूर्व , स्वातंत्र्योत्तर युग।

27. नाटक विधा का विकास - प्रसादपूर्व युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग।

28. एकांकी विधा का विकास - स्वतंत्रतापूर्व, स्वातंत्र्योत्तर युग।

29. निबंध विधा का विकास - भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग, शुक्लोत्तर युग।

30. संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन, रिपोर्ताज का विकासात्मक परिचय।

31. आलोचना का विकास - भारतेंदुयुगीन, द्विवेदीयुगीन, द्विवेदीयुगोत्तर।

32. हिंदी पत्रकारिता का विकासात्मक परिचय और भारतेंदु, महावीरप्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी और कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के योगदान का अध्ययन।

पद्य :

33. भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ।

34. द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ।

35. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा एवं मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और सुभद्राकुमारी चौहान का योगदान।

36. छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ, प्रमुख प्रवृत्तियाँ, छायावाद की बृहद्त्रयी और लघुत्रयी।

37. प्रगतिवाद - प्रेरक परिस्थितियाँ प्रमुख विशेषताएँ।

38. प्रयोगवाद - प्रेरक कारण, प्रमुख प्रवृत्तियाँ, प्रयोगवाद और नई कविता।

39. साठोत्तरी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ।

40. साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल की प्रमुख विशेषताएँ।

अनुक्रमणिका

*** आदिकाल**

इकाई – 1 : हिंदी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण के आधार

इकाई – 2 : आदिकाल के विविध नाम

इकाई – 3 : आदिकालीन परिस्थितियाँ और उनका साहित्यपर प्रभाव

इकाई – 4 : रासो साहित्य परंपरा

इकाई – 5 : अपभ्रंश साहित्य

इकाई – 6 : सिद्ध साहित्य

इकाई – 7 : नाथपंथी साहित्य

*** भक्तिकाल**

इकाई – 8 : गोरखनाथ, विद्यापति और अमीर खुसरों का साहित्यिक परिचय

इकाई – 9 : भक्ति आंदोलन

इकाई 10 : भक्तिकालीन परिस्थितियाँ

इकाई 11 : निर्गुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई 12 : ज्ञानमार्ग के प्रतिनिधि कवि – कबीर

इकाई 13 : प्रेममार्ग के प्रतिनिधि कवि – जायसी

इकाई 14 : सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई 15 : रामभक्ति साहित्य के प्रतिनिधि कवि – तुलसीदास

इकाई 16 : कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि

इकाई 17 : नीति कवि – रहिम

*** रीतिकाल**

इकाई 18 : रीतिकाल के विविध नाम और उनके आधार

इकाई 19 : रीतिकालीन परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव

इकाई 20 : रीतिकालीन साहित्य की विषय एवं शैलीगत प्रवृत्तियाँ

इकाई 21 : रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त काव्यधाराओं का परिचय

इकाई - 22 : आचार्यत्व और कवित्व की परंपरा

इकाई - 23 : रीतिकालीन कवियों का साहित्यिक परिचय

***आधुनिक काल: गद्य**

इकाई - 24 : **आधुनिक काल की** परिस्थितियाँ

इकाई - 25 : उपन्यास विधा का विकास

इकाई - 26 : कहानी विधा का विकास

इकाई - 27 : नाटक विधा का विकास

इकाई - 28 : एकांकी विधा का विकास

इकाई - 29 : निबंध विधा का विकास

इकाई - 30 : संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन, रिपोर्ताज का विकासात्मक परिचय

इकाई - 31 : आलोचना का विकास

इकाई - 32 : हिंदी पत्रकारिता का विकासात्म परिचय

***आधुनिक काल : पद्य**

इकाई - 33 : भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई - 34 : द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई - 35 : राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा एवं कवियों का योगदान

इकाई - 36 : छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ

इकाई - 37 : प्रगतिवाद - प्रेरक परिस्थितियाँ

इकाई - 38 : प्रयोगवाद

इकाई - 39 : साठोत्तरी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ

इकाई - 40 : साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल की प्रमुख विशेषताएँ

इकाई – 1

हिंदी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण के आधार ।

अनुक्रम

1.1 **उद्‌देश्य**

1.2 **प्रस्तावना**

1.3 **विषय–विवरण**

1.3.1 **जॉर्ज ग्रियर्सन द्‌वारा सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास,**

1.3.2 **मिश्रबंधुओं द्‌वारा सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास**

1.3.3 **आ. रामचंद्र शुक्ल द्‌वारा प्रस्तुत काल विभाजन और नामकरण**

1.3.4 **प्रथम साहित्यकार**

1.4 **शब्दार्थ**

1.5 **सारांश**

1.6 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

1.7 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**

1.8 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

1.1 उद्‌देश्य –

* छात्रों में हिंदी साहित्य के प्रति आकर्षण एवं अभिरुचि का निर्माण करना।
* भाषा और साहित्य–अध्ययन की वैज्ञानिक पद्‌धति से अवगत कराना।
* हिंदी साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्रदान करना।

1.2 प्रस्तावना –

विश्व में इतिहास हर व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना आदि के साथ संलग्न रहता है। अत: किसी भी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना आदि के अध्ययन में उसकी ऐतिहासिकता अनिवार्य शर्त के रूप में मानी जा सकती है। हिंदी साहित्य की ऐतिहासिकता इसी दृष्टि से उसके अध्ययन की एक अनिवार्य शर्त है जो प्राथमिकता के साथ सामने आती है।

हिंदी का साहित्य आज विश्व में एक वस्तु के रूप में आलोकित हुआ है जिसकी निर्मिति के पीछे काल अर्थात् समय का सबसे बड़ा सहयोग मना जा सकता है। कालचक्र में हिंदी भाषा पर साहित्यगत संस्कार हुए वहीं संस्कार हिंदी भाषा एवं हिंदी साहित्य की निर्मिति

के सोपान के रूप में माने जा सकते हैं। इस निर्मिति-प्रक्रिया में किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह का प्रत्यक्ष सहयोग रहता है, कारणत: विभिन्न प्राकृतिक एवं
मानवीय विकारों से संपृक्त साहित्य की निर्मिति होती है, जो समय के साथ परिवर्तित और परिवद्‌र्धित होता है।

साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन उसके परिवर्तित एवं परिवद्‌र्धित स्वरूप में काल विभाजन और नामकरण की मांग करता है। काल विभाजन और नामकरण के द्‌वारा ही साहित्याध्ययन को सुलभ एवं अधिक वैज्ञानिक किया जा सकता है। उसके लिए साहित्य की भाषा और उसमें निर्मित साहित्य तथा साहित्य के निर्माताओं को आधार मान कर, उसका काल-विभाजन और नामकरण किया जाता है।

हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए भी इस प्रकार काल विभाजन किया गया है और नामकरण भी किया गया है। इसमें वैज्ञानिकता लाने की दृष्टि से काल विभाजन और नामकरण के कुछ आधार स्वीकार किए गए हैं जिनमें भाषा, साहित्य और प्रथम साहित्यकार महत्वपूर्ण है।

हिंदी साहित्य का काल विभाजन अत्यंत जटिल कार्य था, जिसमें जर्मन विद्‌वान जॉर्ज ग्रियर्सन, भारतीय विद्‌वानों में मिश्रबंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल,आचार्य हजारी प्रसाद द्‌विवेदी, डॉ.रामकुमार वर्मा, पं. राहुल सांस्कृत्यायन, गणपतिचंद्र गुप्त आदि अध्ययनकर्ताओं ने हिंदी भाषा के काल के अनुसार बदलते स्वरूप और उसमें निर्मित साहित्य को आधार मानकर तथा साहित्यकारों के योगदान एवं प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर इस कार्य को अधिकाधिक सुलभ एवं वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया है।

यद्‌यपि यह काल-विभाजन और नामकरण विवादास्पद रहा है, तथापि हिंदी भाषा और उसमें लिखे गए साहित्य के अध्ययन की सुलभता और अनुसंधान की दृष्टि से काल विभाजन और नामकरण अत्यंत प्रेरणादायक सिद्‌ध हुआ है।

1.3 विषय-विवरण -

हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन और नामकरण यद्‌यपि अत्यंत महत्वपूर्ण है, तथापि विद्‌वानों और अध्ययनकर्ताओं ने इसके लिए अलग-अलग आधार ग्रहण किये हुए हैं। जिसके कारण काल-विभाजन और नामकरण में भिन्नता और विद्‌वानों में मतभिन्नता दिखाई देती है।

इस अध्ययन में प्रथम प्रयास फ्रेंच विद्‌वान गार्सा-द-तासी द्‌वारा किया गया था। उन्होंने सन् 1839 में फेंच भाषा में '**इस्त्वार द ला लितेरात्युर ऐंदुई ए हिंदुस्तानी**' नामक ग्रंथ में हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन का प्रयास किया हुआ हैं। उनके बाद सन् 1883 में हिंदी के शिवसिंह सेंगर ने भी '**शिवसिंह सरोज**' नामक अपना इतिहास ग्रंथ प्रकाशित किया जिसमें लगभग एक हजार हिंदी कवियों का लेखा-जोखा मिलता हैं। गार्सा-द-तासी ने अपनें ग्रंहिंदीं-उर्दू क विया के रचनाकाल का निर्देश तो किया है, लेकिन काल विभाजन और नामकरण का प्रयास नहीं किया है।

1.3.1 जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास –

सर जॉर्ज ग्रियर्सन जो जर्मन विद्वान थे, उन्होंने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्थान' नामक अपने अंग्रेजी ग्रंथ में, हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। ग्रियर्सनने तिहासिक दृ ष्टि स संपूर्ण हिंदी साहित्य का निम्नलिखित विभिन्न नामों के साथ काल–विभाजन प्रस्तुत किया है।

1. चारणकाल – सन् 700 ईसवीं से 1300 ईसवीं तक।
2. पंद्रहवी शती का धार्मिक पुनरूत्थान
3. मलिक मोहम्मद का प्रेमाख्यान
4. ब्रज की कृष्णभक्ति
5. मुगल दरबार
6. तुलसीदास
7. रीतिकाव्य
8. तुलसीदास के

त्रुटियाँ तथा महत्व :

ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का आविर्भाव काल **स**न् 700 ` मानकर अपभ्रंश के साहित्य को भी हिंदी भाषा के साहित्य के अंतर्गत समेट लिया है जिसके कारण काल विभाजन का भाषागत आधार ठोस नहीं माना जा सकता है। उनके द्वारा प्रत्येक कालखंड का नामकरण भी अस्तव्यत है। इसमें ग्रियर्सन ने कहीं साहित्यिक प्रवृत्ति को तो कहीं व्यक्तियों के नामों को, तो कहीं राजनीतिक परिस्थितियों को आधार के रूप में ग्रहण किया है।

इन त्रुटियों के होते हुए भी जॉर्ज ग्रियर्स**न** द्वारा किए गए काल विभाज और नामकरण को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि उनके पूर्ववर्ती गार्सा–द–तासी और शिवसिंह सेंगर आदि अध्ययनकर्ताओं ने काल–विभाजन और नामकरण की तरफ ध्यान नहीं दिया था। ग्रियर्सन के परवर्ती अध्ययनकर्ताओं के लिए यह काल–विभाजन और नामकरण दिशादर्शक सिद्ध हुआ है।

1.3.2 मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तुत क
ालविभाजन और नामकरण :

मिश्रबंधु अर्थात् श्याम बिहारी मिश्र,. ……ने मिश्रबंधु विनोद नामक अपने ग्रंथ में निम्नलिखित प्रमुख पाँच भागों में हिंदी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण प्रस्तुत किया है जो जॉर्ज ग्रियर्सन से अधिक विकसित और वैज्ञानिक माना जाता है।

1. **आरंभिक काल** (वि.सं. 700 से वि.सं. 1444 तक) : जिसे मिश्रबंधुओं ने पूर्वारंभिक और उत्तरारंभिक काल इन दो भागों में किय हैं।
2. **माध्यमिक काल** – वि.सं.1445 से वि.सं.1680 तक) – जिसे दो भागों में विभाजित किया है – पूर्व माध्यमिक काल, उत्तर माध्यमिक काल।

3. **अलंकृत काल** - (वि.सं.1681 से 1889 तक) इस काल को विभाजित किया है - पूर्वालंकृत काल, उत्तरालंकृत काल में।

4. **परिवर्तन काल** - (वि.सं.1890 से 1925 तक) और

5. **वर्तमान काल** - (वि.सं.1926 से आगे का काल)

त्रुटियाँ तथा महत्व :

मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तुत इस काल विभाजन और नामकरण में भी त्रुटियाँ हैं। यहाँ नामकरणों में आधारों की एकता नहीं है, कहीं समय को आधार बनाया गया है - जैसे आरंभिक, माध्यमिक और वर्तमान काल।कहीं साहित्यिक प्रवृत्तियों को आधार मान लिया गया हैं जैसे अलंकृत काल और परिवर्तन काल। काल विभाजन में भी कुछ कालों का पूर्व, मध्य, उत्तर इस तरह का उपविभाजन किया हैं और शेष कालों का उपविभाजन नहीं किया है।

इन त्रुटियों के रहते हुए भी मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तुत यह क लविभाजन महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कालक्रम की रक्षा के साथ साथ साहित्य की विकास-प्रक्रिया को भी रेखांकित किया गया है।

1.3.3 आ.रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत कालविभाजन और नामकरण :

शुक्ल ने अपने पूर्ववर्ती सभी कालविभाजनों और नामकरणा में सुधार किया है जिसमें उन्होंने पहली बार समय और साहित्यिक प्रवृत्तियों को एक स थ आधार के रूप में स्वीकार किया हैं। अत: शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन में प्रत्येक काल के कालवाचक और साहित्यिक प्रवृत्तिवाचक दो-दो नाम प्रस्तुत हुए हैं-

1. **आदिकाल (संवत 1050 से सं.1375 तक) -** यह कालसूचक नाम है। जिसके साथ शुक्ल ने साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर नाम दिया है - **वीरगाथा काल**।

2. **पूर्व मध्यकाल (संवत 1376 से सं.1700 तक) -** यह भी कालवाचक नाम है। जिसके लिए उन्होंने साहित्यिक प्रवृत्तिवाचक नामकरण किया है- **भक्तिकाल**।

3. **उत्तर मध्यकाल (संवत 1701 से सं.1900 तक) -** यह भी कालवाचक नाम है। जिसके लिए साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण किया है - **रीतिकाल।**

4. **आधुनिक काल (संवत 1901 से आगे) -** यह भी कालवाचक नाम है। जिसका साहित्य के स्वरूप पर आधारित दूसरा नामकरण है - **गद्यकाल।**

त्रुटियाँ तथा महत्व :

आ.शुक्ल द्वारा प्रस्तुत हिंदी साहित्य के कालविभाजन और नामकरण में भी डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त जैसे अध्येताओं ने त्रुटियाँ दर्शाई हैं कि इस वर्गीकरण में हिंदी भाषा और अपभ्रंश भाषा के संदर्भ में अस्पष्ट, नीति, रचनाओं का अप्रामाणिक आधार तथा सदोष प्रवृत्तिगत नामकरण है।

आ.शुक्ल द्वारा प्रस्तुत हिंदी साहित्य का यह काल विभाजन और नामकरण आगे चलकर अधिकांश अध्ययनकर्ताओं ने मान्य किया हैंऔर आधार स्वरूप मान्य किया हैं। क्योंकि इसमें काल के साथ-साथ तत्कालीन साहित्य के स्वरूप को भी आधार माना गया है। इसी लिए इस काल विभाजन और नामकरण का अनुसरण उनके परवर्ती अभ्यासकों - डॉ.रामकुमार वर्मा, डॉ.गणपतीचंद्र गुप्त, डॉ.हरिश्चंद्र वर्मा, बाबू गुलाबराय आदि ने किया हैं।

हिंदी साहित्य के कालविभाजन और नामकरण में आरंभ में जॉर्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं द्वारा यद्यपि तत्कालीन धार्मिक अथवा राजनीतिक परिस्थितियों को आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है। उन्होंने भी चारणकाल, प्रेमाख्यान ब्रज की कृष्णभक्ति, तुलसीदास,रीतिकाव्य आदि और मिश्रबंधु द्वारा प्रस्तुत अलंकृत काल, परिवर्तन काल आदि नामकरणों में तत्कालीन भाषा और साहित्य का स्वरूप तथा प्रवृत्ति को ही मूलाधार माना गया है। परवर्ती अध्ययनकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण के आधार भाषा और साहित्य का स्वरूप ही रहा है।

1.3.4 प्रथम साहित्यकार :

हिंदी साहित्य के प्रथम साहित्यकार के संबंध में सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने सन् 1883 में प्रकाशित ‘शिवसिंह सरोज ’नामक अपने ग्रंथ में स्पष्टीकरण दिया है। उन्होंने सातवीं शती के पुष्प नामक कवि को प्रथम कवि माना है, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मता नुसार संभवत: यह अपभ्रंश का प्रसिद्ध जैन कविंतुष्ठै,दंजो 9 वी शती में हुआ है। प्रथम साहित्यकार के संदर्भ में जॉर्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं पर भी शिवसिंह सेंगर का प्रभाव स्पष्ट होता है।

पं. राहुल सांस्कृत्यायन ने 7 वीं शती के सरहपाद को हिंदी का प्रथम साहित्यकार माना है, तो डॉ.रामकुमार वर्मा ने भी इसे मान्यता दर्शायी है। किंतु सरहपाद की एक भी रचना प्राप्त नहीं हुई है।

डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास इस ग्रंथ में 12 वीं शती के शालिभद्र सूरी को प्रथम रचनाकार माना है, जिन्होंने “भरतेश्वरबाहुबलिरास” ग्रंथ की रचना की। माताप्रसाद गुप्त और दशरथ ओझा आदि विद्वानों ने इस मत के साथ अपनी सहमति जताई है।

1.4 शब्दार्थ -

लेखाजोखा - विवरण

परवर्ती - बाद के

अध्येता - अध्ययन करने वाला

पूर्ववर्ती - पूर्व के, पहले के।

1.5 सारांश -

हिंदी साहित्य की निर्मिति-प्रक्रिया का आरंभ कब हुआ और किसने किया इस संदर्भ में अध्ययनकर्ताओं ने जो कार्य किया हैं वहीं से हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन,

अनुसंधान और काल विभाजन तथा नामकरण के प्रयास सामने आते हैं। इस कार्य को शुरुवात गार्सा–द–तासी जैसे फेंच और जॉर्ज ग्रियर्सन जैसे जर्मनी भाषाओं के विदेशी विद्वानों ने की। यह अत्यंत महत्वपूर्ण एवं ध्यान आकर्षित करने व ली बात है। भारतीय विद्वानों में शिवसिंह

सेंगर, मिश्रबंधु और आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि प्रमुख विद्वानों का हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण के कार्य में अत्यंत महत्वपूर्ण और ौलिक योगदान हैं।

इन सभी विद्वान अध्येताओं ने हिंदी भाषा के साहित्य निर्मिति की खोज के प्रयासों के द्वारा अपभ्रंश भाषा साहित्य का भी अभ्यास किया है जो जॉर्ज ग्रियर्सन के द्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास के अविर्भाव काल को सन् 700 से मानने से सिद्ध हुआ है। अत: उन्होंने सातवीं–आठवीं शती के अपभ्रंश भाषा के साहित्य को भी हिंदी ` अंतर्गत मान लिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन और नामकरण में आधारों की स्तव्यस्तता और अस्पष्टता होते हुए भी यह स्पष्ट है कि उन्होंने हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन में, भाषा और साहित्यकारों के द्वारा निर्मित रचनाओं को ही अपने अध्ययन का आधार बनाया हैं, जो उनके द्वारा दिए गए नाम चारणकाल, ब्रज की कृष्णभक्ति, मलिकमोहम्मद का प्रेमाख्यान, तुलसीदास, रीतिकाव्य से सिद्ध होता है। मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तुत नाम अलंकृत काल, परिवर्तन काल आदि से भाषा और साहित्य को ही नामकरण का आधार स्वीकार किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो स्पष्ट रूप से साहित्यिक प्रवृत्तियों के और भाषा के गद्य अ ैर पद्य स्वरूप के आधार पर ही नामकरण और विभाजन प्रस्तुत किया है।

हिंदी साहित्य के कालविभाजन और नामकरण के प्रयासों में हिंदी भाषा के प्रथम साहित्यकार के संदर्भ में भी विभिन्न मत सामने आते हैं। इस प्रकार भाषा और साहित्य को आधार मानकर तथा प्रथम साहित्यकार पर विभिन्न विद्वानों के चिंतन और स्पष्टीकरण द्वारा हिंदी साहित्य का कालविभाजन और नामकरण हुआ है।

1.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न –

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण को विशद कीजिए।
* हिंदी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण के आधार स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत हिंदी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण।
* आ.रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन और नामकरण के आधार।

ग. एक–दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* हिंदी साहित्येतिहास के लेखन का सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रयास किसने किया?

✻ मिश्रबंधुओं के नाम और कृति का नाम लिखिए।

✻ मिश्रबंधुओं द्वारा किए गए हिंदी साहित्य के नामकरण को लिखिए।

ध. सही पर्याय लिखिए –

✻ हिंदी साहित्य के काल विभाजन – नामकरण का प्रथम प्रयास किसने किया?

अ) गार्सा-द-तासी ब) ग्रियर्सन क) शिवसिंह सेंगर ख) आ.रामचंद्र शुक्ल

✻ मिश्रबंधु विनोद ग्रंथ का विभाजन कितने हिस्सों में किया गया हैं?

अ) सात ब) पाँच क) आठ ख) दस

✻ शिवसिंह सरोज ग्रंथ के रचयिता कौन है ?

अ) शिवसिंह सेंगर ब) मिश्रबंधु क) ग्रियर्सन ख) पं. सांस्कृत्यायन

1.7 स्वाध्याय – क्षेत्रिय कार्य

✻ अपने क्षेत्र के प्राचीन मंदिरों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

✻ हिंदी साहित्य के काल विभाजन की तालिका तैयार कीजिए।

✻ मिश्रबंधुओं के संदर्भ में जानकारी दीजिए।

1.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

✻ हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त

✻ हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय

इकाई – 2
आदिकाल के विविध नाम

अनुक्रम

2.1 **उद्‌देश्य**

2.2 **प्रस्तावना**

2.3 **विषय–विवरण :**

- 2.3.1 **चारण काल**
- 2.3.2 **सिद्‌ध सामंत काल**
- 2.3.3 **वीरगाथा काल**

2.4 **शब्दार्थ**

2.5 **सारांश**

2.6 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

2.7 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**

2.8 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

2.1 उद्‌देश्य –

* छात्रों को हिंदी साहित्य के आरंभिक स्वरूप की जानकारी देना।
* आदिकाल के नामकरण में सहायक तत्कालीन परिस्थितियों की जानकारी प्रदान कराना।
* हिंदी साहित्य के इतिहास का ज्ञान प्रदान करना।

2.2 प्रस्तावना –

हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण के पीछे कई बातें सामने आती हैं – जिनमें नामकरण करने वाले अध्ययनकर्ता अथवा विद्‌वान का निजी दृष्टिकोण, उसकी प्रवृत्ति अथवा धारणाएँ, साहित्य निर्मिति का स्त्रोत जिस मानसिकता और परिस्थिति में वह साहित्य लिखा गया उस मानसिकता या परिस्थिति का स्वरूप, निर्मित साहित्य का स्वरूप और उसकी निर्मिति के आधार–सामग्री का लेखा–जोखा आदि।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल अथवा आरंभिक काल, मध्यकाल और आधुनिक काल इस तरह के कालवाचक नामकरण का उतना महत्व नहीं है जितना वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और गद्‌यकाल आदि के प्रवृत्तिवाचक नामकरण का है। क्योंकि इन

प्रवृत्तिवाचक नामों के साथ उस काल के साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति, तत्कालीन साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक पृष्ठभूमि समग्र इतिहास उभर कर आता है। इसलिए हिंदी साहित्य के नामकरण में प्रवृत्तिवाचक नामों का सर्वाधिक महत्व रहा है। इसमें हिंदी साहित्य के आदि अथवा आरंभिक काल के नामों का सर्वाधिक महत्व है। हिंदी साहित्य के नामकरण के इतिहास में मध्यकाल और आधुनिक काल के अन्य प्रवृत्तिवाचक नामों की अपेक्षा आदिकाल के प्रवृत्तिवाचक नामों की संख्या अधिक है। मध्यकाल को पूर्वमध्यकाल और उत्तरमध्यकाल दो कालवाचक विभाग किए गए हैं। पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल और उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल अथवा अलंकृत काल कहा गया है। आधुनिक काल के लिए शुक्ल जी द्वारा दिया गया गद्यकाल तथा परिवर्तन काल या नवजागरण आदि प्रवृत्तिवाचक नाम प्राप्त होते हैं। किंतु आदिकाल के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा कई प्रवृत्तिवाचक नाम सामने आते हैं, जैसे - जॉर्ज ग्रियर्सन और डॉ.रामकुमार

वर्मा के द्वारा दिया गया 'चारणकाल'. आचार्य रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा दिया गया 'वीरगाथा काल', पं. राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा प्रदत्त 'सिद्धसामंत' काल आदि। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा आरंभिक काल को दिया गया 'संधिकाल' तथा अन्य विद्वानों द्वारा प्रदत्त 'रासो काल'नाम आदि। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल का नामकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसमें न केवल हिंदी साहित्य का और हिंदुस्तान का इतिहास छिपा हुआ है, अपितु तत्कालीन राज्यव्यवस्था, समाजव्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है और नामकरण करने वालों के साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

2.3 विषय-विवरण

हिंदी साहित्येतिहास के अध्येताओं ने प्रारंभिक काल अर्थात् आदिकाल को विभिन्न नामों से संबोधित करके इसका नामकरण स्वतंत्ररूप से किया है। 'आदिकाल' के इस नामकरण में उन्होंने समय अथवा काल की अवस्था को अर्थात् आरंभिक या आदि, मध्य और उसके बाद आधुनिक अवस्थाओं को आधार माना हैं, उसके अनुसार हिंदी साहित्य का आदिकाल, मध्यकाल (पूर्वमध्य काल और उत्तर मध्यकाल) और आधुनिक काल का कालवाचक नामकरण हुआ है। इस तरह के नामकरण में संदिग्धता और अस्पष्टता निर्माण होने से अध्ययन कर्ताओं ने अन्य अनेक आधारों का स्वीकार किया हैं। इनमें तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ साहित्य का शैलीगत स्वरूप राजनीतिक स्वरूप आदि का समावेश किया जा सकता है। साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार मानते हुए आदिकाल के अन्य नामों में चारणकाल, वीरगाथाकाल तथा तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थिति के आधार पर सिद्ध-सामंत काल और साहित्यिक स्वरूप अथवा शैली के आधार पर आदिकाल का 'रासोकाल' आदि नाम समाविष्ट हुए हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण के मुख्यत: दो आधार ग्रहण किए गए हैं- साहित्य निर्मिति का समय अथवा काल और साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति। कालवाचक नामों की संदिग्धता और अस्पष्टता से बचने के लिए साहित्यिक प्रवृत्ति

तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितिओं का स्वीकार किया है। इन्हीं आधारों से हिंदी साहित्य के आदिकाल के अन्य नामों के प्रमुख चारण काल, सिद्धसामंत काल और साहित्यिक स्वरूप अथवा शैली के आधार पर आदिकाल का 'रासोकाल' आदि नाम समाविष्ट हुए हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण के मुख्यत: दो आधार ग्रहण किए गए हैं- साहित्य निर्मिति का समय अथवा काल और साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति। कालवाचक नामों की संदिग्धता और अस्पष्टता से बचने के लिए साहित्यिक प्रवृत्ति, तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितिओं का स्वीकार किया हैं। इन्हीं आधारों से हिंदी साहित्य के आदिकाल के अन्य नामों में प्रमुख हैं चारणकाल, सिध्दसामंतकाल और वीरगाथाकाल।

2.3.1 **चारणकाल :**

सर्वप्रथम जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'कर्नल टॉड' की ऐतिहासिक खोजों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य के आदिकाल को 'चारणकाल' का नाम दिया था। इस काल की समयावधि वे सन् ७०० से सन् १३०० तक मानते हैं। आदिकाल के नामकरण के लिए जॉर्ज ग्रियर्सन ने राजपूताने के चारणों या भाटों द्वारा रचित ऐतिहासिक गाथाओं को आधार माना हैं। राजस्थान में चारण अर्थात भाटों ने कुछ काव्यग्रंथ लिखे हैं। इस तरह के काव्य लिखने वाले चारणों को चारणकवि और उनके काव्य को 'चारण-काव्य' कहा गया है। जिस काल में चारण-काव्य लिखा गया मिलता है, उसी आदिकाल को 'चारणकाल' संबोधित किया गया है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी राजपूताने के चारणों के द्वारा तत्कालीन राजाओं की स्तुति में लिखि गई रचनाओं के आधार पर आदिकाल को 'चारणकाल' नाम से संबोधित किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल को (वि.सं. 750 से 1375) को दो खंडों में विभाजित कर इसके पूर्वार्ध को (वि.स. 750 से 1000) संधिकाल और उत्तरार्ध (वि.स. १००० से 1375) को 'चारणकाल' कहा है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के चारणकाल नामकरण के पीछे जॉर्ज ग्रियर्सन और डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकालीन राजस्थान के चारणकवियों द्वारा निर्मित रचनाओं को आधार माना है।

2.3.2 **सिद्ध-सामंत काल :**

हिंदी साहित्य के आदिकाल को पंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने सिद्ध-सामंत काल नाम दिया है, जिसका समयावधि वे सन् 760 से 1300 तक मानते हैं। तत्कालीन धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थिति को उन्होंने आधार माना है। उन्होंने सिद्ध शब्द को लक्षित कर कहा है कि इस काल में सिद्धों द्वारा रचित धार्मिक साहित्य की ही प्रधानता रही है। सामंत शब्द को लक्षित कर उन्होंने स्पष्ट कहा है कि तत्कालीन सामंतीय राज्यव्यवस्था में राजाओं या सामंतों की प्रशंसा और आश्रय में सिद्धों ने विभिन्न धार्मिक रचनाएँ लिखीं। इस प्रकार पंडित राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा प्रस्तुत हिंदी साहित्य के आदिकाल के सिद्ध-सामंतकाल नामकरण का आधार तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक परिस्थिति को माना जा सकता है।

2.3.3 **वीरगाथा काल :**

आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू श्यामसुंदर दास आदि विद्वानों ने हिंदी साहित्य के आदिकाल

को तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों में वीरता का वर्णन इस आधार पर वीरगाथा काल नाम दिया है। शुक्ल का मानना है कि हिंदी साहित्य का जन्म ऐसे समय हुअ जब भारत पर बाहर के मुसलमानी आक्रमण शुरू हुए और हिंदू राजा अपने अपने राज्यों की रक्षा में लगे हुए थें। अत: तत्कालीन साहित्य पर वीरता की छाप पड़ी। वीरों की गाथाएँ लिखी जाने लगी। तत्कालीन इस साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर आदिकाल को आ. शुक्ल ने वीरगाथाकाल नाम दिया है।

वि.सं.1050 से 1375 तक लिखीं गई बारह वीररस पूर्ण रचनाओं को शुक्ल जी ने नामकरण के लिए प्रस्तुत किया हैं।

* विजयपाल रासो,
* हमीर रासो,
* बीसलदेव रासो,
* खुमान रासो
* पृथ्वीराज रासो,
* परमाल रासो,
* कीर्तिलता,
* कीर्तिपताका,
* जयचंद प्रकाश,
* खुसरों की पहेलियाँ,
* जयमयंक जसचंद्रिका और
* विद्यापति पदावली।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के आदिकाल के वीरगाथा काल नामकरण का मुख्य आधार आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन वीरता की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर लिखीं गई रचनाओं को स्वीकार किया है।

2.4 शब्दार्थ – टिप्पणी :

- सामंत – बड़ा जमींदार,
- सिद्ध – प्रमाणित,
- चारण – भाट अथवा स्तुति में चरण गाने वाले,
- संधिकाल – दो कालों के बीच का।

2.5 सारांश :

हिंदी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन की अपेक्षा नामकरण अधिक महत्पूर्ण है, क्योंकि नामकरण के आधार से हिंदी साहित्य के स्वरूप को समझने में मदद मिलती है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के अन्य नाम-चारण काल, सिद्ध-सामंतकाल और वीरगाथाकाल आदि के कारण तत्कालीन साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी पता चलता है और यह भी सिद्ध होता है कि तत्कालीन धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ, साहित्यकारों और साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति 'वीरता का प्रभाव' अथवा वर्णन ही आदिकाल के 'वीरगाथा काल' नामकरण के आधार हैं।

2.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न –

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* आदिकाल के चारण काल, सिद्धसामंत काल और वीरगाथा काल नामों के विविध आधारों को स्पष्ट कीजिए।
* हिंदी साहित्य के आदिकाल के अन्य नामों का विश्लेषण कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* सिद्ध–सामंत काल।
* आदिकाल के नामकरण के आधार।

ग. एक–दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* जॉर्ज ग्रियर्सन ने किसकी ऐतिहासिक खोजों से प्रभावित होकर 'चारणकाल' नाम दिए हैं?
* चारणकाल किसे कहते हैं?
* पं. राहुल सांस्कृत्यायन ने हिंदी साहित्य के आदिकाल को क्या नाम दिया है?
* आदिकाल का 'वीरगाथा काल' यह नामकरण किसने किया है?

ध. सही पर्याय लिखिए –

* जॉर्ज ग्रियर्सन ने आदिकाल को क्या नाम दिया है?
  अ) आरंभिक काल   ब) रासोकाल   क) चारणकाल   ख) वीरगाथा काल
* हिंदी साहित्य के आदिकाल को सिद्ध सामंत काल नाम किसने दिया हैं?
  अ) पं. सांस्कृत्यायन   ब) आ. शुक्ल   क) श्यामसुंदर दास   ख) ग्रियर्सन
* वीरगाथा काल नामकरण किसने किया है?
  अ) श्यामसुंदर दास   ब) आ. शुक्ल क) पं. सांस्कृत्यायन   ख) रामकुमार वर्मा

2.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* अपने क्षेत्र की सामंती कालीन राजनीतिक परिस्थिति और धार्मिक परिस्थिति की जानकारी इकट्ठा कीजिए।
* अपने क्षेत्र की किसी संस्था, शहर अथवा व्यवस्था के नामकरण की जानकारी प्राप्त कीजिए।

2.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का आदिकाल – हजारी प्रसाद द्विवेदी
* सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती।

इकाई – 3

आदिकालीन परिस्थितियाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव

अनुक्रम

3.1 **उद्देश्य**

3.2 **प्रस्तावना**

3.3 **विषय–विवेचन :**

- 3.3.1 **आदिकालीन सामाजिक परिस्थिति,**
- 3.3.2 **आदिकालीन धार्मिक परिस्थिति**
- 3.3.3 **आदिकालीन राजनीतिक परिस्थिति**
- 3.3.4 **आदिकालीन साहित्यिक परिस्थिति**

3.4 **शब्दार्थ**

3.5 **सारांश**

3.6 **स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न**

3.7 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**

3.8 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

3.1 उद्देश्य –

✻ हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल नाम से संबोधित किए गए काल की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

✻ हिंदी के आदिकालीन साहित्य का महत्व समझेंगे।

3.2 प्रस्तावना –

हर काल में निर्मित साहित्य तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों से सामग्री ग्रहण कर स्वरूप धारण करता है। उसकी निर्मिति में तत्कालीन समग्र पृष्ठभूमि का ही प्रतिबिंब दिखाई देता है जिसमें सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक आदि पृष्ठभूमि समाविष्ट रहती हैं। इसी लिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। हिंदी का आदिकालीन साहित्य भी अपने समय की विभिन्न परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करता है, साहित्य पर उन परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है जो उसका स्वरूप–निर्धारण करता है।

आदिकालीन हिंदी साहित्य के विकास एवं नामकरण इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम माना गया है। जैसे तत्कालीन दरबारी और सामंतीय वातावरण के कारण चारण कवियों द्वारा निर्मित साहित्य से चारणकाल, धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव में लिखे गए साहित्य के कारण सिद्ध-सामंत काल अथवा रासोकाल राजनीतिक पृष्ठभूमि में युद्धों के वर्णनों के कारण वीरगाथाकाल आदि। इसलिए आदिकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव साहित्यपर स्पष्टत: परिलक्षित हुआ है। इन कवियों द्वारा अपने समय की सामाजिक स्थिति और तत्कालीन समाज में व्याप्त जातिगत जीवन को ऊँचा उठाने वाले महान जीवनमूल्यों की स्थापना हुई हैं। इसके लिए शालिभद्र सूरि के "बुद्धिरास" ग्रंथ का आधार ले सकते हैं। आदिकालीन जैन कवियों द्वारा रचित धार्मिक रासो काव्य ग्रंथों पर तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का प्रभाव है। उदा0 शालिभद्र सूरि के ही अन्य ग्रंथ "पंचपंडव चरिऊ रासु"। चंदबरदाई कृत "पृथ्वीराज रासो", अम्बदेव कृत "समरा रास" जैसे ग्रंथों में तत्कालीन राजनीति का प्रभाव दिखाई देता है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकालीन विभिन्न सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट है। इससे हिंदी के साहित्य का विविधता पूर्ण स्वरूप सामने आता है।

3.3 विषय-विवरण

3.3.1 आदिकालीन सामाजिक परिस्थिति :

हिंदी साहित्य के आदिकाल में भारतीय समाज छोटे-छोटे समूहों में बँट गया था। उसमें व्यापक दृष्टिकोण का अभाव था। संकीर्णता आ गई थी। हिंदू समाज में जन्म, स्थान, व्यवसाय, संप्रदाय आदि के आधार पर जातियाँ और उपजातियाँ बनने लगी थीं। वर्ण-व्यवस्था विकृत होकर आश्रम व्यवस्था का भी ह्रास हो रहा था।

बौद्ध-जैन आंदोलनों के कारण तत्कालीन समाज-व्यवस्था शिथिल पड़ गई थी। कर्म के स्थान पर कर्मकांड, दिखावा और आडंबर उभर कर आने से निकम्मापन और आलस समाज में फैल गया था।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में विवाह की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थी। जैसे स्वयंवर पद्धति, गांधर्व पद्धति, आसुर-विवाह, बालविवाह आदि। स्वयंवर की प्रथा सिर्फ राजकुलों तक सीमित थी और अन्य वर्गो में आसुर, गांधर्व पद्धति तो निम्नवर्ग में प्रचलित थी। आदिकाल में मुस्लिम आक्रमणों के कारण तत्कालीन समाज-जीवन असुरक्षित और भयग्रस्त था। परिणामस्वरूप माँ-बाप अपने बच्चों की शादियाँ कम उम्र में ही करने लगे थे। इससे समाज में बालविवाह प्रथा का प्रचलन हुआ। आक्रमणों से चिंताग्रस्त समाज में स्त्री की असुरक्षा की भावना के कारण परदा पद्धति और सति-प्रथा का भी प्रचलन हुआ।

साहित्य पर प्रभाव :

हिंदी साहित्य के आदिकालीन काव्यों में तत्कालीन समाज में व्याप्त वैचारिक विकृतियों को दूर करने की, सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह आदि आदर्शों के प्रसार की चेतना प्राप्त होती है। शालिभद्र सूरि के ग्रंथ "**बुद्धिरास**" में समाज में व्याप्त जातिगत जीवन को ऊँचा उठाने वाले महान जीवनमूल्यों की स्थापना हुई हैं। विजेता मुस्लिम शासकों की बर्बरता, क्रूरता, नारी की विवशता और समाज मन में उसके प्रति उत्पन्न कामुकता और रूपलिप्सा आदि विपदाओं से आदिकालीन समाज जर्जर हो गया था। इसलिए धर्मनिष्ठा का महात्म्य दिखाकर आपत्ति में फँसे तत्कालीन समाज में धैर्य की क्षमता और शीलरक्षा के लिए सर्वस्व समर्पण करने की भावना को बलवान बनाना आदि सामाजिक उद्देश्यों को लेकर "**चंदन बालारास**" नामक काव्य की निर्मिति हुई है।

1.3.2 आदिकालीन धार्मिक परिस्थिति :

हिंदी साहित्य का आदिकाल धार्मिक दृष्टि से असुरक्षा का उथल-पुथल का काल था, जिसमें एक तरफ इस्लाम हावी हो रहा था तो दूसरी तरफ जैन, बौद्ध, तांत्रिक मत, विभिन्न साधना-सिद्धांत, वैष्णव-शाक्त-शैव-नाथ आदि संप्रदायों के बीच मतभिन्नता और प्रतिद्वंद्विता थी। भारत में धार्मिक जर्जरता फैल गई थी। किंतु विदेशी मुसलमान शासकों की धर्मांधता की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में आत्मरक्षा की भावना जागृत हुई। विभिन्न धार्मिक संप्रदायों और मतावलंबियों ने समय के अनुसार अपनी धार्मिक नीति में सुधार और परिवर्तन किए। विभिन्न देशी संप्रदायों में सहिष्णुता की शुरूआत हुई। समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए सत्य अपरिग्रह और अहिंसा आदि आदर्शों का प्रचार और प्रसार होने लगा।

साहित्य पर प्रभाव :

हिंदी साहित्य के आदिकाल में रचित जैन कवियों की रचनाओं पर तत्कालीन धार्मिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। जैन कवियों द्वारा रचित पौराणिक रासो काव्यों में धार्मिक सौहाद्रता और सहिष्णुता की भावना व्यक्त हुई है। इन काव्यों द्वारा जैन और वैष्णव दोनों संप्रदायों को एकता के सूत्र में ग्रंथित करने के प्रयास किए गए हैं। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर जैन कवियों ने रामायण-महाभारत, हरिवंशपुराण तथा भागवत की कथाओं पर आधारित अनेक काव्यों की रचना की हैं। शालिभद्र सूरि का "**पंच पंडव चरिऊ रास**" आदिकालीन धार्मिक परिस्थितिको प्रतिबिंबित करने वाला ग्रंथ है।

1.3.3 आदिकालीन राजनीतिक परिस्थिति :

11 वीं शती से लेकर 14 वीं शती तक के हिंदी साहित्य का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत उथल-पुथल का है। इस कालखंड में दिल्ली के सिंहासन पर मुहम्मद ग़ज़नवी, शहाबुद्दीन ग़ौरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, अल्लाउद्दीन खिलजी आदि सुलतानों की सत्ता रही। मुहम्मद ग़ज़नवी के अनेक आक्रमणों के कारण यहाँ के देशी यहाँ के देशी राज्य अत्यंत कमजोर बनते गए। तो राजा आपस में लड़कर पहले ही क्षीण हो चुके थें। दिल्ली और अजमेर के चौहान

तथा कनौज, गढ़वाल के राजा जयचंद और पृथ्वीराज का आपस में बैर था। दोनों की दिल्लीश्वर बनने की महत्वाकांक्षा ने इन विदेशी आक्रमणकारियों को विशेषत: शहाबुद्दीन ग़ौरी को दिल्ली पर शासन प्रस्थापित करने का मौका प्रदान किया। शहाबुद्दीन के बाद दिल्ली के सिंहानस पर कुतुबुद्दीन और उसके बाद अल्लाउद्दीन खिलजी ने शासन किया। इसीबीच उत्तर-पश्चिम से मंगोल वंश के द्वारा भारत पर आक्रमण होने लगे। परिणामत: यहाॅ की शासन व्यवस्था छिन्न-छिन्न होती गई। भारत के मध्यदेश में ऐसी ही अस्थिरता थी। इस प्रकार भारत के देशी राजाओं के आपसी बैर और फूट तथा बाहर से विदेशियों के आक्रमणों के कारण, हिंदी साहित्य के आदिकाल की पृष्ठभूमि पर, अशांतिपूर्ण और अनिश्चित राजनीतिक वातावरण छाया हुआ दिखाई देता है।

साहित्य पर प्रभाव :

इस तरह के अशांत, अनिश्चित और विक्षुब्ध राजनीतिक वातावरण से आदिकाल का बहुत-सा साहित्य नष्ट हो गया और नए साहित्य के निर्माण की संभावनाएँ भी कम हुई। अत: इस काल में, मध्यदेश में प्रारंभिक हिंदी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती किंतु हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल की इस परिस्थिति में जो साहित्य प्राप्त हुआ है वह भी तत्कालीन धार्मिक राजनीति से प्रेरित है। उदाहरणार्थ - अम्बदेव कृत **समरा रास** नामक रचना में मंदिरों का जीर्णोद्धार करने वाले अल्लाउद्दीन खिलजी और उसके द्वारा नियुक्त शासक अलिफ़ खाँ की नीति की स्तुति की गई है। देशी राजाओं के आपसी बैर के कारण छिन्नविछिन्न राजनीतिक परिस्थिति के साथ-साथ, मुस्लीम शासकों की सहिष्णुता का चित्रण इस काल के साहित्य में मिलता है।

1.3.4 आदिकालीन साहित्यिक परिस्थिति :

हिंदी साहित्य के इतिहास का आदिकाल राजनीतिक दृष्टि से युद्धों और आक्रमणों का काल था, जिसमें वीरता और बहादुरी का अत्याधिक महत्व होता है। इस काल के साहित्य में यह सब प्रतिबिंबित हुआ है। इसी के आधार पर आदिकाल को **वीरगाथा काल** कहा जाता है। क्योंकि तत्कालीन साहित्य में वीरता का बखान और युद्धों का वर्णन मिलता हैं। इस काल में सिद्धों, नाथों और शाक्तों का साहित्य भी प्रचुर मात्रा में रचा गया था। किंतु संस्कृत को सर्वाधिक समर्थन प्राप्त होने लगा था। सामान्य लोग सिद्धों, नाथों की विचित्र साधना पद्धति से डरते थे। परिणाम स्वरूप इस साहित्य को न राजाश्रय मिला न लोकाश्रय। राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल के इस काल में जैन कवियों द्वारा लोकभाषा में लिखे गए ग्रंथ सुरक्षित रहे।

3.4 शब्दार्थ :

बर्बरता	-	असभ्यता, जंगलीपन	बखान	-	प्रशंसा, तारीफ़
अपरिग्रह	-	दान का अस्वीकार	मतावलंबी	-	मत के अनुसार चलने वाला

3.5 सारांश :

पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद अनेक साहित्यकारों को गुजरात राज्य में आश्रय मिला, क्योंकि गुजरात ने अपनेआप को अल्लाउद्दीन के आक्रमण से सुरक्षित रखा था और वह कला, संस्कृति व दर्शन का केंद्र बन गया था। गुजरात का झुकाव जैन धर्म की तरफ अधिक था, परिणामत: जैन साहित्य निर्मिति को अधिक प्रोत्साहन मिला। इसलिए इस काल में गुजराती, जैन कवियों की रचनाएँ, धार्मिक रासोकाव्य की रचनाएँ अधिक मिलती है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियों ने न केवल आदिकाल के साहित्य की निर्मिति में, अपितु आदिकाल के साहित्य के नामकरण में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। वीरगाथाकाल, चारणकाल, सिद्ध-सामंतकाल, संक्रमणकाल अथव रासोकाल इस तरह के नामकरण के पीछे तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों में जिस तरह का साहित्य निर्मित हुआ है, उसकाही प्रभाव है। साहित्य का प्रभाव नामकरण पर है। किंतु मूलत: साहित्य पर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव रहा है इसलिए हिंदी साहित्य के इतिहास निर्मिति और आदिकालीन साहित्य निर्मिति में इन विभिन्न परिस्थितियों के अध्ययन का महत्व है।

3.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* हिंदी साहित्य की आदिकालीन राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
* आदिकाल के हिंदी साहित्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* हिंदी साहित्य की आदिकालीन धार्मिक परिस्थिति।
* हिंदी साहित्य की आदिकालीन सामाजिक परिस्थिति।

ग. एक-दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* 11 वीं से 14 वीं शताब्दी तक दिल्ली पर किन-किन सुलतानों ने राज्य किया?
* हिंदी साहित्य के आदिकाल में विवाह की कौन-कौन-सी पद्धतियाँ प्रचलित हुई?
* हिंदी साहित्य के आदिकाल में समाज में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए किन आदर्शों का प्रचार एवं प्रसार होने लगा था?

ध. सही पर्याय लिखिए –

* बुद्धिरास ग्रंथ के रचयिता कौन है?

  अ) कुतुबुद्दीन ब) शहाबुद्दीन क) शालिभद्र सूरि ड) जयचंद

* आदिकाल में रामायण, महाभारत, भागवत की कथाओं पर किस संप्रदाय के कवियों ने ग्रंथ लिखे?

  अ) पं. सांस्कृत्यायन   ब) आ. शुक्ल   क) श्यामसुंदर दास   ड) ग्रियर्सन

3.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* किसी विवाह के समारोह का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
* अपने क्षेत्र की समाज में प्रचलित विभिन्न विवाह पद्धतियों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. गणपतीचंद्र गुप्त
* हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय
* हिंदी साहित्य का आदिकाल – हजारी प्रसाद द्विवेदी
* सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती।

इकाई – 4
रासो साहित्य परंपरा

अनुक्रम

4.1 **उद्‌देश्य**

4.2 **प्रस्तावना**

4.3 **विषय–विवेचन :**

  4.3.1 **रासो साहित्य – परंपरा,**

  4.3.2 **हिंदी – रासो काव्य परंपरा,**

  4.3.3 **रासो के प्रकार**

  4.3.4 **पृथ्वीराज रासो की कथ्यगत और शैलीगत विशेषताएँ**

4.4 **शब्दार्थ**

4.5 **सारांश**

4.6 **स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न**

4.7 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**

4.8 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

4.1 उद्‌देश्य –

* हिंदी साहित्य की विभिन्न परंपराओं को अवगत करेंगे।
* रासो साहित्य–परंपरा के माध्यम से विविध विशेषताओं से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना –

रासो काव्य–परंपरा पर जैन धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। जैन धर्म– जो भगवान महावीर की अहिंसा–धारणा पर आधारित है, इसलिए रासो काव्य–परंपरा में जैन धर्म के प्रचारक तथा प्रसारक जिनदत्त सूरि कृत **'उपदेश रसायन रास'** अथवा **'रिपुदारण रास'** तथा अन्य ग्रंथों का समावेश स्वाभाविक है। हिंदी साहित्य के आदिकाल को तत्कालीन युद्‌धजन्य परिस्थिति और बहादुरी के वर्णनादि के आधार पर **'वीरगाथा काल'** कहा गया है, जिसका प्रतिनिधि–ग्रंथ **'पृथ्वीराज रासो'** है। **'पृथ्वीराज रासो'** ग्रंथ को इतिहास अध्येताओं ने हिंदी

साहित्य के

आदिकाल की रासो साहित्य परंपरा का एक ग्रंथ माना है। जो जैन धर्म की अथवा भगवान महावीर की अहिंसा-सत्य-अपरिग्रह वाली नीति के अनुसार नहीं दिखाई देता है। इसलिए रासो साहित्य की व्यापकता, रासो शब्द के विभिन्न संदर्भ और परंपराओं के अध्ययन का महत्व है। विचार और शैली की दृष्टि से रासो साहित्य का स्वरूप और उसमें **'पृथ्वीराज रासो'** ग्रंथ का स्थान उसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का महत्व और भी बढ़ जाता है।

4.3 विषय-विवरण

रासो साहित्य परंपरा - रासो या रास शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। गार्सा-द-तासी ने इसका संबंध **'राजसूय'** से स्थापित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्लने **'बीसलदेव रासो'** में प्रयुक्त 'रासायण' शब्द से 'रास' या 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध की है। लेकिन आजकल ये मान्यताएँ अमान्य हो रहीं हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने संस्कृत के 'रासक' से ही रास का संबंध सिद्ध किया है। इन मतों के आधार पर 'राजसूय', 'रहस्य', 'रसायण' आदि अनेक शब्दों से 'रासो' की व्युत्पत्ति या विकास माना जाता है। लेकिन अंतत: 'रासक' या 'रास' नामक शब्द से ही 'रासो' की व्युत्पत्ति को स्वीकारना उचित समझा जाने लगा है।

'रासो' शब्द में एक अतिप्राचीन भारतीय नृत्य का भी संदर्भ है। जिसका संबंध 'कृष्णलीला' से माना जाता है। इस तरह 'रासो' शब्द के विविध पूर्ववर्ती रूप मूलत: नृत्य के अर्थ में प्रयुक्त हुए थे। क्योंकि 'रासक' मूलत: एक विशेष का नृत्य या छंद हुआ करता था। आगे चलकर उसमें गीत, अभिनय आदि जुड़ गए और उसका विकास हुआ। इस तरह 'रासो' शब्द के विभिन्न अर्थ और संदर्भ के आधार पर 'रासो काव्य परंपरा' की प्रमुख दो धाराएँ स्थापित हुई प्राप्त होती है :

1. गीत-नृत्य-रासो काव्य परंपरा
2. छंदवैविध्यपरक रासो काव्य परंपरा।

इस तरह की दो परंपराएँ संस्कृत, प्राकृत में नहीं मिलती। पहले-पहल अपभ्रंश में और तदनंतर हिंदी और गुजराती में मिलती हैं। अत: इसे जैन रासो परंपरा भी कहा जाता है।

4.3.1 हिंदी रासो काव्य-परंपरा :

हिंदी में रासो काव्य परंपरा का प्रवर्तन भी जैन साधु श्री शालिभद्र सूरि द्वारा रचित **'भरतेश्वर बाहुबली रास'** से होता है। मुनी जिनविजय के मतानुसार यही ग्रंथ हिंदी जैन-रास परंपरा का आदिकाव्य है। डॉ. दशरथ ओझा ने इस ग्रंथ को देशी भाषा अर्थात हिंदी के प्रथम रासक काव्य के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि इस ग्रंथ का रचनाकाल संदिग्ध है, तथापि सन् 1184 में इसकी रचना हुई ऐसा माना गया है।

12 वीं शती का कवि असगु द्वारा रचित **'चंदनबाला रास'** और **'जीवदयारास'** 13 वीं शती में लिखें गए। 'स्थूलिभद्ररास', 'आबूरास', 'श्वेतगिरीरास', 'नेमिनाथरास', 'कच्छुलिरास', 'गयसुकमालरास'आदि अनेक ग्रंथ इस परंपरा में आते हैं।

यद्यपि जैन कवियों द्वारा रास लिखने की यह परंपरा कई शताब्दियों तक आगे भी चलती रही, तथापि 13 वीं शती में ही अनेक जैनेतर कवियों ने भी रासो काव्य लिखे हैं और ऐतिहासिक पुरुषों को लेकर रासो काव्यों की रचनाएँ की है।

4.3.2 **रासो के प्रकार :**

रासो साहित्य को चार भागों में विभाजित किया गया हैं जिन्हें रासो के प्रकार कहा जाता हैं जो इस प्रकार हैं :

1. धार्मिक रासो
2. पौराणिक रसो
3. ऐतिहासिक रसो
4. प्रेममूलक रासो

1. **धार्मिक रासो :**

इसके अंतर्गत जो साहित्य प्राप्त होता है उस पर जैन धर्म के ग्रंथों का प्रभाव रहा है। इन ग्रंथों में किसी जैन तीर्थंकर या अन्य महापुरुष के चरित्र-गायन के माध्यम से मानव-महिमा को निरूपित किया गाया है। धार्मिक रासो का प्रारंभ जिनदत्त सूरि कृत **'उपदेश रसायन रास'** और कुछ विद्वान वज्रसेन सूरि कृत **'भरतेश्वर बाहुबली घोर रास'** इन धार्मिक ग्रंथों से मानते हैं। इसके अतिरिक्त शालिभद्र सूरि कृत **'बाहुबली रास'**, **'जीवदया रास'**, **'चंदनबाला रास'**, **'नेमिनाथ रास'**, **'आबूरास'**आदि धार्मिक ग्रंथों का भी धार्मिक रासो में समावेश माना जाता है।

2. **पौराणिक रासो :**

इसके अंतर्गत शालिभद्र सूरि कृत **पंचपंडव चरित रास** (सन् 1353) का सर्वाधिक महत्व है। अन्य पौराणिक काव्य-ग्रंथों में हरिवंशपुराण रास, कलिकाल रास, प्रद्युम्नकुमार रास, हरिश्चंद्र रास, माधवदास कृत रामगुण रासो, केशवकृत रामरासो आदि का पौराणिक रासो में समावेश होता है।

पौराणिक रासो परंपरा पर महाभारत, रामायण, भागवत तथा हरिवंश आदि पुराणों का प्रभाव परिलक्षित होता है। जैन कवियों ने वैष्णव धर्म से संबंधित पौराणिक कथानकों की लोकप्रियता से प्रेरित होकर राम और कृष्ण से संबंधित प्रख्यात पौराणिक आख्यानों के आधार पर पौराणिक रासो की सृष्टि की हैं।

3. **ऐतिहासिक रासो :**

समकालीन इतिहास के अतिरिक्त संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों के तथा पौराणिक शैली के प्रभाव से ऐतिहासिक रासों की निर्मिति हुई हैं। ऐतिहासिक रासो में ऐतिहासिकता कम और काल्पनिकता अधिक परिलक्षित होती है। ऐतिहासिक रासों के अंतर्गत चंदबरदाई कृत **'पृथ्वीराज रासो'** सहित बिल्हण कृत **'विक्रमांक देव चरित'**, जयानक कृत **'पृथ्वीराज विजय'** और कवि श्रीधर कृत **'भविष्यदत्त चारित'** आदि अन्य रासो काव्य ग्रंथों का समावेश होता हैं।

4. **प्रेममूलक रासो :**

प्रेममूलक रासो परंपरा के स्त्रोत वैदिक, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रेमाख्यानों में मिलते हैं। इस पर मेघदूत से चली आ रही संस्कृत की 'दूत-काव्य परंपरा' और अपभ्रंश की कथाकाव्य परंपरा का प्रभाव है। बारहवीं शती की रचना अब्दुल रहमान कृत संदेश रासक इस परंपरा की महत्वपूर्ण कृति है। उसी प्रकार नरपतिनाल्ह कृत **'बीसलदेव रासो'**, जल्हणकृत **'बुद्धिरास'**, विजयभद्र कृत **'कलावती रास'**, महीराज कृत **'नलदमयंति रास'** तथा नयनसुंदरकृत **'सुरसुंदरी रास'**, सकलचंद्रकृत **'मृगावती रास'** आदि ग्रंथों का समावेश हैं।

4.3.3 पृथ्वीराज रासो की कथ्यगत और शैलीगत विशेषताएँ :

ऐतिहासिक रासो के अंतर्गत चंदबरदाई कृत **'पृथ्वीराज रासो'** को अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतिनिधि काव्य ग्रंथ माना गया है। अनेक वर्षो से इसकी ऐतिहासिकता, प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के विवाद के बावजूद **'पृथ्वीराज रासो'** की साहित्यिक महत्ता निर्विवाद सिद्ध है, जिसका कारण उसकी कथ्यगत और शैलीगत विशेषताएँ।

कथ्यगत विशेषताएँ :

चंदबरदाई कवि द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** यह दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान की ऐतिहासिक जीवनगाथा है जिसमें जयचंद का 'राजसूय' और 'संयोगिता का पृथ्वीराज संबंधी प्रेमानुष्ठान', 'पृथ्वीराज का कनौजागमन और प्राकट्य', 'संयोगिता-परिणय', 'पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध', 'दिल्ली आकर पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास-पूर्वार्द्ध' तथा 'उत्तरार्द्ध में उस केलि-विलास से चंद द्वारा पृथ्वीराज का उद्बोधन', 'शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज का युद्ध तथा दोनों का अंत' से संबंधित ऐतिहासिक कथ्य है।

'पृथ्वीराज रासो' की कथ्यगत सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें तत्कालीन राष्ट्रीय जीवन पूर्णत: प्रतिबिंबित हुआ है। तत्कालीन राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने वाला यह 'ऐतिहासिक रासो' है। कवि ने इस कथ्य को काव्य द्वारा प्रस्तुत कर, तत्कालीन पराजित हिंदू जाति को चेतना प्रदान कर उसमें शौर्य भर देने की कोशिश की है।

इसके कथ्य में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय, अतिरंजकता, चमत्कारिकता, उपदेशात्मकता और अलौकिकता का भी समावेश किया गया है। कथावस्तु में प्रेममूलकता के साथ नारी की भव्यता के दर्शन, तीर्थयात्रा तथा प्राकृतिक सुषमा के प्रति अनुराग का भी समावेश किया है।

शैलीगत विशेषताएँ :

'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का एक सफल महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य के अनेक लक्षण मिलते हैं। इसे हिंदी का प्रथम महाकाव्य कहा गया है, इसमें उनहत्तर सर्ग है तथा उस समय प्रचलित सभी छंदों का प्रयोग हुआ हैं।

प्रबंधात्मकता, गेयता और नाटकीयता, वर्णनात्मकता इन अन्य शैलीगत विशेषताओं के साथ **'पृथ्वीराज रासो'** की भाषागत विशेषता यह है कि उस पर अपभ्रंश भाषा का प्रभाव है तथा उसमें लोकभाषा और साहित्यिक भाषा का सुंदर समन्वय हुआ है।

4.4 शब्दार्थ :

छंदवैविध्यपरक - छंदों की विविधता के अनुसार;
निरूपित करना - कथन करना;
परिलक्षित होना - दिखाई देना;
बावजूद - अस्तित्व के साथ होते हुए।

4.5 सारांश :

हिंदी साहित्य के आदिकालीन साहित्य को रासो साहित्य अथवा रासो काव्य भी कहा जाता है। साहित्य का यह प्रवृत्तिवाचकम नाम है जिसके आधार पर आदिकाल का रासो काल भी नामकरण हुआ है। रासो शब्द के रास, रासो, रासक आदि विविध रूपों के आधार पर इसका नृत्य, गीत, संगीत और अभिनय के साथ आख्यानात्मक स्वरूप सामने आता है, रासो साहित्य परंपरा, विशेषत: हिंदी रासो परंपरा की जानकारी प्राप्त होती है।

रासो के धार्मिक, पौराणिक प्रेममूलक और ऐतिहासिक प्रकारों के अध्ययन से साहित्य में आदिकालीन ऐतिहासिक रासो साहित्य के प्रतिनिधिक ग्रंथ एवं प्रथम महाकाव्य **'पृथ्वीराज रासो'** का परिचय प्राप्त होता है। **'पृथ्वीराज रासो'** अपने प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के विवाद के बावजूद अपनी कथ्यगत और शैलीगत महत्वपूर्ण विशेषताओं के कारण रासो साहित्य परंपरा का सर्वाधिक चर्चित महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो अपने समय के राष्ट्रीय इतिहास को प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ साहित्यिक लक्षणों से भी संपन्न काव्य-ग्रंथ है।

4.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न -

* हिंदी साहित्य की आदिकालीन रासो-परंपरा को विशद कीजिए।
* कथ्यगत और शैलीगत विशेषताओं के आधार पर **'पृथ्वीराज रासो'** का महत्व स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ -

* रासो के विभिन्न अर्थ।
* ऐतिहासिक रासो।

ग. एक–दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* रासो शब्द के विविध अर्थ लिखिए।
* **'पृथ्वीराज रासो'** के पात्रों के नाम लिखिए।
* **'पृथ्वीराज रासो'** की कथ्यगत दो विशेषताएँ लिखिए।

ध. सही पर्याय लिखिए –

* **'संदेश रासक'** किसकी रचना है?

  अ) उसमान ब) अब्दुल रहमान क) कुतुबन ख) जायसी
* **'पृथ्वीराज रासो'** की रचना किसने की?

  अ) दशरथ ओझा ब) कल्हण क) चंदबरदाई ख) जयदेव

4.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* अपने क्षेत्र के किसी कवि से साक्षात्कार कीजिए।
* **'पृथ्वीराज रासो'** से पृथ्वीराज चौहान की चरित्रगत विशेषताएँ लिखिए।
* अपने क्षेत्र की साहित्यिक परंपराओं की लेखकों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

4.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र ;
* हिंदी साहित्य का इतिहास – आ.रामचंद्र शुक्ल।

इकाई – 5

अपभ्रंश साहित्य

अनुक्रम

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 विषय–विवेचन :

 5.3.1 अपभ्रंश साहित्य,

 5.3.2 अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ,

 5.3.3 अपभ्रंश साहित्य का हिंदी साहित्य पर प्रभाव

5.4 शब्दार्थ

5.5 सारांश

5.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

5.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

5.1 उद्देश्य –

* हिंदी साहित्य के मूल स्त्रोतों पर विचार कर अपभ्रंश भाषा और अपभ्रंश साहित्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

* हिंदी भाषा एवं साहित्य की विकास–प्रक्रिया में अपभ्रंश भाषा और साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 प्रस्तावना –

हिंदी के आदिकालीन साहित्य पर प्रकाश डालते हुए जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु और शिवसिंह सेंगर आदि अध्ययनकर्ताओं ने 7 वीं, 8 वीं शती को हिंदी साहित्य के आदिकाल की शुरूवात मानी है। हिंदी के प्रथम साहित्यकारविषयक विभिन्न मतों से 7 वीं शती से ही हिंदी साहित्य का आदिकाल सिद्ध हुआ है। भाषा की दृष्टि से यह अपभ्रंश का काल था जिसे डॉ.रामकुमार वर्मा ने **संधिकाल** नाम दिया है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने तो 10 वीं शती को हिंदी के आदिकाल की शुरूवात मान कर, अपभ्रंश भाषा को पुरानी हिंदी के रूप में ग्रहण किया है। शिवसिंह सेंगर ने 7 वीं शती के जिस पुष्य नामक कवि को हिंदी का प्रथम साहित्यकार माना

है, उसे आ.हजारी प्रसाद दृविवेदी अपभ्रंश का जैन कवि मानते है। इससे सिद्ध होता है कि हिंदी साहित्य का जो आदिकाल कहलाता है, उसमें अपभ्रंश भाषा और अपभ्रंश साहित्य अस्तित्व में थे अथवा आदिकालीन साहित्य जो हिंदी का साहित्य कहलाता है, उसपर अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव था। इसलिए अपभ्रंश साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ आदिकालीन साहित्य में पाई जाती हैं। धर्मसिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार जिसके अंतर्गत रासो का प्रेममूलक अथवा उपदेशमूलक काव्य समाविष्ट किया जा सकता है। शृंगार की प्रवृत्तियाँ, प्रबंधात्मकता, चरितकाव्यात्मकता, अलंकारों की भरमारम, छन्दोबद्धता, आदि शैलीगत प्रवृत्तियों सहित रहस्यात्मकता, प्राकृतिक स्थानों का वर्णन आदि विषयगत प्रवृत्तियाँ हैं। अत: अपभ्रंश साहित्य का प्रवृत्तिगत अध्ययन यह हिंदी साहित्य के अध्ययन का ही हिस्सा मान लिया गया है, क्योंकि अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव परवर्ती हिंदी साहित्य पर परिलक्षित होता है।

5.3 विषय-विवरण

5.3.1 अपभ्रंश साहित्य :

अपभ्रंश भाषा संस्कृत के बाद की प्राकृत और हिंदी के बीच की कड़ी है, तथा उसका अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिंदी से अधिक निकट का संबंध है। अपभ्रंश भाषा का विकास चौथी-पाँचवीं शताब्दी से माना गया है तथा छठी-सातवीं शताब्दी के काव्यशास्त्री भामह और दंडी आदि ने भी अपने काव्य ग्रंथों में अपभ्रंश में काव्य रचना होने का उल्लेख किया हुआ मिलता है। आगे चलकर आठवीं, नौवी और दसवीं शताब्दी में तो अपभ्रंश भाषा, साहित्यिक दृष्टि से उत्कर्ष पर पहुँची थी तथा राजदरबारों में भी अपभ्रंश भाषा और अपभ्रंश साहित्य का सम्मान होने लगा था।

5.3.2 अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

*** बाह्याचार और कर्मकांड आदि का बहिष्कार :**

सिद्ध, नाथ, जैन आदि संप्रदायों की निर्मिति ही वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया में हुई है। ईसापूर्व की पाँचवीं शती तक आते-आते वैदिक धमर की धारा में अनेक विकृतियों ने प्रवेश कर लिया था। बाह्याचार, कर्मकांड आदि से ग्रस्त वैदिक धर्म की कर्मठता से मुक्ति पाने के लिए, जहाँ सिद्धों ने सहजमार्गी साधना का स्वीकार किया, वहीं नाथों ने योगसाधना द्वारा सुधार के प्रयास किये। जैन साहित्य में तो सत्य-अहिंसा-असंग्रह आदि द्वारा मनुष्य को सरल राह दिखाने का प्रयास हुआ है।

*** धर्मसिद्धांतों का प्रचार :**

अपभ्रंश भाषा के सिद्ध, नाथ, जैन आदि साहित्यकारों ने साहित्य निर्मिति द्वारा अपने धर्मसिद्धांतों का प्रचार एवं प्रसार कार्य किया हैं। साहित्यसृजन इनका मूल लद्यय न होकर इसके द्वारा धर्मसिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करना प्रधान उद्देश्य था। परिणामत: अपभ्रंश भाषा में सहजयानियों की तरह नाथ पंथियों का साहित्य भी अलौकिक तथा अनुभूतियों विश्वासों एवं

सांप्रदायिक पद्धतियों का शुष्क वर्णन मात्र रह गया, जिसका विद्वानों ने काव्यात्मक दृष्टि से कोई महत्व नहीं माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तो पूरे अपभ्रंश साहित्य को काव्यकोटि से बहिष्कृत कर दिया है।

*** प्रबंधात्मकता :**

अपभ्रंश साहित्य में नाथों-सिद्धों की अपेक्षा जैन साहित्यिकों ने प्रबंधात्मक चरित्काव्यों की निर्मिति की है। उदाहरणार्थ - स्वयंभू का पऊमचरित अथवा पद्म चरित, पुष्पदंत का नाथकुमार चरिऊ, धादिल का पद्मश्री चरित आदि प्रबंधकाव्य उल्लोखनीय हैं।

*** हास्य-विलास एवं शृंगार की प्रवृत्तियाँ :**

वस्तुत: अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत आने वाले जैन काव्यों का आंतरिक वातावरण धार्मिक होकर भी रोमांटिक है, जिसमें नारी का सौंदर्य, पुरुषों का शौर्य और प्राकृतिक वैभव के साथ-साथ सौंदर्याकर्षण, प्रथम दृष्टिजन्य प्रेम, मिलनाकांक्षा, विरहवेदना आदि का अंकन एवं निरूपण अत्यंत सरस, भावात्मक शैली में किया हुआ मिलता है। जैन धर्म की संयमप्रधान दृष्टि एवं विरक्तिप्रधान मान्यताओं के बावजूद शृंगारिकता के वर्णन के कारण अपभ्रंश साहित्य में हास्य-विलास समाविष्ट हो गया है।

*** अलंकारों की भरमार :**

अपभ्रंश साहित्य में कहीं धर्म गौण और काव्यत्व प्रधान बन गया है। ऐसे समय में इन कवियों के काव्य में पद-पद पर अलंकारों की झड़ी-सी लगा देती है। उदाहरणार्थ- उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा आदि अलंकारों की भरमार है। अपभ्रंश के कवियों ने अलंकारों के द्वारा अपनी धार्मिक कल्पनाओं को नए-नए रूपों में और रंगों में प्रस्तुत किया हैं। इस प्रकार अलंकारों की भरमार के कारण अपभ्रंश काव्य उच्च कोटि का काव्य बन गया है।

*** छंदोबद्धता :**

अपभ्रंश साहित्य में वैराग्य, नीति एवं धार्मिक उपदेशों का प्रतिपादन मुख्यत: दोहा शैली में किया गया है। इस तरह मुक्तपद्य दोहा अपभ्रंश का अपना छंद है। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य में अरिल्ल, पद्धरिया, रासावलय, पंजटिका आदि अन्य छंदों का भी प्रयोग हुआ हैं। मुक्त वातावरण की सृष्टि करने एवं तीव्र भावावेगों की अभिव्यक्ति करने में अपभ्रंश बहुत ही सशक्त सिद्ध हुई है।

*** रहस्यात्मकता :**

अपभ्रंश साहित्य में अत्यंत सरल शैली में रहस्य भावना व्यक्त हुई है। योगीन्दु का **परमात्मप्रकाश** और **योगसार**, मुक्तिरामसिंह के **पाहुडदोहा**, सुप्राचार्य **वैराग्यसार**, महानंदी के **हिंदोला** आदि ग्रंथों में रहस्य-भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। इसमें बाह्याचार, कर्मकाण्ड, तीर्थ, व्रत और मूर्तिपूजा का बाहिष्कार करते हुए देह देवालय में ही ईश्वर की अस्तित्व स्थिति बताई गई है।

इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य में मानव-जीवन का पूरा चित्र मिलता है, उसमें अपभ्रंश

भाषा का निखरा रूप, छंदों का कलात्मक प्रयोग, अलंकार-सौंदर्य और प्रेम-वैराग्य-धर्म आदि मानव-जीवन के गंभीर व्यापारों का विस्तृत चित्रण अपभ्रंश के पुराण, चरितकाव्य और कथाकाव्य आदि में मिलता है।

5.3.3 **अपभ्रंश साहित्य का हिंदी साहित्य पर प्रभाव :**

अपभ्रंश भाषा के सिद्ध, नाथ और जैन मुनियों के मुक्तक-काव्य का आगे चलकर हिंदी के संतकाव्य पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। सिद्ध साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ परवर्ती संतसाहित्य में भी विकसित हुई हैं। उदाहरणार्थ- परंपरागत व्यवस्था एवं अन्य संप्रदायों की बाह्य पद्धतियों का खंडन, स्वानुभूतियों की व्यंजना, मुक्तपदशैली, रूपक, उलटबाँसियाँ एवं प्रतीकों का प्रयोग तथा लोकभाषा का प्रयोग आदि।

परवर्ती संत कवि सिद्धों की तरह अशिक्षित, निम्नवर्ग से संबंधित एवं पारिवारिक और साहित्यिक जीवन की अवहेलना करने वाले थे। इतना अवश्य है कि सिद्धों ने अपनी साधना-पद्धति में स्थूल ह्रश्रृंगारिकता को स्थान दिया, जबकि संत कवियों नर उसको सूद्‌यम प्रणयानुभूति के रूप में परिष्कृत कर लिया। जैन कवियों के उपदेशपरक मुक्तक साहित्य की अनेक विशेषताओं का प्रभाव भी हिंदी के संत साहित्य पर पाया जाता है। वस्तुत: साहित्यिक विषयों - रस, शैली एवं विभिन्न प्रवृत्तियों की दृष्टि से संत काव्य का सिद्धों-जैनों के साहित्य से अर्थात अपभ्रंश साहित्य से गहरा संबंध है।

अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत आने वाले जैन कवियों की मुक्तक शैली का विकास भी आगे चलकर हिंदी के कवियों की साखियों के रूप में दृग्गोचर होता है। संतों की विषयवस्तु एवं निरूपण शैली में तो इनसे गहरा साम्य है, कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली भी एक है। जैसे- हिंदी के कबीर ने एक मुक्तक की तुलना अपभ्रंश के कवि मुनिराम सिंह के एक दोहे से की जा सकती है।

5.4 **शब्दार्थ :**

परवर्ती	-	बाद का;
अपभ्रंश	-	शब्द का विकृत रूप, प्राकृत से उद्‌भूत भाषा;
व्यंजना	-	भाव प्रकट करने की शब्द शक्ति;
दृग्गोचर	-	दिखाई देना, आँखों के (दृष्टि के) सामने।

5.5 **सारांश :**

परवर्ती हिंदी साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य के अध्ययन कर्ताओं को इसी कारण परवर्ती कबीर आदि साहित्यकारों का अध्ययन करना आसान हो जाता है। क्योंकि अपभ्रंश भाषा से हिंदी भाषा का विकास माना गया है। अपभ्रंश साहित्य का हिंदी साहित्य, संत साहित्य पर सीधा प्रभाव है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश भाषा को पुरानी हिंदी के रूप में स्वीकार कर यह बात साबित कर दी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश भाषा को पुरानी हिंदी के रूप में स्वीकार कर यह बात साबित कर दी है।

अपभ्रंश साहित्य की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ आगे के हिंदी साहित्य अर्थात संत साहित्य में भी पाई जाती है। इसके अंतर्गत आदिकालीन वीरगाथा अथवा रासो साहित्य में पाई जाने वाली उपदेशात्मकता, छंदोबद्धता, प्रबंधात्मकता, अलंकारों की भरमार अथवा बाद के भक्तिकालीन साहित्य में पाई जानेवाली रहस्यात्मकता, धर्मसिद्धांतों का प्रचार, बाह्याचार-कर्मकांड आदि का बहिष्कार अथवा विरोध आदि मिलते हैं। लोकभाषा का प्रयोग और मुक्तक शैली आदि का प्रभाव भी परवर्ती हिंदी साहित्य पर देखने को मिलता है जो अपभ्रंश साहित्य की प्रवृत्तियों का ही प्रभाव है। इस तरह हिंदी साहित्य के अध्ययन में पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन का महत्व माना जा सकता है।

5.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को विशद कीजिए।
* अपभ्रंश साहित्य के परवर्ती हिंदी साहित्य पर प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* अपभ्रंश साहित्य ।
* अपभ्रंश का हिंदी साहित्य पर प्रभाव।

ग. एक-दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* अपभ्रंश साहित्य की दो विशेषताएँ लिखिए।
* वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया में कौन-से संप्रदायों का निर्माण हुआ?
* अपभ्रंश के कवियों के नाम लिखिए।

5.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* अपने क्षेत्र की भाषा के प्राचीन स्वरूप की जानकारी प्राप्त कीजिए।
* अपने क्षेत्र की भाषा के आरंभिक स्वरूप के साहित्य का संकलन कीजिए।
* अपभ्रंश की किसी रचना की समीक्षा कीजिए।

5.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. लद्र्यमीसागर वार्ष्णेय।
* अपभ्रंश साहित्य – हरिवंश कोछड।

इकाई – 6

सिद्ध साहित्य

अनुक्रम

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 विषय – विवरण
6.3.1 सिद्ध साहित्य का परिचय,
6.3.2 सिद्ध साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ,
6.4 शब्दार्थ
6.5 सारांश
6.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न
6.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
6.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

6.1 उद्देश्य –

* छात्रों को हिंदी भाषा एवं हिंदी साहित्य की पूर्वपीठिका ज्ञान होगा।
* सिद्ध संप्रदाय और सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे।
* सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।

6.2 प्रस्तावना –

अपभ्रंश एक भाषा है और सिद्ध एक संप्रदाय–विशेष का नाम है। इन दोनों ने आदिकालीन तथा भक्तिकालीन हिंदी साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। अत: हिंदी साहित्य के अध्ययन में अपभ्रंश भाषा और सिद्ध, नाथ संप्रदायों का अत्याधिक महत्व है।

वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया–स्वरूप जैन और बौद्ध संप्रदायों की निर्मिति हुई है, उसी तरह आगे चलकर बौद्ध–धर्म की स्थापना के पाँच सौ वर्षों बाद, ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्धधर्म की दो शाखाएँ – हीनयान और महायान प्रचलित हुई। गौतम बुद्ध के निर्वाणोपरांत महायान की सरल साधना–पद्धति हठयोगियों की मंत्रसाधना–पद्धति अर्थात मंत्रयान बनी जिसकी दूसरी एक पद्धति वज्रयान के रूप में सामने आई। इसमें तंत्र–मंत्र द्वारा सिद्धि–प्राप्ति की युक्ति प्रचारित हुई जिसे सिद्धसंप्रदाय के रूप में पहचाना जाने लगा। इस संप्रदाय के योगियों द्वारा अर्थात सिद्धों द्वारा संप्रदाय के प्रचार–प्रसार के लिए निर्मित किया गया साहित्य सिद्ध–साहित्य कहलाया।

सिद्ध–साहित्य की हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका है। हिंदी के संत साहित्य का मूल स्रोत, मूल प्रेरणा और प्रभाव सिद्ध–साहित्य में परिलक्षित होते हैं। इसलिए धार्मिक पृष्ठभूमि के सहित सिद्ध–साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन हिंदी साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है।

6.3 विषय–विवरण

6.3.1 सिद्ध–साहित्य का परिचय :

हिंदी साहित्य के इतिहास में सिद्ध–साहित्य के अन्वेषण का श्रेय बौद्ध धर्म के अध्येता और महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन को जाता है। जिन्होंने सिद्धों की अनेक रचनाएँ संगृहित की हैं। राहुल सांस्कृत्यायन सिद्धों की संख्या 84 बतातें है। जिनमें सबसे पुराने है "सरहपा"। सरहपा सहित अन्य अधिकांश सिद्ध जनता पर अपने मत का संस्कार करने की इच्छा से संस्कृत के अतिरिक्त जनवाणी में भी रचनाएँ मिलती हैं। इस प्रकार की रचनाओं में सिद्धों ने अपने संप्रदसाय एवं पद्धति का प्रचार किया है।

सिद्ध साहित्य बौद्ध धर्म की एक शाखा का प्रचार–प्रसार करने वाले सिद्धों द्वारा रचा गया साहित्य है। प्रमुख सिद्ध साहित्यकारों में सरहपा सहित सबरपा, भूसुकपा, लुईपा, विरूपा, दरिपा, कुक्कुरिपा, कण्हपा आदि का समावेश हैं। यह सब 8 वीं से 9 वीं शती में हुए सिद्ध साहित्यकार हैं।

6.3.2 सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियाँ :

* अंत:साधना पर बल,
* वाम मार्ग का प्रचार,
* रहस्य और गुह्य की प्रवृत्ति,
* पहेलियाँ,
* संध्या भाषा,
* सद्गुरू का महत्व
* अपभ्रंश मिश्रित काव्य–भाषा आदि सिद्ध साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ मानी गई है।

*** अंत:साधना पर बल :**

सिद्ध साधना–मार्ग में प्रारंभ में सहजयान हठयोग साधना पर विश्वास रखा जाता था, उसी समय सरहपा, विरूपा आदि सिद्धों के साहित्य में अंत:साधना का प्रबल आग्रह किया गया और हठयोगसाधक पंडितों को भी फटकारा गया है।

*** वाम मार्ग का प्रचार :**

बुद्धनिर्वाण के उपरांत बौद्ध धर्म की दो शाखाओं हीनयान और महायान इनमें से महायान की सरल साधना पद्धति मंत्रयान के रूप में रूपांतरित हुई। कालांतर में मंत्रयान के मंत्र एवं हठयोगी साधना पद्धति भी जनता को आकृष्ट न कर सकी। अत: दूसरा एक मार्ग वाममार्ग वज्रयान के रूप में सामने आया। इस तरह वाममार्ग का स्वीकार कर सहजयान वज्रयान में रूपांतरित हुआ। तब से सिद्धों ने अपने उपदेशों में जनता को वाममार्ग का स्वीकार करने का आग्रह शुरू किया। वाम मार्ग में प्रचार–साधना प्रचलित थी जिसमें मद्य और मैथुन का प्रमुख समावेश था। भारतीय तंत्रशास्त्र में भी पंचकारों की चर्चा हुई हैं। इन्हें योगियों की मुक्ति का मार्ग माना गया है। ये पंचकार हैं,

''मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा मैथुनैव च।
मकार पंचकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ।।''

इन पाँच मकारों में भी मद्य और मैथुन को अधिक महत्व दिया गया। मद्य प्राशन करना वारूणी साध कहलाता था, इसी ओर संकेत करते हुए विरूपा ने अपने काव्य में कहा है,

''सहजे थिर करि वारूणी साध...''

वारूणी के साथ–साथ विरूपा ने मैथुन को भी प्रचारित किया है, जिसमें समाज के निम्नस्तर की स्त्रियों को साधन

बनाया जाता था। सिद्ध कण्हपा ने अपने एक गीत में समाज की निम्नस्तर की स्त्रियाँ डोमिनी और रजकी आदि का अबाध गति से सेवन किए जाने के संदर्भ में डोमिनी का आव्हान करते हुए लिखा है,

''नगर बाहिरे डोंबी तोहरि कुडिया छाई । छोई जाई सो बाह नाडिया।
आओ डोंबी! तोर संग करिब म सांग।।''

⁎ रहस्य और गुह्य की प्रवृत्ति :

सिद्ध साहित्यकारों ने जनता में रहस्य और गुह्य का प्रचार-प्रसार किया, जनता का ध्यान विद्वानों-पंडितों से हटाकर उन्होंने अंतर्मुख-साधना वाले योगियों पर जमाने का प्रयास किया। सिद्धों ने घट में ही बुद्ध है का प्रचार किया। परिणामत: सिद्धों के साहित्य में रहस्य और गुह्यता की प्रवृत्ति बढ़ी।

⁎ पहेलियाँ :

सिद्ध लोग प्राय: अपनी बानी को पहेली के रूप में प्रस्तुत करते थे। रहस्य और गुह्यता में यह पहेली की प्रवृत्ति सामान्यत: होती ही है। अटपटी बानी या उलटबाँसी के रूप में इन्हें पहचाना जाता है। आगे चल कर कबीर के साहित्य में इसका स्पष्ट समावेश देखने को मिलता है।

⁎ संध्या-भाषा :

अपनी बानी को पहेली में प्रकट करने की प्रवृत्ति के कारण इन सिद्ध साधकों की काव्य-भाषा संध्या-भाषा बन गई है। यह गूढ़ भाषा है जिसे **''संध्या-भाषा''** का नाम दिया गया है। सरहपा से लेकर सभी सिद्ध साहित्यकारों में यह भाषा-प्रवृत्ति पाई जाती है।

⁎ सत्गुरू का महत्व-प्रतिपादन :

सिद्ध-साधकों ने तंत्र-मंत्र का सहारा लेकर अपनी साधना को तथा बानी को भी जटिल बना दिया है। अत: उनकी जटिलता को समझने के लिए इन सिद्ध-साहित्यकारों ने अपने काव्य में गुरू की आवश्यकता महसूस की। सत्गुरू के उपदेशों के बिना आत्मा जागृत नहीं होती। इस साहित्य में कहा गया है कि जिस तरह मादा कछुआ केवल ध्यान-मात्र से अपने अंडों का पोषण करती है, उसी तरह सतगुरू भी शिष्य को हृदय से दीक्षा दिया करते हैं। इन सिद्ध-साहित्यकारों के मतानुसार - पीड़ा, भय, लोभ, मोह और भ्रम तभी तक होते हैं जब तक भक्तवत्सल गुरू की शरण न ली जाय। इस प्रकार सिद्ध संप्रदाय में गुरू का महत्व माना जाता है। सिद्ध-साहित्य में उसका प्रचार और प्रसार किया गया मिलता है।

⁎ अपभ्रंश मिश्रित काव्य-भाषा :

सरहपा सहित अधिकांश सिद्ध साहित्यकार जनता पर अपने मतों का संस्कार डालने की इच्छा से संस्कृत के अतिरिक्त जनवाणी में भी रचनाएँ करते थे। इस कालखंड में प्रचलित अपभ्रंश मिश्रित देश-भाषा काव्य-भाषा में भी सिद्धों की रचनाएँ मिलती है।

6.4 शब्दार्थ :

संध्या भाषा	-	वज्रयानी बौद्धों की गूढ़ भाषा;
अत:साधना	-	आंतरिक साधना;
हठयोग	-	साधना की शैवधारा, जिसमें कुंडलिनी को जागृत किया जाता है;
वाम मार्ग	-	बुरा मार्ग, वेद विरुद्ध तंत्र-मंत्र का मार्ग।

6.5 सारांश :

सिद्ध साहित्य के केवल एक संप्रदाय-विशेष के प्रचार और प्रसार में लिखा गया साहित्य नहीं है। उसमें परवर्ती हिंदी साहित्य विशेषकर संत साहित्य के प्रेरणास्त्रोत प्राप्त होते हैं। हिंदी का संत साहित्य-जो किसी संप्रदाय-विशेष का प्रचार-प्रसार करने वाला साहित्य नहीं, संपूर्ण मानवता के पोषण मूल्यों का साहित्य है, परंतु वह भी सिद्ध-साहित्य की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों से प्रभावित हुआ है। अंत:साधना, सद्गुरू की महिमा, गुह्यता और रहस्य तथा जनवाणी का स्वीकार आदि सिद्ध साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ संथ साहित्य और भक्तिसाहित्य में भी पाई जाती हैं। अत: यह स्पष्ट है कि 7 वीं, 8 वीं शती के सिद्ध साहित्य ने परवर्ती हिंदी साहित्य को बहुत दूर तक काफी प्रभावित किया है। इसमें ही सिद्ध साहित्य का महत्व स्पष्ट हो जाता है। इस दृष्टि से सिद्ध साहित्य का परिचय और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का अध्ययन हिंदी साहित्य की अनिवार्यता मानी जा सकती है। क्योंकि सिद्ध साहित्य हिंदी साहित्य की पूर्वपीठिका के साथ-साथ उसके प्रेरणास्त्रोत तथा संभावनाओं से भरे साहित्य के रूप में भी सिद्ध हुआ है। सामंतीय वातावरण के कारण भले उसमें मद्य-मैथुन जैसे वाममार्ग का भी अनुसरण हुआ है, किंतु सिद्धों ने जनवाणी को अपना माध्यम बनाकर अंत:साधना और सत्गुरू की महिमा जैसे अच्छे संस्कारों को भी जनता में प्रचारित और प्रसारित किया है, यह सिद्ध साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सिद्ध साहित्य पर बौद्ध धर्म और उसके अंतर्गत आने वाले विभिन्न संप्रदायों को विचारों का प्रभाव परिलक्षित होता है। सिद्ध साहित्य के प्रवृत्तिगत स्वरूप ने ही आगे चलकर हिंदी साहित्य का पथ प्रशस्त किया हुआ स्पष्टत: दिखाई देता है।

6.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* सिद्ध साहित्य का परिचय स्पष्ट कीजिए।
* सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* सिद्ध साहित्य की भाषा।
* सिद्ध-साधना मार्ग।

ग. एक-दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* सिद्ध साहित्य के अन्वेषण का श्रेय किसे जाता है?
* सिद्ध साहित्यकारों के नाम लिखिए।
* संध्या भाषा किसे कहते हैं?
* भारतीय तंत्रकारों में किन पंचकारों की चर्चा की गई है?

ध. सही पर्याय लिखिए –

* राहुल सांस्कृत्यायन ने सिद्धों की संख्या कितनी बतलाई है?

  अ) 64 ब) 74 क) 84 ख) 94
* सबसे प्राचिन सिद्ध कौन है?

  अ) सरहपा ब) कण्हपा क) विरूपा ख) दरिपा

6.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

- सिद्ध साहित्य की सूची तैयार कीजिए।
- अपने क्षेत्र के बौद्धमठों की जानकारी प्राप्त कीजिए।
- सिद्ध साहित्य के संदर्भ में आपके विचार स्पष्ट कीजिए।

6.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती।
- हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ – शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई – 7
नाथपंथी साहित्य

अनुक्रम

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 विषय–विवेचन :
 7.3.1 नाथ साहित्य का परिचय,
 7.3.2 नाथपंथी साहित्य की विषयगत प्रवृत्तियाँ,
 7.3.3 नाथपंथी साहित्य की शैलीगत प्रवृत्तियाँ,
7.4 शब्दार्थ
7.5 सारांश
7.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न
7.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
7.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

* छात्र भाषा एवं साहित्य की पूर्वपीठिका के रूप में नाथपंथी साहित्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
* हिंदी के आदिकाल साहित भक्तिकालीन हिंदी साहित्य के समझने में मदद मिलेगी।
* साहित्य में कालांतर से होने वाले परिवर्तन और प्रभाव–ग्रहण की प्रक्रियाओं से अवगत होंगे।

7.2 प्रस्तावना

अपभ्रंश साहित्य और सिद्‌ध साहित्य की तरह नाथपंथी साहित्य भी हिंदी साहित्य की पूर्वपीठिका की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपभ्रंश भाषा के साहित्यकारों ने जिस तरह हिंदी साहित्य के आदिकाल को अर्थात वीरगाथाकाल अथवा रासोकाल प्रभावित किया है, और साथ ही पूर्व मध्यकाल अर्थात भक्तिकाल को भी प्रभावित किया है। और साथ ही पूर्वमध्यकाल अर्थात भक्तिकाल को भी प्रभावित किया है उसमें कवि पुष्य अथवा पुष्पदंत, स्वयंभू जैसे जैन धर्म के साहित्यकारों के नाम लिए जा सकते हैं। सिद्‌ध–संप्रदाय के सरहपा, सबरपा, कण्हपा आदि नाथ संप्रदाय के गोरखनाथ आदि को भी हिंदी के संत

साहित्य को प्रभावित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। भाषा के स्तर पर संस्कृत-

प्रधान वैदिक साहित्य की प्रतिक्रिया के स्वरूप हिंदी का अपभ्रंश साहित्य विकसित हुआ। सांप्रदायिक स्तर पर बौद्ध धर्मांतर्गत उसकी दो शाखाएँ हीनयान और महायान की प्रतिक्रिया स्वरूप वज्रयान में सिद्धि प्राप्त करने वाले स्तर पर सिद्धों की सहज साधना-पद्धति की पेतिक्रिया में नाथ पंथ और नाथ साहित्य का निर्माण दिखाई देता है।

7.3 विषय-विवरण

7.3.1 नाथ-साहित्य का परिचय :

सिद्ध साहित्य के साथ नाथ साहित्य को जोड़कर **सिद्धनाथ साहित्य** भी कहा जाता है। किंतु सिद्ध साहित्य के रचयिता बौद्ध संप्रदाय के थे जबकि नाथ साहित्य के रचयिता तत्कालीन शैव संप्रदाय से जुडे हुए थे। बौद्धों के सहजयानी और वज्रयानी शाखा के सिद्धचार्यो द्वारा रचित साहित्य सिद्ध साहित्य कहलाया, जो अपभ्रंश दोहों अथवा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध हैं जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धांतों को मान्यता दी गई हैं। इन सिद्धाचार्यो के समानांतर तत्कालीन शैव योगियों को भी सिद्ध कहा जाता था, लेकिन कुछ करणवश हिंदी तथा अन्य कई प्रांतिय भाषाओं में शैव योगियों के लिए नाथशब्दप्रयोग किया जाने लगा था। 84 सिद्धों में प्रथम का नाम सरहपा जो ७वीं अथवा 8 वीं शती के मानेजाते हैं, तो अंतिम

का नाम गोरक्षपा था जो 10 वीं शती के हैं। सिद्धों की भोगविलास-प्रधान एवं वाम मार्ग वाली स्वच्छंदी साधना पद्धति की प्रतिक्रिया में अंतिम साधक गोरक्षपा ने नए पंथ की स्थापना की जिसे नाथ पंथ कहा गया है। नाथ पंथ के कारण गोरक्षपा को गोरक्षनाथ अथवा गोरखनाथ कहा जाता है। इन्होंने सिद्धों की स्वच्छंदतावादी और सहज वासनापूर्ति की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए भोग के स्थान पर योग को महत्व दिया। इस तरह नाथ संप्रदाय योग साधना पद्धति पर आधारित मार्ग है, जिसके प्रचार-प्रसार में निर्मित साहित्य अर्थात नाथ साहित्य की प्रवृत्तियाँ सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियों से भिन्न हैं।

7.3.2 नाथपंथी साहित्य की विषयगत प्रवृत्तियाँ :

नाथसंप्रदाय में सिद्धों की विचारधारा और साधना-पद्धति की क्रिया और प्रतिक्रिया मिलती है। अत: उनके साहित्य में विषयगत प्रवृत्तियाँ कुछ हद् तक सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियाँ है और कुछ प्रवृत्तियाँ विषय की दृष्टि से सिद्ध साहित्य की प्रवृत्तियों से विपरीत हैं।

मूलत: सिद्ध-नाथ साहित्य के स्त्रोत समान हैं, इसलिए विषय की दृष्टि से नाथ साहित्य में एक ओर सिद्धों की अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती है जिनमें गुरू महिमा, रहस्यानुभूति, हठयोगमूलक साधना-पद्धति, वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन, नैतिक उपदेश आदि प्रमुख हैं। तो दूसरी ओर सिद्ध संप्रदाय की प्रतिक्रिया के स्वरूप- उन्मुक्त भोगवाद और धर्म के नाम पर चलाये जा रहे भ्रष्टाचार का विरोध, तन, मन और आचरण की शुद्धता पर विशेष बल, योग-पद्धति, ब्रह्मचार्य रक्षा का

महत्व, नारी का बहिष्कार, बाह्याचार का खंडन, पुस्तकीय ज्ञान एवं वेदशास्त्र का खंडन, पिण्ड में ब्रह्मांड की मान्यता आदि विषयगत प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है। इन प्रवृत्तियों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

*** गुरू–महिमा का वर्णन :**

यह मूलत: सिद्‌ध साहित्य की प्रवृत्ति है। प्रारंभ में सिद्‌ध और नाथ संप्रदाय संयुक्त स्वरूप में था। इसलिए इसे सिद्‌ध–नाथ संप्रदाय और उनके सिद्‌धांतों के प्रचार–प्रसार में लिखें गए साहित्य को सिद्‌ध–नाथ साहित्य कहा जाता था। अत: गुरू–महिमा का वर्णन सिद्‌ध साहित्य के समान ही नाथ साहित्य में भी मिलता है जिसका प्रभाव आगे चलकर हिंदी के संत साहित्य पर परिलक्षित होता है।

*** रहस्यानुभूति :**

नाथपंथी साहित्य में यह प्रवृत्ति भी सिद्‌ध साहित्य से आई है। इसके अंतर्गत नाथ जोगियों ने जनता के मन में अपने पंथ और सिद्‌धांत के प्रति आकर्षण निर्माण करने के लिए रहस्य एवं गुह्यता की अनुभूति जागृत करने के प्रयास किए हैं।

*** हठयोगमूलक साधना पद्‌धति :**

इस साधना–पद्‌धति का विश्लेषण करने वाला नाथपंथियों का प्रमुख ग्रंथ है– **हठयोग–प्रदीपिका**। इस साधना–पद्‌धति में अलख जगाना अर्थात शिव की उपासना करने के लिए हठयोग किया जाता था। ‘हठ’ शब्द में ‘ह’ याने सूर्य और ‘ठ’ याने चंद्र अथवा ‘ह’ का अर्थ है प्राणवायु और ‘ठ’ का अर्थ है अपानवायु, इन दोनों के संयोग से यह साधना पद्‌धति पूर्ण होती थी।

*** वर्णश्रम व्यवस्था का खंडन :**

सिद्‌ध योगियों की तरह नाथों ने पारंपारिक वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध किया है।

*** नैतिक उपदेश :**

अपने संप्रदाय के विचारों का प्रचार–प्रसार करने के लिए नाथ संप्रदायक के साहित्य में नैतिक उपदेशों पर बल दिया गया है।

*** योगपद्‌धति तथा ब्रह्मचर्य रक्षा :**

यह सिद्‌ध संप्रदाय की पद्‌धति की प्रतिक्रिया है। सिद्‌धों ने जिस वाममार्ग को अपनाकर अपने को भ्रष्ट कर लिया था उसके विपरीत नाथ साहित्य में ध्यान एकाग्रता के लिए योग और वाममार्ग से बचने के लिए ब्रह्मचर्य–रक्षा पर बल दिया गया था। नाथों ने नाद और बिंदु की उपासना के रूप में योग–पद्‌धति को अपनाकर ब्रह्मचर्य–रक्षा का महत्व प्रतिपादन किया है।

*** आचरण की शुद्‌धता पर विशेष बल :**

नाथपंथ एक प्रकार से सुधारवादी आंदोलन था। इसलिए इसमें तन, मन और आचरण की शुद्‌धता पर विशेष बल दिया गया था। अत: सिद्‌धों के उन्मुक्त भोगवाद और धर्म के नाम

पर चलाए जा रहे भ्रष्ट आचरण का नाथपंथी साहित्य में खंडन किया गया है।

⁕ पिण्ड में ब्रह्मांड की मान्यता :

जिस तरह बौद्ध संप्रदाय के प्रचारक सिद्ध साहित्य में घट-घट में बुद्ध की मान्यता रखते थे उसी प्रकार नाथपंथी साहित्य में शैव सिद्धांत के अनुसार पिण्ड में ब्रह्मांड की मान्यता प्रचलित हुई है।

⁕ नारी की निंदा :

नाथ पंथियों ने नारी का न केवल बहिष्कार किया, वरन् कटूता से उसकी निंदा भी की है। ऐसा उन्होंने सिद्धों की नारीविषयक भोगलालसा की प्रतिक्रिया के रूप में किया हैं, क्योंकि नाथपंथी सिद्धों के पतन का मूल कारण नारी को ही मानते थे। कालांतर से कबीर जैसे विवेकी संतों की वाणी में भी नारी-निंदा मुखरित हुई है।.

7.3.3 शैलीगत प्रवृत्तियाँ :

प्रतीकात्मकता :

नाथपंथियों ने भी सिद्धों की तरह अपने साहित्य में रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है।

गूढ़ भाषा का प्रयोग :

सिद्धों की तरह नाथपंथी साहित्य में भी गुह्यता की अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए गूढ़ भाषा अथवा संध्या भाषा का प्रयोग किया गया है। सिद्धों की तरह ही नाथपंथियों की भाषा में प्रतीकात्मकता के साथ अटपटापन पाया जाता है। इसी प्रवृत्ति का प्रभाव आगे चलकर हिंदी के संतकाव्य पर उलटबासियों के रूप में दिखाई देता है।

7.4 शब्दार्थ :

अटपटा	-	विचित्र;
उलटबांसी	-	ऐसी कविता जिसमें सामान्य रूप से उलटी बात कही गई हो;
पिण्ड	-	ठोस वस्तु का छोटा गोलाकार खंड ;
मुखरित	-	ध्वनित;
गूढ़ भाषा	-	रहस्यमय भाषा।

7.5 सारांश :

हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी के प्रारंभिक साहित्य के रूप में अपभ्रंश और सिद्ध साहित्य की तरह नाथपंथी साहित्य का विशेष और ऐतिहासिक महत्व है। अपभ्रंश और सिद्ध

साहित्य की तुलना में नाथपंथी साहित्य ने हिंदी साहित्य के अध्ययनकर्ताओं का रास्ता अधिक प्रशस्त किया है। अपभ्रंश साहित्य और हिंदी साहित्य के बीच नाथपंथी साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है, इसलिए उसका ऐतिहसिक महत्व माना जाता है। इसका विशेष महत्व इसलिए है कि हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग माने जाने वाले भक्तिकालीन साहित्य पर नाथपंथी साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव है। यद्‌यपि सिद्‌ध साहित्य और नाथ साहित्य को संयुक्त रूप से सिद्‌ध–

नाथ साहित्य भी कहा गया है, तथापि धर्मसंस्कारों की भिन्नता और साहित्यिक प्रवृत्तियों की विषयगत भिन्नता के कारण नाथपंथी साहित्य का स्वतंत्र स्वरूप सामने आता है। बौद्‌ध धर्म के महायान की मंत्रयानी और वज्रयानी साधना पद्‌धति की प्रतिक्रिया में सांप्रदायिक स्तर पर शैव नाथयोगियों ने नाथ पंथ की स्थापना की ओर साहित्यिक स्तर पर नाथपंथी साहित्य की निर्मिति की है। इस साहित्य की कुछ विषयगत प्रवृत्तियाँ सिद्‌ध साहित्य की प्रवृत्तियों के समान होते हुए भी शैव सिद्‌धांत के अनुरूप वह सिद्‌ध साहित्य की मूल प्रवृत्तियों के विपरीत है। सिद्‌धों की उन्मुक्त भोगवादी प्रवृत्तियों के विरोध में नाथपंथी साहित्य में तन, मन और आचरण की शुद्‌धता पर बल, ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्व, बाह्याचार का खंडन, पिंड में ब्रह्मांड की मान्यता एवं पुस्तकीय ज्ञान का विरोध तथा नारी निंदा आदि प्रवृत्तियों का समावेश हुआ हैं जिसका पूर्णत: प्रभाव और विकास हिंदी के परवर्ती संत साहित्य पर दिखाई पड़ता है।

7.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

* नाथपंथी साहित्य की विषयगत प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
* नाथपंथी साहित्य की सिद्‌ध साहित्य की प्रवृत्तियों से भिन्नता स्पष्ट कीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

* हिंदी के परवर्ती साहित्य पर नाथपंथी साहित्य का प्रभाव।
* नाथपंथी साहित्य की शैलीगत प्रवृत्तियाँ।

ग. एक–दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

* नाथपंथ की दो प्रवृत्तियाँ लिखिए।
* हठयोग का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।
* नाथपंथी साहित्य का अधिक प्रभाव हिंदी के किस कवि पर दिखाई देता है?

ध. सही पर्याय लिखिए –

* नाथ साहित्य के रचयिता तत्कालीन किस संप्रदाय से जुड़े थे??

  अ) बौद्‌ध ब) सिद्‌ध क) शैव ख) जैन

* हठयोग शब्द में 'ह' और 'ठ' का क्या अर्थ है?

  अ) नर-नारी ब) सूर्य-चंद्र क) संयोग-वियोग ख) संयुक्त-वियुक्त

7.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* अपने शहर के नाथपंथी अनुयायियों की जानकारी प्राप्त कीजिए।
* वर्तमान में प्रसारित नाथ साहित्य का संकलन कीजिए।
* नाथ-संप्रदाय के योगदान पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

7.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का इतिहास – संपा. डॉ. नगेंद्र
* नाथसंप्रदाय – आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

इकाई – 8
गोरखनाथ, विद्यापति और अमीर खुसरो
साहित्यिक परिचय

अनुक्रम

8.1 **उद्देश्य**

8.2 **प्रस्तावना**

8.3 **विषय–विवेचनः**

8.3.1 **गोरखनाथ का साहित्यिक का परिचय,**

8.3.2 **विद्यापति का का साहित्यिक का परिचय,**

8.3.3 **अमीर खुसरो का साहित्यिक का परिचय,**

8.4 **शब्दार्थ**

8.5 **सारांश**

8.6 **स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न**

8.7 **स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य**

8.8 **संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें**

8.1 उद्देश्य –

* छात्र आदिकाल की विभिन्न साहित्यिक धाराओं के प्रमुख–प्रतिनिधि कवियों का अध्ययन करेंगे।
* हिंदी भाषा एवं साहित्य के साथ–साथ संस्कृति की जानकारी प्राप्त करेंगे।
* हिंदी भाषा, साहित्य एवं इतिहास–अध्ययन की रुचि का निर्माण एवं संवद्र्धन होगा।

8.2 प्रस्तावना –

हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल के अंतर्गत वीरगाथा साहित्य और रासो साहित्य को यद्यपि अधिक महत्व दिया गया है, जिसके आधार पर इतिहासकारों ने इस काल का नामकरण वीरगाथाकाल अथवा रासोकाल किया गया है। तथापि इस काल की साहित्यिक पृष्ठभूमि में जैन कवियों, बौद्ध धर्मीय सिद्धों और शैवपंथीय नाथों द्वारा लिखा गया साहित्य भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। रासो साहित्य की अपेक्षा सिद्ध–

नाथ साहित्य ने परवर्ती हिंदी साहित्य को अधिक प्रभावित किया है। सिद्ध साहित्य से शृंगार और नाथ साहित्य से भक्ति की देन प्राप्त हुई है, इसलिए भक्तिकाल, रीतिकाल अथवा शृंगारिक काल की परिणति सामने आई। अपभ्रंश साहित्य, भाषा के स्तर पर एक प्रतिक्रिया के रूप में निर्मित हुआ जबकि सिद्ध और नाथ साहित्य सांप्रदायिक विचारों से प्रभावित रहा है। सिद्ध साहित्य की प्रतिक्रिया में शैव पंथ के मानने वाले नाथयोगियों द्वारा नाथ साहित्य की निर्मिति हुई जिसके प्रतिनिधि कवि गोरखनाथ माने जाते हैं। उसके सांप्रदायिक विचारों और साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रभाव परवर्ती भक्तिसाहित्य अथवा संत साहित्य में परिलक्षित होता है। आदिकालीन दूसरे कवि विद्यापति के काव्य के भक्ति और शृंगार का प्रभाव परवर्ती भक्ति और रीतिकाव्य में देखा जा सकता है। अमीर खुसरो के काव्य में आधुनिक हिंदी खड़ी बोली की विभिन्न शैलियों में परिचय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से आदिकालीन इन साहित्यकारों को प्रतिनिधि साहित्यकार मान कर उसका साहित्यिक परिचय आवश्यक हो जाता है।

आदिकालीन नाथपंथीय गोरखनाथ, मैथिलि भाषा एवं शैव पंथ को मानने वाले विद्यापति तथा खड़ीबोली का बहुत पहले प्रयोग करने वाले अमीर खुसरो इन साहित्यकारों का प्रभाव क्रमश: पूर्वमध्यकालीन भक्तिसाहित्य, उत्तरमध्यकालीन शृंगार साहित्य और आधुनिक खड़ीबोली के साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

8.3 विषय–विवरण

8.3.1 गोरखनाथ का साहित्यिक परिचय :

नाथों की सूची में नौ नाथ समाविष्ट हैं,

1. आदिनाथ 2. मत्सेंद्रनाथ 3. गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) 4. जालंधरनाथ
5. चर्पटीनाथ 6. कनिफनाथ 7. चौरंगीनाथ 8. भर्तृहरिनाथ और 9. गोपीचंद्रनाथ।

इन नौ नाथों में प्रथम सात नाथ अधिक प्रचलित हैं, और इनमें भी सर्वाधिक प्रचलित और प्रसिद्ध है 'गोरक्षनाथ' जिन्हें 'गोरखनाथ' भी कहा जाता है। इनमें आदिनाथ को साक्षात् शिव माना गया है। आदिनाथ के शिष्य थे मत्सेंद्रनाथ और जालंधरनाथ। मत्सेंद्रनाथ के शिष्य थे गोरखनाथ।

गोरखनाथ के जन्मकाल एवं स्थान के संदर्भ में विद्वानों में मतभिन्नता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी गोरखनाथ का जन्मकाल नौवीं शती का उत्तरार्द्ध और जन्मस्थान पश्चिम भारत में कहीं मानते हैं। इसके विपरीत डॉ. रामकुमार वर्मा के मतानुसार गोरखनाथ महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर के पितामह त्र्यंबकपंत के समकालीन थे। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के अनुमान से गोरखनाथ ने सौ–सवासौ वर्षों की आयु पाई थी। इससे गोरखनाथ का आविर्भावकाल ईसा की 11 वीं शती का अंतिम चरण माना जा सकता है।

नाथों में गुण और परिणाम की दृष्टि से गोरखनाथ की रचनाओं का विशेष महत्व है। गोरखनाथ के नाम पर लगभग पैंतिस ग्रंथ प्रचालित हैं जिनमें प्रमुख हैं, 'गोरक्षशतक', 'सिद्धसिद्धांतपद्धति', 'महार्थमंजिरी' आदि।

गोरखनाथ नाथ संप्रदाय के प्रमुख संत और नाथपंथी साहित्य के प्रमुख कवि है। उनकी हिंदी रचनाओं का संग्रह **'गोरखबानी'** नाम से प्रसिद्ध है। उनके साहित्य में शिव की उपासना, गुरुमहिमा, वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन, बाह्याचार का खंडन, तन-मन और आचरण की शुद्धता पिंड में ब्रह्मांड की मान्यता, हठयोग पद्धति, ब्रह्मचर्यरक्षा और नारी निंदा आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं।

गोरखनाथ 'नाथ-संप्रदाय' के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने पतंजली के उच्च लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया हैं। गोरखनाथ ने अपने नाथ पंथ का प्रचार राजपूताना और पंजाब में किया। महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर भी अपने आपको गोरखपंथ की परंपरा का मानते हैं। उनके अनुसार यह परंपरा - आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरक्षनाथ, गैनीनाथ, निवृत्तीनाथ और ज्ञानेश्वर इस प्रकार की है। गोरखनाथ की हठयोग-साधना ईश्वरवाद को लेकर चली थी।

गोरखनाथ शिव देवता और शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में माने जाते हैं। उनके समय में सारा देश वेदानुयायी और वेदविरोधी इन दो भागों में विभाजित हो गया था। गोरखनाथ ने अपने मार्ग के सभी शैवों और शाक्तों को स्वीकार किया और वे सब गोरखनाथी कहलाए। गोरखनाथ आज एक ऐसे संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं, जो अपनी विभिन्न परंपराओं के लिए देश के विभिन्न स्थानों में अब भी मौजूद है।

इस प्रकार गोरखनाथ अपने युग के एक महान व्यक्तित्व वाले नेता थे उसमें अपूर्व संगठन शक्ति थी। शंकराचार्य के बाद गोरखनाथ ही एक ऐसे महापुरुष हुए है जिन्होंने एक शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन की नींव डाली है। भारतवर्ष की लगभग सभी भाषाओं में गोरखनाथ संबंधी कथाएँ पाई जाती हैं। हिंदी संत साहित्य पर विशेषत: संत कबीर के विचारों और साहित्य पर गोरखनाथ के विचार एवं साहित्य का बहुत ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

1.3.2 विद्यापति का साहित्यिक परिचय :

विद्यापति संवत् 1660 में राजा शिवसिंह के दरबार में तो कुछ लोग सन् 1462 में मानते हैं।

विद्यापति की पदावली नामक रचना बहुत प्रसिद्ध है जिसके कारण उन्हें 'मैथिल कोकिल' भी कहा जाता है। बंगाल वाले उन्हें अपना और अपनी भाषा के कवि मानते हैं।

'पदावली' के साथ ही 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अत्यंत महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। माधुर्य और सरसता से लबालब भरे हुए हैं।

कवि विद्यापति के अधिकतर पद शृंगारपरक हैं जिनमें नायिका राधा और नायक कृष्ण है। इन पदों की रचना संस्कृत कवि जयदेव के पदों से प्रभावित है। उनकी पदावली पर जयदेव

के गीतगोविंद का प्रभाव स्पष्ट हैं। विद्यापति शैव थे। उन्होंने पदों की रचना शृंगार-काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कवि विद्यापति को भक्तकवियों की परंपरा में स्वीकार नहीं किया है।

विद्यापति की रचना कीर्तिलता में तिरहुत के राजा कीर्तिसिंह की वीरता, उदारता, गुणग्राहकता का वर्णन किया है। विद्यापति ने पदों में देश भाषा, अपभ्रंश भाषा, देशी शब्दों के साथ-साथ तत्सम संस्कृत शब्दों का, दोहा, चौपाई, छप्पय, गाथा आदि छंदों का प्रयोग किया है।

8.3.3 अमीर खुसरो का साहित्यिक परिचय :

पृथ्वीराज की मृत्यु के नब्बे वर्ष पूर्व संवत 1340 के आसपास अमीर खुसरो ने अपनी रचना का आरंभ किया था। अत: इनका रचनाकाल वीरगाथा काल के इतिहास में समाविष्ट किया जा सकता है। क्योंकि इन्होंने गयासुद्दीन बलवान से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन तथा मुबारकशहा तक कई पठान बादशाहों का, गुलाम वंश के पतन से लेकर तुघलक वंश के प्रारंभ तक के समय को देखा था। उनका जन्म एटा जिले के पटियाली गाँव में हुआ था। उनका वास्तविक नाम था-अब्दुल हसन! किंतु उन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो के नाम से ही पहचाना जाता है।

अमीर खुसरो प्रधानत: फ़ारसी के कवि थे, किंतु हिंदी में भी उनकी पर्याप्त रचनाएँ मिलती हैं। वे बड़े ही मिलनसार, विनोदी स्वभाव वाले सहृदय व्यक्ति थे। हिंदी में उनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। उनमें उक्तिवैचित्र्य और चमत्कारपूर्णता दिखाई देती है। उन्होंने कुछ रसीले गीत, दोहे तथा कुछ ग़ज़लें भी लिखी हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो का साहित्य गंभीर विषय को लेकर नहीं, मनोरंजन की दृष्टि से लिखा गया है। हिंदी साहित्य में उनका स्थान विशिष्ट निराला हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में भिन्न विषय और शैलियों के प्रयोग से जनता का मनोरंजन किया है।

अमीर खुसरो ने अपभ्रंश मिश्रित और डिंगल भाषा के स्थान पर खड़ी बोली और ब्रज भाषा का सर्व प्रथम सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करके खुसरो ने अपना विशेष स्थान निर्माण किया है। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और इस्लामी सभ्यता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है और लोकभावनाओं का भी परिचय प्राप्त होता है।

अमीर खुसरो ने पहेलियाँ, मुकरियाँ, ढकोसले, दो सुखने आदि काव्यप्रकारों का लेखन किया। जिनमें सरस, सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है:

दो सुखने :

''सितार क्यों न बजा ?
औरत क्यों न नहाई ? - परदा न था।''

मुकरी :

''मेरा मोसो सिंगार करावत
आगे बैठ के मान बढ़ावत
बासे चिक्कन न कोऊ दीसा
ऐ सखि साजन ? ... ना सखि सीसा ।''

दोहे :

''गोरी सोवै सेज पर मुख पर डारै केस।
चल खुसरो घर अपनै, रैन भई चहु देस।।''

अमीर खुसरो के नाम पर संग्रहित पहेलियों में कुछ प्रक्षिप्त और पीछे की जोड़ी गई पहेलियाँ भी मिलती हैं। भाषा के संबंध में भी कुछ विद्वान संदेह करते हैं। अमीर खुसरो का हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है जो विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर विशिष्ट हैं।

8.4 शब्दार्थ :

वेदानुयायी	–	वेदों का अनुसरण करने वाला;
लबालब	–	परिपूर्ण
डिंगल	–	राजस्थान की साहित्यिक भाषाओं में से पश्चिमी राजस्थानी या मारवाडी का साहित्यिक रूप;
मोसो	–	मुझसे

8.5 सारांश :

गोरखनाथ, विद्यापति और अमीर खुसरो इन तीनों को हिंदी साहित्य के आदिकालीन प्रमुख कवियों के रूप में पहचाना जाता हैं। यद्यपि काल अर्थात समय की दृष्टि से इनका निर्धारण अन्यत्र भी किया जा सकता है। किंतु साहित्यिक प्रवृत्तियाँ एवं योगदान की दृष्टि से इन तीनों का स्थान अव्वल माना जाता हैं। क्रमश: परवर्ती काल के खड़ी बोली एवं ब्रजकाव्य पर इनका प्रभाव, इन्हें पूर्ववर्ती कवियों का स्थान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गोरखनाथ और विद्यापति दोनों शैव पंथ को मानने वाले, शिव के उपासक थे। गोरखनाथ नाथपंथ के प्रवर्तक हैं तो विद्यापति किसी पंथ या संप्रदाय के प्रवर्तक नहीं है। इसलिए गोरखनाथ मूलत: भक्ति के तो विद्यापति शृंगार के कवि माने जाते हैं। भाषा की दृष्टि से गोरखनाथ पर अपभ्रंश का तो विद्यापति पर संस्कृत, मैथिली का प्रभाव है।

अमीर खुसरो का स्थान सबसे भिन्न एवं विशिष्ट हैं। वे इस्लामी थे, फारसी भाषा के विद्वान थे, किंतु उन्होंने हिंदी अर्थात आधुनिक हिंदी की ब्रज और खड़ी बोली में काव्य

लिखा है। उनके काव्य में न भक्ति, न शृंगार है, सिर्फ मनोरंजन ही है।

8.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न –

- ✻ गोरखनाथ के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
- ✻ अमीर खुसरो का हिंदी साहित्य विषयक परिचय दीजिए।

ख. टिप्पणियाँ –

- ✻ विद्यापति।
- ✻ अमीर खुसरो।

ग. एक–दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न –

- ✻ गोरखनाथ की रचनाओं के नाम लिखिए।
- ✻ विद्यापति की रचनाओं के नाम और प्रमुख काव्य विषय लिखिए।
- ✻ अमीर खुसरो की मुकरी लिखिए ।

ध. सही पर्याय लिखिए –

- ✻ विद्यापति की **कीर्तिलता** में किस राजा का वर्णन किया है?

  अ) पृथ्वीराज ब) कीर्तिसिंह क) जयसिंह ख) छत्रसाल
- ✻ खुसरो प्रधानत: किस भाषा के कवि थे?

  अ) हिंदी ब) फ़ारसी क) अरबी ख) ब्रज

8.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

- ✻ गोरखनाथ की अन्य साहित्यिक कृतियों का संकलन कीजिए।
- ✻ अपने क्षेत्र में उपलब्ध किसी नाथ के मंदिर में जाकर जानकारी प्राप्त करें।

8.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- ✻ हिंदी साहित्य का इतिहास – संपा. डॉ. नगेंद्र
- ✻ नाथसंप्रदाय – आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

इकाई - 9
भक्ति आंदोलन

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 विषय विवरण

9.3.1 भक्ति आंदोलन का सामान्य परिचय

9.3.2 विविध संप्रदाय

9.4 शब्दार्थ

9.5 सारांश

9.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

9.7 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य

9.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

9.1 उद्देश्य :

* भक्ति आंदोलन के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
* विविध संप्रदायों के योगदान से परिचित होंगे ।

9.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य का मध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से मुस्लिम शासकों के उत्थान-पतन का युग रहा है । व्यावहारिक दृष्टि से मुस्लिमों के शासन का यह काल भारतीयों की दृष्टि से परतंत्रता का ही माना जा सकता है । किंतु अकबर जैसे कुछ शासकों को अपवाद रूप में मान्य कर सकते हैं ।

मुस्लिम शासकों की धार्मिक दमन की नीति उनकी साम्राज्य विस्तार की लालसा, वैभव संपन्नता एवं विलासी प्रवृत्ति के कारण इस काल के साहित्य तथा संस्कृति को प्रभावित एवं प्रेरित के कारण इस काल के साहित्य तथा संस्कृति को प्रभावित एवं प्रेरित किया है। स्वधर्म की रक्षा के लिए भक्ति आंदोलन का आरंभ हुआ । अनेक महापुरुषों का इस काल में आविर्भाव हुआ और उन्होंने निर्बल आशाहीन जनता के मन में भक्ति के माध्यम से नवचेतना निर्माण की ।

भक्ति में श्रद्धा युक्त प्रेमभावना स्पष्ट होती है । वैदिक जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि धार्मिक संप्रदायों के द्वारा जनसाधारण में भक्ति भावना निर्माण करने के साथ-साथ एकता, सामंजस्य भी निर्माण किया ।

सगुण-निर्गुण, प्रेममार्गी आदि अनेक शाखाओं - धाराओं में कबीर, जायसी, सूदास, तुलसीदास, रैदास पीपा, मलूकदास, धन्ना, आदि संतों की काव्यपरंपरा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित होती है ।

9.3 विषय विवरण :

भारतीय धर्म साधना कर्म, ज्ञान और भाव पर आधारित है । ज्ञान और कर्म का दृष्टिकोण अधिकतर सामाजिक रहा और भाव प्रधानता 'भक्ति आंदोलन' के नाम से पहचानी गई । इसी आंदोलन का सामान्य परिचय देना आवश्यक है ।

9.3.1 भक्ति - आंदोलन का सामान्य परिचय :

इ.स. 1359 से 1857 का काल हिंदी साहित्य की दृष्टि से भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है । मुस्लिम शासकों का यह काल मुस्लिमेतरों के लिए अनेक अन्याय, अत्याचारों से तापदायक रहा । गैर-मुस्लिमों पर लागू किए गए 'जंजिया' कर, असमर्थक जनता को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य करना, हिंदू, धर्म एवं संस्कृति को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना, मंदिरों तथा मूर्तियों को नष्ट किया गया । फिर भी लगभग 400 सालों तक के संघर्षो में भी भारतीय धर्म एवं उदात्त संस्कृति नष्ट नहीं हुई । नैतिक मनोबल पर हिंदुओं को प्रबल साहस प्रदान किया, इसका बिंब तत्कालीन साहित्य में उभरकर आया है । स्वधर्म रक्षक आंदोलनों के सूत्रपात और मुस्लिम धार्मिक दमन नीति का विरोध करने के लिए ही साहित्य के क्षेत्र में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ ।

मुस्लिमों में साम्राज्य विस्तार की लालसा प्रबल थी अत: मुस्लिम शासकों की सेना सात-आठ सौ सालों तक संघर्ष में व्यस्त रही । इन युद्धों का प्रभाव साहित्य पर अधिक पड़ा । राज्याश्रमित साहित्यकार हमेशा अपने आश्रयदाताओं की वीरता की प्रशंसा करते रहें । कवि अपने पूर्वजो द्वारा किए गए युद्धों को लेकर ऐतिहासिक, प्रशस्तिपत्रक काव्य-ग्रंथों की रचना करने लगे ।

साम्राज्य विस्तार के साथ ही मुस्लिम शासक ऐश्वर्य एवं विलास प्रेमी थे । औरंगजेब के अतिरिक्त लगभग सभी मुस्लिम शासकों में यही प्रवृत्ति दिखाई देती हैं । कहा जाता है कि मुस्लिम शासकों का जीवन मांस, मदिरा और नारी पर बहुत कुछ आश्रित था । इसका प्रभाव अन्य शासकों एवं कवियों पर पड़ा । राज्याश्रय में श्रृंगारी काव्य रचना रसिकता, विलासिता के भावों से परिपूर्ण रही है । यह रसिकता धार्मिक क्षेत्र में प्रविष्ट हो गई और 'रसिक भक्ति शाखा' जैसी विकृत धार्मिक परंपराओं का निर्माण हुआ ।

धार्मिक आंदोलन को ठोस संरक्षण दक्षिण भारत में मिला । ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में हिंदू राज्य पतनोन्मुख हो रहा था, उसी समय दक्षिण के विभिन्न राज्यों में भारतीय संस्कृति एवं धर्म की एक नव-चेतना निर्माण हो रही थी । आठवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक अनेक आचार्य एवं महापुरुष दक्षिण भारत में ही आविर्भूत हुए । शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्क, माध्वचार्य, सायणाचार्य, वल्लभाचार्य आदि के नाम ले सकते हैं । कहा जा सकता है कि मुस्लिम आक्रमण के विरोध में उत्तर भारत में नव-उद्दीप्त आंदोलन की पृष्ठभूमि, प्रवर्तन एवं पथप्रदर्शन दक्षिण के धार्मिक प्रणेताओं, विचारकों ने ही किया हैं ।

भारतीय संस्कृति की प्रकृति मूलत: धार्मिक रही । भारतीय इतिहास की सभी महान उपलब्धियाँ धार्मिक भावना से संबद्ध रही है । रामराज्य या धर्मराज्य में प्रजा कल्याण तथा राजा के सर्वस्व त्याग की भावना निहित है । ऋग्वेद से रामायण तक कम-अधिक मात्रा में धर्म की भावना दिखाई देती है । भावना प्रधान कर्म ही भक्ति-भावना बन गया । श्रद्धा, प्रेम, रसिकता भक्ति से जुड़ गए । डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त शायद इसी लिए इसे भक्ति आंदोलन के स्थान पर धार्मिक आंदोलन मानते हैं ।

इस भाव-प्रधान धर्म का अभ्युत्थान वैदिक कर्मकांड एवं उपनिषदों के अतिसूक्ष्म चिंतन के विरुद्ध महाभारत काल में श्रीकृष्ण के द्वारा हुआ था । गीता एवं महाभारत में पहली बार इसकी महत्त्व स्थापित हुई और इसे 'भागवत धर्म कहा गया' । आगे चलकर भागवत धर्म के उन्नायकों ने ईश्वर के लीलामय अवतारवाद के रूपों का पौराणिक साहित्य के द्वारा विकास किया, धर्म को व्यावहारिकता देने के लिए मंदिरों, मूर्तियों एवं पूजा विधियों का भी प्रचार किया था और इस नष्ट रूप को 'पौरोणिक धर्म' की संज्ञा दी गई । गुप्तकाल के सम्राटों के आश्रय में 'पौराणिक धर्म' की संज्ञा दी गई । गुप्तकाल के सम्राटों के आश्रय में 'पौराणिक धर्म' का बहुत विकास हुआ है ।

सातवीं-आठवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म अनेक शाखा - उपशाखाओं में विभक्त होकर प्रभावहीन बनते गया । लगभग नवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने पुन:वैदिक धर्म के अभ्युत्थान एवं ज्ञानप्रधान धर्म को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया, उपनिषादों की नवीन व्याख्या करके 'अद्वैतवाद' का प्रचार किया । यह मत भक्ति के अनुकूल है । तो दूसरी ओर बौद्ध धर्म की एक विकृत शाखा सहजयानी सिद्धों की परंपरा में एक नया मोड़ नाथ-पंथियों द्वारा निर्माण किया गया । इसप्रकार उत्तर भारत में बौद्ध धर्म के पतन होते ही पुन:हिंदू धर्म के अंतर्गत ज्ञानमार्गी एवं योगमार्गी रूपों का निर्माण हुआ, और इसके पहले ही पौराणिक धर्म की कुछ परंपराएँ दक्षिण में पहुँच गई, जिनकी सुरक्षा हिंदू राजाओं तथा आलवार भक्तों द्वारा होकर भक्ति वहाँ विकसित होती गई । दक्षिण के अनेक आचार्यो ने परस्पर भिन्न ऐसे अनेक दार्शनिक संप्रदायों की स्थापना की जो किसी न किसी रूप में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन और भक्ति-मत के औचित्य को स्पष्ट करते हैं । विविध संप्रदायों ने अपने-अपने मतों को जनसामान्य में प्रचलित करने का प्रयत्न किया है ।

9.3.2. विविध संप्रदाय :

* **श्री संप्रदाय :** इस संबंध में प्रथम प्रयास श्री संप्रदाय के प्रथम आचार्य श्री रघुनाथाचार्य या नाथमुनि को है । इनका आर्विभाव नवीं शताब्दी में त्रिचनापल्ली में हुआ था । आगे चलकर इस 1017-1137 में श्री रामानुज ने अपने ग्रंथ - वेदांतसार, वेदांत संग्रह, वेदांतदीप, गीताभाष्य आदि ग्रंथों में ब्रह्मसूत्रों एवं गीता की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की और अपनी अन्य रचनाओं में 'श्री संप्रदाय' के सिद्धांतो को स्पष्ट रूप दिया । इस संप्रदाय के सिद्धांतों को 'विशिष्टाद्वैत' की संज्ञा दी गई । इस मतानुसार आत्मा और परमात्मा, जीव और ब्रह्म मूलत: एक ही हैं, 'किंतु दोनों में शक्ति एवं गुण के परिणाम की भिन्नता है । आत्मा और परमात्मा के एकत्व में भी गुण और परिणाम की भिन्नता है । जीव का ब्रह्म में लय हो जाने में लघुता, हीनतादि का अनुभव होता है यद्यपि वह ब्रह्म का ही अंश है । शंकराचार्य अद्वैत जीव की हीनता, लघुता को मायापोषित अज्ञान मानते हैं तो समानुज ने इसे वास्ताविक रूप में मान्य किया है । अपनी अल्प शक्ति के कारण जीव अधिक

शक्तिशाली की भक्ति करता है । जगत् भी ब्रह्म के द्वारा निर्मित उसका एक अंश है और वह मिथ्या नहीं है । विशिष्टाद्वैत विभिन्न रूपों में ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानते हैं, और जीव और जगत् भी उसी अभिव्यक्ति के रूप हैं । रामानुज के परब्रह्म जगत् की सृष्टि आत्माभिव्यक्तिजन्य आनंद के लिए अपनी लीला की प्रदर्शित करते हैं जो एक कलाकार सिद्ध होते हैं ।

* **सनक संप्रदाय :** इस संपद्राय में 'द्वैताद्वैत' सिद्धांत की स्थापना की गई है । इसके सर्वाधिक सशक्त आचार्य निम्बार्क है । उन्होंने ब्रह्मसूत्र का नया भाष्य 'वेदांत पारिजात सौरभ तथा दशश्लोकी ग्रंथों की रचना की हैं । इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म और जीव का संबंधन अद्वैत है न द्वैत । एक दूसरे से अलग रहने के कारण लय होने के बाद भी वे पुन: अद्वैत स्थिति प्राप्त करते हैं अत: द्वैत और अद्वैत दोनों स्थितियाँ उन्हें मान्य हैं । द्वैतावस्था में जीव को ब्रह्म प्राप्ति के लिए भक्ति का साधन उपयुक्त है । इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण की ही उपासना का स्वीकार किया गया है ।

* **ब्रह्म संप्रदाय :** इसके प्रवर्तक है मध्वाचार्य । इन्होंने 'द्वैतवाद' की सिद्धांत की स्थापना की । इनके मतानुसार मूलत: एक विष्णु ही अविनाशी ब्रह्म हैं, शेष सृष्टि और जीव ब्रह्म से उत्पन्न हैं । ब्रह्म स्वतंत्र हैं जीव परतंत्र है अत: दोनों के एक नहीं माना जा सकता । साधना के द्वारा जीव ब्रह्म के निकटता से प्राप्त आनंद की अनुभूति कर सकता है । जीव का ब्रह्म के निकट पहुँचना ही 'मुक्ति' है । यह मत शंकराचार्य के मत निकट तथा भक्तिमत के अनुकूल है ।

* **शुद्वाद्वैतवाद :** वल्लभाचार्य ने इ.स. 1479-1530 में शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना की । शंकराचार्य ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और दोनों को प्रकृति से भिन्न मानते हैं । इससे आभास होता है कि संसार में दो प्रकार की सत्ताएँ विद्यमान हैं अत: शंकराचार्य का अद्वैतवाद अशुद्ध है । उनके शुद्धद्वैत वाद में ब्रह्म, जीव और जगत् तीनों मूलत: एक हैं । ब्रह्म में सत्, चिद् और आनंद गुण विद्यमान है लिलालोलुप ब्रह्म स्वयं को जीव और जगत् के प्रतीयमान रूप में स्वत: व्यक्त करता है । माया को वे ब्रह्म की इच्छाशक्ति या लीला रूप में मान्य करते हैं । यह मत अद्वैतवाद का नया संस्करण है और भक्ति-मार्ग के अनुकूल है ।

मध्यकाल के धार्मिक आंदोलनों को विकसित करने एवं उनके लिए मजबूत पृष्ठभूमि तैयार करने में विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत द्वैत, शुद्धाद्वैत संप्रदायों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इन सिद्धांतो में अद्वैतवाद का खंडन करके उसे भक्ति के अनुकूल बनाया गया अर्थात् अनेक आचार्यों ने अद्वैत और भक्ति में समन्वय स्थापित किया । विशेष रूप में महानुभाव, वारकरी, संप्रदायय, कबीरपंथ, दादूपंथ सिक्ख धर्म आदि में यह देखा जाता है । सामान्यत: उन सबको 'संत मत' कहा गया है किंतु संतो की पद्धती दर्शनिक नहीं थी वह था व्यावहारिक एवं काव्यात्मक ।

भक्ति-भावना का यथार्थ रूप तो श्रद्धा समन्वित प्रेम ही है । मध्यकाल में भक्ति का जो रूप विकसित हुआ उसके दो भेद हैं । एक रागानुगा एवं दूसरी वैधी । रागानुगा भक्ति पर भागवत पुराण में बल दिया है । विभिन्न संप्रदायों में इसके प्रेम प्रधान शक्ति को महत्त्व प्राप्त हुआ ।

* चैतन्य संप्रदाय के अनुयायी रूप गोस्वामी ने भक्ति के शांता, प्रीता, प्रेयसी, अनुकंपा तथा कांता भेद माने हैं और उनके शांत, दास्य, सख्य वात्सल्य और माधुर्य भाव को प्रतिष्ठित किया है । इनमें माधुर्य भाव को अधिक स्थान मिला । माधुर्य या प्रणय भाव में स्वकीया परकीया भेद है । बौद्धो, शाक्तों, सहजयानियों ने, चैतन्य संप्रदाय ने परकीया भाव को महत्व दिया । इसका प्रभाव ब्रजमंडल के अन्य संप्रदायों पर हुआ । वहाँ पुष्टि संप्रदाय में पहले कृष्ण के बाल-रूप की उपासना होती थी, वहाँ राधाकृष्ण की माधुर्य भक्ति प्रचलित हो गई । इस संप्रदाय के नंददास कृत 'रूप-मंजरी' में परकीया भाव दिखाई देता है ।

* **राधा-वल्लभ संप्रदाय :** में कृष्णा के स्थान पर नित्य किशोरी राधा की आराधना, उनकी संयोग क्रीड़ाओं का ध्यान रखा गया । अत: रागानुगा भक्ति माधुर्य भाव, परकीय भाव और संयोग को समेटती हुई विशुद्ध रसिकता में परिणत हो गई ।

* **रामावत संप्रदाय :** मध्यकालीन संप्रदायों में रामानंद के इस संप्रदाय भक्ति का विशुद्ध एवं मर्यादित रूप सुरक्षित रहा है । आरंभ में इन रामोपासकों ने विशुद्ध भक्ति रूप अपनाया था किंतु दास्य भाव की अधिकता के कारण स्वामी अग्रदास तथा अन्य आचार्यों ने रामभक्ति के क्षेत्र में भी माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा कर दी । भक्तिकाल के अंत में रसिकता ही भक्ति की कसौटी बन जाने के कारण वहीं उसका पतन भी हो गया ।

धार्मिक आंदोलन से उत्तर एवं दक्षिण की विभिन्न भारतीय भाषाओं में साहित्य निर्माण होता गया । दक्षिण के (इ.स. 600-900) तमिल साहित्य में शैव एवं वैष्णव कवियों का निर्माण हुआ जिन्हें क्रमशः नायन्मार एवं आलवार कहा जाता था । आलवारों ने ही दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति आंदोलन को सुदृढ़, भूमि प्रदान की । बारह आलवारों में फेरियालवार, आण्डाल, नम्मालवार, कुलशेखर आदि प्रसिद्ध हैं । इसप्रकार तमिल, कन्नड, मलयालम का भक्ति आंदोलन शायद महाराष्ट्र से होता हुआ हिंदी प्रदेश में पहुँचा । महाराष्ट्र की मराठी लोकभाषा में सर्वप्रथम भक्ति काव्य की रचना हुई । मराठी के प्रथम कवि मुकुंदराज ने विवेक सिंधु, परमामृत में धार्मिक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया । उनके बाद महानुभाव संप्रदाय के महात्मा चक्रधर स्वामी, दामोदर नरेंद्र आदि ने पौरार्णिक प्रबंध काव्यों की तथा वारकरी संप्रदाय के संत कवियों - ज्ञानेश्वर, नामदेव निवृत्तिनाथ, मुक्ताबाई, सावतामाली आदि ने निर्गुण भक्ति मूलक पदों की रचना करके इस आंदोलन के विकास में योगदान दिया । महाराष्ट्र की यह संतकाव्य परंपरा ही हिंदी में विकसित हुई ।

अपभ्रंश निबद्ध, सिद्ध साहित्य, पूर्ववर्ती बौद्ध-जैन साहित्य, नाथपंथी, महाराष्ट्रीय संत - काव्य, वैष्णव भक्ति आंदोलन ने हिंदी संत-काव्य परंपरा को पुष्ट किया है । मध्यकाल में भक्ति के सगुण-निर्गुण प्रेम मार्गी रूप दिखाई देते हैं । कबीर रैदास, पीपा, सेना नानक, दादूदयाल, मलूकदास, सहजोबाई, जायसी, रामानदं, तुलसीदास, सूरदास, मीरा रसखान, चैतन्यस्वामी आदि ने काव्य रचनाओं के द्वारा भावाभिव्यक्ति की । भक्त कवियों की यह परंपरा विकसित होकर अति श्रृंगारिकता के कारण रीति परंपरातक प्रवाहित हो गई ।

9.4 शब्दार्थ :

अक्षुण्ण - निरंतर, सतत

अभ्युत्थान - विकास

आविर्भाव - उदय, निर्माण

9.5 सारांश :

हिंदी साहित्य का मध्यकाल धार्मिक संप्रदायों के कारण दिग्भ्रमित था । मुस्लिम शासकों की दमन नीति, साम्राज्य विस्तार की लालसा, विलासी प्रवृत्ति के कारण राजाश्रित कवियों द्वारा उनकी वीरता का गान, अतः धार्मिक क्षेत्र में श्रृंगारिक भावों का प्रदर्शन अपने आराध्यों की आड़ में किया जाने लगा । भक्ति के क्षेत्र में 'रसिक भक्ति शाखा' इसका उदाहरण है ।

आठवीं से सोलहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में अनेक आचार्य एवं महापुरुषों के अविर्भाव के कारण वेदांत-अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, सनक, श्री. ब्रह्म, चैतन्य, पुष्टि, राधावल्लभ आदि संप्रदायों के मतों का प्रचलन होने से धार्मिक भक्ति आंदोलन ने जोर पकड़ा था । विविध भावाओं के साहित्य में धार्मिक आंदोलन का प्रभाव दिखाई देता है । रामानुजाचार्य, सायणाचार्य, मध्याचार्य, वल्लभाचार्य, शंकराचार्य कबीर, तुलसीदास, जायसी सूरदास आदि की अक्षुण्ण परंपरा दिखाई देती है । किंतु भक्त कवियों की यह परंपरा विकसित होकर अति श्रृंगारिकता रसिकता के कारण रीति काल एक प्रवाहित रही है ।

9.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

* भक्ति आंदोलन का सामान्य परिचय, दीजिए ।

* भक्ति आंदोलन के विविध संप्रदायों की संक्षिप्त जानकारी लिखिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

* भक्ति आंदोलन का स्वरूप
* भक्ति आंदोलन की आवश्यकता
* श्री संप्रदाय

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भक्ति आंदोलन के संप्रदायों के नाम लिखिए ।
* साहित्य के क्षेत्र में भक्ति आंदोलन का उदय क्यों हुआ?
* भक्ति आंदोलन के दोन सिद्धांतो एवं उनके प्रवर्तकों के नाम लिखिए ।
* दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति को दृढ़ करने वाले आलवारों के दो नाम लिखिए ।
* महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन के प्रचलित दो संप्रदायों को नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए :

* मध्यावाचर्य ने किस सिद्धांत की स्थापना की है ?

  अ) द्वैत ब) अद्वैत क) द्वैताद्वैत ड) शुद्धाद्वैत

* पुष्टि संप्रदाय में कृष्ण के किस रूप की उपासना होती थी?

  अ) बालरूप ब) युवा रूप क) प्रौढ़ रूप ड) भक्तिसंप्रदाय

अ) चक्रधर स्वामी के संप्रदाय का नाम क्या है ?

अ) सिद्ध संप्रदाय ब) महानुभाव संप्रदाय क) वारकरी संप्रदाय ड) भक्तिसंप्रदाय

9.7 स्वाध्याय - क्षेत्री कार्य

* आपके शहर के विविध मंदिरों में जाकर जानकारी संकलित कीजिए ।
* विविध संप्रदाय तथा उनके प्रवर्तकों की तालिका तैयार कीजिए ।
* किसी संप्रदाय के शिष्य का साक्षात्कार लीजिए ।

9.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास - डॉ. सभापती मिश्र
* हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
* हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

pppp

BH$mB© - 10

^{ºHmcrZ n[apñW{V¶m±

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 विषय विवरण

10.3.1 भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ एवं साहित्य पर प्रभाव

10.3.2 धार्मिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव

10.3.3 राजनीतिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव

10.3.4 साहित्यिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव

10.4 शब्दार्थ

10.5 सारांश

10.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

10.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

10.8 संदर्भ - अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

10.1 उद्देश्य :

* मध्ययुगीन काव्य की पूर्ववर्ती एवं समकालीन परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
* तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों के प्रभाव परिचित होंगे ।

10.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य का मध्ययुगीन कालखंड साहित्य की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मध्यकाल का प्रारंभ वि. सं. 1375 के आसपास माना है । कुछ विद्वान मध्यकाल का श्रीगणेश चौंदहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार करते हैं ।

किसी भी युग की साहित्यिक धारा को 'तात्विक रूप में समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों एवं समकालीन प्रसंगों का ज्ञान आवश्यक होता है । सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों के अनुकूल एवं प्रतिकूल तत्वों की अभिव्यक्ति समकालीन साहित्यिक धाराओं में सहज रूप से होती है, क्योंकि युग एवं परिवेश के प्रति सजग और संवेदनशील रचनाकार अपनी युगीन विशेषताओं से अलिप्त नहीं रह सकता । क्योंकि भारतीय संस्कृति अनगिनत, धर्मों वर्णों भाषज्ञओं को निरंतर अपनाती रही हैं । अत: उसमें जटिलताओं का होना स्वाभाविक हैं । अनेक समसामयिक कारणों से देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों में उथल पुथल होती रही है । विविधस्तरों पर व्याप्त विषमताएँ एक चुनौती के रूप में सामन आती रही है । इन्हीं विषमताओं के बीच समर्थ रचनाकार अपना मार्ग प्रशस्त करता है और अपने युग का दिशा-दर्शक बनता है । यही कारण है कि किसी भी साहित्यिक धारा को यथार्थ रूप में समझने के लिए उसकी प्रेरक परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक एवं उपादेय है ।

10.3 विषय - विवरण

10.3.1 सामाजिक परिस्थिति : भारतीय समाज में वर्ण और जातियों का विशिष्ट स्थान हैं । भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति में हिंदू - मुस्लिम दोनों धर्म की सामाजिक व्यवस्था बिघड़ी हुई थी । हिंदू धर्म वर्ण भेद और जाति भेद में बँटा था । उनमें अपने धर्म-विश्वास, रीति-रिवाज, आचार-विचार, देवी-देवताओं, खानपान, रहन-सहन, भाषा और बोलियाँ सभी भिन्न भिन्न थे । हिंदू जाति में जात-पात और शादी ब्याह मुसलमानों के संघर्ष में हिंदुओं का सामाजिक ढाँचा भी चरमरा गया और वर्णाश्रम धर्म का उचित पालन न होने से जातियों और उपजातियों में वृद्धि होने लगी, पारस्परिक व्यवहार में कटुता, भेदभाव बढ़ने लगा था । परस्पर साहचर्य नष्ट होते जा रहा था ।

मुसलमानों में भी यहीं स्थिति थी । उनमें और सुन्नी की असमानता थी । मुसलमान शासक अत्यंत धर्मांध थे । हिंदुओं का बलपूर्वक धर्मांतर हुआ करता था । मुसलमान शासकों में रूपलिप्सा और कामुकता की अधिकता थी । संपन्न मुसलमान, हिंदू कन्याओं को अपने घर में रखते थे । कुलीन नारियों का अपहरण करके अमीर लोग अपना मनोरंजन करते थे, दूसरी ओर हिंदू राजा भी कम नहीं थे जो सैय्यद स्त्रियों को अपने यहाँ लाकर नृत्य, गीत की शिक्षा दिलाया करते थे । समाज में दास प्रथा का प्रचलन था । बाल-विवाह, बहु-विवाह, पुनर्विवाह आदि प्रथा भी अस्तित्व में थी । सती प्रथा का भी प्रचलन था । मुस्लिमों में पर्दा प्रथा आवश्यकता बन गई थी । कुछ जातियों में स्त्री शिक्षा की व्यथा थी । कला साहित्य के निर्माण में स्त्रियों का योगदान रहता था । हिंदू मुसलमानों में परस्पर विवाह के उदा. भी पाए जाते हैं ।

उस समय समाज भोग विलास में जी रहा था किंतु निर्धन वर्ग अभाव और संघर्ष में अपना जीवनयापन कर रहा था । हिंदुओं से कठोरतापूर्वक कह सकते हैं कि भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति अत्यंत दयनीय थी ।

सामाजिक परिस्थिति का साहित्य पर प्रभाव भक्तिकालीन युग नि:संदेह भीतरी कलहों और बाह्य संघर्षो का युग था किंतु ऐसी स्थिति में भी साहित्यिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध थी । इस समय साहित्य पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध थी । इस समय साहित्य रचना की तीन धाराएँ प्रवाहित हो रही थी । प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी जो एक परंपरा के साथ विकसित होते जा रही थी । दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में रचित होता जा रहा था । तीसरी धारा हिंदी में लिखे जाने वाले साहित्य की थी ।

इस समय देश की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी । यह काल अव्यवस्थित सामाजिक स्थिति का था । लोकजीवन और लोक संपत्ति सुरक्षित नहीं थे ! उसके बाबजूद इसी स्थिति को देखते हुए साहित्य भी रचा जा रहा था ।

10.3.2 धार्मिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव भक्तिकालीन धार्मिक युग में पूर्ववत अनेक धर्म साधनाएँ प्रचलित थी । उनमें से कुछ तो अपने मूल रूप में थी और बाकी किंचित परिवर्तन के साथ विद्यमान थी । अनेक मतों, संप्रदायों तथा धर्मों के परस्पर विरोधी विचारों से भी धार्मिक परिस्थितियाँ ग्रस्त थी । इस कालखंड में शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर (सूर्य उपासक), गाणपत्य आदि प्रमुख धर्म के अनुयायी न्यूयाधिक थे, जिनमें ज्ञान, योगतंत्र तथा भक्ति की प्रवृत्तियाँ प्रचलित थी । ज्ञान में तप और चिंतन मनन की प्रधानता थी । सिद्धों, नाथों के द्वारा योग सिद्धि के चमत्कारो द्वारा जनता को प्रभावित करने का प्रयत्न होता था । इनकी विचारधाराओं से अनेक संप्रदाय, वैदिक धर्म की अवहेलना करते दिखाई देते थे । भक्तिकाल में 'शैव संप्रदाय' भारत व्यापी बन गया था । इसे राजाश्रय और लोकाश्रय भी प्राप्त था । इसमें 'योग' का इतना प्रभाव था कि बाद में 'भक्ति और 'ज्ञान' के साथ 'योग' शब्द जोड़ा जाना आवश्यक समझा जाने लगा । बौद्ध और जैन संप्रदाय भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकें । भक्ति की जो प्रवृत्ति मुख्यत: इस कालखंड में देखी जाती है वह भावना मूलक थी । अन्य धर्मों में भी देखी जाती है वह भावना मूलक थी । अन्य धर्मों में भी इस भावना-मूलक भक्ति का रूप पाया जाता है । इस कालखंड में भक्ति का बहुविध विकास वैष्णव धर्म द्वारा ही हो सका ।

अपनी अपनी मान्यताओं और मतों के कारण वैष्णव, शैव और शाक्त में एक दूसरे के प्रति विरोध की भावना थी, वे आपस में असहिष्णु थे । मध्यकालीन धर्मों में हिंदू, जैन, बौद्ध, पारसी, यहुदी, ईसाई, मुस्लिम आदि थे । हिंदू और मुस्लिम दोनों प्रधान धर्म थे । जैन धर्म का प्रचार दक्षिण पश्चिम के क्षेत्र में अधिक था । बौद्ध धर्म पूर्व प्रांत में ही सिमटकर रह गया था । पारसी धर्म 721 ई. में भारत में पहुँचा था और लगभग इसी समय इस्लाम भी इस्लाम में शरा और बेशरा दो मत प्रचलित थे । शरा सनातनी मुस्लिमों में था तो बेशरा मस्तमौला फकीरों का । बेशरा लोग इस्लाम के मूल सिद्धांतों की उपेक्षा करते, जो न तो रोजा, नमाज मानते, न पैगंबर के प्रति उनके मन में आस्था थी । मदारी, मलम, कलंढ़री आदि बेशरा के ही उपसंप्रदाय थे । सूफी मूलत: इसी बेशरा संप्रदाय के थे । इन्हीं सूफियों ने प्रेम द्वारा ईश्वर की उपासना करने में आस्था व्यक्त की । इन्होंने प्रेम-स्वरूप निराकार ईश्वर का प्रचार किया तथा हिंदू मुसलमानों के धार्मिक संघर्ष को मिटाने का प्रयास किया ।

इस युग में भक्ति की लहर सबसे ज्यादा प्रभावित हुई और भक्ति आंदोलनों का उदय हुआ । महाराष्ट्र में वारकरी संप्रदाय तथा एकेश्वरवादी विचारों को अपनाते हुए समन्वय करने में भी अग्रसर हुए । रामानंद ने उस काल की धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति को भली भाँति पहचाना । फलत: उन्होंने राम की भक्ति के द्वार सबके लिए खोल दिए । कोई भी व्यक्ति जन्मगत जाति और धर्म के कारण उससे वंचित न रह पाए । रामानंद ने देशभाषा में रामभक्ति का प्रसार किया और इसे आगे बढ़ाने का काम गोस्वामी तुलसीदास ने किया । इस युग में भगवान की सगुण और निर्गुण भक्ति का प्रचार हुआ । निर्गुण भक्तों में ज्ञान के द्वारा भगवान का अपने भीतर साक्षात्कार करने का उद्देश्य देते रहे और सगुण भक्तों ने देवी-देवता, राम और कृष्ण की आराधना की । कई संतो भक्तों और महात्माओं का निर्माण भी इसी कालखंड में हुआ ।

धार्मिक परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव धार्मिक संघर्ष के इस युग में कवियों ने अपने विचारों को गद्य में प्रकट न करके छंद बद्ध रूप में प्रस्तुत किया । इस संबंध में संस्कृत में टीकाओं व्याख्याओं की सृष्टि होती रही । किसी नवीन मौलिक उद्भावना को उनमें स्थान नहीं दिया गया । सिद्धांत प्रतिपादन तथा भक्ति प्रचार की भावना उस समय के साहित्य के मूल में विद्यमान थी ।

धर्म को लेकर समाज भ्रमित अवस्था में था । सुख-शांति की तलाश में लोगों ने धर्म की शरण ली किंतु उनकी किसी एक ईश्वर पर विश्वास नहीं था । इसी लिए समाज में अनेक पंथों का प्रचार - प्रसार हो रहा था । जनमानस की इस भ्रमित स्थिति को सही मार्ग दिखाने का कार्य कबीर, तुलसी, सूर जैसे संत महात्माओं ने किया । इसी काल में हिंदी साहित्यवक्ते अमर कर देने वाली कृतियों का निर्माण हुआ । जिनमें 'रामचुरितमानस' (तुलसी) और 'सूरसागर' (सूर) जैसी अमर कृतियाँ हैं ।

10.3.3 राजनीतिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव आदिकाल का अंत होने तक देश में मुसलमानों के पैर जम गए थे । अलाउद्दीन खिलजी के मरने के बाद दिल्ली के लड़खड़ाए शासन को 1320 में गयासुद्दीन ने संभाला । उसने बंगाल को जीतकर महाराष्ट्र और आंध्र तक साम्राज्य विस्तार किया । भक्तिकाल के वातावरण में मुसलमानों के कई वंशों का प्रभाव रहा जिनमें तुर्क वंश, सुरी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश आदि हैं । संवत् 1375 से 1583 तक दिल्ली पर तुगलक और लोदी वंश ने राज किया । 1583 से 1700 तक मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने राज किया । राजनीतिक दृष्टि से यह काल भी विक्षुब्ध अशांत तथा संघर्षमय था ।

इधर जिन स्थानों पर मुस्लिमों का राज स्थापित हो गया था, वहाँ पर धर्म की चर्चा जोर-शोर से होने लगी । बौद्ध धर्म का, उस समय तक अंत हो चुका था । बहुत से सिद्ध और योगी नई पुरानी बातें जोड़कर नए नए पंथ बहुत दिनों से चला रहे थे । ब्राह्मणों से भी इनका झगड़ा चल रहा था । उसी समय मुसलमानों ने जीते हुए स्थानों में, अपने धर्म का प्रचार करना आरंभ किया । कट्टर तथा सांप्रदायिक मुस्लिम शासकों द्वारा जनता पर अकथनीय अत्याचार ढाए गढ़ । शासक वर्ग में भी राज-लिप्सा के कारण निर्मम हत्याओं का सिलसिला चल रहा था । इन मुसलमान शासकों के मंत्री और सलाहकार अधिकांश हिंदू होते थे । हुसैनशाह बंगाली का मंत्री गोपीनाथ वसुधा, कश्मीर के सुल्तान शाहबुद्दीन के मुख्यमंत्री उदयश्री और चंद्रडामर थे । वहीं के सुलतान सिकंदर का मंत्री सुद्भट्ट ब्राह्मण था, इन्होंने हिंदुओं के मंदिर गिराए और मूर्तियाँ तोड़ी और तलवार के जोर से यहाँ के निवासियों को विधर्मी बनाया गया । भक्ति की भावधारा तो पहले सिंधु और उत्तर भारत में नहीं दक्षिण में प्रगट हुई । भक्ति भावना बढ़ने का कारण यह है कि शास्त्र सिद्ध आचार्य दक्षिण के वैष्णव थे । 7 वीं शताब्दी से या उससे भी पहले से दक्षिण में वैष्णव भक्ति ने जोर पकड़ा, इसके पुरस्कर्ता अलवार भक्त कहे जाते है । इसकी संख्या 12 हैं । जिनमें कम से कम 9 को ऐतिहासिक मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं है । इनमें 'अन्दाल' नामक महिला थी । उन दिनों दक्षिण में भी आज की भाँति जाति-विचार जटिलतर अवस्था में था, फिर भी रामानुजाचार्य ने नीची जातियों में प्रचलित भक्तों को भक्ति का बहुमान दिया ।

भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थिति के आधार पर स्पष्ट होता है कि में यह अराजकता, विद्रोह, युद्ध और विनाश का कालखंड था किंतु इसी कालखंड में कला, संगीत, संस्कृति का भी आरंभ हुआ । इस दृष्टि से अकबर का राज्यकाल सर्वश्रेष्ठ रहा । अकबर के शासनकाल में ही तांबे, चाँदी, सोने के सिक्कों प्रचलन हुआ । खेतों को नापने की व्यवस्था बनी । भू-व्यवस्था में एक संशोधन हुआ । कर के रूप में एक तीहाई हिस्सा दिया जाने लगा । जजिया कर हटाया गया ।

दूसरी ओर यह कालखंड असहिष्णु मुस्लिम शासकों का हिंदुओं पर किए गए अत्याचारों से भरा था । हिंदुओं की धर्मभ्रष्ट किया गया । मंदिरों में मूर्तियों को तोड़ा गया । स्त्रियों का मानहनन हुआ ।

कहा जा सकता है कि अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के समय को छोड़कर शेष सारा समय गृहकलह, आतंकं, युद्ध और लूटपाट का समय रहा । भक्तिकाल के प्रारंभ में ऐसी राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी, जिनके प्रभाव से काव्य का क्षेत्र अमूलाग्र बदल गया था । हिंदी साहित्य में भक्ति के उदय के समय तक अर्थात् पंद्रहवीं' सदी के आरंभ तक उत्तर भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना हो चुकी थी । हिंदू जनता के हृदय में गोरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रहा था । उनके सामने ही उनके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पुरुषों का अपमान होता था, ऐसी स्थिति में उनके पास ईश्वर के अतिरिक्त कोई पर्याय शेष नहीं था । इसी लिए साहित्य भी ईश्वर भक्ति पर ही आधारित रचा जा रहा था ।

10.3.4 साहित्यिक परिस्थिति एवं साहित्य पर प्रभाव :

भक्तिकाल धार्मिक संघर्ष का काल था । भक्ति की धारा को लेकर जनमानस द्विधा मन:स्थिति में था । ऐसे समय में संत, साहित्यकार एवं समाज सुधारकों ने जनमानस को दिशा दिखाने का कार्य किया । जिनमें प्रमुख थे - कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, जायसी आदि । यह धार्मिक संघर्ष का युग था । सिद्धांत प्रतिपादन तथा भक्ति प्रचार की भावना ही इस कालखंड में प्रधान थी । विद्वानों ने भक्ति साहित्य को उनकी प्रवृत्ति भेद के अनुसार ज्ञानमार्गी या प्रेममार्गी दो भागों में विभक्त किया हैं । इसी प्रकार उपासना भेद को लेकर सगुण और निर्गुण जैसी दो भक्तिधाराओं का जन्म हुआ और भक्ति साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया । सूर, तुलसी, कबीर, जायसी जैसे भक्त संत कवियों द्वारा भारतीय संस्कृति और आचार-विचार की पूर्णत: रक्षा की गई । भक्ति काव्य में जहाँ उच्चतम धर्म की व्याख्या मिलती हैं, वही उच्चकोटि के काव्य के दर्शन भी होते हैं । यह साहित्य हृदय, आत्मा और मन की भूख को शांत करता है । मुगलों द्वारा फारसी को राजकाज के लिए स्वीकार किया जा चुका था । अत: फारसी में अनेक इतिहास ग्रंथों की रचना हुई तथा काव्य भी लिखा गया । संस्कृत के अनेक धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद हुआ । साथ - साथ अनेक मुगल बादशाहों, हिंदू राजाओं तथा संपन्न व्यक्तियों ने हिंदी के प्रोत्साहन दिया किंतु संस्कृत और फारसी के समान हिंदी को आदर नहीं मिला । हिंदी की बोलियाँ राजस्थानी, ब्रज, अवधी में प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ । गद्य की अपेक्षा अधिकांश रचनाएँ पद्य में ही लिखी गई । भक्ति साहित्य के अंतर्गत तुलसीदास का 'रामचरित्रमानस' 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली' उल्लेखनीय हैं । सूरदास का 'सूरसागर', जायसी का 'पद्मावत', कबीर की रमैणियाँ, 'साखियाँ', मीराबाई की पदावली इस कालखंड की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं ।

बादशाहों तथा राजाओं के आश्रित कवियों की संख्या इस कालखंड में कम नहीं थी । इन कवियों ने राजा की प्रशस्ति, रीति-नीति श्रृंगार आदि से संबंधित साहित्य लिखा है । मुक्तक, प्रबंध आदि प्रकार की रचनाओं को लिखा गया । रहीम के नीति संबंधी दोहे इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं ।

सारांशत: भक्तिकालीन अधिकतर साहित्य अवधी, ब्रज, हिंदी की बोलियों में लिखा गया । भक्ति विषयक साहित्य अत्यंत समृद्ध है । इसी भक्ति साहित्य ने हिंदी साहित्य को अमर कर दिया है । उस समय मुगलों का शासनकाल था इसी वजह से फारसी में अधिकांश साहित्य लिखा जा रहा था । संस्कृत में लिखित अनेक धार्मिक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया गया ।

राजस्थान की कुछ रचनाओं तथा ब्रजभाषा की टीकाओं में गद्य के साथ पद्य का प्रयोग अधिक हुआ और उसमें भी भक्ति रचनाओं का सृजन अधिक हुआ । बादशाहों तथा राजाओं के आश्रित कवियों ने प्रशस्ति, श्रृंगार, रीति-नीति आदि से संबंधित मुक्तक और प्रबंध दोनों शैलियों में रचनाएँ की । भक्तिकाल में उच्चकोटि के साहित्य की निर्मिति की गई । शायद इसी वजह से साहित्यिक दृष्टि से भी भक्तिकाल को 'स्वर्णकाल' कहा जाता है ।

10.4 शब्दार्थ

श्रीगणेश - आरंभ करना

न्यूनाधिक - कम - अधिक, अल्प

10.5 सारांश :

भारत में राष्ट्रीय चेतना का अभाव सम्राट हर्षवर्धन के पश्चात स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । भारत में योद्धाओं की कमी नहीं थी परंतु आपसी भेदभाव एवं कलह के कारण उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ती थी । विशेष रूप से हिंदुओं में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत आदि ने समाज को अनेक हिस्सों में बाँट दिया था । देश में मुस्लिमों का साम्राज्य स्थापित हो गया था । इस वजह से धार्मिक, कट्टरता की भावना को बढ़ावा मिल रहा था । देशवासियों पर विधर्मियों के अत्याचार बढने लगे थे । आम जनता ऐसी हालातों से परेशान होकर ईश्वर की शरण में जाने लगी थी । ऐसी परिस्थिति में संत नामदेव, कबीर, तुलसीदास जैसे कवियों ने भटकी हुई जनता को मार्ग दिखाने का कार्य किया ।

राजा महाराजाओं में बढ़ती विलासिता ने जहाँगीर के काल तक आते - आते उग्र रूप धारण कर लिया । राजाश्रित कवियों में चमत्कार प्रदर्शन की होड़ लगने लगी ।

कवियों का दायित्व मात्र आश्रयदाताओं को खुश रखने तक सीमित रह गया । भक्तिकाल के आराध्य 'राधाकृष्ण' रीतिकाल तक आते - आते साधारण नायक नायिका हो गए । अर्थात सामाजिक जीवन हासोन्मुख हो गया । ऐसी परिस्थिति में कवियों से उदात्त रचनाओं की अपेक्षा भी कैसे की जा सकती थी ।

10.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* भक्तिकालीन धार्मिक परिस्थिति स्पष्ट कीजिए ।
* भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।
* ''भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहना कहाँ तक समीचीन है'' स्पष्ट कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

* भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थिति
* भक्तिकाल की सांस्कृतिक परिस्थिति
* भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थिति

ग) एक - दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

* भक्तिकाल के दो प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं के नाम लिखिए ।
* भक्तिकालीन साहित्य को समझने के लिए किन किन परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है ।
* भक्तिकालीन साहित्य किन भाषा एवं बोलियों में लिखा गया है ?

घ) सही पर्याय लिखिए ।

* भक्ति का बहुविध विकास किस धर्म के कारण हुआ?
  अ) इस्लाम ब) वैष्णव क) जैन ड) बौद्ध
* रामभक्ति के प्रसार के लिए किसने देशभाषा का प्रयोग किया?
  अ) सूरदास ब) रामानंद क) मीरा ड) रसखान

10.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* अकबर की सहिष्णु नीति का वर्णन कीजिए ।
* भक्तिकाल की धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी हिंदी साहित्य का इतिहास से संबंधित पुस्तकों के आधार पर प्राप्त करें ।
* भक्तिकालीन कवियों की तालिका तैयार कीजिए ।

10.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
* हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामकुमार वर्मा
* हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल

pppp

इकाई - 11
निर्गुण भक्तिसाहित्य की प्रवृत्तियाँ

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 विषय विवरण

11.3.1 निर्गुण भक्तिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

11.3.2 निर्गुण भक्तिमार्ग के भेद

11.3.3 निर्गुण भक्तिमार्ग की परंपरा एवं प्रवृतियाँ

11.4 शब्दार्थ

11.5 सारांश

11.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

11.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

11.8 संदर्भ - अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

11.1 उद्देश्य :

* भक्ति की अवधारणा को समझ सकेंगे ।
* भक्तिसाहित्य के विकास को समझेंगे ।
* निर्गुण भक्तिकाव्य की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

11.2 प्रस्तावना :

भक्ति शब्द की निष्पाति 'भज' धातु से हुई है जिसका अर्थ है – सेवा करना । भक्त का संबंध ईश्वर के प्रति निष्ठा एवं प्रेम द्वारा उसकी प्राप्ति से है । भागवत् धर्म के प्रचार प्रसार स्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात्र हुआ । यह भावना केवल वैष्णव धर्म तक सीमित नहीं रही बल्कि शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन, आदि संप्रदाय भी इससे प्रभावित हुए । इस युग में कर्मकांड का महत्व बढ़ने लगा था । साधक देव पूजन, पितृपूजन एवं यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानों में लगे हुए थे । कुछ लोग तपस्या में निरत थे और कुछ योग साधना किया करते थे । साधकों की मनोवृत्ति भक्ति की ओर आकर्षित हो रही थी । इस भक्तिधारा के प्रमुख प्रेरणा स्त्रोत रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य एवं चैतन्य महाप्रभु आदि थे । इसी बीच इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाले सूफी संप्रदाय का भी प्रचार हुआ । वस्तुत: भक्ति साहित्य का उद्गम दक्षिण में ईसा की तीसरी शताब्दी में दिखाई देने लगता है । तमिल साहित्य का स्थान इसमें सर्वप्रथम आता है, बाद में मलयालम, तेलगु, कन्नड भाषाओं में भक्ति साहित्य के दर्शन होते हैं । यहीं कारण है कि साहित्य के अध्येताओं ने निम्नलिखित छंद के भाव को एक स्वर से स्वीकार किया –

''भक्ति द्राविडी उपजी लाये रामानंद ।

प्रकट किया कबीर ने सात द्वीप नौ खंड ।।''

उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं की थी बल्कि ईश्वर के प्रति अपने हृदय के उदगारों को ही वाणी दी थी, इसी लिए उनके शब्दों मे सच्ची निष्ठा, गहरा अनुराग और तीव्र भावात्मक उद्वेश स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

11.3 विषय–विवरण :

11.3.1 निर्गुण भक्तिकाव्य (संतकाव्य) की प्रवृत्तियाँ :

भक्तिकाल के साहित्य में निर्गुण शाखा का अपना अनूठा स्थान है । उसके साहित्य की प्रधान प्रवृतियाँ देखना आवश्यक हैं । संक्षिप्त में संत साहित्य की प्रमुख प्रवृतियाँ निम्न प्रकार की दी जा सकती है ।

निर्गुण ईश्वर में विश्वास : निर्गुण संत कवि निराकार, रूपहीन, ईश्वर में विश्वास रखते हैं । उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप का विरोध किया है । जैसे कबीर ने कहा है – ''राम नाम तिहु लोक बखाना,

राम नाम का मरम है आना ।''

यहाँ कबीरदास ने सच्चे राम को पहचानने की बात कहकर उसकी महत्ता को बताया है । सच्चा ईश्वर समूची जातियों के लिए हैं । ऐसे ईश्वर की महिमा को जानना बड़ा कठिन कार्य है । इसी लिए वे ऐसे निर्गुण की उपासना करते हैं । निर्गुण राम के संबंध में कवि का मत है –

''निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लिखी न जाई ।''

यहाँ निर्गुण–निराकार, एकेश्वर, निर्गुण–सगुण से परे ईश्वर की भक्ति करने के लिए कहा गया है, क्योंकि उस ईश्वर की गति दिखाई नहीं देती है । ऐसे परमात्मा का स्थान चारों और हैं । अर्थात् भगवान कण कण में व्याप्त है ।

सद्गुरु का महत्त्व – निर्गुण संत कवियों ने एकेश्वरवाद से गुरु की महिमा का गान किया है । वे कहते हैं कि गुरु ही एक मात्र मार्गदर्शक है, जो मनुष्य ईश्वर से साक्षात्कार करता है । निर्गुण कवि गुरु को ईश्वर से बढ़कर मानते हैं । वे गुरु को भगवान मानते हैं और कहते हैं कि –

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय । बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताय ।''

गुरुद्वारा ही कबीरदास को निर्गुण ब्रह्म की जानकारी मिलती है । अत: वे गोविंद से अधिक सद्गुरु को महत्त्व देते हैं । दूसरी ओर कबीरदास ने सद्गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा हैं कि –

''सद्गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार । लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार ।''

इसी प्रकार गुरु की महिमा का वर्णन रैदास, नानक आदि ने भी किया हैं ।

बहुदेववाद या अवतारवाद का विरोध – संत कवि एकेश्वरवाद में विश्वास रखते हैं तथा बहुदेववाद का विरोध करते हैं । अवतारवाद का विरोध करते समय वे कहते हैं कि अवतार भी जन्म-मरण के बंधन से ग्रस्त है । परब्रह्म की युक्ति के बिना उन्हें भी मुक्ति नहीं हैं ।

* **बाह्याडंबरो का विरोध :** संत कवि धर्म के दिखावटी स्वरूप की निंदा करते हैं । उस समय समाज में प्रचलित सामाजिक पाखंडों अंधविश्वासों, परंपराओं, मूर्ति पूजा, कर्मकांड तथा धर्म के नाम पर चलने वाली हिंसा तीर्थ, व्रत उपवास, रोजा नमाज आदि विधि-विधानों की आलोचना करते हैं । आडंबरों में तिलक लगाना, माला-फेरना, व्रत रोजा रखना आदि पर प्रहार करते हुए उसे न अपनाने के लिए संतों ने कहा हैं ।

  ''माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर । कर का मनका डार दे, मनका मनका फेर ।''

केवल दिखावे के लिए माला फेरने वालों के प्रति कबीर ने व्यंग्य किया है ।

* **रहस्यवाद का दर्शन :** निर्गुण शाखा के कवियों ने रहस्यवाद को महत्त्व दिया है । यह रहस्यवाद भारतीय है, फिर भी इस पर सूफियों का प्रभाव है । इस वाद में आत्मा को पत्नी मानकर परमात्मा को पति रूप माना गया है । आत्मा और परमात्मा के संबंध को कबीर के इस दोहे के माध्यम से समझा जा सकता है ।

  ''लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल । लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल ।।''

जाति-पाँति, का घोर विरोध – भक्तिकाल में जाति पाँति का विरोध करने का कार्य निर्गुण शाखा के कवियों ने किया है । उन्होंने समय समय पर वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया हैं । धार्मिक क्षेत्र में ऊँच – नीच, छुआ-छूत आदि भेदभावों को मिटाने की कोशिश की है ।

''जाति पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई ।''

ब्राह्मण हिंदू-मुसलमान के बीच की दीवार तोड़ने का कार्य कबीर जैसे संत महात्मा ने करने का कार्य किया है ।

* **भजन और नामस्मरण :** सभी निर्गुण संत कवि ईश्वर के नामस्मरण को भक्ति का प्रमुख अंग मानते हैं । उनके अनुसार ईश्वर के नाम का थोड़ा अंश भी हृदय में जाए तो सारा शरीर और मन सोना बन जाता है । उनका कहना है कि नामस्करण से एकाग्रता प्राप्त होती है । उन्होंने नित्य 'रामनाम जपने' का आग्रह किया हैं ।

* **शृंगार वर्णन :** आत्मा और परमात्मा की अलौकिक प्रेम व्यंजना में शृंगार का आधार लिया गया है । श्रृंगार की दोनों अवस्थाएँ संयोग और वियोग का अत्यंत कलात्मक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है ।

* **लोकसंग्रह :** निर्गुण संतों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक मिलती है । उनकी सारी साधना समाज को दृष्टि में लेकर चली । उन्होंने जात-पाँत और अस्पृश्यकता का विरोध कर लोक समन्वय पर बल दिया है । इस भक्तिधारा के सभी कवि निम्नवर्ग के थे और पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे ।

* **नारी के प्रति दृष्टिकोण :** इस काव्यधारा के अधिकांश कवियों ने नारी को माया कहा है तथा उससे बचने का संदेश दिया है । वे कहते हैं कि भगवान से मिलने के मार्ग में माया सबसे बड़ी बाधा है । यह महाठगिनी है और मधुरवाणी बोलकर सभी को अपने फाँस में बाँध लेती है । परंतु उन्होंने संपूर्ण नारी वर्ग को

दोष नहीं दिया केवल कुलक्षिणी और व्यभिचारिणी स्त्रियों के विषय में कहा है । अत: उससे सावधानी बरखनी चाहिए । वैयक्तिक साधना में हठयोग का प्रयोग, प्रतीकों, उलटबासियों का प्रयोग सूफियों के प्रभाव के कारण प्रेमतत्व का स्वीकार, लोकगीत, मुक्तक शैली का प्रयोग किया है .

* **निर्गुण भक्ति साहित्य की परंपरा :** निर्गुण भक्ति साहित्य की परंपरा का यदि विचार किया जाए तो उसकी शुरुआत कबीरदास से मान सकते हैं किंतु उससे पूर्व उत्तर भारत की धार्मिक स्थिति की वजह से निर्गुण भक्ति की उत्पत्ति हुई । आदिकाल में सिद्धों और नाथों का समाज पर गहरा प्रभाव था । नाथ संप्रदाय के कनफरे योगी इड़ा पिंगला सुषुम्ना नाडियों और कुंडलिनी को जागृत कर लोगों को भ्रमित करते थे । वे जाति पाँति के विरोधी थे तथा वेदों के अध्ययन को व्यर्थ मानते थे । इस पंथ में कुछ मुसलमान भी थे । फलत: सूफी और संत के नामदेव ने भक्ति का प्रचार किया ।

नामदेव ने इ.स. 1271 - 1351 हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए भक्ति के नए मार्ग को खोला जिसे कबीरदास ने स्वीकार किया तथा अपने पूर्ववर्ती नाथों के हठयोग वैष्णव की सरसता, शंकराचार्य के मायावाद, सूफियों के प्रेमवाद को समन्वित कर 'निर्गुणपंथ' की स्थापना की ।

कबीरदास जानते थे कि इस देश पर लगातार यवनों के आक्रमण से जनता परेशान हो चुकी थी । ईश्वर के स्थूल रूप अर्थात् मूर्तियों से भी धीरे-धीरे उनकी आस्था कमी होने लगी । मंदिर गिराए जा रहे थे, मस्जिदें बन रही थी । मूर्तियाँ निरीह भाव से विध्वंस का प्रहार सहन करती थी । सन 1024 में महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को लूटा । इस घटना को सुनने पर लोगों को विश्वास हो गया कि जो मूर्ति स्वयं की रक्षा नहीं कर सकती वह लोगों की रक्षा कैसे करेंगी ! सारे देश में नास्तिकता, अनास्था बढ़ती चली गई । ऐसे समय में कबीर ने लोगों के डूबते विश्वास को सहारा देने का काम किया । इस समय तक देश में मुसलमान बस गए थे जिनका निष्कासन असंभव था । इसी वजह से कबीरदास ने भारतीय ब्रह्मवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद का समन्वय करने की सोचा । कबीर के इस निर्गुण पंथ से न तो हिंदुओं को और न ही मुसलमानों को आपत्ति हुई । दोनों के मिश्रण से कबीर के निर्गुण पंथ की सृष्टि हुई ।

11.3.2 निर्गुण भक्तिमार्ग के भेद :

हिंदी साहित्य की निर्गुण भक्ति काव्यधारा दो शाखाओं में विभाजित है । एक है ज्ञानाश्रयी शाखा, जिसके प्रतिनिधि कवि 'कबीर' हैं तथा दूसरी हैं - प्रेमाश्रयी शाखा, जिसके प्रतिनिधि कवि मलिक मोहम्मद जायसी है ।

11.3.3 ज्ञानमार्गी काव्य की प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ :

ज्ञानमार्गी शाखा पर वेद और भारतीय रहस्यवाद का प्रभाव दिखाई देता है । ज्ञानमार्गी शाखा का मूलाधार अद्वैतवाद है । ज्ञानमार्गी एकेश्वरवाद के कट्टर समर्थक थे । इन्होंने निर्गुण बह्म की उपासना पर विशेष जोर दिया है । ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों द्वारा जनजीवन के सत्य की अभिव्यक्ति हुई है । निजी अनुभूतियों पर कवियों का विश्वास हैं । निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखकर उन्होंने उसका गुण-गान किया है । उन्होंने अवतारवाद, जाति-पाँति, आडंबर आदि का विरोध किया हैं । ऐसे धार्मिक समन्वयवादी संत साहित्य की प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार की है ।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना : यह निर्गुण धारा के ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रधान विशेषता है, जिसमें निर्गुण ब्रह्म को महत्व निराकार, निर्विकार, वर्णहीन हैं । ऐसे भगवान की वे उपासना करना चाहते हैं । निर्गुण उपासकों ने योग साधना पर बल दिया हैं । वे सगुण की उपासना नहीं करते । संत रैदास कहते हैं 'प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी । तथा कबीर भी कहते हैं -

''राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ।

अंत समय पछताओगे, प्राण जायेंगे छूट ।''

जबकि मलूकदास कहते हैं -

''अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम । दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ।''

बहुदेवोपासना और मूर्तिपूजा का खंडन - इस शाखा के कवियों (संतों) ने बहुदेवोपासना का विरोध किया है क्योंकि इन्हें बहुदेवों के स्थान पर एक देवता पर विश्वास है और वह देवता निर्गुण है । दूसरी ओर इन संतों ने मूर्तिपूजा का विरोध किया हैं । कबीर कहते हैं - ''पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार ।

ताते ये चक्की भली, पीस खाय संसार ।। इसी प्रकार सेनापति, गुरुनानक पीपा आदि कवियों ने भी अवतारवाद का विरोध किया हैं ।

3) साहित्यिक रचनाओं का अभाव : इस शाखा के कवियों द्वारा केवल फुटकर दोहे या पदों की रचना हुई है । एकाध मुक्तक काव्य की उपलब्धि होती है, उसमें भी त्रुटियाँ ज्ञात होती हैं । यह कवि अक्खड़ और फक्कड स्वभाव होने के कारण इन्होंने टेढ़ा मेढ़ा साहित्य लिखा हैं । वैसे इनकी भाषा खिचड़ीनुमा रही है । यह संत कवि सुनी-सुनाई बातों को तुकबंदियों में बांधने का कार्य करते रहे हैं । व्याकरण की दृष्टि से विशुद्धता का अभाव है । इनकी साहित्यिक रचनाएँ कम मात्रा में प्राप्त होती हैं ।

* **अंत: साधना पर बल :** अंत: साधना से तात्पर्य वैयक्तिक साधना है । इस साधना के दो रूप बताए जाते हैं । कर्मयोग और हठयोग । कर्मयोग में संसार के माया मोह से अलिप्त रहना है, उसमें कथनी और करनी को बराबर माना गया है । इन कठिन साधनों में शरीर का साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है । इस साधना से तन और मन की शुद्धता के साथ ब्रह्म की प्राप्ति का उद्देश्य रहता है ।

* **सद्गुरु की महिमा :** इस शाखा के कवियों ने गुरु की महत्ता पर विशेष जोर दिया हैं । इन्होंने गुरु और शिष्य के संबंध पर बहुत कुछ लिखा है । कवि पीपा, सेना, रोहिदास, नानक आदि संतो ने सतगुरु की प्रधानता पर बल देकर उसका गुणगान किया हैं । कबीर ने तो गोविंद से गुरु को श्रेष्ठ बताया हैं ।

  ''गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागूँ पाय । बलिहारी गुरु आपने, जो गोविंद दियो बताय ।

  गुरु को गोविंद से भी श्रेष्ठ बताया गया है । बिना गुरु के ज्ञान कहाँ? तत्कालीन गढे दोहे आज भी समर्पक प्रतीत होते हैं ।

* **जाति-पाँति के बंधन के न मानना :** इस काल के कवियों ने मध्यकाल की सामाजिक कुप्रथाओं पर प्रहार किया हैं । कभी कटु वचन कहकर तो कभी उपेक्षा कर भाषा के माध्यम से जाति-पाँति को दूर करने का प्रयास किया है । इस शाखा के संतों ने छुआछूत पर प्रहार कर मानवता पर बल दिया है । ''सभी मनुष्य जाति एक है'' की भावना का इन्होंने प्रचार व प्रसार किया । एकता पर जोर देकर ज्ञान के महत्त्व को समझाते हुए कबीर कहते हैं -

  ''जाति न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान । मोल करो तलवार की, पड़ा रहने दो ग्यान ।''

* **रहस्यवाद की प्रवृत्ति :** ज्ञानमार्गी कवि और संत कण-कण में ईश्वर को देखते हैं । आत्मा और परमात्मा के संबंध को स्वीकार कर ईश्वर के रहस्य को उद्घाटित करते हैं । वे आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पति के रूप में स्वीकार करते हैं ।

* **आडंबर, अंधश्रद्धा तथा रूढिवाद का विरोध :** ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों ने आडंबर, अंधश्रद्धा तथा रूढ़िवाद का विरोध किया हैं । इसी लिए वे एक ओर सुधारवादी कहे जाते हैं तो दूसरी और विद्रोही बताए जाते हैं । उस समय समाज अनपढ़ था इसीलिए अंधविश्वास में जीवन बिताते थे । रूढिग्रस्त समाज हर धर्म में था । इसी लिए धर्म के अनुसार आचरण करने लगा था । ऐसी स्थिति में रूढि परंपराओं का विरोध कठिन कार्य था । इस अर्थ में वे 'समाज सुधारक' कहे जाते हैं ।

  ''हिंदु पूर्जे देहरा, मुसलमान मसीह । नामा नहीं सेविये, जहाँ देहरा न मसीह ।''

  नामदेव

माया से सावधान : ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने माया से सावधान रहने को कहा हैं । उनके अनुसार माया भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है । यह माया महाठगिनी है । इसने अपनी मधुर वानी से सबको फँसा लिया है । इसने ईश्वर को नहीं छोड़ा तब साधारण मनुष्य की क्या बिसात है ?

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि भक्तिकाल का समय साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काल रहा है । ज्ञानमार्गी कवियों द्‌वारा किया गया उपदेश हिंदू-मुस्लिमों के लिए बहुत ही उपयोगी रहा है, क्योंकि इन कवियों ने बाह्याडंबरों का विरोध कर समाज पर करारा व्यंग्य किया हैं ।

प्रेममार्गी (सूफी काव्य) की प्रवृत्तियाँ

* इस काव्यधारा का प्रमुख आधार प्रेम है । इन कवियों का प्रेमतत्व परंपरागत भारतीय श्रृंगार भावना से थोड़ा भिन्न है । भारतीय श्रृंगार रसात्मक काव्य में प्रेम का चित्रण हुआ है । जो दाम्पत्य विवाह जैसी सामाजिक मर्यादाओं को स्वीकार करते चला आया परंतु प्रेम मार्गी काव्यधारा में जो प्रेम तत्व है, वह स्वच्छंदतापूर्ण दृष्टिकोण, साहसपूर्ण क्रियाकलाप एवम् समाज विमुख प्रणय भावनाओं को लेकर चला आया । सूफी प्रेमाख्यान काव्य में हृदय की सरस एवं सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है । इस काव्य की प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं ।

* **ईश्वर :** सूफी कवि केवल एक ईश्वर में आस्था रखते हैं । तथा संसार की समस्त वस्तुओं में उनकी झलक देखते हैं । ईश्वर के अतिरिक्त वे किसी अन्य की सत्ता को स्वीकार नहीं करते । उन्हें प्रत्येक धर्म के प्रति सहानुभूति है क्योंकि प्रत्येक धर्म में उन्हें ईश्वर की सत्ता का आभास मिलता है ।

* **ईश्वर और जगत का संबंध :** सूफी कवि मानते हैं कि ईश्वर जगत् के बाहर भी है और अंदर भी । उसका रुप अकल्पनीय तथा अचिंतनीय है । वह निर्गुण, निर्दोष, शुद्र स्वरूप तथा निरपेक्ष हैं । सूफी कवि मानते हैं कि प्रवृति के अंग प्रत्यंग में ईश्वर की छाया है । इसी सौंदर्य में मुग्ध होकर उस मूल सौंदर्य के दर्शन करना चाहता है और उसी में लीन होकर अपने आपको एक ईश्वर समझने लगता है ।

* **हिंदू-मुस्लिम समन्वय भावना :** निर्गुण भक्त कवियों की तरह सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यान काव्य के माध्यम से हिंदू मुसलमानों में एकता बनाए रखने का प्रयास किया है । निर्गुण संत कवि अपनी अखंडता के कारण हिंदू-मुस्लिमों में समन्वय स्थापित करने में कामयाब रहे थे परंतु सूफियों ने अपने प्रेमतत्व के माध्यम से बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हिंदू-मुस्लिमों के अजनबीपन को लूट कर दूर करने का प्रयास किया ।

* प्रेम की व्यंजना सूफी कवि मानते हैं कि ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रेम ही है । यह प्रेम ईश्क मज़ाजी से ईश्क हकिकी की और आता है । लौकिक प्रेम से अध्यात्मिक प्रेम की और लौकिक प्रेम के धरात पर पति पत्नी के प्रेम पर आसक्ति दिखाकर उसे आध्यात्मिकता का पुट दिया है । परिणामस्वरुप लौकिक प्रेम के स्तर पर जो पति-पत्नी है वह आध्यात्मिक प्रेम के स्तर पर आत्मा और परमात्मा बन गए । इस आध्यात्मिक प्रेम में ईश्वर को स्त्री और आत्मा को पुरुष में प्रतिष्ठित किया है । प्रेम के वर्णन में वियोग को महत्व दिया है क्योंकि विरह ही जीवन है और मिलन अंत है ।

* **शैतान :** सूफी प्रेम काव्य में प्रेमी प्रेमिका को प्राप्त करने में प्रयत्नशील दिखाया जाता है । परंतु उनके मार्ग पर कठियानाइयाँ भी उपस्थित होती हैं । यह बाधाएँ शैतान उत्पन्न करता है किंतु इसी शैतान से साधक की सच्ची परीक्षा होती है । शैतान के द्‌वारा ही साधक की साधना में परिपक्तता आती है ।

* **प्रमुख पात्रों की मृत्यु :** यह सूफी काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है । अधिकांश सूफी कवियों ने अपने चरित्र नायक की मृत्यु को दिखाया है । जायसी ने भी पद्‌मावत में रत्नसेन की मृत्यु दिखाई है ।

* **रहस्यवादी भावना :** सूफी प्रेम काव्य में रहस्यवादी तत्व मिलते हैं । उनका लौकिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम का प्रथम सोपान है । उनके उस रहस्यवाद पर भारतीय ब्रह्मवाद का प्रभाव दिखाई देता है ।

* **प्रबंधकाव्य की शैली :** अधिकतर सूफी काव्य प्रबंधात्मक रूप में लिखे गए । यह काव्य अत्यंत विशाल बन पड़े तथा महाकाव्य अधिकतर विशेषताओं का अंतर्भाव उनमें है । उनके अंतर्गत की कथा अत्यंत सरस, सुंदर तथा प्रवाह पूर्ण है । उसके अंतर्गत प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांत भी सरस, सुगम एवं सरल प्रतीत होते है ।
* अवधी भाषा की प्रयोग सूफी प्रेमकाव्य अवधी भाषा में लिखा गया । इन कवियों न अवधी के बोलचाल वाले रूप को स्वीकार किया । बोलचाल की अवधी भाषा अपनाने से यह काव्य सामान्य जनता के लिए सुगम बन पड़ा है । सरलता का यह प्रमुख अंग है ।
* **शृंगार इस का चित्रण :** सूफी काव्य प्रबंधात्मक रुप में लिखे होने के कारण उनमे लगभग सभी रसों का सुंदर परिपाक हुआ है । परंतु प्रेम तत्व यह सूफी काव्य का प्रमुख तत्व होने के कारण शृंगार रस की प्रमुखता से सुंदर व्यंजना इन काव्यों में हुई । शृंगार के लौकिक एवं अलौकिक दोनों लक्षणों का अप्रतिम परिपाक इनमें हुआ है । शृंगार रस के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का सजीव वर्णन इन काव्यों की महत्वपूर्ण विशेषता है ।
* **छंद :** सूफी प्रेमकाव्य दोहा और चौपाई छंद में लिखे गए । लगभग सभी सूफी कवियों ने इस शैली को अपनाया है । इन छंदों की सफलता कहिए या विशेषता आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास अपने 'रामचरितमानस' में इसी शैली को अपनाया है ।
* **प्रतीक विधान :** प्रतीकात्मकता सूफी प्रेम काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है । लौकिक प्रेम की व्यंजना करने के लिए सूफी कवियों ने इन प्रतीकों का सहारा लिया है । इन्हीं प्रतीकों के द्वारा अव्यक्त सत्ता का आभास देते हुए रहस्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है ।

  उदा. : कवि उसमान 'चित्रावली' में नायक-नायिका वस्तुओं, स्थलों के नाम सांकेतिक देते हैं । नायक 'सुजान', नायिका के निवासस्थान का नाम 'रूपनगर' है । कवि जायसी ने पद्मावत में नायिका पद्मावती को परमात्मा - ब्रह्म, रत्नसेन को जीवात्मा का प्रतीक माना है । स्पष्ट है उस समय सांकेतिक विधान पद्धती का अवलंब किया जाता था ।
* **भाषा-शैली :** इन कवियों ने अवधी बोली भाषा का प्रयोग किया है, कुछ कवियों ब्रज का भी प्रयोग किया है । प्रबंध एवं मुक्तक शैली में सूफी काव्य मिलता है । दोहा, चौपाई, कुंडलियाँ आदि छादों की समुचित योजना से काव्य न केवल लोकरंजक बना है बल्कि लोकहितकारक भी बना है । ब्रज, अवधी, अरबी, फारसी के शब्द प्रयोग से साधारण प्रजा के लिए भी सरल बना है । इन कवियों ने अपने काव्य के द्वारा धर्म, संप्रदायादि भेद मिटाने के प्रयत्न करक 'प्रेम' की सर्वश्रेष्ठता व्यक्त की है ।

11.4 शब्दार्थ :

कर्मकांड : परंपराओं से चले आए हुए क्रियाकलाप

पालन - पत्थर

11.5 सारांश :

भक्तिकाल में जहाँ एक और निर्गुणधारा प्रवाहित हो रही थी वही दूसरी और सगुण भक्तिधारा का प्रभाव भी शनै : शनै : प्रबलता प्राप्त कर रहा था किंतु दोनों का उद्देश्य ईश्वर भक्ति आत्मसमर्पण, ईश्वर के अनुग्रह पर विश्वास, नामरूप कीर्तन, गुण, भक्ति आदि रहे हैं । भक्ति की धारा सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति दोनों में विद्यमान है । निर्गुण भक्ति में कर्मकांड जाति-पाँति, बाह्य - आडंबर, मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया गया है । निर्गुण धारा के कवियों का मानना हैं कि ईश्वर कण कण में व्याप्त है । इसी लिए उसके सगुण साकार रूप की आराधना की बजाय उसके निर्गुण रूप की आराधना करना चाहिए ।

भक्तिकाल में अधिकांश समाज अनपढ़ था इसी वजह से अंधविश्वासी और रूढ़ि-परंपराओं को मानने वाला था । ऐसी स्थिति में संत, महात्माओं और कवियों ने जनता के पथ-प्रदर्शन का कार्य किया ।

इस प्रकार कह सकते हैं कि भक्ति आंदोलन में समकालीन परिस्थितियों का विशेष रूप से योगदान रहा है । स्पष्ट है कि भक्ति काव्य तत्कालीन परिस्थितियों एवं परंपराओं से प्रभावित रहा है ।

11.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

- ✻ निर्गुण भक्ति की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ।
- ✻ निर्गुण भक्ति मार्ग के भेदों का उल्लेख करते हुए ज्ञानमार्गी काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
- ✻ प्रेममार्गी शाखा की विशेषताएँ लिखिए ।

ख) टिप्पणियाँ

- ✻ निर्गुण ईश्वर का स्वरूप
- ✻ निर्गुण भक्ति साहित्य की परंपरा

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- ✻ निर्गुण पंथ की क्या विशेषता है?
- ✻ निर्गुण भक्ति काव्य की दो विशेषताएँ लिखिए ।
- ✻ ज्ञानमार्गी शाखा पर किसका प्रभाव रहा ।
- ✻ प्रेममार्गी या सूफी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के दो उदा. लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए

- ✻ निर्गुण संतों ने किसका जप करने का आग्रह किया है?
  अ) देवता ब) रामनाम क) शक्ति ड) गुरु
- ✻ सूफी कवि ईश्वर प्राप्ति का साधन किसे मानते हैं?
  अ) भक्ति ब) अर्थ क) प्रेम ड) यश

11.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

- ✻ निर्गुण भक्ति से संबंधित कवियों सूची तैयार कीजिए ।
- ✻ किसी निर्गुण संत – फकीर का साक्षात्कार लीजिए ।
- ✻ 'रामचरितमानस', पद्मावत महाकाव्यों का अवलोकन कीजिए ।
- ✻ तुलसीदास, सूरदास के भजनों को सुनिए ।

11.8 संदर्भ-अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- ✻ हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ – डॉ. नामदेव उतकर
- ✻ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
- ✻ हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

pppp

इकाई – 12
ज्ञानमार्ग के प्रतिनिधि कवि कबीर

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 विषय विवरण

12.3.1 कबीर का साहित्यिक परिचय

12.4 शब्दार्थ

12.5 सारांश

12.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

12.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

12.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

12.1 उद्देश्य :

* ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीरदास के जीवन चरित्र को समझेंगे ।
* कबीर द्वारा रचित साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

12.2 प्रस्तावना :

जिस समय कबीर का जन्म हुआ उस समय देश के हालात अस्थिर थे । जनता भ्रमित अवस्था में जीवन यापन कर रही थी । समाज में बाह्याडंबर, अंधविश्वास, का बोलबाला था । ऐसी अवस्था में कबीर जैसे निर्भीक, निडर, संत का जन्म हुआ । कबीर ने जब समाज की दयनीय स्थिति को देखा तो उन्होंने समाज के पथप्रदर्शन का बीडा उठाया । कबीर से पूर्व नाथों और सिद्ध योगियों ने इस दिशा में कार्य किया था और उन्हीं की प्रेरणा को लेकर निर्गुण पंथ की स्थापना की । कबीर ने निर्गुण, निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का सहारा लिया उसी प्रकार उस निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व भी अपनाया । उन्होंने मनुष्यतत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्नश्रेणी की जनता में आत्म गौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया ।

12.3 विषय – विवरण :

कबीर का साहित्यिक परिचय :

हिंदी साहित्य में भक्ति शाखा में कबीर का स्थान अद्वितीय है । वे एक निर्भीक उदार, सत्यवादी, अहिंसा और प्रेम के समर्थक बाह्य आडंबर विरोधी तथा क्रांतिकारी सुधारक कवि थे । उनका व्यक्तित्व एक नेता का व्यक्तित्व था । और उनका मस्तिष्क एक प्रभावशाली दार्शनिक का और उनका मन एक भावुक कवि का था ।

कबीरदास एक ऐसे मिलन बिंदु पर खड़े थे जहाँ से एक रास्ता हिंदुत्व की ओर तो दूसरा रास्ता मुस्लिमत्व की ओर जाता है । इसी लिए वे दोनों धर्मों का बरकुबी ध्यान रख सकते थे । वे मूलत: विद्रोही थे, उन्हें कभी समझौता पसंद नहीं था । उन्होंने समाज में फैले हुए अवांछनीय तत्वों को नष्ट करने के लिए सत्य की शक्ति का प्रयोग किया । वे जाति–पाँति में कोई भेद नहीं मानते थे । वे कहते हैं – ''जाति–पाँति पूछो नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होय ।''

इसी विचार को लेकर कबीर ने दूर–दूर तक देशाटन किया । हठयोगियों तथा सूफी मुसलमान फकीरों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया । उनकी बानी में ये सब स्पष्ट हैं ।

कबीर के शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया जो साखी, सबद, रमैनी में विभाजित किया गया है । कबीर के ग्रंथों के संदर्भ में विद्वानों में काफी मतभेद रहा है । समय के साथ–साथ कबीर के ग्रंथों की संख्या 8 से लेकर लाख तक बढ़ती गई । अर्जनामा कबीर का ज्ञानसागर, कबीर की बानी, विवेकसागर, कर्मकांडी, रमैनी आदि 57 ग्रंथों को डॉ. रामकुमार वर्मा ने स्वीकार किया है । कबीर ग्रंथों की संख्या आ. हजारीप्रसाद 50 तो मिश्रबंधु 75 मानते हैं ।

साखी में गुरु के उपदेशों का प्रत्यक्ष अनुभव समाविष्ट है । बीजक, साखी संग्रह, सत्य कबीर की साखी, कबीर ग्रंथावली संपादक श्यामसुंदरदास अन्य विद्वानों ने इसी नाम से ग्रंथ संपादन कार्य किया है । कबीर के शिष्य मलूकदास ने 810 साखियों का संग्रह किया है । गुरुदेव, सुमिरण, विरह, ज्ञान, परचा, चितावणी आदि अंगों के नाम से कबीरदास के गुरु, ब्रह्म, आत्मा, माया, जगत कालगति आदि में उपदेश देकर मनुष्य को सचेत किया गया हैं । एक तरह से उन्होंने समाज सुधार का कार्य किया हैं ।

* **सबद :** गेय पदों को कहा गया हैं । गुरु ग्रंथ साहब में इन पदों को व्यक्त किया गया हैं । विविध राग – रागिनियों के आधार पर संतों के अनुभव वचनों को व्यक्त किया गया है ।

* **रमैनी :** में कबीर कालीन प्रचलित रुढियों का, सृष्टि रचना, मनुष्य को संसार, माया से चेतावनी का संपृदी अष्टपदी आदि छंदों में प्रयोग किया हैं । सर्वव्यापी परमात्मा के रूप, मुल्ला काजी आदि के वास्तविक रूप की चर्चा की गई हैं ।''

कबीर की बानी 'निर्गुण नहीं बना रह सकता । सेव्य-सेवक भाव में स्वामी में कृपा, क्षमा, औदार्य आदि गुणों का आरोप हो ही जाता है । इसी लिए कबीर के वचनों में कहीं तो निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म सत्ता का संकेत मिलता है ।

''पंडित मिथ्या करहु विचारा ! ना वह सृष्टि न सिरजहारा ।

जोति सरुप काल नहिं उहँवाँ, वचन न आहि सरीरा ।। थूल अथूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा ।''

कबीर में ज्ञानमार्ग की जहाँ तक बातें हैं वे सब हिंदू शास्त्रों की है जिनका संचय उन्होंने रामानंद के उपदेशों से किया । माया, जीव, ब्रह्म, तत्वमसि, अष्टमैथुन, त्रिकुटी, छह रिपु आदि शब्दों का परिचय उन्हें अध्ययन द्वारा नहीं सत्संग द्वारा ही हुआ, क्योंकि वे कुछ पढ़े लिखे न थे ।

इसी प्रकार उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (जैसे चंद, सूर नाद, बिंदु, अमृत, औंधा, कुआँ) को लेकर अद्भुत रूपक बाँधे हैं जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं; जैसे

''आकासे मुखि औंधा कुआँ पाताले पनिहारि । ताका पाणी को हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि ।''

वैष्णव संप्रदाय से उन्होंने अहिंसा का तत्व स्वीकार किया जो कि सूफी फकीरों को भी मान्य हुआ । हिंसा के लिए व मुसलमानों को बराबर फटकारते हैं -

''दिन भर रोजा रखत है, रात हनत है गाय । यह तो खून वह बंदगी, कैसी खुदी खुदाय ।।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञान मार्ग की बातें कबीर ने हिंदू साधु, संन्यासियों से ग्रहण की जिनमें सूफियों के सत्संग से उन्होंने 'प्रेमतत्व' का मिश्रण किया और अपना एक अलग पंथ चलाया । उपासना के बाह्य स्वरूप पर आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लाओं पर कटाक्ष किया हैं -

''माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर । करका मनका डारि दे, मनका मनका फेर ।।''

इसमें वेदांतत्व, हिंदू मुसलमानों को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधना की गौणता इत्यादी अनेक प्रसंग हैं । इसकी भाषा सधुक्कड़ी है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है ।

कबीर की भाषा में अनेक भाषा बोलियों के शब्द पाए जाते हैं - जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी आदि । इसलिए इनकी भाषा सधुक्कड़ी भाषा कही जाती है । कबीर को डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वाणी का डिक्टेटर कहा है - ''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया ।'' कबीर ने रहस्य भावना को प्रकट करने के लिए उलटबासियों का प्रयोग किया है । उनका लेखन दोहा छंद में हैं, आज भी उन्हें अनेक लोग गाते हैं । कबीर अपनी शैली के स्वयं निर्माता है । उनका समस्त काव्य मुक्तक शैली थे लिखा गया है ।

अत: कह सकते हैं कि कबीर प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी थे, मानवतावादी थे । अपनी अनुभूतियों को उन्होंने बड़ी ईमानदारी और स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया है ।

12.4 शब्दार्थ :

बाह्याडंबर - दिखावा

सधुक्कड़ी - संमिश्र

12.5 सारांश :

संत कबीर द्‌वारा अभिव्यक्त विचार एवं विषय आज भी प्रासंगिक हैं । भारत आज भी जाति-पाँति के बंधन से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है । कबीर के समय धर्म और जाति की समस्या जटिल थी । हिंदू और मुस्लिम दोनों ही वर्गों में जाति और धर्म को लेकर संकुचित भावना थी । कबीर ने इन दोनों वर्गों में पारस्परिक ऐक्य लाने का प्रयत्न किया है । निर्गुण संत कवियों के समान कबीर ने धर्मसाधना में विद्‌यमान अंतर्विरोध, बाह्य आडंबर पर तीव्र व्यंग्य किया है.

इस प्रकार देखते हैं कि कबीर में एक साथ संतरूप चिंतक रूप, समाज सुधारक रूप और कवि रुप दिखाई देता है । हिंदी साहित्य के कवियों में कबीर का अग्रणी स्थान है ।

12.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- वर्तमान समय में कबीरदास की उपादेयता पर प्रकाश डालिए ।
- कबीर के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
- 'कबीर समाज सुधारक थे' - स्पष्ट कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

- कबीर की निर्गुण बानी
- कबीर ग्रंथावली

ग) एक - दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- कबीर के काव्य ग्रंथ के नाम बताइए ।
- कबीर को भाषा का डिक्टेटर किसने कहाँ है ?
- कबीर के साखी, विशेषताएँ बताइए ।
- जाति-पाँति के भेदों को मिटाने के लिए कबीर की प्रसिद्‌ध उक्ति लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

- कबीर के किस ग्रंथ का साखी-सबद-रमैनी में विभाजन किया है?
  अ) कबीर बानी ब) विवेक सागर क) ज्ञानसागर ड) बीजक
- कबीर को वाणी का डिक्टेटर किसने कहा है ?
  अ) आ. हजारी प्रसाद द्‌विवेदी ब) आ. शुक्ल क) डॉ. नगेंद्र ड) डॉ. वर्मा

12.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

- कबीर के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
- कबीर के राम और तुलसी के राम को समझने का प्रयत्न करें ।
- कबीर के गुरु-विषयक दोहो, का संकलन करें ।

12.8 संदर्भ : अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ - डॉ. नामदेव उतकर
- हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
- हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

pppp

इकाई – 13
प्रेममार्ग के प्रतिनिधि कवि जायसी

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 विषय विवरण

13.3.1 जायसी का साहित्यिक परिचय

13.4 शब्दार्थ

13.5 सारांश

13.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

13.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

13.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

13.1 उद्देश्य :

* प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि जायसी के जीवन चरित्र को समझ सकेंगे ।
* जायसी द्वारा रचित साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

13.2 प्रस्तावना :

हिंदी का सूफी साहित्य फारस (ईरान) में विकसित, सूफी मत की साहित्यिक अभिव्यंजना है । सूफी साधकों ने भारत में आकर सूफी मत के प्रचार के लिए प्रेमगाथाओं की रचनाएँ की हैं । सूफियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है । इस शाखा के कवियों में मलिक मोहम्मद जायसी का स्थान सर्वोत्कृष्ट हैं । जायसी ने नायक का आत्मा मानकर नायिका को परमात्मा माना है । 'पद्मावत' में पद्मावती के सतीत्व एवं उसके उत्कृष्ट पति प्रेम को दर्शाया गया है, जिसमें भारतीयता की झलक दिखाई देती है ।

जायसी ने अपने साहित्य में प्रेम के शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा हैं । इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ, हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृयता से कहकर, उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया ।

13.3 विषय – विवरण :

जायसी का साहित्यिक परिचय : जायसी हिंदी की सूफी काव्य परंपरा के या प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं । इनका जन्म संवत् 1465 में हुआ था । जायस नामक ग्राम में इनका जन्म होने के कारण यह जायसी कहलाए । जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे । वे प्रसिद्ध सूफी कवि ख्वाजा मोईनुद्दीन के शिष्य थे । ये दिखने में कुरूप थे परंतु इनका हृदय उतना ही सुंदर था । जायसी ग्रंथावली में आचार्य शुक्ल ने 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरीकलाम' को संकलित किया है ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका में जायसी के लगभग २१ ग्रंथों के नाम दिए हैं । पद्मावत अखरावट, आखिरी कलाम, सरवरावत, चंपावत, इतरावत, मटकावत, चित्रावत, खुर्वानामा मुकहरनामा, मुखरानामा, कहरनामा, सोरठ आदि । जायसी का फारसी लिपि में उपलब्ध एक ग्रंथ है चित्ररेखा जिसे शिवसहाय पाठक ने संपादित किया है ।

चित्ररेखा : यह भी उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है । कथानक के अनुसार गोमती तटवर्ती चन्द्रपुर नगरी के राजा चन्द्रभानु की पुत्री चित्ररेखा का संबंध सिंध नरेश के कुबड़े पुत्र से तय हो जाता है किंतु विवाह के समय किसी अन्य लड़के को 'वर' बना दिया जाता है । वर बनने वाला लड़का कन्नौज के राजा कल्याण सिंह का एक मात्र पुत्र किंतु अल्पायु प्रीतम कुंवर था । प्रीतमकुंवर उसी रात चित्ररेखा को सोती छोड़कर अल्पायु के शाप से मुक्ति पाने हेतु काशी चला जाता है । दूसरे दिन चित्ररेखा भी कुंवर के पत्र को पढ़कर काशी चली जाती है । काशी में चित्ररेखा के अटल पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से व्यास जी का आशीर्वाद प्राप्त होता है और कुँवर दीर्घायु हो जाता है । दोनों सुखी जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।

* 'अखरावट' में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं । इस छोटी-सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं ।
* आखिरीकलाम में (लगभग सन 1528) बाबर की प्रशंसा कर कयामत का वर्णन किया है । 'पद्मावत' जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है । इसमें उनका हृदय कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ है । क्या लोकपक्ष में क्या अध्यात्म पक्ष में दोनों और उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है ।
* 'पद्मावत' में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त मिलती है । इसमें इतिहास और कल्पना का योग है । सिंहल द्विप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती का विवाह चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के साथ होता है । इन दोनों की प्रेम कहानी इसका विषय है । 'पद्मावत' की रचना मसनवी शैली में हुई हैं । इसमें घटनाओं के

शीर्षकों के आधार पर खंड है । कथा 57 खंडों में समाप्त होती है । पद्मावत का पूर्वार्ध काल्पनिक है तो उत्तरार्ध ऐतिहासिक है । पद्मावती का रूप सौन्दर्य वर्णन सुनकर राजा रत्नसेन का योगी बनकर सिंहलद्विप जाने तथा पद्मावती से विवाह करके उसे वापस चित्तौड़ तक लाने की कथा पूर्वार्ध है तो राघव चेतन को देश से निकालने से अंत तक की कथा ऐतिहासिक है ।

कथा का प्रारंभ ईश्वर स्तुति, उनके चार मित्रों की वंदना, राजा शेरसाह की वंदना, उसके बाद आत्मपरिचय देकर रत्नसेन और पद्मावती का वर्णन किया गया है । 'पद्मावत' दोहा चौपाई शैली में लिखा गया है । इस कथा के सर्वोत्तम अंश 'नागमती वियोग खंड' और नागमती संदेश खंड है जिनमें शृंगार के वियोग पक्ष का सुंदरतम रूप दिखाई देता है । नागमती का वियोग बारहमासे के रूप दिखाई देता है । नागमती का वियोग बारहमासे के रूप में चित्रित किया गया है । इसके अतिरिक्त पद्मावती के पारसरूप का वर्णन इस कथा की उपलब्धियों में से एक है । 'पद्मावती' के रूप का जो वर्णन जायसी ने किया है वह पाठक को सौंदर्य की लोकोत्तर भावना मग्न करने वाला है । पद्मावत की कथा भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है । कथा के मुख्य पात्र है राजा रत्नसेन तथा पद्मावती । फारसी प्रेम परंपरा एवं पद्धति का यह प्रेमाख्यान है । हीरामन तोते के मुख से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनकर 'प्रेम की पीर' से उसकी प्राप्ति के प्रयास में अनेक बाधाओं को पार करने वाले रत्नसेन का चित्रण किया गया है । अर्थात पद्मावती की मुख्य कथा के साथ, सखियों के साथ मानसरोवर में पद्मावती के साथ जल क्रीड़ा, नागमती का वियोग, गोराबादल आदि की घटनाओं के द्वारा कथानक विकसित किया गया है । फारसी की मसनवी शैली में लिखा गया यह प्रेम काव्य, महाकाव्य है । इसका मुख्य लक्ष्य है 'मोक्ष' प्राप्ति ।

काव्य कला की दृष्टि से भी यह उच्चकोटि का महाकाव्य है । द्विप, नगर, दुर्ग, समुद्र, किलकिला समुद्र सिंहलद्विप आदि के द्वारा वस्तु वर्णन स्वाभाविक वातावरण निर्माण किया गया है । बारहमासा, ऋतु वर्णन में उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग तथा दोहा चौपाई छंदों की आकर्षक योजना उनकी भाषा अत्यंत प्रभावोत्पादक बनी है । लोकभाषा अवधी के प्रयोग एवं गीतात्मकता के कारण काव्य नाद माधुर्य युक्त, श्रवणीय बना है । वीर, शांत, अद्भुत शृंगारादि रसों के प्रयोग से सहज सरस भावव्यंजना हुई है । युद्ध वर्णन में वीर विवाहादि में श्रृंगार, रत्नसेन के बंदी बनाने से वियोग शृंगार रस निर्माण हुए हैं । रत्नसेन-जीवात्मा, पद्मावती-ब्रह्म, नागमती-संसार, अलाउद्दीन-शैतान आदि प्रतीकों का प्रयोग तथा लोकोक्तियाँ मुहावरों, विविध बोलियों के शब्दभंडार से वर्ण्य विषय सुस्पष्ट हुआ है । अन्योक्ति समासोक्ति के कारण कथा प्रसंगों के बीच-बीच में आध्यात्मिक संकेत मिलते हैं । भाषानुकूल भावों की अभिव्यक्ति से पद्मावत महाकाव्य भावपक्ष कलापक्ष की दृष्टि से भी उत्कृष्ट काव्य माना जाता है।

* **मसलानामा :** यह पचार चौपाइयों और बारह दोहों में रचित एक लघुकाय पुस्तिका है । काव्य सौष्ठव की दृष्टि से महत्वहीन है ।

* **कहरानामा :** एक अन्योक्तिपरक खंड काव्य है । कहार जीवात्मा रूपी दुलहिन को उठाकर प्रियतम के पास ले जाते हैं, यहीं इसका प्रतिपाद्य विषय हैं ।

जहाँ तक जायसी का प्रश्न है निश्चित रूप से जायसी प्रतिभा संपन्न कवि हैं । उन्होंने पद्मावत जैसी अनमोल रचना हिंदी साहित्य को दी है । उन्होंने हिंदुओं के पवित्र धर्म ग्रंथों का भी अध्ययन किया था । मुसलमान होते भी उन्हें हिंदू रीति-रिवाजों, धार्मिक विश्वासों, देवी देवताओं का ज्ञान था ।

जायसी ने अपने साहित्य में संयोग एवं वियोग का चित्रण किया है वैसा समकालीन किसी कवि द्वारा संभव नहीं हुआ है ।

13.4 शब्दार्थ :

पीर - तकलीफ

आध्यात्मिक - धार्मिक ज्ञान

अतिशयोक्ति - बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करना

13.5 सारांश :

जायसी निर्गुण काव्यधारा की प्रेमाश्रयी शाखा के कवि थे । किशोरावस्था से ही वे सूफी संतों और फकीरों के संपर्क में रहे थे । अत: स्वाभाविक ही उनकी रचनाओं में कवित्त के साथ-साथ सैद्धांतिक विचारधारा भी है । उनके 'पद्मावत' महाकाव्य में आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं ।

जायसी ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन बोलचाल की भाषा अवधी में अपनी रचनाएँ की, उसमें अरबी, फारसी के शब्द तथा मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं । इन्होंने अपनी कृतियाँ फारसी लिपि में लिखी है । तत्कालीन सूफी सिद्धांतों को सरल और मनोरंजक रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है । जायसी ने कल्पना के साथ - साथ ऐतिहासिक घटनाओं की श्रृंखला सजाकर कथा को सजीव कर दिया है । कबीर से प्रभावित होने के कारण हिंदू - मुसलमानों के बीच भिन्नता की भावना को हटाने का प्रयत्न किया है । जायसी ने दोनों धर्मो को अपनी प्रेम कहानी के माध्यम से एक कर दिया है । इन्होंने एक ओर सूफी मत का वर्णन किया है, दूसरी ओर वेदांत का ।

इस प्रकार प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों में जायसी का अग्रणी स्थान हैं ।

13.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- ✻ सूफी काव्य परंपरा के महत्त्वपूर्ण कवि जायसी की काव्यगत विशेषताएँ बताइए ।
- ✻ जायसी की रचनाओं का विस्तृत विवेचन कीजिए ।
- ✻ पद्मावत के सर्गों की जानकारी दीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

- ✻ पद्मावत
- ✻ अखरावट
- ✻ चित्ररेखा

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

- ✻ जायसी किस काव्यधारा के कवि माने जाते हैं ?
- ✻ जायसी की रचनाओं के नाम लिखिए ।
- ✻ पद्मावत में किसकी कथा का आधार लिया गया है ?
- ✻ पद्मावत की रचना किन छंदों में की गई हैं ?

घ) सही पर्याय लिखिए ।

- ✻ जायसी की कीर्ति का आधार स्तंभ किस ग्रंथ को माना है ?

  अ) पद्मावत ब) आखिरीकलाम क) अखरावट ड) चित्रलेखा
- ✻ पद्मावत की रचना किस शैली में की गई है ?

  अ) मसनवी ब) व्यास क) धारा ड) व्यंग्यात्मक

13.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

- ✻ जायसी के पद्मावत के पूर्ण स्थलों की चुनिए ।
- ✻ पद्मावत का आशय लिखिए ।
- ✻ पद्मावती की प्रतीकात्मकता को समझने का प्रयत्न कीजिए ।

13.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास – डॉ. शर्मा
* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

pppp

इकाई – 14
सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 विषय विवरण

- 14.3.1 सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ
- 14.3.2 सगुण भक्ति के भेद – रामभक्ति–कृष्णभाक्ति
- 14.3.3 रामभक्ति शाखा की परंपरा एवं प्रवृत्तियाँ
- 14.3.4 कृष्णभक्ति शाखा की परंपरा एवं प्रवृत्तियाँ

14.4 शब्दार्थ

14.5 सारांश

14.6 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

14.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

14.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

14.1 उद्देश्य :

- ❋ भक्ति की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ❋ रामभक्ति काव्य की विशेषताओं को स्पष्ट कर पाएगे ।
- ❋ कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताओं को स्पष्ट कर पाएगे ।

14.2 प्रस्तावना :

अवतारवाद को स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप सगुण भक्ति को एक साकार आलंबन मिल गया । सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी उसे सहज ही स्वीकार कर सकता है । भक्ति किसी साकार मूर्त और विशिष्ट के प्रति ही उन्मुख हो सकती है और इसी कारण यह भक्ति समग्र पूजा विधि के साथ उपस्थित हो जाती है । मंदिरों में जाना, भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ाना, मूर्ति की सेवा करना और आरती उतारना आदि भक्ति के विभिन्न अंग माने जाते हैं ।

रामानुजाचार्य ने जिस वैष्णव भक्ति की प्रतिष्ठापना की थी । वह आगे चलकर दो शाखाओं में विभक्त हुई एक रामभक्ति शाखा और दूसरी कृष्ण भक्ति शाखा । रामभक्ति शाखा के अनुयायी राम को परमात्मा मानते हैं तथा राम का नाम, भक्ति नीति, आदर्श और मर्यादा का प्रणाम माना है । कृष्णभक्ति शाखा में भगवान श्रीकृष्ण की मधुर भक्ति को अपनाया और कृष्ण के ऐसे स्वरूप का प्रचार किया जो अत्यंत मनमोहक था ।

सगुण भक्ति ने जनता में ईश्वर के प्रति विश्वास पैदा किया । हिंदू जाति जिस मनोदशा में जीवित थी उसमें इस काव्य में संजीवनी का काम किया । फलत: अवसाद, कुंठा, निराशा और दैन्य भावना से मुक्त होकर हिंदू समाज ईश्वर के सगुण अवतारी रूप का आश्रय पा सकी । यह इस भक्ति की सबसे बड़ी देन है ।

14.3 विषय विवरण :

14.3.1 सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ भक्ति काव्य की निर्गुण शाखा के समान सगुण शाखा की सामान्य विशेषताएँ देखी जा सकती हैं । वे विशेषताएँ निम्नांकित दर्शाई जा सकती हैं ।

- ❋ **ईश्वर का सगुण रूप :** इस धारा के कवियों ने ईश्वर के सगुण साकार रूप की आराधना की है । पूजा अर्चा के लिए इन्हें मूर्ति चाहिए, रूप चाहिए । सगुण साधना में भगवान के नाम और रूप आनंद के कोष है । सगुण भक्त मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है और वह उसमें तल्लीन रहता है ।
- ❋ **अवतार भावना या लीला रहस्य :** सगुण भक्त कवियों को सारा संसार भगवान का अवतार दिखाई देता है । गीता में भगवान ने कहा है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं अपने आपको मनुष्य रूप में प्रकट करता हूँ । यही मनुष्य रूप में अवतरित होने की बात इन्हें पसंद है । अवतार का उद्देश्य ही लीला है । तुलसीदास के लिए 'मानस' तो सूर के लिए 'कृष्ण लीलारमण' हैं । इसी लीलावाद में जीवन और दर्शन की चरम सफलता प्राप्त होती है । इसी लिए सगुण भक्ति में लीला अवतार का महत्त्व है ।
- ❋ **शंकराचार्य के अद्‌वैतवाद का विरोध :** 'जीव और ब्रह्म दोनों एक हैं' को यहाँ महत्व नहीं है । अर्थात् एकेश्वरवाद के ये कवि विरोधी हैं । इसलिए वे शंकराचार्य के भी अद्वैतवाद का विरोध करते हैं । इनके सगुण काव्यों पर रामनुजाचार्य के विशिष्टाद्‌वैतवाद, निम्बार्क के द्‌वैताद्‌वैतवाद, माध्वाचार्य के द्‌वैतवाद, वल्लभाचार्य के शुद्‌धाद्‌वैतवाद के सिद्‌धांतों का प्रभाव है, किंतु शंकराचार्य के ज्ञानमूलक अद्‌वैतवाय का उन्होंने खंडन किया है ।
- ❋ **छुआ – छूत का निषेध :** भक्ति क्षेत्र में जातिभेद पूर्णत: अमान्य है । अर्थात् सगुण भक्त कवियों को जाति-पाँति का बंधन अस्वीकृत है, जबकि कर्मक्षेत्र में वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया गया है । भगवद् भक्ति – क्षेत्र में शुद्‌ध को भी भक्ति का अधिकार है । वह भक्त बनकर हरि की भक्ति कर सकता है ।

* **गुरु की महिमा :** गुरु की महत्ता को सभी ने गाया है । संत – भक्तों के काव्यों में कहीं न कहीं गुरु की महिमा का बखान किया है । वे गुरु को गोविंद से श्रेष्ठ मानकर उसे ब्रह्म का प्रतिनिधि एवं अंश मानते हैं । उनका स्थान उच्चतम है । जीव में गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है ।

* **लोक – जीवन का चित्रण :** इस काल के कवि साहित्यकारों ने समाज का सम्यक वर्णन किया है । जैसे तुलसी ने तत्कालीन परिस्थिति का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

  ''खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
  वनिक को वनिज न चाकर को चाकरी ।''

  यह स्थिति भले ही आज न हो पर उस समय थी । कृष्ण लीलाओं से आनंद तो राम सज्जनों के उद्धारक तथा दुष्टों के संहारक के रूप में प्रस्तुत है । भारतीय ग्राम्य जीव का चित्रण अष्टछाप के कवियों द्वारा हुआ है ।

* **भक्ति की प्रधानता :** भक्तिकाल में भक्ति की प्रधानता रही है । उस समय सारा भारतवर्ष भक्तिमय हो गया था । यह भक्ति पवित्र तथा भयरहित रही है । भगवान की भक्ति का उद्देश्य निकटता प्राप्त कर उसमें रमण करना और उसकी लीलाओं में लीन होकर मोक्ष प्राप्त करना है । श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वंदन आदि का भक्ति में महत्त्व हैं ।

* **विविध सिद्धांतों का प्रभाव :** भारतीय धर्म साधना एवं संस्कृति के क्षेत्र में भक्ति का विशिष्ट स्थान रहा है । चौंदहवीं शताब्दी में स्वामी रामानंद ने रामभक्त के रुप में भक्ति का प्रचार किया और सोलहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्त के रूप में भक्ति का प्रचार किया । रामानुज, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, चैतन्य स्वामी आदि का कवियों पर प्रभाव था ।

अत: कहाँ जा सकता है कि सगुण भक्ति में अवतार भावना, छुआछूत की अमान्यता, गुरु की महिमा, लोकजीवन भक्ति की महिमा आदि का वर्णन हुआ है । मध्यकालीन सगुण काव्य में हिंदी साहित्य ने उत्कर्ष के चरमबिंदु को छू लिया है ।

14.3.2. सगुण भक्ति के भेद :

हिंदी साहित्य के संदर्भ में सगुण भक्ति काव्यधारा दो शाखाओं में विभाजित है । एक है रामभक्ति शाखा और दूसरी कृष्ण भक्ति शाखा । इन दोनों की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं । अत: इनका स्वतंत्र रूप से अध्ययन अपेक्षित है ।

14.3.3. रामभक्ति शाखा की । प्रमुख प्रवृत्तियाँ परंपरा :

रामानुजाचार्य ने जिस वैष्णव भक्ति की प्रतिष्ठापना की थी वह आगे चलकर रामभक्ति और कृष्णभक्ति दो शाखाओं में विभक्त हो गए । राम भारतीय जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । राम ने अपने समय में त्याग, सेवा, मित्रता, आदर्शनीति, आदर, मर्यादा आदि कई गुणों का आचरण किया था । रामभक्ति शाखा के अनुयायी राम को परमात्मा मानते हैं ? उन्होंने राम का परमात्मा स्वरूप में प्रचार किया तथा राम का नाम भक्ति, नीति, आदर्श और मर्यादा को प्रमाण माना है । निर्गुण भक्ति जो अत्यंत प्रभावशाली बन चुकी थी उसके सामने सगुण राम भक्ति को प्रतिष्ठा मिली और निर्गुण भक्ति से ऊबे हुए लोग सगुण भक्ति की ओर आकर्षित हो गए ।

* **राम का महत्त्व :** इस काव्य में भगवान राम के समाज सापेक्ष जीवन चरित्र को प्रस्तुत किया गया । उस समय की सामाजिक परिस्थिति चाहती थी कि लोकरक्षक भगवान राम के अवतार हुए जो हिंदू जनता का उद्धार कर सके । अत: पाप विनाश करने वाले, धर्म रक्षक, धनुर्धारी राम के चित्रण को प्रस्तुत करके जनता के हृदय में आस्था का संचार किया गया । गोस्वामी तुलसीदास के राम में शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय मिलता है । उनका लोकरक्षक, मर्यादा पुरुषोत्तम राम है । इस धारा के कवियों ने नवधा भक्ति अपनाई.

* **लोक समन्वय :** रामकाव्य का दृष्टिकोण अत्यंत उदार दिखाई देता है । इसमें समन्वय की भावना मिलती है । भक्ति को सुसाध्य मानते हुए, इसमें ज्ञानभक्ति और कर्म के बीच समन्वय स्थापित करने का सुंदर प्रयास किया गया है । सगुणवाद और निर्गुणवाद दोनों में एकरसता लाने का प्रयास किया गया है और यह बताया गया है कि रामभक्ति का आराध्य सगुण है और निर्गुण भी । रामकाव्य में केवल राम की उपासना ही नहीं बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि की भी आराधना की गई है । किंतु सर्वप्रथम स्थान राम को दिया गया है – राम सो बड़ो है कौन ।

* **भक्ति का स्वरूप :** रामभक्त कवियों की भक्ति सेवक और सेवा दोनों है । इन कवियों ने रामभक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है । इनकी भक्ति में नवधा भक्ति के प्राय: सभी अंगों का विधान है ।

* **लोक संग्रह की भावना :** रामभक्ति काव्य में लोक कल्याण की भावना सर्वत्र मिलती है । इसमें जातिभेद, भेदभाव, आदि से ऊपर उठने का संदेश दिया गया है । इस काव्य में गृहस्थाश्रम से पलायन या उपेक्षा की बात नहीं कई गई है । बल्कि आदर्श गृहस्थों के रुप में (पति-पत्नी) राम-सीता, लक्ष्मण-भरत (आदर्श भाई), कौशल्या (आदर्श माता) हनुमान आदर्श सेवक आदि को उपस्थित करके जीव स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया है । पात्रों का चरित्र महान एवं अनुकरणीय है ।

* **रसौ का परिपाक :** रामकाव्य में लगभग सभी रसों का प्रयोग किया गया हैं । इन रसों में शांत रस की प्रधानता अधिक है । राम का चित्रण मर्यादा पुरुषोत्तम और सीता का सति पतिव्रता के रूप में होने के कारण केवल शृंगार रस के संयोग पक्ष का चित्रण अत्यंत संयम और मर्यादा में किया गया है । युद्धों के वर्णन में वीर और रौद्र रस है । नारद मोर के प्रसंग में हास्य रस मिलता है तथा राम विलाप और लक्ष्मण मूर्च्छा के प्रसंग में करुण रस मिलता है ।

* **काव्य शैली :** रामभक्ति काव्य में अधिकतर प्रबंधात्मक रूप में मिलते हैं । इनमें 'रामचरितमानस' उल्लेखनीय हैं । दूसरे रामकाव्य में गीतात्मकता भी मिलती हैं । 'विनयपत्रिका' में मुक्तक शैली तो रामचंद्रिका में रीति पद्धति, रामायण, महानाटक और हनुमान नाटक में संवाद पद्धति हैं ।

* **अलंकार – छंद :** रामभक्त कवियों ने लगभग सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया हैं । तुलसी के काव्य में तो मुख्यतया सभी प्रकार के अलंकार मिल जाते हैं । उनका काव्य रूपक और उपमा के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं । दोहा-चौपाई के प्रयोग से काव्य सुस्वर बन गया है ।

* **भाषा :** रामभक्त कवियों ने अधिकतर अवधी भाषा का प्रयोग किया है । राम का जन्मस्थान अवध प्रांत होने के कारण उनके जन्मभूमि की सामान्य जनता की भाषा अवधी में राम के पावन चरित्र का वर्णन करना इन कवियों ने उचित समझा । तुलसी ने ब्रज़ भाषा का भी प्रयोग किया है । रामकाव्य में भोजपुरी, बुंदेलखंड़ी, राजस्थानी फारसी और संस्कृत के भी शब्द मिलते हैं ।

* **परंपरा :** रामकथा को जनमानस की भावभूमि पर अधिष्ठित करने का श्रेय भक्तिकालीन कवियों को ही हैं । इनकी भाषा में भावात्मकता रसानुकूलता, उपर्युक्तता, स्वाभाविकता, भावव्यंजकता थी । रामकाव्य की निर्मिति का कार्य निरंतर चलता रहा है ।

  संस्कृत के रामायण, रघुवंश, उत्तर रामचरित आदि प्रेरक ग्रंथों से रामकाव्य अवधी, ब्रज बोलियों में लिखा गया । रामानंद, रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं । भूपति, मुनीलाल, तुलसीदास ने रामचरित पर प्रकाश डाला है । भक्तिकाल में रामकथा जनमानस में लाने का श्रेय ।

14.3.4. कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं परंपरा :

3.4 कृष्ण भक्ति शाखा :

सगुण भक्ति काव्य शाखा के अंतर्गत कृष्ण भक्ति काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है । इस शाखा ने भगवान श्रीकृष्ण की मधुर भक्ति को अपनाया और कृष्ण के ऐसे स्वरूप का प्रचार किया जो अत्यंत मनमोहक था ।

कृष्ण भक्ति के प्रचार-प्रसार में पुष्टिमार्ग के अष्टछाप के कवियों ने अपना अमूल्य योगदान दिया । इन अष्टछाप के कवियों में सूरदास के अतिरिक्त कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छित स्वामी, चतुर्भूजदास, नंददास आदि थे ।

भक्तिकाल में कुछ ऐसे कवि भी थे जिन्होंने वल्लभ, निम्बार्क, सखी, चैतन्यादि संप्रदाय विशेष में बंधकर राधाकृष्ण की क्रियाओं का स्वतंत्र भाव से चित्रण किया । कृष्णभक्ति में सूरदास, रसखान, आदि प्रमुख थे । कृष्णकाव्य की परंपरा के मूल स्त्रोत वेदों में पाए जाते हैं ।

* कृष्णभक्ति काव्यशाखा की प्रवृत्तियाँ :

कृष्ण लीला का वर्णन : भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अनेक धर्म ग्रंथों में हुआ । कृष्ण भक्त कवियों का भी यह प्रसंग सबसे प्रिय रहा और उन्होंने कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया । उन्होंने कृष्ण की लीलाओं का उन्मुख गान किया । उन्होंने कृष्ण लीला के अनेक कल्पित किए । इनमें कृष्ण की बाललीलाएँ, वात्सल्यपूर्ण लीलाएँ, सख्य भाव की लीलाएँ माधुर्य भाव पूर्ण लीलाएँ आदि प्रमुख रही । सूरदास के काव्य में तो वात्सल्यपूर्ण लीलाओं का सबसे अधिक विस्तार है । वात्सल्य भक्ति में तो वे सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं । कृष्ण की बाल लीलाओं का भी अत्यंत आकर्षक चित्रण उन्होंने किया है । माधुर्य भाव की लीलाओं में मीराबाई का स्थान उल्लेखनीय है ।

* **कृष्ण के लोकरंजक स्वरूप का वर्णन :** कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक लीलाधारी रूप के चित्रण में तन, मन, प्राण समर्पित कर दिए । इनमें कृष्ण का गोकुल में लोकनायक के रूप में स्थापित होना, बाल-लीलाएँ, पनघट प्रसंग, मुरली-माधुरी नटखट गोपाल की गोपियों से छेडछाट कालियाँ दमन आदि प्रमुख प्रसंग है ।

* **पात्र तथा चरित्र-चित्रण :** प्रमुख पात्र है कृष्ण तथा नंद यशोदा, गोप-गोपी, राधा बलराम, उद्धव आदि गौण पात्र है । इनके द्‌वारा वात्सल्य, प्रेम, सख्य भावना दिखाई है, तो कहीं कहीं पात्र प्रतीकात्मक भी बनाए हैं । उदा. श्रीकृष्ण परमात्मा, राधा-भक्ति , गोपियाँ जीवात्मा आदि पात्रों की संख्या अधिक होने पर भी कृष्ण लीलाओं का महत्त्व कम नहीं हुआ हैं ।

* **शृंगार रस का वर्णन :** कृष्ण भक्त कवियों ने जहाँ अपनी भक्ति में जहाँ सख्य भाव को महत्त्व दिया वहीं माधुर्य भाव और कांता भाव को भी प्रधानता दी । अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों में शृंगारिक प्रवृत्ति मिलती हैं । उन्होंने शृंगार के संयोग और वियोग के जो चित्र अंकित किए वे अपने आपने अत्यंत अनुपम हैं । इसके अंतर्गत नखशिख और नायिका भेद की प्रधानता रही है । राधा और कृष्ण के प्रेम - प्रसंगों का चित्रण तो अत्यंत मधुर बन पड़ा हैं ।

* **भक्तिभावना :** कृष्ण भक्ति काव्य में भक्ति के मूल में भगवद् भक्ति काम कर रही हैं । जो कि पात्र के स्वभाव के भेद के अनुसार दास्य, वात्सल्य, सख्य और कांता भाव में परिवर्तित हो जाती है । तथा नवधा भक्ति के अन्य अंगों का भी वर्णन मिलता है । कर्म, ज्ञान तथा योग से भक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी गई है । अटूट प्रेम, एकनिष्ठता, विश्वास भक्ति से व्यक्त करने वाली सूरदास की गोपियाँ इसिलिए कहती है - ऊधौ, मन नाहीं दस-बीस । एक हुतौ सो गया स्याम संग, को आराधैईस **सामाजिक पक्ष -** कृष्ण भक्ति काव्य में सामाजिकता का वर्णन अल्प ही मिलता है । यह काव्य मुख्यत: लीलावादी काव्य हैं । लोकमंगल या समाज

कल्याण से इसका कोई संबंध नहीं हैं किंतु उनकी भक्ति नितांत वैयक्तिक होते हुए भी वे न समाज से कटे थे न समाज से पूर्ण जुड़े थे । इनकी भक्ति भगवान के साथ जुड़ी थी वह वैयक्तिक संबंध का प्रतिफलन थी।

इस-छंद अलंकारों का प्रयोग : कृष्ण भक्ति काव्य अधिकतर गेय पदों में लिखा गया । हृदय की रागात्मक वृत्ति के संयोग से जब तीव्र तथा मधुर अनुभूतियाँ भावों के रूप में उमड़ती हैं तब कवि के कंठ से गीत निर्माण होते हैं । कृष्ण भक्ति काव्य में प्रमुख तीन रस शृंगार, अद्‌भुत, शांत मिलते हैं । सूरदास के काव्य में वात्सल्य शृंगार के पद मिलते हैं । उदा. ''मैया मैं नहीं माखन खायों....।'' मैं वात्सल्य रस है । सूर का वात्सल्य वर्णन विश्व साहित्य में बेजोड़ है । छंदों के अंतर्गत चौपाई, दोहा, रोला, सवैया, कवित्त आदि का प्रयोग हुआ हैं । अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशंयोक्ति आदि की प्रधानता के ही उनके प्रयोग से काव्य में सौंदर्य वृद्‌धि हुई हैं ।

काव्यरूप भाषा : समस्त कृष्ण काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया हैं । ब्रज भाषा कृष्ण की जन्मभूमि, लीला भूमि की मुख्य भाषा थी । कवियों ने भगवान श्रीकृष्ण का लीला वर्णन किया हैं । कृष्ण भक्त कवियों ने मुख्यत: गेय मुक्तक कृष्ण के जीवन के विशेष प्रसंगों को चुना हैं । गीत शैली, राग-रागिनियों के कारण उनका काव्य अनूठा बना हैं ।

परंपरा : हिंदी कवियों को कृष्ण काव्य की परंपरा जयदेव और विद्‌यापति से मिली हैं । वीरगाथा काल में कवि चंदबरदामई ने 'पृथ्वीराजरासों' में दशावतार के अंतर्गत कृष्णावतार का वर्णन किया हैं ।

भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा में वल्लभ संप्रदाय के वल्लभाचार्य एवं अष्टछाप कवि, निंबार्क संपदाय के श्री भट्ट, राधावल्लभ संप्रदाय के हित हरिवंश, दामोदर दास, हरिदासी या सखी संप्रदाय के स्वामी हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, चैतन्य संप्रदाय के चैतन्य महाप्रभु, रामराय, सूरदास, भगवानदास, रसखान आदि कवि आते हैं ।

रीतिकाल में घनानंद, देव, बिहारी, मतिराम की कृष्णभक्ति संस्कारगत हैं । आधुनिक युग में यह धारा अबाध गति से प्रवाहित हो रही हैं । भारतेंदु, दृविवेदीकाल भी इससे अछूता न रहा । हरिऔंध (कृष्णशतक, प्रियप्रवास), डॉ. रसाल, अंबिकादत्त, निराला, आदि ने कृष्ण काव्य लिखा हैं ।

14.4 शब्दार्थ :

अवरोध - बाधक रुकावट

चौपाई : एक छंद जिसके चार पद होते हैं ।

दैन्य : दीनता का भाव

14.5 सारांश :

भक्ति का अर्थ ईश्वर के प्रति समर्पण से हैं । भक्तिकाल में जहाँ एक और निर्गुण धारा प्रवाहित हो रही थी वहीं दूसरी और सगुण भक्ति का प्रभाव भी बढ़ रहा था । सगुण भक्ति को भी दो शाखाओं में बाँटा गया । एक रामभक्ति और दूसरी कृष्ण भक्ति ।

यद्‌यपि रामकाव्य और कृष्णकाव्य दोनों में ही साकारोपासना का विधान किया गया है और ईश्वर भक्ति, आत्मसमर्पण, नामरूप कीर्तन तथा गुण-भक्ति आदि की प्रवृत्तियाँ जिसप्रकार ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा में विद्यमान हैं उसी प्रकार रामकाव्य और कृष्णकाव्य में भी यह प्रवृत्तियाँ विद्‌यमान हैं ।

कृष्ण काव्य में सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति को प्रधानता दी गई है । इस शाखा के प्रमुख कवि सूरदास है, जिन्होंने कृष्ण की विविध लीलाओं का अत्यंत मनोहारी चित्रण किया हैं । राम कृष्ण से संबंधित काव्य लेखन आधुनिक काल तक चला आया है ।

14.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

- ✻ रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ।
- ✻ सगुण भक्ति साहित्य की विशेषताएँ लिखिए ।
- ✻ कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

- ✻ रामभक्ति शाखा
- ✻ कृष्णभक्ति शाखा
- ✻ कृष्ण काव्य परंपरा

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

- ✻ रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए ।
- ✻ रामकाव्य के दो रचनाकार तथा दो प्रसिद्ध रचनाओं के नाम लिखिए ।
- ✻ कृष्ण काव्य की प्रसिद्ध तीन रचनाओं के नाम लिखिए ।
- ✻ कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

- ✻ तुलसीदास के राम की विशेषता क्या है?

  अ) धार्मिक ब) युद्धप्रेमी क) मर्यादा पुरुषोत्तम

- ✻ अधिकतर कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण का गान किस रूप में किया हैं ?

  अ) बाललीला ब) शृंगार लीला क) ब्रजलीला ड) गोपलीला

14.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

- ✻ रामभक्ति शाखा के कवियों की रचनाओं का संकलन कीजिए ।
- ✻ कृष्णभक्ति शाखा के कवि और उनकी कृतियों की सूची तैयार कीजिए ।
- ✻ सूरसागर के पाँच पदों का अर्थ समझने का प्रयत्न करें ।
- ✻ भक्ति साहित्य के संदर्भ में अपने विचार लिखिए ।

14.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- ✻ सूरसागर सार - डॉ. धीरेंद्र वर्मा
- ✻ हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास - डॉ. राजनाथ शर्मा
- ✻ हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ - डॉ. नामदेव उतकर, चंद्रलोक प्रकाशन, नागपुर

pppp

इकाई – 15
रामभक्ति साहित्य के प्रतिनिधि कवि – तुलसीदास

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 विषय विवरण

15.3.1 सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

15.4 शब्दार्थ

15.5 सारांश

15.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

15.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

15.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

15.1 उद्‌देश्य :

* रामभक्ति साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
* तुलसीदास की रचनाओं के अध्ययन से उनकी राम विषयक धारणा को समझ सकेंगे ।

15.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में रामभक्ति शाखा का अपना विशेष महत्त्व हैं । रामभक्ति साहित्य के प्रवर्तक गोस्वामी तुलसीदास हैं । तुलसीदास ने ऐसे विष्णु के अवतार राम को प्रणाम किया है । उनके ईश्वर लोकरक्षक और धर्मोद्‌धारक हैं । उनके राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय हैं । मर्यादा पुरुषोत्तम राम इनके लिए आदर्श हैं । इन्होंने वैष्णव धर्म के आदर्शों को अपने सामने रखा हैं और सेवक बनकर इन भक्तों ने राम की सेवा की हैं । अर्थात राम काव्य का दृष्टिकोण, संख्य, दास्यभक्ति है । इन्होंने ज्ञान से भक्ति का स्थान श्रेष्ठ बताया हैं । सेव्यभाव को स्वीकारते हुए तुलसीदास ने लिखा हैं ।

''सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि ।''

इस भवसागर को पार करने के लिए भगवान की सेवा करना अनिवार्य हैं । भक्तों को चाहिए कि उदार दृष्टिकोण से ईश सेवा करनी चाहिए इनके लिए जीव सत्य हैं, क्योंकि वह ब्रह्म का अंश हैं । उन्होंने राम के अलौकिक गुणों का प्रचार और प्रसार किया हैं ।

तुलसीदास ने अपनी भक्ति को सगुण भक्ति, अनपायिनी भक्ति, भेदभाक्ति, प्रेम-भक्ति, निष्काम भक्ति, नवधा भक्ति, आदि अनेक नामों से अभिहित किया हैं । उन्होंने निर्गुण और निर्गुण ज्ञान और भक्ति का समन्वय करके निर्गुणोपासना को भी सगुणों पासना में अंतर्भूत कर लिया हैं । तुलसी-साहित्य में अनेक स्थलों पर पुष्टि मार्गीय भक्ति के अनुग्रह सिद्‌धांत की अभिव्यक्ति भी मिलती हैं । तुलसीदास ने रामभक्ति के माध्यम से एक पूरा स्वतंत्र दर्शन प्रस्तुत किया हैं ।

15.3 विषय - विवरण :

रामभक्ति साहित्य के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास का साहित्यिक परिचय - महाकवि तुलसीदास का स्थान सिर्फ हिंदी साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में भी सर्वश्रेष्ठ हैं । इसी लिए इन्हें राम भक्ति साहित्य का सम्राट कहा जाता हैं । तुलसीदास के जन्मकाल एवं जन्मस्थान के विषय में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं फिर भी अनेक विद्‌वानों का एकमत हैं कि तुलसीदास का जन्म संवत्‌ 1554 की श्रावण शुक्ल सप्तमी को राजापुर में हुआ था ।

बाबा नरहरिदास ने बालक तुलसी को अपने आश्रय में रखकर पढ़ना लिखना सिखाया । बालक तुलसी ने १५ वर्ष गुरु के सान्निध्य में रहकर विधिवत्‌ शास्त्राध्ययन किया । शिक्षा पूरी होने पर बाबा नरहरिदास ने दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से तुलसी का विवाह किया । परंतु शीघ्र ही ग्रहस्थ जीवन से विरक्त होकर उन्होंने रामभक्ति को अपनाया और प्रसिद्‌ध वैष्णव संत रामानुजाचार्य से दीक्षा प्राप्त की ।

तुलसीदास अत्यंत प्रतिभा संपन्न थे, संस्कृत, अवधी, ब्रज के पंडित थे । उन्होंने बारह ग्रंथों की रचना की । इनमें 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली', 'कृष्ण गीतावली', 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'वैराग्य संदीपनी', 'बखै रामायण', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'रामलला नहछू' आदि । इन ग्रंथों के अतिरिक्त हनुमान बाहुक, हनुमान चालिसा को कुछ विद्‌वानों ने स्वीकार किया हैं । 'श्रीरामचरितमानस' उनकी अक्षय कीर्ति का प्रमुख आधार हैं । वह एक श्रेष्ठ भारतीय महाकाव्य हैं । इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का व्यापक जीवन चित्रित हैं तथा यह भारतीय संस्कृति का अनमोल खजाना हैं । 'रामचरितमानस' में यह बताया गया हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को अपनी मर्यादा की रक्षा और कर्तव्य का पालन करना चाहिए । अपने उपास्य राम को उन्होंने शील, सदाचार

और सांसारिक कर्तव्य पालन के कारण पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रकट किया हैं । उनके साहित्य में समाज के विभिन्न चरित्रों का चित्रण मिलता हैं । पारिवारिक संबंधों में उन्होंने आदर्श व्यवहार की समुचित व्याख्या की । राम-लक्ष्मण, भरत हनुमान आदि आदर्श चरित्र के चित्रण में विशेष श्रम किया हैं ।

* **खण्डकाव्य :** 'जानकी मंगल' तथा 'पार्वती मंगल' तुलसी कृत खंडकाव्य है जिनमें क्रमश: राम और सीता तथा शिव और पार्वती के विवाह की कथाएँ वर्णित हैं ।

* **रामलला नहछू :** सोहर छंद में लिखित लघु-आकार का एकार्थ काव्य हैं । कवि ने इसकी रचना विवाहोत्सव के समय सामान्य रूप में व्यवहार में आने योग्य लोक काव्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर की हैं ।

* कवितावली और गीतावली न तो पूर्णत : प्रबंध काव्य ही है और न ही पूर्णत: मुक्तक । इनमें दोनों का सामंजस्य हैं । दोनों ही कृतियाँ सात कांड़ों में विभक्त हैं, किंतु चुने हुए मार्मिक प्रसंगो को ही संबद्ध कांडों में स्थान दिया गया हैं ।

* विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली, बरवै रामायण, मुक्तक रचनाएँ हैं । 'विनयपत्रिका' भक्तिरस का महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं । कलियुग की यंत्रनाओं से पीडित तुलसी ने राम के दरबार में प्रेषित करने के निमित्त 'विनयपत्रिका' की रचना की हैं ।

* दोहावली में युगीन यथार्थ की विसंगतियों के निरूपक दोहों की बहुलता हैं ।

* रामाज्ञा प्रश्न दोहों में लिखा, शकुन विचार का ग्रंथ हैं जिसमें राम कथा के विविध प्रसंगों को लेकर लिखे गए दोहों के माध्यम से शुभाशुभ फल का संकेत किया हैं ।

* वैराग्य संदीपनी के चार प्रकरणों में (१) मंगलाचरण (२) संत स्वभाव वर्णन (३) संत महिमा वर्णन और (४) शांति वर्णन का समावेश हैं ।

* बरवैरामायण में राम के शील के अतिरिक्त सीता के सौंदर्य, विरह तथा रामभक्ति का बरवै छंद में निरुपण हुआ हैं ।

उपर्युक्त बारह रचनाओं के अतिरिक्त 'हनुमान बाहुक' को भी तुलसी की प्रामाणिक रचना माना जाता हैं ।

इस प्रकार तुलसी ने जगत् को विद्‌याजन्य और सत्यस्वरूप तथा संसार को अविद्‌याजन्य और असत्य स्वरूप माना हैं । तुलसी ने मुक्ति के प्राय: सभी प्रकारों के निदर्शन प्रस्तुत किए हैं । उन्होंने जीवन्मुक्ति को महत्त्वपूर्ण माना हैं। वस्तुत: मुक्ति भक्ति का नैसर्गिक परिणाम है । इसलिए भक्त मुक्ति की लालसा न करते हुए भक्ति में लीन रहते हैं ।

15.4 शब्दार्थ :

कांड - अध्याय, सर्ग

अविद्‌याजन्य - अज्ञानयुक्त

15.5 सारांश :

यद्‌यपि स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा के देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होते आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा का गान कर रहे थे पर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश तुलसीदास की वाणी द्‌वारा स्फुरित हुआ । तुलसीदास की काव्य प्रतिभा ने साहित्य जगत् में अपना चमत्कार दिखाया । ऐसी कोई शैली नहीं जिसमें तुलसी ने अपनी कलम न चलाई हो ।

तुलसीदास ने समाज की मर्यादा पर विशेष रुप से लिखा हैं । पिता, पुत्र, माता, पति, पत्नी, भाई, सखा, सेवक, पुरजन आदि का पारस्परिक संबंध होना चाहिए, इन सबका उत्कृष्ट निरुपण अपनी कुशल लेखनी से किया हैं

। तुलसीदास ने समाज का आदर्श इसलिए लिखा हैं । क्योंकि उन्होंने अपने समय में समाज की दुरावस्था देखी थी । समाज सुधार के लिए ही उन्होंने 'रामायणा' की चरित्ररेखा को अपने 'रामचरित्रमानस' में नवीनता के साथ रखा हैं ।

तुलसीदास एक दार्शनिक कवि थे । उनके दो ही ग्रंथ ऐसे हैं, जिनमें उनके दर्शन ज्ञान का पता चलता हैं । एक तो 'विनयपत्रिका' हैं, दूसरा 'रामचरितमानस' । उन्होंने अद्वैतवाद के भीतर ही विशिष्टद्वैतवाद की सृष्टि की हैं । 'रामचरितमानस' में मनोवैज्ञानिकता का रूप झलकता हैं । वाल्मीकि, कालिदास आदि के राम होते हुए भी तुलसी के राम उनसे भिन्न हैं - राम तो बस तुलसी के आदर्श राम हैं ।

अत: कहना उचित होगा कि नि:संदेह तुलसी का कार्य हिंदी साहित्य के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं ।

15.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* तुलसीदास के साहित्यिक योगदान को स्पष्ट कीजिए ।
* तुलसीदास को भक्तिकाल का प्रतिनिधि कवि कहा जाता हैं, सिद्ध कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

* तुलसीदास की रचनाएँ
* 'रामचरितमानस'

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

* तुलसीदास द्वारा रचित चार रचनाओं के नाम लिखिए ।
* तुलसीदास की विनयपत्रिका लिखने का उद्देश्य क्या हैं ?
* तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट रचना कौनसी?
* तुलसी के बरवै रामायण की क्या विशेषतता हैं ?

घ) सही पर्याय लिखिए ।

* दोहावली किसकी रचना हैं?
  अ) कबीर ब) तुलसीदास क) सूरदास ड) मीराबाई
* रामचरितमानस में किसका जीवन चरित्र हैं ?
  अ) राम ब) कृष्ण क) राधा ड) सीता

15.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता पर अपना मत व्यक्त कीजिए ।
* रामचरितमानस में सामाजिक और पारिवारिक आदर्शों का पालन करें ।
* रामचरितमानस के पदों का श्रवण कीजिए ।
* तुलसी संत थे या समाज सुधारक अपना मत व्यक्त कीजिए ।

15.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* तुलसीदास - डॉ. श्रीनिवास शर्मा
* रामचरितमानस - तुलसीदास

pppp

इकाई – 16
कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि

16.1 उद्‌देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 विषय विवरण

  16.3.1 कृष्णभक्ति शाखा के कवि : रसखान

  16.3.2 कृष्णभक्ति शाखा के कवि : सूरदास

  16.3.3 कृष्णभक्ति शाखा की कवयित्री मीरा

16.4 शब्दार्थ

16.5 सारांश

16.6 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

16.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

16.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

16.1 उद्देश्य :

- ※ कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
- ※ कृष्णभक्ति शाखा के कवियों के मतों तथा उनके योगदान को समझ सकेंगे ।

16.2 प्रस्तावना :

सगुण भक्ति शाखा के अंतर्गत कृष्णभक्ति शाखा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता हैं । इस शाखा के कवियों ने भगवान श्रीकृष्णकी मधुर भक्ति को अपनाया और कृष्ण के ऐसे स्वरूप का प्रचार किया जो अत्यंत मनमोहक था ।

कृष्णभक्ति के प्रचार प्रसार में रसखान, सूरदास और मीरा का विशेष योगदान रहा था ।

रसखान मुसलमान होते हुए भी कृष्णभक्ति की भावना इनके हृदय में इतनी रसमय और उत्कृष्ट थी कि इन्हें कृष्णभक्ति शाखा के श्रेष्ठ कवियों में स्थान दिया जाता हैं ।

इसी प्रकार सूरदास ने भी कृष्ण की बाल-लीलाओं का, कृष्ण की माखनचोरी का, कृष्ण द्वारा कालियानाग मर्दन का श्रीकृष्ण द्वारा दाऊ की शिकायत, गोपियों से छोडछाड उद्धव द्वारा गोपियों को संदेश आदि का सुंदर चित्रण किया हैं । मीरा ने श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व स्वीकार करके कृष्ण के प्रति अपना एकनिष्ठ प्रेम व्यक्त किया हैं ।

16.3 विषय - विवरण

16.3.1 कृष्णभक्ति शाखा के कवि रसखान का साहित्यिक परिचय कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में रसखान का विशिष्ट स्थान हैं । रसखान एक मुसलमान थे पर इनकी कृष्णशक्ति की भावना इतनी उत्कृष्ट और रसमय थी कि उनकी कृष्णभक्ति शाखा के श्रेष्ठ कवियों में गिनती की जाती हैं । इनका जन्म लगभग १५४८ ई.में माना जाता हैं । ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे । इन्होंने 'प्रेमवाटिका' में अपने को शाही खानदान का कहा हैं -

''देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान ।''

इस कथन के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि रसखान शाही वंश से ताल्लुख रखते थे । रसखान ने दिल्ली के जिस गदर का वर्णन किया है वह घटना संवत 1612 की हैं । ऐसा कहा जाता है कि रसखान किसी बनिए की लड़की पर आसक्त थे । बाद में उनका प्रेम कृष्ण के प्रति उन्मुख हो गया । दिल्ली छोड़ वे इधर उधर भटकते रहे । तीन वर्ष तक वे यमुना के तट पर रहे और वहीं पर रहे और वहीं पर उन्होंने 'रामचरितमानस' की कथा सुनी । यहीं से उनके मन में हिंदू धर्म के प्रति आस्था का जागरण हुआ और वे कृष्ण भक्ति में तल्लीन हो गए । रसखान ने गोस्वामी विठ्ठलनाथ से दीक्षा ली । उनकी कविता का रचनाकाल 1640 माना जाता हैं । उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ, 'प्रेमवाटिका', सुजान रसखान, दानलीला और अष्टयाम ।

- ※ सुजान रसखान में 181 सवैये, 17 कवित्त, 12 दोहे और 4 सोरठे मिलते हैं । इनमें भक्ति, प्रेम, रूपमाधुरी, वंशीमोहिनी आदि के सरस प्रसंगों की व्यंजना हुई हैं । 'सुजान रसखान' के सभी कवित्त एवं सवैया छंदों में मनमोहन कृष्ण तथा गोपियों के प्रसंग हैं ।
- ※ 'प्रेमवाटिका' के दोहे में रसखान ने प्रेम का विशद और व्यापक वर्णन किया हैं । इसमें प्रेम का स्वरूप, प्रेम की पहचान, प्रेम प्रभाव, प्रेम प्राप्ति के साधन तथा प्रेम की सर्वोच्चता का निरुपण हैं । इसमें अभिव्यक्त प्रेम सांसारिक प्रेम न होकर आध्यात्मिक प्रेम हैं । प्रेम उनके जीवन और काव्य का मूलाधार है । उदा.

जेहि बिन जाने कछुहि नहिं जान्यों जात बिसेस ।
सोई प्रेम जेहि जान के रहि न जात कछु सेस

प्रेमफाँस सो फँसि मरै सोई जियै सदाहि

प्रेम मरम जाने बिना मरि कोइ जीवत नाहिं ।''

* 'दानलीला' में कवल 11 पद्य हैं जिनमें पौराणिक प्रसंग को कवि ने राधाकृष्ण संवाद के रूप में प्रस्तुत किया हैं ।

* 'अष्टयाम' रचना में अनेक दोहे हैं जिनमें कृष्ण की दिनचर्या एवं विभिन्न क्रीड़ाओं को चित्रित किया गया हैं । रसखान ने कोई प्रबंधकाव्य नहीं लिखा । उनके फुटकर सवैया और कवित्त मिलते हैं । उनकी प्रेमवाटिका में अवश्य दोहे मिलते हैं । रसखान कृष्ण के प्रेम, सौंदर्य के निष्णात भक्त थे । वे निष्काम प्रेम के समर्थक हैं । उन्होंने कहा है कि – ''शुद्ध प्रेम साधना ही सब साधनों से कठिन हैं । उनकी भक्ति और प्रेम विव्हलता ही उनके फुटकल छंदों में अभिव्यक्त हो गई । रसखान के सवैया और कवित्त के कई संग्रह मिलते हैं, जिनमें छंदों की संख्या पृथक–पृथक हैं । उन छंदों में लोच हैं, संस्कृति है, दिल को छूने की अद्भुत शक्ति हैं ।

रसखान की रचनाओं में ब्रजभाषा का सहज व स्वाभाविक रुप मिलता है । उनके काव्य का रस शृंगार हैं और उसका आलंबन श्रीकृष्ण संयोग–वियोग के वर्णन के साथ बालीलाओं में वे अधिक रमे हैं । उसके उपरांत दूसरा प्रमुख रस वात्सल्य हैं जिसमें श्रीकृष्ण के बालरूप की माधुरी हैं । अनुप्रास, यमकादि, अलंकारों के उचित प्रयोग एवं शुद्ध परिमार्जित ब्रजभाषा से इनके काव्य में कलापक्ष एवं भावपक्ष का सामंजस्य मिलता हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रसखान के कहने का ढंग सरल होने पर भी भाव व्यंजना इतनी सरल, मधुर और प्रभावशाली होती है कि पढ़ते ही हृदय को आकर्षित कर लेती है । रसखान ने काव्य कला पर ध्यान देकर हृदय को घायल कर देने वाली, कृष्ण 'प्रेम की पीर' उत्पन्न करने वाली अनुभूति की अभिव्यक्ति को महत्व किया है और इसमें उनको पूर्ण सफलता मिली । रसखान का काव्य जनता का कंठहार सरल और मधुर अनुभूतियों के ही कारण है और इसी लिए उनकी कविता को 'रस की खानी' कहा जाता है ।

16.3.2 कृष्णभक्ति शाखा के कवि सूरदास का साहित्यिक परिचय :

हिंदी साहित्य के कृष्णभक्ति काव्य के प्रतिनिधिक कवि के रूप में सूरदास का स्थान मूर्धन्य हैं । सूरदास का जीवन वृत्त उनकी अपनी कृतियों से आंशिक रूप में और बाह्य साक्ष के आधार पर अधिक उपलब्ध होता हैं । सूरदास का जन्म सीहीं नामक ग्राम में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था । ऐसा कहा जाता है कि सूर तेरह वर्ष की आयु में ही घर से विरक्त होकर अपने गाँव से चार कोस दूर एक तालाब के तट पर पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे और अठारह वर्ष तक वहीं रहे । वल्लभाचार्य ने सूरदास को पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया, श्रीकृष्णलीला से परिचित कराया और अपने साथ गोवर्धन पर श्रीनाथजी के मंदिर ले जाकर उन्हें कीर्तन का मंडन सौंपा । यहीं रहकर सूर ने श्रीकृष्ण की विविध लीला से संबंधित सहस्राधिक पद रचे और गाए, साथ ही अनेक ग्रंथों की रचना की । इसमें 'सूरसागर' 'सूरसारावली', 'साहित्य लहरी', 'सूरपचीसी', 'सूरामायण' आदि उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त 'भागवत भाषा', 'दशम स्कंध भाषा', 'सूरसागर सार', 'सूरनारायण', 'मानलीला', 'राधा रसकेलि', 'कौतूहल', 'गोवर्धनलीला', 'भँवर गीत', 'नागलीला', 'व्याहलों', 'प्राणप्यारी', 'दृष्टिकूट', 'सूरशतक', 'सूरसाठी', 'सूरपचीसी', 'सेवा फल', 'सूरदास के विनय' आदि के स्फूट पद, 'हरिवंश टीका', 'एकादशी महात्म्य', 'नल दमयंती', रामजन्म आदि उनके ग्रंथ माने जाते हैं ।

* सूरसारावली को अनेक विद्वानों ने सूरसागर का सार अथवा उसकी विषय सूची मात्र माना हैं किंतु वस्तुत: यह एक स्वतंत्र रचना हैं जो एक वृहत होली गीत के रूप में रचित हैं । इसकी टेक हैं – ''खेलत यह विधि हरि होरी हो, हरि होरी हो, हरि होरी हो वेद विदित यह बात ।'' इसमें कुल मिलाकार 1107 पद्य हैं जो इस लंबे गीत की कड़ियाँ हैं । इसमें 'भागवत' और 'सूरसागर' के पूरे बारह स्कंधों की कथा का सार अखंड प्रवाह में एक साथ दिया गया हैं ।

* ‘साहित्य लहरी’ 118 पदों की रचना हैं । इसका वर्ण्य-विषय नायिका भेद और रस, अलंकार आदि काव्योंगों के लक्षण और उदा. प्रस्तुत करना हैं । राधा-कृष्ण का पूर्वानुराग, मिलनोत्कंठा, संयोगमान, अनुनय-विनय, वियोग दशा, बासक, सज्जा, राधा, उद्धव के प्रति वियोग दशा-निरूपण आदि प्रेम-प्रसंगो को पदों में निबद्ध किया गया हैं ।

* ‘सूरसागर’ सूरदास की अक्षय कीर्ति का आधार हैं और सूर की सारी रचनाओं का यह समुच्चय वास्तव में यह विशाल सागर हैं जिसमें सूर ने अपने विचारों और भावनाओं के मोती भर दिए हैं । इसी में उन्होंने शुद्ध द्वैतवादी दर्शन का सार और पुष्टिमार्गी भक्ति का निचोड भर दिया हैं । वात्सल्य में संख्य और कांता भक्ति तथा सेवा का जो सामंजस्य साहित्यसार में एकत्र हुआ हैं, वह अन्यत्र नहीं ।

सूरसागर के पदों की संख्या लगभग सवा लाख तक मानी जाती हैं । जिसे पाँच भागों में विभाजित किया जाता हैं - विनय के पद, बाल-लीला के पद, सौंदर्य वर्णन संबंधी पद, मुरली विषयक पद और भ्रमरगीत । इनमें से विनय के पद तो भक्ति भावना से संबंधित हैं तथा अंतिम तीन तो कृष्णलीला से ही संबंधित हैं और बाल-लीला के पद भी कृष्ण चरित से ही संबंधित जाते हैं । बाल मनोदशाओं, चेष्टाओं के वर्णन में उनका मन अधिक रमा हैं । इसलिए वह अत्यंत स्वाभाविक एवं मनोहारी बना हैं । सूर का यह बाल-वर्णन, विश्व साहित्य में अद्वितीय कहा जाता हैं । उदा. सोभित कर नवनीत लिए मैया कबहिं बढेगी चोटी....

मैया मैं नहि माखन खायौ....

‘सूरसागर’ का मुख्य विषय ब्रजवल्लभ कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन हैं । सूर ने कृष्ण कथा को ब्रज लीला, मथुरा लीला और द्वारका लीला के रूप में विस्तृत फलक पर प्रस्तुत किया है । ‘सूरसागर’ में भागवत के दशम स्कंध की कथा को ही अधिक विस्तार के साथ गाया गया हैं । सारांशत: सूरदास ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं का इतना सुंदर अनुपम, वर्णन किया हैं । वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सुंदर वर्णन सूरदास ने किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । सूरदास के काव्य में लौकिक चित्रण के पीछे अलौकिक भाव हैं । ब्रज भाषा को परिमार्जित, समृद्ध प्रयोग संस्कृत के तत्सम तथा गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, फारसी, अरबी के शब्द प्रयोग से उनकी भाषा, प्रगल्भ बनी है । गीतात्मकता, भावुकता, सुकुमारता के कारण उनका काव्य सुस्वर बना हैं । श्रृंगार, वात्सल्य, करुण हास्य रस, रूपक, उपमा अतिशयोक्ति अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से भाषा भावाभिव्यक्ति सहज कर सकी हैं । सूरदास जीवन के सभी क्षेत्रों का कोना-कोना झाँक आए हैं । अत: सूरदास हिंदी साहित्य के अमर कवि माने जाते हैं।

16.3.3 कृष्ण भक्तिशाखा की कवयित्री मीरा का साहित्यिक परिचय : हिंदी कृष्ण कवियों में मीराबाई का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता हैं । मीराबाई का जन्म 1504 ई में मेड़ता के समीप ‘कुडकी’ गाँव में राठौड वंश के मेडवियाँ शाखा के प्रवर्तक रावदूदा के पुत्र रत्नसिंह के घर हुआ । मीरा के जन्म के दो वर्ष बाद उनकी माता का देहांत हो गया । इसके बाद रावदूदा ने ही मीरा का पालन पोषण किया । मीराबाई के दादाजी वैष्णव भक्त थे और कृष्ण के उपासक थे । बाल्यकाल से ही मीराबाई पर भक्ति भाव के संस्कार हो रहे थे । कृष्ण के प्रति उनका बाल हृदय धीरे-धीरे आकर्षित होने लगा था । मीरा बाल्यकाल से ही भगवान श्रीकृष्ण की अपने पति के रूप में कल्पना करने लगी थी ।

मीराबाई का विवाह अपने बाल्यकाल में ही चित्तोड के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था परंतु विवाह के सात वर्ष पश्चात ही भोजराज की मृत्यु हो गई । मीराबाई के सामने कठोर वैधव्य जीवन मुँह बाए खडा हो गया । उनके लिए यह अत्यंत दु:खद प्रसंग था । तत्पश्चात, दादाजी और पिताजी की मृत्यु हो गई और मीरा अकेली पड गई । उनके जीवन में केवल भक्ति भावना का मार्ग ही शेष रह गया था । बचपन के संस्कार प्रबल हो उठे और मीराबाई भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में तल्लीन होकर भजन कीर्तन करने लगी । संत रैदास को उन्होंने अपना गुरु मानकर अपना सारा जीवन कृष्ण भक्ति के लिए अर्पण कर दिया ।

मीराबाई की सभी रचनाएँ कृष्णभक्ति से संबंधित हैं । उनकी कविता में गेयात्मकता, गीतात्मकता हैं । सूर के समान भक्ति में विभोर वे गीत गाया करती थी । उन्होंने गुजराती हिंदी, राजस्थानी पद की रचना की हैं । उनके पद 'मीराबाई की पदावली' में संकलित हैं । उनकी अन्य रचनाओं में राग गोविंद, गीत गोविंद टीका, नरसीजी का मायरा, राग सोरठ के पद, मीराबाई मलार, गर्वागीत, स्फुट पद आदि ।

नरसीजी का मायरा : इसमें यत्र-तत्र दासी उवाच मीरा उवाच आदि मिलते हैं । डॉ. सावित्री सिन्हा का कथन हैं कि 'उत्कृष्टा की कसौटी पर निम्न होने के कारण ही उसे मीरा की रचना न मानना न्यायसंगत नहीं ।

* **गीत गोविंद टीका :** इस पर कुछ विस्तृत सूचना नहीं मिलती है । संभवत: राणा कुंभा द्वारा रचित टीका को ही मीरा की टीका मान लिया गया है ।
* **राग गोविंद :** इस ग्रंथ के अस्तित्व के विषय में अभी तक संदेह है ।
* **सोरठ के पद :** इसमें मीरा के अतिरिक्त नामदेव तथा कबीर के पद भी मिलते हैं ।
* **मीराबाई मलार :** यह भी कोई स्वतंत्र रचना नहीं हैं ।
* **गर्वागीत :** गुजरात में गर्वागीत प्रसिद्ध हैं, जिसके आधार पर मीरा ने इन पदों की रचना की । ये गर्वागीत माधुर्य भावना से ओत-प्रोत हैं ।
* **स्फुट पद :** मीराबाई का साहित्यिक महत्व पदों के कारण ही है । किंतु इनकी संख्या निश्चित नहीं हो पाई हैं । मीरा की भक्ति भावना में प्रभु के निर्गुण, सगुण, अवतारवादी एवं पौराणिक सभी रूपों की अभिव्यक्ति हो पाई है । मीरां ने कृष्ण भक्त कवियों की भाँति बाल-लीला चीरहरण लीला, पनघट लीला, दधिबेचन लीला आदि से संबंधित पदों की रचना की हैं ।

मीरा के पद राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा हैं । वैसे उनमें पंजाबी, खड़ीबोली आदि के शब्द आए हैं । कृष्ण काव्य को समृद्ध बनाने में मीरा का योगदान अद्वितीय है ।

मीरा की भक्ति दाम्पत्य भावों की भक्ति मानी जाती है । उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप में मानकर उनकी उपासन की हैं । कृष्ण मूर्ति के सम्मुख वे तल्लीन होकर नाचा गाया करती थी । वे अपने आपको कृष्ण की गोपी समझकर उन्हें अपना स्वामी मानकर उनकी सेवा करती रही ।

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरों न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।"

संसार में जितना निकट का संबंध पति-पत्नी का है उतना दूसरा और कोई नहीं । मीराबाई का प्रेम श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ था । मीराबाई पहले भक्त थी बाद में कवयित्री । उन्होंने कविता के उद्देश्य से कविता नहीं की केवल भक्ति में विभोर होकर उन्होंने पद बनाए और गाए । मीरा की भक्ति भावना की ओर ध्यान देकर यहीं कहना होगा कि वह एक अनोखी कृष्ण भक्ति न थी जिनके भक्ति पदों को आज भी गाया और सुना जाता हैं ।

यथा पायोजी मैने राम रतन धन पायो ।"

16.4 शब्दार्थ :

निष्णात - कुशल

परिमार्जित - शुद्ध

बाललीला - बालसुलभ क्रीडा

16.5 सारांश :

हिन्दी कृष्णभक्त कवियों में मीराबाई का अपना विशिष्ट स्थान है । मीराबाई का बाल्यकाल राजसी वैभव में गुजरा, किंतु बाल्यावस्था से ही मीरा के सिर से माँ का साया उठ चुक था । जो प्रेम मिला, वह अपने दादा से मिला । मीराबाई के दादा वैष्णव भक्त और कृष्ण के उपासक थे । घर में धार्मिक वातावरण होने की वजह से मीराबाई पर वह संस्कार होना स्वाभाविक ही था । मीराबाई बचपन से ही कृष्ण की मूर्ति को अपने सिने से लगाकर रखती थी । मीरा कृष्ण को अपना सर्वस्व मानती थी । इसी वजह से पति की मृत्यु के बाद परिवार की यातनाओं को सहते हुए भी मीरा ने कृष्ण की भक्ति का त्याग नहीं किया । मीरा ने संत रैदास को अपना गुरु माना । कृष्ण भक्ति में मीरा ने राजसी वैभव का त्याग कर भजन कीर्तन में खुद को तल्लीन कर लिया । मीराबाई की सभी रचनाएँ कृष्ण भक्ति मानी जाती हैं । वे अपने आपको कृष्ण की गोपी माना करती थी । मीराबाई पहले भक्त थी बाद में कवयित्री । मीरा की कृष्ण भक्ति की ओर ध्यान देकर यहीं कहना होगा कि वे एक अनोखी कृष्ण भक्तिन थी : जिनके भक्ति पदों को आज भी गाया और सुना जाता हैं ।

16.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

- भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से रसखान के काव्य की समीक्षा कीजिए ।
- कृष्ण-भक्तिशाखा के जाज्वल्यमान रत्न सूर के काव्य वैभव का सोदाहरण परिचय दीजिए ।
- मीराबाई के साहित्यिक योगदान को स्पष्ट कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

- रसखान की भक्ति भावना
- सूरसागर
- मीरा की कृष्ण भक्ति

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

- रसखान की रचनाओं के नाम लिखिए ।
- सूरदास की सूरसारावली की क्या विशेषता हैं ?
- सूरसागर का मुख्य आधार कौनसा हैं ?
- मीराबाई की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए ।

घ) सही पर्याय लिखिए :

- 'प्रेमवाटिका', 'दानलीला' किसको रचनाएँ हैं?
  अ) मीराबाई ब) सूरदास क) रसखान ड) बिहारी
- सूरदास की अक्षय कीर्ति का आधार क्या हैं ?
  अ) सूरसागर ब) भँवरगीत क) मानलीला ड) गोवर्धन लीला
- मीरा के पद किस भाषा में लिखे हुए हैं ?
  अ) राजस्थानी मिश्रित ब्रज ब) अवधी क) पंजाबी ड) खडीबोली

16.7 स्वाध्याय : क्षेत्रीय कार्य :

- ✻ रसखान के कवित्त और सवैयों की विशेषताएँ बताइएँ ।
- ✻ सूरदास की रचनाओं की तालिका तैयार कीजिए ।
- ✻ सूरदास के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
- ✻ पदावली से विरहानुभूति युक्त पदों को भावों का परिचय प्राप्त कीजिए ।

16.8 संदर्भ : अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

- ✻ हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
- ✻ सूरसागर सार – डॉ. धीरेंद्र वर्मा
- ✻ सूर साहित्य – आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- ✻ मीराबाई की पदावली – परशुराम चतुर्वेदी

✻✻✻✻

इकाई – 17
नीति कवि रहीम

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 विषय विवरण

17.3.1 कृष्णभक्ति शाखा के कवि : रसखान

17.4 शब्दार्थ

17.5 सारांश

17.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

17.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

17.8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

17.1 उद्देश्य :

* रहीम के दोहों को समझने का प्रयास करेंगे ।
* नैतिक मूल्यों का जीवन में क्या महत्त्व हैं – यह समझ सकेंगे ।

17.2 प्रस्तावना :

कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में रहीम का अपना विशेष स्थान हैं । भक्तिकाल के अन्य कवियों की भाँति ही रहीम ने आत्मा एवं परमात्मा के संबंधों को मूर्त रूप देने के लिए विविध रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग किया हैं । बिंदु में वे सारे तत्व हैं जो सिंधु में हैं अर्थात् आत्मा अपनी शुद्ध अवस्था में परमात्मा ही हैं । हम जितना अधिक उसे ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, हम स्वयं अपने आप की 'भ्रमित' होते हैं ।

''बिंदु में सिंधु समाना, यह अचरज कासों कहैं ।
हेरनहार हिराना, 'रहिमन' आपुनि आप महैं ।।''

सांसारिक आकर्षण मनुष्य को अपने वश में कर लेते हैं, किंतु मनुष्य को भी सत्य से विचलित नहीं होना चाहिए । इस आकर्षण से अलग होने में माया बाधक बनती हैं ।

रहीम प्रेम के सच्चे उपासक थे । उन्होंने प्रेम के धागे को किसी भी परिस्थिति में न टूटे इस और संकेत किया हैं । वे कहते हैं –

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोडों चटकाय ।
टूटे से फिर ना जुडे, जुडे गाँठ पडि जाय ।''

अत: कहा जा सकता हैं कि रहीम को जीवन का गहन अनुभव था । यहीं कारण है कि उनके नीतिपरक दोहे आज भी जनमानस के कंठहार बने हुए हैं ।

17.3 विषय – विवरण :

रहीम भक्तिकाल के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने राजदरबार में महत्त्वपूर्ण पदों पर रहते हुए और अपने राजकीय कर्तव्यों का पूरा निर्वाह करते हुए हिंदी साहित्य की सेवा की हैं । अकबरी दरबार के कवियों में रहीम का मूर्धन्य स्थान हैं । रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खाँ 'खानखाना' हैं । इनका जन्म सम्राट अकबर के इतिहास प्रसिद्ध अभिभावक बैरमखाँ के यहाँ लाहौर में सन 1556 ई. में हुआ । अल्पायु में ही पिता का निधन होने को कारण अकबर ने ही इनका पालन–पोषण और शिक्षा दीक्षा अपनी देखरेख में करवाई थी । अकबर ने इन्हें अपने नवरत्नों में स्थान दिया था । रहीम अत्यंत रसिक, बहुभाषा विद्, बुद्धिमान प्रतिभा संपन्न थे । उन्होंने ग्यारह वर्ष की आयु में ही काव्य रचना आरंभ की थी । कालांतर में अपने अध्ययन और अध्यवसाय द्वारा वे अरबी, फारसी, हिंदी, ब्रज, अवधी संस्कृत आदि के मर्मज्ञ विद्वान बन गए ।

17.3.1 रहीम का साहित्यिक परिचय :

रहीम बड़े परोपकारी, गुणग्राहक एवं दानी व्यक्ति थे । इतिहास में रहीम कर्ण के समान दानों के रूप में प्रसिद्ध हैं । वे स्वभाव से ही अत्यंत, उदार, दयालु, दानी और कवियों तथा विद्वानों का सम्मान करने वाले महान व्यक्ति थे । इनकी दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं । कहते है कि ये इतिहास प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्धन के समान साल में एक दिन अपना सब धन दान करते थे । रहीम की हिंदी में निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं । 'दोहावली', 'नगर शोभा', 'रासंपचाध्यायी', बरवै नायिका भेद', 'शृंगार सोरठ', 'मदनाष्टक' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । फारसी में दीवान, तुर्की से फारसी में वाकयात बाबरी अनुवाद, संस्कृत में श्लोक, ब्रज में दोहे, अवधी में नायिका भेद प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । लगभग 300 की संख्या में इनकी नीति संबंधी दोहे मिलते हैं । 'शृंगार सोरठ' के छह सोरठों में कृष्ण के रूप–सौंदर्य तथा गोपी विरह का निरुपण हैं । 'मदनाष्टक' में मुरली के सम्मोहक प्रभाव, गोपियों की विरह वेदना तथा कृष्ण

के रुप लावण्य का चित्रण हैं । कुल मिलाकर रहीम के कृतित्व का अधिकांश कृष्ण से संबंधित हैं । इसी लिए रहीम कृष्ण - भक्तिधारा के उत्तम कवि माने जा सकते हैं । राधा और कृष्ण के संयोग तथा विशेषत: वियोग के चित्र बड़े मार्मिक बन पड़े हैं । एक सवैया देखिए -

''जाति हुती सखी गोहन में, मनमोहन को लखि ही ललचानों ।
नागरि नारि नई ब्रज की, उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो ।
जाति भई फिर कै चितई, तब भाव रहीम यहै उर लानो ।''

रहीम मुसलमान होते हुए भी उनपर हिंदू धर्म का अधिक प्रभाव था । इसी लिए विष्णु, गंगा संबंधी भक्ति भावपूर्ण रचनाएँ की हैं । इनका काव्य सरस एवं जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करने वाला हैं । अनुभव एवं अन्तदृष्टि के कारण इनका काव्य लोकप्रिय एवं अमर बन गया हैं ।

रहीम हिंदी के अत्यंत लोकप्रिय कवि थे । हिंदी की नीति परंपरा में आपका स्थान बहुत ऊँचा हैं । हिंदी पाठकों में उनको जो प्रसिद्धि प्राप्त हुई, वह उनके नीति संबंधी दोहों के कारण ही अधिक हैं । क्योंकि उनमें जीवन की विविध अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ हैं । उदा.

''बिगरी बात बनै नहि, लाख करौ किन कोय ।
रहिमन बिगरे दूध को मथै न मारवस होय ।।
कदली सीप भुजंग - मुख, स्वाति एक गुण तीन ।।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ।।''

रहीम के दोहों में नीति के साथ-साथ भक्ति, शृंगार, प्रेम आदि का अद्‌भुत मिश्रण मिलता हैं ।

''तरुवर फल नहि खात हैं, सखर पियाहिं न पान ।
कहि रहीम पर काज-हित, सम्पत्ति संचहि सुजान ।।
जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ।।''

रहीम को छंदशास्त्र, अलंकार, शब्द शक्ति आदि का पूरा ज्ञान था । दोहा, रोला, सोरठा, कवित्त, सवैया मालिनी आदि छंदों एवं दृष्टांत रूपक, श्लेष उपमादि अलंकारों द्‌वारा उन्होंने अपने स्वानुभवों की आकर्षक अभिव्यक्ति की हैं । रहीम के नीति संबंधी दोहे आज भी इतने अधिक लोकप्रिय हैं कि जनता लोकोक्तियों के समान उनका अपने जीवन में प्रयोग करती हैं । रहीम ने अपने जीवन के अनुभवों को दोहों में ढालकर सचमुच ही पथ - प्रदर्शन का काम किया हैं । रहीम को पाकर हिंदी साहित्य सचमुच गौरवान्वित हुआ हैं ।

17.4 शब्दार्थ :

चटकाय - झटका देना

सीप - मोती

मथै - मथना

17.5 सारांश :

कवि रहीम की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके नीति काव्य का उद्‌भव और विकास सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन की आवश्यकताओं के कारण हुआ हैं । फलत: इसमें समयानुरूप परिवर्तन और परिवर्धन भी होते रहे हैं । इस रूप में नीतिकाव्य का महत्व उसकी उपयोगिता के कारण ही विशेष हैं । रहीम ने विभिन्न परिस्थितियों को, जीवन को निकट से देखा था, अत: उनकी बातें कल्पना पर नहीं बल्कि उनकी स्वानुभूति पर आधारित हैं । रहीम ने नीति काव्य में प्रमुख रूप से ब्रजभाषा, अवधी, खडीबोली आदि का सरस प्रयोग किया हैं ।

रहीम नीति काव्य परंपरा के प्रमुख कवि माने जाते हैं । रहीम को लोकप्रियता इन नीतिपरक दोहों के कारण ही अधिक हुई हैं, क्योंकि ये सीधे चोट करते हैं । इनके दोहों में जो चमत्कार हैं, वह पढ़ने और सुनने वालों को अपनी ओर बरबस खींच लेता हैं ।

17.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- ✻ नीतिपरक काव्यधार का में रहीम के योगदान को स्पष्ट कीजिए ।
- ✻ रहीम के दोहों में जीवन की मार्मिक अनुभूति हुई हैं - विवेचन कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

- ✻ रहीम के दोहे
- ✻ रहीम के जीवनानुभव

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

- ✻ रहीम का एक दोहा लिखिए ।
- ✻ रहीम किस काव्यधारा के कवि माने जाते हैं ।
- ✻ रहीम द्वारा प्रयुक्त छंद के नाम लिखिए ।
- ✻ रहीम की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

- ✻ रासपंचाध्यायी, बरवै नायिका भेद किसकी रचना हैं ?
  अ) केशवदास ब) घनानंद क) रहीम ड) चिंतामणी
- ✻ रहीम किस धारा के कवि माने जाते हैं ।
  अ) रीति ब) नीति क) भक्ति ड) प्रेम

17.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

- ✻ रहीम के काव्य की विशेषताएँ बताइए ।
- ✻ रहीम के जीवन परिचय का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए ।
- ✻ रहीम के दोहे कंठस्थ कीजिए ।
- ✻ रहीम के अन्य दोहों का संकलन कीजिए ।

17.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- ✻ रहीम के सुबोध दोहे - वियोगी हरि
- ✻ हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. सज्जन राम केणी

✻✻✻✻

इकाई – 18
रीतिकाल के विविध नाम और उनके आधार

18.1 उद्‌दिष्टे

18.2 प्रस्तावना

18.3 विषय विवरण

- 18.3.1 अलंकृत काल
- 18.3.3 श्रृंगार काल
- 18.3.3 रीतिकाल
- 18.3.4 शास्त्रीय काल
- 18.3.5 कलाकाल

18.4 शब्दार्थ

18.5 सारांश

18.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

18.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

18.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

18.1 उद्देश

1) रीतिकाल के विभिन्न नामकरण के संबंध मे विद्वानों के दृष्टिकोणों को समझेंगे ।

2) नामकरण हेतु ग्रहण किए आधारों से परिचित होंगे ।

3) नामकरण के संबंध में विद्वानों में प्राप्त पर्याप्त मतभेदों पर विचार करेंगे ।

18.2 प्रस्तावना :

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द उस काव्यांग-विशेष के लिए रूढ़ है, जिसे काव्य की आत्मा घोषित कर आचार्य वामन ने रीतिसंबंधी पृथक् संप्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार गुणविशिष्ट रचना - अर्थात पदसंघटना - पद्धति - विशेष का नाम 'रीति' है। हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल अर्थात विक्रम संवत 1700 से 1900 के बीच में अनेक कवियो ने संस्कृत काव्यशास्त्र के नियमों की बंधी-बंधाई परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की। हिंदी साहित्य में यह एक नवीन प्रकार का साहित्य है। इस साहित्य में जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण को अपनाया गया। रीतिकालीन साहित्य में ऐहिकता और ऐंद्रियता की प्रधानता है। इस कवियों ने काव्य को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया। रीतिकाल में पांडित्य-प्रदर्शन का सभी क्षेत्रों में बोलबाला था। पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप कवि-कर्म और आचार्य कर्म का एका साथ निर्वाह होने लगा। यह प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए रचा गया काव्य था और रीति परंपरा के सांचे ढलकर ही समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता था। डॉ. भगीरथ मिश्र इस विषय में लिखते हैं - ''उसे रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि आदि के आधार पर ही अपनी कवित्त प्रतिभा दिखाना आवश्यक था। इस युग में उदाहरणों पर विवाद होते थे। इस बात पर कि उसके भीतर कौनसा अलंकार है? कौन-सी शब्दशक्ति है? कौनसा रस या भाव है? उसमें वर्णित नायिका किस भेद के अंतर्गत है? काव्य की टीकाओं और व्याख्याओं से काव्य सौंदर्य को स्पष्ट करने के लिए भी उसके भीतर अलंकार, रस, नायिकाभेद को स्पष्ट किया जाता था। कवि-गोष्ठियों में भी यही प्रवृत्ति थी। अत: यह युग रीति-पद्धति का ही युग था और इसमें इससे संबंधित असंख्य ग्रंथ लिखे गए ।''

रीति की प्रधान प्रवृत्त होने के कारण हिंदी साहित्य के अनेक विद्वान एवं इतिहासकार इसके 'रीतिकाल' नामकरण से सहमत हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने भी इस कालखंड का नामकरण 'रीतिकाव्य'ही किया है। इनके पश्चात् मिश्र-बंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इसका नामकरण 'रीतिकाल' किया है । विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे 'शृंगारकाल' कहते हैं, तो डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने इसे 'शास्त्रीय काल' संबोधित किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा, भगीरथ मिश्र 'रीतिकाल' नामकरण से सहमत है। अत: स्पष्ट है इस कालखंड के नामकरण में लगभग सभी विद्वानों 'काव्यप्रवृत्ति' को मुख्य आधार के रूप में ग्रहण किया है। इनमें जो परस्पर मतभेद हैं वह काव्य प्रवृत्ति के अंतर्गत काव्यांगों की प्रधानता को लेकर है।

18.3 विषय विवरण

18.3.1 अलंकृत काल :

मिश्रबंधुओं ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधु-विनोद (1913) में रीतिकाल का नामकरण 'अलंकृत काल' कर इसे दो भागों में विभाजित किया है। पूर्वालंकृत काल (1681-1790) और 2) उत्तरालंकृत काल (1791 -1889)। इस कालखंड के लिए 'अलंकारकाल' नामकरण कविता की प्रवृत्ति के आधार पर है। डॉ. नगेंद्र कहते हैं कि इस युग के लिए 'अलंकृत' विशेषण अधिक समीचीन प्रतीत नहीं होता। कारण, मिश्र बंधुओं ने इसके समर्थन में जो यह तर्क दिया है कि इस युग की कविता को अलंकृत करने की परिपाटी अधिक थी, वह इसलिए मान्य नहीं हो सकता क्योंकि यह कविता केवल अलंकृत ही नहीं है, इतर काव्यांगों को इसमें यथोचित स्थान प्राप्त है, कवियों की प्रवृत्ति भी केवल अलंकारयुक्त रचनाएँ करने की नहीं थी - उन्होंने इसकी अपेक्षा रस पर अधिक बल दिया है। हाँ, संस्कृत काव्यशास्त्र में 'अलंकार' शब्द विविध काव्यांगों का बोधक रहा है। अत: इस अर्थ में यदि 'अलंकार' विशेषण इस युग की

काव्यांग-निरुपण-प्रवृत्ति के लिए ग्रहण किया जाय, तो असंगत नहीं। 'अलंकृत' शब्द (क्त प्रत्यय के कारण) इस युग की कविता का ही विशेषण हो सकता है - लक्षण ग्रंथों का नहीं, जो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । अत: इस युग को किसी सीमा तक 'अलंकार काल' कहना योग्य नहीं हो सकता ।

अत: स्पष्ट है कि मिश्रबंधुओं के नामकरण से अनेक विद्‌वान सहमत नहीं। मिश्रबंधुओं ने कविता के 'अलंकरण प्रवृत्ति' का जो आधार ग्रहण किया है । वह समस्त रीतिकालीन ग्रंथो के लिए तर्कसंगत नहीं है । यद्‌यपि जार्ज ग्रियर्सन के बाद प्रस्तुत इस नामकरण में अधिक प्रौढ़ता है किंतु तथ्यों की दृष्टि से इनमें अनेक विसंगतियाँ विद्‌यमान हैं ।

18.3.2 शृंगारकाल :

इस कालखंड में सामान्य रूप से शृंगारपरक लहान ग्रंथों की रचना होने के कारण इसका नामकरण 'शृंगारकाल' किया गया। आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने 'हिंदी साहित्य का अतीत' में इसका नामकरण 'शृंगारकाल' किया है। 'शृंगारकाल' नामकरण के लिए यह आधार ग्रहण किया गया इस काल के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति शृंगारवर्णन की थी जो रीतिबद्‌ध और रीतिमुक्त दोनों ही प्रकार की रचनाओं में सामान्य रूप से मिलती है। यहाँ तक की इस काल का 'रीतिकाल' नामकरण करने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'शृंगारकाल' कहे जाने में आपत्ति प्रकट नहीं की हैं। उनकी दृष्टि में इस 'काल में शृंगार-प्रधान कविताओं की प्रचुरता हैं' और 'शृंगारात्मक ग्रंथों की ही विशेष प्रसिद्‌धि हैं।' शृंगारप्रवृत्ति को ही इस काल का एक निर्दिष्ट सामान्य लक्षण बताया जा सकता है। शृंगार कहीं रीति से बद्‌ध है तो कहीं रीति से मुक्त। अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आ. रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं - ''वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता 'शृंगार' की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई 'शृंगारकाल' कहे तो कह सकता है।''

इस नामकरण पर आपत्ति प्रकट कर डॉ. नगेंद्र लिखते हैं - ''इसमें संदेह नहीं कि इस युग में अधिकांश रचनाएँ शृंगारिक ही हैं, तथापि यह आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए ही लिखी गई हैं - इनका प्रेरक तत्त्व कवियों की काम-वासना नहीं, 'अर्थ' है; जो विलासी आश्रयदाताओं से इस प्रकार के काव्य की रचना करके ही प्राप्त किया जा सकता था। इस युग में अनेक ऐसे कवि हुए हैं जो इस प्रकार के वर्णन करने पर भी अपने कर्म से असंतुष्ट रहे हैं।'' अर्थात इनके 'शृंगारकाल' नामकरण में डॉ. नगेंद्र ने अव्याप्ति दोष माना हैं। आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस बात से असंतुष्ट थे कि 'रीतिकाल' नामकरण के समर्थकों ने ऐसे कवियों को 'फुटकल खातें' में डाल दिया था जो रीतिकाल की व्यापक प्रवृत्ति शृंगार या प्रेम के उन्मत्त गायक थे। आ. मिश्र ने 'घनानंद कविन्त' की प्रस्तावना 'शृंगारकाल' नामकरण पर विचार किया है।

18.3.3 रीतिकाल

इस युग की कविता का 'रीतिकाव्य' या 'रीतिकाल' नामकरण से हिंदी के अनेक विद्‌वान एवं आलोचक सहमत हैं। इनमें सर्वप्रमुख नाम आ. रामचंद्र शुक्ल का आता है। इस नामकरण के अन्य समर्थकों में डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. श्याम सुंदरदास, डॉ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी, डॉ. नगेन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में हिंदी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में विभक्त किया हैं - पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल । उन्होंने मध्यकाल के प्रारंभिक काल को भक्तिकाव्य से पृथक् करते हुए इस काल का नामकरण 'रीतिकाल' रख दिया । अपने इतिहास ग्रंथ में वे लिखते हैं - ''हिंदी रीतिग्रंथों की परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली, अत: रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत् 1700 के कुछ आगे पीछे 'काव्य विवेक', 'कविकुलकल्पतरू' और 'काव्यप्रकाश' के तीन ग्रंथ लिखकर काव्य के सब अंगों का पूरा निरुपण किया और पिंगल या छंदशास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरांत तो लक्षण-ग्रंथों की भरमार सी होने लगी। कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना और फिर उसके उदाहरण के रूप में कविता या सवैया लिखना। हिंदी साहित्य में यह अनूठा दृश्य खडा हुआ।''

स्पष्ट हैं कि इस युग की कविता लिखने की प्रवृत्ति या परंपरा को आचार्य शुक्ल ने 'अनूठा दृश्य कहा' है। वस्तुत: 'रीति' से तात्पर्य काव्यांग विवेचन की विशिष्ट प्रवृत्ति या पद्धति से है। 'रीतिकाल' नाम तत्कालीन लक्षण-उदाहरण की शैली (रीति) की एक प्रमुख प्रवृत्ति की ओर दिशा-निर्देश करता है। इस नामकरण को अधिक वैज्ञानिक और संगत मानते हुए डॉ. नगेंद्र लिखते हैं - ''शृंगारकाल की अपेक्षा यह अधिक वैज्ञानिक और संगत है, कारण इनमें रीतिसंबंधी ग्रंथ ही अधिकांशत: नहीं लिखे गए अपितु इस युग के कवियों की प्रवृत्ति भी ऐसे ही ग्रंथ रचने की थी। इन कवियों ने यदि शृंगारिक छंद रचे भी तो वे सामान्यत: स्वतंत्र रूप से रचित न होकर शृंगार रस की सामग्री के लक्षणों के उदाहरण होने के कारण रीतिबद्ध ही थे।'' वस्तुत: 'रीतिकाल' यह नामकरण व्यापक रूप से ग्रहण किया गया है और लगभग इसमें इस कालखंड की सभी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। यद्यपि इस कालखंड के घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर, सूदन आदि कवि इसके अंतर्गत नहीं आ पाते। यही कारण है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भक्तिकाल की भाँति रीतिबद्ध रचना की परंपरा के भी उपविभाग करना चाहते थे। अब इस कालखंड के लिए 'रीतिकाल' यह नामकरण लगभग सर्वमान्य एवं रूढ हो गया है।

18.3.4 शास्त्रीयकाल :

डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास' में इस कालखंड का नामकरण 'शास्त्रीय काल' किया है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त ने भी अपने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में इसका नामकरण एवं विवेचन 'शास्त्रीय मुक्तक परंपरा' के अंतर्गत किया है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त लिखते हैं - ''हिंदी के मध्यकाल में राज्याश्रित कवियों के एक वर्ग ने शास्त्रीय तत्त्वों के आधार पर विभिन्न विषयों मुख्यत: शृंगार, भक्ति, नीति आदि का निरुपण मुक्तक शैली में किया है, जिनके काव्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा परवर्ती आलोचकों ने 'रीति-काव्य' की संज्ञा दी है।''

डॉ. गुप्त ने इस परंपरा के कवियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न शास्त्रीय तत्त्वों को पाँच वर्ग में विभक्त किया है, जैसे - काव्यशास्त्रीय तत्त्व, कामशास्त्रीय तत्त्व, नीतिशास्त्रीय तत्त्व, भक्ति वैराग्य एवं दर्शनशास्त्रीय तत्त्व तथा ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि शास्त्रों से संबंधित तत्त्व। अर्थात् इन कवियों ने उक्त शास्त्रीय तत्त्वों का आधार ग्रहण कर उनकी सामग्री का उपयोग न्यूनाधिक मात्रा में अपनी रचनाओं में किया हैं, केवल काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का नहीं। इस नामकरण से सहमत आलोचकों ने जोर देकर कहा कि इस परंपरा के लिए 'रीति' की अपेक्षा 'शास्त्रीय' विशेषण अधिक व्यापक सिद्ध होता है क्योंकि इससे न केवल काव्य रीति का प्रतिपादन होता बल्कि अन्य सभी शास्त्रों से वस्तु-चयन की प्रवृत्ति का बोध भी सम्यक रूप से होता है। इस परंपरा का कवि अपने को 'सुकवि' सिद्ध करने के साथ-साथ 'बहुपठित' भी सिद्ध कराना चाहते थे और समय-समय पर अपने सामान्य एवं विशेष ज्ञान की झलक भी अपनी रचनाओं के द्वारा देते रहते थे।

18.3.5 कलाकाल :

डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने रीतिकाव्य का नामकरण 'कलाकाल' किया हैं । डॉ. रामकुमार वर्मा भी इस नामकरण से सहमत हैं। अन्य कुछ विद्वानों ने भी इस काल की कविताओं में 'कलापक्ष की प्रधानता' देखकर इसके 'कलाकाल' नामकरण के प्रति सहमति व्यक्त की हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा 'रीतिकालीन साहित्य का पूनर्मूल्यांकन में लिखते हैं - 'इस काल को कला-काल' नाम देना समीचीन ज्ञान होता है। रीतिकाव्य' और शृंगार काव्य के साथ इस काल में इतनी अधिक प्रवृत्तियाँ, विचार-धाराएँ और ललित शिल्प की साधनाएँ दृष्टिगत होती है कि उनमें कला का प्रांजल रूप अनायास ही दृष्टिगत होता है।''

'कलाकाल' के समर्थक आलोचक यह तर्क देते हैं कि 'रीति-साहित्य' संस्कृत के काव्य-शास्त्र से प्रेरित हो अवश्य रहा किंतु उसके विकास में कोई मौलिक योग न दे सका। इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए अपनी प्रतिभा का चमत्कार काव्य-रचना में दिखाना चाहता था और शृंगार के ऐसे चित्र खींचने में अपना

कौशल समझता था जिसे सुनते ही आश्रयदाता या सामान्य पाठक 'वाह' कर उठे। किंतु सत्य यह है कि रीतिकाल के अनेक राज्याश्रयहीन थे। उनकी कविता में 'कलापक्ष' का नहीं बल्कि एक प्रेमी कवि के कोमल हृदय-पक्ष का सुंदर उद्घाटन मिलता है तथा दूसरी ओर यह नामकरण रीति कवियों की रीति-निरुपण की प्रवृत्ति की ओर संकेत करने में भी हिचकता है।

रीतिकाल के कुछ अन्य नामकरण भी मिलते हैं, जैसे काव्य-विलास काल (डॉ. सत्यकाम वर्मा), अपकर्षकाल (डॉ. गणपति चंद्र गुप्त), संवर्धन काल (रामखेलवान पाण्डेय), ऱ्हास काल (डॉ. शुंभनाथ सिंह) आदि। परंतु यह नामकरण मौलिकता एवं नवीनता के द्योतक मात्र त्रतीत होते हैं।

18.4 शब्दार्थ :

रीति - काव्यरचना की शैली

परिपाटी - परंपरा

काव्यांग - रस, छंद, अलंकार आदि

वस्तुपरक - वस्तुनिष्ठ

18.5 सारांश :

नामकरण से तात्पर्य किसी साहित्यिक प्रवृत्ति, परंपरा या घटना के विकासक्रम को स्पष्ट करता है। उपर्युक्त रीतिकाल के विविध नामकरण से स्पष्ट है कि विद्वानों में पर्याप्त मदभेद है। परंतु इन मतभेदों एवं परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों पर विचार कर एक सर्वमान्य नामकरण 'रीतिकाल'पर विशेष आपत्ति नहीं की गई है। रीति से तात्पर्य काव्यांग निरुपण की विशिष्ट शैली या पद्धति से है। कई ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्यांग निरुपण संबंधी कोई ग्रंथ नहीं लिखा परंतु उनमें भी काव्यशास्त्रीय संस्कार मुखर होकर आए हैं । इसलिए उनकी भी रचनाएँ रीतिकोटि की ही मानी जा सकती है। अत: इस कालखंड का नामकरण 'रीतिकाल' ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

18.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) 'रीतिकाल' के विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत नामकरण पर विचार करते हुए समर्थक नामकरण पर प्रकाश डालिए ।

2) हिंदी के अधिकांश विद्वान एवं आलोचक 'रीतिकाल' नामकरण पर क्यों एकमत है, समजाइए ।

ख) टिप्पणियाँ

1) शृंगारकाल

2) शास्त्रीय काल

3) कला काल

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) रीतिकाव्य का 'अलंकृत काल' नामकरण किस आधार पर किया है?

2) आ. रामचंद्र शुक्ल ने रीतिग्रंथों की परंपरा का प्रारंभ किस कवि से माना है?

3) मिश्रबंधुओं के अलंकृत काल को किन दो भागों में विभाजित किया?

4) 'रीतिकाल' के विविध नाम लिखिए।

घ) सही पर्याय लिखिए

1) 'शृंगारकाल' किस काल को कहा गया है?

अ) भक्तिकाल ब) आदिकाल क) रीतिकाल ड) आधुनिक काल

2) रीतिकाल को अलंकृत काल किसने माना है?

1) मिश्र-बंधु विनोद ब) आ. शुक्ल क) डॉ. नगेंद्र ड) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

18.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

1) वर्तमान साहित्य चेतना एवं प्रवृत्तियों के आधार पर नामकरण की चर्चा कीजिए।

2) 'अलंकृत-काल' नामकरण की चर्चा कीजिए।

3) 'रीतिकाल' के विविध नाम एवं आधारों की सूची तैयार कीजिए।

18.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

1) हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल

2) हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र

3) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (खण्ड-1 एवं 2) – डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

4) रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन – डॉ. रामकुमार वर्मा

5) हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल

6) हिंदी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास – डॉ. रामप्रसाद मिश्र

7) हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास – डॉ. सभापति मिश्र

pppp

इकाई – 19
रीतिकालीन परिस्थितीयाँ और उनका साहित्य पर प्रभाव

19.0 उद्‌देश

19.1 प्रस्तावना

19.2 विषय – विवरण

19.2.1 सामाजिक परिस्थिति

19.2.2 धार्मिक परिस्थिति

19.2.3 राजनीतिक परिस्थिति

19.2.4 साहित्यिक परिस्थिति

19.3 शब्दार्थ

19.4 सारांश

19.5 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

19.6 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

19.7 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

19.1 उद्देश :

1) साहित्यिक चेतना अथवा प्रवृत्ति के निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों प्रभावों का आकलन करना ।

2) तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक अवस्थाओं एवं हलचलों का ज्ञान प्राप्त करना ।

3) साहित्य के उत्कर्ष एवं विकासक्रम में परिस्थितियों की भूमिका एवं योगदान का महत्त्व समझना ।

19.1 प्रस्तावना :

डॉ. नगेंद्र ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा हैं – ''भाषा साहित्य के निर्माण में युगीन वातावरण का विशेष योग हुआ करता हैं। क्योंकि युगीन वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्योंद्वारा निर्मित होता है। अतएव युगविशेष के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का ज्ञान होना अपने-आपमें अनिवार्य हो जाता है।'' इसी संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' के 'कालविभाग' में कहते हैं – ''जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है, अत:कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।'' कहने का तात्पर्य यह किसी साहित्यिक चेतना, परंपरा या प्रवृत्ति के निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों का योगदान अधिक होता है। कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति अपने आप जन्म नहीं लेती । किसी कालखंड के लोगों की रुचि, विचार-पद्धति, जीवन पद्धति और भावात्मक स्थिति की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। इस साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य परिवेश का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। केवल साहित्य के ही नहीं बल्कि भाषा के विकास क्रम में भी परिवेश एवं जनचेतना का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। अत: किसी कालखंड की सीमा में निर्मित साहित्य, साहित्यिक हलचलों, साहित्यिक मूल्यों एवं आदर्शों को यथार्थ रूप में समझने के लिए तत्कालीन समस्त परिस्थितियों का ज्ञान होना अनिवार्य ह। इस प्रकार परिस्थितियों का ज्ञान होने से उस कालखंड के साहित्य के मूल्यांकन एवं समीक्षा करने में सहायता मिलती है।

19.2 विषय – विवरण :

19.2.1 सामाजिक परिस्थिति

सामाजिकता से तात्पर्य तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों तथा उनके परस्पर संबंधों, मूल्यों, व्यवहारों, आदर्शों और विश्वासों से हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो इस काल को आदि से अंत तक घोर अध:पतन का युग कहना अधिक संगत होगा । यह कालखंड सामंतवाद के वर्चस्व का कालखंड था । इस सामंतवाद को पुरुषार्थहीन भी कहा जा सकता क्योंकि इस वर्ग पर वीरता का नहीं बल्कि वैभवप्रियता, विलासप्रियता एवं प्रदर्शन प्रवृत्ति का प्रभाव दिखता है। 'यथा राजा तथा प्रजा' इस उक्ति के समान सामंतो के रहन-सहन का प्रभात जनसाधारण पर पड़ा और वे भी नारी के रूपाकर्षण में रमने लगे। फलस्वरूप पौरुष का पतन हुआ और मनोबल गिरने के साथ-साथ तत्कालिन समाज का बौद्धिक स्तर भी गिर गया। अनेक छोटे-मोटे सामन्तों के पास रखैलों की भरमार थी। नारी को केवल मनोरंजन एवं विलास का सामग्री समझा गया। नारी का शारीरिक लावण्य एवं अंगो की कोमलता में ही सभी को रूचि थी। कोई भी पुरुष नारी के शक्तिस्वरूप, पवित्रता एवं हृदय की अंतरात्मा तक नहीं पहुँच सका। मुगल सम्राटों में बहुपत्नियों की परंपरा ही प्रारंभ हो गई थी । विलास के नवनविन उपकरणों की खोज, उनका संग्रह तथा सुरा-सुंदरी की आराधना ही अभिजात वर्ग का लक्ष्य बन चुका था। इस वृत्ति का अनुकरण मध्यम तथा निम्न वर्गों में भी होने लगा और स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय हो गई । किसी की भी सुंदर कन्या एवं पत्नी का अपहरण करना अभिजात वर्ग

के एक साधारण बात थी। बेगमों एवं पत्नियों की अधिक संख्या होते हुए भी लोक वेश्याओं के यहाँ पड़े रहते थे। कुलटा एवं व्यभिचारी स्त्रियों कीं संख्या भी कम नहीं थी। स्त्री-पुरुष यौन संबंधों एवं उच्छृंखल जीवन पर किसी का कोई अंकुश नहीं रहा था। लोगों में ईश्वर एवं धर्म का भय समाप्त हो चुका था। विलास-प्रिय पुरुषवर्ग अपने संतान की तक देखभाल नहीं कर पाता था। अच्छी कुल की औरतें तक व्यभिचार में लिप्त थी। पर्याप्त धन संपन्न वर्ग के लिए अन्याय-अत्याचार करना बेरोकटोक था।

तत्कालीन सामान्य जनता का काई पालनहार या तारणहार नहीं था। स्वास्थ्य, शिक्षा, कानून आदि का इस काल में कोई प्रबंध नहीं था। यह सामाजिक अव्यवस्था, दिशाहीनता और अनैतिकता का युग था। इस शोचनीय अवस्था में लोग भाग्य पर अधिक विश्वास करते थे। जनसाधारण में अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ घर कर रही थी। ज्योतिषियों, पाखंडी साधुओं तथा शकुन-शास्त्रों पर लोगों का अधिक विश्वास था। जनता में बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित थी तथा ईश्वर पर आस्था एवं भक्तिभावना मंद पड़ने लगी थी। समाज शासक एवं शासित वर्ग में विभाजित हो गया था। शासकवर्ग में बादशाह, राजा, सामंत, सेठ, साहूकार दुकानदार एवं व्यापारीवर्ग था तो शासित वर्ग में श्रमजीवी तथा कृषक वर्ग था। यह शासित वर्ग लगभग सभी स्तरों पर शोषित एवं पीडित था। निरंतर होने वाले युद्धों, सेना के अभियानों, अतिवृष्टि, अकाल आदि आपत्तियों - विपत्तियों के कारण उनकी एकमात्र आय कृषि की भी हानि होती थी और उन्हें विवश होकर बेगारी करनी पड़ती थी। शासक वर्ग इस वर्ग के प्रति असंवेदनशील था। कलाकारों, साहित्यकारों की भी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी बल्कि शासक एवं संपन्न वर्ग बिना श्रम किए ही सुखसंपन्न था । सारांश में, रीतिकालीन सामाजिक वातावरण शोषण, आर्थिक असमानता, गरीबी, अशिक्षण, अंधविश्वास, नारीदुर्दशा, विलासिता, उच्छृंखलता, अव्यवस्था, भोगवादिता, मूल्यहीनता का वातावरण था।

19.2.2 धार्मिक परिस्थिति

रीतिकालीन समाज के अधिसंख्य वर्गों एवं लोगों में धर्म एवं ईश्वर के प्रति भय लगभग नहीं रहा था। यह युग संस्कृति एवं सभ्यता की दृष्टि से ऱ्हास का युग माना जाता है। इस युग में धर्म के बंधन ढीले पड़ चूके थे। लोगों में उचित-अनुचित का विवेक नहीं रहा था। धर्म का शुद्ध एवं उदात्त रूप क्षीण हो गया था। यह कालखंड धर्म एवं भक्ति के पराभव का कालखंड हैं क्योंकि इस युग में धर्म एवं भक्ति का स्थान अंध:विश्वास, रूढ़ियों एवं बाह्याडंबरों ने ग्रहण कर लिया था। समाज में बढ़ती विलासप्रियता के कारण सच्ची धार्मिक आस्थाओं का दृढ़तापूर्वक पालन करना असंभव-सा हो गया था। तथाकथित साधु, पंडित, मुल्ला एवं धर्म के ठेकेदार समाज के सर्वेसर्वा समझे जाने लगे थे। भोली-भाली जनता को वास्तविक धर्म से भटकाने लगे थे। उनका संबंध तत्वचिंतन से हटकर भोगवाद के साथ हो गया था। फलत: मंदिरों एवं मठों में भी विलास की लीलाएँ होने लगी थी। विलास की प्रवृत्ति तत्कालीन समाज में यहाँ तक बढी थी कि हिंदू अपने आराध्य राम और कृष्ण के जीवन में भी अपने विलास और शृंगार की संगति खोजने लगे थे।

ऐसा नहीं है कि इस कालखंड में शुद्ध साधुसंत नहीं थे किंतु यह अपने प्रभाव से इस भ्रष्ट वातावरण को शुद्ध करने में असमर्थ थे। वे केवल अपने को इस अध:पतन से बचाने में सफल रहे। भक्तिकाल के सूरदास आदि द्वारा प्रतिपादित राधा और कृष्ण की मधुरा भक्ति में सूक्ष्मता के स्थान पर स्थूल ऐंद्रिकता और पवित्रता के स्थान पर लोलुपता और कामुकता की भावनाएँ फैलने लगी। राधा और कृष्ण की आड़ में कामुकता की खुलकर अभिव्यक्ति हुई। चैतन्य एवं वल्लभ संप्रदाय की गद्दियाँ सस्ती रसिकता में निमग्न हो गई। यही हाल रामभक्ति के विविध संप्रदायों का भी था। शक्ति के प्रतीक, लोकरक्षक, मर्यादा पुरुषोत्तम राम अब एक छैल-छबीले बाँके नायक के समान सरयू के किनारे कामक्रीड़ा करने लगे। तत्कालीन निर्गुण संप्रदायों पर भी इस युग की विलास परक दृष्टि का प्रभाव पड़े बिना न रह सका।

इस समय के दूसरे प्रमुख धर्म इस्लाम पर भी विलास वैभव का प्रभाव पड़ा। किंतु हिंदू धर्म पर पड़े प्रभाव से अपेक्षाकृत क्रम था । कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, मुस्लिम धर्म भी अपने बदलते परिवेश से अछूता न रख सका । मुसलमान कुरान को हिफ्ज करने तथा रोजा-नमाज आदि के यथाविधि पालन को ही धर्म

समझने लगे। अत: उनपर धर्म का आध्यात्मिक प्रभाव नहीं पड़ा। तत्कालीन सूफियों के अनेक संप्रदायों में स्थूल शृंगार, नखशिख एवं नायिकाभेद वर्णन का समावेश होने लगा। सारांश में कहा जा सकता है इस कालखंड में धर्म का स्वरूप विकृत हो गया था। हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूलभूत सिद्धांतों से दूर हो गए थे। केवल बाह्याचरण ही धर्मपालन रह गया था। धर्म का नैतिकता के साथ संबंध समाप्त हो गया था।

19.2.3 राजनीतिक परिस्थिति

रीतिकालीन लगभग दो सौ वर्ष का कालखंड व्यक्तिवादी निरंकुश राजतंत्र का समय माना जाता है। यह समय भारत में मुगल शासन के चरमोत्कर्ष, ऱ्हास और विनाश का युग है। इस कालखंड का प्रारंभ मुगलशासक शाहजहाँ के कार्यकाल से होता है। शाहजहाँ से पूर्व जहाँगीर और जहाँगीर से पूर्व अकबर का शासन था। अकबर ने सहिष्णुता की नीति, उदारता एवं हिंदू-मुस्लिम पारस्परिक समन्वय से विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की। अकबर के पश्चात् जहाँगीर ने राज्य के संबंध में कोई योगदान नहीं दिया। उसकी सुरा-सुंदरी की लालसा और निरंकुश शासनप्रियता उत्तराधिकारियों को विरासत में मिली। यद्यपि शाहजहाँ में सहिष्णुता और सांस्कृतिक कलागत उदारता थी, इसलिए इसका राज्यकाल सुख-शांति और समृद्धि का काल था। शाहजहाँ ने 1628 ई. में दिल्ली की गद्दी सँभाली थी। तत्कालीन राजपूत शासकों ने भी उसके विश्वासपात्र एवं स्वामीभक्त सेवक के रूप में उसकी अधीनता स्वीकार की थी। इसी काल मे ताजमहाल और मयूर सिंहासन का निर्माण हुआ। शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह हिंदुओं के प्रति नरमदिल था, परंतु कनिष्ठ पुत्र औरंगजेब अधिक महत्त्वाकांक्षी था। उसे दाराशिकोह का हिंदुओं के प्रति सद्भाव पसंद था। इसी औरंगजेब सत्ता के लोभ में दाराशिकोह सहित अपने सभी भाइयों का अंत किया। औरंगजेब ने सत्ता की बागडोर सँभाली, उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति के कारण हिंदू जनता में असंतोष की लहर फैली। अनेक हिंदू राजा एवं जागीरदार विक्षुब्ध हो उठे। अनेक धार्मिक उपद्रव भी प्रारंभ हो गए ।

औरंगजेब का शासनकाल अधिकांश उपद्रवों के दमन में ही व्यतीत हुआ । मराठों और सिक्खों से उसे चिरकाल तक संघर्ष करना पड़ा। औरंगजेब बहुत अहंवादी था। उसे साहित्य, संगीत, कला, सौंदर्य, ऐश्वर्य एवं विलास के प्रति घोर नफरत थी। उसने संगीत का तो जनाजा ही निकाल दिया। उसके कठोर स्वभाव के कारण उसके पुत्रों में किसी प्रकार की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का विकास न हो सका। 1707 ई. में. उसके पुत्रों में भी संघर्ष हुआ और उसका द्वितीय पुत्र शाह आलम गदी पर बैठा। परंतु वह अधिक समय तक जीवित न रह सका। 1712 ई. के बाद मुगल शासन का पतन प्रारंभ हुआ। वस्तुत: औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् ही राजनीतिक स्थिति अत्यंत विकट और शोचनीय बन चुकी थी। राजनीतिक अव्यवस्था एवं अशांति इतकी बढ़ गई कि छोटे-छोटे जागीरदार भी अपने-आपको स्वतंत्र घोषित कर बैठे। अंतत: मुगल साम्राज्य की पकड़ इतनी ढीली हो गई की वह केवल दिल्ली और आग्रा क्षेत्र तक ही सीमित रह गया। 1738 ई. में नादिरशाह ने आक्रमण कर इस शासन की कमर ही तोड डाली और रही सही कसर अहमदशाह अब्दाली के 1768 ई. के आक्रमण ने पूरी कर दी।

इस अस्थिर राजनीतिक स्थिति का लाभ धूर्त अंग्रेज व्यापारियों ने उठाया और 1803 ई. तक समस्त उत्तर भारत को अंग्रेजों ने अपने अधिकार-क्षेत्र में कर लिया। मुगल सम्राट केवल नाममात्र के शासक रह गए और वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई । औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात ही छोटे-बड़े प्रदेशों के सामंतों-सरदारों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया था, रीतिकाल की रचना ऐसे प्रदेशों में ही हुई। इन रजवाड़ों एवं सरदारों के दरबारों में मुगलों की विलसिता का प्रभाव पड़ा था, उनमें उदरता एवं विलसिता का शाही बडप्पन नहीं था। अवध, राजस्थान एवं बुंदेलखंड की अवस्था ऐसी ही है। राजस्थान में विलास एवं बहुपत्नी प्रथा इतनी बढ़ गई की वहाँ का राजतंत्र कुईक्रों, षड्यंत्रों एवं आंतरिक कलहों का शिकार हो गया। मुगल शासकों के समान ही अवध के विलासी शासकों का भी करुण अंत हुआ। अनेक राजपूत राजा भी अपने झूठे अहंकार एवं पारस्पकि कलक के कारण नष्ट हो गए। सारांशत: यह कालखंड राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता एवं अराजकता का कालखंड है। इस कालखंड में राजनीति के साथ साथ धर्म, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में किसी महान एवं उन्नत व्यक्तित्व का निवास न हो सका।

19.2.4 साहित्यिक परिस्थिति

औरंगजेब के राज्यकाल को छोड़ दिया जाए तो यह कालखंड साहित्य और कला के विकास की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। वस्तुत: रीतिकाल का आरंभ शाहजहाँ के शासनकाल के उत्तरार्ध से होता है। देशव्यापी समृद्ध, शांति, शाहजहाँ की रसिकता एवं उसकी साहित्यिक तथा कलागत उदारता के कारण साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्रतिभाशाली कलाकारों के लिए शाही दरबार सदा खुला रहता था। इस काल के कवि एवं कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति परंतु अपने आश्रयदाता मुगल सम्राटों या देशी राजाओं - नवाबों से उन्हें इतना सम्मान मिलता था की उनकी गणना समाज के प्रतिष्ठित लोगो में होती थी। इन कलाकारों में परस्पर प्रतिस्पर्धा भी होती रहती थी। सामंत लोग भी अपने निज गुणगान के लिए उत्तम कलाकारों की ताक में रहते थे। परंतु तत्कालीन कवियों एवं कलाकारों को सृजन व्यापार की स्वतंत्रता न प्राप्त हो सकी। इन्हें सामान्यत: अपने आश्रयदाता की अभिरुचि का ध्यान रखना पड़ता था। अत: प्रतिभाशाली होते हुए भी यह लोक अपनी सर्जना का श्रेष्ठाम रूप प्रस्तुत न कर सके।

इस समय की राजकीय भाषा फारसी थी। शाहजहाँ के दरबार हिंदी और संस्कृत को कुछ संरक्षण मिला था। किंतु दबदबा फारसी का ही था। फारसी भाषा की अलंकरणप्रधान शैली का प्रभाव, इस समय की लगभग प्रत्येक भाषा पर पड़ा। ब्रजभाषा तत्कालीन लोकभाषा होते हुए भी फारसी के प्रभाव से बच न सकी। अधिकांश राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिरंजित शैली में की। किंतु अनेक हिंदू कवियों ने काव्यचमत्कार के लिए फारसी को न अपनाकर संस्कृत में रुचि दिखाई। संस्कृत भारतीय भाषा होने के कारण संस्कृत काव्यशास्त्र में बताए गए काव्य-सौंदर्य के उपकरण इनके अधिक अनुकूल पड़ते थे। अत: इन कवियों ने इन काव्य-उपकरणों या अंगों का निरुपण अत्यंत मनोयोगपूर्वक किया। इस निरुपण की रीति के कारण ही इस कालखंड की काव्यप्रवृत्ति का नाम 'रातिकाल' पड़ा । वस्तुत: रीतिकाल ने अपनी कविताओं के द्वारा कुछ नवीन या मौलिक नहीं दिया क्योंकि वह महलों के घेरे से बाहर ही नहीं जा सके। राजस्थान के नरेशों तथा सामंतों की छत्रछाया में हिंदी कविता का दरबारी रूप पनपा। ओरछा, कोटा, बूँदी, जयपुर, जोधपुर यहाँ तक की महाराष्ट्र में भी यह काव्यधारा चल पड़ी । रीतिकवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण सर्वधा ऐहिक एवं सामंतीय था। उसमें जनसाधारण की भावनाओं, आवश्यकताओं, रुचियों एवं संघर्षो को कोई स्थान नहीं था। यह कवि नायिका के शारीरिक सौंदर्य वर्णन की संकीर्ण परिधि में ही चलते रहे। साहित्य सृजन का उद्देश्य काव्य-चमत्कार तथा पांडित्य प्रदर्शन मात्र रह गया। काव्यकला की दृष्टि से भले ही इस काल को समृद्ध कहा जाए, परंतु विषय वस्तु के स्तर पर यह कवि आश्रयदाता की रुचि के अनुकूल ही लिखते रहे। इस कालखंड में ऐसे भी कवि हुए, जिन्होंने स्वतंत्र रूप से काव्यरचना की। राजकीय वातावरण से मुक्त होने के कारण इनकी कविताएँ काव्यांग निरुपण से अछूती रही। सारांश में कहा जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्यिक वातावरण काव्य एवं कला की दृष्टि पर्याप्त समृद्ध था। कवियों एवं कलाकारों को यथोचित सम्मान प्राप्त था। इस काल का कवि एक ओर कवि बनने में प्रयत्नशील था तो दूसरी ओर उसमें आचार्य बनने की प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। यह कारण है कि इस युग में साहित्य की स्थिति अच्छी होते हुए भी उसमें श्रेष्ठ गुणों का अंतर्भाव न हो सका.

19.4 शब्दार्थ :

अभिजात - उच्च कुलोत्पन्न	अतिरंजित - बढ़ाचढ़ाकर	तत्वचिंतन - दर्शन
ऐहिक - सांसरिक	खरबूजा - एक प्रसिद्ध फल	हिफ्त करना - याद करना
आचार्य - पंडित, गुरु, शास्त्रों का ज्ञाता		

19.5 सारांश :

किसी युग का अपना परिवेश, परिस्थितियों तथा तत्कालीन मनुष्यजाति की चित्तवृत्ति, साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं विचार-पद्धति में परस्परश्रित संबंध होता है। यही कारण है कि रीतिकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक

परिस्थितियों का तत्कालीन काव्य एवं साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। निरंकुश राजतंत्र के रुचियों एवं दबावों के फलस्वरूप रीतिकालीन कवि का मूल स्वर दबा-दबा-सा प्रतीत होता है। असुरक्षित आर्थिक वातावरण के कारण अधिकांश कवि राज्याश्रय में जीने को विवंश थें। यथोचित मान-सम्मान एवं अर्थप्राप्ति के हेतु से भी इस कालखंड में काव्य का निर्माण हुआ। समाज के गरीब, उपेक्षित, कमजोर एवं श्रमजीवी वर्ग की स्थिति तो अधिक करुणाजनक थी। शासकों की संकीर्ण दृष्टि के कारण समाज, साहित्य, धर्म आदि क्षेत्रों में कोई महान परिवर्तन नहीं आया और न क्रांति हो सकी। सभी ओर विलासिता, दिखावा और शान-शौकत का वातावरण था। यही कारण है कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इस काल की कविता को रुग्ण मनोभाव की कविता मानते हैं। साहित्य का मूल प्रेरक तत्व परिस्थितियाँ होती है और साहित्यकार की अभिरुचि निर्माण में सहायक होती है। यही कारण है कि रीतिकालीन कविता को तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिबिंब कहा जा सकता है।

19.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* रीतिकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
* रीतिकालीन युगीन परिस्थितियों की विवेचना करते हुए रीतिकविता के उद्भव एवं विकास का परिचय दीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

* रीतिकालीन सामाजिक परिस्थिति
* रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थिति
* रीतिकालीन साहित्यिक परिस्थिति
* रीतिकालीन धार्मिक परिस्थिति

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न

* रीतिकालीन समाज वस्तुत: किन दो वर्गों में विभाजित था?
* रीतिकालीन युग में भारत में किस जाति का शासन केंद्र में था?
* रीतिकवियों ने कौनसे हिंदू देवी-देवताओं का विलासप्रिय चित्रण किया?
* रीतिकाल में किन-भाषाओं का प्रचलन था?

घ) सही पर्याय लिखिए

1) रीतिकाल में राजकीय भाषा कौनसी थी?
   अ) उर्दू ब) फारसी क) संस्कृत ड) हिंदी
2) रीतिकाल में नारी को क्या समझा गया था?
   अ) पत्नी ब) आदर्श क) विलास की सामग्री ड) प्रतीक

19.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

1) समाकालीन साहित्य निर्माण में परिस्थितियों के योगदान एवं प्रभावों की जानकारी प्राप्त कीजिए।
2) साहित्यकार कैसे अपने परिवेश से प्रभावित होता है और उसका साहित्य पर प्रभाव पड़ता है - उसका निरीक्षण कीजिए।

19.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

देखिए इकाई - 18.8 में दी गई सूची

pppp

इकाई – 20
रीतिकालीन साहित्य की विषय एवं शैलीगत प्रवृत्तियाँ

20.1 उद्देश्य

20.2 प्रस्तावना

20.3 विषय–विवरण

20.3.1 विषयगत प्रवृत्तियाँ

20.3.2 शैलीगत प्रवृत्तियाँ

20.4 शब्दार्थ

20.5 सारांश

20.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

20.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

20.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

20.1 उद्देश :

1) विभिन्न प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं के आधार पर रीतिकाल की प्रकति एवं स्वरूप को समझ सकेंगे।

2) रीतिकालीन कवि की साहित्यिक दृष्टि, साहित्य संबंधी आदर्शों, कला दृष्टि, समझ, चेतना और संघर्ष का निष्पक्ष आकलन करें।

20.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के अनेक विद्वान इस तथ्य से सहमत हैं कि रीतिकालीन साहित्य की सृष्टि सामंतीय वातावरण में हुई है। वे मानते हैं कि इस कवि की अंत:श्चेतना सुरा, सुंदरी और सुराही के इर्दगिर्द ही चक्कर लगा रही थी। यह कवि दरबारी वेश्याओं और रक्षिताओं के मधुर गुंजार को छोड़कर कभी महलों के बाहर नहीं निकला। उसने अपनी समस्त शक्ति नारी सौंदर्य के रूप-चित्रण में ही लगा दी। परंतु रीतिकालीन समस्त काव्य के अध्ययनोपरांत यह स्थापना की जा सकती है कि उपरोक्त मत पूर्णत: सत्य नहीं है। शृंगारिक काव्य रचनाएँ यद्यपि अधिक प्रमाण में मिलती है और रीतिकालीन अधिकांश कवियों की घोर शृंगारप्रियता के कारण इसे रीतिकाव्य की प्रधान प्रवृत्ति कहा जा सकता है। इसी प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिकाल को 'शृंगारकाल' कहा है। रीति कवि की इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण उस समय का घुटनशील वातावरण है। विदेशी आक्रांताओं के समक्ष देसी राजा-महाराजा नतमस्तक हो गए थे। सत्तागत तेज और पुरुषार्थ के नष्ट होने पर यह वर्ग कृत्रिम वैभव और ऐश्वर्य में लीन हो गया था। नारी सौंदर्य के भोग में उसकी सारी शक्तियाँ केंद्रित हो गई थी। इन शासनकर्ताओं के आश्रय मे रहने वाला कवि वर्ग भी नारी सौंदर्य के महीन से महीन चित्र उतारने में अपने को धन्य समझता था। इस कवि के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने बिना राजाश्रय के स्वतंत्र रूप से काव्यरचनाएँ की। इन कवियों ने अस्ति, नीति, वीरत्व आदि अनेक विषयों पर काव्यरचनाएँ की। अत: रीतिकाल में कवियों के विषयवस्तु एवं शैली के अनुसार अनेक वर्ग मिलते हैं। परिणामत: रीतिकालीन साहित्य में विषय एवं शैलीगत अनेक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। अधिकांश कवियों ने काव्यांग निरुपण को लेकर काव्य ग्रंथों का प्रणयन किया जिसे रीतिग्रंथ कहा जाता है। काव्यांग निरुपण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' नाम से प्रचलित हुई और यह समस्त कालखंड 'रीतिकाल' की संज्ञा से अभिहित हुआ।

20.3 विषय विवरण

20.3.1 विषयगत प्रवृत्तियाँ :

शृंगारिकता : यह रीतिकाल की प्रधान प्रवृत्ति है और लगभग सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। इस कवि ने शृंगार की अभिव्यक्ती में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं किया है। इस कविता का उद्भव ही दरबारी वातावरण में हुआ और ज्ञाातव्य है कि तत्कालीन दरबारी वातावरण विलासप्रियता, कामुकता और रसिकता परिपूर्ण था। विशुद्ध काव्य परंपरा के रूप में इस काल तक रसराज शृंगार को व्यापक प्रतिष्ठ मिल चुकी थी और यह परंपरा रीतिकवियों को एक तरह से उपहार में ही मिली। इस कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का चित्रण किया तथा उसकी विभिन्न दशाओं का भी सूक्ष्म और विशद वर्णन किया। इस कवि ने अपने प्रमुख वर्ण्य विषय नायिकाभेद, नखशिख, आलंकारिकता आदि के लक्षण प्रस्तुत करते हुए शृंगारिकता का माध्यम अपनाया।

नैतिक बंधनों से छूट तथा आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस कवि ने अपने कल्पना के पंख लगाकर शृंगार का उन्मुक्त चित्रण किया है। इसमें उदात्त प्रेमभावना नहीं है बल्कि शरीरसुख की वह साधना है जो विलास के समस्त उपकरणों के संग्रह में लगी रहती है। शृंगार के संयोग पक्ष में दर्शन, श्रवण, स्पर्श और संलाप शृंगार भी पाया जाता है। वियोग पक्ष में रीतिकालीन कवि ने वियोगिनी की दसों दशाओं का भी वर्णन किया है। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं - ''विलासितापूर्ण उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति तथा नारी के प्रति सामंतीय दृष्टि होते हुए भी इस प्रवृत्ति में गार्हस्थिक प्रेम की व्यापक स्वीकृति देखने को मिलती है। मतिराम की यह पंक्ति देखें -

''ते धनि जे ब्रजराज लखें गृहकाज करें अरूलाज संभारें''

रसिकता : रीतिकाल की श्रृंगारिकता रसिकता प्रधान है, इस श्रृंगारिकता का आधार प्रेम नहीं है बल्कि आकर्षण और कामुकता है। कवि की दृष्टि नारी के मन और ह्दय पर नहीं बल्कि उसके शारीरिक सौंदर्य पर अधिक है और यही रसिकता है। यह रसिकता शुद्‌ध ऐंद्रिय है जिसे उपभोगप्रधान रसिकता कहा जा सकता है। इस कवि की दृष्टि नारी के शरीर के चतुर्दिक केंद्रित हो गई है फलस्वरूप उसने नारीशरीर के सौंदर्य के महीन से महीन चित्र उतारे हैं। यही कारण है कि इनकी कविता में उन्मुक्त रूप से ह्दय का स्पंदन नहीं आ सका है। इनका प्रेम रसिकता की कोटि से आगे नहीं जा सका। सारांश में कहा जा सकता है कि इनके प्रेम का स्थान रसिकता ने ले लिया है। यद्‌यपि रीतिमुक्त कवियों में भाव प्रवण ह्दय की सच्ची अनुभूतियाँ मिलती हैं परंतु वे अधिक नही हैं।

वीर रस प्रधानता : इस कालखंड के भूषण, सूदन, पद्‌माकर आदि कवियों द्वारा लिखित वीर रस प्रधान रचनाएँ यह बताती है कि इस कालखंड के कुछ शासक भोग-विलास में मग्न नहीं थे। उनमें राष्ट्रियता की भावना ओतप्रोत थी। विदेशी मुस्लिम शासकों ने अपनी आक्रमकता से भारत के शांत एवं समृद्‌ध वातावरण को अशांत ओर निचोड़ लिया था। हिंदू जनता पर हो रहे भीषण अत्याचारों ने इन शासकों के रगों में चिरकाल से सुप्त वीरसात्मक प्रवृत्तियों को पुन: जगाया। इन शासकों के आश्रय में रहने वाले कवियों ने वीर रसात्मक ऐसी कविताओं की रचना की जिनसे आश्रयदाताओं में नवीन रक्त का संचार हुआ। इन आश्रयदाताओं में दक्षिण के शिवाजी महाराज, मध्यप्रदेश के छत्रसाल, पंजाब में गुरू गोविंदसिंह, राजस्थान में महाराणा राजसिंह और जसवंतसिंह का सेनापति दुर्गादास उल्लेखनीय है। कवियों ने जहाँ इनकी युद्‌धवीरता का वर्णन किया है वहीं दानवीरता का भी। उनकी अनेक रचनाओं में राजप्रशस्ति का भी भाव मिलता है जो झूठा प्रभाव छोड़ता है।

भक्ति और नीति : रीतिकाव्य में व्यक्ति और नीतिसंबंधी उक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई मिल जाती है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भक्तिकाल जैसी भक्तिभावना की प्रधानता इन रचनाओं में है। यद्‌यपि रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से एकदम हीन नहीं हैं परंतु भक्तिकाल जैसी भक्ति की गहराई और उदात्तता उसमें नहीं है। श्रृंगाररस के आलंबन के रूप में इन कवियों ने राधा और कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया हैं किंतु केवल इतना करने से ही इन्हें कृष्णभक्त कवि सूरदास की कोटि में नहीं रखा जा सकता। डॉ. नगेंद्र कहते हैं - यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरूमन के आश्वासन देता होगा। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है - हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ती उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी।''

तात्पर्य यह कि रीतिकवियों ने परिस्थितियों से विवश होकर ही राधा-कृष्ण का श्रृंगारिक वर्णन किया। ग्वाल कवि ने तो राधाकृष्ण से क्षमा तक माँगी है -

''श्री राधा पदपद्‌म को, प्रनमि-प्रनमि कवि ग्वाल।

छमवत है अपराध को, कियों जु कथन रसाल ।।''

अनेक रीतिकवियों की नीतिसंबंधी सूक्तियाँ भी अत्यंत मार्मिक है। बिहारी के नीतिसंबंधी दोहे इस संबंध में द्रष्टव्य है। परंतु नीतिसंबंधी उक्तियों में जीवन के जिन घात-प्रतिघातों के अनुभवों की आवश्यकता होती है वह इनके पास नहीं है।

नारी सौंदर्य का चित्रण : नारी रीतिकवियों की कविताओं का केंद्रीय तत्व है। लगभग सभी रीतिकवियों ने नारी के शारीरिक सौंदर्य का उन्मुक्त एवं कामुक चित्रण किया है। नारी उनके लिए केवल एक भोग्य वस्तु मात्र है। नारी की सामाजिक अस्मिता एवं गरीमा की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया और वह केवल पुरुष के रतिभाव का आलंबन मात्र बनकर रह गयी है। रीतिकवियों की नारी कामशास्त्र की गढ़ी-गढ़ाई नायिकाओं के प्रतिमान मात्र है। नारी

के अंग-प्रत्यंग की शोभा, कामुक हाव-भाव, विलासी चेष्टाओं, मान के विविध रूप, परकीया प्रेम, सौतों की असूया, विपरीत रति आदि के अनेक असंस्कृत चित्र रीतिकाव्य में मिलते हैं। सामंतीय संस्कार एवं विलासी दृष्टि के कारण कवियों की सौंदर्यभावना भी विशयीगत न होकर, विषयगत रही है। डॉ. नगेंद्र कहते हैं – ''नारी के बाह्यरूप की परिचायक अंगों की बनावट में ही इनकी दृष्टि उलझी रही हैं, उसके आंतरिक गुणों तक नहीं पहुँच पाई।''

प्रकृति-चित्रण : हिंदी साहित्य के इतिहास प्रारंभिक तीन कालखंडों में प्रकृति का चित्रण प्राय: उपेक्षित रहा है। रीतिकाल के कवि ने भी प्रकृति का अधिक सजीव एवं बिंबग्राही चित्रण नहीं किया है। प्रकृति के प्रति रीतिकालीन कवि प्राय: तटस्थ दिखाई देते हैं। केवल सेनापति एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्हें ऋतुवर्णन में पर्याप्त सफलता मिली है। सेनापति ने अपने 'कवित्त रत्नाकर' में प्रकृति का आलंबन रूप में अत्यंत सुंदर चित्रण किया है। यद्यपि रीतिकवियों प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण लगभग नहीं किया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप में इस कवि ने जो चित्रण किया वह परंपरा मुक्त है। सेनापति का प्रकृति-चित्रण देखें –

''वृष कौ तरनि तेज सहसौं किरन करि, ज्वालन के जाल विकराल बरसत है।
तचहि धरनि जग जाति झनिसीरी, छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है।।''

गुमान मिश्र का 'कृष्ण चंद्रिका' नामक प्रबंधकाव्य इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इस कवि ने संस्कृत कवियों के समान प्रकृति के खुले दर्शन कराए हैं । बोधा ने 'विरह वारीश' में प्रकुतिवर्णन कुछ तो शास्त्रशद्ध और कुछ स्वच्छंद रखा है। केशव की 'रामचंद्रिका' में भी प्रकृति-चित्रण मिलता है। पद्माकर और देव ने भी प्रकृतिका उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। रीतिकवियों के प्रकृतिचित्रण के विषय में तथ्य यह है जो कवि राज्याश्रय से रहित थे उनका प्रकृतिचित्रण दरबारी कवियों की अपेक्षा अधिक सजीव और मनोरम बन पड़ा है।

सांस्कृतिक चित्रण : रीतिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन सांस्कृतिक परिदृश्य की व्यापक झाँकी प्रस्तुत की है। अपनी स्वच्छंद दृष्टि के कारण इस कवि ने देश के सांस्कृतिक बिंब को उभारा है। रीतिबद्ध कवि वसंत के वर्णन के अंतर्गत होली के त्योहार, गुलाल की गरद और केसर की कीच के वर्णन से आगे नहीं बढ़ सकें। वहीं रीतिमुक्त कवि ने देश के आनन्दोल्लास में खूब भाग लिया। ठाकुर ने अपनी रचनाओं में बुंदेलखंड के सांस्कृतिक जीवन का वैभवशाली चित्रण प्रस्तुत किया। उन्होनें अखातीज, गनगौर, होली, वटसावित्री आदि के बड़े ही भावुक चित्र प्रस्तुत किए हैं। नरोत्तम दास की रचनाओं में दीन-हीन भारत मुखरित हो उठा है। गनगौर का वर्णन वैसे तो पद्माकर ने भी किया है परंतु उनमें ठाकुर जैसी अभिरुचि नहीं दिखाई हैं।

20.3.2 शैलीगत प्रवृत्तियाँ

आलंकारिकता : रीतिकालीन कविताओं की शैलीगत प्रवृत्तियों में यह प्रधान प्रवृत्ति के रूप में सामने आती है। इस कविता में अलंकरन की प्रधानता के कारण की मिश्रबंधुओं ने इस काल का नामकरण 'अलंकृत काल' किया है। उस युग की प्रदर्शन-प्रधान प्रवृत्ति, ठाठबाट, रईसी और श्रेष्ठता प्रदर्शन, लोकप्रियता एवं प्रशंसा पाने की अभिलाषा के कारण रीतिकाल को अपना काव्य कृत्रिम भडकीले रंगों में रंगना पड़ा। इस कालखंड में संस्कृत के अलंकारशास्त्र की लोकप्रियता भी अधिक थी। अत: कवि को अलंकार शास्त्र के अनुसार अपनी कविता-कामिनी अलंकारों के सांचे में खलना पड़ा। इस काल के रीतिबद्ध कवि आचार्यत्व का दावा भी करते थें। अत: इसी परंपरा में बहुत सारे कवियों ने अलंकारों के लहान और उदाहरण रचे। अलंकारशास्त्र के ज्ञान के बिना उस समय के कवि को सम्मान मिलना कठिन था इसलिए आलंकारिकता इस युग में खूब फली-फुली। अलंकार साधन से साध्य बन गए । इस कवि ने अलंकार निरूपण में मौलिक उद्भावनाओं से काम नहीं लिया। यही कारण है कि इनके अलंकार कविता की शोभा वृद्धि करने की अपेक्षा उसके सौंदर्य के विघातक बन गए । इस काल के अलंकार के ग्रंथों में केशव की कविप्रिया, महाराजा जसवंतसिंह का 'भाषाभूषण', मतिराम का 'ललित-ललाम' महाराजा रामसिंह का 'अलंकारदर्पण' प्रसिद्ध हैं।

ब्रजभाषा की प्रधानता : भाषा की दृष्टि से इस काल में ब्रजभाषा ही प्रमुख साहित्यिक भाषा रही । ब्रजभाषा यह संस्कृत के पश्चात्त सर्वाधिक लालित्यपूर्ण भाषा होने के कारण रीतिकाव्य की विषयवस्तु के अत्यंत उपयुक्त थी। यही कारण है कि इस कालखंड में ब्रजभाषा का अभूतपूर्व विकास एवं उन्नयन हुआ और वह साहित्यिक परिनिष्ठित भाषा के रूप में स्थापित हुई। उसमें प्रेम की विविध एवं सूक्ष्म वृत्तियों की सफल व्यंजना हुई क्योंकि उसमें कोमल रसों की सुंदर अभिव्यक्ति की अपार क्षमता थी। वर्ण-मैत्री, अनुप्रासिकता, उक्ति-वैचित्र्य आदि अनेक विशेषताएँ इसमें प्रचुर प्रमाण में मिलती हैं । घनानंद की भाषा की लाक्षणिकता विशेष हृदयग्राही है। रसखान और घनानंद ने तो ब्रजभाषा साहित्यिक रूप को तो चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। आधुनिक काल तक बहुत से कवि ब्रजभाषा की माधुरी पर लट्टू थे और इसे ही काव्याभिव्यक्ति के अनुकूल मानते थे। एक तरह से यह कालखंड ब्रजभाषा के चरमोन्नति का कालखंड है।

लक्षण ग्रंथों का निर्माण : हिंदी में रीतिकाव्य का प्रयोग ही साधारणत: लक्षणग्रंथों के लिए होता है। जिन ग्रंथों में काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण -उदाहरणसहित विवेचन होता है, उन्हें ही लक्षणग्रंथ वा रीतिग्रंथ कहते हैं । लक्षण ग्रंथों के निर्माणकर्ताओं को ही आचार्य और कविकर्म को आचार्यत्व कहा गया। केशवदास ने सर्वप्रथम शास्त्रीय पद्धति पर इस और अलंकारों का निरूपण 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' में किया, किंतु चिंतामणी त्रिपाठी से लक्षणग्रंथों की अखंड परंपरा चलती रही। इस प्रकार रीतिकाल में कविकर्म और आचार्य कर्म एक साथ चलते रहे। यह दोनों कर्म परस्पर विरोधी हैं । रीति कवि तो कोमल भावनाओं का चितेरा था परंतु आचार्य कर्म उसे बिवशतावश अपनाना पड़ा। इस युग में कुछ ऐसी परिपाटी चल पडी थी कि कोई भी कवि रीतिशास्र के ज्ञान के बिना राजदरबार में आदर का पात्र नहीं बन सकता था। अत: पांडित्य प्रदर्शन और प्रतिष्ठा के लिए रीतिकवि को रीतिशास्त्र का आधार लेना पडा। परिणामत: उनकी कविता में मौलिकता का अभाव पाया जाता है। कारण उनका भावपूर्ण हृदय रीतिप्रधानता के कारण बाधित हुआ।

काव्यरूप : काव्य के मुख्यत: दे रूप मिलते हैं - प्रबंधकाव्य और मुक्तकाव्य। रीतिकालीन कवि ने मुख्यत: मुक्तक काव्य शैली का ही अधिक प्रयोग किया। वैसे भी यह काल प्रबंधकाव्य के निर्माण के लिए अनुपयुक्त था क्योंकि इसके लिए उदात्त कथानक, असीम धैर्य और परिश्रम की आवश्यकता होती हैं। समूचे रीतिकाल में मुक्तक शैली की प्रधानता रही। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छंदों को ही अपनाया । नीति और सुक्तियों के लिए दोहा छंद का प्रयोग ही अधिक किया गया। इस युग में प्रबंधकाव्यों की रचना भी हुई परंतु वे मुक्तक काव्य के सामने फीके पडे। आलम ने 'माधवानल- कामकंदला,' 'सुदामा चरित' और 'श्याम सनेही' नामक तीन प्रबंधकाव्य लिखे। बोधा ने भी 'माधवानल कामकन्दला' और 'विरह बारिश' प्रबंध काव्य लिखा। इस प्रकार ओर भी कई प्रबंधकाव्य लिखे गए। परंतु वे विशिष्ट न बन सके। रीतिकवि की लगभग सारी चातुरी और प्रतिभा मुक्तक शैली में ही प्रकट हुई।

अभिव्यंजना की पद्धति : किसी भी कवि की अभिव्यंजना की शैली में अपनी वैयक्तिकता की छाप होती है और यह अत्यंत स्वाभाविक होती है। इस वैयक्तिकता की शैली पर कवि का तत्कालीन परिवेश का प्रभाव होता है। समाज, परिवार, धर्म, संस्कृति, जीवनदृष्टि आदि से संबंधित अनेक प्रकार के मुहावरें, लोकोक्तियाँ, शब्द-व्यवहार, विशेषण आदि का इस अभिव्यंजना पद्धति पर गहरा प्रभाव होता है। रीतिकालीन कवि ने भी तत्कालिन जनजीवन और समाज में व्यवहृत अनेक प्रकार के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया हैं जिससे उसकी कविता एक नयी अर्थवत्ता प्राप्त कर लेती है। नत्थु और कछु का प्रयोग साधारण नायक-नायिका के लिए करना, कृष्ण के रूप में नए प्राणभर उसे कन्हैया या साँवलिया के रूप में प्रस्तुत करना आदि उल्लेखनीय हैं । रीतिकालीन कवि ने ध्वन्यात्मक शब्दों का भी भरपूर प्रयोग किया। रीतिकवि द्‌वारा प्रयुक्त विशेषणों में चित्रात्मक सौंदर्य दिखाई देता है।

फारसी शैली का प्रभाव : तत्कालीन राजा-महाराजाओं के दरबारों में मुगल शासकों की शिष्टता, व्यवहार, रहन-सहन का अनुकरण होने से रीतिकवियो की कविता में फारसी के लच्छेदार शब्द मिलते हैं। मुगलशासकों के दरबार में वैसे तो हिंदी को थोडा-बहुत संरक्षण मिला था। परंतु दबदबा फारसी और उर्दू का ही था, हिंदी का नहीं। अत: रीतिकवि उनसे होड़ लेने लगे और फारसी कवियों की ऊहात्मक पद्धति को उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए नि:संकोच अपनाया। इसलिए रीतिकवियों की भाषा में फारसी शैली की सुकुमारता और विनोदप्रियता जैसी विशेषताएँ या गुण मिलते हैं।

विविधमुखी साहित्य : रीतिकवियों की सबसे बडी विशेषता उनकी बहुश्रुतता है। इन कवियों ने केवल कविता ही नहीं लिखी जिसे प्राय: लोग शृंगारिक या अश्लील कविता का बाना पहनाते हैं बल्कि उनके काव्यग्रंथों में अनेक प्रकार के शास्त्रीय विषयों और ज्ञान का परिचय भी मिलता है। इसलिए रीतिकालीन साहित्य में एक तरह की व्यापकता परिचय मिलता है और कवियों की जागरूकता का भी। इस युग में अनेक ऐसे शास्त्रीय विषयों से संबंधित ग्रंथ मिलते हैं जिनमें ज्योतिष, राजनीति, भूगोल, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, संगीत शास्त्र आदि उल्लेखनीय हैं। यह साहित्य केवल एकांगी दृष्टि से नहीं लिखा गया, इसमें विविधता एवं व्यापकता मिलती है अत: इसे संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखना हितकर नहीं है। रीतिकालीन साहित्य विविधमुखी साहित्य है।

20.4 शब्दार्थ :

सामंत - शासक, राजा, महाराज,

मुक्तक - छंद के बंधन से रहित काव्य

नखशिख - सिर से पैर तक

बहुश्रुतता - व्यापक ज्ञानसंग्रह

20.5 सारांश :

रीतिकाव्य की समस्त विशेषताओं के अध्ययनोंपरांत यह कहा जा सकता है कि हिंदी काव्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। इसे केवल शृंगारिक प्रवृत्तिप्रधान कविता कहकर इसके महत्त्व को घटाया नहीं जा सकता । यह कवि समाज को केवल मौजमस्ती, विलासी जीवन का संदेश नहीं देना चाहता और न ही पुरुषार्थ के प्रति उसकी दृष्टि को बदलना चाहता है। वह जनसमाज निराशा और निवृत्ति की भावना नहीं जगाना चाहता । रीतिकाल के अनेक ऐसे कवि हैं जिन्होंने भक्ति, नीति, वीरता और राष्ट्रगौरव का पक्ष लेकर कविता लिखी है। जिन्होंने जीवन के केवल एक पक्ष यानी रसीकता को ही ग्रहण किया वह उनकी संकीर्णता या दुर्बलता कही जा सकती है परंतु इस पक्ष के चित्रण में भी उन्होनें अपनी कलात्मकता और प्रतिभा का परिचय दिया है । इनके काव्य में मात्र जीवन-दर्शन का अभाव खटकता है। कलात्मक सर्जना, अलंकृत अभिव्यंजना, रसात्मकता और मुक्तक परंपरा की समृद्धि में इस काल का योगदान अद्भुत है।

20.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) रीतिकालीन विषयगत प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

2) रीतिकालीन प्रमुख प्रवृत्तियों का सोदाहरण परिचय दीजिए।

3) रीतिकाल की शैलीगत प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।

4) रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर उसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

ख) टिप्पणियाँ

1) शृंगारिकता

2) आलंकारिकता

3) लक्षण ग्रंथ

4) रीतिकवि की भक्तिभावना

ग) एक दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बताकर दो कवियों के नाम लिखिए।

2) श्रृंगाररस के आलंबन के रूप में रीतिकाव्य ने किसका चित्रण किया।

3) रीतिकाव्य प्रमुख रूप से किस भाषा में लिखा गया है।

4) रीतिकाव्य मुख्यत: किस काव्य-रूप में लिखा गया हैं।

छ) सही पर्याय लिखिए -

1) 'रीति' शब्द निम्नलिखित किस अर्थ का द्‌योतक है?

अ) जीवन-पद्‌धति ब) काव्यरचना पद्‌धति क) विचार पद्‌धति ड) सामाजिक स्थिती

2) 'रामचंद्रिका' किस कवि की रचना है?

अ) केशवदास ब) भूषण क) बिहारी ड) चिंतामणि

3) रीतिकाल के किस कवि ने प्रबंधकाव्य रूप में रचनाएँ लिखी?

अ) घनानंद ब) कुलपति मिश्र क) आलम ड) मतिराम

20.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

1) भारतीय काव्यशास्त्र परंपरा को लेकर रीतिकाव्य की कलात्मकता और सर्जना का प्रारूप तैयार कीजिए।

2) रीतिाकालीन किसी एक कवि की रचना की समीक्षा कीजिए।

3) रीतिकवि की बहुश्रुतता अर्थात्‌ उनके शास्त्रीय ज्ञान के प्रति समझ और व्यापकता का निरीक्षण करें।

20.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

1) हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

2) हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - ना. प्र. सभा, काशी ।

pppp

इकाई – 21
रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त काव्यधाराओं का परिचय

21.1 उद्देश्य

21.2 प्रस्तावना

21.3 विषय-विवरण

21.3.1 रीतिबद्ध काव्यधारा

21.3.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा

21.3.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

21.4 शब्दार्थ

21.5 सारांश

21.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

21.7 स्वाध्याय-क्षेत्रीय कार्य

21.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

21.1 उद्देश्य :

1) रीतिकालीन समस्त साहित्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं वर्गों का अध्ययन करना।

2) समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं कवियों का परिचय प्राप्त करना।

21.1 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में सं. 1700 ते 1900 के बीच का कालखंड रीतिकाल के नामकरण से जाना जाता है। वस्तुत: यह नामकरण इस कालखंड में बहुतायत में लिखी गई रीतियुक्त कविताओं के आधार पर हुआ है। इन रीतियुक्त या रीतिप्रधान कविताओं को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया गया हैं – रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध। इन दोनों प्रकार के कवियों में रीतिनिरूपण का भाव प्रमुख है। डॉ. नगेंद्र अपने इतिहास में लिखते हैं – ''रीतिकाल के अंतर्गत राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना अथवा काव्य-रसिक-समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान प्राप्त कराने के उद्देश्य से ब्रजभाषा में रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। अतएव इन कवियों की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी।''

''रीति' शब्द की काव्यशास्त्रीय परिभाषा एवं अर्थ का पर्याप्त विवेचन अब तक हुआ है। रीतिकवियों के वर्गीकरण का भी प्रयास हुआ है और इस प्रकार रीति निरूपण के आधार पर रीतिकवियो के दो वर्गों को मान्यता दी गई हैं – सर्वांग निरूपक एवं विशिष्टांग निरूपक। जहाँ तक रीतिकाव्य के दो प्रमुख भेदों रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध के विवेचन का प्रश्न है, इन शब्दों के विषय में पर्याप्त मतभेद विद्वानों में मिलता है, रीतिमुक्त काव्य के संबंध में कोई मतभेद नहीं है। रीतिमुक्त काव्य रीतिकाल के अंतर्गत प्राप्त होने वाली काव्यरचनाओं की वह परंपरा है, जिसका रीति से कोई संबंध नही है। रीतिबद्ध काव्य के विषय में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत हैं कि रीतिबद्ध रचना लक्षणों एवं उदाहरणों से युक्त होती हैं परंतु डॉ. नगेंद्र ऐसी रचनाओं को रीतिबद्ध कहने के पक्ष में नहीं है। ऐसे कवियों को वे रीतिकार आचार्य कवि मानते हैं जिन्होने काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। उनकी दृष्टि में रीतिबद्ध कवि वे हैं जिन्होंने काव्यसिद्धांतों एवं लक्षणों के अनुसार काव्यरचना की है। इन्होंने काव्यांगों का प्रत्यक्षात: निरूपण नहीं किया। कहने का तात्पर्य यह है की आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार जो रीतिसिद्ध कवि है वे डॉ. नगेंद्र के अनुसार रीतिबद्ध हैं और डॉ. नगेंद्र के अनुसार जो रीतिसिद्ध कवि हैं वे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार रीतिबद्ध हैं। अत: इस प्रसंग में अधिक विवेचना की अपेक्षा रीतिकाल का उसके तीन प्रमुख भेदों के अनुसार विश्लेषण करना अधिक न्यायसंगत होता।

21.3 विषय – विवरण :

21.3.1 रीतिबद्ध काव्यधारा

रीतिबद्ध काव्य ही रीतिकाल का प्रमुख काव्य या काव्यधारा है। इसे लक्षणबद्ध काव्य भी कहा जाता है। रीतिबद्ध काव्य वस्तुत: रीतिकाल का वह काव्य है जिसके कवियों ने रीति के बंधन का संपादन करने में अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया और काव्यशास्त्र की प्राचीन बँधी-बँधाई परिपाटी या परंपरा का अनुकरण कर रस, रीति, अलंकार, छंद शब्दशक्ति, काव्यगुण आदि से संबंधित लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया। अत: एक प्रकार से यह लक्षणबद्ध काव्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है। रीतिबद्ध कवि संस्कृत के काव्यशास्त्र के आधार पर काव्यांग के लक्षण देते हुए उनके सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह कवि काव्य के लक्षण या उदाहरण प्रस्तुत करते हुए शृंगार रस का आश्रय लेते थे और शृंगार की रचनाएँ करते थे अत: यह शृंगारिक कवि भी कहे जाते हैं। इनकी शृंगारिकता की प्रवृत्ति के आधार पर ही आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस काल का नामकरण शृंगारकाल किया है।

रीतिबद्‌ध कवि अपने आपको कवि शिक्षक या आचार्य के नाम से अभिहित करते हैं। इन कवियों में आचार्य बनने का लोभ अधिक होने के कारण ही इनके कवि हृदय की स्वाभाविक उन्मुक्तता बाधित हुई है। भाव की दृष्टि से इनके काव्य में भले ही सरसता एवं मौलिकता का अभाव हो परंतु काव्य-लक्षण-निरूपण की तुलना में इनके उदाहरण अधिक सशक्त एवं आकर्षित बन पड़े हैं। रीतिबद्ध आचार्य कवियों में कवित्त्व और आचार्यत्व का अद्‌भुत एकीकरण मिलता है जहाँ तक इन कवियों के आचार्य होने प्रश्न है, कारण यह है कि इनका उद्‌देश्य संस्कृत काव्यशास्त्र का हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत कर देना मात्र था किसी काव्यसिद्धांत की प्रतिष्ठा करना नहीं। इन पर संस्कृत के अलंकार, रस, ध्वनि संप्रदाय का प्रभाव अधिक पड़ा है फलस्वरूप ये किसी मौलिक उद्‌भावना को जन्म नहीं दे सके। इनके काव्य में कलापक्ष की प्रधानता मिलती है।

शृंगारिकता की प्रवृत्ति इनके काव्य में प्रधानता से मिलती है। शृंगार के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों पर इन्होंने रचनाएँ की। कृष्णभक्ति के आराध्य देवता कृष्ण और राधा को इन कवियों ने अपने शृंगार का आलंबन बनाया। राधा और कृष्ण के रूप-सौंदर्य, हाव-भाव, आंगिक चेष्टाओं आदि के चित्रण के माध्यम से षड्‌ऋतु वर्णन, बारहमासा, नख-शिख वर्णन, नायिकाभेद तथा संयोग शृंगार की विभिन्न दशाओं का इन्होंने 'अलंकार शास्त्र' के परिदृश्य में विवेचन किया। शृंगार के प्रति अतिशय अनुराग का ही परिणाम था कि इन कवियों ने वीर और रौद्र रस के उदाहरण भी 'रतिरण' चित्रित करके ही दिए। तत्कालीन सामंती परंपरा और कृष्णकाव्य की शृंगारिक परंपरा दोनों की प्रेरणा से ऐसा करने के लिए यह सभी कवि प्रेरित थे।

हिंदी साहित्य कोश में इस काव्य पर अधिक प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि विभिन्न काव्यसिद्‌धांतों को दृष्टि में रखकर काव्य के जो उदाहरण लिखे गए वे रीतिकाव्य के नमुने हैं। आ. राजशेखर ने रीतिबद्‌ध कवियों को 'आचार्य कवि' कहा है। रीतिबद्‌ध आचार्य कवि वे हैं जिन्होंने लक्षण ग्रंथ और लक्ष्य ग्रंथ दोनों लिखें परंतु काव्य सिद्‌धांतो की उदाहरण सहित शिक्षा देने की प्रवृत्ति इनमें प्रधान है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहा जाये तो हिंदी में रीति का अर्थ साधारणत: लक्षण ग्रंथों के लिए ही होता है। इन लक्षण ग्रंथों में समस्त काव्यांगों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रीतिनिरूपक या रीतिबद्‌ध कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति काव्यांग विवेचन की होने कारण इनके दो भेद विद्‌वानों ने किए हैं - 1) सर्वांग निरूपक रीतिकवि और 2) विशिष्टांग निरूपक रीतिकवि। सर्वांग निरूपक कवि वे हैं जिन्होंने अपने लक्षण ग्रंथो में काव्य के समस्त अंगों - काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्य की आत्मा, शब्दशक्ति गुण, दोष, रीति, अलंकार छंद का विवेचन किया है। विशिष्टांग निरूपक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर उसके तीन महत्त्वपूर्ण अंगों - रस, अलंकार और छंद में से एक, दो अथवा तीनों का निरूपण अपने एक अथवा अनेक ग्रंथों में किया हैं। डॉ. नगेंद्र ने अपने ग्रंथ में इनका भी वर्गीकरण किया हैं - शृंगार रस निरूपक, नायिकाभेद निरूपक, अलंकार निरूपक, छंदोंनिरूपक आदि।

सारांश में कहा जा सकता है कि रीतिबद्‌ध काव्य वस्तुत: लक्षणग्रंथ काव्य है। हिंदी साहित्य के रीतिकाल में यह रीतिबद्‌ध काव्य परंपरा अत्यंत सुदृढ़ मानी जाती है। इस काव्य परंपरा का प्रारंभ आचार्य केशवदास से माना जाता है। अन्य कवियों में चिंतामणी, देव, भूषण, श्रीपति, कुलपति, पद्‌माकर, भिखारीदास, मतिराम, जसवंतसिंह, दूलह प्रतापसिंह, सूरति मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं।

21.3.2 रीतिसिद्‌ध काव्यधारा

रीतिसिद्‌ध काव्यधारा रीतिकाल की रीति निरुपक कवि परंपरा का दूसरा वर्ग है। यद्‌यपि रीतिसिद्‌ध कवि काव्यशास्त्र के पंडित थे फिर भी उन्होंने रीति ग्रंथों अर्थात लक्षणग्रंथो की रचना नहीं की बल्कि अपनी स्वतंत्र स्थापनाएँ की। तात्पर्य यह कि इस काव्यधारा के कवियों ने रीतिकाव्य की बँधी-बँधाई परिपाटी में आस्था रखते हुए भी लक्षण ग्रंथों का निर्माण नहीं किया। इन्होंने रीति-परिपाटी से भिन्न स्वतंत्र ग्रंथों का निर्माण किया। अर्थात रीति का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी उसके बँधनों को ढीला करके इन्होंने स्वतंत्र काव्य रचना की। यह कवि रीति परंपरा के गुलाम नहीं थे।

रीति की सिद्धि इन्हें प्राप्त थी परंतु आग्रह नहीं था। यह कवि एक प्रकार से मध्यमार्गी थे अर्थात न रीतिबद्ध थे और न रीतिमुक्त। यह रीति से बँधे भी थे और रीति से कुछ स्वतंत्र होकर भी चलते थे। इन्होंने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे परंतु लक्षण ग्रंथों के परिपाटी के अनुकूल रचना की। दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता हैं कि इन्होंने रीतिग्रंथ तो नहीं लिखे परंतु रीति परिपाटी के अनुसार काव्यरचना की।

इस काव्यधारा मे कवियों को रीति-निरपेक्ष काव्यधारा भी कहा जा सकता है। यह रीतिबद्ध आचार्य कवियों से पर्याप्त भिन्न थे। रीतिबद्ध आचार्य कवि रीतिग्रंथ तो लिखते थे परंतु लक्षणों से बाहर नहीं जा सकते थें। जो कुछ कहना होता लक्षणों के भीतर ही कहते। रीतिबद्ध कवियों में व्यक्तिगत विशेषताओं का स्फुरण बहुत कम हुआ है बल्कि रीतिसिद्ध कवियों की रचनाओं में व्यक्तिगत विशेषताएँ प्राप्त होती है। रीतिसिद्ध कवि रीति से बँधकर भी स्वतंत्र है और स्वच्छंद चलते हैं। केवल रीतिशास्त्र में निष्णात होने के कारण इन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया और इनके कृतित्व को रीतिसिद्ध काव्यधारा की संज्ञा दी गयी है। राजशेखर ने ऐसे कवियों के लिए 'काव्यकवि' शब्द का प्रयोग किया है। रीतिबद्ध कवियों में जहाँ कवित्व की अपेक्षा आचार्य तत्त्व अधिक है वहीं रीतिसिद्ध कवियों में कवित्व ही है, आचार्यत्व है ही नहीं। रीतिबद्ध कवियों में आचार्य होने की अभिलाषा अधिक है, ठीक इसके विपरित रीतिसिद्ध कवियों में काव्य गौरव की अभिलाषा मिलती है। रीतिसिद्ध कवियों ने एक तरह से रीतिबद्ध कवियों के विपरीत काव्यरचना करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए बिहारी को ही ले। इन्होंने रीतिबद्ध कवियों की बनाई कवित्त और सवैय्ये जैसे छंदों की दीवार तोड़कर दोहों (मुक्तक) को अपनाकर अपने व्यक्तिवैशिष्ट्य का परिचय दिया हैं। इनके दोहों में सूक्ष्म कलात्मकता, नाद सौंदर्य की अद्भूत छटा एवं ध्वन्यात्मकता का परिचय मिलता है। अर्थव्यापकता और रंजकता भी सरस है जो प्राय: रीतिबद्ध कवियों में नहीं मिलती। इस प्रकार रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों में स्पष्ट विभाजक रेखा खींची जा सकती है। दोनों काव्य भावाभिव्यक्ति के स्तर पर पर्याप्त भिन्न है। रीतिसिद्ध काव्य में स्वानुभूति की मौलिकता मिलती है। इस काव्यधारा के महत्त्व के विषय में हिंदी साहित्य कोश में डॉ. भगीरथ मिश्र लिखते हैं - ''जो लक्षणरहित रीतिकाव्य ग्रंथ है, उनका अधिक मौलिक महत्त्व हैं, क्योंकि उनके अंतर्गत ब्रजभाषा काव्य का सुंदर प्रांजल रूप मिलता है। रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी, सेनापति, रसनिधि, नेवाज, पजनेस आदि उल्लेखनीय हैं।

21.3.3 रीतिमुक्त काव्यधारा

रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा से तात्पर्य यह है कि यह काव्यधारा रीतिनिरूपक काव्यपरंपरा के साहित्यिक बंधनों, नियमों एवं रूढ़ियों से सर्वथा मुक्त है। इस काव्यधारा को कुछ विद्वानों ने स्वच्छंद काव्यधारा के नाम से भी अभिहित किया है परंतु इसका 'रीतिमुक्त काव्यधारा' नामकरण ही सर्वमान्य हुआ है। 'स्वच्छंद' से तात्पर्य इन कवियों की स्वच्छंद मनोवृत्ति से है, अंग्रेजी साहित्य के रोमांटिक काव्य से नहीं है। सबसे बड़ी बात यह कि 'रीतिमुक्त काव्यधारा' इस नामकरण के प्रति विद्वानों में कोई मतभेद या विवाद नहीं है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि रीतिकवि नहीं है केवल उनका रचनाकाल रीतिकाल में पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिबद्ध कवियों को ही रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि माना है। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों की परस्पर भिन्नता के विषय में उन्होंने लिखा है - ''ये पिछले वर्ग के कवि प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न है कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है।''

रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में बंधनमुक्तता के कारण मार्मिक और मनोहर पद्यों की संख्या कुछ अधिक हैं। इन्होंने अपना कविकर्म अपनी आत्मतुष्टि के लिए किया है अर्थात अपना काव्य अपनी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल लिखा है, स्वच्छंद वृत्ति से रचना की है। रीतिशास्त्र के बंधन से मुक्त होकर ये अपनी वेदना और प्रणयानुभूति को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करते थे। विषयवस्तु और विषय-विन्यास सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपनी स्वच्छंदता का परिचय दिया तथा नायिकाभेद, रस-निरूपण एवं अलंकार-वर्णन से निरपेक्ष होकर अपनी आंतरिक

अनुभूतियों को स्वच्छंद अभिव्यक्ति दी हैं। काव्यरीति के साथ ही इन्होंने प्रणय के क्षेत्र में लोकरीति से भी विद्रोह किया। इनके काव्य का रसास्वादन करने के लिए चर्मनेत्रों की नहीं, हिय के आँखों की आवश्यकता होती है तथा अपने प्रणय का ये स्वयं ही निवेदन करते हैं। इनका प्रेम काव्यशास्त्रीय मर्यादाओं में बँधने वाला नहीं है। राजाओं की प्रशंसा या मनोरंजन करने वाले ये चाटुकार कवि नहीं थे। प्रेम की तीव्रता एवं वियोग की प्रधानता इनकी रचनाओं की महत्वपूर्ण विशेषता है। इनके व्यक्तित्व का निर्माण ही प्रेम ने किया है। यह एक प्रकार का अंतर्मुखी काव्य है। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेमी-प्रेमिकाओं अथवा नायक-नायिकाओं की योजना कर प्रेमभाव की जैसी व्यंजना की है, वह यहाँ नहीं है। इनके प्रेम में वेदना है। इनका प्रेम यद्यपि लौकिक है परंतु इसकी शैली नवीन है, फारसी प्रेम परंपरा जैसी नहीं। इसमें आत्मपरकता है, भावावेग का उच्छल प्रवाह बहता है। यही कारण है कि रीतिबद्ध काव्य जहाँ वस्तुप्रधान है, तो रीतिमुक्त काव्य व्यक्तिप्रधान है। इनके प्रेम में उदात्तता है, ऐंद्रिय वासन नहीं है।

कुछ विद्वानों ने इसे रीति विरुद्ध काव्यधारा भी कहा है। कारण यह कि प्राचीन काव्यपरंपरा का त्याग इनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है। यह काव्य रूपप्रधान कम और भावप्रधान अधिक है अर्थात काव्य को सजाने-सँवारने की प्रवृत्ति इनमें कम है। रीतिमुक्त कवियों ने अपनी काव्यशैली पर अलंकारों के चमत्कारों को आरोपित नहीं होने दिया है। रीतिमुक्त कवि की एक ओर विशेषता भाषा का असाधारण प्रयोग है। रीतिबद्ध कवियों की भाषा में एकरूपता है तथा जीवन से कटी हुई प्रतीत होती है वही रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लोकजीवन का सौंदर्य दिखाई पड़ता है। सहज भाषा में बड़ी मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति इस कवि ने की है। उनकी संपूर्ण काव्यकला लोकजीवन की ओर विशेष झुकी हुई है। सारांश में कहा जा सकता है कि रीतिमुक्त काव्यधारा ह्रदय की उत्कटता का काव्य है। उसमें कृत्रिमता या जड़ता नहीं है। काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण यह काव्यधारा आंतरिक अनुभूतियों के प्रकाशन में अधिक सफल हुई है। इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि उल्लेखनीय हैं।

21.4 शब्दार्थ :

काव्यांग - रस, छंद, रीति, अलंकार आदि

परिपाटी - मार्ग

सर्वांग - काव्य के सभी अंग

स्वच्छंद - बंधनहीन

21.5 सारांश :

रीतिकाल में यद्यपि रीति अर्थात लक्षणग्रंथ संबंधित साहित्य का सृजन प्रमुखता से हुआ परंतु स्वच्छंद मनोवृत्ति से भी काव्य निर्माण हुआ। इस काल का साहित्य वस्तुत: बहुविध एवं समांतर अनेक काव्यसरणियों का साहित्य कहा जा सकता है। रीतिकाल के साहित्य को केवल रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त इन दो धाराओं में विभक्त कर इसका परीक्षण नहीं किया जा सकता या वह अपूर्ण होगा। इस काल में भक्ति, नीति, प्रेम, ज्ञान एवं वीररस की काव्यधाराएँ भी मिलती हैं। अनेक ऐसे कवि मिलते हैं जिन्होंने 'कला कला के लिए' की धरती पर काव्य नहीं लिखा। रीतिबद्ध कवियों में जहाँ कविता के कलापक्ष के प्रति अधिक रुचि मिलती है वहीं रीतिमुक्त कवियों में जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। रीतिबद्ध कवियों में अभिव्यंजना कला की उत्कृष्ट प्रतिभा थी, उनकी लेखनी से भाषा का संस्कार, परिष्कार एवं श्रृंगार भी हुआ। इस काल के प्रतिनिधि कवि यही हैं। केवल राजा-महाराजा एवं सामंतों की प्रशंसा में लिख काव्य कहकर इसका महत्व कम नहीं किया जा सकता है। इस काल का महत्व इसलिए भी है कि अनेक कवियों ने साहित्य परंपराओं से विद्रोह कर अपनी रुचि के अनुसार काव्यनिर्माण किया। यहाँ पर आधुनिकता का संकेत भी मिलने लगता है जहाँ सामान्य जनजीवन को साहित्य में स्थान देने प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

21.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) रीतिकाल की रीतिसिद्‌ध' एवं रीतिबद्‌ध काव्यधाराओं का सोदाहरण परिचय दीजिए।

2) रीतिकालीन काव्यधारा में रीतिमुक्त या स्वच्छंदतावादी कवियों का स्थान निर्धारित कीजिए।

3) हिंदी साहित्य में रीतिकालीन कविता के महत्व पर प्रकाश डालिए।

ख) टिप्पणियाँ :

1) रीतिबद्‌ध काव्य

2) रीतिमुक्त काव्य

3) रीतिकाव्य का वर्गीकरण

ग) एक-दो वाक्यों में उत्तरवाले प्रश्न :

1) रीतिमुक्त काव्यधारा से क्या तात्पर्य है?

2) रीतिग्रंथों से क्या तात्पर्य है?

3) आ. राजशेखर ने रीतिबद्‌ध कवियों को 'आचार्य-कवि' क्यों कहा है?

4) डॉ. नगेंद्र के अनुसार रीतिसिद्‌ध कवि कौनसे हैं?

घ) सही पर्याय लिखिए :

1) निम्नलिखित में से कौनसे कवि रीतिमुक्त कवि हैं-

अ) बिहारी ब) नेवाज क) घनानंद ड) भूषण

2) रीतिकाल की आचार्य परंपरा के सर्वप्रथम कवि कौन है -

अ) देव ब) भूषण क) मतिराम ड) केशवदास

3) 'हिंदी रीतिसाहित्य' ग्रंथ के लेखक कौन है-

अ) भगीरथ मिश्र ब) नगेंद्र क) रामचंद्र शुक्ल ड) सूखदेव मिश्र

4) रीतिमुक्त कवियों के लिए 'काव्यकवि' शब्द का प्रयोग किसने किया -

अ) भामह ब) राजशेखर क) पं. जगन्नाथ ड) रुद्रट

21.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

1) रीतिकालीन कवियों की काव्यप्रवृत्तियों का अवलोकन कर उनकी सूची तैयार कीजिए।

2) रीतिकालीन काव्यधाराओं की तालिका तैयार करें।

3) रीतिकालीन किसी एक धारा के कवि की रचना का मूल्यांकन कीजिए ।

pppp

इकाई – 22
आचार्यत्व और कवित्व की परंपरा

22.1 उद्देश्य

22.2 प्रस्तावना

22.3 विषय विवरण

22.3.1 आचार्यत्व की परंपरा

22.3.2 कवित्व की परंपरा

22.4 शब्दार्थ

22.5 सारांश

22.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

22.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीयकार्य

22.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

22.1 उद्देश्य :

* रीतिकालीन आचार्यत्व एवं कवित्व प्रधान दोनों परंपराओं की भूमिका एवं विशेषताओं को समझेंगे।
* रीतिकालीन आचार्यो के साहित्यिक योगदान में संस्कृत की आचार्य परंपरा के योगदान से परिचित होंगे।

22.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के उत्तरमध्य काल में जो रीतिसाहित्य का सृजन हुआ उसके विकास के अनेक कारण हैं। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण संस्कृत की काव्यांग निरूपणवाली विशाल परंपरा का उपलब्ध होता है। इसे काव्यशास्त्रीय परंपरा भी कहते हैं और इस पपरंपरा का आरंभ कब हुआ यह बता सकना अत्यंत कठिन है। डॉ. नगेंद्र इस विषय में लिखते है – ''इता निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि वैदिक काल से ही इसके विभिन्न अंगों का विकास आरंभ हो गया था और भरत के समय तक इनका इतना विकास हो चूका था कि सबको एकत्र कर वे 'नाट्यशास्त्र' जैसे प्रामाणिक ग्रंथ की रचना कर सके। इनके पश्चात भामह तक मेधाविन आदि आचार्यों ने इस दिशा में और योगदान दिया। बाद में स्थिति यहाँ तक पहुँची कि काव्य के भीतर विशिष्ट काव्यांगों के महत्व को लेकर संप्रदाय स्थापित हो गए।...संस्कृत में काव्यशास्त्र के पाँच संप्रदाय प्रसिद्ध हैं – रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति संप्रदाय। विशेष यह कि इन सभी संप्रदायों के व्याख्याकार पंडित, आचार्य आदि उपाधियों से जाने जाते हैं। यद्यपि रीतिकाल का रीति शब्द संस्कृत के रीति संप्रदाय के रीति शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है। संस्कृत में रीति को काव्यरचना प्रणाली (वैदभी, गौडी, पांचाली, लाटी) के रूप ग्रहण किया गया है परंतु रीतिकाल की रीति का अर्थ है अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिकाभेद, नखशिख आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणाली के आधार पर रचा गया काव्य । इस प्रणाली के अनुसार काव्य के लक्षण, उदाहरण आदि प्रस्तुत करनेवाले कवियों को भी आचार्य कहा जाने लगा । इन आचार्यो में काव्यत्व की अपेक्षा आचार्यत्व की मात्र अधिक है। इन्होंने अपना सारा ध्यान सिद्धांत प्रतिपादन में लगाया और कविता के भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष को अधिक प्रधानता दी। इस कालखंड में अनेक कवि ऐसे भी हुए जिन्होंने कविता के कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष पर अधिक ध्यान दिया और स्वतंत्र रूप से काव्यरचना की। इन्हें किसी प्रकार का राजाश्रय प्राप्त नहीं था और न ही वे राजाश्रय में रहना चाहते थे। यह स्वच्छंद मनोवृत्ति वाले कवि ये।

रीतिकाव्य के विषय में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि जहाँ संस्कृत में आचार्यत्व और कवित्व दोनों परंपराएँ परस्पर भिन्न थी वही रीतिसाहित्य में पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति होते हुए भी आचार्य कर्म और कविकर्म का एक साथ निर्व्याह होता रहा। रीतिकाव्य में ऐहिकतामूलक सरस काव्यत्व मिलता है। इस काव्य में जीवन और सिद्धांत दोनों मिलते हैं। इसे न पूरे अर्थ में शास्त्रीय साहित्य कहा जा सकता है और न ही लौकिक साहित्य। रीतिकालीन साहित्य में जीवन और काव्य के प्रति नया दृष्टिकोण मिलता है। रीतिकालीन साहित्य में पुरानी परंपरा से हटकर कुछ नवीनता के समावेश हुआ है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने कहा भी है कि रीतिकाव्य की परंपरा ने शुद्ध काव्य के लिए एक नया मार्ग खोल दिया ।

22.3 विषय विवरण :

22.3.1 आचार्यत्व की परंपरा

आचार्यत्व से तात्पर्य पांडित्य से है। अनेक विद्वानों ने इसे रीतिकालीन कवियों की पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी कहा है। यह पांडित्य प्रदर्शन की परंपरा उन्हें संस्कृत साहित्य की काव्यशास्त्रीय परंपरा से मिली। रीतिकालीन इस आचार्य परंपरा के कवियों को रीतिबद्ध कवि या लक्षणग्रंथकार कवि भी कहा गया है। परंतु रीतिकालीन लक्षणग्रंथ परंपरा के यह कवि केवल पंडित या आचार्य ही नहीं रहे हैं बल्कि संस्कृत के आचार्यों से आगे बढ़े हुए हैं। संस्कृत में कवि और आचार्य दो भिन्न श्रेणी के व्यक्ति होते थे परंतु रीतिकाल में दोनों का एकीकरण हो गया है। जहाँ तक रीतिकवि

के आचार्यत्व पक्ष के विवेचन का प्रश्न है, तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें आचार्यत्व होना संस्कृत की आचार्य परंपरा के परिणामस्वरूप है।

जिस प्रकार संस्कृत में भरतभुनि, भामह, दण्डी, रूद्रट, उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, विश्वनाथ, वामन, आनंदवर्धन जैसे आचार्यों की दीर्घ परंपरा मिलती है, वैसे ही रीतिकाल में केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी, कुलपति, मतिराम, देव, भूषण, भिखारीदास, पद्माकर, पति आदि आचार्य परंपरा के कवि उल्लेखनीय हैं। प्राय: इन सभी कवियों ने कामशास्त्र के लक्षणों को पद्यबद्ध किया है और उनके उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इनमें से लगभग सभी कवि किसी न किसी राजा या सामंत के आश्रय में रहे। इन कवियों में कुछ ऐसे भी कवि हैं जिन्होंने लक्षणग्रंथ तो नहीं लिखे और केवल लक्ष्य या उदाहरण प्रस्तुत किए। परंतु इन दोनों पकार के कवियों का आचार्य की श्रेणी में रखा जाता है और इनकी रचनाओं को अच्छी तरह समझने के लिए रीतिशास्त्र की समझ आवश्यक है।

वस्तुत: विभिन्न काव्यांगों का विवेचन, लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखने वाले कवियों को आचार्य कहा जाता हैं। इनके द्वारा लिखे ग्रंथों का उद्देश्य किसी नए काव्यसिद्धांत का प्रतिपादन या स्थापन करना नहीं था और न उन्होंने किया । उन्होंने केवल काव्यशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिए हिंदी में सरस और सुबोध रूप में विशिष्ट काव्यांगों का विवेचन मात्र प्रस्तुत किया। संस्कृत के लक्षणग्रंथों के आधार पर उन्होंने रचनाएँ लिखी। इन रचनाओं किसी प्रकार की मौलिक उद्भावना नहीं मिलती। न इनमें मौलिकता की प्रदर्शित करने की प्रतिभा थी और न इसकी अपेक्षा ही थी। यही कारण है कि संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्यों के समान इस दिशा में इन लोगों का कोई मौलिक योगदान रहा हैं। केवल रसिकजनों को काव्यांगों का सुबोध ज्ञान प्राप्त कराने हेतु उन्होंने अपने लक्षणग्रंथ लिखे। डॉ. गोविंद त्रिगुणावत ने रीतिकालीन आचार्य परंपरा पर प्रकाश डालते हुए कहा हैं – ''इन्होंने अधिकतर संस्कृत साहित्य का चलता फिरता ज्ञान प्राप्त किया था। केशव आदि दो-एक कवियों को छोड़कर अन्य कवि दो-एक ग्रंथों के बल पर ही आचार्यत्व का दावा करते थे और झूठी मौलिकताओं का प्रदर्शन किया करते थे। उदाहरणार्थ हम देव को ले सकते हैं।''

रीतिकवि के आचार्यत्व का एक लक्ष्य यह सामने आता है कि आजीविका हेतु उन्हें किसी आध्यदाता की कृपादृष्टि पर निर्भर होना पडता था। तब उनमें आचार्यत्व और कवित्व की प्रतियोगिता बनी रहती थी। इस प्रतियोगिता की प्रबल भावना के फलस्वरूप उनकी संपूर्ण प्रतिभा, भाषा, एवं दृष्टि लक्षण और लक्ष्य ग्रंथों में उलझी रही। यह नहीं कि वे कवि नहीं थे। यह लोग आचार्य और दोनों ही बनना चाहते थे किंतु वे दोनों में से किसी एक रूप में अपने अस्तित्व को पूर्णतया ढाल न सके। अत: उन्हें इस स्थिति में न सफल आचार्य कहा जा सकता है और न एक सफल कवि। राजाओं और सामंतों के दरबारों में अपनी सर्वोत्कृष्टता सिद्धि की लालसा ने उनके किसी एक व्यक्तित्व को व्यवस्थित रूप से नहीं बनने दिया। रीतिकालीन इन आचार्यों पर संस्कृत के जिन ग्रंथों का प्रभाव रहा इनमें भानुदत्त की 'रसमंजरी', 'रससामग्री', 'रसतरंगिणी', अलंकारों के लिए जयदेव का चंद्रालोक तथा अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानंद'। भानुदत्त के ग्रंथों में शृंगाररस और नायक-नायिका भेद, रस के भेदोपभेदों के लिए उपयुक्त और सुबोध सामग्री थी। अन्य ग्रंथों में मम्मट के 'काव्यप्रकाश' और आ. विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' का सहारा लिया गया। छंदविवेचन के लिए इन्होंने भट्ट केदार के वृत्त रत्नाकर, गंगादास की छंदोमंजरी तथा प्राकृत पैंगलम का आधार लिया गया। इस विषय में आगे डॉ. नगेंद्र ने लिखा हैं – ''इनसे आगे संभवत: किसी ने जाने का प्रयत्न नहीं किया। जिनकी इच्छा हुई भी, उन्होंने अधिक से अधिक केशव के कविप्रिया के आधार पर लक्षणों की रचना कर डाली।''

इस रीतिकालीन आचार्य वर्ग के साहित्य को मुख्यत: वो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं – 1) अलंकारवादी वर्ग और 2) अलंकार और रस तथा अन्य अंगों को लेकर चलने वाला वर्ग। डॉ. नगेंद्र ने इन्हें प्रवृत्ति के आधार पर जो काव्यांग विवेचना की है उसे दो भेदों में विभाजित किया हैं – विशिष्टांग निरूपक और सर्वांग निरूपक। विशिष्टांग निरूपक आचार्य कवि वे हैं जिन्होंने रस, छंद और अलंकार में से किसी एक, दो अथवा तीन को अपनी रचना का विषय बनाया है। सर्वांग निरूपक आचार्य कवियों ने सामान्य रूप से अपने ग्रंथों में काव्य-लक्षण,

काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, शब्दशक्ति, काव्य की आत्मा (रस, ध्वनि), काव्यगुण, काव्य-दोष, काव्यरीति, अलंकार तथा छंद का निरूपण किया है।

22.3.2 कवित्व की परंपरा :

रीतिकाल के कवियों में आचार्यत्व और कवित्व का एकीकरण मिलता है। रीतिकाल के यद्‌यपि किसी भी कवि के कवित्व की दृष्टि से अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण नहीं करते आया। जिन कवियों में आचार्यत्व और कवित्व दोनों एकसाथ मिलता है उनमें उनके कवि व्यक्तित्व के विषय में कहा जा सकता है कि इन्होंने केवल लक्षणग्रंथ न लिखकर रस और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत किए हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल इनकी इस विशेषता के विषय में लिखते हैं - ''ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणग्रंथों से चुनकर इकट्‌ठे करें तो भी उनकी अधिक संख्या न होगी।''

रीतिकालीन कवियों का कवित्व वर्ड्‌सवर्थ के 'स्पोन्टॅनियस ओव्हरफ्लो' या आ. रामचंद्र शुक्ल के हृदय की मुक्तावस्था वाली काव्यपरिभाषा से पूर्णत: भिन्न है। इनका कवित्व एकांगी है और विलासिता एवं रसिकताप्रधान है। वस्तुत: काव्य मनुष्य जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति है, परंतु इस भाव की दृष्टि से यह काव्य उतना समृद्‌ध नहीं कहा जा सकता जितना की प्राय: काव्य एवं कवित्व के विषय में समझा जाता है। इनकी यह विलासिता एवं रसिकता में शृंगार तत्व का प्राधान्य हैं। काव्य में रसिकता अधिक है और रस कम। वस्तुत: रीतिकालीन कवियों का लक्ष्य अपने आश्रयदाताओं की रुचि की परितुष्टि करना था। इनके शृंगार वर्णन में प्रेम की उत्कटता नहीं है बल्कि पार्थिव एवं ऐंद्रिक सौंदर्य वर्णन में रुचि अधिक मिलती है। परंतु यह भी देखा और समझा गया है कि यह इन कवियों की परिस्थितिजन्य विवशता है। रीतिकालीन अधिकांश कवि इस विलासितापूर्ण वातावरण से ऊबे हुए थे, उन्हें कई बार इससे आत्मग्लानि होती थी। अत: उन्होंने अपने काव्यत्व एकदम मरने नहीं दिया। यद्‌यपि उनके भावों में पर्याप्त सूक्ष्मता, मौलिकता एवं स्वाभाविकता नहीं है, परंतु उनका काव्य पर्याप्त सरस, सुकोमल, सुंदर गुणों से युक्त है। केशवदास का ही उदाहरण ले तो उन्हें अनेक आलोचकों ने 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा है फिर भी वे अपनी कविता की अनेक विशिष्टताओं के कारण सूर और तुलसी के बाद स्थान पाते हैं। उनकी रामचंद्रिका आज भी पंडित समाज में सम्मान की पात्र है। आ. चिंतामणि में शृंगार का सम्यक परिपाक है। उन्होंने अपनी सहज अनुभूतियों को सरल भाषा में व्यक्त किया है। उनके काव्य में स्वाभाविकता है, नक्काशी या पांडित्यप्रदर्शन नहीं है। आचार्यत्व की तुलना में कवित्व का दृष्टि से मतिराम रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। उनकी भावव्यंजना अत्यंत स्वच्छ एवं स्वाभाविक भाषा में हुई है। कवि देव के काव्य में वैराग्य भावना की अभिव्यक्ति हुई, यद्‌यपि वे शृंगार रस के कवि हैं। आचार्य शुक्ल ने उन्हें रीतिकाल के प्रगल्भ एवं प्रतिभाशाली कवि कहा हैं। उनके काव्य में अर्थसौष्ठव और नवोन्मेष मिलता है। अनेक विद्‌वानों ने एवं आलोचको ने रीतिकवियों को आचार्य कवि ही कहा है। डॉ. नगेंद्र ने कहा भी हैं - ''इन लोगों ने आचार्य कर्म की अपेक्षा कवि-शिक्षक के कर्म का ही निर्वाह किया है और सीमाओं के भीतर रहते हुए भी कुल मिलाकर इस दिशा में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। तीसरे, विभिन्न काव्यांगों का मनोयोगपूर्वक निरूपण करते हुए भी ये लोक मूलत: रसवादी थे। इसलिए इनकी रचनाओं में सिद्‌धांत और व्यवहार दोनों की दृष्टि से रसवाद की ही स्थापना देखने को मिलती है।''

तात्पर्य यह कि इनमें कवित्व होने का प्रमाण ही इनका रसवादी होना है। रीतिकाल के समीक्षकों ने प्राय: रीतिकवियों के कृतित्व पर विचार करते समय उनके आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों पर सम्यक रूप से प्रकाश डाला है। इनकी कविता के भाषा-सौष्ठव एवं अन्य पक्ष जैसे काव्यरूप, छंद, बिंब, गेयता एवं व्यंजनाशैली पर भी विचार किया है। अनेक कवियों की कविताओं भावों के आवेग तथा कल्पना की ऊँची उड़ान के स्थान पर सीधी-साधी शब्दावली में सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है, चिंतामणि की कविता में यह देखा जा सकता है। भाषाशैली की दृष्टि से इनका काव्य परिष्कृत है। डॉ. नगेंद्र इनके विषय में कहते हैं - ''वास्तव में केशव के पश्चात संभवत: ये ही प्रथम कवि

है जिन्होंने भाषा को नियमानुसार व्यवहृत किया है। कवित्व की दृष्टि से देव की रचनाएँ अधिक आकर्षक एवं प्रभावी कही जा सकती है। इनका काव्य सरस है। इसमें संदेह नहीं कि रीतिकाल के कवि काव्यत्व की दृष्टि प्रतिभासंपन्न थे। उनकी अनेक कविताओं में हृदय की सच्ची स्वाभाविक प्रेरणाओं को देखा जा सकता है। नीति, भक्ति, शृंगार की रचनाओं में यह गुण देखा जा सकता है। यह लोग अवश्य ही अच्छे कवि थे परंतु परिस्थितिवश वे दूर की कौड़ी लाने की प्रतियोगिता में अपने कवित्व के साथ अधिक न्याय नहीं कर सके। परिस्थितिवश ही उनकी रचनाओं में काव्य के गति संकुचित दृष्टिकोण मिलता है परंतु वह सर्वव्याप्त नहीं है। यही सही है कि उनका काव्य पर्याप्त ऊँचे स्तर का नहीं, परंतु हीन भी नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने अनेक कवियों का आचार्यत्व एवं कवित्व की दृष्टि से वर्गविभाजन प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय श्रेणी में किया है परंतु यह अधिक न्यायसंगत नहीं माना जा सकता। किसी कवि का आचार्यत्व जहाँ दुर्बल है वहीं कवित्व सबल है, जहाँ आचार्यत्व सबल है वहीं कवित्व दुर्बल है।

22.3 शब्दार्थ :

ऐहिकता – सांसारिक, लौकिक	आचार्य – सैद्धांतिक विवेचन करने वाले
कवित्व – काव्य की सिद्धि	आजीविका – जीवनयापन की वृत्ति
सरस – रसयुक्त	परितुष्टि – कामना शांत करना
पार्थिव – नश्वर	

22.4

रीतिकालीन कवियों में कवित्व की प्रतिभा थी इसलिए वे रीतिकवि के रूप में स्थापित है। यद्यपि उनमें कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व की मात्रा अधिक है, परंतु सरस काव्य की रचन करने में वे कम से कम संस्कृत आचार्यों की परंपरा से कुछ श्रेष्ठ है। कहने का तात्पर्य यह कि रीतिकाल के रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध कवियों में आचार्यत्व एवं कवित्व का एकीकरण मिलता है। इन्होंने रीति का निरूपण अत्यंत सरस शैली में किया है, संस्कृत आचार्यों के समान काव्यांग विवेचन की शैली निरस नहीं है। इन्होंने अपने आचार्य-कर्म को अत्यंत दक्षता के साथ निभाते हुए अपनी काव्य-प्रतिभा को भी यथासंभव न्याय दिलाने का प्रयास किया है। उनमें जहाँ पांडित्य-प्रदर्शन की वृत्ति मिलती है, वहीं काव्य के प्रति निष्ठा भी मिलती है। उनकी कविता आकर्षक और मार्मिक प्रतीत होती है। रीतिकालीन इन कवियों में कुछ ऐसे भी हैं जो काव्यशास्त्र का ज्ञान और कवि-प्रतिभा दोनों का सम्यक निर्वाह करनें में सफल हुए हैं। विशेषत: शृंगार रस संबंधी कविताओं में इन कवियों का काव्यत्व अधिक निखर आया है। इन कविताओं में मार्मिक रसानुभूति एवं कल्पना की मौलिकता भी मिलती है। यद्यपि अनेक कवियों ने अपने शृंगारवर्णन में मर्यादा का उल्लंघन किया है, परंतु इसे कवित्व की दृष्टि से अपवाद स्वरूप समझना चाहिए। यह वर्णन अपने आश्रयदाताओं की भौंडी रूचि की परितुष्टि करना मात था और तत्कालीन परिस्थितिवश था। रीतिकालीन कवि निश्चित ही सहृदय था और यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि उसका काव्यत्व उच्च कोटि का है।

22.5 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) 'रीतिकालीन कवियों ने अपने आचार्यत्व एवं कवित्व का सम्यक निर्वाह किया हैं,' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

2) 'रीतिकालीन कवियों के आचार्यत्व एवं कवित्व से क्या तात्पर्य है,' स्पष्ट कीजिए।

3) रीतिकालीन कवियों की पांडित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण उनका काव्यत्व दब सा गया है' विवेचन कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

1) आचार्यत्व

2) कवित्व

3) रीतिकवि का पांडित्य प्रदर्शन

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) रीतिकवियों के आचार्यत्व से क्या तात्पर्य है?

2) रीतिकवियों का आचार्यत्व, कवित्व से क्यों श्रेष्ठ है?

3) रीतिकवियों की काव्यत्व सरस क्यों माना जाता है?

4) रीतिकाल के पाँच-छह आचार्य-कवियों के नाम दीजिए।

घ) सही पर्याय लिखिए

1) 'चंद्रलोक' किस कवि की रचना है?

अ) भानुदत्त ब) तोष क) जयदेव ड) बिहारी

2) छंद विवेचन हेतु रीतिकवियों ने गंगादास की किस रचना का आधार लिया?

अ) काव्यप्रकाश ब) वृत्त रत्नाकर क) धंदोमंजरी ड) छंदशास्त्र

3) 'कठिन काव्य का प्रेत' किस कवि को कहा गया है?

अ) केशवदास ब) पद्माकर क) भूषण ड) जल्हन

4) कवित्व की दृष्टि से किस कवि की रचनाएँ अधिक आकर्षक एवं प्रभावी है?

अ) देव ब) तोष क) श्रीपती ड) सोमनाथ

22.6 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

1) रीतिकालीन कवियों के आचार्य-कर्म और कवि-कर्म के अनुसार विभिन्न श्रेणियों का निर्धारण करते हुए उनके महत्त्व को रेखांकित कीजिए।

2) रीतिकाल में सौंदर्यदृष्टि से संबंधित ग्रंथ लिखे गए हैं - अपना मत स्पष्ट कीजिए।

3) आचार्यत्व तथा कवित्व के अंतर को समझने का प्रयत्न कीजिए।

देखिए - 18.8 में दी गई सूची

pppp

इकाई – 23
रीतिकालीन कवियों का साहित्यिक परिचय

23.1 उद्देश्य

23.2 प्रस्तावना

23.3 विषय विवरण

23.3.1 आचार्य केशवदास

23.3.2 महाकवि देव

23.3.3 आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी

23.3.4 आचार्य भिखारीदास

23.3.5 महाकवि बिहारी

23.3.6 घनानंद

23.3.7 आचार्य भूषण

23.3.8 आचार्य सेनापति

23.3.9 आचार्य मतिराम

23.3.10 आचार्य पदमाकर

23.4 शब्दार्थ

23.5 सारांश

23.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

23.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

23.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

23.1 उद्‌देश :

- ❋ रीतिकालीन कवियों की साहित्यिक सृजनात्मकता से परिचित होंगे।
- ❋ रीतिकालीन कवियों की साहित्यिक प्रेरणाओं की पृष्ठभूमि, परिस्थितयों एवं दायित्वों का आकलन कर सकते हैं।
- ❋ रीतिकालीन साहित्य की विभिन्न विषयवस्तुओं से परिचित होंगे।

23.1 प्रस्तावना :

रीतिकालीन साहित्य का सृजन मुख्यत: दरबारीया सामंती वातावरण में हुआ है। तत्कालीन अनेक कवि किसी न किसी आश्रयदाता के अधीन थे। इसी अधिनता को पृष्ठभूमि में उसका कवि-कर्म फला-फूला। दूसरी ओर उसे संस्कृत काव्यशास्त्र की एक बनी-बनाई परिपाटी सरलता से उपलब्ध थी, अत: इस आधार पर उसका आचार्य-कर्म भी अधिक निखरा। यह कालखंड वस्तुत: राजनीतिक दृष्टि से अराजकता का समय था। समाज के समृद्ध एवं संपन्न वर्ग में प्रदर्शनप्रियता एवं आलंकारिकता का बोलबाला था। राजा-महाराजाओं, सामंतों एवं धनियों की रसिकप्रवृत्ति एवं रंगीन-मिजाजी ने साहित्य एवं कला को विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. नगेंद्र ने कहा भी हैं कि साहित्य और कला की दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है।

यद्‌यपि इस काल के कवि और कलाकार समाज के साधारण वर्ग के प्रतिनिधि थे परंतु उन्हें प्रतिभा के होते हुए भी स्वतंत्र अभिव्यक्ति की सुविधा या परिस्थिति प्राप्त न हो सकी। वे अपनी आजीविका हेतु साहित्य सृजन करते थे। अत: उन्हें अपने आश्रयदाता की अभिरुचि का विशेष ध्यान रखना पड़ता था। अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए यह नई-नई युक्तियों का आश्रय लेते थे। यह साहित्यकार एक सांस में कवि और दूसरे सांस में आचार्य बनने का प्रयत्न करते थे। यही कारण है कि इनके साहित्यिक व्यक्तित्व में कवित्व और आचार्यत्व दोनों परस्पर अभिन्न रूप एकसाथ घुलेमिले लगते हैं। शृंगारिकता इनकी कविताओं की प्रधान प्रवत्ति है और रीति-निपुण के लिए इसका आधार अनेक कवियों ने लिया है तथा आत्मप्रदर्शन हेतु भी इन कवियों ने एकाध ग्रंथ की रचना की है। रीतिकालीन कवियों के काव्य में भाव-पक्ष की दुर्बलता मिलती है। उनके काव्य में व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं हो पाई परंतु इस कवि का महत्व इसमें है कि इसने भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ी और उसमें कोमलता एवं सजीवता का समावेश हुआ। उर्दू और फारसी भाषा की रवानगी भी इनकी कविताओं में देखने मिलती है। इन कवियों ने दोहा, सवैया, कवित्व आदि छंदों में ही अपनी रचनाएँ लिखी। इस काल में प्रबंधकाव्य लिखने की प्रवृत्ति विकसित नहीं हो पाई। मौलिकता एवं नवीनता का अभाव भी इनकी रचनाओं में देखने मिलता है।

23.3.1 विषय-विवरण :

केशवदास रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। ये संस्कृत के प्रकांड़ विद्‌वान थे। तथा गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। इनका जन्म संवत 1612 में और मृत्यु 1674 के आसपास हुई। आ. रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें अपने इतिहास ग्रंथ में भक्तिकाल के अंतर्गत स्थान दिया हैं क्योंकि इनका समय भक्तिकाल के अंतर्गत पड़ता है। यह सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशिनाथ के पुत्र थे। इनके घराने में संस्कृत के पंडिताई की लंबी परंपरा थी। ओरछानरेश महाराज राम के भाई इंद्रजित सिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे। वीरसिंह देव का आश्रय भी इन्हें प्राप्त था। यह अपने समय के प्रधान साहित्यशास्त्रज्ञ कवि माने गए। इन्होंने शास्त्रीय पद्‌धति से साहित्य-चर्चा की। अपने पंडित्य पर इन्हें अधिक अभिमान था। यह अत्यंत व्यवहारकुशल, नीतिनिपुण, निर्भीक, स्पष्टवादी एवं विनोदी स्वभाव के थे। साहित्य, संगीत, ज्योतिष, राजनीति, धर्मशास्त्र, वैद्‌यकशास्त्र आदि विषयों का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था।

केशवदास की प्राप्य प्रामाणिक रचनाओं की संख्या सात हैं। रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंहदेव चरित, विज्ञानगीता और जहाँगीरजसचंद्रिका। 'रतनबावनी' इनकी और एक रचना है परंतु रचनाकाल अज्ञात है। 'रतनबावनी' इनकी सर्वप्रथम रचना मानी जाती है, इसमें रत्नसेन की वीरता का वर्णन है। रसिकप्रिया में नायिकाभेद और रस का वर्णन है। इसका आधार संस्कृत के पंडित रूद्रभट्ट की पुस्तक 'शृंगारतिलक' है। 'कविप्रिया' कविशिक्षा की पुस्तक है। इसमें उन्होंने कवि की योग्यता, कविता का स्वरूप, उद्देश्य विषय, दोष, कवियों का प्रकार आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। 'रामचंद्रिका' में रामकथा का वर्णन है जिसका आधार बाल्मीकि रामायण है, यह महाकाव्यात्मक शैली में लिखी पुस्तक है। 'वीरसिंहदेवचरित' में राजा वीरसिंह का चरित्रवर्णित है। 'विज्ञानगीता' एक आध्यात्मिक ग्रंथ है, इसका आधार संस्कृत का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक ग्रंथ है। जहाँगीरजसचंद्रिका में बादशाह जहाँगीर के दरबार का वर्णन है, यह एक प्रकार का प्रशस्ति काव्य है। रतनबावनी, वीरसिंहदेवचरित और जहाँगिरसचंद्रिका में आदिकालीन वीरगाथात्मक शैली के दर्शन होते हैं।

आचार्य केशवदास ने अपनी सभी रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखी हैं। रामचंद्रिका और विज्ञानगीता में संस्कृत का प्रभाव है। इनकी पहली रचना रतनबावनी में पुरानी हिंदी (अप्रभ्रंश) का रूप मिलता है। केशवदास हिंदी के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इनके और दो रूप है-महाकवि और इतिहासकार के। इन्होंने हिंदी में संस्कृत की परंपरा की स्थापना करने का प्रयास किया। इनके प्रशस्ति-काव्यों में इतिहास की प्रचुर सामग्री मिलती है। मध्यकाल में इनका काव्यप्रवाह में जैसा मान था वैसा किसी अन्य का नहीं। इनका कविरूप इनके प्रबंध और मुक्तक रचाओं में दृष्टिगोचर होता है। यद्‌यपि इनकी कविता पर अर्थ कठिनाई का आरोप लगाया गया था कि इसमें रस और सह्रदयता नहीं है परंतु इनके काव्य का अनुकरण उस काल में अनेक कवियों ने किया।

23.3.2 महाकवि देव :

ये रीतिकाल में महाकवि देव के नाम से परिचित है। इनका वास्तविक नाम देवदत्त था। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने विषय में जो कुछ लिखा है उसके आधार पर इनका जन्म 1673 ई. में उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के द्‌योसरिहा नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। यह अपने जीवनकाल में अनेक राजाओं, नवाबों एवं रइसों के आश्रय में रहे, इनमें नवाब आजमशाह, राजा कुशलसिंह, राजा उद्‌योतसिंह, सेठ भोगीलाल, अली अकबर अली खाँ आदि उल्लेखनीय हैं।

महाकवि देव द्‌वारा रचित ग्रंथों की संख्या 72 स्वीकार की जाती है परंतु आज केवल 15 ही उपलब्ध हैं - भावलिवालस, अष्टयाम, भवानिविलास, प्रेमतरंग, कुशलविलास, जातिविलास, देवचरित्र, रसविलास, प्रेमचंद्रिका, सुजानविनोद, काव्यरसायन (शब्दरसायन), सुखसागरतरंग, रगरत्नाकर, देवशतक और देवमायाप्रपंच। 'भावविलास' के पहले तीन विलासों में शृंगाररस का महत्व एवं अंगोपांगों का वर्णन है और चौथे विलास में नायक-नायिकाभेद वर्णन है। 'भवानी विलास' में इसी विषयवस्तु का विस्तार है। अष्टयाम एक स्वतंत्र ग्रंथ है। इसमें दिन के आठ पहरों में होने वाले नायक-नायिका के विविध विलासों का वर्णन है। काव्यरसायन या शब्दरसायन सर्वांगनिरूपक ग्रंथ है। सुखसागरतरंग अदयोपांत शृंगारप्रधान रचना है और कवि का अंतिम लक्षण ग्रंथ है। प्रेमचंद्रिका में विषय-बसना के तिरस्कार, प्रेम के महात्म्य और उसके विभिन्न रूपों का वर्णन है। सुजानविनोद में पूर्ण तन्मयता के साथ ऋतु वर्णन किया गया है तथा षड्ऋतुयों का नायिकाभेद के साथ चित्रण है। रागरत्नाकर संगीतविषयक लक्षण ग्रंथ है। देवशतक में जीवन और जगत की असारता, ब्रह्मतत्व आदि आध्यात्मसंबंधी बातें है। देवचरित्र कृष्ण के जीवन के संबंद्‌ध प्रबंध काव्य है।

महाकवि देव का रीतिकालीन कवियों में सर्वोच्च स्थान माना जाता हैं। उनके आचार्य और कवि दोनों रूप महान हैं। उनमें काव्य के प्रति एक अंतदृष्टि मिलती है। उनमें परिष्कृत सौंदर्यबोध और मौलिक उदभावना शक्ति मिलती है। उन्होंने शृंगार का चित्रण करते हुए भी प्रेम की उदात्त भूमिका को नहीं भूलाया। देव उन कवियों में से थे, जिन्होंने काव्यशास्त्र को युगधर्म समझकर ग्रहण कर लिया था, वस्तुत: इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति काव्यरचना की ओर अधिक

थी। इसी लिए उनके काव्य में शास्त्र–विवेचन कम हुआ है। अपने युग के परिस्थितियों के प्रति उनके हृदय में असंतोष की भावना थी। वे रीतिकाल के कवियों में पहले कवि है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने भी उनका आचार्य के रूप में कोई विशेष स्थान नहीं माना है।

23.3.3 आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी :

यह रीतिकाल के एक प्रमुख आचार्य कवि है। इनका आचार्यत्व इनके कवि–रूप से अधिक महत्वपूर्ण है। यह रीतिकाल के अन्य दो प्रमुख कवि मतिराम और भूषण के सगे भाई माने जाते है। इनका जन्म 1609 ई. में उत्तरप्रदेश के कानपुर जिले के तिकवाँपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। विविध स्रोतों के अनुसार प्राप्त जानकारी से यह ज्ञात होता है कि ये शाहजहाँ, रुद्रसिंह सोलंकी और जैनदी अहमद के दरबार में रहे परंतु सर्वाधिक काल यह नागपुर के सूर्यवंशी भोसला राजा मकरन्द शाह के दरबार में राजकवि के रूप में सम्मान पाते रहें।

चिंतामणि त्रिपाठी रीतिकाव्य के एक प्रमुख आचार्य कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका आचार्यरुप कवि रूप से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। इन्होंने ही सर्वप्रथम केशवदास द्वारा अपनाई गई, संस्कृत की परंपरा को अपनाया और इनके पश्चात रीतिकाल के अन्य अचार्यों ने इस परंपरा को ग्रहण किया। इसी आधार पर अनेक विद्वानों ने इने रीतिपरंपरा का आदि आचार्य घोषित किया है। डॉ. नगेंद्र ने इसका यद्यपि विरोध किया हैं परंतु आ. रामचंद्र शुक्ल अपने इतिहास में लिखते हैं – ''हिंदी रीति ग्रंथों की अखंड परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली, अत: रीतिकाल का प्रारंभ उन्हीं से मानना चाहिए। इनके द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या छह हैं – काव्यविवेक, 'कविकुलकल्पतरू', काव्यप्रकाश, पिंगल रामायण और रसमंजरी। इनमें से केवल रामायण को छोड़कर चारों ग्रंथ काव्यशास्त्र से संबध हैं। इन चारों में से कविकुलकल्पतरू के कारण चिंतामणि त्रिपाठी को विशेष ख्याति मिली। उनकी एक अन्य रचना भी चिंतामणि त्रिपाठी को विशेष ख्याति मिली। उनकी एक अन्य रचा भी मानी जाती है – शृंगार मंजरी, परंतु इसकी प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में एकमत नहीं है।

'कविकुलकल्पतरू' में इन्होंने काव्य के सभी अंगों का निरूपण किया हैं। इसमें काव्य का स्वरूप, शब्दशक्ति, ध्वनि, रस, अलंकार, नायिकाभेद, काव्यगुण, काव्यदोष आदि का लक्षण–उदाहरणसहित विवेचन हैं। पिंगल इनका छंदशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। इसमें ब्रजभाषा में विविध छंदों का लक्षण उदाहरणसहित विवेचन हैं। इनके अब तक 'कविकुलकल्पतरू', 'पिंगल' और 'शृंगारमंजरी' यह तीन ग्रंथ ही उपलब्ध हैं जो दतिया के राजपुस्तकालय में सुरक्षित है। 'शृंगारमंजरी' संस्कृत के गद्यग्रंथ का अनुवाद है। मौलिकता की दृष्टि से चिंतामणि की कोई विशेष देन नहीं है। आचार्य होने पर कवित्व की दृष्टि से भी इनका स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। यह रसवादी कवि होने के कारण शृंगाररस का विशेष परिपाक इनके काव्य में मिलता है। यद्यपि इन्होंने अपनी सहज अनुभूतियाँ सरल भाषा में अभिव्यक्त की हैं परंतु उनमें देव, मतिराम आदि परवर्ती कवियों के समान भावशीलता एवं चित्रमयता नहीं है। इनकी भाषा में पदावली का लालित्य मिलता है परंतु कल्पना की ऊँची उड़ान यह नहीं भर पाये। शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ परिष्कृत है। इनमें सवाभाविकता मिलती है।

23.3.4 आचार्य भिखारीदास :

डॉ. हरिमोहन श्रीवास्तव ने आचार्यत्व के प्रसंग में इन्हें केशवदास से भी बढ़कर माना हैं। मिश्रबंधुओं ने रीतिकाल का नामकरण अलंकृत काल इसके दो भेद किए थे–पूर्वालंकृत काल और उत्तरालंकृत काल। इस उत्तरालंकृत काल का सबसे बड़ा आचार्य उन्होंने भिखारीदास को स्वीकार किया। कवितत्व की दृष्टि से भी इनका अपना महत्व है अत: रीतिकाल के अग्रगण्य आचार्यों एवं कवियों में भिखारिदास का अपना विशेष स्थान माना जाता है। इनका जन्म उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के टूटयोंगा नामक गाँव में हुआ था। इनकी जन्मतिथि के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इनका जन्म एक कायस्थ परिवार में हुआ था तथा इनके पिता का नाम कृपालदास था। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका काव्यकाल 1721 ई. के बीच कहा जा सकता है। सर्वमान्य वृत्त यह है कि ये प्रतापगढ़ नरेश राजा पृथ्वीसिंह वे अनुज हिंदुपति सिंह के आश्रय में रहे।

डॉ. नगेंद्र ने इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या सात मानी हैं – रससारांश, काव्यर्णिय, शृंगारनिर्णय, छंदोर्णवपिंगल, शब्दनाम कोश, विष्णुपुराण भाषा और शतरंजशतिका। 'रससारांश' में रस का पसंग है और इसके अंतर्गत नायक–नायिका भेद का पर्याप्त विस्तार है। 'काव्यनिर्णय' इनका प्रमुख ग्रंथ है। इसमें ध्वनि, रस, अलंकार, गुणीभूत व्यंग्य, गुण, दोष तथा तुक आदि सभी का विवेचन है। 'छंदोर्णवपिंगल' छंदशास्त्र का ग्रंथ है। 'शृंगारनिर्णय' में मुख्यत: शृंगाररसविषयक सामग्री प्रस्तुत की गई है। इन चार ग्रंथों में ही काव्यांग–विवेचन विषयक सामग्री है। अन्य तीन क्रमश: शब्दकोश, विष्णुपुराण का अनुवाद और शतरंज के खेल से संबंधित हैं। डॉ. नगेंद्र ने इन्हें रीतिकाल के सर्वांग–विवेचक आचार्यों में स्थान दिया है। इन्होंने काव्य के लगभग सभी अंगों का विवेचन किया और बहुत ही सुंदर रीति से किया है परंतु कहीं–कहीं पर उन्होंने काव्यशास्त्र संबंधी भूलें भी की हैं। रीतिनिरूपण के क्षेत्र में इनकी आलोच्च–दृष्टि और मौलिक चिंतन को इनकी विशेषताएँ कहा जा सकता है। अपने पूर्ववर्ती हिंदी काव्य का इन्होंने जो सम्यक अध्ययन किया और उसकी विवेचना की उससे उनकी आलोचक दृष्टि का पता चलता है।

आचार्यत्व के साथ साथ इनमें कवित्व की भी अद्भुत प्रतिभा थी। डॉ. नगेंद्र ने इन्हें रीतिकाल के प्रथमश्रेणी के कविवों में प्रतिष्ठित किया है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने भी इन्हें आचार्य से अधिक कवि माना है। आचार्यत्व की दृष्टि से इनमें कुछ दोष है परंतु कवि–कर्म में यह अधिक सफल रहे हैं । इनके काव्य का भावपक्ष अत्यंत रंजनकारी और रसात्मक है। यह जटिल से जटिल विषय को भी हृद्यगंम कराने में सक्षम है। इन्होंने सर्वत्र सुगम, सरल, साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है। इनके काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय शृंगार ही है परंतु इन्होंने सदैव मर्यादा का ध्यान रखा है। शब्दों की कलाबाजी और दूर की कौड़ी लाने का प्रयास इनके काल में नहीं मिलता। इन्होंने अपने विषय को पूर्ण मनोयोग से स्पष्ट किया है।

23.3.5 महाकवि बिहारी :

आ. विश्वनाथ प्रसादमिश्र ने इन्हें रीतिकाल की भावधारा को आत्मसात करके भी प्रत्यक्षत: आचार्यत्व न स्वीकार करने वाले मुस्क्तकवि कहा हैं। इनका जन्म मध्यप्रदेश के खालियर में 1595 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनके पिता निम्बार्क संप्रदाय के महंत नरहरिदास के शिष्य थे। स्वामी नरहरिदास से ही इन्होंने संस्कृत, प्राकृत काव्यग्रंथों का अध्ययन किया। बाद में यह वृंदावन चले गए और मथुरा की किसी ब्राह्मण परिवार की कन्या से विवाह कर यहीं रहने लगे। वृंदावन में ही इनकी शाहजहाँ से भेंट हुई और व इन्हें आग्रा ले गए। यहाँ पर इन्होंने फारसी काव्य का अभ्यास किया। शाहजहाँ के यहाँ पुत्र जन्मोत्सव के समय बिहारी ने अपनी काव्यप्रतिभा का परिचय दिया और उपस्थित अनेक राजाओं को आकर्षित कर लिया। कुछ राजाओं ने प्रसन्न होकर बिहारी की वार्षिक वृत्ति बाँध दी। अपनी वृत्ति लेने एक बार जब वे जयपुर पहुँचे तो उन्हें पता लगा कि मिर्जा राजा जयसिंह अपनी नवविवाहिता रानी के सब सुध–बुध खोकर महल में ही पड़े रहते हैं तब उन्होंने एक दोहा लिखकर महाराज को भेजा। इस दोहे का अद्भुत प्रभाव पडा और राजा जयसिंह ने इन्हें अपना राजदरबारी कवि नियुक्त कर लिया और उन्हें पुरस्कार में सोने की मुहरे दी। वह दोहा इस प्रकार है –

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल।।'

बिहारी की संपूर्ण ख्याति का एक मात्र आधार उनका 713 दोहों और सोरठों का मुक्तक काव्य बिहारी सतसई है । यह एक ऐसा मुक्तक काव्य है जिसकी आभा के सामने आज भी कोई मुस्तक काव्य ठहर नहीं सकता। हिंदी की मुक्तक काव्य परंपरा में बिहारी और उनकी सतसई का नाम सर्वश्रेष्ठ है। 'सतसई' में बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिकाभेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण आदि का ध्यान रखकर सुंदर दोहे रचे हैं। 'सतसई' ध्वनिकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है तथा अलंकारिक चमत्कार और भावसौंदर्य ने इसे उत्कृष्ट बना दिया है। हिंदी में समास पद्धति की शक्ति का परिचय सबसे अधिक बिहारी ने दिया है। इनकी कविता मुख्यत: शृंगार रस की है। इन्होंने सौंदर्य तथा प्रेमक्रीडा की मनोरम

झँकियाँ प्रस्तुत की हैं। शृंगार के संयोग पत्र के चित्रण में बिहारी सिद्धहस्त है। मादक गदरायी युवावस्था का रूपचित्रण, वय:संधि वे चित्रण मन को मुग्ध कर लेते हैं । 'सतसई' में शृंगार के अतिरिक्त भक्ति और नीति के दोहे भी मिलते हैं। यद्यपि इन्हें भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। उन्होंने राम-कृष्ण का स्मरण किया है। निर्गुण की महिमा गाई है और नामस्मरण पर बल दिया है परंतु भक्तों के हृदय किसी पवित्रता, कोमलता, कातरता, दीनता उनमें नहीं है।

काव्य के लिए अपेक्षित सभी विषयों का इन्हें ज्ञान था परंतु वे इसके विशेषज्ञ नहीं थे। डॉ. नगेन्द्र को बिहारी को रीतिबद्ध कहने में कोई संदेह नहीं है। इनकी रचनाओं में लोकज्ञान और शास्त्रज्ञान की भी बातें आई हैं। सामाजिक, राजनीतिक बातों के अतिरिक्त ज्योतिष की भी असाधारण बातें इनके काव्य में मिलती है। उनकी नीतिविषयक दोहों मे निजी जीवन के अनुभव प्राप्त होते हैं। इनकी सतसई का प्रभाव हिंदी साहित्य पर जबरदस्त पड़ा और कितने ही कवियों में सतसई लिखने की चाह पैदा हुई। केवल एक ग्रंथ के सृजन पर इतना सम्मान प्राप्त करने वाला कोई दूसरा कवि हिंदी में नहीं है।

23.3.8 घनानंद :

घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। इनकी जन्मतिथि एवं स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। जगन्नाथदास रत्नाकर ने इनकी जन्मभूमि बुलंदशहर मानी है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने इनका जन्म 1689 ई. में माना है और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 1673 ई. मानते हैं। लालाभगवानदीन ने इनका जन्म 1658 ई. और मृत्यु 1739 ई. मानी है। इनके बारे में अधिकांश जानकारियाँ किंवदंतियों के रूप में उपलब्ध है। इनका सुजान से प्रेम जाहिर है। घनानंद ने सुजान इतनी तन्मयता से अपने पदों में उल्लेख किया है कि उसका अध्यात्मीकरण सा हो गया है। कहा जाता है कि सुजान मुहम्मदशाह के दरबार में नर्तकी थी जहाँ घनानंद कवि थे। वहीं उन्हें सुजान से प्रेम हो गया और उसी में उन्होंने भगवान ने नाना रूपों के दर्शन किए।

घनानंद की रचनाएँ मुक्तक और निबंध रूप में प्राप्त होती हैं। आ. रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथों में इनके रचनाओं की सूची इस प्रकार दी हैं - सुजानसागर, बिरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकंद। इसके अतिरिक्त इनके कवित्व सवैयों के संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवितों तक मिलते हैं। कृष्णभक्ति संबंधी इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छत्रपुर के राजपुस्तकालय में है। आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र वे घनानंद पर विशेष शोधकार्य किया और इनकी रचनाओं के तीन संग्रह प्रकाशित कराए हैं - 'घनानंद कवित्त', 'घनानंद ग्रंथावली' के अतिरिक्त तीसरा ग्रंथ इनके कवित्त, सवैयों और पदों का संग्रह है। 'घनानंद ग्रंथावली' का प्रकाशन 1952 ई. में हुआ।

घनानंद अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तिगत भावों की स्वच्छंद अभिव्यक्ति की है। कवि के प्रेम में पराजय की भावना है, प्रेम की विवादमयी अनुभूति है। इनकी कविता की विषय-वस्तु शृंगार है और वियोग शृंगार में इनकी कृति अधिक रमी है। इनका प्रेम एकनिष्ठ एवं अंतर्मुखी है तथा इनमें हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। इनका प्रेम फारसी काव्य परंपरा के अनुकूल है। भाषा ब्रज है तथा अत्यंत सजीव, लाक्षणिक एवं व्यंजनाप्रधान है। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग कवि ने अत्यंत पटुता से किया है।

23.3.7 भूषण :

डॉ. नगेंद्र ने अपने इतिहास ग्रंथ में अलंकार निरूपक रीतिकवियों के वर्ग में स्थान दिया है। टीकमसिंह तोमर ने 'हिंदी साहित्य कोश' में इनके विषय में लिखा है कि ये रीतिकाव्य परंपरा का अनुसरण करते हुए भी वीर-काव्य तथा वीररस की रचना करने वाले प्रसिद्ध कवि हैं। इनके वास्तविक नाम के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 'भूषण' इनको दी गई उपाधि है जो चित्रकुटपति हृदयराम के पुत्र रूद्रदेव सोलंकी ने इन्हें दी थी। कहा जाता है कि यह चार भाई थे - चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ। परंतु इस भातृत्व के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। इन्होंने शिवराजभूषण में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण

थे और कानपुर जिले के तिकवाँपुर में रहते थे । इनके मुख्य आश्रयदाता शिवाजी महाराज और छत्रसाल बुंदेला थे। आ. रामचंद्र शुक्ल और मिश्रबंधुओं ने भूषण का समय 1613 से 1715 ई. तक माना है।

भूषण रचित ग्रंथों की संख्या छह हैं – 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक', 'भूषण हजारा', 'भूषणउल्लास' और 'दूषणउल्लास'। इनमें से अंतिम तीन ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आए हैं। 'शिवराजभूषण' में 384 छंद हैं और लगभग 105 अलंकारों का निरूपण हुआ हैं, इनमें 99 अर्थालंकार, 4 शब्दालंकार और दो क्रमश चित्र और संकर अलंकार है। इसमें दोहों में अलंकारों की परिभाषा दी गई है तथा कवित्त एवं सवैया छंदों में उदाहरण दिए गए हैं, जिनमें शिवाजी के कार्यकलापों का वर्णन है। 'शिवाबावनी' में 52 छंदों में शिवाजी की कीर्ति है तथा 'छत्रसाल दशक' में राजा छत्रसाल बुंदेला का यशोगान किया गया है। इनकी कविता वीररस प्रधान है और इसमें चारों वीर युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर का वर्णन है परंतु प्रधानता युद्धवीर की ही है। इन्होंने अपने चरित्रनायकों के विशिष्ट चारित्रिक गुणों और कार्यकलापों को अपने काव्य का विषय बनाया है।

भूषण की काव्यभाषा ब्रज है तथा सारी रचनाएँ मुक्तक पद्धति में लिखी गई है। इनकी अभिव्यंजना पद्धति अत्यंत ओजपूर्ण है। इनकी रचनाओं में शब्दों और भावों का सामंजस्य मिलता है। रीतिकाल में आचार्यत्व के रूप में इनकी कोई महत्ता नहीं है। कवित्व की दृष्टि से ही इनका प्रमुख स्थान है और वह भी वीररस के कवि के रूप में है। वीर के साथ साथ रौद्र और भयानक रस का संयोग भी इनके काव्य में अच्छा बन पड़ा है। उद्दीपन के रूप में प्रकृति वर्णन भी इनके काव्य में मिलता है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने आश्रयदाताओं अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा या चापलुसी नहीं की है। उनकी कविता में राष्ट्रीय भावना मिलती हैं। वे तत्कालीन सवतंत्रता संग्राम के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

23.3.8 आ. सेनापति :

सेनापति के संबंध बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध होती है। इनकी जन्म और मृत्यु–तिथि दोनों ही अज्ञात है। इनकी अब तक एकमात्र रचना 'कवित्त रत्नाकर' उपलब्ध हुई है जिसका रचनाकाल सन 1649 ई. है। यह ग्रंथ कवि की अत्यंत प्रौढ़ कृति है। इसी ग्रंथ में इनके जीवन एवं परिवार के बारे में जानकारियाँ मिलती है। इनके पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था। तथा पिता का नाम गंगाधर था। जनशृति के अनुसार इनका निवासस्थान अनुपशहर जिला बुलंदशहर माना जाता है।

इनकी एकमात्र रचना 'कवित्त रत्नाकर' है। कुछ इतिहासकारों ने इनकी एक ओर रचना 'काव्यकल्पद्रुम' मानी है परंतु यह उपलब्ध नहीं है। 'कवित्त रत्नाकर' में पाँच तरंगे और 394 छंद है। प्रथम तीन तरंगों से स्पष्ट होता है कि इनका प्रणयन रीति–परंपरा को ध्यान में रखकर किया गया है अत: इन्हें रीतिबद्ध कवि स्वीकार किया गया है। इस ग्रंथ में कवि ने अलंकार, शृंगार, षडऋतु, रामायण और रामरसायन का वर्णन किया है। सेनापति का प्रिय अलंकार श्लेष है। इन्होंने एक पूरी की पूरी तरंग श्लेष अलंकार का चमत्कार दिखाने के लिए रची है। दूसरी तरंग में शृंगार–वर्णन है जिसमें नखशिख, उद्दीपन भाव और वय:संधि का मनोहारी चित्रण है। तीसरी तरंग में उत्कृष्ट ऋतुवर्णन है। चौथी तथा पाँचवी तरंग में राम–चरित्र और रामभक्ति भावना का सुंदर वर्णन है। इन तरंगों में शृंगार, वीर, शांत और शक्तिभाव प्रधान है। सेनापति एक रामभक्त कवि थे तथा अत्यंत स्वाभिमानी एवं उग्र व्यक्तित्व के थे। संकट के समय दुर्जनों से याचना करना उन्हें असह्य था। उनके इस व्यक्तित्व की व्यंजना उनके काव्य में यत्र–तत्र देखी जा सकती है। सेनापति अत्यंत प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी मौलिकता उनके ऋतुवर्णन में देखी जा सकती है। ब्रजभाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी कविता में शब्द चमत्कार के साथ उक्ति–वैचित्र्य भी मिलता है। भाषा की व्यंजकता उनकी बड़ी विशेषता है। सेनापति का जन्मकाल उनकी रचना 'कवित्त रत्नाकर' के रचनाकाल के आधार पर 1584-88 ई. के आसपास माना जा सकता है तथा मृत्यु सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण के लगभग स्वीकार की जा सकती है।

23.2.9 आचार्य मतिराम :

डॉ. नगेंद्र इन्हें अपने इतिहास ग्रंथ में छंदो निरूपक रीतिकवियों मे स्थान दिया है। मतिराम के विषय में विद्वानों में है। इनमें से एक महाकवि मतिराम है और दूसरे और एक मतिराम। आ. रमचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में लिखा है कि मतिराम रीतिकाल के मुख्य कवियों में है और चिंतामणि तथा भूषण के भाई परंपरा से प्रसिद्ध है। ये तिकवाँपुर (जिला कानपुर) में संवत् 1674 के लगभग उत्पन्न हुए थे और बहुत दिनों तक जीवित रहे। इनके आश्रयदाता बूँदी के महाराज भावसिंह थे।

मतिराम रचित ग्रंथों की संख्या इसप्रकार हैं – 'अलंकार पंचाशिका', 'साहित्यसार', 'लक्षण शृंगार' और 'छंदसारसंग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'। 'अलंकारपंचाशिका' अलंकारों पर लिखा गया ग्रंथ है। इसका रचनाकाल 1690 ई. है। इसके भीतर 48 अलंकारों का भेद-प्रभेदों के साथ वर्णन किया गया है तथा दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंदों में लक्षण और उदाहरण दिए गए है। 'साहित्यसार' दस पृष्ठों का नायिकाभेद पर लिखा गया ग्रंथ है जो अब प्राप्त नहीं है। 'लक्षण शृंगार' शृंगाररस के भावों और विभावों का वर्णन करने वाला ग्रंथ है। यह दोनों ही सामान्य महत्व के ग्रंथ है। 'छन्दसारसंग्रह' या 'वृत्तकौमुदी' मतिराम का छंदोंविवेचन संबंधी ग्रंथ है और दोनों एक ही है। इसका रचनाकाल 170 ई. है और यह गढ़वाल श्रीनगर के राजा फतेहसाहि बुंदेला के पुत्र स्वरूप साहि बुंदेला के आश्रय में लिखा गया था।

'छंदसारसंग्रह' पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिने 'प्रकाश' कहा गया है। प्रथम प्रकाश में गणेश, सरस्वती की वंदना, स्वरूप साहि की दान-वीरता की प्रशंसा और गणों का विवेचन हैं। अन्य चार प्रकाशों में क्रमशः वर्णिक छंद, मात्रिक छंद, प्रत्यय और दंडकों का विवेचन हैं। गणों के प्रसंग में गणों का स्वरूप, क्रम, देवता, फल, ग्रह, गुण, पिता, रस, रंग, देश, पुरुषार्थ, दिशामुख, वाहन, तेज, जाति और प्रकृति का सविस्तर वर्णन हैं। वर्णिक छंदों में 147 छंदां का वर्णन हैं। मात्रिक छंदों में 55 छंदों का वर्णन हैं, जिनमें 1 से 32 मात्राओं तक के 35 सममात्रिक और शेष अर्द्धसम, विषम और दंडक छंद हैं। चौथे प्रकाश में अनंगशेखर, घनाक्षरी और रूपघनाक्षरी नामक प्रसिद्ध दंडकों का वर्णन हैं। पाँचवें प्रकाश में प्रत्यय के समस्त भेदों का वर्णन मात्रा और वर्ण की दृष्टि से पृथक-पृथक किया गया है। इनमें लक्षण और उदाहरण दोनों ही स्पष्ट है तथा विषय-विवेचन भी सुबोध और स्पष्ट है। यह छंदशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। मतिराम की रचनाओं में भाषा और भावों की कृत्रिमता नहीं है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि इन्होंने बिहारी सतसई के ढंग पर मतिराम सतसई भी बनाई। इसके दोहे सरसता में बिहारी के समान ही है। छंद विवेचन में इन्होंने अपने कवित्व प्रदर्शन का प्रयास किया है।

23.3.10 आचार्य पद्माकर :

डॉ. नगेंद्र ने पद्माकर को अलंकार निरूपक रीति कवियों में स्थान दिया है। इनका नाम पद्माकर भट्ट है। ये जाति के तैलंग ब्राह्मण थे और बाँदा निवासी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। इनके पिता तथा कुल के अन्य लोक भी कवि थे अतः इनके वंश का नाम ही 'कविश्वर' पड़ गया था। इन्हें तत्कालीन अनेक राजदरबारों में आश्रय एवं सम्मान प्राप्त हुआ था। राजदरबारों में रहने के कारण इनका रहनसहन किसी राजा से कम नहीं था। इनका जन्म 1753 ई. में सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ बताया जाता है तथा मृत्यु 1833 ई. कानपुर में गंगा तट पर हुई।

इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'हिम्मतबहादुर बिरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोधचासा', 'गंगालहरी' और 'रामरसायन' बताए जाते हैं । इनके 'भाषाहितोपदेश', 'ईश्वरपचीसी', 'अलीजाहप्रकाश' तथा 'प्रतापसिंह बिरूदावली' नामक ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं। 'हिम्मतबहादुर बिरुदावली' की प्रशंसा में लिखा गया है और वीर-रस प्रधान रचना है। 'जगद्विनोद जयपुरनरेश प्रतापसिंह के पुत्र जयसिंह के नाम रचा गया है। यह रस-विवेचन संबंधी ग्रंथ है। 'पद्माभरण' ग्रंथ की रचना उन्होंने यहा जयपुर दरबार में ही की जो एक अलंकार ग्रंथ है। अपने जीवन के अंतिम दिनों में रोगग्रस्त होने पर इन्होंने 'प्रबोध-पचासा' लिखा और कानपुर में गंगा तट पर रहते समय 'गंगा लहरी' की रचना की।

'रामरसायन' वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया चरितकाव्य है। 'भाषाहितोपदेश' ग्रंथ हितोपदेश का अनुवाद है। 'प्रतापसिंह बिरूदावली' में सवाई महाराणा प्रतापसिंह के यश का वर्णन है। 'अलीजाह प्रकाश' की रचना दौलतराव सिंधिया के नाम पर सन 1821 ई. में की। 'जगद्विनोद' इनकी ख्याति का मुख्य आधार है और इसमें नवरसों के अंतर्गत शृंगार का अत्यंत विस्तृत वर्णन है तथा नायक-नायिकाभेद का भी वर्णन है। 'पद्माभरण' दोहा और चौपाइयों में लिखित अलंकार-ग्रंथ है। इसमें अलंकारों का लक्षण-उदाहरणसहित वर्णन है। इनका आचार्यत्व पक्ष अत्यंत दुर्बल है क्योंकि इन्होंने अपने ग्रंथों में न किसी विशेष सिद्धांत का प्रतिपादन किया है और न इनमें पांडित्यपूर्ण प्रतिभा है। यह मुख्य रूप से कवि है परंतु अपने भाइयों के समान आचार्यत्व निभाने का इन्होंने प्रयास मात्र किया है। इनकी भाषा सरस, सरल एवं सुव्यवस्थित है कवि के रूप में इन्हें रीतिकाल का सर्वप्रिय कवि कहा जा सकता है।

23.4 शब्दार्थ :

परिपाटी - रीति, मार्ग, परंपरा

परिपाक - परिपक्व होना

प्रशस्ति - प्रशंसा, यशोगान

वृत्ति - वेतन, मानदेव

पिंगल - छंदसूत्रों पर आधारित छंदशास्त्र

वय:संधि - बाल्यावस्था एवं युवावस्था के मध्य की स्थिति

23.5 सारांश :

रीतिकालीन कवियों के समस्त साहित्यिक कृतित्व के अवलोकन पश्चात यह तथ्य प्रकट होता है कि लगभग सभी कवियों ने मुख्यत: एवं अशंत: संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा का अनुसरण किया है। काव्यांग विवेचन अर्थात सिद्धांत प्रतिपादन एवं उनके लक्षण-उदाहरण देने में लगभग सभी ने सहभाग दिया । ऐसा नहीं है कि इनमें काव्यप्रतिभा नहीं थी परंतु वह वैभव-विलास प्राप्ति की आकांक्षा एवं होड़ में दब गई थी । इसके उपरांत भी अनेक कवियों अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिचय भी दिया है। 'रीति' इस कालखंड की मुख्य काव्यप्रवृत्ति थी इसमें संदेह नहीं है परंतु इसके अतिरिक्त ज्ञान, प्रेम, भक्ति, नीति तथा वीर आदि काव्यप्रवृत्तियाँ भी इसके समानांतर चलती रही। इसे भक्तिकालीन कविता के व्यापक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

रीतिकालीन कवियों की संपूर्ण प्रतिभा कविता के कलापक्ष पर केंद्रित थी। इनके सामने कोई विशेष साहित्यिक या सांस्कृतिक लक्ष्य नहीं था ही जन-जीवन को दिशा देने की उद्दात्त भावना थी। इसके बावजूद इस काल की साहित्यिक चेतना काफी प्रबुद्ध थी। अभिजनों से लेकर सामान्य जनों तक साहित्य के प्रति रुचि एवं समझ थी। यह कारण है कि इस काल की अधिकांश रचनाएँ अपने हस्तलिखित रूप में सहृदयों के निजी संग्रहों एवं राजदरबारों के संग्रहालयों में सुरक्षित रही।

23.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) रीतिकालीन कवियों में से महाकवि देव और पद्माकर के साहित्यिक योगदान का परिचय दीजिए।

2) आचार्य केशवदास रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, साहित्यिक कृतित्व के आधार पर विवेचन कीजिए।

3) कवि भूषण के साहित्यिक कृतित्व का परिचय दीजिए।

ख) टिप्पणियाँ :

1) भिखारीदास

2) भूषण का वीर–काव्य

3) बिहारी की सतसई

4) सेनापति

5) मतिराम

ग) एक–दो वाक्यों के उत्तरवाले प्रश्न :

1) आ. केशवदास की प्रामाणिक रचनाओं के नाम बताइए।

2) आ. चिंतामणी त्रिपाठी के अन्य दो भाइयों के नाम क्या है?

3) जगद्विनोद इस ग्रंथ में पद्माकर ने किन काव्यांगों का विवेचन किया है?

4) शिवाजी महाराज के क्रियाकलापों से युक्त रीतिकाल में रचित ग्रंथ और उसके कवि का नाम बताइए।

घ) सही पर्याय लिखिए :

1) आ. सेनापति की एकमात्र रचना का नाम है –

अ) कवित्त रत्नाकर ब) वीरसिंहदेवचरित क) रससार ड) काव्यवली

2) आचार्य केशवदास की सभी रचनाएँ किस भाषा में रचित है?

अ) अवधी ब) ब्रज क) खड़ीबोली ड) राजस्थानी

3) अलंकारपंचाशिका ग्रंथ इस कवि की रचना है –

अ) पद्माकर ब) मतिराम क) घनानंद ड) देव

४) रीतिकाल के किस कवि ने अपनी प्रेमिका में भगवान के नाना रूपों के दर्शन किए हैं –

अ) घनानंद ब) भूषण क) पद्माकर ड) देव

23.7 स्वाध्याय –क्षेत्रीय कार्य :

1) रीतिकालीन साहित्यिक कृतियों की काव्य के समस्त अंगो–उपांगों के अनुसार सूची बनाकर उन्हें वर्गीकृत करें ।

2) संस्कृत के रीतिग्रंथ एवं हिंदी रीतिग्रंथ का तुलनात्मक अध्ययन का प्रारूप तैयार करें ।

3) रीतिकालीन साहित्यिक कृतियों की हिंदी साहित्यशास्त्र को देन इस विषय पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।

देखिए 18.8 में दी गई सूची

pppp

इकाई – 24 आधुनिक काल की परिस्थितियाँ

24.1 उद्देश्य

24.2 प्रस्तावना

24.3 विषय विवरण

24.3.1 सामाजिक परिस्थिति

24.3.2 धार्मिक परिस्थिति

24.3.3 राजनीतिक परिस्थिति

24.3.4 आर्थिक परिस्थिति

24.3.5 साहित्यिक परिस्थिति

24.4 शब्दार्थ

24.5 सारांश

24.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

24.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

24.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

24.1 उद्देश्य

* आधुनिक युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सहित्यिक परिस्थितियों को जानना ।
* आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों का साहित्य के प्रभाव से परिचित होना ।

24.2 प्रस्तावना :

काल एक अखंड, अनन्त, अजस्त्र व अविरल – प्रवाह परंपरा है, किंतु उसे निजी सुविधा के लिए कतिपय खंडों में विभाजित कर लिया जाता है । काल विभाजन की सामान्य पद्धति है उसे आदि, मध्य तथा आधुनिक रूप में विभक्त करना । इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उत्तर मध्य अर्थात् रीतिकाल के बाद 'आधुनिक काल' माना हैं तथा इस काल में गद्य की प्रधानता को लक्ष्य करके ''गद्य काल'' की संज्ञा से अभिहित किया है । भक्तिकाल का साहित्य जनता का साहित्य है और रीतिकाल का साहित्य बहुधा दरबारों का साहित्य है । जो अधिकतर राजकीय मनोवृत्ति तथा आश्रयदाताओं की तुष्टि को लक्ष्य करके लिखा गया है । आधुनिक काल का हिंदी साहित्य भारतीय समाज के एक सर्वथा नवीन वर्ग की वाणी को मुखरित करता है जो वर्ग की नवीन शासन प्रणाली तथा नई अर्थ-व्यवस्था के परिणाम स्वरूप पीडित एवं शोषित था ।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल तत्कालीन राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित हुआ । इसे हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है, जिसमें पद्य के साथ साथ कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, पत्रकारिता आदि गद्य की विभिन्न विधाओं का भी विकास हुआ । हिंदी साहित्य का आधुनिक काल १८५० से आरंभ होता है । इस युग में भारतीय राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित हुए । स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया । छापखाने का अविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडिओ, टी.वी, समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार । इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा । आधुनिक काल के साहित्य में जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं को रूपायित किया गया और गद्य साहित्य जीवन के यथार्थ चित्रण का विषय बना । इस प्रकार साहित्य में जीवन का अधिक व्यापक चित्रण होने से वह हमारे आधुनिक जीवन के अधिक निकट आ सका ।

24.3 विषय विवरण :

आधुनिक काल की सामाजिक, धार्मिक, राजनितिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन विस्तृत रूप से इस प्रकार है –

24.3.1 आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थिति :

इस काल के राजनीतिक आंदोलन को चारित्रिक दृढ़ता और अगाध विश्वास की प्राप्ति तत्कालीन सामाजिक क्रांति और धार्मिक आंदोलनों के द्वारा हुई । इन समस्त आंदोलनों का उद्देश्य या समाज-सुधार एवं भारतीय स्वाधीनता। सन् १८५७ में हुए प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पूर्व देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । समाज दो भागों में विभक्त था । एक सामन्त वर्ग और दूसरा दलित वर्ग । सामंत वर्ग संपन्न था जो कंचन और कामिनी के सेवन में व्यस्त था । दलित वर्ग सामंतशाही के अत्याचारों का शिकार था । अधिक शोषण से वह अपमान और विवश होकर चेतनाहीन जीवन जी रहा था ।

भारत पर १८५७ ई. में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो जाने से एक नवयुग का शुभारंभ होता है । मुगल राज्य के विस्थापन और अंग्रेजों के राजनीतिक सूत्रधार बनने पर भारतीय समाज में परिवर्तन हुआ । लुटेरों के कारण सामान्य जनता का जीवन आपत्तिग्रस्त था । लुटेरों के कारण सामान्य जनता का जीवन आपत्तिग्रस्त था । अंग्रेज अपने आप को विदेशी ही समझते थे । अत: देश की सामाजिक दशा की ओर उनका ध्यान आकृष्ट होना संभव न था । जाति-पाँति

का भेद, सती-प्रथा, शिशु-हत्या और बाल विवाह आदि कुरीतियाँ समाज में प्रचलित थी । समुद्र यात्रा, सार्वजनिक शिक्षा के विरुद्‌ध लोगों में अंधविश्वास और अविश्वास था । फलत: भारतीय समाज के लिए उन्नति के सभी मार्ग कुछ समय तक बंद रहे ।

अंग्रेजों के आगमन का प्रभाव क्रमश: भारतीय समाज पर पडने लगा । राजाराम मोहनराय द्‌वारा प्रवर्तित 'ब्रहम समाज' के आंदोलन में हजारों की संख्या में लोगों ने सहयोग दिया । केशवचन्द्र सेन तथा ब्रहम समाज के सदस्यों के अनुरोध पर १८७० ई. में बाल विवाह और बालिकाओं की हत्या के निषेध संबंधी कानून पास किए गए । शिक्षा के प्रचार प्रसार के उद्‌देश्य से स्कूल खोले जाने लगे । इनका उद्‌देश्य समाज की कमियों संकीर्णताओं और रूढ़ियों को समाप्त करना था, किंतु कुछ समय पश्चात् वे स्वयं ईसाई रंग में रंग गए । स्वामी दयानन्द ने ईसाई धर्म और प्रचार की प्रतिक्रिया में 'आर्य समाज' की स्थापना की । उनका व्यक्तित्व सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में उतना ही क्रांतिकारी था जितना राजनीतिक क्षेत्र में तिलक का । स्वामी दयानंद के दो कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं - राष्ट्रीयता का संचार और राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार । स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्ध प्रकाश' लिखकर वैदिक धर्म का नवीन विश्लेषण प्रस्तुत किया । वर्णव्यवस्था, नारी शिक्षा और दलित वर्ग के उत्थान में उनका कार्य उल्लेखनीय है । महाराष्ट्र में सर आर. एस. भांडारकर तथा एम. जी. रानडे द्‌वारा 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना हुई । जिसका लक्ष्य बौद्‌धिक उपासना के साथ-साथ समाज-सुधार करना था । थियोसाफिकल सोसायटी (१८५७ ई), रामकृष्ण मिशन, भारत सेवक समाज आदि ने देश की सामाजिक प्रगति के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया । श्रीमती एनी बेसेंट ने हिंदू आदर्शों को नई दृष्टि प्रदान की । गोपालकृष्ण गोखले के भारत सेवक समाज ने आध्यात्मिक उन्नति और मातृभूमि की सेवा के महत्व पर विशेष बल दिया ।

निष्कषर्त: यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के शासनकाल में सामाजिक दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए । अनेक कुरीतियाँ दूर हो गई और सामान्य जनता में जनजागरण की एक लहर सी आ गई । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार अनेक प्रकार के सुधारों का कार्यरूप देने में व्यस्त रही और सबको विकास के लिए समान अवसर मिला ।

24.3.2 धार्मिक परिस्थिति :

भारत अनेक जातियों और धर्मों का देश है । हिंदू अतिरिक्त भारत में जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई, पारसी, इस्लाम आदि धर्म के अनुयायी यहाँ निवास करते हैं । हिंदू धर्म सदैव उदार रहा है । इसमें इतनी व्यापकता और लचीलापन है कि इसके अनेक रूप होते हुए भी इसमें एकरूपता है । हिंदू धर्म की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कहीं किसी प्रकार की कट्टरता नहीं है । इसके अंतर्गत बहुदेवोपासना मान्य है । भगवान का स्मरण और पूजा, किसी भी रूप में हो, हिंदू धर्म में वह स्वीकार्य है । हिंदू धर्म में शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी, राम-सीता, कृष्ण-राधा, हनुमान, गणेश, सरस्वती, काली, दुर्गा माता आदि सभी पूज्य हैं । नदियों में गंगा का महत्व सर्वाधिक है । इसे सुरसरि या देवसरिता कहा जाता है । लोक में मान्यता यह हो कि गंगा में स्नान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग का भागी बन जाता है । हिंदू धर्म में कर्मकांडों की प्रचुरता हैं । अशिक्षित लोगों में अंधविश्वास का अत्याधिक प्रचलन है । शिक्षा के प्रभाव से इस धारणाओं का प्रभाव कम होता जा रहा है । १८ वीं शती में विकसित 'ब्रहम समाज' और 'आर्य समाज' ने अंधविश्वासों और कर्मकांडों को दूर करने की उल्लेखनीय कार्य किया है ।

राजा राममोहन राय ने ब्रम्ह समाज की स्थापना १८२८ में की । ईसाई धर्म के प्रचार के कारण अनेक हिन्दू ईसाई बन रहे थे । 'ब्रहम समाज' की स्थापना से हिंदू धर्म का उद्‌धार करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ । इस दिशा में हिंदू धर्म का उद्‌धार करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ । इस दिशा में हिंदू धर्म के चिंतनशील विद्‌वान् सक्रिय हुए । स्वामी दयानंद सरस्वती ने १८७५ ई में 'आर्य समाज' की स्थापना कर हिंदी माता और साहित्य के माध्यम से धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में सुधार करने का बीड़ा उठाया । 'आर्यसमाज' के प्रचार के लिए प्रबंध किया गया।

अल्पकाल में ही संपूर्ण उत्तर भारत में इसकी शाखाएँ - कार्यशील हो गई । शिक्षित वर्ग के द्‌वारा मान्य होने के कारण आर्यसमाज का विशेष आदर हुआ । इस प्रकार १९ वीं शती के उत्तरार्ध से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक आर्यसमाज भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार और प्रसार का मूलाधार रहा । आधुनिक युग में धार्मिक चेतना को, युग-धर्म के अनुरूप नई दिशा दी गई । धार्मिक संकीर्णताओं को दूर करने का प्रयास हुआ । धर्म को बौद्‌धिक दृष्टि देकर अधिक से अधिक मानवोपयोगी और व्यापक बनाया जा रहा है । सामान्य हिंदू आज भी ईश्वर की शक्ति में विश्वास करता है। पुनर्जन्म, कर्मफल और नियतिवाद जैसी धारणाओं के प्रति आज भी वह आस्थावान है । वास्तविकता यह है कि वर्तमान युग की वैज्ञानिक प्रगति ने प्राचीन परम्परागत और रूढ़िवादी, कुंठित धार्मिक भावनाओं का उन्मूलन कर मनुष्य को धर्म का नवमूल्यांकन करने के लिए विवश कर दिया है ।

24.3.3 राजनीतिक परिस्थिति :

आधुनिक युग के साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में, 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' की स्थापना, सन् १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना, बंग-भंग, विश्व का प्रथम महायुद्‌ध, जापान द्‌वारा रुस की पराजय, जालियनवाला बाग हत्याकांड, खिलाफत आंदोलन, गांधीजी का असहयोग आंदोलन, स्वराज्य पार्टी की स्थापना, जिन्ना का कांग्रेस से पृथक् होना तथा मुस्लिम लीग में सम्मिलित होना, क्रिप्स महोदय का भारत आगमन, १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन, इंग्लैड में मजदूर दल की विजयी होना, १५ अगस्त १९४७ को भारत का स्वतंत्र होना, देश की अन्य समस्याएँ आदि आती हैं ।

अंग्रेजों ने १७५७ में सबसे पहले बंगाल जीत लिया और १८५७ में दिल्ली । इस बीच उनका राज्य भारत में फैलता गया । विजयी प्रदेशों पर उन्होंने अपने ढंग की शासन व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था को लागू किया । उन्होंने राज-काज में सहयोग के लिए भारत से सस्ते क्लर्कों की प्राप्ति हेतु स्कूल और कॉलेज खोले । छापखाने तथा रेल - तार आदि का अविष्कार हुआ । लार्ड डलहौसी की 'लैप्स की नीति' इस काल की प्रमुख घटना है । इस नीति के द्‌वारा हमारे देश की कई देशी रियासतों - सतारा, झाँसी, नागपुर, जैतपुर को अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया । परिणामत: छोटे छोटे रजवाड़ों के समाप्ति से श्रृंगारपरक साहित्य निर्माण भी बंद हो गया ।

ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना के समय भारतीयों को न जाने क्या क्या अनुभव आए । भारतीयों के मन में यह बात स्पष्ट हो गई थी की हमारे ही सिपाहियों और सेना के बल पर यह लोग हमारे देश पर शासन कर रहे हैं । १ मई १८५७ सारे भारत में अंग्रेजों के विरुद्‌ध विद्रोह की आग भड़क उठी । स्वतंत्रता की यह लहर लगभग एक साल तक चलती रही । भारतीय राजा महाराजाओं के विश्वासघात से स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम असफल हुआ, जिसमें नाना साहब, बांदा का नवाब, अहमदशाह, तात्या टोपे और झाँसी की रानी आदि वीर काम आए । भारतेंदुकालीन साहित्य इस संबंध में मौन रहा यह आश्चर्य की बात है । इसके पश्चात् भारत में विक्टोरिया का शासन आया । इसमें अनेक प्रकार की घोषणाएँ हुई - जैसे धर्म में हस्तक्षेप न करने की नीति आदि । वस्तुत: अंग्रेजी शासन की दृढ़ता का यही काल है । लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी सभ्यता का प्रचार करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रचलन करवाया । जिससे भारतीय शिक्षित समाज अंग्रेजी सभ्यता के रंग रंगा जाने लगा था ।

सन् १८८५ में 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई । जिसका उद्‌देश्य भारतीय प्रशासकीय कार्यों में सहयोग देना था । परंतु बाल गंगाधर तिलक के प्रवेश के साथ यह स्वाधीनता संस्था के रूप में बदल गई । 'बंग - भंग कानून' से भारतीय स्वाधीनता की भावना और भी तीव्र हुई और भीतर ही भीतर अंग्रेजी राज्य को उतरने के लिए क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण हुआ । लोकमान्य तिलक, हरदयाल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव ओर राजगुरुने सक्रीय भाग लिया ।

सन् १९२० में कांग्रेस की बागडोर गांधीजी ने संभाली । उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों को सम्मिलित करके असहयोग आन्दोलन प्रारंभ किया । इसमें विदेशी वस्त्रों, सरकारी नौकरी, स्कूलों, कॉलेजों और उपाधियों का बहिष्कार

किया गया । इ.स. १९२०-३० तक अंग्रेजों की कूटनीति का दमन चक्र खूब चला । इ.स. १९३० में एक भयंकर साम्प्रदायिक दंगा हुआ जिसमें गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे साधक को प्राण न्यौछावर करने पड़े । अंग्रेजों द्वारा डाली गई बाधाओं का यह परिणाम है कि भारत को जो स्वतंत्रता मिली वह भी विभक्त रूप में मिली । सन् १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया जिसके फलस्वरूप असंख्य गिरफ्तारियाँ हुई और कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया गया । लार्ड माउंटबेटेन ने वाइसराय होने पर १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान दो भागों विभाजित कर स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई । २६ नवम्बर १९४९ को देश का संविधान तैयार हुआ । २६ जनवरी १९५० को देश का लोक तंत्रात्मक गणराज्य घोषित हुआ । गवर्नर जनरल का शासन समाप्त किया गया । डॉ. राजेंद्र प्रसाद स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए । स्वतंत्रता के बाद नव चेतना नव निर्माण में परिणत हो गई । आज के स्वतंत्र भारत की राजनीतिक चेतना राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता के रूप में विकसित हो रही है ।

24.3.4 आर्थिक परिस्थिति :

ईस्ट इंडिया कंपनी के काल में भारतवासियों की आर्थिक स्थिति खराब ही रही । सन् १८५७ के बाद अंग्रेजों की शासन सत्ता भारत में अच्छी प्रकार जम गई, जिसके फलस्वरूप मध्यकालीन सामंती व्यवस्था और संस्कृति का लोप होने लगा । आधुनिक युग का आरंभ इतिहास की आवश्यकता थी । कुछ विद्वानों के मतानुसार विदेशियों के आगमन से इस क्रांति में विलंब हुआ । हमारे देश में व्यवसाय और उद्योग धंधे फैले हुए थे, किन्तु अंग्रेजों ने उन्हें नष्ट करके हमारी सामाजिक ओर आर्थिक उन्नति में महान व्याघात उपस्थित कर दिया । अंग्रेजों का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था । इसकी पूर्ति के लिए एक ओर उन्होंने देशी उद्योग धंधे स्थापित किए । रेल, तार, डाक आदि की व्यवस्था आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की सुविधा की दृष्टि से की । शिक्षा का प्रचार विशाल साम्राज्य चलाने के लिए, सस्ते क्लर्कों के उत्पादन के निमित्त था । महंगाई, अकाल, टॅक्स और दरिद्रता भारतेन्दु युग की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ हैं, जिसकी प्रतिध्वनि तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है । इसी कारण कांग्रेस ने राजनीतिक स्वाधीनता के साथ आर्थिक स्वतंत्रता की मांग की । १८५७ के बाद अंग्रेजों ने उनके समर्थकों को बड़ी बड़ी जागीरे प्रदान कर जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहन दिया । किसान वर्ग पर मालगुजारी का बोझा लादकर तथा जमींदारों के अत्याचारों को आश्रय देकर अंग्रेजों ने किसानों को अत्याधिक दीन-हीन बना दिया । पहले विश्वयुद्ध के बाद कांग्रेस ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा अंग्रेजों की औद्योगिक नीति तथा आर्थिक शोषण का विरोध किया । मुंशी प्रेमचंद तथा उनके समकालीन साहित्यकारों के साहित्य में इसका स्पष्ट चित्रण हुआ है ।

शासन की बागडोर मुसलमानों से अंग्रेजों के हाथ में चले जाने के कारण मुसलमान शासकों और रईसों की आर्थिक दशा पर बुरा प्रभाव पड़ा । इस देश का मुख्य उद्योग सदैव से ही कृषि रहा है । सामान्य भारतीय किसान ऋण के भार से दबा रहता है । अंग्रेजों के शासन काल में इस ओर ध्यान दिया जाने लगा था । कृषि के समान ही १९ वीं शती मे हमारा देश अन्य उद्योगों में भी बहुत पीछे रहा । अंग्रेजों के शासन-काल में वैतानिक दिशा मे प्रगति करने की प्रेरणा मिली । द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को विश्वव्यापारी महंगाई और बेरोजगारी का शिकार होना पडा । पूंजीवाद का बोलबाला हो जाने के कारण श्रमिक और कृषक वर्ग शोषण की चक्की में बुरी तरह पिसे गये। अंग्रेजों की आर्थिक नीति में कुछ परिवर्तन हुआ । उन्होंने अपने साम्राज्यवादी हितों की सिद्धि के लिए भारत की औद्योगिक उन्नति की, किंतु उससे शोषण बढ़ता गया ।

संपूर्ण भारत में स्वतंत्रता के बाद देश की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ । पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य व्यवसाय, उद्योग-धंधो के प्रचार एवं प्रसार द्वारा राष्ट्र की आर्थि स्थिति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ ।

24.3.5 साहित्यिक परिस्थिति :

आधुनिक काल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से विषय और शैली दोनों दृष्टि से भिन्न है । इस भिन्नता का कारण तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक चेतना है । इस दिशा में विविध साहित्यिक प्रभावों ने

भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । रीतिकाल का साहित्य राजमहलों में पल रहा था, जो अब आधुनिक काल में झोपडियों में आकर जनता के सुख-दुख की बात कहने लगा, नारी के कुच-कटाक्ष के सीमित कटघरे मे बंद था । उसमें विशिष्ट उदारता, व्यापकता और विविधता आई, विशाल जनसमूह को उसने खुली आँखों से देखा । रीतिकालीन साहित्य में मुख्यता शृंगारिकता, वीर रस, भक्ति और नीति-संबंधी कविता, मुक्तक की प्रधानता, ब्रजभाषा का प्रयोग संक्षेप में साहित्य की भाषा, भाव और शैली रूढ़िग्रस्त थी जो बदले हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी। अत: आधुनिक हिंदी साहित्य में इन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्रांति हुई । भारतेंदु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेशद्वार माना जाता है । भारतेंदु युग का साहित्य हिंदी के विकास क्रम को स्वाभाविक रूप से आगे बढाता है । द्विवेदी युग के साहित्य में विषयगत और कलागत परिवर्तन हुआ छायावादी युग के साहित्य को अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक परम्पराओं के प्रतिक्रियात्मक एक चिरस्मरणीय आंदोलन समझा गया । प्रगतिवादी साहित्य में विश्व मानवता का स्वर मुखरित है । आधुनिक युग के साहित्य की विषय और कलागत अपनी मान्यताएँ हैं । श्र

आधुनिक काल के साहित्य की सबसे विशेष उल्लेखनीय बात है गद्य का आविष्कार तथा खड़ीबोली का साहित्य गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम स्वीकृत हुआ । इसके साथ साथ आधुनिक हिंदी साहित्य में विभिन्न काव्य रूपों का प्रचलन हुआ । कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवन-चरित, आलोचना, एकांकी और रिपोर्ताज आदि । साहित्य की इन विधाओं का रूप विधान पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण पर हुआ है । संक्षेप में आधुनिक काल का साहित्य विषय और शैली दोनों क्षेत्रों में अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न है ।

24.4 शब्दार्थ :

आवागमन - आना-जाना

निजी - व्यक्तिगत, अपना

अनूठा - अपूर्व, विलक्षण

24.5 सारांश :

आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता होने के कारण इसे 'गद्य काल' भी कहाँ जाता है । आधुनिक काल के साहित्य में वास्तविक अर्थों में आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं और महत्वपूर्ण प्रश्नों को रूपायित किया गया । आधुनिक युग की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी । समाज मे अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थी । इस काल के राजनीतिक आंदोलन को चारित्रिक दृढ़ता और अगाध विश्वास की भावना की प्राप्ति तत्कालीन धार्मिक आंदोलनों तथा सामाजिक क्रांति के द्वारा हुई । इन आंदोलनों का उद्देश्य समाज-सुधार और भारतीय स्वाधीनता था। इन आंदोलनों में प्रमुख हैं - ब्रहम समाज, आर्य समाज, थियासोफी, सनातन धर्म, स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि । हमारे देश में व्यवसाय और उद्योग धंधे काफी फैले हुए थे, किन्तु अंग्रेजों ने उन्हें नष्ट करके हमारी सामाजिक और आर्थिक उन्नति में महान व्याद्यात उपस्थित किया । अंग्रेजों का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था । इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने देशी उद्योग स्थापित किए तथा रेल, तार, डाक की व्यवस्था आर्थिक और राजनीतिक सत्ता की सुविधा की दृष्टि से की । आधुनिक काल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न है । इस भिन्नता का कारण जहाँ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक चेतना है, वहाँ इस दिशा में बाह्य संपर्क तथा विविध साहित्यों के प्रभावों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । भारतेंदु युग आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवेशद्वार है । आधुनिक साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण घटना है गद्य का अविष्कार तथा खड़ी बोली का साहित्य । आधुनिक हिंदी साहित्य में विभिन्न विधाओं का विकास हुआ । जिसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवन चरित्र, आलोचना, एकांकी और रिपोर्ताज आदि। आधुनिक काल साहित्य सृजन की दृष्टि से समृद्ध रहा है ।

24.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* आधुनिक काल की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।
* आधुनिक काल की राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए ।
* आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों का विवेचन कीजिए ।

(ख) लघूत्तरी प्रश्न

* आधुनिक काल की साहित्यिक परिस्थिति
* आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थिति
* आधुनिक काल की आर्थिक परिस्थिति

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* ब्रह्मसमाज की स्थापना किसने की ?
* स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रमुख दो कार्य कौनसे ?
* स्वतंत्रतापूर्व की भारत में घटित घटनाएँ कौनसी ?
* प्रार्थना समाज का उद्‌देश्य लिखिए ।

(घ) सही पर्याय लिखिए

* बालविवाहादि से संबंधित कानून कब पास हुआ ?

  अ) इ.स. 1870 ब) इ.स. 1880 क) इ.स. 1890 ड) इ.स. 1900
* आधुनिक काल के साहित्य का अधिकतर लेखन किस बोली भाषा में हुआ है ।

  अ) खडीबोली ब) ब्रज क) अवधी ड) दक्खिनी

24.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों का विवेचन कीजिए ।
* भारतेंदु युगीन साहित्य का परिचय दीजिए ।
* स्वतंत्रता पूर्व काल की भारत में प्रचलित धार्मिक संस्थाओं की सूची बनाइए ।
* स्वतंत्रता - संग्राम में सक्रिय नेताओं की सूची तैयार कीजिए ।

24.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
* हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियाँ- डॉ. शिवकुमार शर्मा
* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❊❊❊

इकाई – 25 उपन्यास विधा का विकास

25.1 उद्‌देश्य

25.2 प्रस्तावना

25.3 विषय विवरण

  25.3.1 प्रेमचंदपूर्व युग

  25.3.2 प्रेमचंद युग

  25.3.3 प्रेमचंदोत्तर युग

25.4 शब्दार्थ

25.5 सारांश

25.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

25.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

25.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

25.1 उद्देश्य

* हिंदी उपन्यास साहित्य का विकासात्मक परिचय प्राप्त करेंगे ।
* हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग की प्रवृत्तियों को जान सकेंगे ।

25.2 प्रस्तावना :

उपन्यास एक ऐसा साहित्य प्रकार है, जो जीवन के सर्वाधिक क़रीब है । इसमें समाज युग एवं मानवजीवन का व्यापक चित्रण होता है । उपन्यास कथात्मक साहित्य का सबसे प्रबल माध्यम है । वस्तुत: गद्य की विविध विधाओं का विकास १९ वीं शताब्दी के प्रारंभ से हुआ है । उपन्यासों का उद्‌भव आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रारंभ में भारतेंदु काल में हुआ ।

उपन्यास शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्ध है उप-निकट, न्यास रखा हुआ, अर्थात् साहित्य का वह अंग जिसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक काल में हुआ । उपन्यास आधुनिक साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा है । यदि साहित्य का मूलभाव मानव हित में निहित हो, तो उपन्यास इसका सबसे प्रमुख माध्यम बन सका है । उपन्यास साहित्य का विकास प्रत्येक कालखंड में होता रहा, प्रत्येक काल में उपन्यास लेखक अपने युग की यथार्थता को प्रस्तुत करते रहे हैं ।

25.3 विषय विवरण :

हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद का योगदान विशेष उल्लेखनीय है । प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट माना जाता हैं। हिंदी उपन्यास साहित्य के इतिहास को मुख्यता तीन युगों में बाँटा जा सकता है - (१) प्रेमचंदपूर्व युग (२) प्रेमचंद युग (३) प्रेमचंदोत्तर युग । उनका विस्तृत परिचय निम्न है ।

25.3.1 प्रेमचंदपूर्व युग :

हिन्दी में उपन्यास लेखन का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ । इस युग के लेखकों को उपन्यास लिखने की प्रेरणा अंग्रेजी और बंगला उपन्यासों से मिली । भारतेंदु ने आधुनिक हिंदी साहित्य के सभी अंगों की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने उपन्यास लिखना प्रारंभ किया परंतु वह पूर्ण न हो सका । अत: उन्होंने 'पूर्ण प्रकाश' ओर 'चंद्रप्रभा' नामक उपन्यास का अनुवाद किया । हिंदी साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास का अनुवाद किया । हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्री निवासदास द्‌वारा लिखित 'परीक्षा गुरु' (१८८२ ई.) माना जाता है । इस उपन्यास में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कथा है । सेठ पुत्र कुसंगति में पड़ जाता है और अंत में एक सज्जन मित्र द्‌वारा उसका उद्‌धार होता है । इस उपन्यास में उपदेशांतकता की प्रवृत्ति प्रधान है । अत: यह एक सुधारात्मक साधारण उपन्यास है । इसके अलावा इस युग के उल्लेखनीय उपसाकार किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्‌ट एवं लज्जाराम शर्मा हैं ।

प्रेमचंदपूर्व काल में सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रेम-साधना, तिलस्मी तथा ऐयारीपूर्ण अनेक प्रकार के उपन्यास लिखें गए । देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी ने भारतेंदु युग में ही उपन्यास लेखन प्रारंभ कर दिया था। देवकीनंदन खत्री ने तिलिस्मी - ऐयारी उपन्यास लिखें, जब कि गोपालराम गहमरी ने अंग्रेजी पद्‌धति के जासूसी उपन्यास लिखें । देवकीनंदन खत्री को आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के पहले मौलिक उपन्यास लेखक मानते हैं । देवकीनंदन खत्री का जन्म काशी में सन १८६१ में हुआ था । ये उर्दू, फारसी, संस्कृत और हिंदी के जानकार थे । इनका परिवार काशी का प्रतिष्ठित परिवार था । इनके तिलिस्मी - ऐयारी उपन्यास जनता में बहुत लोकप्रिय हुए । अनेक हिंदी न जाननेवालो ने केवल इनके उपन्यास पढ़ने के लिए हिंदी सिखी । देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों मे चंद्रकांता संतति, नरेन्द्र मोहनी, वीरेंद्रवीर, कुसुम कुमारी तथा कुसुमलता उल्लेखनीय हैं, भुतनाथ उनका अंतिम उपन्यास है । इनके

अनुकरण पर देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि लेखकों ने जासूसी उपन्यास लिखें ।

भारतेंदु युग को हिंदी उपन्यास का प्रथम काल कहा जा सकता है । इस युग में राष्ट्रीय नवोत्थान की चेतना ने जनजीवन में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक वैषम्य को प्रस्तुत किया । प्रेमचंदपूर्व युग में हिंदी उपन्यास के विकास में श्रद्धाराम फिल्लौरी के 'भाग्यवती' (१८७७) उपन्यास में सामाजिक आदर्शों और शिक्षा की प्रवृत्ति प्रमुख है । लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' सामाजिक उपन्यास में दिल्ली के रईस मदनमोहन के जीवन के उतार-चढ़ाव की प्रस्तुति है । पं. बालकृष्ण भट्ट के दो मौलिक उपन्यास हैं 'नूतन ब्रहमचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' । श्री लज्जाराम शर्मा ने अपने उपन्यासों के माध्यम से धर्म और समाज के विकृतियों की चर्चा की है । इन्होंने संयुक्त परिवार का समर्थन और आंतरजातीय विवाह का विरोध किया । इनके प्रमुख उपन्यास हैं 'स्वतंत्र रमा, परतंत्र लक्ष्मी', 'धूर्त रसिकलाल', 'कपटी मित्र', 'आदर्श दम्पत्ति', 'हिन्दू गृहस्थ', 'सुशीला विधवा', 'बिगड़े का सुधार', 'आदर्श हिनु' । अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला' फूल दो सामाजिक उपन्यास लिखे । किशोरीलाल गोस्वामी इस युग के एक चर्चित उपन्यासकार है । उनके 'त्रिवेणी', 'आदर्श सती', 'राजकुमारी', 'चपला या नव्य समाज', 'अंगूठी का नगीना' आदि प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास हैं ।

25.3.2 प्रेमचंद युग :

प्रेमचंद के आगमन के साथ हिंदी उपन्यास साहित्य में एक नवीन युग का आरंभ हुआ, प्रेमचंद इस नवीन युगचेतना के अग्रदूत बने । प्रेमचंद युग में तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियों का सर्वांगीण चित्र उपस्थित किया गया । प्रेमचंद युग आते-आते हिंदी उपन्यास को कल्पना, रोमांस, ऐयार - तिलस्मी, जासूसी तथा ऐतिहासिक भूमिका प्राप्त हो चुकी थी । तत्कालीन सामाजिक चेतना को नवीन अभिव्यक्ति माध्यमों की आवश्यकता थी और समूची चेतना की अभिव्यक्ति उपन्यास द्वारा ही संभव थी । फलस्वरूप हिंदी उपन्यास का विकास हुआ । भारतेंदु तथा द्विवेदी युग में हिंदी उपन्यास को गहरे आदर्शवाद ने जकड़ लिया था । पथभ्रष्ट युवक के सुधार की कहानी 'परीक्षा गुरु' से जो प्रारंभ हुई तो सारे उपन्यास साहित्य को धीरे-धीरे अपने दायरे में समेट लिया । प्रेमचंद ने इसका बहिष्कार तो नहीं किया, लेकिन इसे सूक्ष्म एवं अधिक कलात्मक बना दिया । उन्होंने आदर्शवाद को मनोविज्ञान और यथार्थ की भूमियों पर उतार दिया। इस युग में सामाजिक चेतना विविध स्वरूपों में प्रस्तुत की गई और उपन्यास में वैविध्य को स्थान मिला।

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद के आगमन से उपन्यास साहित्य की रिक्तता सही अर्थों में पूर्ण हुई । वस्तुत: वे हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार तथा युग-प्रवर्तक हैं । उनके उपन्यासों में पहली बार जन-सामान्य को वाणी मिली केवल मनोरंजन का माध्यम न रहकर वह जीवन की वास्तविकता को उद्घाटित करने वाला बना । प्रेमचंद के उपन्यासों में भारत के किसान और मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न समस्याएँ यथार्थ रूप में चित्रित हुई है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवतावादी साहित्यकार प्रेमचंद के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - ''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्व के प्रचारक थे । अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता । झोंपड़ियों से लेकर महलों, खोमचेवाले से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर धारा-सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता ।''

प्रेमचंद ने मुख्यता सामाजिक और राजनीतिक उपन्यास लिखें । इनमें समग्र रूप से भारतीय जीवन की बहुमुखी समस्याएँ चित्रित की हैं । 'सेवासदन' उनका कलात्मक दृष्टि से प्रथम एवं प्रौढ़ उपन्यास है जिसमें वेश्याओं की समस्या एवं मध्य वर्ग के विडंबनात्मक जीवन का चित्र है । 'प्रेमाश्रम' में ग्राम्य जीवन की समस्याओं का चित्रण है । 'रंगभूमि' इनका सबसे बड़ा उपन्यास है और इसमें शासक वर्ग के अत्याचारों की समस्या है । 'कर्मभूमि' राजनीतिक जनता की साम्राज्य विरोधी भावना है । 'प्रतिज्ञा' में विधवा-विवाह 'गबन' में आभूषणों की लालसा के दुष्परिणामों, 'निर्मला' में

नारी जीवन की यातना तथा अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण हैं । 'गोदान' मुंशी प्रेमचंद का ही नहीं, बल्कि हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । इसमें किसान एवं मजदूर के शोषण की करुण कथा है । 'गोदान' और 'निर्मला' में यथार्थवादी तो अन्य उपन्यासों में प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहे हैं ।

प्रेमचंद युग में अनेक प्रतिभाशाली उपन्यासकारों का उदय हुआ जैसे जयशंकर प्रसाद – कंगाल, तितली, इरावती; शिवपूजन सहाय – देहाती दुनिया; चतुरसेन शास्त्री – परख, हृदय की प्यास; विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' – माँ, भिखारिणी; पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' – चंद हसीनो के खतूत, बधुआ की बेटी, दिल्ली का दलाल, 'शराबी'; प्रतापनारायण श्रीवास्तव – विदा, विकास; वृंदावनलाल वर्मा को हिंदी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है । उनके उपन्यास हैं – गढ़ कुण्डार, लगन, संगम, प्रत्यागत, कुण्डलीचक्र, प्रेम की भेट, विराट की पद्मिनी, मुसाहिब जू, कभी न कभी, झाँसी की रानी, माधव जी सिन्धिया, मृगनयनी । जैनेन्द्रकुमार – परख, सुनीता, कल्याणी इलाचंद्र जोशी – पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, संन्यासी तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी, ऋषभचरण जैन, जी. पी. श्रीवास्तव, सुदर्शन, निराला आदि इसी युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं ।

25.3.3 प्रेमचंदोत्तर युग :

प्रेमचंद के बाद का उपन्यास साहित्य निश्चित रूप से प्रेमचंद के पूर्ववर्ती साहित्य से उच्च है और शायद बाह्य शिल्पविधान में प्रेमचंद के साहित्य से भी कुछ आगे है, किंतु इसमें वह भीतरी गहराई नहीं है जो प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में है । प्रेमचंदोत्तर युग के लिखकों की रचनाओं को एक निश्चित प्रवृत्ति के अंतर्गत रखना कठिन है, परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें प्रवृतिपरक वर्गों में विभाजित करके उपन्यास विकास की परंपरा को समझा जा सकता है ।

सामाजिक उपन्यास :

जयशंकर प्रसाद और विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में उग्र, चतुरसेन शास्त्री, उपेंद्रनाथ अश्क प्रमुख हैं । चतुरसेन शास्त्री ने 'हृदय की प्यास' उपन्यास में विधवाश्रमों में छिपकर किए जाने वाले दुराचारों का; तो अश्क के 'गिरती दीवारे' में निम्न मध्यवर्ग के जीवन का, 'पत्थर अल पत्थर' में वर्तमान कश्मीर की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है ।

सामाजिक उपन्यास लेखकों में भगवतीचरण वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । उनकी कृतियाँ हैं – 'चित्रलेखा', 'पतन', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'भूले बिसरे चित्र', 'सीधी सच्ची बातें' तथा 'सबहि नचावत राम गोसाई' । सामाजिक उपन्यास लेखकों में अमृतलाल नागर का महत्वपूर्ण स्थान हैं । प्रेमचंद के समान नागर भी व्यक्ति और समाज को अन्योन्यातित मानते हैं । 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'बूँद और समुद्र', 'ये कोठेवालियाँ' तथा 'अमृत और विष' आदि इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं । भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने चालीस से अधिक उपन्यास लिखें । उनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'चलते चलते', 'टूटा टी सेट', 'विश्वास का बल', 'सूनी हार' । उदयशंकर भट्ट ने इस परंपरा को पर्याप्त समृद्ध किया है । उनके उपन्यास हैं – 'सागर', 'लहरे और मनुष्य', 'डॉ. शेफाली', 'शेष-अशेष' आदि ।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास :

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों मे जैनेंद्र कुमार का विशिष्ट स्थान है । उनके उपन्यास घटना प्रधान नहीं हैं । इनमें व्यक्ति के चरित्रों में निहित मनोवैज्ञानिकता पर अधिक बल दिया गया है । उन्होंने उपन्यासों का विषय भारत के गाँवों को नहीं नगरों को बनाया हैं । उनके व्यक्ति केंद्रित उपन्यासों पर आलोचकों ने फ्रायड का प्रभाव माना हैं । इनके 'परख', 'सुनिता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' उपन्यास में नारी-पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया गया है ।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में व्यक्ति के अंत:संघर्ष को स्थान दिया है । उपन्यासकार की अनुभूति व कल्पना के बल पर व्यक्ति मानस में होने वाले संघर्षों – उसके अवचेतन की परतें उखाड़कर चीर–फाड़ करने लगा है । इस दिशा में फ्रायड, युँग, एडलर के सिद्धांत तथा मान्यताए उनकी पथ–प्रदर्शक बनी । इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार हैं – जैनेंद्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, डॉ. देवराज आदि । इलाचंद जोशी के उपन्यासों पर फ्रायड के मनोविश्लेषण विज्ञान के सिद्धांत का प्रभाव हैं । उनके 'प्रेम और छाया', 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' आदि उपन्यासों में व्यक्ति की दमित वासना, कुण्ठाओं और अर्धचेतन की कथाए भरी पड़ी हैं । अज्ञेय भी फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं साथ ही उन पर टी.एस. इलियट और डी. एच. लारेंस का प्रभाव है । इनके 'शेखर : एक जीवनी' भाग एक और भाग दो, 'नदी के द्विप', 'अपने अपने अजनबी' उपन्यास हैं । भगवतीचरण वर्मा पर भी फ्रायड का अत्याधिक प्रभाव है । इनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'चित्रलेखा', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' आदि डॉ. देवराज की प्रमुख औपन्यासिक कृतियाँ हैं – 'पथ की खोज', 'बाहर–भीतर', 'रोड़े औरे पत्थर', 'अजय की डायरी' इनमें शिक्षित मध्यवर्ग के करुण यथार्थ का मनोवैज्ञानिक चित्रण है । इस धारा के विकास में डॉ. धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भारत भूषण अग्रवाल निर्मल वर्मा महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यासों के निर्माण में वृंदावनलाल वर्मा, निराला, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यापन, चतुरसेन शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

वृंदावनलाल वर्मा को हिंदी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाना चाहिए । उन्होंने इतिहास को व्यापक भावभूमि पर स्थापित करके रोचकता का अनूठा निर्वाह किया है । इनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'गढ़ – कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी' और 'मृगनयनी' आदि जिनमें बुंदेलखंड के ऐतिहासिक विस्मृत प्रसंगों का सजीव किया गया है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में इतिहास, कल्पना, धर्म, दर्शन, संस्कृति, मिथक, प्रतीक और बिंब का अनूभा सम्मिश्रण है । इन्होंने अपने उपन्यासो में भारत के पुरातन जीवन संदर्भों को वर्तमान जीवन संदर्भो के रूप में प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यास हैं । 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्र लेख,' 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' आदि । राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास हैं – 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' और 'विस्मृत यात्री' । यशपाल का 'अमिता' भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें अशोक की कलिंग विजय की ऐतिहासिक गाथा का निरुपण है । रांगेय राघव के 'मुर्दों का टीला', 'प्रतिदान', 'अंधेरे के जुगनू' 'राह न रुकी' प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

आंचलिक उपन्यास :

आंचलिक उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष की संस्कृति को उसके सजीव वातावरण में व्यापक रूप में प्रस्तुत किया जाता है । इस दिशा में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मेला आँचल', 'परती परिकथा' विशेष उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'रेणी' के उपन्यास प्रेमचंद के गाँवों पर लिखे उपन्यासों की गहराई को और आगे बढ़ाते हैं । इनमें बिहार प्रदेश की संस्कृति का सजीव चित्रण है । उदयशंकर भट्ट का 'लोक–परलोक', 'सागर और लहरें' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। नागार्जुन के 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे'; रांगेय राघव का 'कब तक पुकारुँ'; देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए'; रामदररा मिश्र का 'पानी के प्राचीर'; शैलेश मरियानी का 'होल्दार'; शिवप्रसाद का 'बहती गंगा' महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । आंचलिक उपन्यासों की परंपरा में राजेंद्र अवस्थी की तृषित, सूरज किरण की छाँह । रामदररश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' उपन्यास अलग ढंग का आंचलिक उपन्यास है । उसमें किसी व्यक्ति, जाति अथवा किसी गाँव या नगर की कथा न होकर स्वतंत्रता के पश्चात् पंद्रह वर्षों के दौरान पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों की आर्थिक दयनीयता तथा बदलते हुए जीवन का यथार्थ चित्रण किया है । आँचलिक उपन्यासों की एक कमजोरी उनकी स्थानीय बोली है । इसमें उनकी व्यापक संप्रेषणीयता को धक्का लगता है क्योकिं हर पाठक स्थानीय बोली को भली–भाँति नहीं समझ सकता ।

आँचलिक उपन्यासों की सफलता इसमें है कि वे यथार्थ की गहरी अभिव्यक्ति को आँचलिकता की सीमित परिधि से निकाल कर उसे सार्वभौम रूप प्रदान कर सकें ।

25.4 शब्दार्थ :

तिलस्मी - जादूगरी

ऐयारी - विलक्षण, अद्‌भुत

सार्वभौम - सारी भूमि संबंधी

25.5 सारांश :

हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' से लेकर आधुनिक युग तक हुआ है। हिंदी उपन्यास साहित्य को तीन युगों में विभाजित किया हैं (१) प्रेमचंदपूर्व युग (२) प्रेमचंद युग (३) प्रेमचंदोत्तर युग।

प्रारंभिक काल में अर्थात् प्रेमचंदपूर्व युग में मनोरंजन प्रधान उपन्यास लिखे गए । इस युग में लाला श्रीनिवासदास, देवकीनंदन खत्री तथा गोपालराम गहमरी के उपन्यास चर्चित रहे और पाठकों में उपन्यास के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा मिली । वस्तुत: प्रेमचंद हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यासकार तथा युग प्रवर्तक है । उन्हें उपन्यास सम्राट् के रूप में जाना जाता हैं । उन्होंने उपन्यास को एक गंभीर विधा तथा परिवर्तन के माध्यम के रूप में स्वीकार किया । उन्होंने पाठकों की रुचि बदली । समाज के शोषित, पीड़ित, श्रमिकों की पीड़ा यथार्थ रूप में प्रस्तुत की । उनके प्रारंभिक उपन्यास आदर्शवादी तथा बाद के उपन्यास यथार्थवादी हैं । 'गोदान' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । इस युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं शिवपूजन सहाय, विश्वंभरनाथ शर्मा, कौशिक, चतुरसेन शास्त्री और वृंदावलाल वर्मा ।

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास साहित्य में उनके परिवर्तन हुए । इस युग में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा आँचलिक उपन्यास लिखें गए । स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यास लेखन में गति आई । विविध विषयों का समावेश हुआ । मध्यवर्ग के साथ अंचल तथा ग्रामीण जीवन उपन्यास के केंद्र में आने लगे । व्यंगप्रधान उपन्यास भी लिखे जाने लगे । आज हिंदी साहित्य में उपन्यास एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है ।

25.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दिर्घोत्तर प्रश्न

- हिंदी उपन्यास विधा का विकासात्मक परिचय दीजिए ।
- हिंदी उपन्यास विधा के विकास में प्रेमचंद के महत्व को स्पष्ट कीजिए ।
- प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों का विकासात्मक परिचय दीजिए

ख) टिप्पणियाँ

- प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य ।
- प्रेमचंदपूर्व उपन्यास साहित्य ।
- मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास ।

ग) एक–दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- हिंदी का प्रथम उपन्यास किसे माना जाता है ।

* प्रेमचंद के उपन्यासों के नाम लिखिए ।
* सामाजिक उपन्यासकारों के नाम लिखिए ।
* मनोवैज्ञानिक दो उपन्यासकार एवं उनकी कृतियों के नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए

* देवकीनंदन खत्री किस कोटि के उपन्यासकार हैं ?

  (अ) सामाजिक (ब) व्यंगात्मक (क) पौराणिक (ड) ऐयारी-तिलस्मी
* 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' के लेखक कौन हैं ?

  (अ) वृंदावनलाल वर्मा (ब) इलाचंद्र जोशी (क) प्रेमचंद (ड) सुदर्शन

25.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

* ग्रामीण जीवन पर लिखे हिंदी के किसी एक उपन्यास को पढ़िए ।
* सामाजिक उपन्यासकारों की सूची बनाइए ।
* प्रेमचंद के किसी एक उपन्यास का मूल्यांकन कीजिए ।
* उपन्यास विधा की विविध धाराओं का चित्र प्रस्तुत करें ।

25.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

* हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
* हिंदी उपन्यास : विविध आयाम – डॉ. चंद्रभानु सोनवणे
* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❇❇❇

इकाई – 26 कहानी विधा का विकास

26.1 उद्देश्य

26.2 प्रस्तावना

26.3 विषय विवरण

26.3.1 स्वातंत्र्यपूर्व कहानी – साहित्य

26.3.2 स्वातंत्र्योत्तर कहानी – साहित्य

26.3.3 साठोत्तरी कहानी साहित्य

26.4 शब्दार्थ

26.5 सारांश

26.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

26.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

26.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

26.1 उद्देश्य

* हिंदी कहानी साहित्य का विकासात्मक परिचय प्राप्त करेंगे ।
* हिंदी कहानी विधा के विकास में प्रेमचंद और प्रसाद के योगदान को समझेंगे ।
* स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी के नए बदलाव से परिचित होंगे ।

26.2 प्रस्तावना :

कहानी वर्तमान युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है । कहानी कहने की परंपरा सृष्टि के आदि युग से चली आ रही है । मानव सभ्यता के विकास के साथ कहानी का भी विकास हुआ । हिंदी कहानी के उद्भव से पूर्व भारत में कहानी की सुदीर्घ परम्परा है । 'ऋग्वेद' संसार का सबसे पुराना ग्रंथ माना जाता है । इसमें अनेक आख्यान मिलते हैं। जो तत्कालीन युग की कहानी का स्वरूप प्रकट करते हैं । उसके बाद उपनिषदों में भी अनेक आख्यान और कथाएँ उपलब्ध हैं ।

भारतीय साहित्य में वेदों, उपनिषदों, संस्कृत और बौद्ध जातकों में अनेक कहानियाँ देखने को मिलती है । हिंदी के मध्य युग में भी कई कहानियाँ लिखी गई जिन पर फारसी के वासनात्मक प्रेम का मध्ययुग में भी कई कहानियाँ लिखी गई जिन पर फारसी के वासनात्मक प्रेम का प्रभाव स्पष्ट है । कुछ आलोचकों ने इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी की सर्वप्रथम कहानी माना है । इसमें मध्यकालीन किस्सागोई की स्पष्ट छाप और एक अजीब-सी सामाजिक तटस्थता है । इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की उपदेशात्मक कहानी 'राजा भोज का सपना' तथा भारतेंदु की हास्यरस प्रधान कहानी 'अद्भुत अपूर्व सपना' दृष्टिगोचर होती है । कहानी की विकास परंपरा में सन् १९०० में प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष स्थान है । इस पत्रिका से अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई - किशोरीलाल गोस्वामी की - 'इन्दुमती', भगवानदास की - 'प्लेग की चुडैल', रामचंद्र शुक्ल की - 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला की - 'दुलाईवाली', वृन्दावनलाल वर्मा की - 'राखी बंध भाई' आदि ।

हिंदी के कुछ विद्वानों ने किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' को हिंदी की सर्वप्रथम कहानी स्वीकार किया है, कुछ विद्वानों ने उक्त कहानी पर शेक्सपीयर के 'टैम्पैस्ट नाटक' का प्रभाव माना है । तथा बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी को हिंदी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी सिद्ध करने का प्रयास किया है । वस्तुत: आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश और विकास का इतिहास प्रसाद और प्रेमचंद के उदय से संबद्ध है ।

26.3 विषय विवरण :

हिंदी कहानी का इतिहास भारतेंदु युग से आरंभ होता है । भारतेंदु से पूर्व खड़ीबोली की जो कुछ पुस्तकें मिलती हैं, उनकें भी कथा-बीज हैं । लल्लूलाल का 'प्रेमसागर', सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' तथा इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' का खड़ीबोली के विकास में योगदान महत्वपूर्ण है । हिंदी कहानी उद्भव काल से आज तक विविध परिवर्तनों के दौर से गुजरती रही है । स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कहानियों को प्राय: प्रेमचंद को केंद्र में रखकर देखा जाता रहा है । इसलिए कहानी के विकास की दृष्टि से इस काल को प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युगीन और प्रेमचंदोत्तर नामों से संबोधित किया गया है । कहानी विकास परंपरा का विवेचन स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कहानी साहित्य, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी साहित्य, साठोत्तरी कहानी साहित्य और १९७५ के बाद का कहानी साहित्य इस प्रकार करेंगे ।

26.3.1 स्वतंत्रता पूर्व कहानी साहित्य :

स्वतंत्रता के पूर्व कहानी साहित्य का विकास भारतेंदू युग, द्विवेदी युग और विकास युग के रूप में किया जाता है ।

भारतेंदु युग :

हिंदी कथा साहित्य का वास्तविक आविर्भाव इसी युग में हुआ । सन् १९०० ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ । हिंदी कहानी के विकास की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है । हिंदी की आरंभिक अधिकांश कहानियों का प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ । किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी सरस्वती के प्रथम भाग में प्रकाशित हुई । कुछ विद्वान इसे हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी स्वीकार करते हैं । इस युग के प्रमुख कहानीकारों में भगवानदास कृत - 'प्लेग की चुड़ैल', गीरिजादल वाजपेयी कृत 'पति का प्रेम' और 'पंडित और पंडितानी', आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'; महावीर प्रसाद द्विवेदी - 'स्वर्ग की झलक'; बंग महिला की 'दुलाईवाली'; वृंदावनलाल वर्मा की 'राखीबंध भाई' जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम'; चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' और 'उसने कहा था' हिंदी की सर्वाधिक चर्चित कहानियाँ हैं । इस युग की अधिकांश कहानियों का संबंध जीवन से कम कल्पना-जगत् से अधिक रहा है । आगामी कहानीकारों के लिए मार्गदर्शक के रूप में इस कथा-साहित्य का महत्व निस्संदेह स्वीकार्य है ।

द्विवेदी युग :

द्विवेदी युग हिंदी कहानी का प्रयोग काल था । इस युग की कहानियों का प्रधान लक्ष्य मनोरंजन था, जिसके लिए अनेक प्रकार की कुतूहलवर्धक घटनाओं का गुंफन किया जाता था । इस युग की मौलिक कहानियाँ मुख्यत: पाँच प्रकार की हैं - प्रेम तथा मनोरंजन प्रधान, ऐतिहासिक एवं पौराणिक, जासूसी तथा साहस प्रधान, सामाजिक कहानियाँ और पद्य-बद्ध उपदेशात्मक कहानियाँ । 'सरस्वती' और 'इंदु' पत्रिकाओं का हिंदी कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं । गंगाप्रसाद श्रीवास्तव की पहली हास्य कहानी 'पिकनिक' इसी साल प्रकाशित हुई । राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानों में कंगना' और हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार प्रेमचंद तथा सुदर्शन ने भी इसी काल में लिखना प्रारंभ किया । प्रेमचंद की 'पंचपरमेश्वर' तथा सुदर्शन की 'कमल की बेटी' कहानी का प्रकाशन १९१६-१७ के आस-पास हुआ । इसके अलावा आचार्य चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', राधिकारमण प्रसाद सिंह, गोविंद वल्लभ पंत, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, गोपाल राय गहमरी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' रामकृष्ण दास, भगवती प्रसाद वाजपेयी का अभ्युदय इसी काल में हुआ । द्विवेदी युग के अंत तक आते-आते हिंदी कहानी का पर्याप्त विकास हो चुका था ।

विकास युग :

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद इस समय के दो प्रसिद्ध कहानीकार हैं । प्रेमचंद पहले नवाबराय नाम से उर्दू में लिखते थे । बाद में उन्होंने 'प्रेमचंद' नाम से हिंदी में लिखना प्रारंभ किया । उनके आगमन से हिंदी कहानी का वास्तविक उत्कर्ष आरंभ होता है । उनकी कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद दिखाई देता है । तो 'कफन' तक की कहानी यात्रा में सामाजिक यथार्थ तक आ जाते हैं । प्रेमचंद की कहानी कला में, विकास की दृष्टि से १९१६-२९ का काल विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की समस्याओं, मानवीय मूल्यों, धार्मिक पाखंडों और सामाजिक रूढ़ियों का वर्णन हुआ हैं । उन्होंने सांप्रदायिक भेदभाव, दलितों का शोषण तथा स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी अनेक कहानियाँ लिखी । प्रेमचंद की कहानियों में पहली बार भारतीय कृषक वर्ग का जीवन यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है । प्रेमचंद युग में वृंदावनलाल वर्मा, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन तथा ज्वालाप्रसाद शर्मा प्रेमचंदकालीन प्रमुख कहानीकार हैं । कौशिक ने अपनी कहानियों में बालविवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा जैसी पारिवारिक समस्याओं को चित्रित किया हैं । सुदर्शन ने भी अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन को चित्रित किया । 'हार की जीत', 'कवि की स्त्री' उनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं ।

जयशंकर प्रसाद हिंदी कहानी की भावमूलक परंपरा के प्रवर्तक और उन्नायक हैं । सन् १९११ में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई । प्रसाद मूलत: कवि है, इसलिए उनकी कहानियों पर उनका कवि मन हावी है । प्रेम उनकी

कहानियों का मुख्य विषय है । उनकी 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'इंद्रजाल', 'छाया', 'आँधी' आदि कहानियों में करुणा, भावुकता, त्याग तथा पात्रों के मानसिक द्वंद्व का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण हुआ हैं ।

प्रेमचंद के बाद के कथा साहित्य में मार्क्स, फ्रायड, कामु आदि की विचारधाराओं का गहरा प्रभाव दिखाई देता है । मनोविश्लेषणवादी परम्परा में मुख्यत: जैनेंद्रकुमार, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि की गणना की जाती हैं ।

26.3.2 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी :

स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी में बड़े परिवर्तन हुए । आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में हुआ । स्वतंत्रता के बाद विभाजन के कारण भारत खून से लथपथ हो गया । धीरे-धीरे माहौल बदलने लगा, देश में उद्योग-धंधों का विकास होने से रोजगार के नए-नए अवसर सामने आए । नौकरी की तलाश में लोग गाँव को छोड़कर शहर में आकर बसने लगे । वहाँ उन्होंने अकेलापन, अलगाव तथा संवेदनहीना को महसूस किया। स्त्रियाँ पढ़ लिखकर नौकरी करने लगी, अपने हक के लिए लड़ने लगी । स्वतंत्रतापूर्व भारतीयों ने जो सुहाने सपने देखे थे वे सारे चकनाचुर हो गए । मोहभंग स्वतंत्रता के बाद की सबसे प्रमुख विशेषत: कहीं जा सकती है । महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, संवेदनहीनता और तटस्थता को अनेक कहानिकारों ने चित्रित किया ।

नई कहानी :

सन् १९५० के बाद कहानी में अनेक स्तर पर परिवर्तन आए । सामाजिक परिवेश में रहते हुए व्यक्ति द्वारा अनुभूत या पहचाने गए जीवन सत्य की अभिव्यक्ति ही 'नई कहानी' है । नए भावबोध की कहानियाँ होने के कारण इन्हें 'नई कहानी' की संज्ञा दी गई । सन् १९५० के बाद परिवर्तित स्थिति और बदली हुई मानसिकता का चित्रण नई कहानी में दिखाई देता है । नई कहानी के कहानिकारों में मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, अमरकांत, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन तथा महिला कहानीकारो में मन्नु भंडारी, उषा प्रियंवदा, श्रीमती विजया चौहान, शिवानी और कृष्णा सोबती प्रसिद्ध हैं । इन सभी ने अलग अलग ढंग से आधुनिक जीवन के विभिन्न प्रश्नों को चित्रित किया । अनुभवों की विविधता ही नई कहानी की शक्ति है, इसके अंतर्गत स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण संवेदना के नए धरातल पर हुआ है । कथ्य के स्तर पर आने वाले बदलाव ने इसके शिल्प को भी बदल दिया है । मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव आदि कहानीकारों ने टूटते हुए परिवार, महानगरीय जीवन का अकेलापन, आधुनिक जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों को कहानी का विषय बनाया है । अमरकांत ने निम्न - मध्यवर्ग के जीवनानुभवों को अपनी कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त किया ।

26.3.3 साठोत्तरी कहानी साहित्य :

सन् १९६० के बाद अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी आदि अनेक आंदोलन चले । सन् १९६० के बाद लिखी गई कहानियों में अल्पाधिक उग्रता, निर्ममता और यथार्थ की क्रूरता की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । ये कहानियाँ प्राय: उन लेखको की हैं जो स्वाधीन भारत में जन्मे और बड़े हुए, जिन्हें देखने को मिला स्वतंत्र भारत का क्रूर यथार्थ, स्वार्थ परायण व्यवस्था, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, समाज की विषम भयावह विसंगतियाँ, बेकारी, अकेलापन तथा असुरसा । यथार्थ की नई पहचान देना इन कहानीकारों का नारा है, किंतु उग्र यथार्थ के नाम पर इन कहानीकारों ने कुछ ऐसी अत्याधुनिक और विद्रोहात्मक बातें अपनी कहानियों में अंकित की हैं जिनका अस्तित्व न उनके परिवेश में है और न उनके व्यक्तित्व में । आंदोलन से प्रेरित आधुनिक साठोत्तरी लेखन को कमलेश्वर ने 'ऐय्याश प्रेतों का विद्रोह कहा है ।''

आज का कहानीकार समकालीन यथार्थ को बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत करता है । उसकी कहानियों में काव्यात्मकता के स्थान पर वैचारिक गद्यात्मकता का प्राधान्य है । मंजुल भगत की 'सफेद कौआ' में एक सधा हुआ

प्रतीकात्मक व्यंग है । रमेश बतरा की 'थप्पड' में शिक्षित मध्य वर्ग की कायरता चित्रित है । मृदुला गर्ग की 'दुनिया का कायदा' में पैसों के सामने मानवीयता की हिमता दिखाई है । इस युग के अन्य कहानिकारों में मधुकर सिंह, धीरेन्द्र अस्थाना, कृष्णा अग्निहोत्री, सुधा अरोड़ा, मृणाल पांडेय, राजी सेठ, रविंद्र कालिया, ज्ञानरंजन आदि महत्वपूर्ण रचनाकार रहे हैं । साठोत्तरी कहानी रोमानी जीवन बोध से मुक्त हो रही है । इन कहानियों में तीव्र सामाजिक बोध है।

सन् १९८० के बाद हिंदी में दलित कहानियाँ लिखी जाने लगीं । वर्णव्यवस्था द्वारा नकारे गए इस वर्ग को जब शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होने लगी, तब यह वर्ग भी अपनी भयावह अनुभूति की अभिव्यक्ति करने लगा । दलित हिंदी कहानिकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशयाय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम के नाम विशेष महत्वपूर्ण है ।

26.4 शब्दार्थ :

कुतूहलवर्धक - उत्साहवर्धक

ऐयाश - विलासी, कामुक

26.5 सारांश :

हिंदी कहानी का इतिहास 'भारतेंदु युग' से आरंभ हो जाता है । भारतेन्दु युग हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के उदय और विकास का काल रहा है । इससे कहानी साहित्य के लिए आवश्यक जमीन तैयार हो गई । हिंदी कहानी का वास्तविक आरंभ 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से शुरू होता है । कुछ आलोचक किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (७००) की हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं । चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की अमर कहानी 'उसने कहा था' अत्यांधिक चर्चित रही । केवल कहानी के कारण हिंदी कहानी में अमरता प्राप्त करने वाले गुलेरी एकमात्र कहानीकार हैं । हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद का स्थान सर्वोच्च हैं । प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की । प्रेमचंद ने कथावस्तु की नई जमीन तैयार की जो कहानी कल्पना और मनोरंजन के दायरे में फँस गई थी, उसे यथार्थ दृष्टि देने का काम प्रेमचंद ने किया । जयशंकर प्रसाद इस युग के सशक्त कहानीकार है । इतिहास के आधार पर इन्होंने आदर्श की प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयत्न किया ।

प्रेमचंदोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी जाने लगी । फ्रायड, एडलर, युग के मनोविज्ञान के आधार पर जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी । तथा प्रगतिवादी विचारधारा को लेकर यशपाल, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क अमृतराव, भीष्म साहनी ने कहानियाँ लिखी । सन १९५० के बाद कहानी में अनेक मोड़ आए । नई कहानी, साठोत्तरी कहानी, अकहानी, आँचलिक कहानी, दलित कहानी आदि । इन कहानियों में यथार्थ के विविध रूप मिलते हैं । कहानी के विभिन्न आंदोलनों से कहानी अनुभूति, शिल्प और भाषा के स्तर पर अधिक संपन्न होती गई ।

26.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* हिंदी कहानी की विकास परंपरा पर प्रकाश डालिए ।
* हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद के योगदान को स्पष्ट कीजिए ।
* स्वतंत्रापूर्व हिंदी कहानी साहित्य का परिचय दीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

* भारतेंदु युगीन कहानीकार

* कहानीकार प्रसाद
* साठोत्तरी कहानीकार

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भारतेंदु युगीन प्रसिद्ध चार कहानियों के नाम लिखिए ।
* द्विवेदी युग के चार कहानीकारों के नाम लिखिए ।
* हिंदी के दोन मनोवैज्ञानिक कहानीकार एवं उनकी कहानियों के नाम लिखिए ।
* नई कहानी आंदोलन के चार कहानीकारों के नाम बताइए ।
* साठोत्तरी कहानीकारों को कमलेश्वर ने क्या कहा है ।

घ) सही पर्याय लिखिए

* किशोरीलाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी किस पत्रिका में छपी थी ?

  (अ) प्रतीक (ब) सरस्वती (क) हंस (ड) ब्राह्मण
* प्रेमचंद नबाबराय नाम से किस भाषा में लेखन कर रहे थे ?

  (अ) खड़ीबोली (ब) उर्दू (क) अवधी (ड) ब्रज

26.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* प्रेमचंद की कहानियों को पढ़कर आशय समझने का प्रयत्न कीजिए ।
* हिंदी कहानी विकास परंपरा पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।
* प्रसिद्ध कहानियाँ और उनके लेखकों के नाम की सूची तैयार कीजिए ।

26.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा
* हिंदी कहानी - परंपरा और प्रगति - डॉ. हरदयाल
* आधुनिक हिंदी का इतिहास - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❇❇❇

इकाई – 27 नाटक विधा का विकास

27.1 उद्देश्य

27.2 प्रस्तावना

27.3 विषय विवरण

- 27.3.1 भारतेंदु युगीन नाटक
- 27.3.2 प्रसाद युगीन नाटक
- 27.3.3 प्रसादोत्तर नाटक साहित्य

27.4 शब्दार्थ

27.5 सारांश

27.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

27.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

27.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

27.1 उद्देश्य

* हिंदी नाटक साहित्य का विकासात्मक परिचय प्राप्त करेंगे ।
* हिंदी नाटक विधा के विकास में भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद और प्रसादोत्तर नाटक साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे।
* हिंदी के नाटक साहित्य का कथ्यगत एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य समझ सकेंगे ।

27.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में नाटकों का वास्तविक आरंभ भारतेंदु काल से ही हुआ । यद्यपि यह परंपरा पद्यबद्ध नाटकों के रूप में हिंदी और मैथिली भाषा में पहले से चली आई थी । इन पद्यबद्ध नाटकों पर संस्कृत नाटकों की हासोन्मुखी परम्परा का स्पष्ट प्रभाव है । भारतेंदु काल से पूर्व राष्ट्रीय जीवन मे सांस्कृतिक चेतना का प्राय: लोप हो चुका था और रीतिकाल में चिन्तनहीनता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी ।

१७ वीं और १८ वीं शताब्दी में कुछ पद्यबद्ध नाटकों की रचना हुई । इन नाटकों मे रामायण, महाभारत, हनुमान्नाटक, प्रबोध चंद्रोदय, शकुंतला नाटक, सभासार नाटक आदि आते हैं । १९ वीं शती में भी इस परंपरा में नाटक लिखें गए – माधव विनोद नाटक, जानकी रामचरित नाटक, रामलीला नाटक, आनंद रघुनंदन आदि, जिनमें अभिनेयता का सर्वथा अभाव है । इन पर संस्कृत के नाटककार का प्रभाव हैं । अत: नाटक विधा का विस्तृत परिचय अत्यावश्यक है ।

27.3 विषय–विवरण :

हिंदी नाटक विधा का विकासात्मक परिचय निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है ।

27.3.1 भारतेंदु युगीन नाटक :

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी नाटक के जन्मदाता और उन्नायक हैं । भारतेंदु मंडल ने हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह नाटक साहित्य का सृजन और उन्नयन किया । भारतेंदु काल राष्ट्रीय जागरण तथा नव सांस्कृतिक चेतना का उन्मेष युग है । इसमें एक ओर जन–सामान्य में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ तो दूसरी ओर सामाजिक ओर धार्मिक जागरुकता आई । नव जागृति के संक्रमण काल में नाटकों का माध्यम अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ । भारतेंदु कृत नाटक हिंदी के सर्वप्रथम नाटक माने जा सकते हैं ।

भारतेंदु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने जीवन के विविध क्षेत्रों में कथावस्तु का चयन किया है । कहीं उसमें सामाजिक और धार्मिक समस्याएँ हैं तो कहीं सांस्कृतिक जागरण का दिव्य संदेश । भारतेंदु प्रतिभावान् व्यक्ति थे उन्होंने अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत के नाटकों का अध्ययन कर पहिली बार हिंदी गद्य में अनेक विषयों पर मौलिक नाटक लिखें । कई भाषाओं से नाटकों का सुंदर अनुवाद किया । पहिला बार हास्यव्यंग्य प्रधान प्रहसन लिखने की परंपरा का सूत्रपात किया । उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला के समन्वित तत्वों के आधार पर हिंदी की स्वतंत्र नाट्य कला की नींव डाली । भारतेंदु द्वारा लिखित सामाजिक नाटकों में – 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम जोगिनी', 'अंधेर नगरी' प्रमुख हैं । इन नाटकों में समाज में फैले पाखंड, अंधविश्वास और धर्म के नाम पर होने वाला अनाचार का यथार्थ रूप में उद्घाटन किया हैं ।

भारतेंदु द्वारा लिखित 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी' नाटक तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दुर्दशा तथा उसके कारणों को प्रस्तुत करते हैं । 'सत्य हरिश्चंद्र', 'श्री चंद्रावली', 'सती' 'प्रताप' नाटक पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । भारतेंदु की प्रमुख दृष्टि समाज सुधार, नैतिक आदर्श और देश प्रेम

की ओर रही हैं । उनकी प्रेरणा से नाटककारों का एक मंडल साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुआ । इस काल के अन्य नाटककारों में शालिग्राम का मोरध्वज, भोजदेव उपाध्याय का 'सुलोचना सती', राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप', श्रीनिवासदास का 'संयोगिता स्वयंवर' तथा प्रतापनारायण मिश्र का 'हठी हम्मीर' आदि ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटक इस सांस्कृतिक जागरण के फल स्वरूप लिखे गए ।

27.3.2 प्रसाद युगीन नाटक :

हिंदी नाटकों के विकास का आरंभ जो भारतेंदु युग में हुआ था वह प्रसाद युग में अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँचा। यहाँ पर द्विवेदी युगीन नाटकों तथा उसके बाद के नाट्य साहित्य के इतिहास को प्रस्तुत करना आवश्यक है ।

भारतेंदु ने हिंदी नाटक को जन्म दिया तो प्रसाद ने उसे नई दिशा दी, विषय और शैली की दृष्टि से उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया । प्रसाद के आगमन होने तक देश का राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ चुका था । प्रसाद ने पहिली बाद हिंदी नाटकों में इतिहास की गौरव गाथाओं के कल्पना के मिश्रण से आकर्षक और प्रभावशाली बनाया तथा उन्होंने भारतीयों के वैभव, वीरता और पराक्रम की भावना को जागृत करने का स्तुत्य प्रयास किया । प्रसाद ने महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की – 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजानशत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूँट', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि ।

प्रसाद के सभी नाटको में 'स्कन्ध गुप्त', 'चन्द गुप्त' और 'ध्रुव स्वामिनी' बड़ी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं । 'स्कंद गुप्त' नाटक में गुप्तवंश के साम्राज्य काल का इतिहास है । इसमें स्कंद गुप्तकालीन व्यापक राजनीतिक, धार्मिक हलचलें और पारिवारिक घटनाओं का उन पर प्रभाव चित्रित हैं । 'चंद्रगुप्त' नाटक प्रसाद की इतिहास अन्वेषण शक्ति, अध्ययनशीलता तथा काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रसाद का चंद्रगुप्त वीर, पराक्रमी तथा स्वावलंबी है, उसके जीवन और समय की घटनाएँ इसमें संचित हैं । 'ध्रुवस्वामिनी' का कथानक गुप्तकाल का है । स्त्री का पुनर्विववाह इस नाटक की मुख्य समस्या है । इस प्रकार प्रसाद नाटक में इतिहास की प्राचीनता में वर्तमान काल की समस्या प्रस्तुत करते हैं । प्रसाद के नाटकों की अपनी नवीन वस्तु योजना है । शैली, भाषा सौष्ठव, भावुकता, दार्शनिकता आदि के कारण हिंदी नाटक के उत्थान का स्वर्ण युग स्थापित हुआ । प्रसाद को आदर्श मानकर लिखने वालों की एक परंपरा इस युग में मिलती है । श्री सुदर्शन (महर्षि दयानंद), बलदेव प्रसाद मिश्र (मीराबाई), पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (महात्मा ईसा), उदय शंकर भट्ट (चंद्रगुप्त मौर्य), सेठ गोविंद दास (श्री हर्ष) आदि उल्लेखनीय हैं । गोविंद वल्लभ पंत प्रसाद युग के सफल नाटककार हैं । उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखें। 'राजमुकुट', 'अंत:पुर का छिद्र' उनके ऐतिहासिक नाटक है तो 'वरमाला', 'ययाती', पौराणिक नाटक हैं, 'अंगूर की बेटी' और 'सिंदूर बिंदी' सामाजिक जीवन से संबद्ध नाटक हैं ।

27.3.3 प्रसादोत्तर नाटक साहित्य :

प्रसादोत्तर युग रोमांटिक वृत्तियों के ऱ्हास का युग है । इ.स. १९३३ के बाद ही काव्य क्षेत्र में रोमांटिक प्रवृत्ति का विरोध होने लगा और इ.स. १९३६ में वहाँ 'प्रगतिवादी काव्यधारा' की शुरुआत हो गई थी । गद्य के क्षेत्र में प्रेमचंद प्रारंभ से ही प्रगतिशीलता का आग्रह कर रहे थे । पश्चिम में भी शेक्सपीयर के नाटकों का विरोध करते हुए यथार्थवादी नाटकों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । इब्सन और बर्नाड शॉ यथार्थ और समस्या प्रधान नाटक लिख रहे थे । पश्चिम में इन नाटकों की धूम मची थी । इन दोनों नाटककारों ने नाटकों में विहित भावुकता और रोमांटिकता का विरोध करके बौद्धिकता की स्थापना की थी । इन नाटकों का प्रभाव भारतीय साहित्य पर धीरे-धीरे बढ़ने लगा । लक्ष्मीनारायण मिश्र शॉ से प्रभावित होकर नाट्य क्षेत्र में आये । अपने नाटकों की भूमिकाओं से उन्होंने प्रसाद की नाट्य दृष्टि का विरोध करते हुए ''गड़े मुर्दे उखाड़ने के उनके इस कार्य की निंदा की ।'' तथा नाटकों को जीवन की समस्याओं के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया ।

प्रसादोत्तर हिंदी नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास आदि नाटककार विशेष उल्लेखनीय हैं । लक्ष्मीनाराण मिश्र हिंदी नाट्य साहित्य में सर्वथा मौलिक एवं युग प्रवर्तक नाटककार के रूप में माने जाते हैं । समाज के यथार्थ जीवन की ज्वलंत समस्याओं को बौद्धिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का श्रेय मिश्र को दिया जाता हैं । 'संन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'आधीरात', 'सिंदूर की होली' उनके समस्यामूलक नाटक है । 'अशोक', 'विस्तता की लहरें', 'गरुडध्वज', 'दशाश्वमेध', 'वत्सराज' उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटक हैं । हिंदी नाटक की प्रगति कीं दृष्टि से उनके समस्या नाटक ही उनके मूल्यांकन का आधार हैं । इन्हीं नाटकों में मिश्र की नाट्यकला पूरे विकास पर है । इन्हीं से हिंदी नाटक की प्रचलित धारा में एक नया मोड़ उपस्थित होता है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' प्रसादोत्तर युगीन विशिष्ट रचनाकार हैं । प्रमुख रूप से वे ऐतिहासिक नाटककार हैं । इस दृष्टि से प्रसाद की परंपरा में होते हुए भी वे भिन्न हैं । भारत के इतिहास की छिपी और उपेक्षित घटनाओं को नाट्य रचना के माध्यम से जनसमूह तक पहुँचाने का श्रेय उन्हें हैं । इतिहास के पुराने कथानक लेते हुए भी सामयिक समस्याओं का चित्रण और अपने युग जीवन के आदर्श की प्रतिष्ठा 'प्रेमी' ने की हैं । उनके प्रसिद्ध नाटक हैं – 'रक्षाबंधन', 'आहुति', 'शिवसाधना', 'स्वप्नभंग', 'प्रतिशोध', 'बंधन', 'छाया', 'विषपान', 'उद्धार', 'शपथ', 'ममता' आदि ।

सेठ गोविंददास इस काल के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं । संख्या की दृष्टि से उन्होंने सर्वाधिक नाटक लिखे हैं । सौ से करीब नाटक लिखने वाले शायद वे एक मात्र भारतीय नाटककार हैं । किंतु रंगमंच की दृष्टि से इन नाटकों का महत्व बहुत कम है । ये नाटक पुस्तकालयों तक सीमित हैं । उनके नाटकों में विषयों की विविधता हैं – पौराणिक नाटक ('कर्तव्य', 'कर्ण', 'स्नेह या स्वर्ग', आदि) ऐतिहासिक नाटक ('हर्ष', 'कुलीनता', 'शशिगुप्त', 'शेरशाह', 'अशोक', 'विश्वासघात' आदि) समस्यामूलक ('सेवापथ', 'दुःख क्यों', 'महत्व किसे', 'प्रेम या पाप' आदि) इन विभिन्न नाटकों में कलात्मकता का अभाव दिखाई देता हैं ।

सन् १९३५ के बाद हिंदी नाट्य साहित्य को एक नई दिशा प्राप्त हो गयी । यह दिशा रंगमंच की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । पृथ्वी थिएटर और जननाट्य की स्थापना सन १९३५ के बाद की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं । इ.स. १९४३ में 'इंडियन पीपुल्स थिएटर' की स्थापना हुई और पृथ्वी थिएटर के अनेक नाटक प्रदर्शित होने लगे । इन नाटकों के कारण नाटक के प्रति जनसामान्य की रुचि बढ़ने लगी । सन् १९३५ के बाद हिंदी नाट्य साहित्य के विकासमें अनेक रचनाकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । जिनमें उपेन्द्रनाथ अश्क नई चेतना को लेकर हिंदी में आए । उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर नाटक लिखें । उनके नाटकों में जीवन यथार्थ के वास्तविक चित्र मिलते हैं । उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं – 'जय-पराजय', 'स्वर्ग की झलक', 'कैद', 'उड़ान' आदि । जगदीशचंद्र माथुर ने अश्क के इस कार्य को विकसित किया । इ.स. १९४५ में माथुर का 'कोणार्क' नाटक प्रकाशित हुआ । ऐतिहासिक नाटकों में यह सबसे प्रौढ़ और सफल कृति है । उड़ीसा के कोणार्क मंदिर के निर्माणकर्ता कलाकारों के जीवन पर यह नाटक आधारित है । डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, डॉ. शंकर शेष, सुरेंद वर्मा, स्वदेश दीपक, भीष्म साहनी, मणि मधुकर, हमीदुल्ला, नरेंद्र मोहन आदि नाटककारों ने हिंदी नाटक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

27.4 शब्दार्थ :

स्तुत्य – अभिनंदनीय

अन्वेषण – खोज

मौलिक – मूलगत, मुख्य

27.5 सारांश :

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी नाटक के जन्मदाता माने जाते हैं । उनकी प्रेरणा से ही हिंदी नाटक एवं रंगमंच को नया रूप मिला । मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों का सृजन भारतेंदु एवं उनके समकालीन नाटककारों द्वारा हुआ है।

जयशंकर प्रसाद से हिंदी नाटकों का स्वर्ण युग आरंभ होता है । प्रसाद ने अपने नाटकों में पाश्चात्य तथा भारतीय नाट्य कला का सुंदर सामंजस्य किया और भारतीय इतिहास की विच्छिन्न कड़ियों को जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया हैं । गोविंदवल्लभ पंत, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक, प्रतीकात्मक आदि अनेक प्रकार के नाटक लिखें ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिंदी नाटकों को रंगमंच पर लाने का अधिकाधिक प्रयास हुआ । आज दिल्ली, कोलकत्ता और मुंबई महानगरों के अतिरिक्त अनेक छोटे नगरों में हिंदी नाटकों के प्रभावशाली प्रदर्शन हो रहे हैं । हिंदी नाटकों की अपनी परिसीमाओं के होते हुए भी हिंदी नाटक के विकास की काफी संभावनाएँ हैं ।

27.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* हिंदी नाटक विधा के विकास परंपरा का परिचय दीजिए ।
* हिंदी युगीन नाटक साहित्य पर प्रकाश डालिए ।
* हिंदी नाटक परम्परा में भारतेंदु हरिश्चंद्र के योगदान का समझाइए ।
* प्रसादोत्तर नाटक साहित्य पर प्रकाश डालिए ।

ख) टिप्पणियाँ

* भारतेंदु के नाटक
* प्रसाद के नाटक
* प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भारतेंदु के चार नाटकों के नाम लिखिए ।
* प्रसाद के नाटकों की क्या विशेषता है ?
* प्रसाद के चार नाटकों के नाम लिखिए ।
* प्रसादोत्तर दो नाटककार और उनके नाटकों के नाम लिखिए ।
* सेठ गोविंददास ने किस प्रकार के नाटक लिखें हैं ।

घ) सही पर्याय लिखिए

* ‘रक्षाबंधन’, ‘शपथ’, ‘स्वप्नभंग’ नाटक के नाटककार कौन हैं ?

  अ) भारतेंदु   ब) हरिकृष्ण प्रेमी   क) सेठ गोविंददास   ड) प्रसाद
* सामाजिक समस्यामूलक नाटककार कौन है ?

27.7 स्वाध्यय - क्षेत्रीय कार्य :

* हिंदी ऐतिहासिक नाट्य लेखकों का परिचय प्राप्त कीजिए ।
* जयशंकर प्रसाद के किसी एक नाटक को पढ़कर अपना मत लिखिए ।
* पौराणिक नाटकों की सूची तैयार कीजिए ।
* आपके शहर के किसी नाट्य - अभिनेता का साक्षात्कार लीजिए ।

27.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
* हिंदी नाटक सिद्धांत और परिचय – डॉ. रस्तोगी गिरीश
* हिंदी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन – खन्ना वेदपाल 'विमल'

इकाई – 28 एकांकी विधा का विकास

28.1 उद्देश्य

24.2 प्रस्तावना

24.3 विषय विवरण

28.3.1 भारतेंदुकालीन एकांकी साहित्य

28.3.2 द्विवेदी कालीन एकांकी साहित्य

28.3.3 आधुनिक काल का एकांकी साहित्य

28.4 शब्दार्थ

28.5 सारांश

28.6 स्वयं अध्यपन के लिए प्रश्न

28.7 स्वाध्याय-क्षेत्रीय कार्य

28.8 संदर्भ- अतिरिक्त अध्यपन के लिए पुस्तकें

28.1 उद्देश्य

* हिंदी एकांकी की विकास यात्रा का परिचय प्राप्त करेंगे ।
* शिल्प एवं विषय की दृष्टि से हिंदी एकांकी से परिचित होंगे ।

28.2 प्रस्तावना :

आधुनिक युग की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण एकांकी का उद्‌भव हुआ है । आधुनिक जीवन की व्यस्तता; मनोरंजन के लिए आज लोग अधिक समय बर्बाद करना नहीं चाहते । कम से कम समय में वे मनोरंजन चाहते हैं । इसी कारण एकांकी का जन्म हुआ । १९ वीं शती में पेरिस, बर्लिन, लंदन, शिकागो आदि स्थानों पर लघु मंचीय आंदोलन शुरू हुए, इसी कारण एकांकी का विकास हुआ । १९ वीं शती के अंत में तथा २० वीं शती के आरम्भ में विश्व भर में स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बढ़ने लगी । इन स्थानों पर विद्यार्थियों को विविध अवसरों पर जो नाट्य प्रयोग करने पड़ते थे; वे आकार में छोटे ही चाहिए थे । इस कारण एकांकियों का जन्म हुआ । हिंदी का आज का एकांकी साहित्य पाश्चात्य नाटकों से बहुत प्रभावित रहा है । हिंदी के विशेष उल्लेखनीय एकांकीकार हैं रामकुमार वर्मा, अश्क, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीशचंद्र माथुर तथा विष्णु प्रभाकर आदि ।

28.3 विषय विवरण :

हिंदी में एकांकी विधा का जन्म भी आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही हुआ । अनेक नए लेखक इस क्षेत्र में आए जिन्होंने अभिनेयता को ध्यान में रखकर एकांकी नाटकों की रचना की । आधुनिक हिंदी एकांकी को सुगठित एवं कलात्मक रूप देने, उसके शिल्प को विकसित करने एवं साहित्य में उसे प्रतिष्ठित कराने का श्रेय इन्हीं लेखकों को जाता है ।

28.3.1 भारतेंदु कालीन एकांकी साहित्य :

भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक युग के प्रवर्तक हैं । 'भारत-जननी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' भारतेंदु के इन लघु नाटकों को आरम्भिक एकांकियों के रूप में स्वीकार किया जाता है। किंतु आधुनिक एकांकी, स्वरूप की दृष्टि से संस्कृत से अधिक प्रभावित है । कलात्मक दृष्टि का इनमें अभाव है । भारतेंदु ने स्वयं एकांकी रचना के साथ साथ अपनी मित्र मंडली को भी इस क्षेत्र में प्रोत्साहित किया । राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास तथा अंबिकादत्त व्यास आदि इनमें प्रमुख है ।

'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' भारतेंदु का प्रथम मौलिक प्रहसन है । धर्म शास्त्रों का प्रमाण दे देकर कुकर्म करने वालों पर इसमें कड़ा व्यंग्य है । मांस-भक्षण, व्यभिचार और मद्यपान जैसी कुप्रथाओं पर आघात किया है । राजा, विदूषक, वेदांती, शैव, शाक्त, गंडकीदास, यमराज आदि पात्रों द्वारा कहानी को सजीव बनाया गया है । 'भारत दुर्दशा' एकांकी में छ अंक हैं, वे वास्तव में छ दृश्य हैं । इसमें भारत की हीन-दीन दशा का वर्णन है । शैव-शाक्त और वैष्णवों के मत-भेद, बहु-विवाह, बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं पर गंभीर प्रकाश डाला गया है । 'नील देवी' भारतेंदु का सुंदर एकांकी है । इसमें रानी नील देवी द्वारा आक्रमणकारी का बदला लिए जाने का सजीव वर्णन है । भारतेन्दु सोदेश्य रचना करते थे । शिल्प की अपेक्षा कथा का सटीक और सजीव प्रतिपादन उनका लक्ष्य था । इस युग के अन्य एकांकीकारों में बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनंदन खत्री, अंबिकादत्त व्यास तथा अन्य अज्ञात रचनाकारों ने एकांकी विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

28.3.2 द्विवेदी कालीन एकांकी साहित्य :

बीसवीं सदी के आरंभ के साथ द्विवेदी युग प्रारंभ होता है । इस काल में भारतेंदु युगीन सभी गद्य विधाओं का विकास हुआ । द्विवेदी युग वस्तुतः अनुवाद का युग है । क्योंकि इस काल में बंगला और अंग्रेजी के दर्जनों

एकांकियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे किंतु भौतिक एकांकियों का इस युग में अभाव-सा है । इस युग के सफल एकांकीकार के रूप में बद्रीनाथ भट्ट का नाम लिया जा सकता हैं - 'पुराने हकीम का नया नौकर', 'ठाकुर दान सिंह', 'हिंदी की खींचातानी', 'घोंघा बरंत, 'विद्यार्थी' आदि इनकी प्रसिद्ध एकांकियाँ हैं । समाज की दुर्बलताओं का चित्रण इनकी एकांकियों में हुआ हैं । इस युग के अन्य एकांकीकार हैं- राधेश्याम कथावाचक (परिवर्तन, कृष्ण सुदामा), जी. पी. श्रीवास्तव (गड़बड़-झाला, टुमदार आदमी) तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (चार बिचारे) आदि उल्लेखनीय है ।

प्रसाद ने महाभारत के एक प्रसंग पर सम्राट चंद्रगुप्त का सेक्युलस की पुत्री कार्नेलिया के विवाह के चित्रण पर 'कल्याणी परिणय' एकांकी प्रस्तुत किए । प्रसाद ने प्रारंभ में तीन अंकों के नाटक लिखें । इ.स. १९२९ में उन्होंने नए ढंग से एकांकी लिखने का प्रयत्न किया और इसी वर्ष 'एक घूंट' एकांकी लिखा जो हिंदी का मधम सफल एकांकी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. विश्वनाथ मिश्र तथा अन्य आलोचकों ने इसे हिंदी के सर्वप्रथम एकांकी के रूप में स्वीकार करते हैं । 'स्त्री-पुरुष की प्रेम समस्या को 'एक घूंट' में आधार बनाया गया है ।

28.3.3 आधुनिक काल का एकांकी साहित्य :

आधुनिक हिंदी एकांकी को सुगठित एवं कलात्मक रूप देने में डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, विनोद रस्तोगी का स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं ।

डॉ. रामकुमार वर्मा :

आधुनिक हिंदी एकांकीकारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । वास्तव में 'हिंदी एकांकी' को कथा, शिल्प, अभिनय, रंगमंच आदि सभी दृष्टियों से संपन्न करने का ऐतिहासिक कार्य वर्मा ने किया हैं । पाश्चात्य तंत्र को हिंदी एकांकी के क्षेत्र में लाने का श्रेय डॉ. रामकुमार वर्मा को ही दिया जाता हैं । इन्होंने एकांकी के सैद्धांतिक विवेचन एवं व्यावहारिक सृजन द्वारा हिंदी एकांकी के शिल्पगत विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया हैं । इनका पहला एकांकी इ.स. १९३० में 'बादल की मृत्यु' नाम से प्रकाशित हुआ । यह एक प्रतीकात्मक एकांकी है। इसमें तीन पात्र हैं । संध्या, बादल और मृत्यु । इसमें संध्या के समय रंग-बिरंगे बादलों के मिटने की कथा संवादों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है । कथानक और नाटकीयता दोनों का ही अभाव है । डॉ. वर्मा ने पाश्चात्य टेकनीक को अपनाया, पचाया और भारतीय समस्याओं को नए ढंग से नए शिल्प में प्रस्तुत करने में उन्हें अत्याधिक सफलता मिली। इसी कारण उन्हें आधुनिक एकांकी का पथ प्रदर्शक माना जाता हैं । उनके समग्र एकांकी साहित्य को निम्नलिखित विजयों के अनुरूप विभाजित किया जा सकता हैं । सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी- '१९ जुलाई की शाम', 'आशीर्वाद', 'इलेक्सन', 'उत्सर्ग', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'कलाकार का सत्य', 'कहां से कहां', 'दस मिनट', 'रजनी की रात', 'रेशमी राई' आदि ऐतिहासिक आदर्शवादी एकांकी - वर्मा को अधिक सफलता इसी प्रकार के एकांकी में मिली । 'शिवाजी', 'औरंगजेब की आखरी रात', 'प्रतिशोध', 'समुद्र गुप्त', 'कौमुदी महोत्सव', 'चारुमित्रा', 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि इनके चर्चित एकांकी हैं ।

भावात्मक-आदर्शवादी एकांकी - वर्मा छायावादी कवि हैं । इसी कारण भावात्मक-आदर्शवावदी एकांकियों में उनका मन अधिक रमता हैं-'बादल की मृत्यु', 'स्वागत है ऋतु-राज', 'वर्षानृत्य', 'उत्सर्ग', 'अंधकार' इनके उत्कृष्ट भावात्मक एकांकी है । डॉ. वर्मा ने हिंदी एकांकी को पूर्णत: प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

भुवनेश्वर प्रसाद :

१९ वीं शती में भावनावादी नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप 'समस्या नाटकों की सृष्टि यूरोप में हो गई । प्रखर यथार्थवादी दृष्टि को लेकर नाटक लिखें जाने लगे । पश्चिम की इस प्रखर यथार्थवादी और समस्यामूलक दृष्टि को लेकर भुवनेश्वर हिंदी में आए, । इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं - 'कारवाँ', 'श्यामा: एक वैवाहिक विडंबना', 'प्रतिभा का

विवाह', 'शैतान', 'लाटरी' आदि । इनके करीब करीब सभी एकांकियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित हैं । भुवनेश्वर के कुछ ऐतिहासिक एकांकी भी प्रकाशित हुए हैं - 'आजादी की नींव' 'सिकंदर' आदि । इन सबमें राष्ट्रीय भावना प्रकट हुई हैं ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' :

इनके एकांकियों में मुख्य रूप से नैतिक आदर्शवाद और राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । इनके प्रत्येक एकांकी में किसी उच्च आदर्श भावना किसी महान नैतिक सिद्धांत की प्रतिष्ठापना की गई है । इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं - 'सेवा मंदिर', 'मातृ-मंदिर', 'राष्ट्र मंदिर', 'मान-मंदिर', 'न्याय-मंदिर', 'वाणी-मंदिर', 'गृह-मंदिर', 'बादलों के पार', 'यह भी एक खेल हैं', 'घर या होटल', 'प्रेम अंधा है', 'मातृभूमि का मान', 'निष्ठुर न्याय', 'पश्चाताप' आदि।

हरिकृष्ण प्रेमी के एकांकी में कथानक के रूप में सरल गतिवाली कहानियाँ हैं । उनमें नाटकीय स्थितियाँ नहीं हैं । संघर्ष अथवा द्वंद्व भी नहीं हैं किंतु प्रत्येक एकांकी एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर रहता है । इनके एकांकियों में विषय और समस्या को अधिक महत्व दिया गया है ।

जगदीशचंद्र माथुर :

हिंदी नाटकों के क्षेत्र में जगदीशचंद्र माथुर का नाम जितना प्रसिद्ध है उतना ही हिंदी एकांकी के क्षेत्र में भी हैं। आधुनिक ढंग के एकांकी लेखन का कार्य सन १९३६ से उन्होंने आरंभ किया । इनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं - 'मेरी बांसुरी', 'भोर का तारा' मे पांच एकांकी है- 'खंडहर' । बाद में लिखें पाँच एकांकी 'ओ मेरे सपने' में संकलित हैं- 'घोंसले', 'खिडकी की राह', 'कबूतरखाना', 'भाषण' और 'ओ मेरे सपने' ।

माथुर के अधिकांश एकांकी आज की सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । इनमें सामाजिक विकृतियों पर आघात करने के लिए लेखक ने व्यंग्य का सहारा लिया है । स्त्रियों की सामाजिक स्थिति एवं विवशताओं का चित्रण भी उन्होंने किया है । नाट्य शिल्प की दृष्टि से जगदीशचंद्र माथुर ने विशेष कौशल का परिचय दिया है । एकांकी का प्रारंभ नाटकीय घटनाओं के विकास और उनकी चरम परिणति तथा अंत का निर्माण सजीवता तथा कलात्मकता से किया गया है । वातावरण निर्माण के लिए संगीत, प्रकाश आदि का कुशलता से उपयोग किया गया है । पात्रों का चरित्रांकन भी माथुर ने विशेष कलायुक्त रीति से किया है । उनके सभी एकांकी रंगमंच के लिए लिखें गए हैं और सफलतापूर्वक अभिनीत भी हुए हैं ।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' :

पाश्चात्य नाट्य साहित्य के अध्ययन से प्रभावित और प्रेरित होकर जिन लेखकों ने हिंदी एकांकी के क्षेत्र में सफल प्रयोग किए हैं उनमें उपेंद्रनाथ अश्क का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । इनके एकांकी संग्रह हैं- 'देवताओं की छाया में' 'चारवाहे', 'पक्का गाना', 'पर्दा-उठाओ-पर्दा गिराओ', 'अंधी गली', 'साहब को जुकाम है' इनके एकांकी मुख्यत: सामाजिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखें गए हैं । उनके एकांकियों में हमारे वर्तमान समाज की जो रूढ़ियाँ हैं, विकृतियाँ है, दुर्बलताएँ हैं' उन्हें व्यंग्यात्मकता से प्रभावशाली रूप में अंकित किया गया हैं । अश्क अपने सामाजिक जीवन के प्रति प्रारम्भ से ही जागरूक रहे हैं । उनकी एकांकियों में हास्य और व्यंग्य में जो तीव्रता है वह अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है । वे अपनी एकांकियों में समाज की आलोचना करते हैं तथा मानव की अंतर्वृत्तियों और कमजोरियों का पर्दाफाश करते हैं । पुरानी जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं का शिकार मध्यवर्गीय समाज उनके तीव्र व्यंग्य का लक्ष्य बना हैं । 'अश्क' के एकांकी अभिनेय हैं एवं सुपाठ्य भी हैं । प्राय: सभी एकांकियों में रंगमंच- निर्देश बहुत विस्तारपूर्वक दिए हैं । और रंगमंच निर्देश के अनुसार ही उनका गठन किया गया है । उनकी एकांकियों के पात्र जाने पहचाने लगते हैं, उन्हें स्वाभाविक रूप में चित्रित भी किया गया हैं । इसमें संदेह नहीं कि हिंदी एकांकी के विकास में 'अश्क' ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

लक्ष्मीनारायण लाल :

सफल नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने एकांकी के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं । इन्होंने ऐतिहासिक एकांकियाँ लिखीं परंतु इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली । बाद में सामाजिक समस्याओं और मानव चरित्र की दुर्बलताओं को लेकर लेखन किया । डॉ. लाल की एकांकियों में वर्तमान जीवन की कटु वास्तविकताओं, विषम परिस्थितियों एवं मानव चरित्र की दुर्बलताओं का चित्रण अधिक हुआ हैं । रंगमंच की दृष्टि से इनके एकांकियों की उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है । इनके तीन एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं । जिनमें संकलित हैं- 'पर्वत के पीछे', 'सुबह होगी', 'नई इमारते', 'मडवे का भोर', 'घुएँ के नीचे', 'कैद से पहले', 'उर्वशी', 'महाकाल का मंदिर', 'ताजमहल के आँसू', 'जहाँआरा का स्वप्न', 'नूरजहाँ की एक रात', 'सीमांत का सूरज' 'जादू बंगला' आदि ।

लाल के सामाजिक एकांकी में मध्यम वर्ग की समस्याएँ, आसपास के वातावरण तथा परिवार की जानी पहचानी घटनाएँ, पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक धरातल पर हुआ है । अत: लाल को आधुनिक एकांकीकारों में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है ।

धर्मवीर भारती :

प्रसिद्ध कवि धर्मवीर भारती ने कुछ एकांकी भी लिखे हैं जो रेडियो से प्रसारित हुए हैं । इनके एकांकी नाटक हैं- 'नदी प्यासी थी', 'नीली झील', 'आवाज का नीलाम' और 'संगमरमर पर एक रात' ।

'नदी प्यासी थी' डॉ. धर्मवीर भारती का सबसे सफल एकांकी है । इसका विषय प्रेम है । कथानक बड़ा संश्लिष्ट है और सभी स्थितियाँ नाटकीय हैं । एकांकी में आकर्षण अंत तक बना रहता है । पृष्ठभूमि के गीत ने एकांकी को विशेष प्रभावशाली बनाया हैं । पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक संवाद बहुत सशक्त हैं और उनमें गतिशीलता बनी रहती हैं । 'नीली झील' एकांकी में अतिकल्पना है । इसके माध्यम से लेखक ने आज के भौतिकवादी मनुष्य की आत्महीनता का बड़ा कलात्मक चित्रण किया है । यह एक प्रतीकात्मक एकांकी नाटक है । 'आवाज का नीलाम' भी एक सफल एकांकी है। 'आवाज एक पात्र है, जो अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का प्रतीक है । 'संगमरमर पर एक रात' उनका ऐतिहासिक एकांकी है । डॉ. धर्मवीर भारती ने कम एकांकियों की रचना की हैं, इनके सभी एकांकी सफल बन पड़े हैं ।

विनोद रस्तोगी :

इनकी एकांकियों के पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक तीन प्रकार प्राप्त हैं । उनके एकांकी हैं- 'पुरुष का पाप', 'पत्नी परित्याग', 'दो चाँद', 'प्यार और त्याग', 'आकाश पाताल', 'सौंदर्य का प्रायश्चित', 'आज मेरा विवाह है', 'पाप का पुण्य', 'प्यार और पैसा', 'कसम कुरान की', 'सोना और मिट्टी, 'काला दाग', 'रथ के पहिए', 'मानव और मशीन' तथा 'रत्ना की आग' ।

रस्तोगी का 'पत्नी परित्याग' सीता बनवास के प्रसंग पर आधारित एकांकी है । 'पुरुष का पाप' एक पौराणिक प्रसंग पर आधारित एकांकी है और इसमें लेखक नें यह संकेत करने का प्रयत्न किया है कि पुरुष के पाप के लिए समाज नारी को दंडित करता है । 'दो चाँद' 'आज मेरा विवाह है' ऐतिहासिक नाटक हैं । सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखें नाटकों में 'सोना और मिट्टी' में आज के उन धनी लोगों पर व्यंग्य किया है जो गरीबों को चोर और बेईमान समझते हैं । इनकी एकांकियों के कथानक में नाटकीय स्थितियों का, संकलन त्रय का निर्वाह कुशलता से किया गया है । पात्रों का चरित्र चित्रण स्वाभाविक रूप में हुआ है । संवाद संक्षिप्त तथा गतिशील हैं । भाषा शैली सरल और सामान्य बोलचाल की है ।

28.4 शब्दार्थ :

अल्पकाल – कम समय

सुगठित – कसा हुआ ।

निखार – निर्मलता

28.5 सारांश :

नाटकों के समान ही हिंदी एकांकी के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र माने जाते हैं । सन् १९३० से आधुनिक हिंदी एकांकी की रचना नियमित रूप से होने लगी । आधुनिक हिंदी एकांकी की प्रतिष्ठा करने वाले अग्रणी लेखकों में डॉ. रामकुमार वर्मा का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं । अनेक नए लेखक इस क्षेत्र में आए और उनकी कृतियाँ विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होने लगी । ऐसे लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क आदि । डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क आदि । डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस विधा के स्वरूप को सर्वप्रथम निखारा और इसके शिल्पगत विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया।

हिंदी के आधुनिक एकांकी ने पाश्चात्य एकांकी के स्वरूप से ही प्रेरणा ग्रहण कर अपना विकास किया है। अधिकांश एकांकीकारों के एकांकी रंगमंच के साथ–साथ रेडियो पर भी सफल रहे हैं । इस तरह आधुनिक हिंदी एकांकी अपने सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसर है ।

28.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* हिंदी एकांकी विधा के विकास का क्रम का विवेचन कीजिए ।
* हिंदी एकांकी की विकास यात्रा में रामकुमार वर्मा का स्थान स्पष्ट कीजिए ।
* आधुनिक युग के प्रमुख एकांकीकारों का परिचय दीजिए ।

(ख) टिप्पणियाँ

* भारतेंदुकालीन एकांकी साहित्य
* जगदीशचंद्र माथुर का एकांकी साहित्य
* एकांकीकार भुवनेश्वर

(ग) एक–दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भारतेंदु युगीन चार एकांकीकारों के नाम लिखिए ।
* द्विवेदी कालीन चार एकांकिओं के नाम लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा के एकांकियों के नाम लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा के एकांकियों की दो विशेषताएँ बताइए ।
* धर्मवीर भारती के एकांकी नाटकों की क्या विशेषता हैं ?

(घ) सही पर्याय लिखिए

* बादल की मृत्यु किसका एकांकी नाटक हैं ?

  अ) भुवनेश्वर   ब) धर्मवीर भारती   क) रामकुमार वर्मा   ड) अश्क

* सामाजिक समस्यामूलक एकांकी के क्षेत्र में किसका नाम लिया जाता है ?

  अ) अश्क   ब) लक्ष्मीनारायण लाल

  क) हरिकृष्ण प्रेमी   ड) माथुर

28.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

* उपेंद्रनाथ अश्क के एकांकी साहित्य के योगदान को स्पष्ट कीजिए ।
* लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी की कथ्यगत विशेषताएँ लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी 'औरंगजेब की आखरी रात' के संवादों पर गौर कीजिए ।
* एकांकीकारों की तालिका तैयार कीजिए ।

28.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* हिंदी एकांकी की शिल्पविधि का विकास – कुमार सिद्धनाथ
* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❇❇❇

इकाई – 28 एकांकी विधा का विकास

28.1 उद्देश्य

24.2 प्रस्तावना

24.3 विषय विवरण

28.3.1 भारतेंदुकालीन एकांकी साहित्य

28.3.2 द्विवेदी कालीन एकांकी साहित्य

28.3.3 आधुनिक काल का एकांकी साहित्य

28.4 शब्दार्थ

28.5 सारांश

28.6 स्वयं अध्यपन के लिए प्रश्न

28.7 स्वाध्याय-क्षेत्रीय कार्य

28.8 संदर्भ- अतिरिक्त अध्यपन के लिए पुस्तकें

28.1 उद्देश्य

* हिंदी एकांकी की विकास यात्रा का परिचय प्राप्त करेंगे ।
* शिल्प एवं विषय की दृष्टि से हिंदी एकांकी से परिचित होंगे ।

28.2 प्रस्तावना :

आधुनिक युग की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण एकांकी का उद्‌भव हुआ है । आधुनिक जीवन की व्यस्तता; मनोरंजन के लिए आज लोग अधिक समय बर्बाद करना नहीं चाहते । कम से कम समय में वे मनोरंजन चाहते हैं । इसी कारण एकांकी का जन्म हुआ । १९ वीं शती में पेरिस, बर्लिन, लंदन, शिकागो आदि स्थानों पर लघु मंचीय आंदोलन शुरू हुए, इसी कारण एकांकी का विकास हुआ । १९ वीं शती के अंत में तथा २० वीं शती के आरम्भ में विश्व भर में स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बढ़ने लगी । इन स्थानों पर विद्यार्थियों को विविध अवसरों पर जो नाट्य प्रयोग करने पड़ते थे; वे आकार में छोटे ही चाहिए थे । इस कारण एकांकियों का जन्म हुआ । हिंदी का आज का एकांकी साहित्य पाश्चात्य नाटकों से बहुत प्रभावित रहा है । हिंदी के विशेष उल्लेखनीय एकांकीकार हैं रामकुमार वर्मा, अश्क, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगदीशचंद्र माथुर तथा विष्णु प्रभाकर आदि ।

28.3 विषय विवरण :

हिंदी में एकांकी विधा का जन्म भी आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही हुआ । अनेक नए लेखक इस क्षेत्र में आए जिन्होंने अभिनेयता को ध्यान में रखकर एकांकी नाटकों की रचना की । आधुनिक हिंदी एकांकी को सुगठित एवं कलात्मक रूप देने, उसके शिल्प को विकसित करने एवं साहित्य में उसे प्रतिष्ठित कराने का श्रेय इन्हीं लेखकों को जाता है ।

28.3.1 भारतेंदु कालीन एकांकी साहित्य :

भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक युग के प्रवर्तक हैं । 'भारत-जननी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' भारतेंदु के इन लघु नाटकों को आरम्भिक एकांकियों के रूप में स्वीकार किया जाता है। किंतु आधुनिक एकांकी, स्वरूप की दृष्टि से संस्कृत से अधिक प्रभावित है । कलात्मक दृष्टि का इनमें अभाव है । भारतेंदु ने स्वयं एकांकी रचना के साथ साथ अपनी मित्र मंडली को भी इस क्षेत्र में प्रोत्साहित किया । राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्‌ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास तथा अंबिकादत्त व्यास आदि इनमें प्रमुख है ।

'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' भारतेंदु का प्रथम मौलिक प्रहसन है । धर्म शास्त्रों का प्रमाण दे देकर कुकर्म करने वालों पर इसमें कड़ा व्यंग्य है । मांस-भक्षण, व्यभिचार और मद्यपान जैसी कुप्रथाओं पर आघात किया है । राजा, विदूषक, वेदांती, शैव, शाक्त, गंडकीदास, यमराज आदि पात्रों द्‌वारा कहानी को सजीव बनाया गया है । 'भारत दुर्दशा' एकांकी में छ अंक हैं, वे वास्तव में छ दृश्य हैं । इसमें भारत की हीन-दीन दशा का वर्णन है । शैव-शाक्त और वैष्णवों के मत-भेद, बहु-विवाह, बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं पर गंभीर प्रकाश डाला गया है । 'नील देवी' भारतेंदु का सुंदर एकांकी है । इसमें रानी नील देवी द्वारा आक्रमणकारी का बदला लिए जाने का सजीव वर्णन है । भारतेन्दु सोदेश्य रचना करते थे । शिल्प की अपेक्षा कथा का सटीक और सजीव प्रतिपादन उनका लक्ष्य था । इस युग के अन्य एकांकीकारों में बालकृष्ण भट्‌ट, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनंदन खत्री, अंबिकादत्त व्यास तथा अन्य अज्ञात रचनाकारों ने एकांकी विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

28.3.2 द्‌विवेदी कालीन एकांकी साहित्य :

बीसवीं सदी के आरंभ के साथ द्‌विवेदी युग प्रारंभ होता है । इस काल में भारतेंदु युगीन सभी गद्‌य विधाओं का विकास हुआ । द्‌विवेदी युग वस्तुतः अनुवाद का युग है । क्योंकि इस काल में बंगला और अंग्रेजी के दर्जनों

एकांकियों के अनुवाद प्रकाशित होने लगे किंतु भौतिक एकांकियों का इस युग में अभाव-सा है । इस युग के सफल एकांकीकार के रूप में बद्रीनाथ भट्ट का नाम लिया जा सकता हैं - 'पुराने हकीम का नया नौकर', 'ठाकुर दान सिंह', 'हिंदी की खींचातानी', 'घोंघा बरंत, 'विद्यार्थी' आदि इनकी प्रसिद्‍ध एकांकियाँ हैं । समाज की दुर्बलताओं का चित्रण इनकी एकांकियों में हुआ हैं । इस युग के अन्य एकांकीकार हैं- राधेश्याम कथावाचक (परिवर्तन, कृष्ण सुदामा), जी. पी. श्रीवास्तव (गड़बड़-झाला, टुमदार आदमी) तथा पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (चार बिचारे) आदि उल्लेखनीय है ।

प्रसाद ने महाभारत के एक प्रसंग पर सम्राट चंद्रगुप्त का सेक्युलस की पुत्री कार्नेलिया के विवाह के चित्रण पर 'कल्याणी परिणय' एकांकी प्रस्तुत किए । प्रसाद ने प्रारंभ में तीन अंकों के नाटक लिखें । इ.स. १९२९ में उन्होंने नए ढंग से एकांकी लिखने का प्रयत्न किया और इसी वर्ष 'एक घूंट' एकांकी लिखा जो हिंदी का मधम सफल एकांकी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. विश्वनाथ मिश्र तथा अन्य आलोचकों ने इसे हिंदी के सर्वप्रथम एकांकी के रूप में स्वीकार करते हैं । 'स्त्री-पुरुष की प्रेम समस्या को 'एक घूंट' में आधार बनाया गया है ।

28.3.3 आधुनिक काल का एकांकी साहित्य :

आधुनिक हिंदी एकांकी को सुगठित एवं कलात्मक रूप देने में डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, विनोद रस्तोगी का स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं ।

डॉ. रामकुमार वर्मा :

आधुनिक हिंदी एकांकीकारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । वास्तव में 'हिंदी एकांकी' को कथा, शिल्प, अभिनय, रंगमंच आदि सभी दृष्टियों से संपन्न करने का ऐतिहासिक कार्य वर्मा ने किया हैं । पाश्चात्य तंत्र को हिंदी एकांकी के क्षेत्र में लाने का श्रेय डॉ. रामकुमार वर्मा को ही दिया जाता हैं । इन्होंने एकांकी के सैद्‍धांतिक विवेचन एवं व्यावहारिक सृजन द्‍वारा हिंदी एकांकी के शिल्पगत विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया हैं । इनका पहला एकांकी इ.स. १९३० में 'बादल की मृत्यु' नाम से प्रकाशित हुआ । यह एक प्रतीकात्मक एकांकी है। इसमें तीन पात्र हैं । संध्या, बादल और मृत्यु । इसमें संध्या के समय रंग-बिरंगे बादलों के मिटने की कथा संवादों के माध्यम से प्रस्तुत की गई है । कथानक और नाटकीयता दोनों का ही अभाव है । डॉ. वर्मा ने पाश्चात्य टेकनीक को अपनाया, पचाया और भारतीय समस्याओं को नए ढंग से नए शिल्प में प्रस्तुत करने में उन्हें अत्याधिक सफलता मिली। इसी कारण उन्हें आधुनिक एकांकी का पथ प्रदर्शक माना जाता हैं । उनके समग्र एकांकी साहित्य को निम्नलिखित विजयों के अनुरूप विभाजित किया जा सकता हैं । सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी- '१९ जुलाई की शाम', 'आशीर्वाद', 'इलेक्सन', 'उत्सर्ग', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'कलाकार का सत्य', 'कहां से कहां', 'दस मिनट', 'रजनी की रात', 'रेशमी राई' आदि ऐतिहासिक आदर्शवादी एकांकी - वर्मा को अधिक सफलता इसी प्रकार के एकांकी में मिली । 'शिवाजी', 'औरंगजेब की आखरी रात', 'प्रतिशोध', 'समुद्र गुप्त', 'कौमुदी महोत्सव', 'चारुमित्रा', 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि इनके चर्चित एकांकी हैं ।

भावात्मक-आदर्शवादी एकांकी - वर्मा छायावादी कवि हैं । इसी कारण भावात्मक-आदर्शवावदी एकांकियों में उनका मन अधिक रमता हैं-'बादल की मृत्यु', 'स्वागत है ऋतु-राज', 'वर्षानृत्य', 'उत्सर्ग', 'अंधकार' इनके उत्कृष्ट भावात्मक एकांकी है । डॉ. वर्मा ने हिंदी एकांकी को पूर्णत: प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

भुवनेश्वर प्रसाद :

१९ वीं शती में भावनावादी नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप 'समस्या नाटकों की सृष्टि यूरोप में हो गई । प्रखर यथार्थवादी दृष्टि को लेकर नाटक लिखें जाने लगे । पश्चिम की इस प्रखर यथार्थवादी और समस्यामूलक दृष्टि को लेकर भुवनेश्वर हिंदी में आए, । इनके प्रसिद्‍ध एकांकी हैं - 'कारवाँ', 'श्यामा: एक वैवाहिक विडंबना', 'प्रतिभा का

विवाह', 'शैतान', 'लाटरी' आदि । इनके करीब करीब सभी एकांकियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित हैं । भुवनेश्वर के कुछ ऐतिहासिक एकांकी भी प्रकाशित हुए हैं - 'आजादी की नींव' 'सिकंदर' आदि । इन सबमें राष्ट्रीय भावना प्रकट हुई हैं ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' :

इनके एकांकियों में मुख्य रूप से नैतिक आदर्शवाद और राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है । इनके प्रत्येक एकांकी में किसी उच्च आदर्श भावना किसी महान नैतिक सिद्धांत की प्रतिष्ठापना की गई है । इनके प्रसिद्ध एकांकी हैं - 'सेवा मंदिर', 'मातृ-मंदिर', 'राष्ट्र मंदिर', 'मान-मंदिर', 'न्याय-मंदिर', 'वाणी-मंदिर', 'गृह-मंदिर', 'बादलों के पार', 'यह भी एक खेल हैं', 'घर या होटल', 'प्रेम अंधा है', 'मातृभूमि का मान', 'निष्ठुर न्याय', 'पश्चाताप' आदि।

हरिकृष्ण प्रेमी के एकांकी में कथानक के रूप में सरल गतिवाली कहानियाँ हैं । उनमें नाटकीय स्थितियाँ नहीं हैं । संघर्ष अथवा द्वंद्व भी नहीं हैं किंतु प्रत्येक एकांकी एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर रहता है । इनके एकांकियों में विषय और समस्या को अधिक महत्व दिया गया है ।

जगदीशचंद्र माथुर :

हिंदी नाटकों के क्षेत्र में जगदीशचंद्र माथुर का नाम जितना प्रसिद्ध है उतना ही हिंदी एकांकी के क्षेत्र में भी हैं। आधुनिक ढंग के एकांकी लेखन का कार्य सन १९३६ से उन्होंने आरंभ किया । इनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं - 'मेरी बांसुरी', 'भोर का तारा' मे पांच एकांकी है- 'खंडहर' । बाद में लिखें पाँच एकांकी 'ओ मेरे सपने' में संकलित हैं- 'घोंसले', 'खिडकी की राह', 'कबूतरखाना', 'भाषण' और 'ओ मेरे सपने' ।

माथुर के अधिकांश एकांकी आज की सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं । इनमें सामाजिक विकृतियों पर आघात करने के लिए लेखक ने व्यंग्य का सहारा लिया है । स्त्रियों की सामाजिक स्थिति एवं विवशताओं का चित्रण भी उन्होंने किया है । नाट्य शिल्प की दृष्टि से जगदीशचंद्र माथुर ने विशेष कौशल का परिचय दिया है । एकांकी का प्रारंभ नाटकीय घटनाओं के विकास और उनकी चरम परिणति तथा अंत का निर्माण सजीवता तथा कलात्मकता से किया गया है । वातावरण निर्माण के लिए संगीत, प्रकाश आदि का कुशलता से उपयोग किया गया है । पात्रों का चरित्रांकन भी माथुर ने विशेष कलायुक्त रीति से किया है । उनके सभी एकांकी रंगमंच के लिए लिखें गए हैं और सफलतापूर्वक अभिनीत भी हुए हैं ।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' :

पाश्चात्य नाट्य साहित्य के अध्ययन से प्रभावित और प्रेरित होकर जिन लेखकों ने हिंदी एकांकी के क्षेत्र में सफल प्रयोग किए हैं उनमें उपेंद्रनाथ अश्क का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । इनके एकांकी संग्रह हैं- 'देवताओं की छाया में' 'चारवाहे', 'पक्का गाना', 'पर्दा-उठाओ-पर्दा गिराओ', 'अंधी गली', 'साहब को जुकाम है' इनके एकांकी मुख्यत: सामाजिक एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखें गए हैं । उनके एकांकियों में हमारे वर्तमान समाज की जो रूढ़ियाँ हैं, विकृतियाँ है, दुर्बलताएँ हैं' उन्हें व्यंग्यात्मकता से प्रभावशाली रूप में अंकित किया गया हैं । अश्क अपने सामाजिक जीवन के प्रति प्रारम्भ से ही जागरूक रहे हैं । उनकी एकांकियों में हास्य और व्यंग्य में जो तीव्रता है वह अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है । वे अपनी एकांकियों में समाज की आलोचना करते हैं तथा मानव की अंतर्वृत्तियों और कमजोरियों का पर्दाफाश करते हैं । पुरानी जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं का शिकार मध्यवर्गीय समाज उनके तीव्र व्यंग्य का लक्ष्य बना हैं । 'अश्क' के एकांकी अभिनेय हैं एवं सुपाठ्य भी हैं । प्राय: सभी एकांकियों में रंगमंच- निर्देश बहुत विस्तारपूर्वक दिए हैं । और रंगमंच निर्देश के अनुसार ही उनका गठन किया गया है । उनकी एकांकियों के पात्र जाने पहचाने लगते हैं, उन्हें स्वाभाविक रूप में चित्रित भी किया गया हैं । इसमें संदेह नहीं कि हिंदी एकांकी के विकास में 'अश्क' ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

लक्ष्मीनारायण लाल :

सफल नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने एकांकी के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं । इन्होंने ऐतिहासिक एकांकियाँ लिखीं परंतु इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली । बाद में सामाजिक समस्याओं और मानव चरित्र की दुर्बलताओं को लेकर लेखन किया । डॉ. लाल की एकांकियों में वर्तमान जीवन की कटु वास्तविकताओं, विषम परिस्थितियों एवं मानव चरित्र की दुर्बलताओं का चित्रण अधिक हुआ हैं । रंगमंच की दृष्टि से इनके एकांकियों की उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है । इनके तीन एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं । जिनमें संकलित हैं– 'पर्वत के पीछे', 'सुबह होगी', 'नई इमारते', 'मडवे का भोर', 'घुएँ के नीचे', 'कैद से पहले', 'उर्वशी', 'महाकाल का मंदिर', 'ताजमहल के आँसू', 'जहाँआरा का स्वप्न', 'नूरजहाँ की एक रात', 'सीमांत का सूरज' 'जादू बंगला' आदि ।

लाल के सामाजिक एकांकी में मध्यम वर्ग की समस्याएँ, आसपास के वातावरण तथा परिवार की जानी पहचानी घटनाएँ, पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक धरातल पर हुआ है । अत: लाल को आधुनिक एकांकीकारों में एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है ।

धर्मवीर भारती :

प्रसिद्ध कवि धर्मवीर भारती ने कुछ एकांकी भी लिखे हैं जो रेडियो से प्रसारित हुए हैं । इनके एकांकी नाटक हैं– 'नदी प्यासी थी', 'नीली झील', 'आवाज का नीलाम' और 'संगमरमर पर एक रात' ।

'नदी प्यासी थी' डॉ. धर्मवीर भारती का सबसे सफल एकांकी है । इसका विषय प्रेम है । कथानक बड़ा संश्लिष्ट है और सभी स्थितियाँ नाटकीय हैं । एकांकी में आकर्षण अंत तक बना रहता है । पृष्ठभूमि के गीत ने एकांकी को विशेष प्रभावशाली बनाया हैं । पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक संवाद बहुत सशक्त हैं और उनमें गतिशीलता बनी रहती हैं । 'नीली झील' एकांकी में अतिकल्पना है । इसके माध्यम से लेखक ने आज के भौतिकवादी मनुष्य की आत्महीनता का बड़ा कलात्मक चित्रण किया है । यह एक प्रतीकात्मक एकांकी नाटक है । 'आवाज का नीलाम' भी एक सफल एकांकी है। 'आवाज एक पात्र है, जो अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का प्रतीक है । 'संगमरमर पर एक रात' उनका ऐतिहासिक एकांकी है । डॉ. धर्मवीर भारती ने कम एकांकियों की रचना की हैं, इनके सभी एकांकी सफल बन पड़े हैं ।

विनोद रस्तोगी :

इनकी एकांकियों के पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक तीन प्रकार प्राप्त हैं । उनके एकांकी हैं– 'पुरुष का पाप', 'पत्नी परित्याग', 'दो चाँद', 'प्यार और त्याग', 'आकाश पाताल', 'सौंदर्य का प्रायश्चित', 'आज मेरा विवाह है', 'पाप का पुण्य', 'प्यार और पैसा', 'कसम कुरान की', 'सोना और मिट्टी, 'काला दाग', 'रथ के पहिए', 'मानव और मशीन' तथा 'रत्ना की आग' ।

रस्तोगी का 'पत्नी परित्याग' सीता बनवास के प्रसंग पर आधारित एकांकी है । 'पुरुष का पाप' एक पौराणिक प्रसंग पर आधारित एकांकी है और इसमें लेखक नें यह संकेत करने का प्रयत्न किया है कि पुरुष के पाप के लिए समाज नारी को दंडित करता है । 'दो चाँद' 'आज मेरा विवाह है' ऐतिहासिक नाटक हैं । सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखें नाटकों में 'सोना और मिट्टी' में आज के उन धनी लोगों पर व्यंग्य किया है जो गरीबों को चोर और बेईमान समझते हैं । इनकी एकांकियों के कथानक में नाटकीय स्थितियों का, संकलन त्रय का निर्वाह कुशलता से किया गया है । पात्रों का चरित्र चित्रण स्वाभाविक रूप में हुआ है । संवाद संक्षिप्त तथा गतिशील हैं । भाषा शैली सरल और सामान्य बोलचाल की है ।

28.4 शब्दार्थ :

अल्पकाल – कम समय

सुगठित – कसा हुआ ।

निखार – निर्मलता

28.5 सारांश :

नाटकों के समान ही हिंदी एकांकी के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र माने जाते हैं । सन् १९३० से आधुनिक हिंदी एकांकी की रचना नियमित रूप से होने लगी । आधुनिक हिंदी एकांकी की प्रतिष्ठा करने वाले अग्रणी लेखकों में डॉ. रामकुमार वर्मा का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं । अनेक नए लेखक इस क्षेत्र में आए और उनकी कृतियाँ विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होने लगी । ऐसे लेखकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क आदि । डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क आदि । डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस विधा के स्वरूप को सर्वप्रथम निखारा और इसके शिल्पगत विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया।

हिंदी के आधुनिक एकांकी ने पाश्चात्य एकांकी के स्वरूप से ही प्रेरणा ग्रहण कर अपना विकास किया है। अधिकांश एकांकीकारों के एकांकी रंगमंच के साथ-साथ रेडियो पर भी सफल रहे हैं । इस तरह आधुनिक हिंदी एकांकी अपने सर्वांगीण विकास के पथ पर अग्रसर है ।

28.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* हिंदी एकांकी विधा के विकास का क्रम का विवेचन कीजिए ।
* हिंदी एकांकी की विकास यात्रा में रामकुमार वर्मा का स्थान स्पष्ट कीजिए ।
* आधुनिक युग के प्रमुख एकांकीकारों का परिचय दीजिए ।

(ख) टिप्पणियाँ

* भारतेंदुकालीन एकांकी साहित्य
* जगदीशचंद्र माथुर का एकांकी साहित्य
* एकांकीकार भुवनेश्वर

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भारतेंदु युगीन चार एकांकीकारों के नाम लिखिए ।
* द्विवेदी कालीन चार एकांकिओं के नाम लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा के एकांकियों के नाम लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा के एकांकियों की दो विशेषताएँ बताइए ।
* धर्मवीर भारती के एकांकी नाटकों की क्या विशेषता हैं ?

(घ) सही पर्याय लिखिए

* बादल की मृत्यु किसका एकांकी नाटक हैं ?

  अ) भुवनेश्वर ब) धर्मवीर भारती क) रामकुमार वर्मा ड) अश्क

* सामाजिक समस्यामूलक एकांकी के क्षेत्र में किसका नाम लिया जाता है ?

 अ) अश्क   ब) लक्ष्मीनारायण लाल

 क) हरिकृष्ण प्रेमी   ड) माथुर

28.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

* उपेंद्रनाथ अश्क के एकांकी साहित्य के योगदान को स्पष्ट कीजिए ।
* लक्ष्मीनारायण लाल के एकांकी की कथ्यगत विशेषताएँ लिखिए ।
* रामकुमार वर्मा द्‍वारा लिखित एकांकी 'औरंगजेब की आखरी रात' के संवादों पर गौर कीजिए ।
* एकांकीकारों की तालिका तैयार कीजिए ।

28.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* हिंदी एकांकी की शिल्पविधि का विकास – कुमार सिद्‍धनाथ
* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❊❊❊

इकाई – 29 निबंध विधा का विकास

29.1 उद्देश्य

29.2 प्रस्तावना

29.3 विषय विवरण

  29.3.1 भारतेंदु युग

  29.3.2 द्विवेदी युग

  29.3.3 शुक्ल युग

  29.3.4 शुक्लोत्तर युग

29.4 शब्दार्थ

29.5 सारांश

29.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

29.7 स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य

29.8 संदर्भ- अतिरिक्त अध्यपन के लिए पुस्तकें

29.1 उद्देश्य

* हिंदी निबंध विधा की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
* हिंदी निबंध विधा के विकास में प्रमुख निबंधकारों के साहित्य से परिचित होंगे ।
* शुक्लोत्तर युगीन निबंध साहित्य में की विभिन्न धाराओं से परिचित होंगे ।

29.2 प्रस्तावना :

निबंध आज की एक अत्यंत लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । वैयक्तिक चेतना के संस्पर्श से इसमें मानवीय भावनाओं की जो सहज अभिव्यक्ति होती है, उसने इसे और महत्त्वपूर्ण बना दिया । हिंदी में निबंध का जन्म और विकास आधुनिक युग की देन है । राष्ट्रीय आंदोलन से लोगों में उठता हुआ देशप्रेम का ज्वार, गद्य्य की नूतन विधाओं का प्रचार, समाचार पत्रों का प्रकाशन तथा मुद्रणकला का विकास निबंध अविर्भाव के मुख्य्य कारणों में से थे ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैं कि, ''यदि गद्य्य कवियों और लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है ।'' किसी भी प्रकार का गद्य्य तभी इस कसौटी पर खरा उतरता है जब वह पूर्ण विकसित और संपन्नता हो। भारतेंदु युग में खड़ी बोली को साहित्यिक मान्यता मिले बीस-पच्चीस वर्ष ही हुए थे । उसी समय इस भाषा में उच्चकोटि के निबंध लिखें गए । निबंधों की भाषा भले ही अव्यवस्थित हो किंतु जहाँ तक विषय वैविध्यता, शैली तथा सहजता की बात है - वहाँ ये निबंध उत्कृष्ट कोटि के साबित हो जाते हैं । इस काल में सर्वाधिक संख्या में निबंध लिखें गए । द्विवेदी युग में द्विवेदी ने गद्य्य की कई शैलियों का प्रवर्तन तथा भाषा का संस्कार किया । पं. माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह और बाबु गुलाबराय इस युग के शीर्षस्थ निबंधकार थे । शुक्ल युग को निबंध का उत्कर्ष युग माना जाता है । शुक्ल युग में विचार प्रधान, वर्णन प्रधान, भाव प्रधान, मनोवैज्ञानिक आदि कई तरह के निबंध लिखें गए ।

29.3 विषय विवरण :

हिंदी निबंध का उदय और विकास आधुनिक युग की देन है । हिंदी निबंध साहित्य के विकास काल को हम निन्मलिखित चार युगों में बाँट सकते हैं ।

- भारतेंदु युग - हिंदी निबंध का उदय
- द्विवेदी युग - हिंदी निबंध का विकास काल
- शुक्ल युग - हिंदी निबंध का उत्कर्ष युग
- शुक्लोत्तर युग - हिंदी निबंध का विस्तार युग

इनका विस्तृत विवेचन इस प्रकार है -

29.3.1 भारतेंदु युग (1863-1900) :

आधुनिक साहित्य की अन्य विधाओं के समान हिंदी निबंध का उदय भी भारतेंदु युग में हुआ । भारतेंदु हरिश्चंद्र वस्तुत: व्यक्ति नहीं संस्था थे । निबंधकार किस न किस रूप में पत्र-पत्रिकाएँ तथा समाचार पत्रों के साथ जुड़े हुए थे। पाठकों के साथ निकटतम संबंध स्थापित करने की ललक उनमें थी । फलत: इस काल के निबंधों में उन्मुक्तता, स्वच्छंदता अधिक है । निबंधकार यह चाहते थे कि समकालीन समाज का नैतिक तथा राजनीतिक स्तर ऊँची बने । अत: भारतेंदु युग के निबंधों में जीवनचेतना, समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम, अतीत गौरव, विदेशी सत्ता के प्रति क्रोध का सजीव चित्रण होता रहा । आत्मनिष्ठता इस काल के निबंधों की मुख्य्य विशेषता थी । भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ निकाली । उनके मित्र पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप', पं. प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'आनन्द कादंबरी' जैसी स्तरीय पत्रिकाएँ संपादित की।

इन पत्रिकाओं में ऐतिहासिक, सामाजिक तथा साहित्यिक निबंध प्रकाशित होने लगे ।

भारतेंदु ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, यात्रा, ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, साहित्यिक लेख और निबंध लिखें। 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'कँकड़-स्तोत्र', आदि ऐसे निबंध हैं, जिनमें उनका व्यक्तित्व बोलता है । लगता है ऐसे लेखक सीधे पाठक से बातचीत कर रहा है । इस युग में बालकृष्ण भट्‌ट का नाम उल्लेखनीय हैं । उनका मत था कि हास्य ही लेख का प्रमाण होता है । 'यदि लेख पढ़कर दाँत कुंदकली से न खिल उठें तो वह लेख ही क्या ?' हास्य के साथ विचारात्मकता का संयोग भट्‌ट ने विलक्षण रूप से किया है । उन्होंने जीवन के व्यापक क्षेत्र से निबंध के विषय चुने हैं - 'हमारे गुण फीके हो रहे हैं', 'नई बात की चाह लोगों में क्यों होती है ?' 'चढती उमर', 'आँख', 'जबान', चन्द्रोदय' आदि भट्ट के निबंधों की भाषा जानदार थी । उनकी भाषा में अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी शब्दों के साथ बोलियों के ठेठ मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।

पं. प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकार है । उनमें भी विनोदप्रियता और व्यंग्यपूर्ण वक्रता का अद्‌भुत समन्वय है । किसी भी विषय को मनोरंजनात्मक बना देना उनके बाएँ हाथ का खेल था । उनके निबंध के विषय हैं 'भौं', 'दाँत', 'नाक', 'पेट', 'ईश्वर की मूर्ति', 'समझदार की मौत है' आदि ।

भारतेंदु युग के सभी निबंधकारों में वैयक्तिकता और सामाजिकता का समन्वय है । उनके निबंधों के क्षेत्र व्यापक और विविध हैं ।

29.3.2 द्‌विवेदी युग (इ.स.1900 से 1920):

भारतेंदु युग की निबंध परम्परा द्‌विवेदी युग में चल नहीं सकी । कारण यह युग आदर्शों और उपदेशों का है । महावीर प्रसाद द्‌विवेदी के नाम से यह 'द्‌विवेदी युग' कहलाता है । 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से इस युग का प्रारंभ होता है । द्‌विवेदी ने गद्‌य की कई शैलियों का प्रवर्तन तथा भाषा का संस्कार किया। इस काल में निबंधों के माध्यम से पाठकों की ज्ञान-वृद्‌धि की जा रही थी, इसी कारण से विषयों में विविधता आ गई। इतिहास, राजनीति, विज्ञान, उद्‌योग, जीवन चरित्र, साहित्य, भाषा आदि विषयों पर निबंध लिखें जाने लगे । निबंधों में बौद्‌धिकता, खंडन-मंडन की प्रवृत्ति, तर्क निष्ठता आदि तत्व तथा भाषा और शैली में एक निश्चित अनुशासन आ गया। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं - महावीरप्रसाद द्‌विवेदी, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदर दास, पं. चंद्रधर शर्मा, गुलेरी सरदार पूर्णसिंह आदि ।

महावीरप्रसाद द्‌विवेदी :

द्‌विवेदी के आरंभिक निबंधों की भाषा में पंडिताऊपन अधिक है । धीरे-धीरे यह वृत्ति कम होती गई । वे मूलत: विचारात्मक निबंधकार हैं । डॉ. विजयेंद्र स्नातक के अनुसार- ''द्‌विवेदी की निबंध शैली भी किसी मौलिकता का आग्रह लेकर नहीं चली है न तो उनमें सजीवता है और न प्रखरता । हाँ परिष्कार और परिमार्जन अवश्य हैं और इसी कारण उनका नाम हिंदी के निबंध लेखकों में अपना महत्त्व रखता हैं । इनके बहुसंख्य निबंध परिचयात्मक या आलोचनात्मक टिप्पणी के रूप में हैं । विषय प्रधानता इनके निबंधों की सही पहचान हैं ।'' द्‌विवेदी ने 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता', 'उपन्यास' आदि काव्यशास्त्रीय निबंधों के साथ, 'क्रोध' 'लोभ' जैसे विषयों पर भी लेखनी चलाई ।

पंडित माधवप्रसाद मिश्र :

मिश्र द्‌विवेदी काल के प्रभावशाली निबंधकार थे । 'सुदर्शन' पत्रिका का संपादन करके इसी पत्रिका में अधिकतर निबंध छपे । वे हिंदू जीवन के कट्‌टर समर्थक थे । इसी कारण उनके निबंधों के विषय अधिकतर, धर्म, दर्शन, त्यौहार, रामलीला, होली आदि से संबंधित हैं । राष्ट्रीय प्रश्नों के प्रति भी वे सजग थे । 'सब मिट्‌टी हो गया', 'बेवर का भ्रम', 'श्री पंचमी' आदि इनके प्रसिद्‌ध निबंध हैं ।

इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं – सरदार पूर्णसिंह, पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाबु गुलाबराय आदि ।

29.3.3 शुक्ल युग (1920–1947):

सन् १९२० से शुक्ल के निबंध प्रकाशित होने लगे । वैचारिकता और तर्कनिष्ठता के कारण यहाँ से नए निबंधों की परंपरा शुरू हो जाती हैं । इस युग को 'शुक्ल युग' कहा जाता है । शुक्ल के अलावा गुलाबराय, पदुमलाल पन्नालाल बक्षी, शांतिप्रिय द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन आदि प्रमुख निबंधकार है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

शुक्ल हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार हैं । निबंधों के क्षेत्र में उन्होंने नए मार्ग को प्रशस्त किया । अपने निबंधों में वे समीक्षा और विचार विमर्श को ही महत्त्व देते हैं । इनके निबंधों को मुख्यत: तीन कोटियों में विभाजित किया जाता है। मनोविकार विषयक निबंध, साहित्य सिद्धांत विषयक निबंध, साहित्यालोचन विषयक निबंध । इनके मनोविकार विषयक निबंध ही सच्चे ललित निबंध हैं । शुक्ल जी ने हिंदी निबंध को कलात्मक उत्कृष्टता प्रदान की । इनके निबंधों के विषय अत्यंत सूक्ष्म एवं गंभीर हैं । इनके 'चिंतामणि' संग्रह में मनोभावों पर लिखे गए निबंध हैं, 'करुणा', 'श्रद्धा और भक्ति', 'लोभ और प्रति' आदि अत्यंत सुंदर बन पड़े हैं । उनका गंभीर व्यक्तित्व इन निबंधों में प्रकट हुआ है।

डॉ. गुलाबराय :

शुक्ल युग के निबंधकारों में गुलाबराय का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इनके निबंध मूलत: आत्मपरक और व्यंग्य मूलक हैं । दर्शन, आचार शास्त्र, मनोविज्ञान के वे पंडित थे । इन तीनों का समन्वय उनके निबंधों में हुआ है। इनके निबंध 'ललित निबंध' की कोटि में आते हैं । 'फिर निराशा क्यों ?, 'मेरी असफलताएँ' 'मेरे निबंध' संग्रहों के निबंधों में वैयक्तिक विषयों को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है । सरल, सहज भाषा के कारण ये निबंध अधिक लोकप्रिय बने हैं ।

राहुल सांकृत्यायन :

यह भाषाओं के पंडित, बौद्धधर्म के विद्वान, अनेक विषयों के ज्ञाता ज्ञानवर्द्धक और विवरणात्मक निबंधकार घुमक्कड़, धर्म के प्रचारक और प्रसारक होने से इनके निबंधों में विशाल अनुभव शब्द-बद्ध हुआ है ।'तुम्हारी क्षय', 'यात्रा निबंधावली' इनके प्रसिद्ध निबंध संग्रहित हैं । इसमें भावुकता, आत्मीयता तथा व्यंग्यात्मकता का समन्वय है। इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण सजीव तथा चित्रात्मक है ।

शुक्ल युग के अन्य निबंधकार हैं – पं. माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, रघुवीर सिंह आदि । इस युग के निबंधों में गंभीरता, सूक्ष्मता आ गई थी । फिर भी जो निबंध इस काल में लिखे गए उन पर हिंदी साहित्य निश्चित रूप से गर्व कर सकता है ।

29.3.4 शुक्लोत्तर युग :

शुक्लोत्तर काल में निबंधों का खूब विकास हुआ । इ.स. १९४० के बाद विभिन्न पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ । परिणामत: निबंध लेखन को गति मिली । शुक्ल ने वैचारिक निबंधों को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया ।

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी इस युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं । व्यापक मानवतावादी दृष्टि, गहन सांस्कृतिक अध्ययन, व्यंग्य, निरछल विनोद सहज पांडित्य से युक्त निबंधों ने निबंध धारा को पुनश्च व्यक्ति-प्रधानता की ओर बढ़ाया । 'अशोक के फूल', 'कल्पना', 'कुरज' इनके महत्त्वपूर्ण ललित निबंध संग्रह हैं । विषय कोई भी हो द्विवेदी उसका विवेचन समृद्ध ऐतिहासिक संदर्भ में करते हैं । 'अशोक के फूल', 'बसंत आ गया है' 'दीपावली' आदि निबंधों में उनकी सांस्कृतिक दृष्टि का परिचय मिलता है । पुराने विषयों का विवेचन करते समय वे वर्तमान को भूलते नहीं ।

इतिहास, वर्तमान, परम्परा और आधुनिकता, पांडित्य और भावुकता का उत्कट समन्वय इन निबंधों में हुआ हैं ।

विद्यानिवास मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा के निबंधकार हैं । 'तुम चंदन हम पानी', 'आंगन का पंछी' और 'बंजारा मन' इनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं । लोकजीवन और ग्रामीण विश्वासों की बड़ी सुंदर व्याख्या वे इन निबंधों में प्रस्तुत करते हैं । इनके निबंधों में भारतीय ग्रामीण जीवन जीवंत हो उठा है । वैयक्तिकता इन निबंधों की प्रधान विशेषताएँ हैं ।

कुबेरनाथ राय शुक्लोत्तर युग के प्रख्यात ललित निबंधकार हैं । 'रस आखेटक', 'प्रिया नीलकंठी' और 'गंध मादन' इनके निबंध संग्रह हैं । इनके निबंधों में आधुनिक मनुष्य जीवन की चिंता, विसंगति भाव बोध प्रकट करने के लिए आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, पौराणिक संदर्भ दिए गए हैं । समकालीन लोक जीवन और ग्रामीण संस्कृति पर इनकी गहरी पकड़ हैं । इसी कारण इनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव विषय विवेचन पर हुआ हैं ।

इस युग के अन्य निबंधकार हैं – नंददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र, जैनेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह दिनकर, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. रामरतन भटनागर आदि । इन निबंधकारों में नर्मदाप्रसार उपाध्याय, डॉ. श्रीराम परिहार विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । उपाध्याय जी के निबंधों में प्रकृति का काव्यमय चित्रण हैं । उनके निबंध हैं – 'एक भोर जुगनू की', 'अंधेरे के आलोक पुत्र', 'नदी तुम बोलती क्यों हो ?', 'तुम सुनो देवता', 'प्रभात की सीपियाँ' । डॉ. श्रीराम परिहार गाँव, जमीन से जुड़े निबंधकार हैं । उनके निबंध संग्रह हैं– 'अंधेरे में उम्मीद', 'धूप का अवसाद', 'बजे तो वंशी गूंजे तो शंख' आदि ।

29.4 शब्दार्थ :

विधा – प्रकार

सैद्धांतिक – सिद्धांत जानने वाला ।

29.5 सारांश :

निबंध आधुनिक युग की देन है । अन्य विधाओं के समान हिंदी निबंध का उदय भारतेंदु युग से हुआ । इस युग के निबंधकार व्यक्तिगत जीवन में राष्ट्रवादी विचारों के थे । स्वधर्म और स्वराज्य के आग्रही थे । उनका उद्देश्य था सामान्य व्यक्ति की उन्नति तथा राष्ट्रीय जागरण । इस युग के अधिकतर साहित्यकार पत्रिकाओं के संपादक भी थे । प्राचीन और नवीन का समन्वय इस काल के निबंधों में मिलता हैं । निबंध की विकास परंपरा का यह प्रारंभिक युग हैं। भारतेंदु युग की अपेक्षा इस युग में निबंधों के विषयों का खूब विस्तार हुआ । जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श करने वाले विषयों को स्वीकार किया गया । द्विवेदी युग में विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक सभी प्रकार के निबंध लिखे गए। विविध गद्य शैलियों का विकास इस काल में हुआ । शुक्ल युग निबंध विधा का उत्कर्ष युग हैं । शुक्ल युग ने हिंदी निबंध को गंभीरता दी है । इस काल में निबंधों के विषयों में विस्तार हुआ । द्विवेदी युग को अपेक्षा इस काल में उत्कृष्ट भावात्मक निबंध लिखे गए ।

29.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* निबंध विधा का विकासात्मक परिचय दीजिए ।
* निबंध विधा के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के योगदान पर प्रकाश डालिए ।
* निबंध विधा के प्रारंम्भिक भारतेंदु युग और द्विवेदी युग का परिचय दीजिए ।

(ख) टिप्पणीयाँ

- ✻ भारतेंदुयुगीन निबंध साहित्य
- ✻ द्विवेदी युग के निबंधकार
- ✻ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध साहित्य

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- ✻ आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंध को क्या मानते हैं ?
- ✻ निबंध विधा के प्रमुख चार युग कौन से हैं ?
- ✻ शुक्लोत्तर युग के चार निबंधकारों के नाम लिखिए ।
- ✻ शुक्ल युग के दो निबंधकार और उनकी दो कृतियों के नाम लिखिए ।
- ✻ धर्मवीर भारती के एकांकी नाटकों की क्या विशेषता हैं ?

(घ) सही पर्याय लिखिए

- ✻ 'कवि-वचन-सुधा' पत्रिका के संपादक कौन हैं ?

  अ) पं. बालकृष्ण भट्ट ब) भारतेंदु क) प्रेमधन ड) पं. प्रतापनारायण मिश्र

- ✻ पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध-संग्रह का नाम क्या हैं?

  अ) अशोक के फूल ब) आँगन का पंछी

  क) रस-आखेट ड) धूप का अवसाद

29.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

- ✻ निबंध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ।
- ✻ आपके महाविद्यालय के ग्रंथालय में होने वाले उपलब्ध निबंध संग्रहों की सूची बनाइए ।
- ✻ निबंध संग्रहों की सूची बनाइए ।
- ✻ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का एक निबंध पढ़िए ।

29.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

- ✻ हिंदी निबंधों का शैलीगत अध्ययन - डॉ. मु. ल. शहा
- ✻ हिंदी साहित्य में निबंध - प्रो. शर्मा ब्रह्मदत्त
- ✻ आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

✻✻✻

इकाई – 30 संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन, रिपोर्ताज

30.1 उद्देश्य

30.2 प्रस्तावना

30.3 विषय विवरण

30.3.1 संस्मरण साहित्य का विकासात्मक परिचय

30.3.2 रेखाचित्र साहित्य का विकासात्मक परिचय

30.3.3 यात्रा वर्णन साहित्य का परिचय

30.3.4 रिपोर्ताज साहित्य का परिचय

30.4 शब्दार्थ

30.5 सारांश

30.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

30.7 स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य

30.8 संदर्भ- अतिरिक्त अध्यपन के लिए पुस्तकें

30.1 उद्देश्य

* संस्मरण एवं रेखाचित्र विधा का विकासात्मक परिचय प्राप्त करेंगे ।
* यात्रा वर्णन विधा का परिचय प्राप्त करेंगे ।
* रिपोर्ताज का विकासात्मक परिचय प्राप्त करना ।

30.2 प्रस्तावना :

संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन रिपोर्ताज में कुछ घटनाओं का कथन होता है । अत: कथन के अनेक रूपों में इनका भी समावेश किया जा सकता है किंतु इन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता । इन सभी विधाओं में कल्पना तत्व नहीं के बराबर होता हैं और यथार्थ ही ठोस आधार होता है । संस्मरण गद्य साहित्य की एक विशिष्ट विधा है जिसमें व्यक्ति, घटना, यात्रा या अन्य प्रसंग को आधार बनाया जाता है । अधिकतर संस्मरण व्यक्तिचरित्र को आधार बनाकर लिखे गए हैं । रेखाचित्र किसी भी व्यक्ति पर लिखें जाते हैं, परंतु संस्मरण प्राय: महान् व्यक्तियों को लेकर ही लिखें जाते हैं । संस्मरण, रेखाचित्र में किसी व्यक्ति का शब्द चित्र दिया जाता हैं । यात्रा वर्णन तथा रिपोर्ताज में बाहरी दुनिया का विस्तृत परिचय दिया जाता है ।

30.3 विषय विवरण :

संस्मरण रोचक विधा है । संस्मरण की शैली प्राय: ललित गद्य के करीबी होती है । कभी-कभी उसमें कहानी की शैली का भी प्रयोग किया हुआ मिलता है । संस्मरण हिंदी गद्य की नवनितम् विद्या है । उसका विकासात्मक परिचय इस प्रकार ।

30.3.1 संस्मरण साहित्य का विकासात्मक परिचय :

संस्मरण गद्य साहित्य की एक विशिष्ट विधा है जिसमें व्यक्ति, घटना या अन्य प्रसंग को आधार बनाया जाता है । अधिकतर संस्मरण व्यक्ति-चरित्र को आधार बनाकर लिखे गये हैं । साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले सैकडों महान् व्यक्तियों का परिचय संस्मरण के माध्यम से होता हैं । सन १९२० के बाद हिंदी में संस्मरण लेखन का विकास हुआ । हिंदी में 'संस्मरण' का उदय पत्र पत्रिकाओं के कारण हुआ है । डॉ. पद्मसिंह शर्मा के अनुसार ''हिंदी का पहला संस्मरण सन १९०७ इ.स. में बाल मुकुंद गुप्त द्वारा प्रतापनारायण मिश्र का लिखा गया था, जिसमें मिश्र जी के संबंध में ज्ञातव्य तथ्य प्रकाश में आए ।'' इस काल की 'माधुरी', 'हंस', 'सुधा', 'विशाल भारत', 'सरस्वती' जैसी विविध पत्रिकाओं में संस्मरण प्रकाशित हुए हैं । द्विवेदी युग में द्विवेदी की प्रेरणा से 'सरस्वती पत्रिका में बड़ी मात्रा में संस्मरण प्रकाशित हुए । सन् १९२० से १९५० तक हिंदी संस्मरण का दैदिप्यमान इतिहास पत्र पत्रिकाओं से प्राप्त होता है ।

संस्मरण विधा के विकास में अनेक साहित्यकारों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । श्री रामदास गौड ने श्रीधर पाठक और रायदेवी प्रसाद के संस्मरण लिखें । इस विधा को साहित्यिक सौंदर्य प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा ने किया । इन्होंने इस कला को रोचकता प्रदान कर वास्तविक रंग में रंगा है । डॉ. कमलेश के अनुसार ''इनके संस्मरणों में इस विधा के विकास के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते हैं । 'पद्मपराग' में इनके संस्मरण संग्रहित हैं। इसमें भी अकबर इलाहाबादी का संस्मरण सर्वाधिक सुंदर है । अत्यंत रोचक शैली में इसे इन्होंने प्रस्तुत किया है । जिंदादिली और हाजिर-जबाबी यहाँ प्रत्यक्ष हो उठी हैं ।''

हिंदी के संस्मरणकार महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा आदि को पद्मसिंह शर्मा से प्रेरणा मिली है । एक प्रकार से वे इनके गुरु और पथ प्रदर्शक थे ।

श्रीराम शर्मा के संस्मरणों का विषय शिकार तथा राजनीति है । इनका लेखन रोचक तथा स्वाभाविक है ।

इनकी भाषा सरल तथा भावानुकूल है । इनके संस्मरण हैं – 'बोलती प्रतिमा', 'सन बयालीस के संस्मरण', 'शिकार' आदि ।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह : के संस्मरण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा जीवन उन्नायक हैं । इनके संस्मरण हैं – 'टूटा तारा', 'सावनी समा' तथा 'सूरदास' आदि । **बाबू गुलाबराय** ने निबंध शैली में संस्मरण लिखें हैं। 'मेरी असफलताएँ' ग्रंथ में अपने निजी जीवन की घटनाओं के माध्यम से लेखक ने अपने गुणावगुणों को स्पष्टता दी है ।

महादेवी वर्मा : मूलत: कवयित्री हैं । उनके संस्मरण मानवीय करुणा, प्रेम, बलिदान जैसी महान भावनाओं को उद्घाटित करते हैं । इनके 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', संस्मरणों में भावुकता और स्वाभाविकता का समन्वय ।

शांतिप्रिय : द्विवेदी के संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं । इनके संस्मरणों में कवि–हृदय बोलता है । 'परिव्राजक की पूजा' तथा 'पथचिहन' इनके संकलन हैं । **आचार्य चतुरसेन शास्त्री** के 'वातायन' संकलन के संस्मरणों में जीवन के विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों के अनुभव चित्रित किए गए हैं ।

रामवृक्ष बेनीपुरी एवं कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : ने हिंदी संस्मरण विधा को समृद्ध किया हैं । स्वाधीनता संग्राम के अनुभव और पत्रकारिता की सदाबहार ताजगी से इनका संस्मरण लेखन अन्य लेखकों की तुलना में विशिष्ट बन पड़ा है । बेनपुरी के 'मील के पत्थर', 'जंजीरे और दीवारे' तथा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का 'दीप जले शंख बजे' संस्मरण संकलन महत्त्वपूर्ण हैं ।

राहुल सांकृत्यायन और भदंत आनंद कौशल्यायन के संस्मरण यात्रा अनुभवों से संपन्न हैं । राहुल का 'यात्रा के पत्ते' तथा कौशल्यापन के, 'जो न भूल सका !' 'जो लिखना पड़ा' 'रेल का टिकट' प्रसिद्ध ग्रंथ हैं । यशपाल संस्मरण लेखकों में विशिष्ट कलम के धनी हैं । इनके संस्मरणों में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश तथा भारत के क्रांतिकारी दल की गतिविधियों को पेश किया है । उनके 'सिंहावलोकन' शीर्षक के तीन खंड प्रसिद्ध हैं । उपेंद्रनाथ अश्क ने आत्मपरक शैली में संस्मरण लिखें हैं । बनारसीदास चतुर्वेदी को संस्मरण लेखन में खूब सफलता मिली है । जीवन के विविध क्षेत्रों के चरित्र इन्होंने चुने हैं । मानवतावादी भूमिका पर ले जाकर वे इन चरित्रों को प्रतिष्ठित करते हैं । इ.स. १९५२ में इनकी कृति 'संस्मरण' प्रकाशित हुई ।

एक स्वतंत्र विधा के रूप में संस्मरण विधा का विकास हो रहा है ।

30.3.2 रेखाचित्र साहित्य का विकासात्मक परिचय :

संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर करना कठिन कार्य है । कुछ आलोचक इन दोनों को एक मानते हैं और कुछ इन दोनों में अंतर करते हैं । संस्मरण व्यक्ति प्रधान होते हैं । रेखाचित्र के लिए यह बंधन नहीं है । रेखाचित्र यह चित्रकला का शब्द है । इ.स. १९३० के समय गिनो–चुने लेखक ही रेखाचित्र लिख रहे थे । मार्च १९३१ में प्रेमचंद के सुपुत्र श्रीपतराय ने 'हंस' पत्रिका का 'रेखाचित्रांक' प्रकाशित किया । इस विशेषांक के नायक साहित्यकार ही थे । इसकी विशेषता यह है कि इसमें बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड तथा उर्दू के साहित्यकारों पर श्रेष्ठ रेखाचित्र प्रकाशित हुए ।

श्री. पद्मसिंह शर्मा हिंदी के प्रथम सफल रेखाचित्रकार माने जाते हैं । 'पद्मपराग' में उन्होंने महर्षि दयानंद, महाकवि अकबर, इलाहाबादी आदि रेखाचित्र लिखें । इन्हें संस्मरणों के अंतर्गत भी रखा जाता है । इनकी शिष्य परंपरा में बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम आता है । हिंदी रेखाचित्र को पुष्ट और समृद्ध बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य श्री. चतुर्वेदी कर चुके हैं । अंग्रेजी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार श्री. ए. जी. गार्डनर को उन्होंने अपना आदर्श माना किंतु उनका अनुकरण

नहीं किया । उनकी मौलिकता के दर्शन उनके रेखाचित्रों में होते हैं । 'हमारे आराध्य', 'रेखाचित्र', 'केतुबंध' इनके प्रसिद्ध संकलन हैं । रोचकता और सरलता इनके रेखाचित्रों की सबसे बड़ी विशेषता है ।

पं. श्रीराम शर्मा हिंदी के दूसरे समर्थ रेखाचित्र लेखक और शिकार साहित्य के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। मार्मिक वेदना, सत्यकथा, जीवन के घात-प्रतिघात तथा मानसिक द्वंद्व उनके लेखन की विशेषता है । लोकजीवन की झाँकी इनके रेखाचित्रों में मिलती है उनके यथार्थ और कल्पना का मधुर समन्वय है । उनके संकलन हैं- 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'वे जीते कैसे' आदि ।

रामवृक्ष बेनीपुरी को ललित निबंधकार के रूप में जितनी प्रसिद्धि मिली उससे अधिक रेखाचित्रकार के रूप में मिली है । वे स्वाधीनता संग्राम के सेनानी, क्रांतिकारी एवं राष्ट्रीय वृत्ति के पत्रकार रहे हैं । 'माही की मूरते' इनकी अमर कृति हैं । इसमे सर्वसामान्य देहाती लोगों के सुंदर चित्र दिए गए हैं । सामान्य व्यक्ति के भीतर की असामान्यता को बेनीपुरी सहज रूप में उद्घाटित करते हैं । 'गेहूँ और गुलाब' 'मील के पत्थर' महत्त्वपूर्ण संकलन हैं ।

रेखाचित्र के इतिहास में महादेवी वर्मा का स्थान अग्रणी हैं । इनके रेखाचित्रों के विषयों का क्षेत्र व्यापक हैं। घीसा, रामा, चीनी, फेरीवाला आदि सामान्य व्यक्ति यहाँ हैं, तो दूसरी ओर बिल्ली, कुत्ता, खरगोश आदि प्राणी भी हैं । सामान्य व्यक्ति की भावुकता, श्रद्धा रेखाचित्रों में सजीव हो उठी है । 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र', 'पथ के साथी' आदि इनके प्रसिद्ध संग्रह हैं । इनके रेखाचित्रों में काव्यात्मकता है । महादेवी ने दीन-हीन, पीड़ित-शोषित, विवश-लाचार और समाज से प्रताड़ित पात्रों को जीवन कथा को रेखाचित्रों मे स्थान दिया हैं ।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने साधारण से साधारण और असाधारण से असाधारण व्यक्तियों पर रेखाचित्र लिखें हैं । 'रेखाएँ बोल उठी', 'क्या गोरी क्या साँवरी', 'एक युग: एक प्रतीक' इनके तीन प्रसिद्ध रेखाचित्र संग्रह हैं । इन लेखकों के अलावा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के रेखाचित्र भी उल्लेखनीय हैं । इनके रेखाचित्रों में सहजता और स्वाभाविकता है । 'महके आंगन चहके द्वार' की भूमिका में श्रीमती रमा जैन का शब्द चित्र बेजोड़ है । प्रकाशचंद्र गुप्त के 'पुरानी स्मृतियाँ', 'विशाख' और 'रेखाचित्र' प्रसिद्ध संग्रह हैं ।

इन लेखकों के अतिरिक्त जिन रचनाकारों ने रेखाचित्र विधा को पल्लवित-पुष्पित किया उनमें- बाबू गुलाबराय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामनाथ 'सुमना', जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, सेठ गोविंददास, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर आदि महत्त्वपूर्ण है । हिंदी को अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हुए । इस विधा के माध्यम से अनेक प्रसिद्ध लेखकों का उदय हुआ ।

30.3.3 यात्रा वर्णन साहित्य का परिचय :

आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के कारण यातायात के साधन बढ़ने लगें । परिणामत: अलग अलग प्रदेशों के लोग एक-दूसरे के संपर्क में आने लगे । एक-दूसरे की संस्कृति का परिचय होने लगा । अन्य प्रदेशों के लोगों का, वहाँ की संस्कृति तथा रूढ़ि परंपराओं का परिचय करा देने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी । संवेदनशील रचनाकार यात्रा वर्णन को नीरस न बनाकर उसे अधिक सरल, परिपूर्ण और ज्ञानवर्धक बनाता है । इस प्रकार यात्रा साहित्य विधा का धीरे-धीरे विकास होने लगा । 'यात्रा' साहित्य में बाहरी दुनिया का विस्तृत परिचय दिया जाता है ।

सन् १५५३ में गुसाई द्वारा लिखित 'वन-यात्रा', इ.स.१८३४ में रामसहाय दास की 'वनयात्रा परिक्रमा', १८४३ में अज्ञात लेखक की 'ब्रज चौरासी-कोस-वन यात्रा' हिंदी के आरम्भिक यात्रा साहित्य की पुस्तकें हैं । भारतेंदु काल में यात्रा साहित्य की ओर लेखकों का ध्यान गया । स्वयं भारतेंदु के अनेक पत्र पत्रिकाओं में यात्राविषयक वृत्तांत हैं। भारतेंदु युगीन यात्रा साहित्य की दो विशेषताएँ प्रमुख हैं । एक विदेश यात्राओं के प्रति बढ़ता आकर्षण और तीर्थ यात्राओं के प्रति बढ़ती रुचि । भारतेंदु के यात्रा निबंध हैं - 'सरयू-पार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा', 'वैद्यनाथ की यात्रा' इसमें उस प्रदेश के लोगों के रीति-रिवाज, खान-पान, बोलचाल आदि का विवरण भी

हैं। बालकृष्ण भट्ट का 'गया यात्रा' तथा प्रतापनारायण मिश्र का 'विलायत यात्रा' इस काल का साहित्य है ।

दि्ववेदी युग तथा छायावादी युग में यात्रा ग्रंथ भरपूर संख्या में प्राप्त होते हैं । इस युग में पत्र-पत्रिकाओं ने यात्रा विषयक साहित्य का प्रकाशन किया । इस युग के उल्लेखनीय ग्रंथों में बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कृति, 'पृथ्वी प्रदक्षिणा', मौलवी प्रसाद लिखित 'मेरी ईरान यात्रा' महत्त्वपूर्ण है ।

यात्रा साहित्य के महान लेखकों में राहुल सांकृत्यायन का स्थान सर्वोपरी हैं । राहुल जी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। विश्व का भ्रमण उन्होंने किया था । हिंदी यात्रा साहित्य को उन्होंने समृद्ध किया है – उनकी रचनाएँ हैं – 'तिब्बत में सवा बरस', 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'लंका यात्रावली', 'मेरी युरोप यात्रा', 'यात्रा के पन्ने', 'जापान', 'ईरान', 'रुस में पच्चीस मास', 'किन्नर देश में' आदि ।

अन्य यात्रा साहित्यकारों में भदन्त आनंद कौसल्यायन का 'आज का जापान', 'देवेंद्र सत्यार्थी के यात्रा वर्णनों में सौंधी मिट्टी की सुगंध है । लोकगीतों को खोज में वे देश-विदेश घुमते रहे । 'धरती गाती है', 'रथ के पहिए' इनके प्रसिद्ध यात्रा वर्णन है । इनकी शैली भावात्मक और व्यंग्य से युक्त है ।

यात्रा साहित्य को एक नई दिशा देने का श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है । अज्ञेय के यात्रा वर्णन में वैयक्तिकता अधिक है । 'एक बूंद सहसा उछली', 'अरे यायावर रहेगा याद' यात्रा वर्णन की इनकी दो प्रसिद्ध, पुस्तकें हैं । प्रसिद्ध नाटककार मोहन राकेश की एक पुस्तक 'आखिरी चट्टान तक' में दक्षिण भारत का चित्रण किया गया है । डॉ. रघुवंश की 'हरीघाटी' यात्रा साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है । निर्मल वर्मा ने यूरोपीय जीवन का यथार्थ चित्रण 'चीड़ों पर चांदनी' में किया है ।

विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में हिंदी के साहित्यकार पहुँच रहे हैं । इस कारण हिंदी साहित्य समृद्ध हो रहा है। हिंदी के आलोचक डॉ. नगेंद्र की 'तंत्रलोक से यंत्रलोक', 'अप्रवासी की यात्राएँ' तथा अक्षयकुमार जैन की 'दूसरी दुनिया', यशपाल 'बिन साँपों का देश' 'मारीशस' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं ।

30.3.4 रिपोर्ताज साहित्य का परिचय :

रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबद्ध विषय है । देश-विदेश में अनेक विद्वानों ने उसके विकास के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न किए हैं । पत्रकारिता के क्षेत्र से संबंधित होते हुए भी रिपोर्ताज साहित्य की विधा है । आज इस विधा ने साहित्य तथा पत्रकारिता दोनों क्षेत्रों में अपना स्वतंत्र स्थान बना लिया है । दैनिक वृत्तपत्रों और साप्ताहिक पत्रिकाओं के कारण इस विधा का जन्म हुआ । किसी प्रदेश की किसी विशेष घटना का यथातथ्य विवरण अत्यंत आकर्षक और कलात्मक रीति से कराया जाता है ।

रिपोर्ताज भारतीय मिट्टी में विकसित साहित्यिक विधा नहीं है । इस विधा का जन्म और विकास यूरोप में हुआ। सन १९३६ के द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व इस विधा का जन्म हुआ । यह विधा रणसंग्राम में विकसित हुई । इस से संबद्ध, भारत में सर्वप्रथम लेख संभवत: रिपोर्ताजकार है । डॉ. कैलाशचंद्र भारिया ने हिंदी में रिपोर्ताज के आरंभ करने का श्रेय 'हंस' पत्रिका को दिया है । इसमें 'समाचार और विचार' शीर्षक से एक स्तंभ लिखा जाता था । भारिया ने इस स्तंभ में प्रकाशित साहित्य को रिपोर्ताज माना है ।

चंडीप्रसाद सिंह लिखित 'युवराज की यात्रा', 'प्रिन्स ऑफ वेल्स की भारत यात्रा' में रिपोर्ताज के सारे लक्षण मिल जाते हैं । प्रगतिवादी काल में अच्छे रिपोर्ताज लिखे गए हैं । प्रभाकर माचवे, अमृतराय, प्रकाशचंद्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव आदि प्रगतिवादी लेखकों ने सुंदर रिपोर्ताज लिखें हैं । सर्वसामान्य लोगों के जीवन को इन्होंने उद्घाटित किया है । नये लेखकों में रघुवीर सहाय को इस क्षेत्र में काफी सफलता मिली है । 'सीढ़ियों पर धूप में' इनकी चर्चित पुस्तक हैं । इ.स. १९६२ के भारत-चीन युद्ध तथा इ.स. १९६५, १९७१ के भारत-पाकिस्तान युद्धों के उत्कृष्ट रिपोर्ताज लिखें गए । डॉ. धर्मवीर भारती की 'धर्म क्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे' इस विधा की अप्रतिम पुस्तक है । अक्षय

कुमार जैन ने भी भारत-पाक युद्ध पर काफी सुंदर रिपोर्ताज लिखें हैं ।

रिपोर्ताज में घटना का यथातथ्य वर्णन किया जाता है । लेखक प्रत्यक्ष देखकर किसी घटना की रिपोर्ट तैयार करता है । कभी कभी प्रतिभा संपन्न लेखक मात्र घटना को सुनता है, देखता नहीं हैं; फिर भी अपनी प्रतिभा से, कला से सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है । वास्तविक घटना का आधार 'रिपोर्ताज' का बलस्थान है । प्रत्यक्ष घटना रिपोर्ताज का प्राणतत्व है ।

30.4 शब्दार्थ :

दैदिप्यमान	-	उज्ज्वल
झाँकी	-	चित्र
अग्रणी	-	प्रथम स्थान पर
प्रताड़ित	-	अपमानित

30.5 सारांश :

संस्मरण रोचक विधा है । इसमें किसी व्यक्ति से संबंधित घटनाओं का उल्लेख होता है । यह साहित्य की सर्वाधिक मानवीय और लालित्यपूर्ण विधा है । हिंदी साहित्य में संस्मरण लेखन की सुदृढ परम्परा दिखाई देती है । भविष्य में इस विधा के अधिक विकसित होने की संभावना है । रेखाओं से बनाए गए चित्र के लिए 'रेखाचित्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है । आधुनिक युग में रेखाचित्र की स्वतंत्र सत्ता स्थापित हुई । अनेक पत्रकारों, निबंधकारों तथा कवियों ने रेखाचित्र लेखन में योगदान दिया हैं । पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी रेखाचित्र विधा के वरिष्ठ लेखक हैं। इस विधा के विकास में पंडित श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, महादेवी वर्मा आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं ।

यात्रा वर्णन गद्य लेखन की नई विधा है । इसमें ज्ञान और मनोरंजन का अद्भुत समन्वय पाया जाता है । विद्वानों ने ज्ञान-प्राप्ति के साधन के रूप में यात्रा के महत्त्व को समझा है । देश-विदेश में लोगों ने यात्रा-वर्णन के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया है । यात्रा साहित्य से पाठकों को देश-विदेश का परिचय प्राप्त होता है । रिपोर्ताज विधा, साहित्य और पत्रकारिता के दोनों तटों को स्पर्श कर विकसित हुई । अनेक प्रतिभाशाली लेखकों ने रिपोर्ताज की ताकत बढ़ाई । रिपोर्ताज आज दुनियाभर में एक उपयुक्त प्रभावी विधा के रूप में विकसित हो रही हैं ।

30.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

- ✻ संस्मरण विधा के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए ।
- ✻ रेखाचित्र विधा के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए ।
- ✻ यात्रा वर्णन तथा रिपोर्ताज का परिचय दीजिए ।

(ख) टिप्पणियाँ

- ✻ हिंदी के प्रमुख संस्मरणकार
- ✻ रेखाचित्रों में प्रयुक्त विषय
- ✻ यात्रा वर्णन साहित्य का मूल्यांकन
- ✻ रिपोर्ताज साहित्य की उपयोगिता

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

- ❋ चार संस्मरणकारों के नाम लिखिए ।
- ❋ चार रेखाचित्र संग्रहों के नाम बताइए ।
- ❋ यात्रा वर्णन का उद्‌देश्य क्या है ?
- ❋ रिपोर्ताज उपयुक्त एवं प्रभावी विधा क्यों मानी गई हैं ।

(घ) सही पर्याय लिखिए

- ❋ किसकी प्रेरणा से सरस्वती में संस्मरण प्रकाशित हुए ?

  अ) भारतेंदु ब) दूविवेदी क) बालमुकुंद गुप्त ड) गुलाबराय

- ❋ अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ के लेखक कौन है ?

  अ) महादेवी वर्मा ब) बेनीपुरी क) श्रीराम शर्मा ड) कन्हैयालाल मिश्र

30.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

- ❋ महादेवी वर्मा के संस्मरण पढ़िए ।
- ❋ अपने निकटवर्ती तीर्थक्षेत्र की यात्रा कर, यात्रा वर्णन लिखिए ।
- ❋ अपने गाँव के मेले पर रिपोर्ताज लिखिए ।
- ❋ संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वर्णन तथा रिपोर्ताज का विस्तृत विकासात्मक परिचय प्राप्त कीजिए ।

30.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

- ❋ हिंदी का संस्मरण साहित्य - राजरानी शर्मा
- ❋ रेखाचित्र - पंडित श्रीराम शर्मा
- ❋ हिंदी पत्रकारिता और कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' - डॉ. विश्वास पाटील
- ❋ आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

❋❋❋

इकाई – 32 हिंदी पत्रकारिता का विकासात्मक परिचय

32.1 उद्‌देश्य

32.2 प्रस्तावना

32.3 विषय विवरण

 32.3.1 प्रारंभिक युग

 32.3.2 भारतेंदु युग

 32.3.3 द्‌विवेदी युग

 32.3.4 नवयुग

 32.3.5 स्वातंत्र्योत्तर युग

32.4 शब्दार्थ

32.5 सारांश

32.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

32.7 स्वाध्याय- क्षेत्रीय कार्य

32.8 संदर्भ- अतिरिक्त अध्यपन के लिए पुस्तकें

32.1 उद्देश्य

* हिंदी नवजागरणकालीन पत्र पत्रिकाओं का परिचय प्राप्त करेंगे ।
* पत्रकारिता के विकास में भारतेंदु, महावीरप्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के योगदान को समझ सकेंगे ।
* हिंदी पत्रकारिता का विकासात्मक परिचय प्राप्त करेंगे ।

32.2 प्रस्तावना :

समाज के विचारों एवं साहित्यिक चेतना का संवहन करने में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है । साहित्य और समाज का निर्माण करने में उनकी भूमिका अहम होती है । आज वर्तमान युग में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है । पत्रिकाएँ, अब मात्र समाचार प्राप्ति के साधन के रूप में नहीं बल्कि जनसाधारण को शिक्षित भी करती है । हिंदी पत्रकारिता की दृष्टि से बंगाल का असाधारण महत्त्व हैं । हिंदी समाचार पत्रों का जनमत बनाने एवे पत्रकारिता के दायित्व निर्वाह में उल्लेखनीय योगदान रहा । उसका लक्ष्य सुधारवादी, राष्ट्रीय तथा जागृति मूलक था । अत: कलकत्ता में ३० मई १८२७ को 'उदन्त मार्तन्ड' नामक प्रथम हिंदी साप्ताहिक पत्र श्री जुगलकिशोर शुक्ल ने प्रकाशित किया । उसके नाद उत्तर प्रदेश में 'बनारस अखबार' का प्रकाशन १८४५ में हुआ । राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद इसके संचालक एवं प्रकाशक थे । इसके बाद हिंदी पत्र पत्रिकाओं का विकास होता गया । हिंदी साहित्य में नवयुग की चेतना का उदय और विकास भारतेंदु हरिश्चंद्र के आगमन से हुआ । भारतेंदु ने पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य को परंपराओं और रूढ़ियों के बंधन से हटाकर राष्ट्रीयता और समाजसुधार की नई दिशा की ओर मोड़ा । भारतेंदु मंडल के सर्वश्री बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास आदि वरिष्ठ पत्रकारों के कारण हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने उत्कर्ष किया ।

32.3 विषय विवरण :

पत्र पत्रिकायें प्रजातंत्र पद्धति की सुव्यवस्था के लिए चतुर्थ मुख्य आधारस्तंभ है । किसी भी विषय में जनमत तैयार करने में पत्र-पत्रिकायें अमोघ शस्त्र हैं । १८५७ के गदर के बाद अंग्रेजों द्वारा लूट एवं आर्थिक शोषण से भारतवासी त्रस्त हो उठे । गुलामी से मुक्ति पाने के लिए आतुर भारतीयों ने पत्रकारिता का सहारा लिया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आज तक पत्रकारिता का संघर्ष जारी है । हिंदी पत्रकारिता के लंबे रास्ते को समझने के लिए उसे निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है ।

32.3.1 प्रारंभिक युग :

पत्रकारिता एक ऐसा प्रबल माध्यम है जिसे सजीवता और स्पंदन, नवस्फूर्ति और जागरण, सक्रियता और गतिशीलता निर्माण की जा सकती है । पतकारिता किसी राष्ट्र एवं समाज का वास्तव में दर्पण हैं । मानव की जिज्ञासा, तृप्त करना, मनोरंजन करना, ज्ञान-विज्ञान के नए क्षितिजों का हिंदी के माध्यम से उद्घाटन करना, सत्य का अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति आदि पत्रकारिता के उद्देश्य माने गए और वैचारिक दृष्टि से पत्रकारिता के इन्हीं उद्देश्यों का महत्त्व है। प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा ने कहा है - ''पत्रकारिता एक रचनाशील विधा है । इसके बगैर समाज को बदलना असंभव है । अत: पत्रकारों को अपने दायित्व और कर्तव्यों का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जाएगा ।'' पत्रकारिता का क्षेत्र बहुत व्यापक है, आधुनिक समाज का वह एक अनिवार्य तत्व माना जा सकता है जिससे मानवीय संबंधों को जगाने तथा अच्छे नागरिक के दायित्व का बोध कराने में तत्पर हैं ।

हिंदी पत्रिका का श्रीगणेश १८२६ में पंडित जुगल किशोर शुक्ल द्वारा प्रकाशित 'उदन्त मार्तण्ड' से होता है। यह पत्र उन्होंने भारतीयों के हित हेतु निकाला था । परंतु बंगाल में हिंदी का प्रचलन न होना और आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह पत्र आर्थिक दिनों तक नहीं चल सका । ०४ दिसंबर १८२७ को इसका अस्त हो गया । परंतु पत्रिकाओं के विकास में इसका ऐतिहासिक महत्त्व है । उत्तर प्रदेश से प्रकाशित होने वाला 'बनारस अखबार' हिंदी प्रांतों से प्रकाशित पहला साप्ताहिक हिंदी पत्र था जो १८४५ में काशी से प्रकाशित हुआ । उसके सम्पादक श्री गोविंदनाथ थे। सन १८५० में 'सुधाकर' पत्रिका का प्रकाशन तारामोहन मैत्रेय नामक बंगाली सज्जन ने किया । सन १८५२ में आगरे से 'बुद्धिप्रकाश' का प्रकाशन लाला सदा सुखलाल के संपादकत्व में प्रकाशित होता था । इस पत्रिका में इतिहास, भूगोल, शिक्षा तथा गणित आदि पर सुंदर लेख प्रकाशित होते थे । सन १८५५ में आगरे से ही 'सर्वहितकारक' पत्रिका शिवनारायण ने प्रकाशित की ।

भारतीय पत्र पत्रिका की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है । दोनों का विकास एक-दूसरे का पूरक रहा है । प्रथम स्वतंत्रता संग्राम १८५७ से पूर्व कुछ पत्रिकाओं ने आंदोलन को खूब भड़काया और उसका समर्थन किया । अंग्रेज सरकार ने इन सारी पत्र-पत्रिकाओं को कुचल दिया क्योंकि सरकार उनसे आतंकित थी ।

32.3.2 भारतेंदु युग :

सन १८६७ तक संपूर्ण भारत विदेशी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था । पश्चिमी शिक्षा की उन्नति से परंपरावादी विचारधारा का लोप हो रहा था और समाज में अनेक सुधारवादी संगठन जैसे ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज आदि संस्थाएँ जन्म ले रही थी । भारतेंदु का हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में सर्वोपरी स्थान हैं । भारतेंदु और उनके मंडल ने हिंदी पत्र-पत्रिका को एक नई दिशा प्रदान की । उन्हें पनपने का अवसर प्राप्त हुआ ।

भारतेंदु हरिश्चंद्र :

भारतेंदु प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दो दर्जन से अधिक पत्र पत्रिकाओं के संपादन और प्रकाशन में योगदान दिया। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र मेगज़ीन' 'श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'हिंदी प्रदीप', 'उचित वस्ता', 'भारत मित्र', 'सारसुधानिधि', 'आनंद कादंबिनी', 'हिंदुस्तान', 'ब्राह्मण', 'साहित्यसुधानिधि', 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' आदि इस युग के पत्र-पत्रिका का संचालन करने वालों के समक्ष भारतेंदु एक महान आदर्श थे । वे नवीन सभ्यता देश तथा समाज में प्रवेश कर चुके थे और नवयुग का संचार करने के लिए उत्सुक थे । उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक समस्याओं का चित्रण किया गया है । भारतेंदु युग की पत्रिकाओं के महत्त्व के संबंध में डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने लिखा हैं, ''देशदशा का जितना यथार्थ चित्रण इन पत्रिकाओं में है और ब्रिटिश सरकार के अनौचित्य का उद्घाटन जिस साहस से इस समय के तेजस्वी पत्रकारों ने किया, वह वस्तुतः असाधारण महत्त्व की बात है ।'' मिश्र के कथन से स्पष्ट होता है कि उस युग में पत्रिका के माध्यम से समाज में नवचेतना के बीज बोए गए । समाज का इतना वास्तविक चित्रण इससे पहले किसी भी साहित्य में नहीं मिलता ।

पंडित बालकृष्ण भट्ट, पं. पुरुषोत्तमदास टंडन, पंडित प्रतापनारायण मिश्र आदि पत्रकारिता के क्षेत्र में अग्रणी थे। इस युग में महाराष्ट्र में तिलक की पत्रकारिता तथा उनसे प्रभावित पत्रकारिता ने अपनी प्रतिष्ठा बनाई थी । 'केसरी', 'मराठा', उनके विख्यात पत्र थे जो अंग्रेजों के खिलाफ एवं सामाजिक, धार्मिक कुप्रथाओं के विरोध में कलम के द्वारा उगल रहे थे और जनता को जाग्रत करने में लगे थे ।

32.3.3 द्विवेदी युग :

सन १९०० से १९२० तक के कालखंड को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है । भारतीय पत्रकारिता के इतिहास मे २० शताब्दी के प्रारंभिक दो दशकों की पत्रिकाओं का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस काल में प्रकाशित समाचार पत्रों ने स्वतंत्रता का शंखनाद किया और पूरी शक्ति के साथ क्रांति और विद्रोह किया ।

महावीरप्रसाद द्विवेदी :

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के इतिहास में महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इसके प्रकाशन से हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नए युग की चेतना का उदय हुआ । 'सरस्वती' का संपादन कर अपनी विद्वत्ता, श्रमशीलता और कार्यदक्षता से साहित्य और हिंदी पत्रकारिता को उन्नत किया, इसलिए इस युग को उनका नाम दिया जाता है । डॉ. हरप्रकाश गौड़ ने सरस्वती के उद्देश्य की चर्चा करते हुए लिखा हैं कि, ''सरस्वती का उद्देश्य हिंदी भाषा क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था । राष्ट्रीय जागरण उसका एक प्रमुख अंग था।'' द्विवेदी ने अपने संपादन कौशल से साहित्य जगत् में एक नई क्रांति को जन्म दिया ।

इस युग में अनेक पत्रिकाओं का उदय हुआ । 'समालोचक' 'अभ्युदय', 'हिंदकेसरी', 'इंदु', 'प्रताप', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं के प्रकाशन से देश की विभिन्न परिस्थितियाँ और ज्ञान से भरे लेखों से जागृति हुई । हिंदी पत्रिकाओं में स्वतंत्रता संग्राम और स्वाधीनता में 'आज' पत्रिका का विशेष महत्त्व रहा । इस युग में फिरोजशाह मेहता का 'बॉम्बे क्रोनिकल' की स्थापना हुई । पं. मदनमोहन मालवीय 'दैनिक हिंदोस्तान', 'अभ्युदय' और 'लीडर' से जुड़े इस प्रकार इस युग की पत्रिकाओं का भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में अभूतपूर्व योगदान रहा है ।

32.3.4 नवयुग :

सन १९२० से हिंदी पत्रिका जगत् में पत्रिकाओं के नवीन युग का श्रीगणेश हुआ । हिंदी पत्रकारिता की धारा राष्ट्रीयता एवं जन-जागृति से आगे बढ़ी थी । नेता समाज सुधारक, साहित्यकार किसी न किसी पत्रिका से संबंद्ध थे। गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त, आचार्य नरेंद्र देव, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि इस समय के प्रमुख पत्रकार हैं । स्वतंत्रता संघर्ष में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं । काशी से निकलने वाला 'आज' पत्र हिंदी की उत्कृष्ट पत्रकारिता का प्रतीक था । इसी वर्ष राजेंद्रप्रसाद ने 'देश' और माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्रिका निकाली । हिंदी पत्रकारिता की स्वस्थ एवं पुष्ट परंपरा की भूमि इसी काल में दृढ़ हुई । इस युग की पत्रकारिता पर गांधी जी की विशेष छाप रही । गांधी जी ने 'इण्डियन ओपिनियन', 'यंग इंडिया' 'हिंदी तथा गुजराती साप्ताहिक', 'नवजीवन', 'हरिजन' तथा 'हरिजन सेवक' पत्रों का संपादन किया । इस युग के पत्रों ने राष्ट्रीय चेतना को जगाया और गांधी जी के आदर्शों से प्रेरित होकर भारत में नवीन चेतना का स्वर मुखरित किया । सन १९२० से १९४७ की पत्रकारिता के संदर्भ में डॉ. कैलाश नारद ने लिखा हैं - ''निरंतर अग्नि परीक्षाओं के उस विकट दौर से घिरे रहने के बावजूद पत्रकारिता ने अपने भीतर एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया जो आक्रमण का उतना ही सशक्त साधन रहा, जितनी की आत्म रक्षा का ।''

32.3:5 स्वातंत्र्योत्तर युग :

स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता में उल्लेखनीय उन्नति हुई । भारत के कोने-कोने से हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी । स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्रकारिता विविध रूपों में विकसित हुई । केवल राजनीति एवं साहित्य तक यह पत्रकारिता सीमित न रहकर फिल्म, खेलकूद, वाणिज्य, धर्म, हास्य, व्यंग्य, ग्रामीण, युवा जगत, स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी थी ।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ सी आ गई । हिंदी को राष्ट्रभाषा करने पर हिंदी पत्रकारिता के उज्ज्वल भविष्य की आशा बंधी । परिणामत: अंग्रेजी के दैनिक समाचारों ने हिंदी के दैनिक संस्करण निकाले । पटना से 'इंडियन नेशन' पहले से ही दैनिक 'आर्यावर्त', निकाल चुका था । दिल्ली से 'हिंदुस्तान टाईम्स' ने नवभारत टाईम्स, इंडियन एक्स्प्रेस ने जनसत्ता, इलाहाबाद से 'अमृत पत्रिका, 'अमृत प्रभात' का प्रकाशन होने लगा । बाद में अनेक हिंदी दैनिक पत्रों का आगमन हुआ । जिनमें 'नवभारत टाइम्स', 'हिंदी हिंदुस्तान', 'स्वतंत्र भारत', 'जागरण', 'नवजीवन', 'जनसत्ता', 'नई दुनिया', 'अमर किरण', 'आज', 'विश्वामित्र', 'पंजाब केसरी', 'अमर उजाला', 'नई दुनिया' आदि

उल्लेखनीय हैं ।

हिंदी के साप्ताहिक पत्रों में 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्थान', 'दिनमान' तथा 'रविवार' विशेष उल्लेखनीय हैं। धर्मयुग के सर्वप्रथम संपादक डॉ. धर्मवीर भारती थे । उन्होने इसे जन-सामान्य तथा प्रबुद्ध वर्ग की अपेक्षाओं को पूरा करने वाला विशेष लोकप्रिय पत्र बनाया । इसके अतिरिक्त 'इंडिया टुडे', 'माया', 'वामा' आदि हिंदी के पाक्षिक पत्र है । 'वामा' विमला पाटील के संपादन में निकलने वाला महिलापयोगी पाक्षिक पत्र हैं । मासिक पत्रिकाओं में 'कल्पना', 'अजंता', 'पराग', 'नंदन', 'माध्यम', 'नवनीत', 'ज्ञानोदय' तथा 'कादंबिनी' विशेष उल्लेखनीय हैं । आलोचनात्मक मासिक पत्रिकाओं के रूप में आगरे से निकलने वाले 'साहित्य संदेश', 'सरस्वती संवाद', 'आलोचना' तथा पटना से प्रकाशित 'समीक्षा' का उल्लेख किया जा सकता हैं । राजेंद्र यादव के संपादन में 'हंस तथा कमलशेखर के संपादन में 'गंगा'समीक्षात्मक मासिक पत्रिकाएँ हैं ।

आजकल हिंदी में विज्ञान संबंधी पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होने लगा हैं । वैज्ञानिक क्षेत्र में 'विज्ञान' (प्रयाग) वैज्ञानिक (मुंबई), 'किसान भारती' (कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर), 'खेती फल फूल', 'कृषिचयनिका', 'इंजीनियर पत्रिका', 'विज्ञान प्रगति', 'विज्ञान डाइजेस्ट, 'आविष्कार', 'विज्ञान भारती', 'पर्यावरण दर्शन' आदि उल्लेखनीय रहे हैं । स्वातंत्र्योत्तर युग में पत्रकारिता में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं ।

32.4 शब्दार्थ :

अहम् - महत्त्वपूर्ण

अमिर - स्थायी, अटल

32.5 सारांश :

भारतेंदु हरिश्चंद्र गद्य साहित्य के जनक हैं, उनका हिंदी पत्र पत्रिका में भी सर्वोपरि स्थान है । उनके आगमन के पूर्व ३० मई १९२६ में हिंदी का प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' नामक पत्रिका का प्रकाशन पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने किया । 'बनारस अखबार', 'सुधाकर', बुद्धिप्रकाश', 'धर्मप्रकाश' तथा 'प्रजाहितैषी' आदि पक्षतकाएँ प्रकाशित हुई। भारतेंदु और भारतेंदु युग ने हिंदी पत्र पत्रिकाओं को एक नई दिशा प्रदान की और उन्हें पनपने का अवसर प्राप्त हुआ। १५ अगस्त १८६७ को भारतेंदु ने 'कविवचनसुधा' मासिक पत्रिका का प्रारंभ कर हिन्दी पत्रिका के विकास में अपना योगदान दिया । इस युग की हिंदी पत्रकारिता पर भारतेन्दु के व्यक्तित्व की अमिट छाप दिखाई देती है । बालमुकुंद गुप्त, पंडित बालकृष्ण भट्ट, पुरुषोत्तम दास टंडन इस युग के पत्रकारिता में अग्रणी थे । इन पत्रों में राजनीति पर खुलकर चर्चा होती थी । द्विवेदी युग तथा पत्रकारिता के इतिहास में 'सरस्वती' का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । इसका मूल स्वर साहित्यिक था लेकिन वह राष्ट्रीय चेतना से भी ओतप्रोत थी । इस युग अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रों का संपादन हुआ । इन पत्रिकाओं में नये युग की स्पष्ट झलक दिखाई देती है । इस युग में 'समालोचक' (पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी), 'लक्ष्मी' लाला भगवानदीन, 'अभ्युदय' (पं. मदनमोहन मालवीय), 'इंदु' जयशंकर प्रसाद 'कर्मवीर' (माखनलाल) आदि । स्पष्ट है पत्रकारिताने खेलकूद फिल्म वाणिज्य धर्म, विज्ञानादि क्षेत्रों में प्रवेश किया है । समय के साथ उनके उद्देश्य बदल रहे हैं ।

32.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) दिर्घोत्तरी प्रश्न

* भारतेंदु युगीन पत्रकारिता का विस्तृत परिचय दीजिए ।
* हिंदी पत्रकारिता के विकास में द्विवेदी युगीन पत्रकारिता पर प्रकाश डालिए ।

* हिंदी पत्रकारिता का विकासात्मक विवेचन कीजिए ।

(ख) टिप्पणियाँ

* भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता
* महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान
* स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता का स्वरूप

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* स्वतंत्रता पूर्व पत्रकारिता के उद्देश्य क्या थे ?
* स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता के उद्देश्य लिखिए ?
* दो पत्रिका और उनके संपादक के नाम लिखिए ।
* हिंदी पत्रकारिता के चार प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम लिखिए ।
* पत्रकारिता के विविध क्षेत्र कौनसे हैं ?

(घ) सही पर्याय लिखिए

* 'कर्मवीर' पत्रिका के संपादक कौन है ?

  अ) भारतेंदु ब) माखनलाल चतुर्वेदी

  क) गणेशशंकर विद्यार्थी ड) कन्हैयालाल मिश्र

* महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किस पत्रिका का संपादन किया ?

  अ) इंदु ब) प्रतीक क) सरस्वती ड) प्रताप

32.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* महावीरप्रसाद द्विवेदी का पत्रकारिता में योगदान स्पष्ट कीजिए ।
* हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र के प्रसिद्ध पत्र-संपादकों को परिचय दीजिए ।
* हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की सूची तैयार कीजिए ।
* आपके क्षेत्र में प्रचलित किसी पत्रकार का साक्षात्कार लीजिए ।

32.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

* नवजागरणकालीन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की सामाजिक भूमिका - डॉ. संगीता सी. पारेख
* आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
* प्रयोजनमूलक हिंदी (पत्र लेखन एवं टिप्पण) - डॉ. उर्मिला पाटील

❋❋❋

इकाई – 33
भरतेंदुयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

33.1 उद्देश्य

33.2 प्रस्तावना

33.3 विषय विवरण

33.3.1 भारतेंदुयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

33.4 शब्दार्थ

33.5 सारांश

33.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

33.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

33.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

33.1 उद्देश्य :

* भारतेंदु युगीन परिस्थितियों को समझ सकेंगे।
* आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदुयुग के योगदान को जान सकेंगे।

33.2 प्रस्तावना :

सामान्यत: रीतिकाल के अंत से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है। साहित्य के क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश भारतेंदु के रचनाकाल से (सन 1868 से 1900 तक) माना गया है। आधुनिक काल का प्रारंभ गद्य से हुआ है। हिंदी खड़ी बोली के साहित्य का सूत्रपात मुंशी सदासुखलाल, ईंशा अल्ला खाँ और सदर मिश्र से हुआ है। हिंदी गद्य के प्रचार-प्रचार में ईसाई प्रचारकों का भी योगदान है। इसी के साथ समाजसुधार संस्थाओं ने भी हिंदी गद्य के विकसित करने में सहायता की है।

सन 1868 में भारतेंदु द्वारा संपादित 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस कालखंड में पहिली बार साहित्यकार सामाजिक विषयों को पृष्ठभूमि बनाकर साहित्य सृजन करने लगे। रीतिकालीन प्रवृत्तियों का मोह समाप्त हुआ और पुनर्जागरण की चेतन साहित्य में दिखाई देने लगी।

भारतेंदु युग के साहित्यकारों की विशेषत यह थी कि वे प्राचीन काव्य परंपराओं का उचित निर्वाह करते हुए भी आधुनिकता की ओर अधिकाधिक मात्रा में उन्मुख हो रहे थे। उनके काव्य में भक्ति, शृंगार रसिकता की समन्वित त्रिवेणी प्रवाहित हो रही थी। जहाँ तक राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रश्न है इस संदर्भ में यह ध्यान देना समीचीन होगा कि भारतेंदु युग के आरंभ में कविता पर राजभक्ति का प्रभाव थ। परंतु कालांतर में यह भावना राष्ट्रीयता में परिणत हो गई।

इस युग के कवियों ने जनसामान्य के प्रश्न और समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए काव्य सृजन किया । उनके वर्ण्य विषय थे - अकाल, महामारी, आर्थिक शोषण, नारी सुधार, धर्म सुधार, शिक्ष आदि के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को निरावृत्त करना, कुप्रथाओं, धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का खंडन, देशप्रेम के महत्व का प्रतिपादन विधवाओं की दशाओं का वर्णन, बालविवाह का विरोध आदि विषयों की विविधता से काव्य में अनेक विशेष प्रवृतियाँ दिखाई देती है।

33.3 विषय-विवरण

33.3.1 भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रीयता :

राष्ट्रीयता भारतेंदु युगीन काव्य की प्रमुख विशेषता या प्रवृति है। इस युग के कवियों ने भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों की स्मृति तर्रोताजा करने के साथ देश के उत्कर्ष के लिए जनमानस में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। राष्ट्रीयता की कविताओं के साथ राजभक्ति परक कविताएँ इस काल में लिखी गई। यद्यपि यह विसंगति है परंतु यही वस्तुस्थिति थी। स्वयं भारतेंदु ने व्हिक्टोरिया रानी, लार्ड रिपन की प्रशंसा में गीत लिखें। जिस समय अंग्रेजों का भरत में आगमन हुआ था उस समय संपूर्ण देश में अराजकता व्याप्त थी। कहीं राजे लड़ते थे, तो कहीं पेशेवर डकैत एवं पठान अत्याचार करते थे। कंपनी ने इस का लाभ उठाया और भारत की राजनीति में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। कंपनी के बाद रानी व्हिक्टोरिया ने भाारत की सत्ता अपने हाथ में ली। रेलयात्रा, डाकव्यवस्था के साथ साथ शासन व्यवस्था भी संतोषप्रद हो गई। फलस्वरूप जनता में अंग्रेजी राज्य के प्रति अच्छी धारणा बनी। बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीराधाकृष्ण दास, भारतेंदु आदि ने अंग्रेजी की प्रशंसा की। प्रेमघन ने लिखा कि -

''जाकी कृपा प्रभाव गयो भारत को दुर्दीन,

यह अंग्रेजी राज इतई आयो प्रयास बिन''

राजभक्ति के गीत गाते-गाते इनके ध्यान में आया कि अंग्रेज देश का अर्थिक शेषण कर रहे हैं तब भारतेंदु ने लिखा -

''भीतर भीतर सब रस चुसै, हंसि हंसि के तन-मन-धन मुसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि-साजन? नहीं अंग्रेज।''

भारतेंदु युगीन राष्ट्रीय चिंतनधारा के दो पक्ष हैं - देशप्रेम और राजभक्ति। प्रथम पक्ष के अंतर्गत कवियों ने हिंदी हिंदू, हिंदुस्तान का गुणगान किया तो दूसरे पक्ष में जजिया जैसे कर न लगाने वाले अंग्रेजों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

सामाजिकता :

भारतेंदुयुगीन कवियों ने सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। इसलिए भारतेंदु युग में नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता आदि विषयों को लेकर अनेक संवेदन कविताएँ लिखी गई। शतब्दियों की परकीयों ने भारतीय समाज को हीन और दीन बना दिया था। समाज में पुरानी परंपराएँ रूढ़ थी। मिथ्या दंभ का चतुर्दिक बोलबाला था। लकीर के फकीर बने रहने में आम जनता को सुख संतोष मिलता था। समाज में अनेक विकृतियाँ जन्म ले चुकी थी। भारतेंदुयुगीन कवियों ने समाज में चेतना का संचार करने का प्रयास किया। भारतेंदु ने लिखा कि -

''धन विदेश चली जत तऊ जिय होत न चंचल।

जड़ समान है रहत अकिल अति रच न सकत कल।''

जड़त आलस्य, मूढ़ता आदि दुर्गुणों के कारण समाज की दुर्दशा हो रही थी। 'प्रेमघन' ने आलस्य, जड़ता को समाप्त करने के लिए काव्य सृजन किया। जाति व्यवस्था के कारण घृणा वैमनस्य एवं ऊँच-नीच की भावना सर्वत्र व्याप्त हो गई थी। भारतेंदु ने 'बहुत हमने फैलाए धर्म, बढ़ाया छुआछूत धर्म' कविता लिखी। आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि के प्रभाव से इस युग में नवीन सामाजिक चेतन उभरने लगी। प्रतापनारायण मिश्र की दृष्टि बाल-विधवाओं की करुण दशा की ओर गई और उन्होंने लिखा कि - ''कौन करे जो नहिं कसकत सूनी बिपती बाल-विधवन की।''

भारतेंदु युग के कवियों ने प्राचीन भारत की सामाजिक समृदद्ध को स्मरण किया और तत्कालीन युग में फैले अकाल, महँगाई, महामारी तथा करों के बोझ से दुखी समाज का दीन-हीन चित्र उपस्थित किया। प्रतापनारायण मिश्र ने समाज वेदन के व्यक्त किया।

समाज में व्याप्त मिथ्यादंभ और आडंबरों में जकड़े समाज का सजीव चित्र 'प्रेमघन' ने व्यक्त किया है। समग्रत: भारतेंदु युगीन कविता सामाजिक स्थिति को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। समाज में व्याप्त विकृतियों से यह कवि दुखी होते हैं इसलिए इन्होंने समाज को जागृत करने का महत् प्रयास किया हैं। इनमें स्वयं 'भारतेंदु हरिश्चंद्र', 'प्रेमघन', 'बालमुकुंद गुप्त' उल्लेखनीय रहे हैं।

नारीदशा :

भारतेंदु युग में नारी की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। समाज में व्याप्त कुरीतियाँ उसके जीवन के लिए प्रश्नचिह्न बन गई थी। नारी सतीप्रथ, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, स्त्रीशिक्षा का निषेध, वेश्या समस्या आदि अनेक समस्याओं से ग्रस्त एवं त्रस्त थी। एक प्रकार से वह नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य की जा रही थी। इस युग के समाज सुधारकों ने नारी की इन समस्याओं को समझा और सुलझाने का प्रयास किया। समाज सुधारकों के साथ साहित्यकारों ने भी नारी की दुर्दशा पर विचार किया और उसे सुलझाने हेतु साहित्य के माध्यम से जनजागृति अभियान प्रारंभ किया। प्रतापनारायण मिश्र ने - ''बालब्याह की रीति मिटाओं, रहे लाली मोह छाय।''

कहकर बालविवाह की कुप्रथा पर प्रहार किया। व्यथित बाल-विधवाओं की स्थिति को श्रीधर पाठक ने हृदयद्रावक स्वरों में व्यक्त किया हैं। इन साहित्यकारों ने अनुभव किया कि नारी दुर्दशा का कारण नारी शिक्षा का अभाव है। अत: साहित्यकारों क कारण नारी शिक्षा पर बल दिया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा कि - ''स्त्रीगण को विद्या देवे, करि पतिव्रता यश लेवई।'' नारी शिक्षा की पूर्व स्थिति को ध्यान में रखने का संदेश देते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि - ''पढ़ती थी वेद तक जहाँ महिला सदैव ही। नारी समूह है वही अज्ञान हमारा।'' इस प्रकार भारतेंदु युग से नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

भक्तिभावना :

भारतेंदु युग में भक्तिभावना तीन रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं -

1) निर्गुण भक्ति

2) वैष्णव भक्ति

3) स्वदेशानुराग समन्वित ईश भक्ति

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संसार की नश्वरता का निरूपण करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा कि - ''सांझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है। हम सब इक दिन उड़ आएँगे यह दिन चरा बसेरा है।''

भक्तिकालीन कवियों के समान माया मोह की व्यर्थता का प्रतिपादन, वैष्णव भक्ति के अंतर्गत रामकृष्ण और अन्य देवी-देवताओं का वर्णन अनेक कवियों ने किया हैं। बिहार के हरिनाथ पाठक की 'श्रीललित रामायण', अक्षयकुमार प्रणित 'रसिक विलास रामायण', बाबू तोताराय की 'राम रामायण', रामभक्ति के संदर्भ में महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। रामकाव्य की तुलना में कृष्णभक्ति काव्य इस युग में अधिक लिखा गया। इसमें सबसे अधिक योगदान भारतेंदु हरिश्चंद्र का हैं। वे राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। वल्लभसंप्रदाय में दीक्षित थे और उनके पदों में कृष्ण राधा-रानी की सख्य भक्ति व्यक्त हुई हैं। मध्ययुगीन कृष्णभक्त काव्य की तन्मयता और सहजत से अनुप्रणित माधुर्य भक्ति उनका प्रिय विषय थ। अन्य धर्मों के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण था। उन्होंने धर्मिक संकुचित विचार करनेवालों की निंदा करते हुए लिखा कि - ''अपुनो -अपुनो मत लै लै सब झगरत ज्यों भठि हाहे।'' इसी भक्तिभावना का निरूपण 'प्रेमघन' ने अलौकिक लीला नामक आख्यान में किया है। अंबिकादत्त व्यास ने 'कंसवध' शीर्षक से प्रबंध रचना की। राधाकृष्णदास ने विनय भावयुक्त कृष्ण स्तुति प्रस्तुत की । रामकृष्ण के अतिरिक्त हजार देवी-देवताओं के श्रेष्ठ भक्तों और धार्मिक पर्वों की महिमा का वर्णन इस कवियों ने किया हैं। जगमोहन सिंह ने दुर्गा की स्तुति की, प्रेमचंद ने 'सूर्यस्त्रोत' की रचना की। भारतेंदु ने उतरार्ध भक्तमाल और कार्तिक स्नान की महिमा व्यक्त की।

इसी युग के कवियों ने देशानुराग व्यंजक भक्तिभावना के अंतर्गत सांप्रदायिक मतमतांतरों पर आधारित धार्मिकता का विरोध धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय भावन से युक्त कविताएँ लिखी। प्रेमघन ने लिखा कि -

''सभी धर्म के वही सत्य सिद्धांत न और विचारू।''

प्रबोधिनी शीर्षक कविता में भारतेंदु ने -

''डूबत भारत नाथ बेगी जागो, अब जागों'' पंक्तियों में देश के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की हैं।

शृंगारिकता :

भारतेंदु युगीन कवियों ने रस के काव्य की आत्मा मानकर विविध रसानुभूतियों का वर्णन किया। जिनमें शृंगार रस सर्व प्रिय रहा। रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए उन्होंने कृष्ण कथा को ध्यान में रखकर प्रेम और सौंदर्य का वर्णन किया। राधाकृष्ण दास ने 'रामनाम' की कविता में मर्यादित शृंगार चित्रित किया।

भक्तिकालीन कृष्ण काव्य की परंपरा में माधुर्य भक्ति पर शृंगारिक चित्रण रीतिकालीन पद्धति पर नखशिख, षड़ऋतु और नायिका भेद का वर्णन, उर्दू कविता से संपर्क के फलस्वरूप प्रेम की वेदना में व्यंजना और अंग्रेजी प्रेम कविताएँ। भारतेंदु युग के प्रथम तीन विकल्पों को ध्यान में रखा। भारतेंदु युग ने 'प्रेम सरोवर', 'प्रेममाधुरी', 'प्रेमतरंग', 'प्रेम फुलवारी' आदि कृतियों में भक्ति के साथ विशुद्ध शृंगार का वर्णन किया। अंबिकादत्त व्यास ने 'पावन पचासा' में प्रेम को निरूपण किया है।

प्रकृति चित्रण :

प्रकृति का स्वच्छंद वर्णन भारतेंदु युगीन कविता की एक विशेषता है। इस वर्णन में अधिकतर कवियों ने परंपरा का ही निर्वाह किया हैं। भारतेंदु द्वारा लिखित 'बदवंत होली', अंबिकादत्त व्यास की 'पावन पचासा', गोविंद गिल्लाभाई का 'षऋतु वर्णन' और आलंबनात्मक चित्रण हुआ है। भारतेंदु ने 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में गंगा और 'चंद्रावली नाटिका' में यमुना नदी का वर्णन किया है। इन कवियों ने रीतिकल के उद्दीपनात्मक प्रकृति चित्रों को आदर्श न मानकर संस्कृत काव्य में निहित सूक्ष्म प्राकृतिक सौंदर्य से प्रेरणा ग्रहण की है।

हास्य–व्यंग :

पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि पर इस युग के कवियों ने ती व्यंग किया है। जिनमें भारतेंदु क ायोगदान उल्लेखनीय है। हास्यव्यंग की यह अभिव्यक्ति छह काव्यों में मिलती है। यथा– प्राचीन रूढ़िगत विकृतियों विदेशी संपर्क से उत्पन्न भारतीयों की स्थिति भक्ति संबंधी संकुचित विचारों, विकृत सांस्कृतिक जीवन, राजनीतिक व्यवस्था जिसमें अंग्रेजों की शोषण नीति, भारतीयों की निष्क्रियता की मनोवृत्ति समाहित है। जीवन के क्षेत्र में जहाँ–जहाँ विसंगतियाँ, विडंबनाएँ दृष्टिगत हुई, उस पर इन कवियों ने ती व्यंग किया हैं। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र 'प्रेमघन', अंबिकादत्त व्यास ने हास्य और व्यंग्यात्मक बेजोड़ कविताएँ लिखी हैं। प्रतापनारायण मिश्र की 'हरगंगा', 'बुढ़ापा' शीर्षक की कविताएँ हास्य व्यंग के लिए प्रसिद्ध हैं।

रीति निरूपण :

भारतेंदुयुग में लखीराम, ब्रह्मभट्ट, कविराज, मुरारीलाल, बालगोविंद मिश्र ने रीति निरूपण ग्रंथ लिखें। लखीराम की काव्यशास्त्रीय कृतियों में महेश्वर विलास, रामचंद्रभूषण, रावणेश्वर, कल्पतरू कृतियों क अंतर्भाव होता हैं। कविराज मुरारीलाल ने 'जसवंत जसो भूषण' नामक काव्य शास्त्रीय ग्रंथ लिखा, बालगोविंद मिश्र ने 'भाषाछंद प्रकाश' जिसमें अड़तालिस मात्रिक, वर्णिक छंदों के पद्धबद्ध लक्षण दिए गए हैं। प्रतापनारायण मिश्र कृत – 'रसकुसुमाकर', कन्हैयालाल पोतदार कृत – 'अलंकार प्रकाश' आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

समस्यापूर्ति :

भारतेंदु युग में समस्यापूर्ति लोकप्रिय काव्य पद्धति थी। कवियों की प्रतिभा और रचना कौशल को परखने के लिए कवि गोष्ठियों और कविसंस्थाओं–सभाओं में कठिन से कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति कराई जाती थी। भारतेंदु द्वारा काशी में स्थापित 'कवितावर्धिनी सभा', 'कानपूर का 'रसिक समाज', बाबा सुमेरसिंह द्वारा निजामाबाद में स्थापित 'कवि समाज' आदि ऐसे काव्य मंच थे जहाँ नियमित रूप से कवि गोष्ठियाँ होती थी और समस्यापूर्ति के लिए प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती थी। परंपरागत शृंगारिक विषयों को अधिक महत्व दिया जाता था। इस प्रकार की कविताओं में कवियों की सूझ–बूझ उक्ति वैचित्र्य और आशु कवित्व दिखाई देता था। दुर्गादत्त व्यास का संकलन 'समस्यापूर्ति प्रकाश', अंबिकादत्त व्यास का 'समस्यापूर्ति सर्वस्व' उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

काव्यानुवाद :

भारतेंदु युग में संस्कृत और अंग्रेजी से काव्यानुवाद किए गए हैं। इस दृष्टि से राजा, लक्ष्मण सिंह की 'रघुवंश' और मेघदूत' कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। भाषांतरण की सरसता, शैली लालित्य, शुद्धस्वच्छंद ब्रजभाषा का प्रयोग अनुवाद की विशेषताएँ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'नारद भक्ति सूत्र' और शांडिल्य के भक्ति सूत्र को क्रमश: 'तदिय सर्वस्व' और 'भक्तिसूत्र वैजंयति' शीर्षकों से अनुदित किया है। ठाकुर जगमोहनसिंह की 'अपृतुसंहार' और 'मेघदूत' इस काल की विशिष्ट कृतियाँ हैं। अंग्रेजी काव्य कृतियों का रूपांतरण करने का श्रेय श्रीधर पाठक को हैं। 'गोल्ड स्मिथ' की कृतियाँ 'हरमीट' और 'डेझर्टेड व्हिलेज' का अनुवाद 'एकांतवसी योगी' तथा 'उजड़ग्राम' शीर्षक से किया गया। इस प्रकार काव्यानुवाद की परंपरा का आरंभ भारतेंदु युग से हुआ है।

कलापक्ष :

भारतेंदु युग की रचनाओं में काव्यरूप, भाषिक चेतना, अलंकरण प्रवृति और छंदविधान की दृष्टि से प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्पष्टतया परिलक्षित होती है। भारतेंदु युग के कवियों ने मुख्य रूप से मुक्तक काव्य की रचना की। लोकसंगीत एवं खड़ी बोली में काव्य रचना की है। किंतु काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा ही प्रमुख बनी रही। दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, रोला, हरिगीतिक विशेष प्रचलित छंद रहे। इस युग के कवि वैविध्यपूर्ण छंदविधान के प्रति विशेष जागरूक रहे हैं। भारतेंदु युग में लखीराम ने अलंकारों का प्रयोग किया, परंतु भारतेंदु युग के कवियों में सामान्यत: अलंकरण की प्रवृत्ति नहीं थी।

समग्रत: भारतेंदु युग का काव्य फलक अत्यंत विराट है। इस काल के कवियों ने राष्ट्रीयता, सामाजिकता, भक्तिभावना और शृंगारिकता का चित्रण, हास्य व्यंग, रीतिनिरूपण, समस्यापूर्ति, काव्यानुवाद तथा कला पक्ष की दृष्टि से काव्यरूप भाषिक चेतना, अलंकार प्रवृत्ति और छंदविधान को दृष्टिकेंद्र में रखा था।

33.4 शब्दार्थ :

निर्गुण – निराकार

सगुण – साकार

स्वदेशानुराग – स्वदेश के प्रति प्रेम

रीतिनिरूपक ग्रंथ – लक्षण निरूपक ग्रंथ

33.5 सारांश :

आधुनिक काल का प्रथम चरण भारतेंदु युग माना जाता है जिसे पुनर्जागरण काल भी कहते हैं । इस काल के साहित्य में प्राचीन एवं नवीन साहित्य परंपरा संरक्षित रही है। वस्तुत: इस युग के साहित्य का उद्देश्य ही प्राचीनता की रक्षा करते हुए आधुनिकता को अपनाना है। भारतेंदु युग के कवियों में एक साथ देशभक्ति और राजभक्ति के प्रति आकर्षण दिखाई देता है। वास्तव में देशभक्ति और राजभक्ति तत्कालीन राजनीति का अभिन्न अंग थी। जिसका प्रतिबिंब इस युग के काव्य में स्पष्ट दिखाई देता है। इस युग के साहित्य में तत्कालीन समाज का रूप प्रतिबिंबित हुआ है। इस युग के कवियों ने सामाजिक दुर्दशा, कुप्रथाओं का खंडन, स्त्रीशिक्षा, विधवाओं की दयनीय दशा, बालविवाह विरोध, धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों क खंडन अदि सामाजिक विषयों को चित्रित किया हैं। प्राचीन और नवीन का सामंजस्य भारतेंदु काल की कला की विशेषता है।

भारतेंदु युग के कवियों का भक्तिकाव्य निर्गुण भक्ति, सगुणभक्ति या वैष्णव भक्ति, स्वदेशानुराग समन्वित ईश्वर भक्ति भेद है। निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संसार की नश्वरता का सत्य व्यक्त किया है, मोह, माया, वासनाओं की निंदा की है। वैष्णव भक्ति के अंतर्गत रामकृष्ण और अन्य देवीदेवताओं का वर्णन किया गया है। स्वदेशानुराग भक्तिभावन के

अंतर्गत सांप्रदायिक संकुचितता के स्थान पर उदारत की पैरवी की गई है। भारतेंदु युग के कवियों ने शृंगार रस को महत्व देते हुए शृंगार निरूपक कविताएँ लिखी है। भारतेंदु युग की एक विशेषता यह है कि इन कवियों ने प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छंद वर्णन किया है। रीतिकालीन प्रभाव के फलस्वरूप भारतेंदु युग के कतिपय कवियों ने रीतिनिरपक ग्रंथ लिखें। जिनमें लखिराम, ब्रह्मभट्ट, बालगोविंद मिश्र, मुरारीदान, कन्हैयालाल पोतदार उल्लेखनीय हैं। हास्य व्यंगात्मक कविताओं में पश्चिमी सभ्यता, विदेशीशासन, अंधविश्वास आदि विषयों पर काव्य सृजन किया है। इस दिशा में भारतेंदु का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

भारतेंदु युगीन काव्य शैलियों में समस्यापूर्ति एक अत्यंत लोकप्रिय काव्य पद्धति थी। भारतेंदु युग में काव्यानुवाद की परंपरा प्रारंभ हुई। संस्कृत और अंग्रेजी के श्रेष्ठ ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया गया।

कलापक्ष की दृष्टि से यह युग उल्लेखनीय है, क्योंकि इस युग के कवियों ने प्रधाना रूप से मुक्तक काव्य की रचना की। काव्य में संगीत का प्रयोग किया। ब्रजभाष के सथ खड़ीबोली कव्य की भाषा बनी। दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया जैसे परंपरागत छंद प्रयुक्त हुए। अलंकारों का सहज स्वभाविक प्रयोग किया। कुल मिलाकर भारतेंदु युगीन अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण युग माना जाता है।

33.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृतियाँ स्पष्ट कीजिए।
2) भारतेंदु युग में राष्ट्रीयता की भावना एवं सामाजिकता के संदर्भ में मत व्यक्त कीजिए।
3) भारतेंदु के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

1) भारतेंदु युगीन भक्तिभावना
2) भारतेंदु युग की शृंगारिकता
3) भारतेंदु युग का नारीविषयक चिंतन

ग) एक–दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) कन्हैयालाल पोतदार ने अलंकारविषयक कौनसा ग्रंथ लिखाा?
2) 'रघुवंश' और 'मेघदूत' का किस कवि ने हिंदी में अनुवाद किया?
3) भारतेंदु युगीन चार प्रवृतियों का उल्लेख कीजिए।
4) भारतेंदु युगीन प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।

घ) सही पर्याय लिखिए

1) भाारतेंदु की 'कविवचन सुधा' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ?

   अ) सन 1858 ब) सन 1868 क) सन 1878 ड) सन 1998

2) भारतेंदु किसके अनन्य भक्त थे?

   अ) रामकृष्ण ब) रामसीता क) हनुमान ड) अंबिका

3) प्रेममाधुरी प्रेम फुलवारी किसकी रचनाएँ है?

   अ) गुप्त ब) प्रेमधन क) भारतेंदु ड) व्यास

33.7 स्वाध्याय क्षेत्रीय कार्य :

1) ग्रंथालय में जाकर भारतेंदु युगीन रीति निरूपक काव्यग्रंथों की सूची बनाइए।
2) भारतेंदु युग में जिन कृतियों के अनुवाद हुए उनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त कीजिए।
3) समस्यापूर्ति की दृष्टि से काव्यगोष्ठी आयोजित कीजिए।
4) भारतेंदु युगीन प्रवृत्तियों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

33.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

1) हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2) आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे
3) हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामसजन पाण्डेय
4) हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ – डॉ. नामदेव उतकर

pppp

इकाई – 34
द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

34.1 उद्देश्य

34.2 प्रस्तावना

34.3 विषय विवरण

34.3.1 द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

34.4 शब्दार्थ

34.5 सारांश

34.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

34.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

34.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

34.1 उद्देश्य :

- द्विवेदी युग की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- महावीरप्रसाद द्विवेदी के योगदान को समझ सकेंगे।

34.1 प्रस्तावना :

आधुनिक काव्यधारा में द्विवेदी युग सन 1903 से सन 1918 तक माना जाता है। सन 1918 से द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ का और नई स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का आरंभ होने लगा था। सन 1903 से 1925 तक महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में साहित्यिक गतिविधियाँ जोरों पर थी। वे ही इस युग के मार्गदर्शक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की उल्लेखनीय पत्रिका 'सरस्वती' का संपादन किया। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा और खड़ीबोली का विवाद सामप्त हुआ और साहित्य के गद्य एवं पद्य के क्षेत्रों में वह प्रतिष्ठित हुई। वह व्याकरण सम्मत और परिष्कृत भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी थी। द्विवेदी ने खड़ी बोली में प्रचुर मात्रा में कविताएँ लिखीं। इस युग में काव्य के क्षेत्र में कई नए विष्यों और इतिवृत्तात्मकता को महत्व मिला। भारतेंदु युग में जिन प्रवृत्तियों का आरंभ हुआ था। उसका सशक्त विकास द्विवेदी युग में हुआ। द्विवेदी युग में ही खड़ीबोली में महाकाव्य खण्डकाव्य एवं मुक्तक काव्यों की रचना प्रारंभ हुई। अत: इस युग को द्विवेदीयुग कहना ही अधिक समीचीन एवं सार्थक है।

द्विवेदी युग को जागरण एवं सुधरकाल भी मान जाता है, क्योंकि इस युग तक आते-आते ब्रिटिश शासन की विधिवत स्थापनाहो चुकी थी। अंग्रेजी साम्राज्य भारत में स्वायित्व प्राप्त करने के लिए राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में दखल दे रहा था। समाजसुधारक, नेता, धार्मिक संस्थाओं के कारण शिक्षित वर्ग में जागरूकता निर्माण होने लगी थी। उसकी अभिव्यक्ति इस काल के साहित्य में मिलती है।

34.3 विषय - विवरण :

34.3.1 द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ :

द्विवेदी युग की काव्य प्रवृत्तियों में तत्कालीन स्थितियों का योगदान महत्वपूर्ण है। तत्कालीन सामाजिक संस्थाएँ, राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, मानवतावाद का संदेश, आदर्शवाद, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव इस युग के काव्य पर परिलक्षित होता है। द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार की है -

खडीबोली की पूर्ण प्रतिष्ठा :

द्विवेदी युग में खड़ीबोली की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। भारतेंदु युग के काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग होता था। आगे चलकर महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से खड़ीबोली को प्रोत्साहन मिला। श्रीधरपाठक जैसे कवि खड़ीबोली के सशक्त समर्थक बने। मैथिलीशरण गुप्त ने सर्वप्रथम 'जयद्रथ वध' नामक खंडकाव्य की रचना की और तभी से खड़ीबोली के प्रयोग को गति प्राप्त हुई। इसके पश्चात अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने खडीबोली में प्रियप्रवास महाकाव्य लिखा। फलस्वरूप खड़ीबोली की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित होने लगा और वे खड़ीबोली में रचना करने लगे। तात्पर्य यह है कि द्विवेदी युग के साथ खड़ीबोली का प्रारंभ हुआ और उसे गति प्राप्त हुई।

राष्ट्रीयता :

द्विवेदी युग राजनीतिक चेतना एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग था। समस्त देश में राष्ट्रीयता की भावना पनप रही थी। इस युग के प्राय: सभी कवि राष्ट्रीय भावना के कारण देशभक्ति प्रधान कविताएँ लिख रहे थे। पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप मानते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति और आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा साहित्य से व्यक्त होने लगी। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने स्वदेश संगीत की लय पर भारतवासियों को संबोधित करते हुए लिखा हैं कि -

''हम क्या थे, क्या हो गए है और क्या होंगे अभी।
अब आओ, विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।''

नाथुराम शर्मा शंकर ने प्राणों की बाजी लगाने का आवाहन करने हुए लिखा हैं कि –

''देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की बेदी पर करना होगा।''

रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' 'खंडकाव्य' से राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहन देकर परोक्ष रूप से परतंत्रता के बंधन काटने का संदेश दिया। राष्ट्रीयता की भावन को जागृत करने के लिए देश की आर्थिक विपन्नता, सामजिक कुरीतियों, दृढ़ प्रथाओं, धार्मिक आडंबरों का विरोध करने के लिए कविताएँ लिखी। देश की दीन-हीन दशा पर मैथिलीशरण गुप्त तथा ठाकुर गोपलशरण सिंह ने दुख और क्षोभ व्यक्त किया। विदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर इन कवियों ने अधिक बल दिया।

इसी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' की रचना की। जिसमें अत्यंत विश्वास के साथ भारतवर्ष की श्रेष्ठता की घोषणा की है –

''भू-लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लिलास्थल कहाँ? भैया, मनोहर गीति हिमालय और गंगाजल जहाँ। संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है? उसका की जो ऋषि भूमि है, वह भारतवर्ष है।''

भारत की तत्कालीन दशा पर दुख व्यक्त करते हुए भारतवर्ष में व्याप्त आलस्य, फूट, खुदगर्जी आदि अभिशापों का उल्लेख इन कवियों ने किया हैं। राम देवीप्रसाद पूर्ण ने लिखा हैं कि –

''भारत खण्ड का हाल जरा देखो है कैसा?
आलस्य का जंजाल जरा देखो है कैसा?
जरा फूट की दशा खोलकर आँखें, देखों।
खुदगर्जी का नशा खोलकर आँखें देखों।''

तात्पर्य यह है कि द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता का स्वर सबसे अधिक मुखरित रहा है।

मानवता :

द्विवेदी युगीन काव्य के पूर्व ईश्वरावतार, राजा, सामंत, योद्धा, नायिकाओं को स्थान मिला था। किंतु द्विवेदी युग में यह गौरव सामान्य मानव को प्राप्त हुआ। मानवमात्र के सुख-दुख और परिस्थितियों का वर्णन काव्य में बड़ी सहजता से होने लगा। हीन-दीन, कृषक, विधवा आदि के दुखों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया जाने लगा। मैथिलीशरण गुप्त ने 'किसान', सियारामशरण गुप्त ने 'अनाथ' तथा सनेही ने 'कृषक नंदन' कविताएँ लिखी। माथुराम शर्मा शंकर ने विधवाओं के कष्टमय जीवन का मार्मिक वर्णन किया। शिक्षाविहित नारियों की दुर्दशा की ओर इस काल के कवियों ने ध्यानाकर्षित किया। वास्तव में मानव सुलभ सहानुभूति इस प्रकार की कविताओं में की प्रेरक भावना थी। इसी भावना से प्रेरित होकर हरिऔध ने जातिगत विषमता का उल्लेख किया।

इस युग की कविताओं में बालविवाह, स्त्रीसुधार, शिक्षाप्रसार आदि सामाजिक समस्याओं कोा वर्ण्य विषम बनाया गया।

नीति और आदर्श :

द्विवेदी युगीन काव्य आदर्शवादी और नीतिपरक है। इतिहस, पुराण से गृहित कथा-प्रसंगों के आधार पर अथवा कल्पनाश्रित उज्ज्वल कथाएँ लेकर आदर्श चरित्रों पर अनेक प्रबंधकाव्य लिखे गए। इन सभी में असत् पर सत् की विजय दिखाते हुए स्वार्थ, त्याग, कर्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उदात्त आदर्शों की प्रेरणा की स्थापना का प्रयास किया गया। हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'बिकटभट', 'गोकुलचंद्र शर्मा' का 'गांधी गौरव', रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' आदि काव्यों में आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई। इन आख्यानक कृतियों के अतिरिक्त इस काल में नीतिपरक और उपदेशप्रधान रचनाएँ भी बड़े पैमाने पर हुई। इनमें स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय प्रमुख रहे हैं।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम को जीवन की अद्‌भुत शक्ति माना और प्रेम की सार्थकता पर लिखा है कि – ''प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदयालोक प्रियप्रवास, साकेत, मिलन आदि काव्यों में इसी प्रेम के उदात्त स्वरूप का चित्रण हुआ है। प्रियप्रवास की नायिका राधा को समाजसेविका के रूप में चित्रित किया गया है। 'साकेत' की उदार चरित्र नायिका स्वयं को प्रियपथ का विघ्न बनने से रोकती हुई चित्रित की उच्चता प्रतिपादित की गई है।

वर्ण्यविषय का क्षेत्र विस्तार :

वर्ण्यविषय में व्यापकता और विविधता इस युग की अन्यतम विशेषता है। जैसा कि महावीरप्रसद द्‌विवेदी ने लिखा है – ''चींटी से लेकर हाथी पर्यंत पशु, भिक्षुक से राजा पर्यंत मनुष्य, बिंदु से लेकर समुद्र तक जल, अनंत आकाश, अनंत पृथ्वी, अनंत पर्वत सभी पर कविताएँ हो सकती है। अतएव जीवन जगत् का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा जिसपर इस काल में कोई कविता लिखी न गई हो। परोपकार, मुरली, कृषक, लडकपन, प्रणय, ईर्ष्या, निद्रा, मेहंदी, नेकटाई, मनोव्यथा, कुलीनता, पौरुष, भिक्षुक, स्नेह, सुखमय जीवन, ग्राम–गौरव आदि साधारण विषयों पर कविताएँ लिखी गई हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामचंद्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह आदि ने प्रकृति के अत्यंत मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। द्‌विवेदी युग के प्रकृति चित्रण में कल्पना वैभव के स्थान पर यथार्थता एवं ताजगी है। प्रियप्रवास का आरंभ ही प्रकृति वर्णन से हुआ है जैसे –

''दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू–शिखा पर भी अब राजसी
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रथा।''

हास्य–व्यंग्य काव्य :

भारतेंदु जैसे जिंदादिली, चुहलबाजी और अक्खड़पन एवं हास्य व्यंग्य पूर्ण कविता का प्राचुर्य द्‌विवेदी युग में नहीं है। द्‌विवेदी के व्यक्तित्व के प्रभाव स्वरूप लेखन अपेक्षाकृत संयत और मर्यादित है। हास्य–व्यंग्य के विषय राजनीतिक शोषण, सामाजिक कुरीतियाँ, धर्माडंबर, लकीर की फकिरी, विदेशियों का अंधानुकरण, फैशन परस्ती, व्यभिचार आदि है। इस युग के सशक्त व्यंग्यकार बालमुकुंद गुप्त है उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन को अपने व्यंग्य और हास्य का प्रमुख आलंबन बनाया। एक बार कर्जन ने भारतवासियों को झूठा कहा था, इसी को लक्ष्य करके मैथिलीशरण गुप्त ने उन पर मार्मिक प्रहार करते हुए लिखा था कि –

''हमसे सच की सूनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी
सच है सभ्य देश की चीज, तुझको उसकी कहा तमीज
औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उडाना
यही पक्का सच्चापन है, सहज कहना तो कच्चापन है।

उन्होंने 'आजकल का सुख' कविता में स्वार्थी, खुशामदी और विलासी जीवन व्यतीत करने वालों पर व्यंग्य किया है ।

काव्यरूपों का वैविध्य :

द्‌विवेदी युग में अनेकविध काव्यरूपों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। काव्यक्षेत्र में प्रचलित प्रबंध, मुक्तक, प्रगीत में अधिकांश काव्य सृजन हुआ हैं। कथाश्रीत काव्य रचना अधिक सुगम प्रतीत होने से इस युग के कवियों में 'प्रियप्रवास', 'रामचरित चिंतामणि', 'साचेत' आदि काव्यों की रचनाएँ की। हिंदी के अनेक श्रेष्ठ खंडकाव्य इसी युग

में लिखे गए । मैथिलीशरण गुप्त कृत 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'किसान' अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'वैदेही वनवास', प्रसाद कृत 'प्रेम पथिक' सितारामशरण गुप्त कृत 'मौर्यविजय' राम नरेश त्रिपाठी कृत 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' तथा गोकुल शर्मा कृत 'गांधी गौरव' आदि।

मुक्तक काव्य रचना के लिए इस युग के कवि प्रवृत्त हुए। छोटे-छोटे विषयों पर स्वतंत्र कविताएँ लिखी गई। नाथुराम शर्मा तथा 'हरिऔध' ने समस्यापूर्ति के रूप में अनेक सुंदर मुक्तक लिखें। प्रगीत काव्य लिखने का प्रारंभ इस युग की विशेषता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रगीत की दृष्टि से यह बीजवपन काल है।

छंद-वैविध्य :

द्विवेदी युग में वर्ण्य-विषय के विस्तार के कारण ही छंद के प्रयोग में विविधता मिलती है। इस युग के कवि दोहा, कवित्त या सवैया के प्रयोग तक ही सीमित नहीं रहे अपितु रोला, छपाय, कुंडलियाँ, गीतिका, हरीगीतिका आदि छंदों का भी कुशलतापूर्वक प्रयोग करते रहे हैं। हरिऔध ने छंदप्रयोग में अद्भुत कौशल का परिचय दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने छंद के विशेषीकरण का परामर्श दिया था, गोपालशरण सिंह ने कवित्त, सवैय को विशेष रूप से अपनाया।

अनुवाद कार्य :

इस युग में अनुवाद करने की ओर भी कवियों का ध्यान गया। मैथिलीशरण गुप्त ने मायकेल मधुसुदन के 'मेघनाथ वध' का अनुवाद किया । श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ के कई ग्रंथों का अनुवाद किया। अंग्रेजी कवियों की कविताओं के भी अनुवाद किए गए । संस्कृत के कालिदास ग्रंथ का अनुवाद किया गया। इस अनुवाद का प्रमुख उद्देश्य हिंदी के खड़ीबोली साहित्य को समृद्ध करना था। इसकी प्रेरणा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दी थी। संक्षेप में द्विवेदी युगीन विशेषताओं का प्रभाव परवर्ती काव्य सृजन पर पूर्णतया परिलक्षित होता है।

34.4 शब्दार्थ

पुनरुत्थान - पुनरुज्जीवन

खुदगर्जी - स्वार्थ परता

जिंदादिली - उत्साही

आख्यानक - छोटा आख्यान, कथानक

औटना - देर तक किसी पदार्थ का उबालकर गाढा करना

34.5 सारांश :

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें ही महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रखर प्रतिभा के फलस्वरूप यह काल उन्हीं के नाम से पहचाना जाता है। द्विवेदी काल के पूर्व ब्रजभाषा का वर्चस्व था। यद्विपि कतिपय रचनाकार खड़ीबोली में काव्य रचना कर रहे थे। सन 1903 में 'सरस्वती' के संपादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नायिका भेद छोड़कर विविध विषयों पर लिखने की प्रेरणा दी। आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा और उनके वात्सल्यमय प्रोत्साहन के फलस्वरूप अनेक साहित्यकार सामने आए जिनमें मैथिलीशरण गुप्ता, गोपालराव सिंह, नाथुराम शर्मा 'शंकर', हरिऔध, रायदेवीप्रसाद पूर्ण आदि उल्लेखनीय हैं।

विषय वैविध्य और नवीनता के साथ आचार्य द्विवेदी ने भाषा की शुद्धता पर विशेष बल दिया, फलस्वरूप इस काल की भाषा व्याकरण सम्मत एवं वर्तनी की दृष्टि से शुद्ध एवं स्थिर है। इस युग की कविमय विशेषताएँ हैं। राष्ट्रीयता प्रमुख प्रवृत्ति रही है। कविगण अपने काव्य के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को प्रेरित कर रहे थे। नाथुराम शर्मा 'शंकर', राम नरेश त्रिपाठी जैसे कवि प्राणों के बलिदान का आवाहन कर रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त हमारे अतीत की उदात्तता व्यक्त करके जनता को प्रेरित कर रहे थे।

इसी युग में सामान्य मानवता की स्थापना हुई। अर्थात जनसाधारण काव्य का विषय बना। किसानों और मजदूरों को लेकर काव्य लिखा जाने लगा। द्विवेदी ने जाति-पॉति तथा अन्याय एवं दुर्व्यवहार का चित्रण करके मानव समाज को सोचने के लिए बाध्य किया। मैथिलीशरण गुप्ता ने 'किसान', सियारामशरण गुप्त ने 'अनाथ' कविताएँ लिखी। बालमुकुंद गुप्त और नाथुराम शर्मा 'शंकर' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें समस्त काव्यरूपों का प्रणयन हुआ। जिसने परवर्ती काव्य पर प्रभाव डाला। प्रबन्ध मुक्तक, प्रगीत काव्यरूपों को कवियों द्वारा अपनाया गया । महाकाव्यों एवं खंडकाव्यों की अनेक रचनाएँ प्रस्तुत हुई। विविध विषयों पर सुंदर प्रगीत लिखे गए । नाथुराम शर्मा 'शंकर' तथा हरिऔध ने अनेक सुंदर मुक्तक लिखें। इतिवृत्तात्मकता काव्य की शक्ती बनी। इसी काल में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली के प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 'भारत-भारती' खड़ीबोली की पहली रचना थी जो अत्यंत लोकप्रिया हुई। वर्ण्य विषय की विविधता के साथ छंद वैविध्य इस काल की विशेषता है। परंपरागत दोहा, कवित्त के प्रयोग के स्थान पर रोला, छप्पय, गीतिका, कुण्डलियाँ, हरिगीतिका आदि छंदों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया गया। अनुवाद करने की परंपरा भी इस युग में दिखाई देती है। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक का कार्य इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि द्विवेदीकालीन कविता अपनी विशेषताओं के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

34.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीयता को स्पष्ट कीजिए।
2) 'द्विवेदी युगीन कविता के वर्ण्य विषय का क्षेत्र विस्तार हुआ है' - निरूपण कीजिए।
3) 'द्विवेदी कालीन प्रवृत्तियों ने क्रांति और आदर्श तथा हास्य-व्यंग्य काव्य का अंकन हुआ हैं' - स्पष्ट कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ :

1) द्विवेदी युगीन कविता में खड़ीबोली ।
2) द्विवेदी युगीन काव्य में व्यक्त मानवता ।
3) द्विवेदी युग में प्रयुक्त विविध काव्यरूप ।

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

1) हरिऔध ने खड़ीबोली में प्रथम महाकाव्य कौन-सा लिखा?
2) द्विवेदी युग में किस बोली को पूर्ण प्रतिष्ठा दी गई?
3) द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध चार रचनाओं के नाम लिखिए ।
4) द्विवेदी युगीन प्रसिद्ध कवियों का उल्लेख कीजिए ।
5) मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-रचनाओं के नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए :

1) 'पथिक मिलन' किसकी रचनाएँ है?
   अ) रामनरेश त्रिपाठी ब) गुप्त क) हरिऔध ड) द्विवेदी
2) रामनरेश त्रिपाठी ने किसे अद्भुत माना है?
   अ) दुख ब) सुख क) प्रेम ड) हास्य
3) प्रगीत, मुक्तक, प्रबंध किसके भेद हैं?
   अ) गद्य ब) काव्य क) नाटक ड) कहानी

34.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

1) द्विवेदी युगीन कविताओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कीजिए।
2) 'जयद्रथ वध' काव्य के संदर्भ में सामग्री एकत्रित कर खंडकाव्य की विशेषताएँ निर्धारित कीजिए।
3) द्विवेदी युग के हास्य-व्यंग परक कवियों की सूची तैयार कीजिए।

34.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

1) हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2) हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय
3) हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सज्जन राम केणी

pppp

इकाई – 35
राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा एवं कवियों का योगदान

35.1 उद्देश

35.2 प्रस्तावना

35.3 विषय–विवरण

35.3.1 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में मैथिली शरण गुप्ता का योगदान

35.3.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में रामधारी सिंह दिनकर का योगदान

35.3.3 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में माखललाल चतुर्वेदी का योगदान

35.3.4 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का योगदान

35.3.5 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में सुभदाकुमारी चौहान का योगदान

35.4 शब्दार्थ

35.5 सारांश

35.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

35.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

35.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

35.1 उद्देश :

1) तत्कालीन कविता में व्यक्त राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

2) इस युग की कविता में देश के प्रति कवियों के योगदान को समझ सकेंगे।

3) कविता में उस युग के प्रतिबिंब देख सकेंगे।

35.2 प्रस्तावना :

राष्ट्रीय काव्य की संकल्पना आधुनिक युग की देन है। इसके पूर्व हिंदी के आदिकालीन साहित्य में वीर रस की रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओं में वीरोत्तेजक भावनाएँ, स्वामी भक्ती, भूमि प्रेम, राजपूतों का गौरव और अपने प्रदेश के लिए प्राण त्याग ने की भावना मिलती है। इसके पश्चात्त, रीतिकाल में वीररस प्रधान राष्ट्रीय काव्यधारा प्रवाहित हुई है। जिसके शीर्ष कवि भूषण रहे हैं। डॉ. डी. के. शर्मा के अनुसार 'इन कवियों की समस्त भावनाएँ अपने सामंतों, आश्रयदाताओं और उनके जीवन की छोटी मोटी घटनाओं तक ही सीमित है। व्यापक देश-राष्ट्रहित की भावना का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं था। आश्रयदाताओं के शौर्य की प्रशंसा करना ही इन कवियों का उद्देश था।

हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा का प्रारंभ भारतेंदु से माना जाता है। उन्होंने जन्म भूमि के प्रति प्रेम, स्वर्णिम अतीत, विदेशी सासन की निंदा, वर्तमान दशा पर क्षोभ, वीर पुरुष नेताओं की प्रशंसा, राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम आदि विषयों पर कविताएँ लिखी। भारतेंदु कालीन कविताओं में जो राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धारा प्रवाहित हुई थी उसका विकास छायावादी युग में हुआ है। देशवासियों को गुलामी का अहसास होने लगा था। लोकतंत्र के प्रति आकर्षण बढने लगा था। जिसका पल्लवन द्विवेदी युग में हुआ। भारतेंदु युग में स्वभाषा, स्वदेश और स्वधर्म का गुणगान, हिंदुत्व का आग्रह अधिक रहा है। देश में अंग्रेजों का शासन था। स्वदेश की धन संपदा विदेश जान के कारण जनाक्रोश पैदा हो रहा था। आक्रोश को स्वर देने वाले प्रमुख थे लोकमान्य तिलक, गोखले और महात्मा गांधी जी। इन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर जन आंदोलन ने स्वाधीनता संग्राम का रूप लिया। प्रगतिवाद ने ही राष्ट्रीयता को अधिक प्रत्यक्ष किया।

स्वाधीनता के पूर्व और बाद की राष्ट्रीय कविता में मौलिक अंतर रहा है कि पूर्ववर्ती राष्ट्रीय काव्य में अतीत की प्रशंसा, वीर भावना का उद्रेक और बलिदान की प्रेरणा समाहित है। स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय कविता में शांति, समरसता और देश के पुनर्निर्माण के स्वस्थ तत्त्वों का समावेश है। द्विवेदी युग में जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा विकसित हुई उसका श्रेय प्रारंभिक कवियों को है। जिन्होंने राष्ट्रीयता का बीजवपन किया है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में वे कवि अधिक मुखरित हुए हैं जिन्होंने स्वयं देश के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। इसलिए उनकी देश प्रेम संबंधी कविताओं में अनुभूवि की सच्चाई और प्रामाणिक आवेश दिखाई देता है। उदा. मैथिली शरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान का योगदान उल्लेखनीय रहा हैं।

35.3 विषय - विवरण :

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कवियों का प्रिय विषय रहा है स्वणिम अतीत और उसका आदर, भारतीयता और उसका गौरव, जन एकता, जन्मभूमि और इसके प्रति ममत्व, देश दुर्दशा और अध:पतन, स्वतंत्रता, पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष। इन कवियों ने आंतरराष्ट्रीयता की अपेक्षा राष्ट्रीयता की पैरवी की हैं। इस काव्यधारा में तीन महत्त्वपूर्ण बातें हैं -

1) पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास।

2) पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती भारतीय चेतना के उद्धार के उसमें एकता और स्वाभिमान की चेतना।

3) आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था पर पुनर्विचार।

इस धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों में पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष, उद्धार का अहिंसक रूप, देशभक्ति का रागात्मक स्वरूप परिलक्षित होता है। इस काव्यधारा को विवेचित करते हुए डॉ. नगेंद्र ने लिखा हैं ''इस कविता की मूल भावना देशभक्ति है। और देशभक्ति राग और उत्साह का मिश्रण है। उत्साह उस राष्ट्रीय स्वरूप का आधार है, राग उसके मानवीय सांस्कृतिक रूप का।''

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के शिखर कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं। वे क्रमश: हिंदू राष्ट्रीयता से चलकर 'वसुधैव कुटुंबकम्' के व्यापक दर्शन तक पहुँचे हैं। उनकी समस्त काव्य कृतियों में राष्ट्र चेतना का उदात्त स्वरूप उभरा है। बाल मुकुंद गुप्त के शब्दों में 'राष्ट्रीयता की जो तान भारतेंदु ने छेड़ी थी उसका स्वर गुप्त जी में बहुत ऊँचा हो जाता है।' गुप्त प्राचीन भारतीयता को बडी श्रद्धा और प्रेम से देखते हैं। और उसकी वर्तमान दशा पर दु:ख प्रकट करते हैं। जिसे हम सांस्कृतिक राष्ट्रीयता कह सकते हैं। दिनकर के काव्य में स्वतंत्रता संग्राम की अभिव्यक्ति अत्यंत ओजस्वी शब्दों में हुई है। उनकी 'हुंकार' और 'कुरूक्षेत्र' कृतियों में राष्ट्रीय भावना का तीव्र स्वर उभरा है। माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुभद्राकुमारी आदि कवियों की प्रेरणा और प्रोत्साहन से राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई और देश के सांस्कृतिक इतिहास से जनमानस परिचित हुआ।

35.3.1 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान :

मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के लब्ध प्रतिष्ठ कवि है। उन्हेंने समय की समस्त राष्ट्र चेतना को अपने शब्दों में स्वरित किया है। उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय और चर्चित कृति है 'भारत भारती'। इसी रचना ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' के रूप में विख्यात किया है। वे अपनी राष्ट्रीय कविताओं में 'स्वर्णिम अतीत की स्मृतियों' को उजागर करते हैं। उनकी मान्यता थी कि परतंत्र देश के लिए यह बहुत जरूरी हो जाता है कि वह अपनी परंपरा को पहचाने, संस्कृति की श्रेष्ठता को समझे, वीरता की भावना को पुनर्जीवित करें। 'किसान' नामक खंड काव्य में उन्होंने देशप्रेम को व्यक्त किया है। 'पंचवटी' में राष्ट्रीय भावना के संकेत मिलते हैं। 'साकेत' में उन्होंने राम को भक्ति का केंद्र नहीं अपितु राष्ट्रीय एवं प्रजातंत्रीय व्यवस्था का प्रतीक माना हैं। अतीत के चित्रण द्वारा राष्ट्रीय साहित्य की अभिव्यक्ती उनकी सबसे बडी उपलब्धि है।

मैथिलीशरण गुप्त का व्यक्तित्व तीन रूपों में मिलता है। रामभक्त के रूप में, साहित्य प्रेम के रूप में और राष्ट्रप्रेमी के रूप में। उन्होंने 'भारत भारती' में देशवासियों का ध्यान अपनी वर्तमान दशा की ओर आकर्षित करते हुए अतीत की गौरवमयी झांकी प्रस्तुत की है। 'अनघ' काव्य द्वारा सत्याग्रह को प्रोत्साहन देते हुए राष्ट्रसेवा और राष्ट्ररक्षा के साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जीवन उत्सर्ग करने का संदेश दिया है। 'स्वदेश संगीत' में परतंत्रता की घोर निद्रा में सोए भारतवासियों को नवजागरण का संदेश दिया है। 'हिंदू' काव्य में राष्ट्रव्यापी सामाजिक जड़ता, धार्मिक असहिष्णुता को त्यागने की प्रेरणा दी है। 'काबा और कर्बला' में हिंदू-मुस्लिम एकता की भावना सुदृढ़ बनाने का संदेश दिया है। राष्ट्रीय कवि के रूप में मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय जागरण सबसे अधिक मुखरित हुआ है इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित किया था। उनकी समस्त रचनाओं में अर्ध शताब्दी का भारत मुखरित हुआ है। निसंदेह वे भारतीय संस्कृति और भारतीयता के सफल कवि है। उनकी राष्ट्रीय चेतना, हमारा ध्यान प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित करती है। गौरवमय अतीत के सहारे ही भविष्य के निर्माण की आशा की जा सकती है। इसी लिए 'भारत-भारती' में वे कहते हैं -

''हम कौन थे, क्या हो गये, और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें बैठ कर के, ये समस्याएँ सभी ।''

अपने युग की समस्त सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों का प्रतिनिधत्व उनकी रचनाओं में मिलता है। राष्ट्र के सच्चे शुभचिंतक होने के नाते उन्होंने उन सभी समस्याओं पर विचार किया जो देश के अध:पतन का मुख्य कारण थी।

उनके प्रबंध काव्य 'साकेत', 'यशोधरा', 'विष्णु-प्रिया', भारतीय संस्कृति से संपृक्त है। गुप्त भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त रहे हैं। यद्यपि उन्होंने हिंदू संस्कृति का विवेचन किया है परंतु वे सांप्रदायिक नहीं है उनकी निष्ठ संपूर्ण मानवता को स्पर्श करती है। उन्हीं के काव्य में खडी बोली राष्ट्रीय जागरण की भाषा बन गई थी। इसलिए उन्होंने खड़ी बोली को ही राष्ट्रीय जागृति का माध्यम बनाया। वे संस्कृति के सच्चे उद्घोषक थे। उन्होंने हिंदू संस्कृति के साथ 'गुरूकूल' काव्य में सिक्खों के दस गुरूओं के महान जीवन को चित्रित किया है। 'अर्जन और विसर्जन' में ईसाई संस्कृति के उदात्त तत्त्वों का विवेचन किया है। 'यशोधरा' और 'कुणाल-गीत' में बौद्ध संस्कृति तो 'अनघ' में जैन संस्कृति के आदर्श का निरूपण किया है।

समग्रत: गुप्त के काव्य में राष्ट्र की वाणी प्रखर हो उठी है। विदेशी दासता के युग में गुप्त की रचनाएँ जनता के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुई है।

35.2.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में रामधारी सिंह दिनकर का योगदान :

राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक काव्यधारा में उदात्त मानवीय पौरुष, भारतीय युवक चेतना एवं राष्ट्रीय जनभावनाओं के अभय गायक राष्ट्रकवि दिनकर का योगदान उल्लेखनीय है। अपनी ओजस्विता एवं तेजस्विता के कारण रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक काव्यधारा के कवियों में सर्वाधिक सबल व्यक्तित्व के धनी है। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय काव्यधारा में जनता का आक्रोश, उसकी इच्छा, आकांक्षाएँ व्यक्त की है।

दिनकर की रचनाओं में 'हुंकार', 'रेणुका', 'रसवंती', 'द्वंद्वगीत', 'धूप-छाँह', 'नील कुसूम', 'बापू', 'रश्मिरथी' आदि उल्लेखनीय हैं। 'कुरूक्षेत्र' को आधुनिक युग की गीता के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसके कथानक की प्रेरणा महाभारत युद्ध से अवश्य की गई है, परंतु आधुनिक कल्पनाशीलता के माध्यम से भीष्म के द्वारा दिलाया है। दिनकर गांधी विचारधारा से प्रभावित है। उन्हें अतीत से प्रेम है। अतीत के गौरव का पतन देखकर उनका कवि हृदय व्याकुल होता है। अतीत की झाँकी के माध्यम से उन्होंने वर्तमान पतनावस्था के चित्र उपस्थित किये हैं। भीष्म-युधिष्ठि के वादविवाद के रूप में आधुनिक युग की समस्याओं और विषमताओं पर विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा उनके संदर्भ में लिखते हैं - 'अतीत और वर्तमान पर एक सुन्दर सेतु निर्माण करने वाले शिल्पी के रूप में दिनकरजी ने विशेष सफलता पाई है। अपने को 'युगधर्म' की हुंकार बतलाने वाले क्रांतिकारी कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' दीन-दुखियों के प्रतिनिधि कवि है। दु:ख दर्द से तडपती हुई भारतीय क्षुधार्त जनता की भावनाओं को कवि ने अपने काव्य में प्रकट किया है।

'परशुराम की प्रतीज्ञा' दिनकर की क्रांतिकारी कविता है। 'हुंकार' में दिनकर की राष्ट्रीय भावना का स्वर सर्वाधिक रूप में उभरा है। 'रश्मिरथी'में जातिवाद के संकीर्ण विचारों प्रहार किया है। चीनी आक्रमण के अवसर पर लिखा गया काव्य 'परशुराम' की प्रतीज्ञा' में राष्ट्रीय स्वर आक्रोश रूप में व्यक्त हुआ है। देश की विषम दशा को देखकर कवि उस परशुराम को पुकारता है जो देश में समानता और न्याय का शासन स्थापित करने की शक्ति रखता है।

दिनकर जब साहित्य के क्षेत्र में आए तब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अपने चरम उत्कर्ष पर था। सन् 1939 से लेकर सन् 1945 तक दिनकर की कविता में उग्र राष्ट्रीयता दिखाई देती है। मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में भारतीय विद्रोह को वाणी के रूप में 'हुंकार' देने वाला यह ग्रंथ हिंदी में ही नहीं समस्त भारतीय भाषाओं में उल्लेखनीय ग्रंथ है। 'हुंकार' में उन्होंने गांधीजी के अहिंसा के प्रति असहमति जताई है। जब चारों ओर हिंसक वातावरण हो, उस समय अहिंसा का समर्थन उन्हें मान्य नहीं है। उनकी मान्यता है कि अन्याय का प्रतिकार यदि अहिंसा से संभव न हो तो हिंसा का आश्रय लेना पाप नहीं है।

दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है अपने राष्ट्र और युग के प्रति जागरूकता। उन्होंने सांस्कृतिक परंपरा एवं प्राचीन मूल्यों को नए संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर अपनी सांस्कृतिक उच्चता सिद्ध की है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उभारकर चिंतन, परीक्षण तथा आत्मालोचन का

स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया है। साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा'। गणतंत्र के आगमन द्वारा नई राष्ट्रीय कविता में नई प्रतिक्रिया प्रकट हुई है। जिनका संबंध जनता की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता से है। वे प्रजातांत्रिक व्यवस्था में प्रजातंत्र को सर्वोपरी मानते हैं। उन्होंने लिखा हैं -

'हो रहा, समय के रथ का घर्र-घर्र नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो किं जनता आती है'

दिनकर भारत का गौरव गान करते हुए गर्व का अनुभव करते हैं। वे मानते हैं कि ये वही भारत है जो अपने प्रेम और एकता के तत्त्वों को समाए हुए हैं -

''जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है।
देश-देश में वहाँ खडा भारत जीवित भारचर है।''

दिनकर की स्वतंत्रता संग्राम की अभिव्यक्ति ओजपूर्ण है। नेगों पर चढकर खेतनेवाली जवानी की उन्होंने खूब प्रशंसा की है -

''तीनों लोक चकित सुनते है, घर-घर यही कहानी।
खेल रही नेत्रों पर चढकर, रस से भरी जवानी।'

स्पष्टत: राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से संपृक्त कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के कवित्व में पौरुष, साहस और की समन्वित त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। जिसमे चिंतन भी है, भावावेश भी है और समर्थ शब्द विधान भी। वे भारतीय वीरत्व और संस्कृति के सफल चितेरे तथा प्राचीन गौरव के सरस गायक है।

35.3.3 राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में माखनवलाल चतुर्वेदी का योगदान :

माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व में साहित्य प्रेम और संस्कृति प्रेम का सुंदर समन्वय हुआ है। वे अपनी युववस्था में कांतिकारियों के साथ जुडे रहे किंतु इसके बाद गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर उनके साथ राष्ट्रीय आंदोलन का एक अंग बन गए। स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा होने के कारण उन्हें भूमिगत जीवन और जेल भी भुगतनी पडी। इनकी कविताएँ 'एक भारतीय आत्मा' के छदम नाम से प्रकाशित होती थी। उनका समस्त काव्य राष्ट्रीयता की ओजस्वी भावना से ओतप्रोत है। इनकी रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उदात्त भावना परिलक्षित होती है। शिवप्रसाद सिंह ने इनके संदर्भ में लिखा है कि - 'माखनलाल जी की राष्ट्रीय कविताओं में आदर्श की योथी उड़ान भर नहीं है। उन्होंने खुद राष्ट्रीय संग्राम में अपना सबकुछ बलिदान किया है। इसके कारण उनके स्वरों में बलिपंथी की सच्चाई, निर्भिकता और कष्टों को झेलने की अदम्य लालसा की झंकार है। 'विजया दशमी' प्रवासी भारतीय वृंद, हिंदुओं का रणगीत आदि कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक प्रखर है। वे अपनी भक्तिपरक कविताओं में भी ईश्वर से स्वाधीनता प्राप्ति का वरदान माँगते हैं। बलिदान, जवानी, सिपाही, पुष्प की अभिलाषा, मरण त्यौहार, कैदी और कोकिला आदि रचनाएँ उनकी राष्ट्रभक्ति और सांस्कृतिक चेतना को प्रस्फुरित करती है ।

माखनलाल चतुर्वेदी के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक योगदान को दृष्टि क्रेंद में रखते हुए कन्हैयालाल सहल ने लिखा है- उदात्त आदर्शों की रक्षा के लिए जो कवि बलिदान की भावना को लेकर मृत्यु की जय-जय कर रहा हो, जो केवल स्वप्नलोक में ही नहीं, किंतु वास्तविक जगत में भी राष्ट्रीय पथ का सच्चा पथिक रह चुका हो और अंधेरे में ही जिसके सूर्य उगे और अस्त हुए हो उस कवि के काव्य की ओजस्वीता और मार्मिकता का तो भला क्या कहना? माखनलाल ने देशपर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले शहिदों के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है -

''मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर देना तुम फेक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाये वीर अनेक।''

राष्ट्रीय कविता सांस्कृतिक एकता और ती राष्ट्रप्रेम की कविता है। माखनलाल चतुर्वेदी ने तत्कालीन परतंत्रीय वातावरण को दृष्टि में रखकर राष्ट्रीय प्रेम केंद्रित कविताएँ लिखी है। कवि स्वयं मानते है कि 'कविता, राष्ट्रीय कविता केवल वह नहीं है जिसमें खून, फाँसी, कारावास और काले पानी का वर्णन हो, अपितु वह भी है जो विभिन्न राष्ट्रों की भाषा-वतनों से ऊँचा उठकर बोल सके।' भारत का युगधर्म राष्ट्रीय है। और युग के प्रतिनिधि के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी अद्‌वितीय कवि रहे हैं। उनकी कविताओं में तिलक जैसी दृढ़ता, गांधी जैसी अहिंसा और नेहरू की शांतिप्रियता परिलक्षित होती है। पराधीनता की स्थिति में कवि बेचैन हो गया था। इसी लिए उसकी कविताओं मे आक्रोश का तीव्र स्वर उभड़ा है। अपने क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी लिखते हैं -

''रक्त है या नस्सों में शुद्‌ध पानी।

जाँचकर, तू सीस देकर जवानी ।''

जब स्वाधीनता संग्राम में हजारों लोग कारावास भुगत रहे थे तो उनकी उदात्तता को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था -

''क्या देख न सकते जंजीरों का गहना।

हथकडियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना।'

स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानी चतुर्वेदी 'आजादी के दीवाने थे। देश की पराधीनता पर वे विक्षुब्ध थे। 'कैदी और कोकिला' कविता में पराधीनता का दुःख व्यंजित हुआ है। गगन में स्वतंत्रता पूर्वक विहार करने वाली कोकिला की कंठध्वनि सुनकर कविमन में पराधीनता की विशेष अनुभूति जागृत हो जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् कवि राष्ट्रप्रेम की आवश्यकता को अधिक महसूस करता है। उनकी राष्ट्रीयता विश्वबंधुत्व का स्वप्न देखती है। उनकी मान्यता है कि स्वतंत्रता के बाद हमारी राष्ट्रीयता की कसौटी हमारी आंतराष्ट्रीयता है। स्वतंत्रता के पश्चात स्वार्थ और सत्ता का संघर्ष प्रारंभ हुआ, सामाजिक विषमता व्याप्त हुई, कुर्सी की खींचातान को देखकर कवि दुखी हुआ। देश में पदलोलुपता, स्वार्थपरता, कालाबाजारी के व्याप्त होने के कारण कवि व्यथित होता है। कवि का व्यंग्य द्रष्टव्य है -

'खेत धुले, उजले कपडों से अपने पापों को मत ढाको।'

देश की समसामायिक स्थिति को देखकर माखनलाल चतुर्वेदी ने जो कविताएँ लिखी वे भारतीय राष्ट्रीयता की पोषक हैं।

35.3.4 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का योगदान :

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा को आगे बढ़ाने वाली पत्रिका 'प्रभा' के संपादक के रूप में कुछ वर्षों तक कार्य किया । सन् 1936 में इनका पहला कविता संग्रह 'कुंकुम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। जिसमें प्रखर राष्ट्रीयता के गीत हैं । 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल-पुथल मच जाये' तथा 'आज खड्ग की धार कुंठित है' जैसी प्रसिद्‌ध रचनाएँ कुंकुम में संग्रहित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 'रश्मिरथी' और 'अपलक' काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जिनमें राष्ट्रीयता की भावना व्यक्त हुई है। 'प्राणार्पण' नामक संग्रह में केवल राष्ट्रीय कविताएँ संकलित हैं । उन्हें अपने देश और देश की मिट्‌टी से गहरा प्रेम था जो उनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है। कवि का व्यक्तिवाद राष्ट्रीयता में प्रकट हुआ है वे लिखते हैं -

''मैं हूँ भारत के भविष्य का मूर्तिमान विश्वास महान,
मैं हूँ आस हिमाचल समथिर, मैं हूँ मूर्तिमान बलिदान।''

उनके गीतों का संग्रह 'अपलक' का सृजन जेल में हुआ है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के कवियों के समान नवीन के काव्य के वर्ण्य विषय हैं - अतीत की महिमा का गौरव गान, तत्कालीन भारत की दीन दशा जिसके

परिणाम स्वरूप व्यथा और आक्रोश और उज्वल भविष्य की कामना वास्तव में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' विद्रोह और विप्लव के कवि माने जाते हैं। राष्ट्रीय जागरण और क्रांति के लिए उन्होंने निरंतर प्रयास किया है। हिंदुस्तान हमारा है। कोई विदेशी सत्ता स्वदेश पर अधिक समय तक शासन नहीं कर सकती यह उनका दृढ विश्वास था। दिनकर ने बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को कवियोद्धा तथा देशभक्त के रूप नवाजा है। उनका हिंदी के प्रति प्रेम उनकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक काव्यधारा का ही एक अंग है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य का प्रारंभ ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य से हुआ है। राष्ट्र के प्रति प्रेम, स्वर्णिम अतीत से लेकर वर्तमान दुरावस्था तक का चित्रण, विदेशी शासक और उसकी साम्राज्यवादी नीतियों की निंदा करते हुए उन्हेंने ओजपूर्ण स्वरों में वीर पुरुषों की प्रशंसा की है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार 'नवीन जी स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उनका व्यक्तित्व निर्भिक शौर्य का प्रतीक है, उनकी वाणी तेज के स्फुल्लिंग उगलती है।' आत्मा की वाणी होने के कारण राष्ट्रभक्ति सर्वत्र व्याप्त है। 'तुम हो काल के भी काल, जूठे पत्ते, वीर पूजा की भावा, पराधीन भारत, क्रांति, क्रांति का शंख, भरत खंड के तुम हो जनगण आदि अनेक कविताओं में उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना दृष्टिगत होती है।

विषय की दृष्टि से नवीन की कविताएँ तीन आयामों में दृष्टिगत होती है - राष्ट्रीयता, स्वच्छंद प्रेम और दर्शन। इनकी राष्ट्रीय कविता में देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, अतीत का गुणगान, वर्तमान स्थिति पर आक्रोश, विदेशी सत्ता का विरोध, सामाजिक, राजनीतिक दुर्दशा व्यक्त हुई है। हिंदी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा में उन्होंने सांस्कृतिक पक्ष को अधिक ग्रहण किया है। इस दृष्टि से उनकी 'प्राणार्पण' कृति महत्त्वपूर्ण है। उदयशंकर भट्ट ने उनकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा को दृष्टि में रखते हुए लिखा है-

''हे अमर भारती के सुपुत्र! श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन।
तुम जन उपवन के मेघदूत तुम जीवन के गायक प्रवीण।''

उनके सम्मान मे भवानीप्रसाद मिश्र लिखते हैं - ''बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविताएँ राष्ट्रीय आंदोलन का काव्यमय इतिहास प्रस्तुत करती है।'' नवीन को स्वतंत्रता सेनानियों पर पूर्ण विश्वास था कि वे कभी भी डगमगा नहीं सकते और न ही पीछे हट सकते हैं। इसलिए गांधीजीद्वारा चौरी-चौरा के बाद सत्याग्रह बंद करने पर वे अत्यंत उद्विग्न हुए थे। यही अपमान बोध उनके 'पराजय गीत'में स्पष्ट हुआ है। संपूर्ण ब्रह्मांड में उथल-पुथल की भावना उनमें प्रस्फरित होने लगी, क्रांतिवाद के इस अग्रदूत की क्रांतिकारी भावना उनके 'विप्लवगान' में ती रूप में प्रस्फुरित हुई। राष्ट्रीय चेतना जब चरमोत्कर्ष पर पहुँची तब 'आओ क्रांति बलाएँ ले लूँ, अनाहूत आ गई भली' कहकर नवीन ने क्रांति का आवाहन किया। नवीन की राष्ट्रीय सांस्कृतिक वाणी के उन वरद पुत्रों में से थे जिनकी रससिद्ध तप:पूर्ण आत्मा को मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती।

35.3.5 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में सुभद्राकुमारी चौहान का योगदान :

सुभद्रा कुमारी चौहान भावप्रवण कवयित्री है। असहयोग आंदोलन के फलस्वरूप शिक्षा छोड़कर वे स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने लगी। इसके लिए उन्हें कई बार कारावास भी भोगना पड़ा। भारतीय गौरव तथा अभिमान की भावना का संचार जन-समूह में करने का कार्य उन्होंने अपने कृतित्व के माध्यम से सफलता पूर्वक किया है। वीरता, साहस और युद्ध-कौशल के वर्णन द्वारा लोगों में उत्साह एवं आवेश का संचार करने का प्रयास सुभद्रा कुमारी ने किया है। अपनी कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' में उन्होंने रामायण और महाभारत काल के पृष्ठों को पलटा है। ऐतिहासिक पुरुषों तथा ऐतिहासिक स्थानों की स्मृति लोगों में तरोताजा कर अतीत पौरूष के साहस, निर्भिकता एवं बाल के आदर्श को स्थापित कर लोगों में उत्तेजन का प्रसार कर प्राणों में संचार करनें का सफल प्रयास किया है। सुभद्रा जी अतीत को मौन को त्यागकर लंका में आग क्यों लगी थी इसका स्पष्टीकरण देने का आवाहन करती है, तो कुरुक्षेत्र को अपने अनंत अनुभव बताने का उपदेश भी देती है।

स्वांतत्र्य संग्राम से संपृक्त सुभद्रा कुमारी ने राष्ट्रीय मुक्ति के जीवन संग्राम से प्रभावित होकर स्वातंत्र्य संग्राम की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। तिलक युग के पूर्व महत्वपूर्ण दो घटनाएँ घटित हुई थी – एक तो सन् 1857 की क्रांति और दूसरी कांग्रेस की स्थापना। कांग्रेस को उन दिनों कविगण भारत की राष्ट्रीय आत्मा के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। जिसने उसे सांस्कृतिक क्षेत्र से निकालकर राजनीतिक रूप प्रदान किया था। राष्ट्रवाद के इतिहास में कांग्रेस की स्थापना महत्त्वपूर्ण घटना थी। सुभद्रा कुमारी ने उसके सम्मान में उसे (कांग्रेस) 'मैया' तथा देशवासियों की आकांक्षा की मूर्ति कहा है।

सन् 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध राज्यक्रांति का प्रथम विस्फोट हुआ। जिसे स्वांतत्र्य-संग्राम का प्रथम सोपान कहा जाता है। अंग्रेजों के अत्याचारों और अन्यायों को रोकने का प्रयास होने लगा। सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' प्रसिद्ध कविता सन 1957 की वीरांगना पर लिखी गई है। जिसमें विद्रोहिणी झाँसी की रानी के प्रति सद्भावनाएँ मिली है तथा उनके शौर्य पूर्ण कृत्यों का उल्लेख भी।

सुभद्रा कुमारी का हृदय देशप्रेम से ओतप्रोत है। मातृमंदिर की पुकार ने उन्हें व्याकुल कर दिया और वे प्राणों का उपहार लेकर प्राणो के बलिदान हेतु प्रस्तुत हुई। आत्म त्याग मार्मिक अभिव्यंजना उनके 'मुकुल' काव्य में दृष्टिगत होती है –

''न होने दूंगी अत्याचार
चलो, मैं हो जाऊँ बलिदान
मातृ-मंदिर में हुई पुकार
चढ़ा दो मुझको भगवान।'

निःसंदेह वे अपनी बलि देकर देश के वीरत्व को जागृत करना चाहती है।

35.3.4 शब्दार्थ :

संग्राम – युद्ध, लढ़ाई

मुहैया – तैयार, मौजूद, प्रस्तुत

अलभाव – पृथकता, भिन्नता

पल्लवन – किसी बात या विषय का विस्तार करना

पूर्ववर्ती – पहले का, पूर्व होने वाला

छद्म – अपना असली रूप छिपाना, छल

35.5 सारांश :

साहित्यकार अपने समय और स्थिति का प्रतिबिंब होता है। जब भारत में स्वाधीनता संग्राम आंदोलन चल रहा था तब राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा साहित्य में क्षिप्रगति से प्रवाहित होने लगी। इस युग में अनेक कवियों ने स्वाधीनता संग्राम के लिए जन-जागृति का कार्य किया। इसलिए उनकी कविताओं में जन्मभूमि के प्रति प्रेम, भारत के अतीत की उदस्त्तता, विदेशी शासन द्वारा किऐ जा रहे शोषण का विरोध, देश के लिए शहीद होनेवाली विभूतियों के प्रति श्रद्धा परिलक्षित होती है। भारतेंदु युग में स्वभाषा, स्वदेश और स्वधर्म का जो गुणगान किया गया था उसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में विकसित किया गया।

गांधीजी के प्रभाव के कारण राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई और कवियों ने गांधीवादी तत्त्वों को दृष्टि में रखकर कविताएँ लिखी। राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता लिखने वाले कवियों ने प्रादेशिकता, सांप्रदायिकता की भावना से उपर उठकर पूरे भारत को एक संगठित इकाई के रूप में मानकर कविताऍ लिखी। डॉ. नगेंद्र ने ठीक ही लिखा है- राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा भारतेंदु काल से प्रारंभ होकर द्विवेदी काल, छायावाद काल को पार करती हुई इस काल की कविताओं में समकालीन प्रश्नों स्वरों से संयुक्त होकर और भी उदार और वैविध्यपूर्ण हो गई।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता की प्रमुख प्रवृत्ति पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष रहा। इसलिए इन कवियों

ने ब्रिटिश दमन का विरोध किया है, उत्साह के अहिंसक रूप के अंतर्गत अहिंसा के तत्त्वों को स्वीकार किया है और देशभक्ति के संबंध में इनका भावात्मक संबंध रहा है। इस काल के कवियों में सत्याग्रह के प्रति आग्रह, अहिंसा का समर्थन, विश्वप्रेम की उदात्त भावना, राष्ट्र के लिए श्रम करने वालों के प्रति सम्मान दिखाई देता है। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीयता की भावन सबसे अकिक पाई जाती है। राष्ट्रीय भावना का विकास माखनलाल चतुर्वेदी में दिखाई देता है, बालकृष्ण शर्मा नवीन स्वाधीनता संग्राम के योद्धा है। दिनकर की राष्ट्रीयता ओजपूर्ण शब्दों में व्यक्त हुई है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने देश और युग के सत्य के प्रति प्रतिबद्ध है।

समग्रत: कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में कवियों ने अपने समय को पहचान कर और देश के प्रति प्रतिवाद होकर राष्ट्रीय सांस्कृतिक स्वर मुखरित किया है

35.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए मैथिलीशरण गुप्त के योगदान पर प्रकाश डालिए।
3) हिंदी कवियों द्वारा अभिव्यक्त राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव पर प्रकाश डालिए।

ख) टिप्पणियाँ :

1) दिनकर के काव्य में प्रस्फुरित राष्ट्रीय भाव
2) मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भाव
3) सुभद्रा कुमारी चौहान का योगदान
4) माखनलाल चतुर्वेदी का योगदान

ग) एक– दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) मैथिलीशरण गुप्त की किस कृतियों नाम लिखिए।
2) 'हुंकार' के रचयिता कौन है?
3) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने किस पत्रिका का संपादन किया था?
4) दिनकर के काव्य की विशेषताएँ लिखिए।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

1) मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य का नाम क्या है?

   अ) मुकुल ब) साकेत क) हुंकार ड) पंचवटी

2) 'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना फेंक' किसकी काव्य पंक्तियाँ है?

   अ) दिनकर ब) नवीन क) माखनलाल चतुर्वेदी ड) गुप्त

3) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के पहले काव्य संग्रह का नाम क्या है?

   अ) कुंकुम ब) दाशिरथी क) अपलक ड) प्राणार्पण

4) 'झाँसी की रानी' किसकी काव्य रचना है?

   अ) सुभद्राकुमारी ब) दिनकर क) गुप्त ड) नवीन

35.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

1) अपने परिवेश में स्थित शहीद स्मारकों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करके लेख लिखिए।
2) ग्रंथालय से राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के कवियों की सूची तैयार कीजिए।
3) किसी स्वतंत्रता सेनानी का साक्षात्कार लीजिए।
4) राष्ट्रीय – सांस्कृतिक काव्यधारा की रचनाओं के नाम लिखिए।

35.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें :

1) आधुनिक हिंदी कविताओं मे राष्ट्रीय भावना – डॉ. सुधाकर शंकर कलवडे – पुस्तक संस्थान, कानपुर
2) आधुनिक हिंदी काव्य और कवि – डॅ. सुरेशचंद्र निर्मल – भावना प्रकाशन, दिल्ली.
3) माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता – सुरेंद्र यादव – प्रगति प्रकाशन, आग्रा
4) मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य – डॉ. द्‌वारका प्रसाद मित्तल – अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर

pppp

इकाई – 36
छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ

36.1 उद्देश्य

36.2 प्रस्तावना

36.3 विषय विवरण

36.3.1 छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ

36.3.2 छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ (प्रवृतियाँ)

36.3.3 छायावाद की बृहद्त्रयी

36.3.4 छायावाद की लघुत्रयी

36.4 शब्दार्थ

36.5 सारांश

36.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

36.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

36.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

36.1 उद्देश्य :

1) छायावाद की बृहद्त्रयी से परिचित होंगे।

2) छायावाद की लघुंत्रयी के काव्य की विशेषताओं को समझ पाएगे।

3) छायावाद की विशेषताओं से अवगत होंगे।

4) छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ जान सकेंगे।

36.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस काल में जो विविध काव्यधाराएँ प्रवाहित हुई है, उनमें छायावाद प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण है। छायावाद सन् 1913 से 1936 तक व्याप्त रहा है।

काव्य सृजन की दृष्टि से छायावादी युग को 'स्वच्छंदतावाद युग' भी कहा जाता है। छायावादी काव्यधारा साहित्य और कला के भावक्षेत्र में एक महान आंदोलन है। जिसकी प्रमुख भावना व्यक्तिवाद है। हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग के पश्चात् जो धारा विषय वस्तु की दृष्टि से स्वच्छंद प्रेमभावना, प्रकृति चित्रण, प्रकृति में मानवीय भावना का आरोप और कला की दृष्टि से लाक्षणिकता प्रधान एवं नवीन अभिव्यंजना पद्धति से युक्त धारा को छायावाद कहा जाने लगा। अंग्रेजी साहित्य की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की विशेषताएँ प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यंजना, सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, रहस्यात्मकता, गीत शैली आदि हिंदी के छायावाद में भी परिलक्षित होती हैं। शैली, कीटस्, बायरन की स्वच्छंद और मुक्त हृदय की कविता युवा मन को प्रभावित करने लगी। अंग्रेजी की रोमंटिक कवित उन्हें प्रेरक लगी। बंगला में रविंद्रनाथ के काव्य का हिंदी में अनुवाद हो रहा था। उनकी कविता में मन की मुक्त और स्वच्छंद प्रवृत्ति मानवतावादी स्वर तथा आध्यात्मिकता थी।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा कि – 'अपने भीतर से मोती के पाने की तरह अंतस्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया कांतिमान होती है। बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ती होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। छायावाद का सामान्यतथा अर्थ है – प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का कथन। छायावाद एक विशेष प्रकार की काव्य दृष्टि है। यह प्रकृति में मानव जीवन का बिंब देखता है।

36.3 विषय – विवरण :

36.3.1 छायावाद की प्रेरक परिस्थितियाँ

छायावादी काव्य के आरंभ में मुख्य रूप से तीन स्थितियाँ प्रमुख रही हैं।

1) अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कारण रोमंटिक काव्यधारा प्रवाहित हुई। छायावाद ने 'रोमान्टिजम्' की छंद विशेषताओं को ग्रहण किया।

2) विस्मय मिश्रित कौतुहल – जिसमें पंत ने लिखा – ''प्रथम रश्मि का आना रंगिनी तुने कैसे पहचाना।''

3) सौंदर्य प्रेम – सौंदर्य प्रेम के अंतर्गत प्रसाद ने लिखा– ''नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग।''

4) सूक्ष्म रहस्यात्मक अनुभूति – इसके अंतर्गत मानव के आंतरिक सौंदर्य का गौरव करते हुए लिखा गया –

''सरलपन ही था उसका मन
नीरालापन या उसका आभूषण।''

5) जीवन की सहजानुभूति – जीवन की सरलता के प्रति सहज स्वाभाविक दृष्टिकोण का प्रभाव भी छायावाद पर पड़ा ।

2) अंग्रेजी का बंगला साहित्य पर प्रभाव : अंग्रेजी का बंगला साहित्य पर और बंगला साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य में दृष्टिगत होने लगा।

3) बंगला साहित्य का प्रभाव : रविंद्रनाथ टैगोर जैसे विश्वकवि के साहित्य का प्रभाव छायावाद पर पड़ा। छायावाद में प्रकृति एवं मानव से संबंधित कविताएँ लिखी जाने लगी।

छायावादी काव्य के प्रेरक तत्वों में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, टैगोर तथा अरविंद दर्शन का प्रभाव रहा हैं। उनके विचारों का प्रभाव छायावादी काव्यधारा का प्रेरणा स्रोत है। तत्कालीन राजनीति में ब्रिटिशों की सत्ता थी। असंतोष एवं विद्रोह की भावनाओं ने कवियों को अंतर्मुखी बनाया था। जो आत्मकेंद्रित होकर वैयक्तिक भावनाओं के छायाचित्रों की सृष्टि करने में लगे थे। प्रेरणास्रोत के संबंध में 'उत्तरा' की भूमिका में पंत ने लिखा था कि – ''छायावाद के रूप विन्यास में कविंद्र रविंद्र तथा अंग्रेजी कवियों का प्रभाव पड़ा। भावना में युग संघर्ष की आश-निराशा का, विचार दर्शन में विश्वदेववाद, सर्वात्मवाद तथा विकासवाद का प्रभाव पड़ा।''

द्विवेदी युगीन उपयोगितावादिता दीर्घ समय तक कलाकारों को आकर्षित नहीं कर सकी। हरिऔध ने उपयोगितावाद से अभिभूत होकर 'प्रियप्रवास' में भगवान श्रीकृष्ण के स्थान पर विश्वपेमी का रूप 'राधा' को प्रदत्त किया। कुछ समय तक यह परिवर्तन प्रभावित करता रहा परंतु यह उपदेशात्मक महसूस होने लगा। द्विवेदी युग की प्रबंधात्मकता, इतिवृतात्मकता, उपदेशात्मकता, शुष्कता तथा मर्यादावादी शृंगारभावना के विरुद्ध काव्य के क्षेत्र में मुक्तक रचना, आत्मनिष्ठता, अनुभूति प्रवणता तथा स्वच्छंद शृंगार भावना ने जन्म लिया। यही प्रवृत्ति कालांतर में 'छायावाद' नाम से अभिहित होने लगी।

कला पक्ष के क्षेत्र में छायावादी कवि अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों से प्रेरित और प्रभावित हुए। और मानवीकरण का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया। स्पष्ट है कि छायावादी काव्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव निर्विवाद है।

36.3.2 छायावाद की प्रवृत्तियाँ :

छायावादी काव्य में वस्तु, रूप संयोजन, विषयविविधता, छंदविधान आदि क्षेत्रों में नवीन प्रयोग दृष्टिगत होने लगे। वर्ण्यविषय को दृष्टि में रखते हुए 'विश्वंभरनाथ उपाध्याय' ने माना कि – ''प्रकृति के जड़ शरीर में प्राण पुलक भरकर, पौराणिक, नैतिक मूल्यों में क्रांति उपस्थित कर, नारी के अशरीरी सौंदर्य की स्थापना कर, व्यक्तिगत राग-विराग, अश्रु-हास को वाणी देकर यथार्थवादी प्रकृति के स्थान पर अंतर्वृति, निरूपिणी काव्य प्रतिभा का (सृजन का) छायावादी राष्ट्राओं ने एक नूतन युग का अभिषेक किया ।

छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ निम्न प्रकार की हैं –

1) विषयगत प्रवृत्तियाँ :

* वैयक्तिकता
* सांप्रदायिक निरपेक्षता
* मानवतावाद
* शुद्धप्रकृति प्रेम एवं सौंदर्य वर्णन
* राष्ट्रीय भावना
* नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण

2) अभिव्यंजनागत प्रवृत्तियाँ :

* लाक्षणिकता
* कोमलकांत पदावली
* अलंकारिता
* प्रतीकात्मकता
* मुक्तक गीत शैली

वैयक्तिकता :

विदेशी सत्ता के कारण देश में पूंजीवादी व्यवस्था प्रारंभ हुई। पूंजीवादी व्यवस्था व्यक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करती है। व्यक्तिवाद का विकास अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार, व्यक्ति की अस्मिता, विशिष्टता, अहं, व्यक्तिगत चेतना का विकास हुआ। अत: वैयक्तिक चेतना की प्रवृत्ति छायावाद में सर्वाधिक मात्रा में दिखाई देने लगी। यह काव्य 'स्व' की चेतना का काव्य है । आत्मनिष्ठ है। इसमें अनुभूतियों एवं कल्पना को महत्व दिया गया है। वस्तुओं के रूप में सौंदर्य का मूल्यांकन कवि

अपनी रुचि के अनुसार करते है। यही वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना की पद्धति हिंदी साहित्य में गीति काव्य के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुई है । छायावाद का 'स्व' सर्वमुक्त है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान का मत हैं कि – ''छायावादी कवि का मैं प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था। इसी लिए कवि की विषयगत दृष्टि ने अपनी सूक्ष्मतिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके।'' प्रसाद, महादेवी, निराला, पंत का काव्य 'स्व' की चेतना का काव्य हैं। इन कवियों ने अपनी निजी अनुभूतियों को शब्दबद्ध किया हैं। इसी वैयक्तिकता के कारण कवि अंतर्मुखी होकर प्रकृति, वस्तु अथवा व्यक्तियों को दो दृष्टियों से देखते हैं –

1) अपनी अनुभूतियों का प्रकटन प्रकृति, वस्तु अथवा व्यक्ति पर ।

2) उस वस्तु, प्रकृति अथवा व्यक्ति का प्रभाव अपनी अनुभूति पर ।

छायावादी कवि अपने व्यक्तिगत सुखदुख में डूबे हुए हैं। प्रकृति अथवा वस्तु को अपनी आँखों से देखते हैं और अपनी धनीभूत वेदना को वाणी देते हैं। उनकी वैयक्तिकता रुग्णता की सूचक नहीं हैं। वैयक्तिक चेतना के कारण ही छायावादी काव्यधारा ने परंपरागत काव्य से अलग मार्ग अपनाया हैं। उन्होंने परंपरा से विद्रोह किया हैं इसी कारण डॉ. निर्मला जैन ने लिखा हैं – ''छायावाद इसी अर्थ में विद्रोह का काव्य है कि इसमें व्यक्ति अपने रूढ़िवादी समाज से मुक्ति चाहता है।'' डॉ. नगेंद्र ने कहा है कि – ''यही व्यक्तिभाव प्रसाद में आनंदभाव, निराला में अद्वैतवाद – पंत में आत्मरति – महादेवी में परोक्ष रूपों में प्रकट हुआ है।'' इस प्रकार छायावादी काव्य में वैयक्तिकता की भावना प्रधान है। छायावादी कवि समष्टि से निरपेक्ष होकर व्यष्टि में लीन रहता है।

सांप्रदायिक निरपेक्षता :

छायावादी बुद्धिजीवी, परंपरा से संपृक्त है। अत: वह किसी भी धार्मिक मतवाद का आग्रही नहीं है। महादेवी वर्मा का मत हैं कि – ''छायावादी कवि दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखंडता का भावन किया है। हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौंदर्य सत्ता की रहस्यमय अनुभूति को और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुख को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी। जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, आध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।'' इसके अतिरिक्त इस काव्य पर राष्ट्रीय पुनर्जागरण काल के महापुरुषों विशेषकर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधी, रविंद्रनाथ टैगोर, अरविंद के दर्शन का भी गहरा प्रभाव हुआ है। छायावादी कवि धर्म से अधिक दार्शनिक तत्वों को स्वीकार करते हैं। पंत का काव्य अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। निराला विवेकानंद के अद्वैतवाद से प्रभावित हैं, महादेवी वर्मा रहस्यवाद से प्रभावित हैं। छायावादी कवियों को धर्म एवं धर्म से ऊपजी रूढ़ियों एवं मिथ्य परंपराएँ मान्य नहीं हैं। इसलिए प्रसाद ने लिखा –

''समन्वय उनका करे समस्त।
विजयिनी मानवता हो जाय।''

मानवतावाद :

छायावादी काव्य में मानवता का संदेश अभिव्यक्त हुआ है। रविंद्र की विश्वबंधुत्व भावना का प्रभाव इन कवियों पर रहा। छायावादी कवि जाति एवं वर्गगत संकिर्णता से ऊपर उठकर विश्वमानवता का जयघोष करते हैं। इसी कारण उनके काव्य में मानव प्रेम, करुणा, सांप्रदायिकता का विरोध, उदारता, विश्वबंधुत्व, राष्ट्रीय जागरण के भाव दृष्टिगत होते हैं । डॉ. शंभुनाथ पाण्डेय के अनुसार – ''मानवतावाद छायावाद की एक ऐसी भेदक प्रवृत्ति है जो उसको हिंदी काव्य की शेष परंपरा से पृथक कर देती है।'' सन 1920 के पश्चात संपूर्ण विश्व की मानसिकता में परिवर्तन होने लगा। धर्म और राष्ट्र आदि के बंधनों को त्यागकर कल्याण की कामना की जाने लगी । छायावाद इससे प्रभावित हुआ। पंत, निराला जैसे कवि दीनदलितों के प्रति करुणा, सहानुभूति व्यक्त करते हैं। महादेवी मानवीय करुणा में समझाना चाहती हैं। प्रसाद के 'कामायनी' के मनु की चिंता मानवतावाद है।

शुद्ध प्रकृति प्रेम एवं सौन्दर्य का चित्रण :

छायावादी कवियों में शुद्ध प्रकृति प्रेम एवं सौंदर्य का चित्रण दो रूपों में मिलता है। प्रकृति के सौंदर्य, प्रेम की व्यंजना और अलौकिक प्रेम या रहस्यवाद का चित्रण। छायावादी कवि प्रकृति को आलंबन रूप में स्वीकार कर उसका शृंगारिक किंतु

सात्विक चित्रण करते हैं जो रीतिकालीन शृंगार से भिन्न है। जैसे निराला की 'जूही की कली' कविता। प्रकृति सौंदर्य से कवि इतना मुग्ध है और कहता है -

"बाले तैर बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।"

महादेवी वर्मा प्रकृति प्रेम के संबंध में लिखती है कि - "छायावाद में मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को दुख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।" पंत प्रकृति के सुकुमार कवि है। प्रसाद ने प्रकृति में विराटत्व का अनुभव किया है निराला ने 'जूही की कली', संध्या सुंदरी, शेफाली, बादल राग आदि प्रकृतिपदक सरसर रचनाएँ प्रस्तुत की। महादेवी के गीतों में प्रकृति प्रियतम की ओर संकेत करने वालीसहचरी है। उन्होंने लिखा हैं -

"प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन
यह क्षितिज बना धूंधला विराग।"

यह स्वीकार करना पड़गा कि छायावाद में प्रकृति चित्रण चार रूपों में मिलता हैं -

1) आलंबन रूप में :

प्रसाद की 'कामायनी' में हिमालय का वर्णन, निराला की 'बादलराग', 'संध्या सुंदरी', 'जूही की कली' आदि कविताएँ, पंत की 'नौकाविहार' तथा 'चाँदनी' प्रकृति के आलंबन रूप के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

2) उद्‌दीपन रूप में :

प्रसाद की 'कामायनी', पंत के 'पल्लव', निराला की 'गीतिका' में प्रकृति का उद्‌दीपन रूप में चित्रण किया हुआ मिलता है।

3) मानवीकरण रूम में :

छायावाद की प्रधान विशेषता प्रकृति का मानवीकरण है। प्रकृति यहाँ मानव के समान जीवंत रूप में चित्रित हुई है। प्रसाद ने रजनी का मानवीकरण करते हुए लिखा हैं - "पगली है भाल ले कैसे? छुट पड़ा तेरा अंचल देख बिखरती है मणिराजी, अरे उठ, बेसुध चंचल।"

महादेवी ने मेघ का मानवीकरण करते हुए लिखा हैं -

"रूपसी! तेरा धन केश-पारा
कोमल-कोमल श्यामल-श्यामल
लहराता सुरभित केश-पाश।"
पंत ने गंगा का -
"सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल
तन्वंगी गंगा ग्रिष्म विरल,
लेटी है श्रान्त क्लान्त निश्चल।"
कहकर वर्णन किया हैं।

4) रहस्यमय शक्ति के रूप में :

छायावादी कवियों के लिए प्रकृति अज्ञात सत्ता का संकेत देती है। यह रहस्यवादी प्रवृत्ति है। डॉ. शंभुनाथ पाण्डेय की मान्यता है कि - "छायावादी कविता का सबसे अधिण्क समृद्‌ध रहस्य रहस्यवादी गीत है। यह रहस्यवाद किसी संप्रदाय में आबद्‌ध नहीं है। अज्ञात सत्ता के प्रति मनुष्य में जो चिरंतन जिज्ञासा, आकांशा, प्रयत्न और मिलन की तड़प हैं, वही इन कविताओं में व्यक्त हुआ है।

सौंदर्य दर्शन में इन कवियों की वैयक्तिक दृष्टि प्रधान थी। तारे, निशा, समुद्र, लहरें, कमल की पंखुडियाँ, ऊषा, आँसू, ओसकण, मधुप, वायु आदि विषय काव्य के लिए नए नहीं है। परंतु छायावादी कवियों ने इन वस्तुओं के सौंदर्य का सूक्ष्म दृष्टि

से अध्ययन किया। इसलिए इनके काव्य में नदी–अमरता का, लहरे – उत्साह का, उषा–आशा का, आँसू–करुणा का और चाँदनी परम सत्ता के रूप में चित्रित हुई है। वे किसी वस्तु के बाह्य रूप की अपेक्षा उसके आंतरिक सौंदर्य को देखते हैं।

राष्ट्रीय भावना :

द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता की जो धारा प्रवाहित हुई थी उसका प्रभाव छायावादी कवियों पर भी पड़ा है। इसी कारण छायावादी काव्य में अतीत के प्रति लगाव राष्ट्रीय जागरण एवं राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। प्रसाद के नाटकों के गीत राष्ट्रीय भावना का ही प्रभाव है।

यथा –

''अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।''

माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीयता के स्वर को संवेदनशील शब्दों में व्यक्त किया है –

''मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ।''

पंत, प्रसाद निराला आदि छायावादी कवि संस्कृति और इतिहास के प्रति गहरी आस्था रखते थे। निराला ने दिल्ली कविता में देश के अतीत–गौरव के साथ वर्तमान दुर्दशा का चित्रण किया है।

नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण :

रीतिकालीन भोगवादी दृष्टि एवं द्विवेदी कालीन आदर्शवादी दृष्टि के स्थान पर छायावादी कवियों ने नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति चेतना के रूप में देखा। उसे बालिका, बहन, प्रेयसी, पत्नी, माँ आदि विविध रूपों में चित्रित किया हैं। छायावादी कवियों का नारीपरक दृष्टिकोण सूक्ष्म, उदात्त एवं वासना की गंध से रहित है।

छायावादी कवियों ने नारी सौंदर्य एवं प्रेम के वर्णन में भावदशाओं का सुकुमारता का वर्णन किया है। प्रसाद ने 'कामायनी' में लिखा हैं –

''नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में।
पियुष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।''

2) अभिव्यंजनात्मक विशेषताएँ :

लाक्षणिकता :

छायावादी कवियों का अनुभूति एवं अभिव्यंजना पक्ष सशक्त है। इन कवियों ने लाक्षणिकता, चित्रात्मक भाषा, ध्वन्यात्मकता, अलंकारो के सरस प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने अपने लक्ष्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिकता से समन्वित प्रतीक प्रधान शैली और व्यंजना को प्रमुखता दी है। लाक्षणिकता पंत की पंक्तियों में मिलती है –

''सुरभि–पीड़ित मधुपों के बोल
तड़प बन जाते है गुन्जार।''

चित्रात्मकता से अभिव्यंजना करते हुए प्रसाद 'आँसू' में लिखते हैं –

''शशि मुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधुली में कौतुहल से तुम आये।''

ध्वन्यात्मकता :

कविता में नाद सौंदर्य एवं ध्वनि चित्र से रोचकता उत्पन्न होती है। और कथ्य की यथार्थता अभिव्यक्त होती है । जैसे –

''झूम-झूम मृदू गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में नीज रोर
झर-झर-झर निर्झर गीरिसर में
थर, मरू, तरू, मरमर सागर में
अरे वर्ष के हर्ष! बरस तू बरस बरस रसधार।''

कोमलकांत पदावली :

छायावादी कविता भावुकता और कल्पना पर आधारित है। इसके प्रयोग से काव्य में मोहकता उत्पन्न होती है। पंत की 'नौकाविहार' कविता में कोमलकांत पदावली देखिए -

''मृदू मंद मंद मंथर-मंथर।
लघुतरणि हंसिनी सी सुंदर।
चिर रही खोल पलों के पर।''

अलंकारिकता :

छायावादी कवियों ने परंपरागत अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य प्रभाववश मानकीकरण तथा विशेषण विपर्यय का प्रयोग किया है। उपमा अलंकार का निम्न उदा. देखें -

''मृदूयुगधसी कोमल दल फूलों की
शशि किरणों सी वह प्यारी मुस्कान
कवि किरण से नाच रही है।''

उत्प्रेक्षा अलंकार के सरस प्रयोग सभी छायावादी कवियों ने किए हैं। प्रसाद का उत्प्रेक्षा अलंकार का निम्न उदा. देखिए

''बिखरी पलकें ज्यों तर्कजाल।''

आधुनिक अलंकारों में छायावादी कवियों का प्रिय अलंकार मानवी करण है। उन्होंने प्रात: संध्या बादल आदि प्राकृतिक उपादानों पर मानवी भावों का आक्षेप किया हैं। उदा. पंत ने लिखा हैं -

''विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते थे जब स्वप्न अजात।''

निराला ने 'सांध्य सुंदरी' चित्र प्रस्तुत किया हैं।

प्रतीकात्मकता :

छायावादी काव्य की एक विशेषता है प्रतीक विधान या प्रतीकात्मकता -

जैसे - ''सुनता हूँ इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली।''

सामान्यत प्रतीक अन्योक्ति के रूप में प्रमुख किए जाते हैं। यहाँ मछली मोतीवाली ब्रह्म का प्रतीक है। दार्शनिक अनुभूति एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के लिए प्रतीकों का सहारा लिया जाता है। जैसे -

''अमूर्त को मूर्त की उपमा-
''चंचल अंचल सा निलांबर''
मूर्त को अमूर्त की उपमा
''तापस बाला गंगा निर्मल
पंख से दीपित मृदू करवल।''
मुक्त गीत शैली -

छायावादी काव्य प्रधानत: गीतात्मक शैली में लिखा गया है। प्राचीन के साथ नवीन छंदों का भी प्रयोग किया हैं।

गीतिकाव्य के सभी गुण संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्माभिब्यंजना, भाषा की कोमलता इनके काव्य में परिलक्षित होते हैं। डॉ. रामनाथ सुमन के शब्दों में – ''इन कवियों में मस्ती की भावना भावभूति की मृदुता और मानव जीवन के उत्कर्ष का जो गौरव है उसे देखते हुए उनकी प्रतिभा गीतिकाव्य की रचना के लिए अत्यंत उपयुक्त है।'' भावों एवं विषयानुसार भाषा का प्रयोग किया गया है।

36.3.3 छायवाद की बृहद्‌त्रयी

छायावाद की बृहद्‌त्रयी में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का समावेश किया जाता है। जयशंकर प्रसाद के काव्यसंग्रह 'झरना' में छायावद के अंकुर प्रस्फुटित हुए हैं। तो सन 1930 के आसप-पास प्रकाशित 'आँसू' काव्यसंग्रह में छायावाद पूरे यौवन पर था और सन 1936 में 'कामायनी' में छायावाद की समग्रता गागर में सागर की भाँति समाहित हो गई। छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति 'रहस्यवाद' 'कामायनी' में मुखरित हुई है। इसमें प्रकृति नारी के प्रपित उदार और ममतामयी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। प्रेम की स्वच्छंद अनुभूति की अभिव्यक्ति सूक्ष्म सौंदयबोध है। प्रसाद के काव्य में विषय नवीनता, भावबोध, नवीन कल्पनाओं की सृष्टि, मानवीय सौंदर्य का चित्रण, प्राकृतिक सौंदर्य, भाव के अनुसार भाष, प्रणय साधना, रहस्यात्मकता उपचारवक्रता आदि विशेषताएँ दिखाई देती है। मानवतावाद के उद्घोषक प्रसाद के काव्य में वेदना और करुणा की ती अभिव्यक्ति हुई है। 'आँसू' काव्य में विरह वेदना के संदर्भ में कहते हैं–

''इस करुणा कलित हृदय में
अब विकलरागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।''

इन पंक्तियों में उनके व्यक्तिवादी स्वरूप के दर्शन होते है। डॉ. प्रेमशंकर ने लिखा है – ''आँसू एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य है, जिसमें कवि की प्रेमानुभूति व्यंजित है। प्रसाद का काव्य निराशा से आशा, व्यष्टि से समाष्टि, लौकिकता से आध्यात्मिकता की ओर विकसित होता चला गया।'' प्रसाद ने आलोचक के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए ''काव्य-कला तथा अन्य निबंध'' में छायावाद, रहस्यवाद को दार्शनिक पृष्ठभूमि दी है। भाषा में अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग, लाक्षणिकता का प्रयोग किया है।

'आँसू' से 'झरना' तक की कविताओं में छायावाद की सभी विशेषताएँ अंतर्निहित हुई है। 'लहर' में गीतिकला, प्रकृति के सौंदर्य प्रणय की ती अनुभूति चित्रित है। कवि ने अपने काव्य में करुणा का अभिव्यक्ति की है तो कहीं रहस्यवाद के संकेत दिए हैं। उनके छायावादी प्रेम के कारण मनोरम भावुकता, भाषाशैली की प्रौढ़ता सर्वत्र परिलक्षित होती है।

सुमित्रानंदन पंत :

सुमित्रानंदन पंत की बाल्यावस्था अल्मोडा के प्राकृतिक अंचल में व्यतीत हुई है। बाल्यावस्था से ही प्राकृतिक सुषमा का मधुरम वातावरण होने के कारण उनके काव्य में प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। वे प्रकृति के प्रति इतना असीम मोह रखते हैं कि रमणी के सौंदर्य की भी अपेक्षा कर देते हैं। वे कहते हैं –

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?
छोड़ अभी से इस जग को।''

पंत के काव्य ग्रंथ हैं – 'उच्छवास', 'ग्रंथी', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन' आदि। 'गुंजन' उनका अंतिम छायावादी काव्यसंग्रह है। पंत को छायावाद के प्रवर्तक तथा श्रेष्ठ कवि के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी है। सन १९२८ में प्रकाशित 'पल्लव की भूमिका' को छायावाद का घोषणापत्र माना गया है। उसमें द्‌विवेदी कालीन कविताके प्रति अपनी नाराजगी व्यक्त करते हुए छायावाद की काव्यधारा को स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

छायावादी सौंदर्य चेतना के मुख्य आधार हैं – प्रकृति और नारी। प्रकृति के माध्यम से वे सौंदर्यवर्णन करते है। सौंदर्य चित्रण में वे नारी की महिमा को क्षणभरभी विस्मृत नहीं करते। उनकी दृष्टि प्रकृति के कण–कण में सौंदर्य को देखती है। यदि 'परिवर्तन' जैसी एकाध कविता को छोड़ दे तो उन्होंने प्रकृति का कोमल एवं आकर्षक रूप चित्रित किया है। डॉ. उपाध्याय के अनुसार – पंत जी के काव्य में नारीप्रकृति और प्रेम सत्ता की एकता की रक्षा हुई है। उनके 'एकतारा', 'नौकाविहार', 'बादल', 'अप्सरा' एवं 'पावस ऋतु' में हिमालय परिवर्तन आदि कविताएँ प्रकृति काव्य के आधारस्तंभ हैं। प्रकृति का मानवीकरण उनकी प्रमुख विशेषता है। ग्रंथि उनका प्रेमव्यंजना से परिपूर्ण छोटा खंड काव्य है जिसमें वियोग शृंगार का सौंदर्यपरक वर्णन हुआ है। पंत के काव्य में नारी के प्रति उदार प्रेमभावन छायावादी युग की देन है।''

सभी छायावादी कवियों ने भाषा का निर्माण अपने–अपने ढंग से किया हैं, सबकी भाषा अनूठी बन पड़ी है। उनकी भाषा विशुद्ध, परिमार्जित, साहित्यिक खड़ीबोली है। उनके काव्य में संस्कृत के सरल, क्लिष्ट तत्सम शब्दों के साथ ब्रजभाषा और फारसी शब्दों का प्रयोग प्रसाद और माधुर्य गुण है। लक्षणात्मकता, कल्पना प्रतीक मूर्त–अमूर्त विधान का सुंदर समन्वय परिलक्षित होता है। समग्रत: छायावादी काव्य को अधिक सरस, सूक्ष्म, सौंदर्यबोध से युक्त, प्रकृति सौंदर्य से मंडित करने का श्रेय पंत को है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

छायावादी काव्यधारा के कवियों में महाप्राण निराला सदैव उनके व्यक्तित्व में ही नहीं कृतित्व में भी निराला रहे। वे छायावादी युग के प्रमुख कवि और समर्थक है। 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'तुलसीदास' उनकी छायावादी रचनाएँ है। परिमल और अनामिका में प्राय छायावाद की सभी प्रवृतियाँ देखी जा सकती हैं।

निराला का वास्तविक कवि जीवन 'अनामिका' काव्यसंग्रह से प्रारंभ होता है। इसमें सर्वप्रथम मुक्तछंद का प्रयोग हुआ है। 'परिमल' में उनके छायावादी व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं को देखा जा सकता है। सूक्ष्म दार्शनिकता चित्रमयता, संगीतात्मकता, नादसौंदर्य आदि सभी विशेषताएँ परिमल में द्रष्टिगत होती है। जूही की कली का प्रकाशन आलोचकों के लिए एक चुनौती बनकर आया। इसमें व्यक्त प्रणय केलि के चित्र और मुक्त छंद का शिल्प दृष्टव्य है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' एक उतकृष्ट काव्य की उपलब्धि है। छायावाद में नारी सौंदर्य का वर्णन हुआ है, किंतु निराला का रूपसौंदर्य वर्णन कुछ सीमा तक मांसल रहा है, फिर भी इसमें वासना की अपेक्ष सूक्ष्म सौंदर्यबोध अधिक है। 'संध्यासुंदरी' इस परंपरा की श्रेष्ठ रचना है। निराला के काव्य की प्रमुख विशेषता हैं – निर्माण कौशल, चित्रात्मकता, भावानुकूल भाषा प्रयोग, अनुपम नाद सौंदर्य, सार्थक शब्द चयन, प्रतीक विधान, प्रकृति के विविध बिंब, प्रवाहमयता आदि।

छायावादी काव्यधारा में निराला का सबसे बड़ा योगदान 'मुक्तछंद' की स्थापना है। यह एक क्रांतिकारी कार्य था। परंपरागत छंदों के बंधनों को तोड़कर उन्होंने मुक्त छंदो में सरस रचनाएँ लिखी। वे शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता थे अतएवं उनके काव्य में काव्य और संगीत का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। 'गीतिका' के गीत शास्त्रीय संगीत के अभिव्यक्तरूप है। कुमारविमल का कथन है कि – ''इसमें संदेह नहीं कि निराला ने छायावादी कविता के ओज पक्ष का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व किया है। छायावादी काव्य में जो थोड़ी–बहुत शक्ति की झलक थी, निराला उसके मूर्तिमान प्रतीक थे। स्पष्ट है काव्य–भाषा निर्माण की दृष्टि से निराला का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

36.3.4 छायावाद की लघुत्रयी

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा की एक समर्थ एवं महान कवयित्री है। छायावाद की बृहदत्रयी में प्रसाद, पंत, निराला छायावाद के प्रतिस्थापित कवि माने जाते हैं। इन्हीं कवियों की प्रेरणा महादेवी को प्राप्त हुई। उनके काव्य में छायावाद, रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई है। 'निहार', 'रश्मि', 'सांध्यगीत', 'दिशिखा' उनके काव्यसंग्रह हैं। वे विरह और कल्पना की साधिका है। छायावाद की संपूर्णता जिन चार प्रतिनिधि कवियों में समाहित हुई है उनमें प्रसाद, पंत, निराला के साथ महादेवी का नाम लिया जाता है। उनके काव्य की विशेषता है – व्यक्तिवादिता, प्रकृतिचित्रण, व्यापक कल्पना, गीतात्मकता, विशिष्ट भाषाशैली, प्रसाद की प्राकृतिक संकल्पना, निराला की संगीतात्मकता, पंत की कोमलता का प्रभाव महादेवी पर पड़ा है। उनकी

छायावादी रचना केंद्र में रखते हुए डॉ. कुमार विमल ने लिखा है – ''इतना कम लिखकर इतना अधिक महत्व अर्जित कर लेना इस बात का द्योतक है कि आज के अतिलेखन के युग में भी गुण परिमाण से सर्वथ पराजित नहीं हुआ है। महादेवी इसकी साक्ष्य है।''

छायावादी काव्य में महादेवी का विशेष स्थान है। छायावाद की एक वृति रहस्यात्मकता इनके काव्य में सबसे अधिक अभिव्यक्त हुई है। महादेवी वर्मा में इस परमसत्ता के प्रति गहन जिज्ञासा है और मिलन के लिए प्रयत्न भी है। परंतु वे पूर्ण मिलन नहीं चाहती। विरह को ही स्वीकार करके जीना चाहती है। वेदना से उन्हें आत्यंतिक एवं स्वाभाविक प्रेम है और वे वेदना में ही रहना चाहती है, वे मिलन सुख की भी आकांक्षी नहीं है –

''मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चूर हूँ।''

उनका समस्त काव्य वियोग से परिपूर्ण है, उनकी वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक है। प्रकृति के माध्यम से यह वेदना साकार हो उठी है। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यसंग्रह के नाम भी प्रकतिपरक है। 'नीहार' में उस अज्ञात चेतन सत्ता के प्रति कुतूहल, 'रश्मी' में दार्शनिकता, 'नीरजा' में उनकी वेदना अधिक मुखर हो उठी है। 'सांध्यगीत' में वह विरह को मिलन समझने लगती है और विरह में ही सुख का अनुभव करती है। डॉ. शंभुनाथ सिंह ने लिखा हैं – ''नीहार उनके जीवन के उष:काल की रश्मी उनके जीवन की प्रारंभिक अवस्था की 'नीरजा' उनकी प्रौढ़ व्यक्तित्व की तथा सांध्यगीत जीवन के संध्याकाल की रचना है।'' महादेवी के अनुसार छायावाद के मूलदर्शन सर्वात्मवाद में है।

छायावाद की विशेषता प्रेम और सौंदर्यानुभूति महादेवी वर्मा में परिलक्षित होती है। कतिपय विद्वान मानते हैं कि महादेवी की प्रेमभावना सर्वथा लौकिक है। उसका अलौकिक रूप मात्र आवरण है। अप्रत्यक्ष प्रियतम प्रत्यक्ष प्रियतम के विषय में अपनी भावन को व्यक्त करने का माध्यम मात्र है। छायावाद में प्रेम का जितना करुण और कातर रूप महादेवी में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। महादेवी की कविता छायावादी शैली का पालन करती हुई गीतातमक है। गीतिकाव्य की सभी विशेषताएँ उसमें पाई जाती है। उसमें गेयता, आत्मकथन की संक्षिप्तता, अनुभूति की गहनता, तीता भावों की एकरसता आदि गीतिकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। महादेवी का काव्य छायावाद से प्रभावित होने से भावपरक, अनुभूति प्रधान और सरस है। उनके कविता की भाषा विशुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। संस्कृत सरल, क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ढंग से किया गया है। भाषा में प्रसाद, माधुर्यगुण संगीतात्मकता विद्यमान है।

डॉ. रामकुमार वर्मा

छायावाद की लघुत्रयी में डॉ. रामकुमार वर्मा उल्लेखनीय कवि हैं। 'रूपराशि', 'निश्चित', 'चित्ररेखा', 'आकाशगंगा' आदि उनकी छायावादी रचनाएँ हैं। इनमें कवि की सर्वव्यापी चेतना प्रकति के विविध रूप, मानवीकरण, रहस्यवादी संकेत मिलते हैं । उन्होंने अपनी प्रारंभिक कविताओं में कल्पना को अधिक प्रधानता दी तो परवर्ती रचनाओं में अनुभूति को। रामकुमार वर्मा के काव्य में प्रकृति प्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना, निराशा, व्यक्तिवाद आदि छायावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। जहाँ तक प्रकृति वर्णन का संबंध है उन्होंने प्रकृति के सुकुमार रूप का चित्रण अधिक किया है। उनकी रहस्यात्मकता कविताओं पर कबीर का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके काव्य का मूल स्वर निराशा है।

छायावादी परंपरा के अनुसार रामकुमार वर्मा ने गीतिकाव्य को अपनाया है। गीतिकाव्य में गीत शैली का प्रयोग किया है। उनके छायावादी गीत भावपूर्ण और संगीतमय होने के साथ-साथ संक्षिप्त भी है। भाषा को उत्कर्ष प्रदान करने और भाषा का शृंगार करने के लिए उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है। उनमें प्रखर कल्पना शक्ति विद्यमान है। जिसके माध्यम से उन्होंने अप्रस्तुत विधान से काव्य को रोचक बनाया है। छायावादी शैली के अनुसार उनकी भाषा सर्वत्र प्रसादगुण से युक्त है।

भगवतीचरण वर्मा :

जीवन की स्वाभाविक भावनाओं के सफल गायक भगवतीचरण वर्मा के काव्य में छायावादी अभिव्यंजना की विशेषताएँ विद्यमान हैं। उनकी कविताओं में जीवन जगत् तथ ब्रह्म के संबंध में विचारधारा व्यक्त हुई है। छायावादी कवियों की भाँति वर्मा में वेदना और करुणा के प्रति बड़ा आग्रहपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। वर्मा के मधुकण, प्रेम संगीत, मानव, रंगों से मोह काव्यसंग्रह प्रकाशित हैं। उनकी कविताओं में छायावादी पुट विद्यमान है।

मधुकण में कोमलता और ओज से युक्त रचनाएँ हैं प्रेम और सौंदर्य से युक्त कविता में कोमलता, जीवन के कलुष मिटाने के लिए हृदय से उठे आवेश में कटुता है जो बादल जैसी कविताओं में दृष्टिगत होता है। जगत् पर दृष्टिपात करते उनके काव्य संसार में भाग्य का साम्राज्य, नि:श्वास और रुदन का आधिक्य है। यह अनजान मार्ग अंधकारमय है इसलिए कवि इस कलुषपूर्ण संसार को नष्ट करने के लिए विप्लवी बादल को आदेश देता है। वर्मा जी की दृष्टि में विनाश वृत्ति वास्तव में धर्म का तेज है। 'नूरजहाँ की कब्र' मधुकण की सबसे लंम्बी ओर सफल कविता है। जीवन के उत्थान, पतन, वैभव-दीनता, सौन्दर्य, श्रीहीनता, जीवन के सभी उतार चढ़ाव यहाँ है।

मानव की कविताओं में युगीन समस्याओं पर यथार्थवादी दृष्टिपात है। कवि की मान्यता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह संसार से कटकर मात्र स्वप्नों के रंगमहल में बंदी जीवन नहीं व्यतित कर सकता। वर्मा यहाँ शोषकों के समर्थक और मानवता के प्रचारक रूप में उभरे हैं। गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित वर्मा दया, प्रेम, त्याग और अहिंसा के समर्थक रहे हैं।

प्रसाद काव्य का मूल स्वर आनंदवाद, निराला का मानवतावाद, पंत का सौंदर्यवाद, महादेवी का मधुरभाव रहा है तो वर्मा का नियतिवाद। इनका नियतिवाद निराशा का समर्थक नहीं वह तो जीवन के प्रति विभोरता, तटस्थता, लापरवाही और मस्ती की दृष्टि स्थापित करता है। वर्मा की कविताओं में वेदना की प्रचुदता है। कष्ट साधना को भी वे महत्व देते हैं। इसी से प्रियतम के प्रति आत्मसमर्पण की भावना निरंतर बढ़ती जाती है। कवि में प्रिय मिलन की ती आकांक्षा है वे प्रिय से तदाकार होने की कामना करते हैं।

36.5 सारांश :

हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावादी काव्यधारा आंदोलन के रूप में प्रारंभ हुई। छायावाद की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवी, सांस्कृतिक है। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद है। इस प्रकार छायावाद पर तीन बाह्य प्रभाव रहे हैं -

1) अंग्रेजी साहित्य का सीधा प्रभाव

2) अंग्रेजी का बंगला साहित्य से होकर प्रभाव

3) बंगला का अपना प्रभाव

छायावाद की परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जाते हैं -

* छायावाद एवं रहस्यवाद एक है।
* छायावाद शैली विशेष है।
* छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिंब देखता है।
* छायावाद दार्शनिक अनुभूति है।
* छायावाद एक भावात्मक दृष्टिकोण है।
* छायावाद में गीतितत्व का प्रमुखता होती है।

छायावाद की विशेषताएँ बताई जा सकती हैं - वैयक्तिकता शृंगार प्रकृति चित्रण मिलता है।

सौंदर्यबोध :

छायावादी कवि प्रत्येक वस्तु में सौंदर्य की स्थापना करता है। वह प्रकृति के कण-कण में अलौकिक सौंदर्य की झाँकी देखता है बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य में उसे रुचि है।

मानवतावादी स्वर :

छायावाद काव्य में मानवता का संदेश उभरकर आया है। रविंद्र के विश्वबंधुत्व पर आधारित मानवता का प्रभाव छायावादियों पर भी दिखाई देता है। पंत और निराला की कविताओं में दीन-दलितों के प्रति करुणा एवं सहानुभूति है। महादेवी करुणा में सबको समा लेती है। प्रसाद काव्य में मानवतावाद का संदेश देते हैं।

वेदना और निराशा की अभिव्यक्ति

छायावाद में वेदना एवं करुणा की अभिव्यक्ति सर्वत्र दृष्टिगत होती है। ये भावनाएँ कहीं लौकिक और कही आध्यात्मिक रूप में व्यक्त हुई है। महादेवी का संपूर्ण काव्य वेदनामय है। पंत, प्रसाद, निराला के काव्य में भी वेदना का स्वर मुखर है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

छायावादी कवियों ने नारियों को व्यक्तिचेतना के रूप में देखा है। इसलिए उनको नारी का मातृत्व रूप अधिक भाया है। जयशंकर प्रसाद की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो। विश्वास रजत नग पग तल में।

पियुष स्रोत सी बहा करो। जीवन के सुंदर समतल में।''

शिल्प विधान

छायावादी काव्य में काल्पनिकता, गीति एवं प्रतीक प्रधान शैली, नावीन्यपूर्ण छंद विधन, नादमाधुर्य, व्यंजना प्रधानता और आकर्षकता है। इस प्रकार छायावादी कवियों ने अनुभूति और अभिव्यक्ति में समन्वय-सामंजस्य स्थापित किया है।

36.6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1) छायावाद की प्रेरक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
2) छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों को विशद कीजिए।
3) छायावाद की बृहद्‌त्रयी का परिचय दीजिए।
4) छायावाद की लघुत्रयी के योगदान को निरूपित कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

1) छायावादीयों का प्रकृति प्रेम
2) छायावादीयों का नारी विषयक धारणा
3) छायावादी काव्य का शिल्प विधान
4) छायावादीयों की सौंदर्यानुभूति

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

1) छायावादी काव्यधारा पर अंग्रेजी की किस विचारधारा का प्रभाव पड़ा है?
2) छायावादी कवियों के नाम लिखिए।
3) महादेवी की रचनाओं के नाम लिखिए।
4) 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' यह किस कवि ने कहा है?
2) छायावाद की लघुत्रयी में किस-किसका समावेश किया जाता हैं?

घ) सही पर्याय लिखिए

1) छायावादी युग को अन्य किस नाम से पुकारा जाता है?

   अ) स्वच्छंतावादी युग ब) यथार्थवादी युग क) आदर्शवादी युग ड) प्रयोगवादी

2) 'आँसू' किसकी रचना है?

अ) निराला ब) पंत क) प्रसाद ड) महादेवी वर्मा

3) 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चूर हूँ' किसकी काव्यपंक्ति है?

अ) निराला ब) महादेवी वर्मा क) पंत ड) प्रसाद

4) छायावाद की प्रमुख रचना है।

अ) प्रियप्रवास ब) साकेत क) कामायनी ड) ऊर्मिला

36.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* छायावाद की प्रकृतिपरक कविताओं का चयन कीजिए।
* पंत प्रकृति के सुकुमार कवि है – इस विधन को दृष्टि में रखकर उनकी प्रकृतिपरक कविताओं की सूची बनाइए।
* छायावाद की शिल्पगत विशेषताओं को लिखिए।
* महादेवी वर्मा की रचनाओं की सूची तैयार कीजिए।

36.8 सदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* हिंदी साहित्य का प्रवृतिपरक इतिहास – डॉ. सभापति मिश्रा
* आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास – डॉ. श्रीकृष्णलाल
* आधुनिक साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह

pppp

इकाई – 37
प्रगतिवाद – प्रेरक परिस्थितियाँ

37.1 उद्देश्य

37.2 प्रस्तावना

37.3 विषय – विवरण

37.3.1 प्रगतिवाद की प्रेरक परिस्थितियाँ

37.3.2 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ

37.4 शब्दार्थ

37.5 सारांश

37.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

37.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

37.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

37.1 उद्देश्य :

* पूँजीवाद की स्वार्थपरकता को समझ सकेंगे ।
* सर्वहारार्ग अर्थात् आम आदमी के शोषण से अवगत हो सकेंगे ।
* समाज में नारी के महत्व एवं उसकी उदात्तता को समझ सकेंगे ।

37.2 प्रस्तावना :

प्रगतिवाद शब्द का अर्थ है – 'आगे बढना' 'परिवर्तन करना' इसलिए प्रगतिवाद साहित्य से तात्पर्य हुआ ऐसा साहित्य जो परिवर्तन की अपेक्षा करता है । परिवर्तन की ओर अग्रसर करता है । जीवन की स्थितिशीलता के स्थान पर उसमें गतिशीलता देता है । राजनीति के क्षेत्र में साम्यवादी विचारधारा का यह दृष्टिकोन है । इसलिए कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र में जो मार्क्सवाद है राजनीति में उसे साम्यवाद कहा जाता है और वही साहित्य में 'प्रगतिवाद' है । प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य जनवादी शक्तियों को संगठित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के स्थान पर निमित्त मूल्यों को प्रतिष्ठित करना है । प्रगतिवाद वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है । छायावाद की अत्याधिक व्यक्तिनिष्ठता या आत्मनिष्ठता, काल्पनिकता आदर्शवाद की प्रतिक्रिया प्रगतिवाद में प्रस्फुटित हुई है । यदि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है तो प्रगतिवाद कल्पना लोक के विरुद्ध स्थूल जगत् की प्रतिक्रिया है । प्रगतिवादी कविताएँ लिखने वालों ने सन् 1946 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की । उसके प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष प्रेमचंद थे । पंत ने 'रुपाभ' पत्रिका में प्रगतिवाद पर बल दिया । प्रगतिवाद का मूल आधार मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है । इसलिए यह अर्थ को भौतिक जीवन की संपूर्ण विषमताओं का कारण समझकर अर्थ के समान विभाजन द्वारा समाज की उन्नति में विश्वास रखता है । प्रगतिवादी की ईश्वर परलोकवाद, कर्मवाद, नियतिवाद, आत्मा की अनश्वरता, धर्म, भाग्य आदि में आस्था नहीं है । इनकी मान्यता है कि यह सब कल्पित धारणा है जो मनुष्य को भूलावे में डालकर अकर्मण्य और निष्क्रिय बना देती है । प्रगतिवाद पूंजीवाद का शत्रु और साम्यवाद का समर्थक है, उसकी संपूर्ण आस्था और विश्वास शोषित या दलित वर्ग के प्रति है ।

37.3 विषय विवरण :

37.3.1 : प्रगतिवाद की प्रेरक परिस्थितियाँ : किसी भी विचारधारा या वाद के निर्माण में कुछ प्रेरक परिस्थितयाँ ऐसी होती हैं जिनका परिणाम उनके विकास में सहायक बनती हैं ।

* **साहित्यिक परिस्थितियाँ :** सन् 1925 से लेकर 1937 तक का समय छायावाद का उत्कर्षकाल माना जाता है । छायावादी कवि अंतर्मुखी, व्यक्तिवादी थे । जीवन के यथार्थ से पलायन कर कल्पना लोक में विचरण करने वाले थे ।

  अत:साहित्य जनसामान्य से बहुत दूर चला गया था । इसी की प्रतिक्रिया के रुप में जीवन से साक्षात्कार कराने वाला प्रथम आंदोलन प्रारंभ हुआ ।

* **आर्थिक परिस्थिति :** अर्थ व्यष्टि और समाष्टि का आवश्यक अंग है । प्रगतिवादी चेतना अर्थ पर आधारित है । समाज में पूंजीपति वर्ग है जिनके पास सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ हैं और सर्वहारा वर्ग है जिसे आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है । प्रगतिवादी चेतना इसी कारण पूंजीवाद का विरोध और सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदना व्यक्त करती है ।

* **वर्गहीन समाज की स्थापना :** प्रगतीवादी वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें पूंजीपति और सर्वहारा ऐसे दो वर्ग नहीं रहेंगे । समाज में सभी को समानता हो, समान अवसर प्राप्त हो यह धारणा प्रगतिवाद का मूल है ।

* **समाजवादी समाजरचना :** भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ जिस समाजवादी समाज रचना की अवधारणा को स्वीकार किया था उसका बीज प्रगतिवादी विचारधारा में समाहित है । प्रगतिवाद की मान्यता है कि ''आर्थिक सामाजिक दृष्टि में व्यष्टि से अधिक समष्टि महत्वपूर्ण है ।'' व्यक्ति से समाज अधिक महत्वपूर्ण होने के कारण ऐसे समाज की वे स्थापना करना चाहते है जिसमें व्यक्ति महत्वपूर्ण न होकर समाज महत्वपूर्ण हो ।

* **शोषण की प्रवृत्ति :** प्रगतिवादी चेतना के उदय और विकास का एक कारण समाज में व्याप्त शोषण की प्रवृत्ति है । अंग्रेजों ने समाज को दो-वर्गों में बाँटा हैं । एक-उच्चवर्ग और दूसरा निम्नवर्ग । एक मालिक तो दूसरा नौकर । अत: इन दोनों में संघर्ष प्रारंभ हुआ । पूंजी पतियों के द्वारा गरीबों का मालिकों द्वारा मजदूरों का अधिकारियों द्वारा नौकरों का और पुरुष वर्चस्वता के कारण नारी समाज का शोषण प्रारंभ हुआ । इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का कार्य प्रगतिवादी चेतना ने किया है ।

37.3.2 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ :

* **रूढ़िविरोध :** प्रगतिवादी विचारधारा ईश्वर को सृष्टि का कर्ता स्वीकार नहीं करती । इसलिए उसका ईश्वर के अस्तित्व, आत्मा, परलोक, धर्मवाद, भाग्यवाद, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि धारणाओं पर विश्वास नहीं है । प्रगतिवाद मानव की सत्ता को सर्वोपरि मानते हैं । उनके लिए धर्म-अधर्म, वर्ण-व्यवस्था, रंगभेद फिजूल है । इसलिए वे धर्म की परंपराओं और सड़ी गली रूढ़ियों को समापा करना चाहते हैं । उन्हें मिथ्या परंपराओं रूढ़ियों, अंधविश्वासों, विधि-विधानों में विश्वास नहीं है । उदा.

  ''जिसे तुम कहते हो भगवान
  जो बरसाता है जीवन में
  रोग, शोक, दुख दैन्य अपार
  उसे सुनाते चले पुकार ।''

* **शोषकों के प्रति आक्रोश :** प्रगतिवाद अनुभव करता है कि - पूंजीपति अपने धन-बल पर गरीबों का शोषण करते हैं और अधिक धन एकत्र करते हैं । परिश्रम की तुलना में उसे अल्प मुआवजा दिया जाता है और अधिक काम लिया जाता है । इसलिए प्रगतिवादी पूंजीपतियों का विरोध करता है ।

* **शोषितों के प्रति संवेदना :** शोषित वर्ग मानव जाति के लिए घोर अभिशाप है । आज पूंजीपतियों के निर्गम शोषण की चक्की के पाटों में सर्वहारा वर्ग पिसा जा रहा है । मजदूरों, किसानों उपेक्षितों के प्रति प्रगतिवादी संवेदनशील है ।

* **क्रांति की भावना :** रशिया में जारशाही के विरुद्ध आंदोलन हुआ और वह व्यवस्था समूल नष्ट हो गई । जार शोषक थे, जनता का शोषण करते थे इसी शोषण के विरुद्ध वहाँ क्रांति हुई और राज्यव्यवस्था जनता के हाथों में पहुँची थी । शोषण की प्रवृत्ति समाप्त करने के दो मार्ग हैं - विकास एवं क्रांति । विकास का मार्ग गांधीवादी मार्ग है जिससे यह व्यवस्था बदलने में समय लग सकता है जबकि क्रांति का मार्ग अल्प अवधि में अपने उद्देश्य तक पहुँचता है । यह मार्क्सवादी दृष्टिकोण है । इस मार्ग में यदि रक्तपात होता है तो उसकी चिंता नहीं की जाती । प्रगतिवादी साहित्यकार क्रांति के प्रलयकारी मार्ग को अपनाता है उसे समझौते था हृदय परिवर्तन की नीति पर विश्वास नहीं है । उसे तो केवल क्रांति पर विश्वास है । इसलिए उन्होंने क्रांतिकारी संदेश देते हुए कहा हैं -

  ''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
  जिससे उथल-पुथल मच जाये

एक लहर इधर से आये

एक लहर उधर से आये ।''

* **मार्क्स तथा रुस का गुणगान :** प्रगतिवाद को 'मार्क्सवाद का उद्घोष कहा जाता है । इसमें मार्क्सवाद के सिद्धांतों को मान्यता दी है । मार्क्सवादी विचारधारा तीन आयामों पर प्रस्तुत हुई हैं ।

1) द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद

2) मूल्यवृद्धि का सिद्धांत

3) मानव सभ्यता के विकास की व्याख्या

भौतिक विकासवाद को परिचालित करने वाली शक्ति या प्रवृत्ति का नाम द्वंद्वात्मकता है । समाज में दो के अस्तित्व से संघर्ष होता है, दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष से तीसरी शक्ति जन्म लेती है । तीसरी से चौथी इस प्रकार यह संघर्ष अविरत जारी रहता है । द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मानता है कि समाज का द्वंद्वात्मक होना ही संघर्ष का मूल कारण है । पूंजीपति और गरीब, कारखाने के मालिक और मजदूर, जमींदार और किसान के बीच द्वंद्व है और यही द्वंद्व मनुष्य के दु:ख का कारण है । इसीलिए मार्क्सवाद इस द्वंद्व को समाप्त करना चाहता है ।

मार्क्स ने किसी भी वस्तु का मूल्य बढ़ने के 4 अंग माने हैं । मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य वृद्धि । मूल्य वृद्धि से गरीबी फैलती है और लाभ पूंजीपति वर्ग को मिलता है । शोषक अर्थात मालिक और शोषित अर्थात् श्रमिक दो वर्ग मानते हैं । मार्क्स ने मानव सभ्यता के विकास की व्याख्या करते हुए कहा हैं कि – 'मानव सभ्यता का इतिहास दो वर्गो की संघर्ष की कहानी है, यह कहानी चार युगों में विभाजित की जा सकती हैं' – प्रथम युग – दास प्रथा का युग, द्वितीय युग – सामंती प्रथा का, तृतीय युग – पूंजीवादी व्यवस्था का, चतुर्थयुग – साम्यवादी व्यवस्था का है ।''

इस साम्यवादी व्यवस्था में मजदूरों को उनके परिश्रम के अनुसार आर्थिक मुआवजा दिया जाता है ।

* **मानवतावाद :** प्रगतिवादी कवि मानवतावादी होने के कारण समाज के दलित उपेक्षित वर्ग के प्रति संवेदनशील है । इस लिये इनके साहित्य में भिखारियों, श्रामिकों, किसानों, मजदूरों, विधवाओं और वेश्याओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है । यह केवल सहानुभूति व्यक्त नहीं करते अपितु मानतवा का उद्धार करना चाहते हैं । जहाँ–जहाँ मानवता पर आघात किया जाता है वहाँ प्रगतिवादी चेतना जागृत होती है । वे विश्वमानव की बात करते हैं और राष्ट्रीयता का धिक्कार । वे मनुष्य के लिए कर्म का संदेश देते हैं । मानवतावादी स्वर को मुखरित करते हुए कवि कहते हैं –

''मानवता की नींव हिलाकर अपने पाँव जमाऊँ ।

कब अनगिनत दीप बुझाकर दीपावली मनाऊँ ।''

* **सामाजिक यथार्यवाद का चित्रण :** प्रगतिवादियों ने मानव जीवन की यथार्थता को महत्त्व दिया है । 'क्या होना चाहिए' की अपेक्षा 'क्या है' पर विश्वास किया जाता है । वे काव्य और कला को जीवन से संपृक्त देखना चाहते हैं । प्रगतिवादी आदर्श को नकारते हुए सामाजिक यथार्थ को महत्त्व देते हैं । वे समाज की विसंगतियों, कुरुपताओं, अश्लीलताओं की उपेक्षा नहीं करते । सामाजिक यथार्थता को महत्त्व देने के कारण प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य, आदर्श, आध्यात्म आदि विषयों के साथ–साथ ग्राम्य स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हैं । जैसे – अशिक्षित बच्चे, सड़कों पर पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी, कारखानों में काम करने वाले मजदूर आदि । नागर्जुन, रामविलास शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, शमशेर निराला, पंत आदि की कविताएँ सामाजिक यथार्थवाद से प्रेरित हैं । शमशेर बहादुर ने लिखा हैं –

''साम्राज्य पूंजी का क्षत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो साम्राज्यवाद का जय पुकारति ।''

* **साम्प्रदायिकता :** राष्ट्र के विकास एवं मानवतावाद की स्थापना में संकुचित साम्प्रदायिक भावना बाधक होती है । प्रगतिवादी इसलिए सांप्रदायिक वाद को विरोध करते हैं । नरेंद्र शर्मा मानते है कि यद्‌यपि एक हिंदू है और दूसरा मुसलमान परंतु यथार्थ यह है कि दोनों ही इन्सान हैं । और रूढ़ियों के सामंजस्य की भावना से साथ रहते आए हैं ।'' सांप्रदायिकता का प्रमुख कारण धार्मिक संकुचित भावना है । सभी धर्म अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं । जब समाज सर्वधर्म समभाव से हट जाता है तब हिंसाचार बढता है । इसलिए प्रगतिवादी हिंसाचार टालकर इन्सानियत निर्माण करना चाहते हैं ।

* **वर्ग विषमता का चित्रण :** प्रगतिवादी देखते हैं कि समाज-समाज वर्गों में बँटा हुआ है । एक वर्ग संपन्न तो दूसरा अभाव से युक्त है । विषमता की यह खाई इतनी गहरी व व्यापक है कि इसने वर्ग संघर्ष को जन्म दिया है । विषमता को देखकर कवि व्यथित होता है । बालकृष्ण शर्मा नवीन आर्थिक विषमता को देखकर चिंतित होते हैं वे 'जूठें पत्तें' में लिखते हैं ।

''जब वे चाटते जूठे पत्तल, जिस दिन मैंने देखा नर को
उसदिन सोचा क्यों न लगा दूँ आग इस दुनिया भर को ।

* **नारी विषयक दृष्टिकोन :** प्रगतिवादी विचारधरा में नारी का चित्रण यथार्थवादी दृष्टि से हुआ है । प्रगतिवाद मानता है कि नारी को भोग की वस्तु समझना अयोग्य है । आधुनिक हिंदी काव्य की भूमिका में डॉ. शभुनाथ पाण्डेय लिखते हैं कि ''प्रगतिवादी कवियों ने समाज के शोषित वर्ग में भारतीय नारी को भी सम्मेलित किया है । इसलिए पुरुष के मुकाबिले में वह उसकी विशेष संवेदनापरक पात्र है । छायावादी काव्य में प्रसाद, निराला, पंत जैसे कवियों ने नारी के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया हैं किंतु प्रगतिवाद की दृष्टि पूर्व युगों से अधिक दूरगामिनी है ।''

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य में नारी को केवल भोग्या न मानकर उसके मानवी रूप को महत्व दिया अब नारी पुरुषों के साथ संघर्ष करती हुई उसकी सहचरी बन गई है ।

* **ग्रामीण जीवन का चित्रण :** भारत कृषक प्रधान देश है किंतु अनाज पैदा करने वाले किसान की दशा दयनीय है । जमींदारों के कारण गरीब किसानों का शोषण होता आया है । फलस्वरूप वे शक्तिहीन होते जा रहे हैं । रामविलास शर्मा लिखते हैं कि -

''इस धरती पर जो.... श्रम करते हैं,
उसके मन के पत्तों में पत्तों में अब सूख गया है,
रक्त, रेत पर गिरी हुई जल की बूंदों सा ।''

ग्रामीण जीवन की त्रासदी यह है कि किसानों को पर्याप्त आवास की व्यवस्था नहीं हैं । वे झुग्गी झोपडियों में और खपरैल के मकानों में रहने के लिए विवश है । उनकी गरीबी और दुर्दशा उनके जीवन का स्थायीभाव है । प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधी गाँव में बसा हुआ कृषक है । इस कवियों ने ग्रामीण परिवेश की सुंदरता का नहीं यथार्थ जीवन कर जैसे गंदगी, अभाव, अन्याय, अपमान आदि का चित्रण किया है ।

* **जनभाषा का प्रयोग :** यह जनमा का साहित्य होने के कारण कवि उसे जनता की भाषामें ही प्रस्तुत करने का हिमायती है । इसलिए प्रगतिवादी कवि प्रतीकात्मक, बिंबात्मक, ध्वन्यात्मक, अलंकारिक भाषा का प्रयोग नहीं करते । उनकी भाषा सीधी सपाट होती है । निराला की निम्न पंक्तियाँ देखिए -

“वह आता दो टुक कलेजे के करता
पछताता, पथ पर आता
पेट पीठ मिलकर एक
चल रहा लकुटिया टेक ।”

37.4 शब्दार्थ :

पूँजीवाद : धन को महत्व देने वाला सिद्धांत

क्रांति : परिवर्तन

सर्वहारावर्ग : श्रमजीवी वर्ग

शोषक : शोषण करने वाला

शोषित : जिसका शोषण किया जाता हो

37.5 सारांश :

प्रगतिवाद की उद्भावना सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का परिणाम है । इसलिए समाजवादी यथार्थवाद का इसमें गहन एवं विस्तार से वर्णन हुआ है । प्रगतिवादी मार्क्सवाद में विश्वास रखता है । अतएवं वह समाज में व्याप्त विषमता को समाप्त करना चाहता है । सामान्य व्यक्ति का शोषण करने वाले पूंजीपतियों पर निर्मम प्रहार करता है ।

प्रगतिवादी कवि विषमता नष्ट करने के लिए क्रांति का मार्ग अपनाता है । उसका विश्वास है कि रशिया और चीन की क्रांति के कारण उपेक्षितों को न्याय मिला है अत: भारत में गरीबों को न्याय देने हेतु क्रांति आवश्यक है । नागार्जुन साम्यवादियों के नेतृत्त्व में तेलंगाना में हुई कृषक क्रांति को आशावादी दृष्टिकोण से देखते हैं । प्रगतिवाद की मान्यता है कि सांप्रदायिक भावना किसी देश के विकास में बाधक होती है । इसलिए वे सांप्रदायिकता का विरोध करते हुए इन्सानियत की पैरवी करते हैं ।

प्रगतिवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद को शोषक स्वीकार करता है । उसके विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त करता है । प्रगतिवाद सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनशील है । इसलिए प्रगतिवादी अपने साहित्य के माध्यम से इनकी दयनीय स्थिति को उजागर करता है । श्रमजीवी और शोषिक रूप को देखता है । वह नारी के प्रति संवेदनशील होने के कारण नारी को पुरुषों के समकक्ष अधिकार देना चाहता है ।

37.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

* प्रगतिवाद के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ।
* प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।
* प्रगतिवादी विचारधारा की प्रेरक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

* प्रगतिवाद की प्रेरक परिस्थितियाँ
* प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

* प्रगतिवादियों की सर्वहारा के प्रति संवेदना को निरूपित कीजिए ।

* प्रगतिवादियों के नारी विषयक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।
* प्रगतिवाद में निहित क्रांति के संदर्भ में विचारधारा को निरुपित कीजिए ।
* प्रगतिवादियों के मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

* मार्क्सवाद से हिंदी साहित्य में किस वाद का निर्माण हुआ?

  अ) प्रयोगवाद ब) प्रगतिवाद क) रहस्यवाद ड) छायावाद
* प्रगतिवाद का संघर्ष किसके साथ है ?

  अ) पूंजीपति ब) कवि क) नारी ड) अर्थ
* प्रगतिवादी सांप्रदायिकता का कारण किसे मानते हैं?

  अ) धार्मिक संकुचित भावना ब) वर्गभेद क) आर्थिक संपन्नता ड) मानवतावादी भावना

37.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

* आपके परिवेश में निवास करने वाले मजदूरों की बस्ती में जाकर उनकी स्थिति को देखकर उस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए ।
* कृषकों के जीवन का सर्वेक्षण कर उनकी समस्याओं को निरुपित कीजिए ।
* आपके परिवेश में पूंजीपतियों और जमींदारों के द्‌वारा होने वाले शोषण का निरुपण कीजिए और उसे शब्द बद्‌ध कीजिए ।

37.8 संदर्भ अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तके

* हिंदी साहित्य की भूमिका : उद्‌भव; विकास – डॉ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी
* हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास : डॉ. लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
* आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास : डॉ. श्रीकृष्णलाल
* साहित्य यात्रा – डॉ. मनोहर सराफ, डॉ. रेखा गाजरे

pppp

इकाई – 38
प्रयोगवाद

38.1 उद्‌देश्य

38.2 प्रस्तावना

38.3 विषय – विवरण

37.3.1 प्रयोगवाद के प्रेरक कारण

37.3.2 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

38.3.3 प्रयोगवाद और नई कविता

38.4 शब्दार्थ

38.5 सारांश

38.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

38.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

38.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

38.1 उद्‌देश्य :

- ✻ प्रयोगवाद के प्रेरक तत्त्वों को जान सकेंगे ।
- ✻ प्रयोगवाद के कवियों से परिचित हो सकेंगे ।
- ✻ प्रयोगवाद की विशेषताओं को समझ सकेंगे ।
- ✻ प्रयोगवाद और नई कविता के साम्य-वैषम्य से परिचित हो सकेंगे ।

38.2 प्रसातवना :

प्रगतिवाद के पश्चात प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रारंभ हुआ । अज्ञेय प्रयोगवादी धारा के प्रवर्तक माने जाने हैं । अज्ञेय एवं उनके सहयोगियों का अभिमत या कि संप्रति, नवीन युग चेतना, नवीन आदर्शों और नवीन संस्कृतियों का निर्माण कर रही है । इस चेतना का अंकन प्राचीन परंपरागत भाषा एवं रोली द्‌वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारी प्राचीन भाषा प्राचीनता का अनुसरण करने के कारण शिथिल हो गई है । इसलिए हमें प्रचलित चलती हुई भाषा और अलंकारिकता का मोह छोड़कर नवीन भाषा रूपों का सृजन करना पडेगा इसके लिए नवीन भाषा, नवीन प्रतीक और नवीन उपमानों का प्रयोग करना आवश्यक है । फलत: प्रगविवाद के जनवादी दृष्टिकोन से त्रस्त होकर प्रयोगवाद नाम से एक ऐसी विचारधारा का प्रारंभ किया जो सिद्‌धांत रूप में प्रगतिवाद की विरोधी विचारधारा थी ।

प्रयोगवाद का प्रारंभ अज्ञेय द्‌वारा संपादित तार सप्तक से माना जाता है । इसमें सात कवियों की कविताएँ संग्रहित हैं - अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमीचंद जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माधवे, गिरीजाकुमार माथुर और डॉ. राम विलास शर्मा । इन कवियों ने एकत्रित होकर काव्य संग्रह का प्रकाशन क्यों किया है इस संदर्भ में तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है - ‘वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजील पर पहुँचे नहीं है, अभी राही हैं - राही वे नहीं राहों के अन्वेषी ।’ तार सप्तक का प्रकाशन सन 1946 में हुआ था । इसका दूसरा संग्रह सन 1951 में प्रकाशित हुआ, तार सप्तक का तीसरा और चौथा सप्तक भी प्रकाशित हो चुके हैं । वास्तव में यह कवि काव्य क्षेत्र में प्रयोग करना चाह रहे थे । वे अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों के नए मार्ग के अन्वेषी थे । तार सप्तक की कविताएँ परंपराबद्‌ध कविताओं से भिन्न हैं ।

प्रयोगवाद प्राचीनता से नवीनता की यात्रा है । यह परंपरा से स्थापित सत्य से आगे बढता है । प्रयोगवाद परंपरागत रूढ़ियों का खंडन करके अभिव्यक्ति के नए माध्यम अपनाता है ।

38.3 विषय - विवरण

38.3.1. प्रयोगवाद के प्रेरक कारण : प्रयोगवादी कविता के प्रेरणास्त्रोत पूर्णत: पाश्चात्य है । इन कवियों पर वर्तमान पश्चिमी जनमानस की अवांछनीय नकल का जो आरोप लगाया जाता है उसमें आंशिक सत्यता है । आज ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ की भावना बलवती हो रही है । राष्ट्र के सीमित दायरें में आज का कवि रचना नहीं करचा चाहता । वह पश्चिम के नवीन और वहाँ की काव्य प्रवृत्तियों को अपनाना चाहता है ।

प्रयोगवादी कविता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बाह्य स्वितियों से प्रभावित है । पाश्चात्य कवि इलियट, एजरा पाऊण्ड, ऑडेन, स्पेंडर से प्रभावित है । यह प्रभाव अनुभूति का कम अभिव्यक्ति का अधिक है । इलियट तत्कालीन क्षण को महत्त्व देते हैं । प्रयोगवादी कवि भी क्षण को महत्व देते हैं । इसी पर ने युद्‌धोंपरान्त यूरोपीय जनमानस में व्याप्त निराशा, कुंठा, हताशा, जीवन की निरर्थकता आदि को काव्य में अभिव्यक्त किया है । हिंदी के प्रयोगवादी कवि भी निराशा, कुंठा आदि को व्यक्त करते हैं ।

यूरोप में अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव मुख्य रुप से दो कारणों से हुआ हैं । एक द्‌वितीय महायुद्‌ध की विभीपिका और दूसरा बिखरती हुई पारिपारिक व्यवस्था महायुद्‌ध के माध्यम से यूरोप ने मृत्यु की आकस्मिकता और

समय की अनिश्चितता का अनुभव किया फलर स्वरूप मृत्यु भय और जीवन की निरर्थकता परिव्याप्त हो गई । टूटती पारिवारिक व्यवस्था ने व्यक्ति को सर्वथा एकाकी बना दिया । अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव नई कविता पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । उदा. अज्ञेय की 'नदी के द्विप' ।

पाश्चात्य विचारक फ्रायड मनोविश्लेषणवादी हैं । वे मानते हैं कि ''मानव व्यक्तित्व एक आहसवर्ग की तरह होता है ।' चेतना का बहुत थोड़ा-सा भाग सतह से ऊपर दिखाई देता है और शेष भाग नीचे रहता है यह शेष भाग ही अवचेतन रूप में जाना जाता है ।

फ्रायड ने यूरोपियन साहित्य के साथ साथ भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी प्रभावित किया है । फ्रायड ने मनोविश्लेषणवाद सिद्धांत से प्रेरणा लेकर प्रयोगवादी कवियों ने मुक्तअप्लंग (फ्री एसोसिएशन) को स्वर प्रदान किया है ।

प्रयोगवादी कविता के शिल्प निर्माण में पाश्चात्य प्रतीकवाद और बिंबवाद का प्रभाव रहा है । प्रयोगवादी कविता में अप्रत्यक्ष के प्रत्यक्षीकरण के लिए बिंब प्रयुक्त किए जाते हैं । प्रतीक और बिंब के प्रभाव से प्रयोगवाद प्रभावित रहा है ।

प्रयोगवाद की प्रेरणा पाश्चात्य वैज्ञानिक मानवतावाद में विहित है । प्रा. एडवर्ड चेने के अनुसार 'सोलहवीं सदी के बाद से मानववाद से अभिप्राय उस दर्शन का रहा है जिसका केंद्र और प्रभाव दोनों ही मनुष्य है ।' आधुनिक युग में वैज्ञानिक मानवतावाद को स्वीकार किया गया है जिसमें धर्म के स्थान पर मानवतावाद की पैरवी की गई है । मानवतावाद नियतिवाद का विरोध करता है और मनुष्य के कर्म में आस्था रखता है । प्रयोगवादी कवियों ने भी मानव व्यक्तित्व पर बल दिया है ।

समग्रत: प्रयोगवाद आदर्श के स्थान पर यथार्थ को महत्त्व देता है वह मानव के प्रति आस्था रखता है । प्रयोगवादी कविता में जो क्षणवादी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं उसके मूल में डी.एच.लारेन्स पार्ल एवं फ्रेंच प्रतिवादियों की विचारधारा निहित हैं । मानव जीवन का एक क्षण जो मानव को सुख प्रदान करता है वह शेष जीवन से श्रेष्ठतर है ।

38.3.2 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के पूर्व 'तार सप्तक' में अज्ञेय ने प्रयोगवादी काव्यदृष्टि का निरुपण किया है ।

* प्रयोगवादी कवियों की सबसे बड़ी समस्या काव्य विषय, सामाजिक उत्तरदायित्व और संवेदना के पुन: संस्कार की है ।
* प्रयोगवादी कवि शब्दों के साधारण अर्थ में बड़ा अर्थ भरना चाहता है ।
* वह अनुभूति के नये क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहते हैं ।
* प्रयोगवादी भाषा को अपर्याप्त मानते हैं । इसलिए विराम संकेतों, सीधी तिरछी लकिरों के छोटे बड़े टाईप, अधूरे वाक्यों का प्रयोग करता है ।
* जो व्यक्ति अनुभवी है उसे समष्टि तक कैसे पहुँचाया जाये यह उसकी पहली समस्या है ।
* प्रयोगवाद कोई वाद नहीं वह साधन है अपने आप में इष्ट नहीं इसलिए प्रयोग निरंतर होते आए हैं ।
* प्रयोगवादी साधारणीकरण की अपेक्षा संप्रेषणियता को महत्व देते हैं ।

इस विचाराधारा के परिप्रेक्ष में प्रयोगवाद की निम्न विशेषताएँ रेखांकित की जा सकती हैं –

* **वैयक्तिकता :** प्रयोगवादी घोष व्यक्तिनिष्ठ कवि हैं । उनका व्यक्तिवाद यथार्थवाद से संपृक्त है । वे व्यक्तिमत की गहराई तक जाना चाहते हैं । इसलिए इनके काव्य में अवचेतन में स्थित यौन वर्तनाओं और कुंठाओं की

अभिव्यक्ति भी हुई है । यह कवि अपनी व्यक्तिनिष्ठता को सुरक्षित रखना चाहते हैं । जैसे अज्ञेय आत्मकेंद्रित और आत्मनिष्ठ कवि है । नितांत वैयक्तिक क्षणों में भोगे हुए जीवन की अनुभक्तियाँ अज्ञेय की कविता के प्रमुख विषय रहे हैं । जैसे वे लिखते हैं –

''मै आस्था हूँ, लो में निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ ।
मैं व्यथा हूँ, मैं तो मुक्ति का खास हूँ । मैं तो गाया हूँ ।
तो मैं मानव का अलिखित इतिहास हूँ ।''

प्रयोगवादी कविता के कवि की अंतरात्मा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद इतनी घृणा के साथ बद्धमल है कि वह सामाजिक जीवन की ओर ध्यान नहीं देता । उसकी अनुभूति का केंद्र 'अहं' है, उसकी वाणी में 'मैं' है, अहं की तीव्रती का विस्फोट हैं ।

* **लघुमानव की प्रतिष्ठा :** प्रयोगवादी कविता में लघुमानव की प्रतिष्ठा में अस्तित्ववादी दर्शन की प्रेरणा है । इन कवियों ने ईश्वर की सत्ता को नकाराकर मानव की सत्ता को माना हैं । वह उन सभी मूल्यों, व्यवस्थाओं और चिंतन पद्धतियों को अमान्य करता है । लघुमानव के व्यक्तित्व और उसकी क्षमता पर विश्वास किया गया है । छायावादी काव्य में जीवन के सौंदर्य और गरिमा के प्रति अधिक मोह है । प्रगतिवाद वर्ग चेतना से आक्रांत है । अत: लघुमानव के शोषित रूप का चित्रण अधिक हुआ हैं । इस कारण लघुमानव करुणा, दया और विद्रोह के धरातल पर चित्रित हुआ है । उसकी क्षमता, ऊर्जा और उसके आत्मविश्वास की मनोवृत्तियों को उभारा गया है । वह सहानुभूति या तिरस्कार का पात्र नहीं है । उसमें उन्नयन की अपार ऊर्जा है । वह अपने कृतित्व के बल पर महानता की चरम सीमा को स्पर्श करने की शक्ति रखता है, इतिहास की गति को मोड दे सकने में सक्षम है । धर्मवीर भारती ने लिखा हैं –

मै रथ का टूटा हुआ पहियाँ हूँ ।
लेकिन मुझे फेको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड जाने पर
क्या जाने, सच्चाई टूटे पहियों का आश्रय ले ।''

यद्यपि लघु मानव बौना है फिर भी उसमें अद्वितीय क्षमता है । वह अपने व्यक्तित्व की सीमा से असंभव भी संभव कर सकता है जैसा कि धर्मवीर भारती ने लिखा हैं –

''हारो मत, साहस मत छोडो
हससे भी अयाह शून्य में
बोनों ने तीन पगों में धरती नापी ।''

प्रयोगवादी काव्य में दो वर्ग हैं । एक वर्ग ऐसा है जो जीवन के प्रति अनास्थापूर्ण दृष्टिकोन रखता है और भविष्य से निराश है । इसके अंतर्गत धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही की कविताएँ आती हैं । दूसरे वर्ग की भविष्य में आस्था है, इसका प्रतिनिधित्व अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, हरिव्यास, मुक्तिबोध, नरेश मेहता आदि करते हैं ।

* **अनास्था और संशय का स्वर :** इस संदर्भ में गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है कि 'प्रयोगवादी काव्य में अनास्था की जो प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है उसके मूल में वह मन:स्थिति सक्रीय दिखाई पड़ती है जो जीवन के विरोधी तत्त्वों से क्षुब्ध है । इसमें एक ओर तो जीव के विरोधी तत्वों से संघर्ष करने या प्राण पाने की शक्ति या दृढ़ता का भान है । और दूसरे किसी भी विचारादर्श पर आस्था और विश्वास की कमी है ।'

अनास्थामूलक प्रयोगवादी काव्य के दो पक्ष मानते हैं एक आस्था और अनास्था की वन्दमय अभिव्यक्ति; जो वस्तुत: निराशा और संशय की ओर संकेत करती है, दूसरे नितांत हताशपूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति पहली प्रवृति में आत्मविश्वास और कर्मनिष्ठा के जो संकेत मिलते हैं वे अनास्था की, संशय की बलवती स्थिति को प्रगट करते हैं । धर्मवीर भारती ने लिखा हैं –

'अपनी कुंठाओं की । दीवार में बंधी । मैं घूँटता हूँ ।' कुंठा और विवशता की यह स्थिति अनास्थामूलक है । 'अंधायुग' में तो सर्वत्र अनास्था व्याप्त है । इसमें गांधीजी को कृष्ण के तथाकथित धर्म के प्रति अनास्था है ।

जैसा कि पूर्व संकेत दिया गया है कि प्रयोगवाद पर विदेशी प्रभाव है । टी.एस.इलियट के काव्य संग्रह 'वेस्टलैंड' में आस्था के स्थान पर अनास्था अधिक बलवती है । यही स्थिति प्रयोगवाद में भी है ।

* **निराशा कुंठा और घुटन की अभिव्यक्ति :** सामाजिक विषमताओं के कारण एकाकी संघर्ष करते हुए व्यक्ति को जो असफलताएँ प्राप्त होती हैं उसका यथार्थ वर्णन प्रयोगवादी कविता में हुआ है । कवि को अतीत को प्रेरणा, भविष्य के उज्ज्वल पक्ष के प्रति कोई आकर्षण नहीं हैं । क्योंकि वह वर्तमान को देखता है; वर्तमान उसे निराशाजनक अनुभवित होता है । यह निराशाबोध कवियों में गहरा है । वे उस निराशा को सत्य मानते हैं, अज्ञेय ने लिसा हैं –

''दु:ख सबको मंजता है और

चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने; किन्तु जिनको माँजता है उन्हें यह सीख देता है कि

''सबको मुक्त रखे ।''

इस काव्यधारा के अधिकांश कवि जीवन से हताश निराश है । जीवन में व्याप्त यांत्रिकता, संवेदनशीलता से वे व्यथित होते हैं । छायावादी कवि निराश होकर प्रकृति सौंदर्य और अध्यात्म की ओर मुड़ जाते हैं । परंतु प्रयोगवादी कवि जीवन से पलायन नहीं करते हैं । अपितु निराशा के विविध स्तरों की अभिव्यक्ति करते हैं । व्यक्तिगत जीवन से निर्माण हुई इस निराशा को वे सामुदायिक स्वर देते हैं । अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध की कविताओं में निराशा का स्वर प्रखर हो उठा हैं ।

* **क्षणवाद की अभिव्याक्ति :** प्रयोगवादी कविता में जो क्षणवाद दृष्टिगत होता है उसके मूल में डी.एल.लॉरेन्स, पार्ल सार्त्र तथा फ्रेंच प्रगतिवादियों की विचारधारा प्रेरक बनी है । डॉ. शिवकुमार शर्मा के अनुसार वस्तुत: यह क्षणवादी विचारधारा ही प्रयोगवादी कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित कहती है, और इच्छित क्षण की प्राप्ति का भाव असे अशांत और व्यथित कर नियतिवाद की ओर उन्मुख करता है । जिसे प्रयोगवादी काव्य की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति का गौर दिया जा सकता है ।'' अज्ञेय ने कहा हैं –

''एक क्षण : क्षण में प्रवाहमान व्याप्त संपूर्णत:
एक क्षण होने का अस्तित्व का अजस्त्र अद्‌वितीय क्षण
होने के सत्य का, सत्य के साक्षात का साक्षात के क्षण का
आज हम आचमन करते हैं ।''

प्रयोगवादी कवि बुद्‌धिजीवी होने के काण क्षण के प्रति विशेष सजग है । उनकी मान्यता है कि ''क्षण'' ही अस्तित्व का प्रमाण है ।

* **आस्था और भविष्य के प्रति विश्वास :** प्रयोगवादी काव्य में अनास्था का स्वर मुखरित है फिर भी कुछ कवियों ने भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण अपनाया है । उदा. नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, हरिव्यास, गिरिजाकुमार माथुर आदि । इन कवियों के काव्य में आस्था के साथ नवनिर्माण का स्वर, दुखद वर्तमान से

सुखद भविष्य की आकांक्षा परिलक्षित होती है । आस्था की प्रवृत्ति उत्कर्ष और उन्नयन की भावना से प्रेरित है । अज्ञेय ने कहा हैं –

''मैं आस्था हँ
तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ''

भारतभूषण अनास्थामूलक शक्तियों के विरोध में आस्था को महत्त्व देते हैं । आस्था के दीप प्रज्ज्वलित करना चाहते हैं –

''क्रम आस्था का दीप जलाओ
अंधकार की हदे खींच दो
लो यह छोटा-सा घेरा
नई किरण का बने पाँवडा ।''

इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ प्रयोगवाद अनास्था की बात करना है वहाँ उसमें आस्था के प्रति सकारात्मक भाव है ।

* **सामाजिकता :** यह स्वीकार करना होगा कि प्रयोगवादी काव्य नितांत आत्मनिष्ठ और वैयक्तिक नहीं है । प्रयोगवाद में सामाजिकता तीन रूपों में उपलब्ध होती हैं – एक व्यक्तिवादी परिधि या अहं की सीमारेखा तोड़ने के उद्‌घोश के रूप में दूसरे समष्टि हेतु समर्पण की अनुगुंज के रूप में और तीसरे समष्टि कल्याण के स्वर की अभिव्यक्ति के रूप में ।

* **उपमानों की नवीनता :** रूपकों का विधान और अलंकारिकता के संबंध में नए कवि नवीनता में खो जाना चाहते हैं । कहीं – कहीं तो औचित्य का अतिक्रमण भी हो गया है । उपमान योजना, रूपक विधान एवं अलंकारिता का सुंदर विधान द्रष्टव्य है –

''कितनी सहमी-सहमी-सी, उसकी सुदमई पिपासा ।'

'पहले दर्जे के लोग कफन की भाँति उजले वस्त्र पहने हैं । इन कलाकारों को मिठास भी रोशनी लगती है ।

'मेरे सपने ऐसे दूर गये जैसा भुंजा हुआ पापड ।'

* **शिल्पगत विशेषता:** प्रयोगवादी कवियों को शिल्प कौशल्य को अधिक महत्त्व देने हैं । प्रयोगवादी कवि शिल्प के लिए पाश्चात्य विचारक एजरा पाऊण्ड मलीमे से प्रभावित हैं । मर्ला में ने लिखा है कि ''शिल्प को साधन न मानकर साध्य मानना चाहिए, भाषा साधन न होकर उसकी स्वतंत्र सत्ता होती है ।'' ये कवि अभिव्यक्ति में नवीनता और ताजगी लाते हैं । अभिव्यक्ति की वक्रता द्‌वारा वर्ण विग्रह और वर्ण संधी के आधार पर नई शब्द योजना के प्रयोग से चमत्कारिकता, ठोस विचार तत्व का महत्व रखती है । विषय और शिल्प की दृष्टि से नूतनता धारण किए हुए हैं ।

38.3.3 प्रयोगवाद और नई कविता : हिंदी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद के विकास का अगला चरण नई कविता है । जब प्रयोगवादी काव्य का विरोध होने लगा था तब उसके विदवानों ने अपनी कविता को 'नई कविता' कहना प्रारंभ किया । वास्तव में नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है । डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी ने लिखा है – ''प्रयोगवाद प्रमुखत: कविता का आंदोलन था जो बाद में नई कविता के रूप में परिणित हुआ ।'' विद्‌वान यह भी स्वीकार करते है कि नई कविता उस संपूर्ण मिश्रित काव्यधारा को माना जा सकता है जो स्वतंत्रता के बाद विविध रूपों में प्रवाहित होती चली आ रही है । इसमें छायावादी प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, वैयक्तिकता प्रधान, समाजवादी सभी प्रकार की काव्य रचनाएँ आ जाती है जो अपनी नई भावभूमि, नवीन शिल्प विधान नई भाषा और नए विचारों के कारण अपनी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से मिली प्रतित होती है इसी कारण इसे ''नई कविता'' कहा जाता है ।

नई कविता के दो प्रकार के अर्थ ग्रहण किए जाते हैं एक अर्थ में वह प्रयोगवादी कविता जो पहले प्रयोगवादी कहलाती थी और बाद में 'नई कविता' कहलाने लगी । दूसरे अर्थ में वह कविता जो स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक लिखी जा रही है । इसे नई कविता इसलिए कहना उचित है कि वह अपने पूर्ववर्ती काव्यधाराओं के समान किसी एक वाद तक सीमित न रहकर संपूर्णवादों और विचारधाराओं को अपने भीतर समेटकर अनेकमुखी होकर आगे बढती जा रही है ।

प्रयोगवाद के समान नई कविता में भी अस्तित्ववादी चिंतन चित्रित हुआ है । भारतीय चिंतन में जिजीविषा और मुमुक्षा पर गंभीर विवेचन किया गया है । सभी व्यक्ति जिस प्रकार जीता और संसार के बंधन से छूटना चाहते हैं, उसी प्रकार आधुनिक काल में द्वितीय महायुद्ध की विभाषिका ने मनुष्य को मृत्यु को वरण करने की स्थिति में ला दिया । अत: मृत्यु की इच्छा जीवन का एक सत्य दिखाई देने लगा । नई कविता के अनेक कवियों ने अस्तित्ववादी चिंतन को अपनी संवेदना का अंग बनाकर अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

प्रयोगवादी कविता में कुंठा, घुटन आदि मुखरित हैं जो मोहभंग के कारण उभा कर आई है । स्वतंत्रता के पश्चात् देश में व्याप्त आर्थिक अभाव अत्याचार अनाचार, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि स्थितियों ने जीवन जीने की विवशता कों स्वीकार किया है । व्यक्तियों के दुख दर्द को, कुंठाओं को, घुटन को नई कविताओं में व्यक्त किया गया ।

नई कविता 'क्षण' के मूल्यवान मानती है । क्षणवाद उनकी कविता का कथ्थ रहा है । यह स्थिति प्रयोगवाद में भी दिखाई देती थी ।

प्रयोगवाद में वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति हुई है । नये कवि भी मानते है कि आज की परिस्थिति में व्यक्ति अपने आप में केंदित हो रहा है अर्थात नई कविता अतिशय वैयक्तिकता का महत्व देती है ।

प्रयोगवादी कविता के समान नई कविता में शिल्प की नवीनता परिलक्षित होती है । महानगरों ज्ञान-विज्ञान और मनोविज्ञान से जुडे कई नवीन उपमानों का नये कवियों ने प्रयोग किया है । नई कविता में पुराने उपमानों के भैले मानकर उनकी उपेक्षा करते हुए नवीन उपमानों का प्रयोग किया गया है । जो दैनिक जीवन से संबंधित हैं । बिंब का प्रयोग विविध रूपों में हुआ है । ये कवि केवल प्रकृति से ही बिंब नहीं चुनते अपितु जीवन और जगत् की यथार्थता को रूपायित करने वाले बिंबं चुनते हैं । प्रयोगवाद के समान नई कविता भी मुक्त छंद में लिखी गई है ।

38.4 शब्दार्थ :

जिजीविका - जीने की चाह	मुमुक्षा - मुक्ति की चाह
विभीषिका - भय प्रदर्शन भयंकर कांड	अन्वेषी - अन्वेषण करने वाला

38.5 सारांश :

'प्रयोगवाद' नाम उन कविताओं के लिए रूढ हो गया है जो नए भावबोध, संवेदना को अभिव्यक्त करने के लिए शिल्पगत चमत्कारों को अपनाने लगे हैं । प्रयोगवाद का प्रारंभ ''तार सप्तक'' से अर्थात् सन् १९४३ से हुआ । अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं । प्रगतिवाद के अत्याधिक जनवादी दृष्टिकोन के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवाद का प्रारंभ हुआ है । प्रयोगवाद के प्रारंभिक कवि हैं - अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा / प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं - घोर व्यक्तिवाद, निराशावाद, अनास्था, अस्तित्ववादी चिंतन, लघुमानव की शवधारणा, मानवतावाद, प्रतीकवाद और बिंबवाद, क्षणवादी चिंतन, कुंठा और घुटन आदि ।

प्रयोगवादी कविता कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में नवीनता लिए हुए हैं । एक ओर उसमें अनास्था का स्वर है तो कुछ कवियों ने आस्थावादी दृष्टिकोन व्यक्त किया है, जहाँ निराशा का स्वर है वहाँ आशावादी दृष्टि भी है । इसमें

वर्ण्य विषयों का अव्याधिक विस्तार, अनुभूतियों का नया क्षेत्र, बिंबों और प्रतीकों का अधिक से अधिक प्रयोग, समसामायिक स्थिति पर भाष्य किया गया है ।

नई कविता की प्रवृत्तियों को दृष्टिकेंद्र में रखे हुए कहा गया है कि हिंदी कविता का नवीनतम मोड अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' से हुआ । उसमें वस्तु और व्यंजना अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही क्षेत्रों में नई पढ़ी के कवि नए प्रयोग कर रहे थे । उनका दृष्टिकोण 'अन्वेषी' था और वे मानते थे कि अन्वेषण का कार्य नए प्रयोगों के माध्यम से संपन्न हो सकता है । प्रयोगवादी काव्य पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षिक होता है । जिसमें विशेष रूप से टी. एस. इलियट, एजरा पाउण्ड, ऑडेन पेन्डर प्रेरणादायी रहे हैं । प्रयोगवादी कविता में क्षणवादी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं । मानव जीवन का एक क्षण उसे सुख प्रदान करना है, मनुष्य को भोगवाद की ओर प्रेरित करता है । प्रयोगवादी कविता दुरूह मानी जाती है । क्योंकि इसमें कथ्य, शिल्प की नवीनता, अतिशयता, भाषा संकेतमय, शब्दो की मितव्ययता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रयोगवादी कविता नई कविता के नाम से पहचानी जाने लगी । नई कविता में प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ ही विकसित हुई हैं । परंतु वह किसी भी वाद के प्रभाव से मुक्त है । नई कविता के प्रतिनिधि कवियों में प्रयोगवादी कवि हो दिखाई देते है ।' अत: कहा जा सकता है कि नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है ।

38.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

* प्रयोगवाद के प्रेरक कारणों को विशद कीजिए ।
* प्रयोगदवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए ।
* प्रयोगवाद और नई कविता की विशेषताओं कों स्पष्ट कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

* प्रयोगवादी कविता में अभिव्यक्त लघुमानव की प्रतिष्ठा
* प्रयोगवादी कविता के अनास्था और संशय के स्वर
* प्रयोगवादी कविता में अभिव्यक्त क्षणवाद का महत्त्व

ग) एक–दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

* प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए ।
* तारसप्तक में कितने कवियों की कविताएँ संकलित है ?
* प्रयोगवाद कहाँ से कहाँ तक की यात्रा है ?
* प्रयोगवादी कवियों के चार नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

* पाश्चात्य विचारक फ्रायड ने मनुष्य के व्यक्तित्व को किस की उपमा दी है ?
  अ) आइसबर्ग ब) लौए क) स्वर्ण ड) हिमखंड
* 'मैं रथ का दूरा पबिया हूँ' किसकी पंक्तियाँ हैं ?
  अ) अज्ञेय ब) धर्मवीर भारती क) मुक्तिबोध ड) माथुर
* 'दु:ख सबको माँजता है' – किसकी काव्य पक्तियाँ है ?
  अ) भारती ब) अज्ञेय क) जैन ड) मुक्तिबोध

38.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य :

* प्रयोगवादी कवियों की सूची तैयार कीजिए ।
* प्रयोगवादी कवियों का संक्षिप्त परिचय एकत्रित कीजिए ।
* आपके क्षेत्र में स्थित किसी कवि का साक्षात्कार कीजिए ।
* प्रयोगवादी कवियों में से किसी एक कवि के संग्रह से नई-नई उपमाओं का संकलन कीजिए ।

38.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तके :

* हिंदी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियाँ – डॉ. नामदेव उतकर
* आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सूर्यनारायण रणसूभे
* हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रमेशचंद्र शर्मा
* हिंदी साहित्य का इतिहास – सं. डॉ. नगेंद्र
* हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय

pppp

इकाई 39
साठोत्तरी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ

39.1 उद्देश्य

39.2 प्रस्तावना

39.3 विषय – विवरण

39.3.1 साठोत्तरी हिंदी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ

39.4 शब्दार्थ

39.5 सारांश

39.6 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

39.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

39.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

39.1 उद्‌देश्य :

- ✻ नवगीत की नूतन काव्यधारा को समक्ष सकेंगे ।
- ✻ नवगीतकारों से परिचित को सकेंगे ।
- ✻ गीत और नवगीत के अंतर को समझ सकेंगे ।

39.2 प्रस्तावना :

जैसा कि नाम से स्पष्ट है नवगीत पारंपारिक गीत से भिन्न, पूर्ण रूप से एक नवीन काव्यधारा है । सामान्यत: 'नवगीत' शब्द सन 1958 से प्रयुक्त होने लगा । बिहार के राजेंद्र प्रसाद सिंह ने नवगीत का प्रयोग 'गीतांगिनी' की भूमिका में किया । डॉ. शंभुनाथ सिंह ने 'छायावादोत्तर हिंदी प्रगती' में लिखा कि ''गीत रचना की परंपरागत पद्धतियों और भावबोध को छोडकर नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आया मों तथा नवीन भावों को अभिव्यक्त करने वाले गीत जब भी और जिस युग में लिखे जाएगे नवगीत कहलाएगे ।'' नवगीत ने परंपरागत प्रवृत्तियों को त्यागकर नवीन विचारधारा को अपनाया । नवगीत की प्रमुख विशेषता यह है कि हसने परंपरागत विषयों को नवीन भावबोध के साथ ग्रहण करके अन्य विविध प्रकार के अनेकानेक समसामयिक विषयों को चेतना प्रदान की है । इसलिए इसमें सौंदर्य बोध, जीवनानुभव, जीवनदृष्टि, सामाजिकता, राजनीति, सांस्कृतिक चेतना, यथार्थबोध जैसे संदर्भ दिखाई देते हैं । इसमें वैयक्तिकता के साथ सामूहिकता, निजता के साथ सामाजिकता को प्रमुखता दी है । शिल्प के स्तर पर गेयता, संक्षिप्तता, भाषा, बिब और प्रतीक विधान में अभिनव प्रयोग दिखाई देता है । देवेंद्र शर्मा इंद्र ने नवगीत के स्वरूप को काव्यात्मक शैली में व्यक्त करते हुए लिखा हैं कि ''नवगीत सपनों के रंगबिरंगे पंख लगाकर तितलियों की तरह मधु संचय करने के लिए कल्पना-कुसुमों पर नहीं मँडराता, वह तो सनातन विषपायी पापावर है । समृद्ध, संस्कारों और रचना-बसाकर भी उसने आधुनिकता के धुएँ, धूल और कुहासों के साथ आत्मीयता स्थापित की है ।''

सन १९५० के पश्चात नई कविता नई कहानी की तरह नवगीत आंदोलन ने जोर पकडा है । अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की अपनी विशिष्टता परिलक्षित होती है । नवगीत में लोकजीवन का रस है, यह जमीन से सम्पृक्त है । वस्तुत: नवगीत नई कविता का ही गीतात्मक रूप है । नवगीत हार्दिकता और अनुभूति की सहजता को साथ लेकर चला है । नए अप्रस्तुत विधान, छंद विधान और नई भाषा की उपादेयता नवगीत ने स्वीकार की है । इसके साथ ही इसमे भावात्मक संतुलन, लयात्मकता एवं प्रेषणियता समाहित है । नवगीतकारों में अज्ञेय, शंभुनाथ सिंह, नीरज, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, ठाकूर प्रसाद सिंह, वीरेंद्र मिश्र श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी प्रमुख हस्ताक्षर है ।

39.3 विषय - विवरण :

३९.३.१. साठोत्तरी हिंदी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ नवगीत के स्वरुप का अध्ययन करने के पश्चात उसकी विशेषताओं का अध्ययन समीचीन होगा । इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

✻ **सामाजिकता :** नवगीत कल्पना की वायवी दुनिया में न रहकर यथार्थ भूमि पर रहता है । इसमें सामाजिक यथार्थ की अभिव्यंजना होती है । व्यष्टि और समाष्टि के जीवन में व्याप्त विसंगतियों, आधुनिक जीवन की कटुता, उसके दर्द को नवगीत व्यक्त करना है । नवगीतकार अब नदी, पर्वत, चांद, सूरज, आकाश आदि प्राकृतिक उपादानों का चित्रण न कर दुखी परिवार, बस, रेल, दफ्तर आदि के साथ संपृक्त होता है । इस संदर्भ में सोम ठाकूर ने लिखा हैं कि 'नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रुपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है, परंतु वह उसे निरीह नग्न रूप में अकेला नहीं छोडना वरन् उसके शरीर पर उभरे हुए अनेक घावों को वैद्य बनकर मरहम-पट्टी करता हुआ दिखाई देता है । उमाकांत मालवीय लिखते हैं -

''केवल पुंसत्वहीन, क्रोध और बेवसी, अपनी सीमाओं का बोध, खोखली हँसी, झिडक दिया बेवा माँ को, उफ बिला वजह ।''

समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विषमताओं तथा समय और समकालीन परिस्थिति को देखकर नवगीतकार व्यथित होता है और उसकी यही व्यथा निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टिगत होती है -

‘घरों से / उठती भभक-सी

छतों से उठता धुआँ है,

समय को क्या हुआ है ।’

* **महानगरीय जीवन की त्रासदी :** स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में ‘औद्योगिक क्रांति’ हुई जिसके फलस्वरूप महानगर पनपते चले गए । किंतु इन महानगरों में अजनबीपन, संत्रास, कुंठा, खोखलापन, बनावटीपन के कारण व्यक्ति संवेदनाहीन होता चला गया । इसी महानगरीय जीवन की विसंगतियों को उकेरते हुए नवगीतकारों ने अपनी भावना व्यक्त की है । महानगरीय जीवन में धन के अतिरिक्त महत्व प्राप्त हो रहा है । इसलिए चंद्रसेन विराट जैसे कवियों को महानगरीय जीवन एक ‘अजायब घर’ अनुभव होता है । यथा –

‘‘जान पहचान सिर्फ नोटों की सहानुभूति सिर्फ होठों की,

दोस्त, यह शहर के अजायबघर

भीड है अजनबी मुखोंहो की ।’’

इतिहासकार डॉ रामसजन पाण्डेय ने लिखा हैं कि ‘‘नवगीत युग सत्य के प्रति आँख मूँदकर बैठा नहीं रह सकता, अपितु खुली आँखों से महानगरीय जीवन की विसंगति, कुरुपता अंतद्र्वंद्व, अकेलापन, घुटन, त्रास, पीड़ा को अपनी वस्तु व्यंजना में शामिल करके उसे वाणी प्रदान करता है । महानगरों में आम आदमी का जीवन बड़ा कठिन हो गया है, वह सदैव दहशत के माहौल में जीवन व्यतीत कर रहा है ।’’ विनोद शर्मा महानगरीय जीवन की विडंबना का रेखांकन इन शब्दों में करते हैं – ‘‘साथ रहना । और ढोना अजनबीपन । अब नहीं बर्दाश्त होता । टूटना । पर दिखना साबूत । भयानक त्रासदी है । नाम पर संबंध के । बस औपचारिकता निभाना । आदमी की बेबसी है ।’’

इस प्रकार महानगरीय जीवन में संयुक्त परिवारों की घुटन और टूटन परिलक्षित होती है । महानगरीय जीवन में संघर्ष अपरिहार्य है । यहाँ सुबह से लेकर रात तक आपाधापी है । भागदौड़ है । व्यक्ति भीड़ में रहकर भी अकेला रहता है ।

* **व्यवस्था विरोध :** स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारतीयों ने सुखी जीवन के स्वप्न संजोये थे । उन्हें लगा कि अंग्रेजों की गुलामी के पश्चात् अब देश खुशहाल होगा, आमआदमी की आकांक्षाएँ पूर्ण होगी, प्रत्येक व्यक्ति को दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ – अन्न, वस्त्र, निवारा चिकित्सा और शिक्षा के अवसर प्राप्त होंगे । परंतु सन 1960 तक आते-आते राजकीय वातावरण इतना कलुषित हुआ कि देश ने मोहभंग की स्थिति को सहना प्रारंभ किया । नेता गण और नौकरशाही ने मिलकर देश का शोषण प्रारंभ किया । अश्वघोष जैसे नवगीतकारों ने लिखा कि

‘‘भेडिये जो दे रहे है फरेबी

आदमी के खून के प्यासे

जुल्म, इनके जिस्म का विस्तार

बन्धु रहना हर तैयार ।’’

नवगीतकारों ने देश की समसामायिक स्थिति को देखकर आक्रोश व्यक्त किया है । उमाकांत मालवीय ने स्पष्ट शब्दों में लिखा कि –

‘भारत के माने है केवल कौरव सभा

बहुमत का मतलब धृतराष्ट्र है ।’’

वर्तमान राजनीति भ्रष्ट होने के कारण संपूर्ण देश में भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है । जननेता जनता को विस्मृत कर उन्हीं का शोषण करने लगे । रमेश रंजक जैसे नवगीतकारों ने शोषक तत्त्वों का पर्दाफाश करते हुए लिखा कि –

‘इनके हाथ बडे लम्बे हैं
पाँव नहीं इनके खम्भें हैं ।
भरे पेट पर देश खा गये ।
फिर भी ये भूखे के भूखे ।
माँग रहे अनुदान ।’’

* **बौद्धिकता की प्रधानता :** नवगीत मात्र कल्पनाजीवी एवं भावप्रवण न होकर बौद्धिकता पर आधारित है । इसका कारण यह है कि आजका युग मशीनीकरण और तकनीक का युग है । वैज्ञानिक युग के कारण रूढ़िवाद और अंधविश्वास के संबंध में प्रश्नचिह्न लगे, व्यक्ति तार्किक हो गया । वह अब किसी बात को बिना चिंतन के स्वीकार नहीं करता । डॉ. विनय के अनुसार ‘‘आज के युग में बदलते जीवन मूल्यों के प्रति भावनामूलक दृष्टिकोन से काम नहीं चल सकता, उसके लिए बौद्धिक सोच की आवश्यकता है ।’’

बौद्धिकता की प्रधानता के कारण इन कवियों का दृष्टिकोण यथार्थवादी तो आज का व्यक्ति आशावादी और प्रयत्नवादी है । इसी लिए हरिवंशराय बच्चन लिखते हैं –

‘नाश के दु:ख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से
‘सृष्टि का नवगान फिर–फिर ।’

* **ग्रामीण जीवन का चित्रण :** जिस प्रकार नवगीतकारों ने महानगरों की विसंगतियों को उभारा हैं । उसी प्रकार ग्रामीण जीवन–ग्रामीण प्रकृति, और ग्रामीण अंचल की सुषमा का वर्णन भी किया है । चाँदनी का मानवीकरण करते हुए चंद्रसेन विराट ने लिखा हैं,

‘दूध से नहा रही निर्वसना चाँदनी
किरण में निचोड धवल
मरमर की शिला पर
वसन को सुखा रही निर्वसना चाँदनी’

यही प्रकृति कभी पुरुष रुप धारण करती है तब फसल नष्ट हो जाती है । इसलिए रमेश रंजक लिखते हैं – ‘उफ् !, अधपकी फसल के ओल । भरी सभा में फेंके जालिम बादल ने हथगोल । जों की टूटी रीढ । हरे गेहूँ को चक्कर आय/फूल चाने का खेत रह गया । कौन किस समझाय / हवा पूस की । कूटी फूस की / काँले होले होले ।’’

* **प्रेम और शृंगार :** प्रेम और शृंगार पर आदिकाल से काव्य सृजन हो रहा है । नवगीतकारों ने प्रेम का भावनात्मक चित्रण न करते हुए उसे समय और परिस्थिति के अनुकूल मांसल रूप प्रदान किया । इन्होंने नारी के विविध अंगों का चित्रण करने में कोई कसर नहीं रखी । इसमें इनकी यौन कुंठा ही परिलक्षित होती है । प्रेम की उदात्तता का चित्रण करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि –‘इतना सच है प्यार हमारा । जितना सच है । महाकाल से बचा अमर ध्रुवतारा । इसी प्यार से । हमने – तुमने । अपना जीवन सदा सँवारा ।’’

* **राष्ट्रीय चेतना :** आधुनिक युग में साहित्यकारों में राष्ट्रीय चेतना की धारा फिर से उभरकर सामने आई है । नवगीतकारों ने भी राष्ट्रीयता की भावना को केन्द्र में रखकर नवगीतों का सृजन किया हैं । उनकी राष्ट्रभक्ति केवल औपचारिक न होकर उसमें उनकी आस्था और निष्ठा हैं । विरेंद्र मिश्र ने कहने हैं । ‘धुँआ, आग,

चीत्कार, ध्वंस, हे राज क्या । देशों में होती है खींचतान क्यों । शीत-युद्ध से दुनिया हैरान क्यों । तोप लगाई है किसन इन्सान पर / क्या एरम गिरना है हिन्दुस्तान पर । नहीं - नहीं मैं इसे नहीं होने दूँगा । मैं अपने सब प्रश्नों के उत्तर लूँगा ।'' इसी के साथ इन नवगीतकारों ने देश में व्याप्त बेरोजगारी आर्थिक एवं सामाजिक विषमता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं ।

* **शिल्पपक्ष की नवीनता :** शिल्प के स्तर पर संक्षिप्तता नवगीत की प्रमुख विशेषता है । नवगीतों का अपना छंद है । अपनी लय है । गेयता के स्थान पर लय को महत्व दिया गया है । बाल स्वरूप राही ने लिखा कि 'मैने कुछ तुकें इस तरह जोडी/बडी नयी लगती है । खुरदरी भले हो, पर मेरी कुछ कविताएँ । गीतिमय लगती है ।'' नवगीतकारों के बिंब विधान निरूपण में अधिक गहनता है, अधिक संप्रेषणीयता है । इतना निश्चित है कि नवगीत ने पारंपारिक गीतों से भिन्न अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है ।

39.4 शब्दार्थ :

कुहासा - धूंध, कोहरा	विप्लव : उपद्रव, उथल-पुथल
वायवी - उत्तर पश्चिम का कोण	अजनबीपन - परिचय न बताना
संत्रास - दु:ख वेदना	कुंठा - मन की निराशाजनक स्थिति
बिला वजह - कारण के बिना	

39.5 सारांश :

सन 1958 के आसपास नवगीत की परंपरा प्रारंभ हुई । परंपरागत गीतों से नवगीत का स्वरूप भिन्न है । इसमें वैयक्तिक सुख-दुख की अनुभूति एवं कल्पना रंजकता के स्थान पर समाज के सुख-दुख का यथार्थ चित्रण होने लगा । सामाजिकता नवगीत का प्रमुख विषय रहा है । नवगीत समाज सापेक्ष है । समाज का यथार्थ चित्रण करते हुए इन कवियों ने व्यष्टि और समष्टि के सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों, विद्रपताओं और विदंबनाओं का यथार्थांकन किया है । नवगीतकार समाज के प्रति प्रतिबद्ध रहे हैं । आज नगर महानगरों में बदल रहे हैं । औद्योगिक क्रांति ने महानगरों को, विस्तार दिया । आज आय.टी.एवं. कॉर्पोरेट जगत् के कारण महानगर विस्तीर्ण होते जा रहे हैं । परंतु इसी के साथ गंदगी, भागदौंड, स्वार्थ, अजनबीपन, हिंसा आदि असामाजिक तत्व महानगरों में दिखाई देने लगे । विनोद शर्मा महानगरीय जीवन को औपचारिकता निभाने के और आदमी के बेवसी के केंद्रस्थल मानते हैं ।

देश की वर्तमान स्थिति को देखकर नवगीतकार चिंतित होता है । चारों ओर व्याप्त भ्रष्टाचार, आमआदमी की त्रासदी आदि को देखकर वह व्यथित होता है । इसलिए देश में प्रचलित व्यवस्था के विरोध में उसका स्वर मुखरित होता है ।

आज का युग विज्ञान का युग है । इसलिए व्यक्ति प्रत्येक गतिविधि को विज्ञान की कसौटी पर कसता है वह तकनीकी और संगणकीय युग में रहने के कारण तर्क को महत्त्व देता है । बौद्धिकता के प्रति उसके मन-मस्तिष्क में आस्था है । यह आस्था का स्वर यथार्थवादी है । भावना के स्थान पर बुद्धितत्व की प्रधानता इन 'गीतों में दृष्टिगत होती है ।

नवगीतकार ग्रामीण अंचल के प्रति आकर्षित है । आँचलिक परिवेश के प्रति उसे मोह है । 'पर्वत-पर्वत पर सरसो, घाटि-घाटि में राई ।' देखकर वह आश्चर्य चकित होता है । वह प्रकृति के विधायक एवं विदारक तथा विनाशक रूपों का यथार्थ के धरातल पर चित्रण करता है । यद्यपि प्रेम और शृंगार आधुनिक विषय नहीं है । सनातन काल से इन विषयों पर लिखा जा रहा है परारु नवगीतों में प्रेम की उदात्तता के स्थान पर नारी के शारीरिक गठन को महत्त्व मिला है । प्रेम के अभाव में यौन कुंठा दिखाई दे रही है । नवगीतकार अपने राष्ट्र की प्रशंसा करता हुआ वह राष्ट्र में व्याप्त कटुता, विसंगतियों को व्यक्त करता है । जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है । डॉ. कुँवर बेचैन मानते हैं कि आकार-प्रकार में संक्षिप्तता और गेयता रखने वाली काव्य विधा नवगीत है । इसमें अनुभूतियों के विविध बिंब, प्रतीक व्यक्त हुए हैं ।

नवीन लाक्षणिक प्रतीकों की खोज, बिंबों की नूतनता नवगीत की विशेषता है । इस प्रकार नवगीत कथ्य और शिल्प के अद्‌भुत समन्वय से लिखें जा रहे हैं ।

39.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

* नवगीत के स्वरुप को स्पष्ट कीजिए ।
* नवगीत की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए ।
* अनेक विशेषताओं के होते हुए नवगीत समाज से ही आबद्‌ध है - विवेचन कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ

* नवगीतों में समाज सापेक्षता
* नवगीतों में अभिव्यक्त बौद्‌धिकता
* नवगीतों में महानगरीय परिवेश

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

* नवगीत शब्द कब से प्रयुक्त होने लगा?
* नवगीत के विषय कौनसे?
* चंद्रसेन विराट की दृष्टि में महानगरीय जीवन क्या है ?
* प्रसिद्‌ध नवगीतकारों के नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

* राजेंद्र प्रसाद सिंह ने नवगीत का प्रयोग किस ग्रंथ की भूमिका में किया?
  अ) गीतांगिनी ब) पल्लव क) कामायनी ड) साकेत
* 'जान पहचान सिर्फ नोटो की सहानुभूति सिर्फ होने की ।' किसकी पंक्ति है ?
  अ) निराला ब) चंद्रसेन विराट क) उमाकांत मालवीय ड) अज्ञेय
* निम्नलिखित में से नवगीतकार कौन नहीं है ?
  अ) नीरज ब) नरेश मेहता क) निर्मल वर्मा ड) श्रीकांत वर्मा.

39.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* आपके क्षेत्र के किसी नवगीतकार का साक्षात्कार कीजिए ।
* हिंदी नवगीतकारों के नवगीत संग्रहो की सूची बनाइए ।
* नवगीतों में प्रयुक्त बिंबों, प्रतीकों का विवेचन कीजिए ।
* गीत एवं नवगीत के अंतर को समझने का प्रयत्न कीजिए ।

39.8 संदर्भ : अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें ।

* हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. रमेशचंद्र शर्मा
* हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल
* हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामसजन पाण्डेय
* हिंदी साहित्य का युगीन प्रवृत्तियाँ - डॉ. नामदेव उतरकर

****

इकाई 40

साठोत्तरी हिंदी गजल की प्रमुख विशेषताएँ

अनुक्रम :

40.1 उद्देश्य

40.2 प्रस्तावना

40.3 विषय - विवरण

40.3.1 साठोत्तरी हिंदी नवगीत की प्रमुख विशेषताएँ

40.4 शब्दार्थ

40.5 सारांश

40.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न

40.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

40.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

40.1 उद्‌देश्य :

* हिंदी की आधुनिक काव्यधारा गजल से आप परिचित होंगे ।
* हिंदी गजल के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
* हिंदी गजल की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे ।

40.2 प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य में गजल अत्यंत लोकप्रिय विधा मानी जाती है । इसकी एक सुदीर्घ परंपरा रही है । यह स्वीकार करना पडेगा कि हिंदी गजल उर्दू और फारसी गजल की देन है । 'गजल' अरबी भाषा का शब्द है । जिसका शाब्दिक अर्थ है ''प्रेमिका से वार्तालाप' वास्तव में गजल का मुख्य एवं केंद्रीय विषय 'प्रेम' है । सरदार मुजावर मानते हैं कि 'गजाला' से गजल शब्द बना है । 'गजला' का अर्थ हैं 'हिरन' । हिरन के छोटे-छोटे बच्चों को 'गजाला' कहा जाता है । फिराक गोरखपुरी के शब्दों में जब कोई शिकारी जंगल में कुत्तों के साथ हिरन (गजाला) का पीछा करता है और हिरन भागते-भागते किसी ऐसी स्थान में फँस जाता है, जहाँ से वह निकल नहीं सकता । उस समय उसके कंठ से एक दर्द भरी आवाज निकलती है, उसके उस करुण स्वर को 'गजल' कहते हैं ।

गजल के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए शिव ओम अंबर लिखते हैं कि, हिंदी गजल भोजपत्र पर विप्लव की अग्नि ऋचा है । वह विद्रोह की मशाल जलाने के साथ-साथ तुलसी चाँदे पर संध्यादीप जागृत करने की कला में निष्णात हो गई है । और आवेग की हुंकार मरने के साथ-साथ अनुराग की मेहंदी और अभिसार के महावर के पाटली संदर्भो को बाचने का ढंग आ गया है । इसके अतिरिक्त वह चिंतन के चैत्य में समाधिस्थ ज्योतिषमयी प्रज्ञा के प्रकाशित करने का अभिनव अपूर्व प्रयास कर रही है ।

गजल के संबंध में यह कहा जा सकता है कि गजल वह गेयात्मक विधा है जिसमें प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है । साथ - साथ उसमें सामाजिक राजनीतिक एवं हास्य व्यंग्यात्मक भावभूमिपर सामान्य व्यक्ति के मानस में दबी पीड़ा को वाणी प्रदान की जाती है । जो प्रभावोत्पादक गुणों से युक्त होती है और जिसका अपना एक रूप होता है ।

40.3 विषय - विवरण :

हिंदी गजल की परंपरा अमीर खुसरों से प्रारंभ होती है । कविपय विद्‌वान हिंदी गजल का प्रारंभ कबीर की इस गजल से मानते हैं -

'हमन है हरक मस्ताना हमन को होशियारी क्या, रहे आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या?

गजल का अपना शिल्प विधान होता है, एक विशिष्ट ढंग होता है । उसी के आधार पर गजल की पहचान होती है । उसके प्रमुख अंग हैं - शेर, काफिया, रदीफ, मतता एवं मक्ता शेर की प्रत्येक पंक्ति को 'मिसरों' कहते हैं । दो मिसरों से एक शेर बनता है । जिसमें अर्थ की पूर्ण क्षमता होने कारण वे एक स्वतंत्र भाव की अभिव्यक्ति कराते हैं । काफिया का अर्थ हैं 'पुन:पुन:', 'बार-बार' । अर्थात वह अक्षर या अक्षर समूह जो बार - बार शेरों में आकर शेर को गजल के सूत्र में बाधता है उसे 'काफिया' कहते हैं । काफिया रदीफ से पहले आते हैं । तुक की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण होते हैं । रदीफ का अर्थ है - 'पीछे चलनेवाली' । वह अक्षर, शब्द या शब्द समूह 'रदीफ' कहा जाता है जो शेर में काफिये के पीछे लगातार दोहरा है । 'मतला' गजल का पहला शेर होता है । जिसके दोनों मिसरे सानुपास होते हैं । 'मक्ता' अंतिम शेर होता है । इसमें अक्सर गजलकार के 'तक्कल्लूस' अर्थात् कविनाम या उपनाम का प्रयोग होता है।

गजल की भाषा में संप्रेषण क्षमता विरोध महत्तव पूर्ण होती है । कमसे कम शब्दों में गजलकार अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता है । सभी शेरों में एक विशिष्ट लय सौंदर्य होता हैं । गजल की मोहकता के संबंध में कुँवर

बेचैन लिखते हैं कि 'गजल तेजी से भागती हुई जिंदगी की धारा पर रुक-रुककर, अनुभवों के जल को पीकर डूबने वाली उस गागर के समान है जो भीतर कही चल रही है ... बह रही है ... तैर रही है.... अनदेखे अनजाने ।'

40.3.1 साठोत्तरी हिंदी गजल की प्रमुख विशेषताएँ :

सन 1960 के पश्चात देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति में बदलाव आया । स्वतंत्रता प्राप्त होते ही जनसामान्य को जिस समाजवादी समाज रचना की स्थापना का स्वप्न दिखाया गया था वह स्वप्न ढह गया । देश में दिन-प्रतिदिन गरीबी, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, सांप्रदायिकता आदि समस्याएँ दृष्टिगत होने लगी अतएव मोहभंग की स्थिति दिखाई देने लगी । आम आदमी की स्थिति दयनीय हो गई । इन सब स्थितियों को गजलकारों ने व्यक्त किया । साठोत्तरी हिंदी गजल की अपनी कतिपय विशेषताएँ हैं ।

* **मानवीय मूल्यों का विघटन :** एक युग था जब इस देश में मानवता को उदात्त आदर्श माना जाता था और मानवता को धन पद और प्रभुता से भी बड़ा माना जाता था । दया, माया, प्रेम, सहानुभूति, संवेदना, नैतिकता आदि मानवीमूल्य माने जाते थे । जिनका जतन सामान्यत: लोग करते थे परंतु आज मानवता का कोई मूल्य नहीं रह गया । डॉ. कुवँर बेचैन ने लिखा हैं -

  'हर हक सडक पै हो रहा इसानियत का कत्ल,
  पुरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं ।''

  आज मनुष्य को मनुष्य से सरोकार नहीं रहा है । प्रत्येक व्यक्ति आत्मकेंद्रित हो रहा है । मानवता केवल ग्रंथों में दृष्टिगत होती है प्रत्यक्ष व्यवहार में नहीं । जैसा कि उषा यादव ने लिखा है ।

  'आदमीयत लिखी वेद - कुरआन में,
  उससे वाकिफ नहीं किन्तु इन्सान है ।'

  आज समाज में प्रेम और आत्मीयता, दूसरे के प्रति संवेदना नष्ट होती जा रही है । यह गजलकारों के लिए चिंता का विषय बना है ।

* **नैतिक मूल्यों का विघटन :** संप्रति, समाज में नैतिकता के मापदंड बदल रहे हैं । बेईमानी, झूठ और फरेब सर्वत्र व्याप्त है । सच बोलना अपराध माना जा रहा है और अपराधियों का उदात्ती करण हो रहा है । सच्चाई इमानदारी और विश्वास जैसे नैतिक मूल्य केवल ग्रंथों में दिखाई देते हैं । रचार्थ हेतु लोक अपने आपसे मुकर जाते हैं । व्यक्ति इतना स्वार्थ केंद्रित हो चुकी है कि वह अनैतिक मार्ग से धन कमाना चाहता है और जिसमें उसे पाप का अनुभव भी नहीं होता । संप्रति, सब चीज बिकाऊ हो चुकी है जैसा की शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा हैं -

  ''हल्मों हिकमत दीनों - ईमॉ, मूल्कों - दौलत, हुस्नो-इश्क आपको बाजार से जो कहिए ला देता हूँ ।''

  दूसरों के साथ छल करना, धोखा देना, किसी को भी लूटना किसी पर चोरी छिपे वाट करना आदि दुष्प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत हो रही हैं । इसलिए गजलकार लिखता हैं -

  '' ये दुनिया वास्तव में छल फरेबों का पिटारा है ।
  किसी ने हँस के लूटा है, किसी ने छुप के मारा है ।

* **समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति :** आज भष्ट्राचार शिष्टाचार बन चुका है । यह भ्रष्टाचार शासन में कैसर के समान फैल गया है । सामान्य कर्मचारी से लेकर बड़े अधिकारी तक, संगी से लेकर मंगी तक भ्रष्टाचार कर रहे हैं । समाज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार न हो । जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त हैं । शासन के द्वारा लोक कल्याण हेतु बड़ी-बड़ी योजनाओं का

आयोजन किया जाता हैं परंतु इन योजनाओं का लाभ जन सामान्य को नहीं मिल जाता है । व्यवस्था में बैठे भ्रष्टाचारी इन योजनाओं के लिए निर्धारित धन राशी हडप लेते हैं । इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं -

''यहाँ आते-आते सूस जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ है ठहरा हुआ ।

जिसके पास जितना बडा पद है उसके पास भ्रष्टाचार के उतने ही मार्ग है । ज्ञान, विद्‌वत्ता एवं प्रतिभा को इस भष्ट्राचारी युग में कोई महत्त्व नहीं है ।

* **आर्थिक बोध :** भारत कभी धन-धान्य से संपन्न राष्ट्र था । इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था, यहाँ की धरती सरय-श्यामत होने के कारण धन - धान्य से यहाँ सर्वत्र संपन्नता थी ।परंतु कालांतर में स्थितियाँ बदलती चली गई । मुगलों और अंग्रेजो ने भारत को आर्थिक दृष्टि से लूटा । तत्पश्चात रचतंगता प्राप्ति के पश्चात देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजना बनाई गई परंतु देश में आर्थिक दरिद्रता व्याप्त होती चली गई । आर्थिक विषमता भयंकर रूप से दिखाई देने लगी । गजलकार संवेदनशील होने के कारण वह देश में व्याप्त गरीबी, बेकारी, भूख, श्रमिकों का शोषण आर्थिक विषमता को देखकर व्यथित हुआ और उसने अपनी गजलों में इन स्थितियों का सही-सही वर्णन किया । आजादी के साथ जो स्वप्न दिखाए गए थे, उनके ढह जाने सपनों की पीड़ा दुष्यंत कुमार ने इन शब्दों में व्यक्त की हैं -

''कहा तो तय था चिराँगा हर एक घर के लिए,
कहा चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।''

स्वतंत्र भारत के सबसे बड़ी समस्या भूख है । आज अधिकांश जनता ऐसी है जो भूख से व्यथित हैं । रुखी-सूखी रोटियाँ भी उन्हे नसीब नहीं होती । आश्चर्य यह है कि इस भूख की समस्या पर सांसद विगत साठ वर्षों से चर्चा कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में विवश होकर गजलकार लिखता है -

'भूख है तो सब कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आज कल दिल्ली में जेरे बहस यह मुद्‌आ ।'

इस देश में 'गरीबी हटाव' का नारा दिया गया, परंतु विडंबना यह है कि गरीबी तो नहीं हटी गरीब देश की मुख्यधारा से हट गया । उसका कोई रक्षक न रहा । भूख, बेकारी, घुटन और कुंठाएँ यही देश की नियति है । इस देश में लोग रोटी के अभाव में वृक्षों की खाल को पीस-कर खा रहे हैं । ऐसी भयंकर स्थिति में अधिकांश लोग जीवन जी रहे हैं । यह भारत कृषि प्रधान देश है परंतु आज उसी प्रान बन चुका है । इसलिए सारी समस्याएँ हैं । कृषक आये दिन आत्महत्या कर रहे हैं । वे दरिद्रता में जीवन जी रहे हैं । आर्थिक विषमता भयंकर रूप से व्याप्त है । एक और विलासिता है तो दूसरी ओर निर्धनों को सड़क पर रहने के लिए विवश होना पड़ता है । देश के शोषक और शोषित दो वर्ग बन चुके हैं । एक और धन संपन्न लोग हैं जो बड़े बड़े महलों में रहते हैं । तो दूसरी ओर प्लेटफार्म पर, रेल के पूल के नीचे, बस स्टण्ड पर असंख्य लोग जीवन जी रहे हैं । इन सब स्थितियों को गजलकारों ने उकेरा हैं । आर्थिक बोध के अंतर्गत गजलकारों ने मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं अन्न, वस्त्र और निवास पर जमकर लिखा है ।

* **धार्मिक बोध :** भारत धर्म-प्रधान देश है । धर्म का उद्‌देश्य मनुष्य के शरीर, बुद्‌धि, मन और उसकी संकल्प शक्ति का विकास करता है । धर्म मनुष्य को नैतिक मार्ग से अवगत कराता है । धर्म में संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है जैसा कि डॉ. इकबाल ने लिखा है -

'मजहब नहीं सिखाना आपस में बैर रखना',

किंतु समय के साथ धर्म का उदात्तभाव नष्ट होता चला गया । उसके स्थान पर धार्मिक पाखंड और सांप्रदायिकता व्याप्त हो गई । जब देश स्वतंत्र हुआ तो देश का बटँवारा हुआ और ये बटँवारा धर्म के आधार पर हुआ । मुस्लिमों के लिए पाकिस्तान और हिंदुओं के लिए भारत की स्थापना हुई परंतु इससे रक्तपात हिंसा, लूटमार, अत्याचार, स्त्रियों पर बलात्कार आदि स्थितियाँ घटित हुई । हिंदु – मुस्लिमों में सांप्रदायिकता का जो विषवपन हुआ वह आजतक दोनों में व्याप्त है । समय समय पर वैमनस्य का अग्निकांड जगह बदलता रहा । वह भिवंडी, नागपुर, इंदौर, मुंबई, दिल्ली जैसे महानगरों में व्याप्त होता चला गया । इसलिए ओम रामजादा ने अपनी एक गजल में लिखा कि धर्म पर इतने मतांतर हो गए है कि, ईश वंदन के कई टुकडे हो गए हैं । आज स्थिति यह है कि धर्म निरपेक्ष राज्य का गर्व करने वाले इस देश में हिंदू – मुस्लिम भेद दिखाई दे रहा है । गजलकार के व्यथित होकर लिखता है –

''हम कहीं हिन्दू, कहीं मुसलमान बने बैठे रहे, धर्म के चोपाल पर सारा वतन जलता रहा ।''

आज देश में सांप्रदायिक उन्माद बढ़ रहा है । मानवता नष्ट हो रही है, फलस्वरूप देश पतन की ओर बढ रहा है । इसलिए साठोत्तरी हिंदी गजलकारों ने इन्सानी धर्म मानवता की स्थापना का संदेश दिया है । आज के दौर में हिंदू या मुसलमान होता आवश्यक नहीं है बल्कि इन्सान होने की आवश्यकता है । बेकल उत्साही के शब्दों में –

'मुझे बाद में बनाना, हिंदू या मुसलमान
मुझे पहले एक इन्सा बडे, प्यार से बना दो ।'

माधव मधुकर जैसे गजलकार हिंदू-मुस्लिम सिख-इसाई बनकर नहीं रहना चाहते वे इन्सान बनकर रहना चाहते हैं । मंदिर और मस्जिद का संघर्ष समीचीन नहीं है । यह देश की शांति के लिए घातक है । इसलिए गजलकार चाहते है कि यह आपसी झगड़े समाप्त होने चाहिए । नीरज जैसे शायर लिखते हैं कि अब तो कोई इन्सान बनाया जाए ।

* **व्यवस्था विरोध :** साठोत्तरी हिंदी गजल में व्यवस्था विरोधी का स्वर मुखर रहा है । गजलकारों ने जैसे सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार किये हैं । अपनी गजलों के माध्यम से इन्होंने शोषण, अत्याचार, अन्याय, भ्रष्टाचार, चुनावों में अपना ये जानेवाले षडयंत्र आदि के विरुद्ध आवाज उठाई हैं । इनमें सबसे अधिक प्रखर हैं दुष्यंत कुमार / वे शोषक को जागृत करते हुए कहते हैं इस व्यवस्था के विरोध में खड़ा होना चाहिए । एक क्रांतिकारी विचार मनमें उत्पन्न होना चाहिए । ऐसी विकृत व्यवस्था को बदलना ही समीचीन होगा । जब शोषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता हैं तब ! जलकार व्यथित और चिंतित होकर लिखता है–

''हो गया है पीर पर्वत सी पीछलनी चाहिए ।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।
मेरे सीने में नहीं तेरे सीने में सही,''

हा कही भी ये आग लेकिन आग जलनी चाहिए । आज स्थिती यह है कि आम आदमी आर्थिक अभाव के कारण व्यथित है । देश के स्वतंत्र होने ही जिस समाजवादी समाज रचना की बात हुई थी उसकी स्थापना तो नहीं हुई परंतु तानाशाही शुरू हो गई इसलिए दुष्यंत कुमार ने लिखा हैं कि 'इस मुलुक में हमारी हुकुमत नहीं रही' व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए आँखों में आँसू नहीं बल्कि आग होनी चाहिए । श्याम बेबस ने लिखा है कि –

''पेट की आग से यदि मुक्त होना है हमें
तो दिलों में क्रांति की भी आग जलनी चाहिए ।''

* **अंधविश्वास और रूढ़ी का विरोध :** भारत में अंधविश्वास और प्राचीन रूढ़ियाँ व्याफ है । इसमें सामान्य मनुष्य पिसा जा रहा है । साठोत्तरी हिंदी गजली की यह विशेषता है कि हसमें गजलीकारों ने अंधविश्वास, प्राचीन कालातील रूढ़ियाँ और अंध परंपराओं के विरोध में स्वर प्रखर किया है । जहीर कुरेशी ने लिखा है कि–

  'रूढ़ियों का किला पुराना है,
  जिसमें बैठा 'खुदा' पुराना है ।

  देश में ज्योतिषियों का प्रभाव व्याप्त है । इस वैज्ञानिक युग में भाग्यवादी बनना योग्य नहीं है । डॉ. उर्मिलेश अपनी अपनी एक गजल में लिखते है कि हर समय ज्योतिषियों को हाथ दिखलाना योग्य नहीं है क्योंकि इन जटील. लकींरों पर विश्वास करने से मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नहीं होता । देश में पंडे, पुरोहितों, ज्योतिषियों, फकीरो, मौलावियों, पादरियों द्वारा दुराचार, शोषण किया जा रहा हैं । मठों में स्त्रियों पर अत्याचार होते हैं । जो पुजारी और पुरोहित धर्म को निलाम कर रहे हैं उन्हें ज्ञान प्रकाश विवेक सौदागर कहते हुए लिखते हैं –

  'साहिल पर बाजार लगे हैं, सभी पुरोहित सौदागर धर्म कर्म के अनुंगणित को क्या समझोगी गंगानी ।'

* **राजनीतिक परिवेश का चित्रण :** संप्रति राजनीति, व्यष्टि, समाष्टि और राष्ट्र के जीवन में पूर्णत: व्याप्त हो चुकी है । सन १९६० के पश्चात मोहमंग की स्थितियाँ दृष्टिगत होने लगी और इसी के साथ देश की राजनीति में नैतिकता का अंत दिखाई देने लगा । समय के साथ राजनीति से राष्ट्रनिष्ठा और देशभक्ति समाप्त हो गई । राजनीति सेवा का नही मेवा प्राप्त करने का एक साधन बन गई । साहित्यकार अपने समय और स्थिति से असंपृक्त नहीं रह सकता !

  वर्तमान राजनीति पर डॉ. जे. पी. गंगवार ने 'हिंदी कविता में संवेदना और शिल्प' में लिखा है कि 'यद्यपि जनतांत्रिक शासन प्रणालियों में राजनीति सहज और श्रेष्ठ होती है । परंतु भारतीय जनतंत्र का ढाँचा इस तरह से बिगडा हुआ है कि उसमें आम आदमी का जीना दुभर हो गया है ... आज हमारे देश में प्रजातंत्र महज एक मजाक बनकर रह गया है । इसलिए आज हिंदी गजलकार प्रजातंत्र की उपलब्धितयों का मूल्यांकन करने की बजाय उसकी सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा देता है ।'' कैलास भारद्वारज ने लोकतंत्र का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है वे लिखते हैं कि 'आज लोकतंत्र जोकतंत्र बन चुका है ।' जहीर कुरेशी का अभिमत है कि इस प्रजातंत्र की व्यवस्था में तंत्र की ढील मत पूछो । देश की शासन व्यवस्था जिसके संकेत से चलती है ऐसी संसद अपने मूल उद्देश्य से हट गई है अब वहाँ देश की प्रगति के लिए विचार–विनिमय नहीं होता है । हनुमंत नायडू ऐसी संसद और सांसदों पर तीव्र प्रहार करते हुए लिखते हैं –

  ''क्या रखा है यार तेरे इस बडे देश में,
  एक संसद और लाखों भ्रष्ट नेताओं की भीड ।''

* **महानगरीय जीवन की विडंबनाएँ :** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में हुई औद्योगिक प्रगति के कारण महानगर विकसित होते चले गए । यह स्वागताहर्य है कि इससे महनगरों का भौतिक विकास होता चला गया । परंतु शीघ्र ही इन महानगरों के फैली विडंबनाएँ भी दृष्टिगत होने लगी । महानगरों में सामाजिकता का भान लोटा होता चला । जैसा कि राजकुमार निजात ने लिखा है –

  ''हो गया है कितना पराया इस शहर का आदमी,
  हो के अपना हो न पाया इस शहर का आदमी ।''

  महानगरों की संस्कृति विकृत होने लगी । आधुनिकता के नाम पर महानगरों में क्लब संस्कृति स्थापित से रही है । इस क्लब संस्कृति में फैली विकृति को जहीर कुरेशी ने इस शब्दों में उभारा है –

''बेटी को 'क्लब' से लौटनी माँ का है इंतजार,

बारह बजा रहा है गजर नींद के लिए ।''

शहर में विकसित हो रहे अपार्टमेंटस के कारण उपजाऊ भूमि को कृषिहीन भूमि घोषित करवा लिया जाता है । वास्तव में थे अपार्टस्मेंट कांक्रिट के जंगल हैं । ज्ञान प्रकाश विवेक लिखते हैं –

''कालोनियाँ नगर की उसे मिलके खा गई

वो खेत जो किसी का बूरा सोचता न था ।''

* **नारी शोषण पर चिंता :** गजलकार संवेदनशील होने के कारण नारी पर होनेवाले अन्याय अत्याचार के प्रति व्यथित होते हैं, चिंतित होते हैं । इसी स्थिति पर जहीर कुरेशी ने चिंता व्यक्त करते हुए लिखा हैं –

''क्या कहे अखबार वालों से व्यथा औरत

यौन शोषण की युगों लम्बी कथा औरत ।

अपहरण कर ले गए 'रावण' और कभी 'बिल्ला'

कल 'सिता' तो आज गीता चोपडा औरत ।'

आज नारी शोषण की स्थिति यह है कि जो रक्षक है वही भक्षक बन गए हैं । जिन सुरक्षा कर्मियों पर सभी की सुरक्षा का उत्तरदायित्त्व है, वे विश्वसनीय नहीं रहे हैं । इसी स्थिति पर व्यंग्य करते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक ने लिखा हैं –

''कुँवारी लडकियाँ अपने घरों में जा दुबकीं ।

कि आज शहर से लश्कर निकलनेवाला था ।''

दहेज प्रथा के कारण अनमेल-विवाह की संभावना बनी हुई है । धन के अभाव में बेटी को किसी रईस, प्रौढ व्यक्ति के साथ ब्याह दिया जाता है । इसलिए गजलकार लिखते है –

''उस सुहागिनी की व्यथा आप भला क्या समझे ।

जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढ़ा ।।''

अनेक गजलकारों ने नाही शोषण को गजल का माध्यम बनाया है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में गजल आम आदमी की व्यथा, पीडा सामाजिक समस्याओं को व्यक्त कर रही है । गजल के शब्द भले ही कम हो किंतु उसका प्रत्येक शब्द अर्थ गर्भित है । इसी लिए गजल की लोकप्रियता बढ़ गई है ।

40.4 शब्दार्थ :

वाफिक – परिचित, जानकार

हिकमत – विद्‌या, विज्ञान युक्ति, चतुराई

मयस्सर – उपलब्ध, प्राप्त

चौपाल – दालान, चौपाल

सौदागर – व्यापारी

40.5 सारांश :

हिंदी गजल उर्दू-अरबी से पूर्णत: प्रभावित है । हिंदी गजल का प्रारंभ अमीर खुसरो से माना जाता है । आरंभिक गजलों में उर्दू की देखा-देखी से प्रेम भावना की अभिव्यक्ति दिखाई देती है किंतु आधुनिक गजलों में जीवन की यथार्थता

का परिचय होने लगा है । अब तो गजल में सुंदरी, सुरा का विषय नहीं आम आदमी की पीड़ा का चित्रण होने लगा है । आज की गजल में व्यष्टि, समष्टि, राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक राजनीतिक आदि अनेकविध समस्याओं को अभिव्यक्ति दी जा रही हैं । गजल मे शेर होते है , जिसकी दोनों पंक्तियाँ अर्थपूर्ण होती है । पाँच से आठ शेर मिलाकर एक गजल बनती है । कभी-कभी आठ से अधिक भी शेर हो सकते हैं । हिंदी गजल में सामाजिकता परिलक्षित होती है । समाज की विसंगतियों, विद्रुपताओं और विडंबनाओं को सभी गजलकारों ने एक स्वर में मुखरित किया है । गजल में बेईनामी, झूठ, फरबे आदि अनैतिक मूल्यों के विराध में आवाज मुखरित हुई है । इसी के साथ आम आदमी को पीड़ा गजलकारों का प्रमुख विषय रहा है । आज व्यक्ति समस्याओं से घिरा हुआ है । परिस्थिति के हाथों बिका हुआ हैं । इसी को लक्ष्य कर कई गजलें लिखी गई हैं । वर्तमान राजनीति एक मजाक बनकर रह गई हैं । अत एव अधिकांश गजलकारों ने राजनीति में व्याप्त विसंगतियों, विद्रुपताओं का वर्णन किया हैं । उन्होंने स्वार्थी एवं भ्रष्ट राजनेताओं पर जमकर प्रहार किया है ।

गजलकार अपनी समसामायिक स्थितियों से तटस्थ नहीं हैं इसलिए उन्होंने नारी पर हो रहे अत्याचारों का यथार्थ चित्रण किया है । साठोत्तरी गजलकारों में दुष्यंत कुमार, नीरज, ज्ञानप्रकाश विवेक, जहीर कुरेशी चंद्रसेन विराट, कुँवर बेचैन, गिरिराज शरण अग्रवाल, अदम गोंडवी जैसे सशक्त गजलकार रहे हैं । जिन्होंने सांप्रतिक स्थिति का वास्तविक चित्रण किया है ।

40.6 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

- ✻ हिंदी गजल का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ।
- ✻ हिंदी गजल की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए ।
- ✻ 'साठोत्तरी हिंदी गजल वर्तमान विसंगतियों पर प्रहार करती हैं' - स्पष्ट कीजिए ।

ख) टिप्पणियाँ :

- ✻ साठोत्तरी हिंदी गजलों में अभिव्यक्त नारी ।
- ✻ हिंदी गजलों में व्यक्त सामाजिक स्थिति
- ✻ हिंदी गजलों में राजनीति पर व्यंग्य

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न :

- ✻ गजल किसे कहते है?
- ✻ 'हिंदी गजल भोजपत्र पर विप्लव की अग्निऋचा है' का अर्थ लिखिए ।
- ✻ 'मिसरा' से क्या तात्पर्य है?
- ✻ प्रसिद्ध गजलकारों के चार नाम लिखिए ।

घ) सही पर्याय लिखिए ।

- ✻ गजल में 'काफिया' का स्थान किससे पहले होता है?
  अ) शेर ब) रदीफ क) मतला ड) मक्ता
- ✻ हिंदी गजल की परंपरा किससे प्रारंभ होती है?
  अ) अमीर सुसरो ब) दुष्यंत कुमार क) रहीम ड) नीरज

* गजलकार के तकल्लुस का प्रयोग किसमें होता हैं?

  अ) मतला ब) शेर क) मक्ता ड) काफिया

* 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' किसने लिखा है?

  अ) कबीर ब) अमीर खुसरो क) नीरज ड) इकबाल

* मुझे बाद में बनाना, हिंदू या मुसलमा मुझे पहले एक इन्सा बडे प्यार से बना दो ।'

  अ) बेकल उत्साही ब) ज्ञानप्रकाश विवेक क) अदम गोडवी ड) बेचैन

40.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य :

* आपके परिवेश में होने वाले गजलकारों का साक्षात्कार कीजिए ।
* साठोत्तरी हिंदी गजलकारों की सूची तैयार कीजिए ।
* अन्य भाषा के गजलकारों का साक्षात्कार कीजिए ।
* गजल में अभिव्यक्त विषयों को स्पष्ट कीजिए ।

40.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें ।

* गजल शिल्प और संरचना - डॉ. नरेश
* हिंदी गजल उद्भव और विकास - डॉ. रोहिताश्व अस्थाना
* हिंदी गंजल और गजलकार - डॉ. मधु सराटे
* हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर - डॉ. मधु सराटे
* हिंदी गजल की विकास यात्रा - ज्ञानप्रकाश विवेक

pppp

एम . ए . हिन्दी द्वितीय वर्ष

पेपरः 4

लोकसाहित्य

इकाई – 1

लोक, लोकसाहित्य एवं लोकमार्ग

अनुक्रम

1:1 उद्देश्य
1:2 प्रस्तावना
1:3 विषय विवरण
 1:3:1 'लोक' शब्द की उत्पत्ति
 1:3:2 'लोक' शब्द की प्राचीनता
 1:3:3 'लोक' शब्द की व्याख्या
 1:3:4 लोकसाहित्य की प्रमुख परिभाषाएँ
 1:3:5 लोकसाहित्य का वर्गीकरण
 1:3:6 लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में साम्य और वैषम्य
 1:3:7 लोकसाहित्य के अध्ययन का महत्त्व
 1:3:8 लोकवार्ता – परिभाषा
 1:3:9 लोकवार्ता के विषय की परिधि
1:4 शब्दार्थ – टिप्पणी
1:5 सारांश
1:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
1:7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य
1:8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

1:1 उद्देश्य

* 'लोक' शब्द और साहित्य की परिभाषाओं से परिचित कराना।
* लोकसाहित्य के वर्गीकरण को स्पष्ट करना।
* लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में जो साम्य वैषम्य है उसको समझाना।
* लोकसाहित्य के अध्ययन की महत्ता से अवगत कराना।

1:2 प्रस्तावना

किसी भी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचति होन के लिए उसके लोकसाहित्य का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोकसाहित्य से घनिष्ट संबंध है। वास्तविक बात यह है कि शिष्ट साहित्य लोकसाहित्य का ही विकसित, संस्कृत तथा परिमार्जित स्वरूप है। हिंदी साहित्य के निर्माण में लोकसाहित्य ने आधारशिला का कार्य किया है। लोकसाहित्य की विद्वानों ने आरंभ में उपेक्षा की, उसे घृणा की दृष्टि से देखा। इसलिए लोकसाहित्य का यह उत्कृष्ट खजाना बरसों तक दुनिया के सामने नहीं आ सका। जब भारत में अंग्रेज आए तब उनमें से कुछ लोक भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति रुचि रखने वाले थे। इसी दृष्टि से उन लोगों ने भारत की बोली भाषाओं के साहित्य का अध्ययन आरंभ किया। बीसवीं सदी के आरंभ में भारतीय विद्वानों का ध्यान भी लोकसाहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। धीरे-धीरे विभिन्न बोलियों के साहित्य का भारतीय विद्वानों ने अध्ययन आरंभ किया। लोकसाहित्य गद्य-पद्य में है। यह मौखिक है। गद्य के अंतर्गत लोकथाएँ, कहावतें, मुहावरे आदि आते हैं। पद्य के क्षेत्र में लोकगीत, लोककथा, लोरियाँ शिशुगीत खेल के गीत आदि

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

आते हैं। यह लोगों द्‌वारा लोगों के लिए लोकभाषा में मौखिक रूप में होता है। इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। लोकसाहित्य एक ऐसा पाथेय है जो मानव समाज एवं संस्कृति के विकास-मार्ग पर उसकी उत्थान यात्रा के हर मोड पर रचनात्मक सहायता कर आनंद प्रदान करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस देश के पास उसका अपना समृद्‌ध लोकसाहित्य हो वह देश भाग्यशाली, सुसंपन्न होता है।

1:3 विषय विवरण

'लोक' शब्द की व्याख्या

1:3:1 'लोक' शब्द की उत्पत्ति

शब्द कोश के अनुसार 'लोक' शब्द के कई अर्थ हैं - स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी को हो, संसार, प्रदेश, जन या लोग, समाज, प्राणी, यश आदि। परंतु 'लोक' के दो अर्थ विशेष रूप से प्रचलित हैं - इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है तो पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना की है। दूसरा अर्थ 'लोक' का जनसामान्य है। इसी का हिंदी रूप 'लोग' बन गया है। इसी अर्थ को प्रकाशित करने वाला 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण बन गया। परंतु इससे व अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य के विशेषण के रूप में प्रकट करता है।

सिद्‌धांत कौमुदी के अनुसार 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से बना है। इसमें 'घञ' प्रत्यय लगने से ही लोक शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है - देखना। इस लट् लकार में अन्य पुरुष, एक वचन का रूप 'लोकते' है। अत: 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखने वाला'। वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।

1:3:2 'लोक' शब्द की प्राचीनता

वास्तव में 'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन' के अर्थ में हुआ है। पुरुष सूक्त 'लोक' शब्द 'जीव' तथा 'स्थान' इन दोनों अर्थों में मिलता है। पाणिनि, वरुचि तथा पातंजलि ने भी इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में इसका प्रयोग लोक-धर्मी के रूप में मिलता है। महाभारत, भगवद्‌गीता, रामचरितमानस में 'लोक' का प्रयोग साधारण जनता के अर्थ में पाया जाता है। उपनिषदों एवं पुराणों में 'लोक' शब्द 'स्थान' विशेष के रूप में प्रयुक्त है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने निबंध संग्रह 'चिंतामणि' में लोक सामान्य, लोकसत्ता, लोकव्यवहार, लोकधर्म, लोकमंगल आदि शब्दों का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है। शुक्ल ने ऐसे स्थानों पर समाज तथा संस्कृति को ध्यान में रखकर ही इन शब्दों का प्रयोग किया है।

1:3:3 'लोक' शब्द की व्याख्या

डॉ. रवींद्र भ्रमर के अनुसार ''साहित्य और संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है, किंतु इस दृष्टि से केवल गांवों में ही नहीं वरन् नगरों, जंगलों, पहाडों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपने परंपरागत-प्रथित रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।

※ डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल - ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्‌वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथिवी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

कल्याणतम रूप है।''

* प्रा. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी – ''लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। लोक नगर में परिष्कृत, रुचि-संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने वाली वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।''
* डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – ''जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं, वे 'लोक' होते हैं।''
* डॉ. सत्येंद्र – '''लोक' मनुष्य का वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं।''
* डॉ. श्रीराम शर्मा – '''लोक' शब्द उस विशेष जन-मूह का वाचक है जो साज-सज्जा, सभ्यता, शिक्षा परिष्कार आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से युक्त परिधि को समाविष्ट करता है।''
* डॉ. प्रभाकर माण्डे – ''केवल आदिम परंपरा रखने वाला ग्राम्य या नगरजन समूह लोक नहीं बल्कि वह समूह जिसके बीच किसी समान तत्त्व के दर्शन होते हैं और कुछ मौखिक परंपराएँ होती हैं तथा अपना कुछ अस्तित्व बोध भी होता है।''

ग्रामों एवं नगरों में बसकर अपनी सांस्कृतिक परंपरा एवं पारस्परिक जीवन पद्‌धितियों को बनाए रखते हुए प्रकृति के अधिक निकट-सा जीवन जीने वाले जनसमूह को 'लोक' की संज्ञा दी जाती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँते हैं कि ग्राम शब्द 'लोक' के पर्याय के रूप में नहीं रखा जा सकता क्योंकि 'लोक' के भीतर संप्रवृत्त भाव 'ग्राम' शब्द द्‌वारा अभिव्यक्त नहीं हो पाता. 'लोक' और 'जन' में पर्याप्त सप्राणता है पर प्रयोग और परंपरा के प्रचार में आधुनिक 'फोक' की अनुरूपता के लिए 'लोक' शब्द ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिंबात्मक है। अत: यह कहा जा सकता है कि अभिजात संस्कारों एवं किताबी ज्ञान से सर्वथा दूर रहकर सहज, सरल, स्वाभाविक, प्राकृतिक एवं पारंपरिक समान जीवन मूल्यों के प्रति अटूट श्रद्‌धा रखने वाला विशेष जन-समूह ही 'लोक' है जो अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है।

1:3:4 लोकसाहित्य की प्रमुख परिभाषाएँ

लोक-मानव की अथाह गहराइयों में निष्पन्न बहुमूल्य भाव-रत्नों को जगमगाती हुई ज्योति से लोकसाहित्य का रूपांकन हुआ है।

* पाश्चात्य विद्वान बॅंलिस के अनुसार – ''लोकसाहित्य आदिम मानव निर्मित एवं परंपरा से प्राप्त होता है। वह गद्‌य तथा पद्‌य में होता है। वह लोक विश्वास, लोकश्रम, रूढ़ि, लोककला प्रकार, नृत्य, नाट्य से परिपूर्ण होता है। ''
* गास्टर – ''लोकसाहित्य लोकसंस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसकी रक्षा विचारपूर्वक की जाती है। वह लौकिक परंपरा का खजाना होता है। लोक जीवन का संग्राहक स्वरूप होकर वह कला तथा साहित्य का स्रोत है।''
* फ्रान्सिस पॉटर – ''प्राचीन समाज जीवन के अविनष्ट अवशेष ही लोकसाहित्य है।'' आगे जाकर पॉटरसाहब कहते हैं कि ''लोकसाहित्य संज्ञा परंपरा समूह एवं शास्त्रीय अध्ययन इन दोनों के लिए प्रयुक्त होती है।
* डब्ल्यू स्मिथ – ''लोकसमूह के पारंपरिक जीवन को ही व्यापक अर्थ में लोकसाहित्य मानते हैं।''

इनके अलावा अनेक पाश्चात्त्य विद्‌वानों ने लोकसाहित्य की परिभाषा दी है। उनके द्‌वारा लोकसाहित्य के संदर्भ में किया गया चिंतन एवं अध्ययन को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आदिम अशिक्षित

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

एवं शिक्षित जनसमूह विशेष के भावों की अलिखित, मौखिक, समूह निर्मित परंपरागत सामूहिक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य है। व्यापक धरातल पर इसमें सभी परंपराएँ, कला, सामाजिक एवं धार्मिक विश्वास, कला कौशल, रूढ़ियाँ इन सबका समावेश होता है। समान्यत: आदिम मानव समाज द्वारा निर्मित ये मौखिक आविष्कार ही लोकसाहित्य है।

भारतीय विद्वानों ने लोकसाहित्य की परभिाषा की हैं।

- प्रा. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोकसाहित्य को परिभाषा निर्धारित करने के कार्य को नितांत कठिन माना है। उनके मत से ''ऐसा मान लिया जा सकाता है कि जो चीजें लोक चित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती है, वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।''
- डॉ. धीरेंद्र वर्मा - लोकसाहित्य को मौखिक कृति मानते हैं। वे कहते हैं - ''वास्तव में लोकसाहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोकसमूहन अपना मानता है।''
- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - ''सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दु:ख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोकसाहित्य कहते हैं।''
- डॉ. सत्येंद्र - ''लोकसाहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हों, लोकमानस के सभी तत्त्व एवं अवशेषों की ही चर्चा अधिक हो।''
- मराठी की विदुषी डॉ. सरोजिनी बाबर कहती हैं - जिसमें असत्य अथवा कृत्रिमता की तनिक भी गंध नहीं और जो आज भी देहातों में निरक्षरों की जबान पर, समय के प्रवाह के थपेडों को सहकर भी जीवित है वह लोकसाहित्य, लोकवाङ्मय अथवा अक्षर वाङ्मय कहा जा सकता है।''

लोकसाहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया है। लोकसाहित्य मौखिक परंपरा से चला आकर जनमानस की स्मृतियों में दीर्घकाल तक जीवित रहता है। अतएव आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन ठीक ही है ''साधारणत: मौखिक परंपरा से प्राप्त और दीर्घकाल तक स्मृति के बल पर आते हुए गीत और कथानक ही लोकसाहित्य कहे जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के प्रकाश में समीक्षात्मक रूप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकसाहित्य में नकली सच का मिलना असंभव एवं अशक्यप्राय है। वह तो हमारे जन्म-जन्मांतर के विषयों को संस्पर्श करने वाला, निरक्षण भोली-भाली देहाती जनता का प्रभावी, उदात्त एवं सहज स्फूर्त साहित्य रूप है। वह संपूर्ण जनमानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएव कहना चाहिए कि आधुनिक सभ्यता से दूर रहने वाली भोली-भाली निरक्षर जनता, अपनी सरल भाषा में, सहज स्फूर्त रीति से, अपनी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जीवन-मरण की अभिव्यंजना, मन बहलाव एवं परितुष्टि के लिए करती है तो उसे 'लोकसाहित्य' कहना चाहिए।

1:3:5 लोकसाहित्य का वर्गीकरण

लोकसाहित्य को 'जन-जीवन का दर्पण' कहा जाएँ तो इसमें कुछ गलत नहीं होगा। लोक में व्याप्त प्राणियों के जीवन का मुखरित व्यापार लोकसाहित्य है, जिसमें क्षण-क्षण की अनुभूतियाँ, मनोवेग हृदयोद्गार तथा क्रियाव्यापार सजीव-साकार होते हैं। विश्व के विशाल प्रांगण में जो सहज और सामान्य सत्यरूप है, लोकसाहित्य उनकी अभिव्यक्ति करता है। सर्वसाधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं ठीक उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गाकर अपना मनोरंजन करती हैं। कहानियों को सुनाना उनके मनबहलाव का अनन्य साधन है। समय-

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भावभरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण लोग अपने हृदयगत भावों को व्यक्त करते हैं। ऐसी अनुभूतियाँ पाई जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती।

विषय की विशदता के कारण लोकसाहित्य का सम्यग वर्गीकरण समस्यामूलक रहा है, फिर भी सुविधानुसार हम लोकसाहित्य को प्रधानत: पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(1) लोकगीत (Folk-lyrics)

(2) लोकगाथा (Folk-ballads)

(3) लोककथा (Folk-tales)

(4) लोकनाट्य (Folk-drama)

(5) प्रकीर्ण साहित्य या लोक सुभाषित (Folk-saying)

प्रकीर्ण साहित्य कोई एक विधा-विशेष नहीं है, अपितु स्फुट प्रकार की लघु आकरीय अभिव्यक्ति के विविध रूपों का एक वर्ग निर्धारित कर दिया गया है। इस वर्ग को किसी ने 'स्फुट', किसी ने लोक 'सुभाषित' कहा है। किंतु विभिन्न नामों से पुकारने के पश्चात भी उन्हीं साहित्य रूपों को इस वर्ग में समाविष्ट किया है जो लघु आकारीय हैं और ऊपर के चारो वर्गों में नाही आ पाते।

(1) **लोकगीत (Folk-lyrics) –** लोकसाहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जनजीवन में अपनी प्रचुरता और व्यापकता के कारण इसकी प्रधानता स्वाभाविक है। हम सामान्य रूप से कह सकते हैं कि लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को 'लोकगीत' कहा जा सकता है। इसका रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक-समर्पित कर देता है। जन्म के पहले से मृत्यु के बाद तक इस देश के लोगों का जीवन संस्कारों से संबंधित है और हर संस्कार पर गीत है। लोकगीतों में अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी सुंदर रीति से हुई है। इन गीतों में विभिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है, उसका स्रोत कदापि नहीं सूख सकता। शृंगार रस के अंतर्गत सोहर, विवाह, झूमर आदि गीत आते हैं। गौना, जैतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी, रोहनी आदि गीतों में करुण रस की मंदाकिनी मंद मंद गति से प्रवाहित होती दिखाई पडती है। वीर रस में आल्हा, विजयमल, ढोला मारू, लोरकी, सोरठी आदि गीतों का समावेश होता है। वैवाहिक परिहास के गीतों में हास्यरस की मधुर व्यंजना हुई है। 'झुमर' गीतों में भी हास्य का पुट उपलब्ध होता है। ब्रज में प्रचलित 'ढकोसलों' में ऐसी असंबद्‌ध बातें कही जाती हैं जिन्हें सुनकर हँसी आए बिना नहीं रहती। भजन, निर्गुन, तुलसी माता, गंगा माता आदि के गीतों में शांत रस पाया जाता है। कुछ ऐसे भी गीत हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। जैसे अहीर जाति के लोग 'बिरहा', दुसाध जाति के लोग 'पचरा' आदि विशिष्ट जातियाँ गीत गाती हैं। कतिपय गीत कोई विशेष कार्य करते समय गाए जाते हैं जिनका उद्‌देश्य परिश्रमजन्य क्लांति को दूर करना होता है। खेत में धान रोपते समय 'रोपनों' के गीत, खेत निराते समय 'निखाही' या 'सोहनी' के गीत जौता पीसते समय 'जँतसार' के गीत अधिकतर स्त्रियाँ गाती हैं। अधिकांश गीत किसी न किसी ऋतु अथवा त्यौहार संबंध रखने वाले हैं। अल्हा, फाग या होली, चैता, घाँटों आदि गीतों को गाकर गायक स्वयं आत्मविभोर होकर श्रोता को भी उनकी मधुर स्वरलहरी आत्मविभोर कर देती है। विभिन्न व्रतों के अवसर पर स्त्रियाँ विभिन्न गीत गाती हैं। जैसे गापंचमी, छठी माता, गनगौर, तीज आदि।

लोकगीतों को संस्कारों की दृष्टि से, रसानुभूति की प्रणाली से, ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से, विभिन्न जातियों के अनुसार तथा श्रम के आधार पर विभाजित किया जात सकता है।

(2) **लोकगाथा (Folk-ballads) -** लोकसाहित्य के अंतर्गत ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जो बहुत लंबे होते हैं तथा जिनमें कथावस्तु की ही प्रधानता होती है। इन गीतों को लोकगाथा कहा गया है। लोकगाथा में प्रधानत: 'वीर रस' मिलता है। उनमें वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच का अंश अधिक पाया जाता है। उत्तर भारत में 'आल्हा' की लोकगाथा बड़ी प्रसिद्‌ध है जिसमें वीररस का संचार पाया जाता है। पंजाब में राजा रसालू तथा राजस्थान में पाबूजी की गाथा अत्यंत लोकप्रिय है। मध्यप्रदेश में जगद्‌देव की गाथा बडे प्रेम से गाई जाती है। ये गाथाएँ इतनी लंबी होती है कि गवैए कई कई रात तक इन्हें गाते रहते हैं। यदि इनको साधारण जनता का

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

महाकाव्य कहा जाए तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। कहीं कहीं इन गाथाओं में अनेक वीर पुरुष लोकगाथा या जनरक्षक के रूप में अंकित किए गए हैं। अनेक गाथाओं में मुगलों के अत्याचार से स्त्रियों को बचाने के लिए त्यागी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे डाली है। संसार के सभ्य कहे जाने वाले सभी देशों ने अपने राष्ट्रीय वीरों की लोकगाथाओं को सुरक्षित रखा है। लोकगाथा में चरित्रों की प्रधानता रहती है। लोकगाथा में किसी व्यक्ति-विशेष के संपूर्ण जीवन का संगोपांग वर्णन रहता है। लोकगाथा में विषय की उतनी विविधता नहीं रहती जितनी लोकगीतों में रहती है। इसमें समस्त विषय मुख्य कथानक से चिपटे हुए चलते हैं, उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। लोकगाथाओं में संगीत तत्त्व का एक समान प्रवाह रहता है। एक ही लय में प्रेम, विरह तथा युद्ध इत्यादि का वर्णन हो जाता है।

(3) **लोककथा (Folk-tales)** – लोकसाहित्य के वर्गीकरण में लोककथा का प्रमुख स्थान है। वे अपनी प्रचुरता तथा लोकप्रियता के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। गाँवों में जहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन उपलब्ध नहीं हैं वहाँ लोककथाएँ ही लोगों के चित्त का अनुरंजन किया करती हैं। लोक में मौखिक परंपरा से चली आने वाली कहानियाँ इस वर्ग में आती हैं। ये सामान्य लोकजीवन में प्रचलित, त्रैकालिक विश्वास, आस्था और परंपरा पर आधारित होती हैं। शांति और अशांति के विभिन्न क्षणों में वे लोककथाएँ जनसमुदाय में स्फूर्ति एवं प्रेरणा का संचार करती हैं। लोक-मानस में परिव्याप्त होकर असीम आनंद की लहरों में सत्य का उद्घाटन करती हैं।

भारत में लोककथा का स्रोत सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। विश्व का संपूर्ण कथा-साहित्य भारतीय कथाओं से अनुप्राणित हुआ है। रात्रि के समय माताएँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को सुंदर कहानियाँ सुनाकर उन्हें आनंद प्रदान करती हैं। जाडे की रात्रि में आग के चारों ओर ग्रामीण जन बैठ जाते हैं तब ग्राम वृद्ध अनेक प्रकार की रोचक कहानियाँ सुनाकर लोगों के चित्त बहलाते हैं। खेतों में पशु चराने वाले चरवाहें किसी वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर छोटी-छोटी चुटीली कहानियों द्वारा अपना समय काटते हैं। अनेक व्रतों विशेष रूप से स्त्रियों के व्रतों के अवसर पर कथा कहने की प्रथा प्रचलित है। भोजपुरी प्रदेश में लडकियाँ 'पिडिया का व्रत' करती हुई नियमित रूप से पूरे एक मास तक सबेरे तथा संध्याकाल पिडिया की कथा सुनती हैं। प्रात:काल वे यह कथा सुने बिना अन्नजल तक ग्रहण नहीं करती। गाँवों में सत्यनारायण बाबा की कथा अत्यंत लोकप्रिय है जिसे मांगलिक उत्सवों के अवसर पर लोग सुना करते हैं। कहने का आशय यह है कि लोकजीवन लोककथाओं के ताने-बाने से बुना हुआ है।

लोककथाओं में मानव की सहज वृत्तियों अपने स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होती हैं। प्रत्येक लोककथा का चरम लक्ष्य सर्व कल्याण की भावना में निहित होता है। इसलिए लोककथा का पर्यवसान सदा सुख में होता है। लोककथाओं में प्राय: अमानवीय एवं अलौकिक तत्वों का समावेश होता है। भूत, प्रेत, पिशाच, दानव, परी, उडने वाले पशु, मानवीय भाषा बोलने वाले पक्षी आदि का वर्णन रहता है जो कथा में उत्सुकता एवं कौतुहल की सृष्टि करता है। लोककथाओं की भाषा सरल एवं स्वाभाविक होती है। रचना पद्धती भी सरल होती है। उनमें कृत्रिमता का अभाव होता है। रचना में कथा तत्त्वों के निर्वाह का आग्रह नहीं होता। लोकथाओं में कुछ न कुछ लोक-संस्कृति विषयक सामग्री छिपी होती है, साथ ही कोई न कोई लोक-विश्वास भी छिपा रहता है।

(4) **लोकनाट्य (Folk-drama)** – गीत, नृत्य और संगीत से युक्त लोकानुरंजक कथावस्तु का लोकभाषा में अभिनीत होना लोकनाट्य है। इसमें गीत, संगीत और नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनंद प्रदान करती है, साथ ही यदि नृत्य का भी सहयोग हुआ तो आनंद की सीमा नहीं रहती। महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है कि 'नाटक विभिन्न रुचि रखने वाले लोगों के चित्त के प्रसाधन का अन्यतम साधन है। सामान्य जीवन में अवकाश के क्षणों में लोकनाट्य सार्वजनिक मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन होता है। दिनभर की परिश्रमजन्य थकावट, चिंताओं और अवसाद का परिहार मनुष्य इस प्रकार मनोरंजक

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

कार्यक्रमों में पाता है। प्रत्येक देश का लोकजीवन लोकनाट्यों की झंकार से गुंजित है। ग्रामीण जनता नाटक देखकर जिस आनंद और तन्मयता का अनुभव करती है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं।

लोकनाट्य की परंपरा अति प्राचीन है। वेदों में नाटकीय तत्वों के बीज प्राप्त होत हैं। उनमें, गीत, नृत्य और अभिनय के तत्व प्राप्त होते हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार के पश्चिमी जिलों में भिखारी ठाकुर का 'बिदेसिया' नाटक अत्यंत लोकप्रिय है। ब्रजमंडल में रासलीला का प्रचुर प्रसार है। उत्तर भारत में रामलीला का प्रचलन है, उसके पश्चिमी जिलों में नौटंकी का अत्यधिक प्रचार है। नौटंकी का अभिनय बड़ी कुशलता से किया जाता है। मालवा में 'माँच' नामक लोकनाट्य प्रसिद्ध है। गुजरात में 'गरबा' लोकनृत्य बड़ा लोकप्रिय है जिसमें स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इसमें गीत और संगीत का सुदंर सामंजस्य पाया जाता है। गुजरात में 'भवाई' नामक लोकनाट्य लोकप्रिय है। बंगला में 'जामा' लोकनाट्य प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र में तमाशा, ललित, गोंधळ, बहुरुपिया और दशावतार प्रसिद्ध हैं। भारत के सभी जनपदों के लोकनाट्यों को दृष्टि-पथ में रखें तो प्राय: तीन प्रकार के लोकनाट्य पाये जाते हैं - नृत्य-प्रधान लोकनाट्य, संगीत-प्रधान लोकनाट्य और स्वांग-प्रधान लोकनाट्य। भारत के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकनाट्य प्रचलित हैं। भारतीय लोकनाट्यों में धार्मिक एवं आनुष्ठानिक तत्वों का व्यापक प्रभाव देखा जाता है। कथा भी पुराणों या धर्म-ग्रंथों से चयन की जाती है और ऐसे लोकनाट्यों का प्रदर्शन मंदिर आदि धार्मिक स्थान में किया जाता है।

(5) **प्रकीर्ण साहित्य या लोक सुभाषित (Folk-saying) –** सामान्य जन-जीवन के अंतर्गत गीत, गाथा, कथा एवं नाट्य के अतिरिक्त वाणी-व्यापार के कुछ अन्य रूप भी प्राप्त होते हैं। जिन्हें लोकोक्तियों, मुहावरों और पहेलियों में संज्ञाबद्ध किया जा सकता है। लोकसाहित्य के प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत स्फुट साहित्य आता है जिसे कुछ विद्वानों ने 'सुभाषित' कहा है। लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त ऐसी छोटी छोटी विधाएँ इस वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, जो आकार में लघु हैं। लोकोक्तियाँ अनुभूत ज्ञान का सागर हैं। संसार की प्राय: सभी भाषाओं में सामान्य बुद्धि तथा व्यवहार कुशलता का सुंदर निदर्शन लोकोक्तियों में हुआ है जो अन्यत्र दुर्लभ है। यह मानव स्वभाव तथा व्यवहार-कुशलता की ऐसी धरोहर है जो मानव को उत्तराधिकार में पीढी-दर-पीढी मिलती चली आ रही है। इनका आरंभ जन-जीवन के प्रारंभ काल से ही हुआ है। लोक तथा समाज के आचर-विचार, रीति-रिवाज, धार्मिक तथा नैतिक संबंधों का उल्लेख इनमें स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। प्रत्येक काल में इनसे समाज का पथ-प्रदर्शन होता रहा है। लोकोक्तियाँ लोक-मानस की ऐसी संक्षिप्त, विदग्ध तथा लोकप्रिय उक्तियाँ हैं जिनमें मानवी ज्ञान तथा अनुभव विद्यमान रहते हैं। ये ही लोकजीवन की सप्राणता या जिंदादिली के ज्वलंत उदाहरण हैं।

लोकोक्तियाँ व्यक्तिपरक न होकर सामूहिकता से संबंधित होती हैं। जिन सत्य तथ्यों का साक्षात्कार मनुष्य अपने जीवनकाल में करता रहा है उनका संपूर्ण सार लोकोक्तियों में प्लावित होता रहता है। लाघवत्व के कारण ही लोकोक्ति मुँह पर रहती है। लघु आकार में भी गागर में सागर के समान नीति, शिक्षा, अध्यात्म, राष्ट्र, समाज एवं जाति के व्यापक नियम, स्थान, जाति, प्रकृति या कृषि, पशुपक्षी संबंधी लोकोक्तियाँ मिलती हैं। व्यंग्य के द्वारा तथ्य प्रकाशन की परंपरा भी इसमें रही है। लाघवत्व, सरसता, सरलता, सप्राणता या जिंदा दिली, विदग्धता, सारगर्भितता, लोकप्रियता लोकोक्तियों की विशेषताएँ हैं। हिंदी में घाघ और भड्डरी के नाम से अनेक कहावतें प्रसिद्ध हैं। इनकी उक्तियों में ऋतुविज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पाई जाती है। खेती तथा वर्षा के संबंध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं उनमें स्वानुभूति की मात्रा अत्यधिक है। इनके अतिरिक्त लालबुझक्कड, माधोदास, हृदयराम आधि व्यक्तियों के द्वारा निर्मित कहावतें भी प्रचलित हैं।

कहावतों और मुहावरों में चिरसंचित, अनुभूत ज्ञानराशि भरी पडी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है। मुहावरों का भाषा सौष्ठव की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। मुहावरों के व्यापक क्षेत्र में जनजीवन का प्रत्येक अंग मुखरित हुआ है। इनमें लोकसंस्कृति के अनमोल तत्व अंतर्निहित हैं। सापेक्ष सत्ता, अपरिवर्तनशीलता, लक्ष्यार्थ, की प्रधानता इनकी विशेषताएँ हैं। लोकजीवन के सभी पहलुओं का चित्रण मुहावरो में देखने को मिलता है। जनता के आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

तथ्यों पर भी मुहावरो से काफी प्रकाश पड़ता है। पहेलियों द्‌वारा बुद्‌धि का व्यायाम होता है। मस्तिष्क के कौशल से उत्पन्न होकर ये मस्तिष्क पर ही प्रभाव डालती है। पहेली वाणी का दुरूह व्यापार है जिसमें मनुष्य की गोपीनयता की प्रवृत्ति अंतर्भूत है। इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है। साहित्य में विद्‌वानों ने लोकोक्ति की भांति पहेली को भी अलंकार माना है। पहेली से क्षणिक मनोरंजन हो जाता है परंतु रसानुभूति नहीं होती। वरन इसके प्रयोग से रसानुभूति में बाधा पडती है। पहेली में ध्वनि-चमत्कार अवश्य है। खेती, भोज्य पदार्थ, घरेलू वस्तु, प्राणी, प्रकृति, अगं-प्रत्यंग संबंधी पहेलियाँ होती हैं। आज भी पहेलियों की रचना हो रही है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों को लेकर अनेक पहेलियों की रचना हुई है।

प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत ढकोसले भी आते हैं। ढकोसलों का स्वरूप पहेलियों के समान ही हाता है परंतु पहेलियाँ सार्थक होती हैं ये निरर्थक होते हैं। बेतुकी, ऊपटांग तथा असंबद्‌ध बातें का उनमें समावेश रहता है। इनका उद्‌देश्य जनता का मनोरंजन करना मात्र है। इसमें किसी प्रकार की बौद्‌धिक कौशल की अपेक्षा नहीं होती। इन्हें सुनकर प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर मुस्कराहट आ जाती है। हिंदी में अमीर खुसरों के ढकोसले और पहेलियाँ अत्यंत प्रसिद्‌ध हैं। कुछ विद्‌वानों ने प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत पालने के और खेल के गीतों को समाविष्ट किया है। जब माँ बच्चे को थपकियाँ देकर तथा कुछ गुनगुनाकर गाकर सुलाती है वही गीत पालने के गीत कहे जाते हैं। ऐसे गीत लय प्रधान होत हैं। इन गीतों का कोई अर्थ नहीं होता। माता के स्थान पर जब धाय बच्चों को सुलाते समय गीतों को गाती है तब उन्हें 'धाय के गीत' कहते हैं। बच्चे अपने खेल के आनंद को बढाने के लिए खेलते समय जिन गीतों को उछलकूदकर गाते हैं उन्हें खेल के गीत कहते हैं। यदि उनका सम्यक अध्ययन किया जाए तो लोकसंस्कृति के अनेक तथ्यों का पता चल सकता है।

गाँव के लोक अपने दैनिक व्यवहार में गाली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया करते हैं। अत: मौखिक साहित्य के अंतर्गत गालियों की चर्चा अत्यावश्यक है। इन गालियों में समाज की अनेक प्रथाओं का उल्लेख यत्र-तत्र पाया जाता है।

इस प्रकार किसी देश के खेल-कूद के अध्ययन से वहाँ के निवासियों के स्वभाव, साहस और शक्ति का पता चलता है। खेलों में गीत का पुट भी पाया जाता है। इन गीतों के अध्ययन से बालकों की मनोवृत्ति का पता चलता है।

अत: स्पष्ट है प्रकीर्ण साहित्य भी मानव समाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

1:3:6 लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में साम्य और वैषम्य

लोकसाहित्य में लोकजीन की व्यापक अनुभूति होती है तो साहित्य की दुनियाँ में लोकजीवन छन-छन कर आता है - मांजने-सुधारने के कारण उसका मूल सौंदर्य विनष्ट होता है। लोक से प्राप्त चीजों को मुद्रण-प्रकाशन से अक्षय निधि बनाए रखने का साहित्यकार प्रयत्न करते हैं। आज साहित्य को हम जिस रूप में देखते हैं, उसके बीज इसी लोकजीवन लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य में कितने वर्षों से बिखरी पडी है। इस स्वाभाविक एवं अकृत्रिम चीजों को साहित्यकार आकारबद्‌ध करने का प्रयत्न करता है। बात अपने आप ही स्पष्ट हो जाती है कि लोकसाहित्य ही आज के साहित्य का प्रेरक एवं स्रोत रहा है। इसलिए उन दोनों में कुछ अंतर दिखाई देता है।

लोकसाहित्य	शिष्ट साहित्य
लोकमानस की स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति	कम मात्रा में
मौखिक परंपरा	लिखित रूप में ही
पीढ़ी से अगली पीढ़ी में परंपरा के मौखिक परिणाम से परिवर्तन संभव	लिपिबद्‌ध होने से स्थायी रूप
लोककलाकार पढा लिखा नहीं होता	लेखक-कवि अधिकतर पढ़े लिखे होते हैं
रचयिता अज्ञात, काल भी अज्ञात	लेखक का नाम, काल दोनों उपलब्ध होते हैं

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

व्यक्ति द्वारा निर्मित होने पर भी उसके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब इसमें नहीं होता	व्यक्तित्व झलकता है
भावपक्ष-कलापक्ष की ओर ध्यान नहीं	कलापक्ष के प्रति लेखक सजग होता है
काव्यशास्त्र के नियमों से मुक्त - रस, छंद, अलंकारों के बंधन से मुक्त	काव्यशास्त्र के नियमों से बद्ध - रस, छंद अंकारों का नियमबद्ध प्रयोग
लोकसाहित्य स्वाभाविक	लोकसाहित्य से ही इसका विकास
विषय परिधि अतिव्यापक	लोकसाहित्य की व्याप्तिपर आधारित
भावसौंदर्य की सरल एवं सहजता	कल्पना की उड़ान
लोक की संस्कृति, जीवन, परिवेश का चित्रण	लोकजीवन का विविध विधाओं में चित्रण
सामूहिक रचना अत: भाषाशैली में भिन्नता	व्यक्ति से ही शैली का पता चलता है
व्यक्तिगत रचना होने पर भी वह संपूर्ण लोक का प्रतिनिधित्व करता है	व्यक्तिगत रचना व्यक्ति का ही प्रतिनिधित्व करती है
संगीत, वाद्यों का महत्त्व	रचना में विशेषत: काव्य-नाट्य की प्रस्तुतिकरण में संगीत, वाद्यों का महत्त्व

1:3:7 लोकसाहित्य के अध्ययन का महत्त्व

लोकसाहित्य का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है सामान्य जीवन सर्वांगीण सत्य का प्रकाशन करना। लोक की मौलिक भावाभिव्यक्ति लोकसाहित्य में होती है। इसलिए मानव जीवन में लोकसाहित्य का महत्त्व रहा है। धर्म, संस्कृति, नीति, समाज, भाषा, साहित्य आदि दृष्टि से इसकी उपयुक्तता रही है। डॉ. विद्या चौहान ने लोकसाहित्य के महत्त्व को समझाया है।

- **धार्मिक महत्त्व –** धर्म समाज का अभिन्न अंग है। लोकसाहित्य में समाज और धर्म का घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना, नदियों, पर्वतों, सर्पों, वृक्षों आदि की पूजा, विविध प्रकार के व्रत, तप, यज्ञ दान आदि का आयोजन भी लोकसाहित्य में वर्णित होता है। किसी विशेष समाज के नैतिक एवं धार्मिक पक्षों का वास्तविक परिचय लोकसाहित्य से ही संभव होता है।
- **सांस्कृतिक महत्त्व –** देश और समाज में व्याप्त सांस्कृतिक अनुष्ठानों का वर्णन लोकसाहित्य का एक अंग है। लोकमानस की सांस्कृतिक उन्नति-अवनति का प्रामाणिक चित्रांकन लोकसाहित्य से ही प्राप्त होता है।
- **नैतिक महत्त्व –** लोक का नैतिक स्तर लोकसाहित्य में अत्यंत सजीवता से व्यक्त किया जाता है। सदा-चार पवित्र निष्ठा से विकसित आदर्श चरित्र लोकसाहित्य के अध्ययन कर्त्ताओ न केवल प्रभावित करते हैं बल्कि भावविहवल बनते हैं। आदर्श सती-नारी का दिव्य रूप, पिता का त्याग, पुत्र का अनुराग, भाई-बहन का बिछोह आदि भाव-उत्कर्ष के अनुपम उदाहरण हैं। नैतिक अध:पतन एवं उसके दुष्परिणामों का भी वर्णन मिलता है।
- **सामाजिक महत्त्व –** लोकसाहित्य समाज की अभिव्यक्ति है अत: इसमें समाज के समस्त पहलुओं का सुख-दु:ख, राग-विराग, आशा-निराशा, ईर्ष्या - द्वेष आदि मनोभावों का, रीति-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन, विश्वास और परंपराओं का सजीव चित्रण प्राप्त होता है। समाज में व्याप्त समस्त संबंधों का भावात्मक निरूपण तथा विभिन्न जातियों का पारस्परिक अनुबंध इसमें प्राप्त होता है। किसी समाज का सर्वाधिक सच्चा और स्पष्ट रूप देखना हो तो उसके लोकसाहित्य को देखना चाहिए।
- **भाषा शास्त्रीय महत्त्व –** लोकभाषा में अभिव्यक्ति होने के कारण लोकसाहित्य का भाषाशास्त्रीय महत्त्व रहा है। भाषा के विकास में बोली का महत्त्व है। शब्दों के सच्चे अर्थज्ञान के लिए बोलियों का अध्ययन

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

किया जाता है क्योंकि लोक-बोलियों के स्वाभाविक रूप लोकसाहित्य से ही प्राप्त होते हैं।

* **साहित्यिक महत्त्व** – साहित्य के समान ही लोकसाहित्य मानव-मन की भावात्मक व्यंजना है, जो दोनों से संभव है।
* **ऐतिहासिक महत्त्व** – युग, समाज और व्यक्ति के इतिहास को सजीवता प्रदान करने वाली सामग्री लोकसाहित्य में संचित है। समय के आघात से विलुप्त एवं विस्मृत घटनाएँ लोकानुभूति द्वारा लोकसाहित्य में प्रश्रय पाती है। ऐतिहासिक अध्येताओं के लिए अतीत के संदर्भ में अमूल्य सामग्री लोकसाहित्य में मिलती है।
* **भौगोलिक महत्त्व** – लोकसाहित्य के अंतर्गत विभिन्न स्थानों, नदियों, पर्वतों, समुद्रों, द्विपों आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के व्यापार तथा व्यापार के साधनों, आवागमन के साधनों, विभिन्न ऋतुओं तथा देशानुकुल जलवायु, वातावरण आदि का वर्णन भी उपलब्ध होता है। लोकसाहित्य में युगानुगत परिस्थितियों तथा भौगोलिक स्थितियों का भी वर्णन रहता है।
* **आर्थिक महत्त्व** – प्रत्येक युग के जन-जीवन की आर्थिक स्थिति का चित्रण लोकसाहित्य में मिलता है। जहाँ लोकसाहित्य में धन-धान्य पूर्ण संपन्न समाज में सोने की थाली में छप्पन प्रकार के पकवान परोसने का वर्णन होता है वहाँ दरिद्रता-ग्रस्त परिवारों का निराहार दिन काटने की करुणाजनक स्थिति का भी उल्लेख मिलता है।

लोकसाहित्य का महत्त्व केवल अध्ययन, ज्ञान तक सीमित नहीं है। वह तो इतिहास, भूगोल, धर्म, नीति आदि की जानकारी देने में भी सहायता करता है। लोकजीवन के विशाल भावसागर में न जाने और क्या क्या संचित है, उसकी गहराई में जाने से ही अनुसंधान कर्ताओं के हाथ कुछ और भी लग सकता है।

1:3:8 लोकवार्ता – परिभाषा

'लोकवार्ता' शब्द अंग्रेजी के 'फोक लोर' (Folk lore) शब्द का अनुवाद है। Folk शब्द की उत्पत्ति Fok से हुई है जो एँग्लोसेक्सन शब्द है। यह शब्द असंस्कृत तथा अशिक्षित जाति एवं समाज का द्योतक है। Lore शब्द एँग्लोसेक्सन Lar से निकला है जिसका अर्थ है जो सीखा जाए अर्थात ज्ञान। अत: Folk lore शब्द का अर्थ हुआ असंस्कृत लोगों का ज्ञान। युरोपीयन देशों में सर्वप्रथम साधारण जनता के रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, धर्म और अंधविश्वास आदि का अध्ययन आरंभ किया गया। प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता विलियम जान थामस ने प्रथम बार 'फोकलोर' शब्द का निर्माण किया। उन्होंने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा मूढ ग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढा था। जर्मन के ग्रिम बंधुओं ने जर्मनी की लोककथाओं को एकत्र कर उनका वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने का अभूतपूर्व कार्य किया। फोकलोर का पाश्चात्य देशों में बड़ा गंभीर अध्ययन किया गया है।

म. म. पोतदार ने मराठी में फोकलोर के लिए 'लोक विद्या' शब्द सुझाया था जो अधिक प्रचार में न आ सका। श्री. गो. म. कालेलकर ने 'लौकिक दंत-कथा' का प्रयोग किया। मराठी के पारिभाषिक शब्दकोश में 'जन-श्रुति' शब्द उपलब्ध है। 'फोकलोर' के लिए 'लोकवाङ्मय' तथा 'लोकसाहित्य' शब्द का भ्रमवश प्रयोग किया जाता रहा है।

हिंदी में लोकवार्ता शब्द को प्रचलित करने का श्रेय श्री. कृष्णानंद गुप्त तथा डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल को है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। श्री. कृष्णानंद गुप्त, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. सत्येंद्र ने फोकलोर का हिंदी पर्याय 'लोकवार्ता' ही बताया है। डॉ. सत्येंद्र ने लिखा है – ''लोकवार्ता शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अंतर्गत वह समस्त आचार-विचार की संपत्ति आ जाती है, जिसमें मानव का परंपरित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके स्रोत लोकमानस होते हैं, वे लोक मानस जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नहीं करती होती। लौकिक, धार्मिक, विश्वास, धर्म गाथाएँ तथा कथाएँ, लौकिक गाथाएँ तथा कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी लोकवार्ता के अंग हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकवार्ता शब्द को अवाचक तथा अव्याप्ति दोष के कारण ग्रहण नहीं किया।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

उनका कथन है कि लोकवार्ता में केवल लोककथा या लोकचर्चा का भाव वहन करने की क्षमता है। उन्होंने फोकलोर का पर्याय लोकसंस्कृति शब्द को स्वीकार किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी लोकसंस्कृति शब्द के पक्ष में ही अपना मत दिया है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने फोकलोर के लिए लोकयान शब्द तो कुछ विद्वानों ने लोकायन शब्द चुना है। परंतु ये शब्द फोकलोर के विस्मृत एवं व्यापक अर्थ को प्रकाशित करने में नितांत असमर्थ है।

'फोकलोर' के पर्याय के रूप में हिंदी में दो ही शब्द अधिक प्रचलित हैं -

(1) लोकवार्ता और

(2) लोकसंस्कृति

लोकसंस्कृति से लोकवार्ता शब्द अधिक प्रचलित है। वास्तव में लोकवार्ता शब्द में दम भी है। यह सही है कि वार्ता शब्द के कई अर्थ प्राचीन काल में प्रचलित रहे हैं। उपाध्याय जी जिस लोकसंस्कृति शब्द को महत्त्व देते हुए उसका जो अर्थ करते हैं उसी अर्थ में आज लोकवार्ता का अर्थ रूढ हो गया है। वास्तव में लोकसंस्कृति शब्द मूलत: फोककल्चर का विशुद्ध पर्याय है। डॉ. उपाध्याय लोकसंस्कृति को इसलिए महत्त्व देते हैं कि यह शब्द हिंदी में चिरपरिचित होकर पहले से ही विद्यमान है। परंतु वे यह भी जानते हैं कि यह उस अर्थ में प्रचलित नहीं था जिस अर्थ में आज वे ले रहे हैं। 'लोक'भी हमारे यहाँ पहले से था परंतु आज उसका वह अर्थ नहीं जो पहले था। इसलिए लोकसंस्कृति को ही समीचीन मानना उचिन नहीं। उपाध्याय जी Folk lore और Folk culture में विशेष अंतर नहीं मानते परंतु उसके साधारण अंतर को नकार नहीं सके। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य या ग्रामीण कहानी। डॉ. उप्रेती उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती और सुनती अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है। अतएव किसी एक देश की लोकवार्ता को पूरा और विधिवत् संग्रह किया जाए तो वहाँ के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था का एक संपूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाएगा।

लोकवार्ता शब्द को फोलोर के पर्याय रूप में श्री. कृष्णानंद गुप्त, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. श्याम परमार आदि विद्वानों के आधार पर डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने भी ग्रहण किया है। वास्तव में लोकवार्ता शब्द हिंदी में अपना दृढ़ स्थान निश्चित कर चुका है।

लोकवार्ता की परिभाषाएँ

* मेक् एडवर्ड लीच - ''लोकवार्ता एक संज्ञात्मक शब्द है जो किसी एक जातीय, कृत्रिमता-वियुक्त जनसमूह के समग्र संचित ज्ञान-भांडार अर्थात उसके रीति-रिवाज, लोक-विश्वास, लोक-परंपराओं, लोक-कथाओं, जादू टोने की क्रियाओं, लोकोक्तियों लोकगीत इत्यादि का परिचायक है, जो कि केवल उसे साधारण भौतिक बंधनों से परस्पर आबद्ध रखता है, बल्कि जिसके बीज भावात्मक एकता के सूत्र भी हैं, जो उनकी हर अभिव्यंजना को न केवल अपने रंग में अनुरंजित कर लेते हैं, बल्कि उन्हें निराली और निजी विशिष्टता भी प्रदान करते हैं।'' इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि फोकलोर राष्ट्र की एकता तता एक जातीयता का मूल आधार है। साथ ही वह जातीय लोक-मानस का प्रतिनिधित्व भी करता है।
* प्रसिद्ध नृतत्व-शास्त्री एस. डब्ल्यू. स्मिथ - ''सबसे अधिक बुद्धिमानी की बात यह होगी कि इस फोकलोर की परिभाषा केवल उस मौकिक सामग्री के अध्ययन को मान लें, जो कि किसी भी विधा में, जनसमुदाय में पाई जाती है।''
* गाम्मे महोदय - ''लोकवार्ता के अंतर्गत वह समस्त संस्कृति आ जाती है और जो 'जन'से संबंध रखती है और जो शास्त्रीय धर्म तथा इतिहास में परिणत नहीं हो गई है और जो सदा अपने आप बढती रही है। सभ्य समाज में इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व परंपरा से चले आते गए अपरिमार्जित विश्वास तथा प्रथाएँ

करती हैं। असभ्यों में यह संस्कृति उनके जीवन का अंग बनी होती है। इन्हीं की शोध और इन्हीं का संग्रह लोकवार्ता में होता है।''

- ✻ लेनिन – ''लोकवार्ता जन की आशाओं और आत्मभावों (स्नेहिल संबंधों) से संबंधित सामग्री है।''
- ✻ महात्मा गांधी ने लोकवार्ता को लोगों का साहित्य बताते हुए लिखा है – ''लोकवार्ता लोगों का साहित्य है, पर वह लुप्त होती हुई सामग्री, यदि अब तक नष्ट न हो चुकी हो, से संबंधित है।''
- ✻ देवेंद्र सत्यार्थी – ''लोकवार्ता शब्द नया नहीं। ...लोकवार्ता शब्द अंग्रेजी के फोकलोर से कहीं अधिक अर्थपूर्ण है। जनता जो युग-युग से कहती और सुनती आई है, अर्थात मौखिक परंपरा की समूची सामग्री वह सब लोकवार्ता के अंतर्गत आ जाती है।''
- ✻ डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल – ''लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है – लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति -इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है और लोकवार्ता का संबंध भी उन्हीं के साथ है।''
- ✻ डॉ. सत्येंद्र ने श्रीमती बर्न की परिभाषा को अधिक महत्त्व देते हुए उसे अपने शब्दों में इस प्रकार उद्धृत किया है – ''लोकवार्ता वस्तुत: आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में की गई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषत: इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।''
- ✻ श्याम परमार – '''लोक' की अपरिमित शक्ति, साहस मनोभाव, मान्यताएँ, विश्वास, रागद्वेष, परंपराएँ, टोने-टोटके, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, परंपराएँ, गीत-कथाएँ, वेशभूषा आदि संयुक्त रूप से लोकवार्ता के चेतन अस्तित्व की घोषणा करते हैं।'' आगे उन्होंने लिखा है कि ''लोकवार्ता केवल प्राचीन अवशेष मात्र रूढियों का अध्ययन ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् जीवित लोकभावों, लोकाभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है।''
- ✻ डॉ. श्रीराम शर्मा – ''लोकमानस में प्राप्त अतीत को अब तक जो बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं साम ाजिक अवस्था के चित्र उपलब्ध होते हैं वे सभी लोकवार्ता का स्वरूप उपस्थित करते हैं।''
- ✻ समन्वित परिभाषा – ''मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं का अंकन ही लोकवार्ता कहलाता है। जो अपने जीवन में सब कुछ है वही लोकवार्ता में सम्मिलित है।''

1:3:9 लोकवार्ता के विषय की परिधि

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकवार्ता का अर्थ अत्यंत व्यापक माना है। श्रीमती सोफिया वर्ग ने लोकवार्ता को स्पष्ट करते हुए उसके क्षेत्र के अंतर्गत तीन बातें सम्मिलित की हैं।

(1) लोकसाहित्य

(2) लोकजीवन के रीति-रिवाज,

(3) लोक-जीवन में प्रचलित विश्वास

डॉ. श्याम परमार ने लोकवार्ता के विषय क्षेत्र को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत किया है –

- ✻ लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदि।
- ✻ रीति-रिवाज, त्यौहार, पूजा-अनुष्ठान, व्रत आदि।
- ✻ जादू-टोना, टोटके, भूत-प्रेत संबंधी विश्वास आदि।
- ✻ लोकनृत्य, लोकनाट्य तथा आंकिक अभिव्यक्ति।
- ✻ बालक-बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल तथा गीत आदि।

डॉ. त्रिलोचन पांडेय ने लोकवार्ता की जिन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है, उनके आधार पर लोकवार्ता

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

की पहचान तथा उसके विषय क्षेत्र का परिचय प्राप्त हो जाता है। लोकवार्ता के अंतर्गत समाविष्ट होने वाली बातों को एक स्थान पर देखना चाहें तो हमें डॉ. सत्येंद्र के निम्न कथन का अवलोकन करना चाहिए –

''पिछडी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड-जगत के संबंध में भूतप्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरन, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाह्यकाल तथा प्रौढ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं। तथा धर्म-गाथाएँ, लोक कहानियाँ, बैलाड, गीत, किम्वदन्तियाँ, पहिलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं।''

इस प्रकार लोकवार्ता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसके क्षेत्र की व्याप्ति के बारे में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद हैं। पाश्चात्य विद्वान लोकसाहित्य को लोकवार्ता का अंश मानते हैं, दूसरी ओर भारतीय विद्वान लोकसाहित्य को लोकवार्ता से अधिक व्यापक मानते हैं। उनके मत से लोकसाहित्य की सभी अभिव्यक्तियाँ लोकवार्ता में समाविष्ट नहीं हो सकती। डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, डॉ. सत्येंद्र , डॉ. श्याम परमार प्रभूति विद्वानों ने भी लोकसाहित्य को, अधिक व्यापक एवं विस्तृत बताया है और इसके बहुत से अंश को लोकवार्ता शब्द की परिधि में अंतर्भूत करने में असमर्थना व्यक्त की है। डॉ. श्याम परमार का मत है – ''जहाँ तक लोकवार्ता और लोकसाहित्य का संबंध है, लोकसाहित्य का कुछ अंश ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर है। लोकवार्ता में केवल वही लोकसाहित्य होता है जो लोक की आदिम परंपरा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है।''

तात्पर्य लोकसाहित्य और लोकवार्ता में कुछ समान विषय होते हुए भी उनमें कुछ पार्थक्य है। लोकवार्ता का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से उतना नहीं है जितना इनमें सुरक्षित परंपराओं का है। जो मानव विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। लोकसाहित्य का स्वतंत्र अस्तित्व है, अभिव्यक्ति का, अध्ययन का लक्ष्य स्वतंत्र है और कसौटी भिन्न है। उसके निकष लोकवार्ता से भिन्न है। वास्तव में लोकवार्ता और लोकसाहित्य को पृथक-पृथक शास्त्र मानना चाहिए। लोकवार्ता के अंतर्गत आने वाली विशेष बातों की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में हो जाती है, यह बात अलग है।

1.4 शब्दार्थ-टिप्पणी

नृ-विज्ञान

अंग्रेजी के एथ्रापॉलॉजी के लिए हिंदी में नृ-विज्ञान अथवा मानव विज्ञान शब्दों का प्रयोग किया जाता है। डॉ. सत्येंद्र के मत से नृ-विज्ञान शरीर और रक्त की परंपरा का अध्ययन है। इसका क्षेत्र समस्त पृथ्वी पर मिलने वाले मनुष्य है। मानव-विज्ञान का संबंध मानव के मौलिक इतिहास की शोध से है।

लोकतत्व

वे सभी मूलभूत विचार कण जो किसी शब्द या शास्त्र का निर्माण करते हो, तत्व कहे जाते हैं। ऐसे मूलभूत विचार या अन्य विधायक कण जो लोक के अस्तित्व को स्पष्ट एवं स्थापित करते हों, वे लोकतत्व कहे जाते हैं।

मानव, पुरामानव, आदिमानवों, समस्त रीति-रिवाज, व्रत, अनुष्ठान, पूजा पद्धति, उत्सव, मेलें, त्यौहार, मनोरंजन के विविध रूप, आचार-विचार, रहन-सहन, विचार-चिंतन, लोकविश्वास, लोकप्रथाएँ, लोक परंपराएँ, रूढियाँ एवं मान्यताएँ आदि सभी लोकतत्व में समाविष्ट होते हैं।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

लोकमानस

लोकसाहित्य लोक के लिए लोक द्‌वारा और लोकमानस की कृति के रूप में जाना जाता है। लोकसाहित्य का सर्जक तत्व यही लोकमानव हुआ। उसका एक अर्थ यह हो सकता है कि ऐसा मन या मस्तिष्क जो जन-सामान्य की समान भावधारा का द्‌योतक हो। दूसरी व्याख्या यह भी हो सकती है कि लोकसाहित्य की रचना करते समय जब वैयक्तिक अनुभूतियाँ न उभर कर, लोकानुभूति की प्रधानता एवं प्रबलता रहे और उसी प्रकार की लोकानुभूति साकार हो उठे, तब वह लोक मानस की ही अनुभूति मानी जानी चाहिए। इन दोनों रूपों में लोकमानस को लोक-साहित्य का सर्जक तत्व स्वीकार किया गया है।

लोकसंस्कृति

इस शब्द का निर्माण 'लोक' और 'संस्कृति' इन दो शब्दों से हुआ है। 'लोक' शब्द की व्याख्या हम कर चुके हैं। संस्कृति का अर्थ है मनुष्य ने आंतरिक तृप्ति के लिए किए गए सुकृत्य। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक 'सम्यक कृति' संस्कृति का अंग बनती है। इनमें प्रधान रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान-विज्ञानों और कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है। लोकसंस्कृति का अर्थ है ऐसी सहज, सीधी-सादी एवं प्रकृत धारा के सदृश, बनावटों एवं साजसज्जा से दूर रहने वाली संस्कृति।

1.5 सारांश

हमारे यहाँ 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से होता आया है। शब्दकोश में 'लोक' शब्द के स्थान, संसार, प्रदेश, जन, समाज आदि अर्थ मिलते हैं। ऋग्वेद, पुरुषसूक्त, उपनिषदों, पुराणों, महाभारत, भगवद्‌गीता, रामचरितमानस आदि ग्रंथों में इस शब्द का अलग-अलग अर्थ में प्रयोग हुआ है। पाणिनि, वरुचि, पतंजलि, भरतमुनि जैसे विद्वानों ने भी इतका प्रयोग किया है। हिंदी में रामचंद्र शुक्ल, रवींद्र भ्रमर, वासुदेवशरण अग्रवाल, श्याम परमार, हजारीप्रसाद, श्रीराम शर्मा आदि विद्‌वानों ने 'लोक' की व्याख्या की है।

अभिजात संस्कारों एवं किताबी ज्ञान से सर्वथा दूर रहकर सहज, सरल, स्वाभाविक, प्राकृतिक एवं पारंपरिक समाज जीवन मूल्यों के प्रति अटूट श्रद्‌धा रखने वाला विशेष जन-समूह लोक है। इसी तरह लोकसाहित्य की परिभाषा पाश्चात्य और हिंदी विद्‌वानों ने दी है। आदिम अशिक्षित एवं शिक्षित जनसमूह विशेष के भावों की अलिखित, मौखिक समूह निर्मित परंपरागत सामूहिक अभिव्यक्ति ही लोकसाहित्य है। लोकसाहित्य संपूर्ण जनमानस का प्रतिनिधित्व करता है। लोकसाहित्य को लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, प्रकीर्ण साहित्य में विभाजित किया गया है। लोक में प्रचलित लोक द्‌वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है जिसका रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है। मानव जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक की विभिन्न घटनाओं पर लोकगीत आधारित होते हैं। लोकगीत लयात्मक, स्वत: स्फूर्तिजन्य, अभिव्यक्ति होती है। लोकगाथा के कथात्मकता, गेयात्मकता, समवेत स्वर में गान, लोककंठ में निर्मित आदि लक्षण होते हैं। लोकगाथाओं में कथावस्तु की प्रधानता होती है, गीत लंबे होते हैं। उनमें वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच का अंश अधिक पाया जाता है। इनमें संगीत तत्व का एक समान प्रवाह रहता है। आल्हा, गोरा-बादल, भर्तृहरि, राजा रसालू आदि विभिन्न प्रदेशों की लोकगाथाएँ प्रसिद्‌ध हैं।

लोककथाओं में मानव जीवन की सहज वृत्तियाँ अपने स्वाभाविक रूप में प्रकाशित होती हैं। प्रत्येक लोककथा का चरम लक्ष्य कल्याण होता है। इनका पर्यवसान सदा सुख में होता है। प्राय: इनमें अमानवीय एवं अलौकिक तत्वों का समावेश होता है। रचना में कथा तत्वों के निर्वाह का आग्रह नहीं होता। लोक कथाओं में कुछ न कुछ लोक-संस्कृति विषयक सामग्री छिपी होती है। इन्हें वर्ण्य-विषय के अधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। लोकनाट्य में गीत, संगीत और नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। लोकनाट्य की परंपरा अतिप्राचीन है। बिदेसिया, माँच, गरबा, जात्रा, तमाशा आदि प्रसिद्‌ध लोकनाट्य हैं। भारतीय लोकनाट्यों

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

पर धार्मिक एवं आनुष्ठानिक तत्वों का व्यापक प्रभाव देखा जाता है। प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्ग लोकोक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे, ढकोसले, गाली, पालने के गीत, खेल के गीत आते हैं। प्रकीर्ण साहित्य से लोक जीवन के अनुभव, व्यवहार कौशल्य, मानवीय ज्ञान, बुद्धिचातुर्य आदि का बोध होता है। लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में अंतर होता है जैसे लोकसाहित्य का रचयिता अज्ञात होता है तो शिष्ट साहित्य का ज्ञात होता है। लोकसाहित्य रूढिग्रस्त सर्वसाधारण अशिक्षित जनता का साहित्य होता है तो शिष्ट साहित्य सुशिक्षित, सुसंस्कृत जनता का साहित्य होता है। लोकसाहित्य बरसों से मौखिक रूप में उपलब्ध है शिष्ट साहित्य अनिवार्यत: लिखित होता है। इसके अलावा कई भेद दोनों में मिलते हैं।

लोकसाहित्य के अध्ययन का ऐहिसिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। समाज और संस्कृति का परिचय प्राप्त करने के लिए लोकसाहित्य से प्रचुर सामग्री मिलती है। लोकसाहित्य हमारी राष्ट्रीय एकता एवं रक्षा का प्रतीक है, अनौपचारिक शिक्षा की पूर्ति का साधन है। लोकसाहित्य के अध्ययन के अभाव में धर्मगाथा, जाति विज्ञान, भाषाविज्ञान आदि सामाजिक शास्त्रों का अध्ययन अपूर्ण रहेगा। इसलिए लोकसाहित्य के अध्ययन का अत्यधिक महत्त्व है। लोकसाहित्य की समृद्धि पर ही उस देश की एकता निर्भर होती है। लोकसाहित्य के अध्ययन का महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। 'फोकलोर' शब्द के पर्याय रूप में हिंदी में लोकवार्ता और लोकसंस्कृति शब्द प्रचलित रहे हैं। अनेक विद्वानों ने लोकवार्ता की परिभाषाएँ दी हैं। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं का अंकन ही लोकवार्ता कहलात है। लोकवार्ता के क्षेत्र की व्याप्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। लोकवार्ता और लोकसाहित्य में कुछ समान विषय होते हुए भी उनमें कुछ पार्थक्य है। लोकसाहित्य का स्वतंत्र अस्तित्व है। उसकी अभिव्यक्ति का, अध्ययन का लक्ष्य स्वतंत्र है और उसके निकष भी लोकवार्ता से भिन्न है। लोकवार्ता का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से उतना नहीं है जितना उसमें सुरक्षित परंपराओं का है।

1.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- 'लोक' शब्द की व्याख्या बताते हुए लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य के वैषम्य को बताइए।
- लोकसाहित्य की परिभाषाओं को समझाते हुए लोकसाहित्य के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
- लोकसाहित्य के अध्ययन के महत्त्व का विवेचन कीजिए।
- 'लोकसाहित्य अपने वर्ण्य-विषय के कारण ही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन इसकी महत्ता इससे भी अधिक है' स्पष्ट कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ लिखिए -

- लोकवार्ता
- लोकसाहित्य का सामाजिक महत्त्व
- लोकसाहित्य की परिभाषा
- लोकसाहित्य का वर्गीकरण

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

- लोक शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
- प्रकीर्ण में किन बातों का समावेश होता है?
- एक लोकप्रसिद्ध कहावत लिखिए।
- लोकवार्ता का अर्थ लिखिए।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

घ) पर्याय लिखिए -

- ऋग्वेद में लोक शब्द का अर्थ क्या बतलाया गया है?
  (अ) देखना (ब) धन (क) जन (ड) जीव
- डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने लोकसाहित्य किसप्रकार की अभिव्यक्ति माना है?
  (अ) लिखित (ब) मौखिक (क) वाचिक (ड) कथित
- घाघ और भड्डरी किसके लिए प्रसिद्ध है?
  (अ) कहावतें (ब) अलंकार (क) प्रतीक (ड) बिंब
- अंग्रेजी 'फोकलोर' शब्द के लिए हिंदी पर्यायवाची कौनसा शब्द प्रचलित है?
  (अ) लोकगाथा (ब) लोकवार्ता (क) लोकनाट्य (ड) लोककथा

1:7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य

- आपके क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली कहावतों और मुहावरो का संकलन करें।
- मराठी के विद्वानों द्वारा दी गई लोकसाहित्य की परिभाषाओं का अध्ययन करें।
- लोकसाहित्य के काव्य-वैभव पर निबंध लिखिए।
- लोकवार्ता और लोकसाहित्य में अंतर बताइए।

1:8 संदर्भ-अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

- लोकसाहित्य के प्रतिमान - डॉ. कुंदनलाल उप्रेती
  भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ
- हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास - (षोडश भाग)
  संपा. राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग - डॉ. श्रीराम शर्मा
  विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- भारतीय लोकसाहित्य - डॉ. श्याम परमार
  कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

इकाई – 2

लोकसाहित्य का अन्य शास्त्रों से संबंध

अनुक्रम

2:1 उद्देश्य
2:2 प्रस्तावना
2:3 विषय विवरण
    2:3:1 इतिहास
    2:3:2 पुरातत्व
    2:3:3 मानवविज्ञान
    2:3:4 समाजविज्ञान
    2:3:5 मनोविज्ञान
    2:3:6 भाषाविज्ञान
    2:3:7 धर्मशास्त्र
2:4 शब्दार्थ – टिप्पणी
2:5 सारांश
2:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
2:7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य
2:8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

* मानवोपयोगी समाजविज्ञानों एवं कलाओं का परिचय होगा।
* लोकसाहित्य और अन्य शास्त्रों के परस्पर संबंध की जानकारी होगी।
* लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए समाज विज्ञानों की उपयुक्तता मालूम होगी।

2.2 प्रस्तावना

परंपरा से प्राप्त लोकजीवन का रूप लोगों के क्रिया कलाप एवं उनकी उक्तियाँ लोकसाहित्य के अंग हैं। लोक साहित्य में लोकजीन की सांगोपांग अभिव्यक्ति होने के कारण साहित्य के सर्जक, मानववंशशास्त्रज्ञ, इतिहासकार, कलाकार, समाजशास्त्री, पुरातत्वज्ञ, मनोवैज्ञानिक धार्मिक सभी अपने अध्ययन की परिपूर्ति के लिए लोकसाहित्य का गहाराई एवं आस्था के साथ अध्ययन करने लगे। लोकानुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम लोकसाहित्य है। इसमें लोक जीवन के सभी पक्षों की विवृति होती है। इसलिए लोकसाहित्य और विविध समाज विज्ञानों में पारस्परित संबंध देखे जाते हैं। एक प्रकर के मानव जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन करने वाले शास्त्रों की विविध समाज विज्ञानों के नाम से जाना जाता है, तो लोकसाहित्य आदिम युग से चले आ रहे मानव जीवन की आदिम परंपराओं और उनके अवशेषों को अपने में सँजोएँ रहता है। लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो चुका है। लोकसाहित्य स्वयं लोकवार्ता का अंग कहा जाता है। लोकसाहित्य लोकवार्ता के अनेक अंगों, जनजीवन के बहुविध सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव तत्वों की, क्रियाओं की कुशल अभिव्यक्ति करता है। जीवन के सभी पक्षों का विवेचन तथा विश्लेषण स्वाभाविक रीति से लोकसाहित्य के अंतर्गत होता है। अतएव अनेक समाज विज्ञानों के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री लोकसाहित्य से प्राप्त हो जाती है। आज

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

लोक साहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन की प्रवृत्ति भी जनता में बढती चली जा रही है। लोकसाहित्य की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अनेक समाज विज्ञानों के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य उपयुक्त है। आज लोकसाहित्य का विज्ञान एक समुन्नत समाजविज्ञान के रूप में स्थान पा चुका है। अत: इसके शास्त्रीय क्षेत्र का जहाँ तक संबंध है यह अन्य समाज विज्ञान से घनिष्ट रूप से संबंधित है। इस दृष्टि से लोकसाहित्य एवं अन्य विषयों के आपसी संबंध पर प्रकाश डालना यहाँ अपेक्षित है।

2:3 विषय विवरण

2:3:1 इतिहास

लोकसाहित्य में इतिहास के अनेक तथ्य छिपे रहते हैं। पुरातत्व विज्ञान जितना इतिहास के लिए सहायक है, उतना ही लोकसाहित्य सहायक है। विशेषत: जहाँ इतिहास अस्पष्ट है वहाँ लोकसाहित्य का महत्त्व और अधिक बढ जाता है। अनेक बार जब पुरातत्व के पृष्ठ अनंकित रहते हैं, तब लोकसाहित्य ही इतिहास पर प्रकाश डालता है। किसी जनपद में प्राप्त लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोककथाएँ, किवदंतियाँ आदि उस जनपद के इतिहास के विषय में कुछ तथ्य सँजोएँ रहते हैं और जब तक पुरातत्वविद् द्वारा कुछ खोज न की जाए, तब तक इतिहास की कडियाँ जोड़ने का कार्य लोकसाहित्य से ही लिया जाता है। लोकवार्ता और इतिहास का घनिष्ट संबंध है। लोकवार्ता को ऐतिहासिक प्रमाणों से परखकर ही इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। कर्नल टाड का 'एनल्स ऑफ राजस्थान' लोकवार्ताओं के आधार पर ही लिखा गया है। इतिहासकार लोकसाहित्य से अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के सूत्र ग्रहण करता है।

लोकसाहित्य के विविध साहित्य रूपों में अनेक बार ऐसी इतिहास पर आधारित कहानियाँ समाहित रहती हैं जिनका येथेष्ट ऐतिहासिक मूल्य रहता है। कई इतिहासों में लोकवार्ता के सुंदर संग्रह मिल जाते हैं। लोकमानस किसी भी समसामई घटना के प्रति बहुत संवेदनशील होता है। इसलिए अपने युग की ऐसी घटनाओं की अभिव्यक्ति तत्कालीन लोकसाहित्य में होती है। अंग्रेजों के जमाने में छेद का सिक्का चलाया गया इसका उल्लेख लोकसाहित्य में इस प्रकार मिलता है –

'भाभी चल्यौ छेद कौ पईसा, जाइ तू नारे में लटकाइ लइयों लोगों ने छेद के सिक्के के प्रचलन पर अपनी प्रतिक्रिया दी है। इसी प्रकार अकाल, दैवी, आपत्तियों, महामारियों के वृत्त भी लोकगीतों में भरे पडे हैं। इ. स. १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से गांधी–निर्वाण तक के विभिन्न ऐतिहासिक वृत्तों का उल्लेख लोकगीतों में प्राप्त होता है। मध्ययुग में राजाओं की विलासिता, उनकी क्रुरता, सामान्य जनता पर किए गए अत्याचार इसके साथ प्राचीन शूर वीरों के पराक्रम की कथाएँ लोकजीवन के माध्यम से मिलती हैं। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में जन–श्रुतियों के आधार पर एकत्र की गई सामग्री के आधार पर अपने इतिहास की विलुप्त कडियों को जोडकर देखा गया है।

डॉ. शंकरलाल यादव ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि, ''विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गए हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोकसाहित्य ही दिशा निर्देश करता है।''

इस प्रकार लोकसाहित्य और इतिहास दोनों का पारस्परिक घनिष्ट संबंध है। लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए इतिहास परम सहायक सिद्ध होता है। डॉ. सत्येंद्र ने लिखा है कि – ''उधर लोकवार्ता के अध्ययन के लिए भी पुरातत्व और इतिहास बडे सहायक हैं। लोकवार्ता में अनेक नाम और अनेक घटनाएँ होती हैं, अनेक सुझाव तथा अनेक सूचनाएँ होती हैं। उसमें अनेक निर्माण स्तर होते हैं। इन सभी का उद्घाटन पुरातत्व और इतिहास के द्वारा ही हो सकता है'' लोकसाहित्य समाज का मौखिक इतिहास ही होता है। जॉर्ज लारेन्स ग्रॉम के शब्दों में ''लोकसाहित्य इतिहास का शास्त्र है।''

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

2.3.2 पुरातत्व

पुरातत्व शास्त्र किसी मानव समाज के आदिम से आदिम मानवजीवन का पता लगाने की दिशा में अध्ययन करता है। इ. स. १८४६ में पुरातत्व को एक प्रचलित रूप माना जाता था। इस प्रकार लोकसाहित्य पुरातत्व का एक अंग माना जाता है। लोकवार्ता की कई कथाएँ जिन्हें प्रारंभ में असत्य या गप्प कहकर त्याग दिया जाता था अब ऐतिहासिक प्रमाण मिलने पर सत्य साबित हो रही हैं। जिन तथ्यों को इतिहास तक अस्वीकार करता था, आधुनिक खोजों के द्वारा उन तथ्यों को अब इतिहास के विद्वान प्रामाणिक मानने लगे हैं। इन तथ्यों का चित्रण लोकवार्ता में पहले से ही चला आ रहा था। मुहम्मद गोरी पर पृथ्वीराज की विजयों का उल्लेख, चौरासी सिद्धों की कथा, वामन वीर किस प्रकार पंचपीर बन, गए आदि - जिसे इतिहास पहले अस्वीकार करता था उन लोकवार्ता तत्वों की पुष्टि आज ऐतिहासिक अनुसंधान ने कर दी है। ये कथाएँ पूर्ण सत्य होंगी ऐसी बात नहीं, वरन् पुरातत्व को तो लोकवार्ता से केवल संकेत ही प्राप्त हो सकते हैं। किसी विशिष्ट युग में किस प्रकार का मानव जीवन, उसका रहन-सहन, आवास, भोजन दैनिक उपयोग के उपकरण प्रथाएँ, रीति-रिवाज, विश्वास, त्यौहार, मेले, पूजा, देव-देवताओं के स्वरूप, मंदिर, वास्तुकला, विविध कलाओं की सर्जना का स्वरूप था, यही पुरातत्व का विषय माना जाता है। इन सबकी खोज पुरातत्व करता है। मानव जीवन की इन विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में होती है।

पुरातत्व शास्त्रियों को लोकसाहित्य में अनेक रूपों की सामग्री उपलब्ध होती है। कई बार पुरातत्वविदों के लिए कार्य करने की प्रेरणा लोकसाहित्य के माध्यम से मिलती है और वे पुरातत्व की विलुप्त कडियों को जोड़ने का कार्य करते रहे हैं। लोकसाहित्य में ऐसे अनेक ऐतिहासिक सत्य छिपे रहते हैं, जिनके विषय में अनुसंधान करने के लिए पुरातत्व को स्पष्ट संकेत एवं दिशा प्राप्त होती है। लोकवार्ता की कई बातें, किवदंतियों, व्याख्याओं की कई बातों को पुरातत्वशास्त्री आधार मानकर उस दिशा में अपने कार्य की रूपरेखा निश्चित करते हैं। 'मोहेंजोदड़ो' इसका अच्छा उदाहरण है। लोकवार्ता सांस्कृतिक खोज एवं अनुसंधान के लिए भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए पुरातत्व विज्ञान के लिए लोकसाहित्य की उपयोगिता एवं लोकसाहित्य पर निर्भरता स्वत: सिद्ध है। लोकवार्ता को भी पुरातत्व से अधिक सहायता मिलती है। पुरातत्व कई लुप्त सामग्री देकर लोकवार्ता को प्रामाणिकता प्रदान करता है। लोकवार्ता में प्राप्त अनेक भावनाओं को पुरातत्व ही उद्घाटित कर पुष्ट करता है। अत: दोनों का संबंध महत्त्वपूर्ण है।

2:3:3 मानवविज्ञान

लोकवार्ता का मानवविज्ञान के साथ गहरा संबंध है। लोकवार्ता को मानवविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार किया गया है। मानवविज्ञान संसार के विभिन्न समुदायों या समाजों में मिलने वाले मानव मात्र का इस रूप में अध्ययन करता है कि मानव ने क्रमश: अपना विकास किस प्रकार किया है? उसके उत्तरोत्तर विकास के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं? कारण रूप में कार्य करने वाले कौनसे तत्व हो सकते हैं? इस प्रकार के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य से बहुत-सी सामग्री प्राप्त हो जाती है। मानवविज्ञान की शारीरिक एवं सांस्कृतिक ये शाखाएँ लोकसाहित्य के अध्ययन से अनेक नए अध्यायों का आरंभ करती हैं या कर सकती हैं। इसलिए मानवविज्ञान के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन उपादेय ठहरता है। मानव की विभिन्न जातियाँ, उनकी उपजातियाँ, उनके परपस्पर संबंध, ऊँच-नीच के भाव, उनकी मान्यताएँ, विभिन्न जातियों की विशेष प्रवृत्तियाँ आदि लोकसाहित्य के अध्ययन से जानी जा सकती हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य का जातिविज्ञान के लिए पर्याप्त योगदान रहता है। जहाँ मानव विज्ञान मानव के शरीर और रक्त की परंपरा का अध्ययन करता है वहाँ लोकवार्ता उस मानव की वाणी का। इसप्रकार मानवविज्ञान की सहायता लोकसाहित्य भी करता है। अत: लोकवार्ता का कार्य बिना मानवविज्ञान के नहीं चल सकता और न ही मानवविज्ञान का कार्य लोकवार्ता विज्ञान के बिना नहीं चल सकता।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

2.:3:4 समाजशास्त्र

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र वर्तमान समाज में रहने वाली विभिन्न जातियों या समुदायों की सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाजों तक फैला रहता है। लोकसाहित्य का रचनाकार लोकजीवन की सामाजिक प्रथाओं एवं परंपराओं का जीवंत चित्रण लोकसाहित्य में करता है। लोकसाहित्य में मानवजीवन की यथातथ्य अभिव्यक्ति होती है, इसलिए लोकसाहित्य में ऐसी प्रचुर सामग्री मिल जाती है जिसे समाजशास्त्र अपने अध्ययन का आधार बना सका है। अनेक जंगली पर्वतीय या आदिम जातियों के साहित्य का अध्ययन करके उनके जीवन के विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुत: लोकसाहित्य में जनजीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोकसाहित्य का अध्ययन करना चाहिए। अनेक सामाजिक संस्कार लोकसाहित्य पर ही आधारित होते हैं। आज कई नई जातियों में विवाह संस्कार लाकगीतों के बिना पूरा नहीं होता।

अनेक प्रथाएँ तथा परिपाटियाँ जिनका वर्णन लोकसाहित्य में आता है उनकी सही जानकारी समाजशास्त्र के माध्यम से ही होती है। लोकसाहित्य का समाजशास्त्र से उतना ही प्रगाढ़ संबंध है जितना मानवशास्त्र से। लोकसाहित्य जिस प्रकार मानवशास्त्र के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता उसी प्रकार समाजशास्त्र के बिना भी वह एक कदम नहीं बढ़ सकता। मानवशास्त्र समाज की भूतकाल की सभ्यता एवं संस्कृति को लेकर चलता है तो समाजशास्त्र हमारे वर्तमान समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का विश्लेषण करता है। लोकसाहित्य दोनों के अध्ययन का अंग बन जाता है। समाजशास्त्र का एक विषय 'सामाजिक मानवशास्त्र' में लोकवार्ता का अध्ययन प्रमुख रूप से किया जाता है। आदिकालीन मौखिक साहित्य का अध्ययन करते समय समाजशास्त्री लोककथाओं का अध्ययन किए बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार समाजशास्त्र का भी लोकसाहित्य से घनिष्ट संबंध है। जब शिष्ट साहित्य को समाज का प्रतिबिंब कहा जाता है तो लोकसाहित्य को समाज की आत्मा का उज्वल प्रतिबिंब कहा जाना चाहिए।

इस प्रकार समाजशास्त्र और लोकसाहित्य एक दूसरे के लिए अत्यंत उपयोगी है।

2.3.5 मनोविज्ञान

लोकसाहित्य एवं मनोविज्ञान का अध्ययन की दृष्टि से निकट का संबंध है। मनोविज्ञान के संबंध में स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि यह शास्त्र मनुष्य के मन का अध्ययन करता है। किसी व्यक्ति वर्ग या समूह की पृथक-पृथक स्थितियों में घटित होने वाली मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान द्वारा किया जाता है। लोकसाहित्य में लोक और रचयिता की वैयक्तिक मनोदशाओं या मनोवांछाओं, आशा-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति रहती है। लोकसाहित्य में प्रतिबिंबित समाज-मन का अध्ययन विशेष रीति से किया जा सकता है। फ्राईड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का भी लोकसाहित्य के अध्ययन में उपयोग होता है। अर्नस्टजोन्स, जे. एल. फिशर जैसे मनोवैज्ञानिकोंने मनोविश्लेषण विज्ञान को आधार बनाकर ही लोककथाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया। किसी समूह अथवा जाति की मन:प्रवृत्तियों का अध्ययन, लोकानुभूतियों की व्याख्या और मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों का विश्लेषण मनोविज्ञान की अध्ययन करने वाली विभिन्न शाखाओं की सामग्री से ही संभव हो सका। मनोविज्ञान के लिए लोकसाहित्य में प्रचुर सामग्री मिल जाती है जिसका अध्ययन-अनुसंधान करके नए-नए निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं या पुराने निष्कर्षों की पुष्टि की जा सकती है।

मनोविज्ञान की जाति-मनोविज्ञान, लोक-मनोविज्ञान और आदिम मनोविज्ञान शाखाएँ हैं। जाति मनोविज्ञान किसी जाति की मानसिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करता है। लोकमनोविज्ञान में लोकानुभूतियों की व्याख्या की जाती है तथा आदिम मनोविज्ञान में मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाता है। लोकसाहित्य में अभिव्यक्त लोकरुचि एवं विश्वासपरक सामग्री मनोविज्ञान के अध्ययन की आधारभूमि कही जा सकती है। लोकसाहित्य में प्रतिबिंबित समाज-मन का अध्ययन विशेष रीति से किया जा सकता है। जन समूह में प्रचलित रूढ़ियों तथा प्रथाओं की अभिव्यक्ति के संचय-कोष लोकसाहित्य का अध्ययन करते समय उसमें व्यक्त लोगों

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

के मनोभावों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार लोकसाहित्य के अध्ययन की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में मनोविज्ञान से सहायता ली जाती है। मनोविज्ञान की सहायता से ही लोकमानस तथा उसके ऐतिहासिक स्तरों का अध्ययन लोकसाहित्य करता है।

2:3:6 भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान और लोकसाहित्य मानवशास्त्र के क्षेत्र हैं। भाषाविज्ञान किसी शब्द, पद, ध्वनि और वाक्य के अतिरिक्त उसके अर्थ का भी अध्ययन करता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए लोकजीवन में प्रयुक्त व्यवहार की भाषा को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। भाषाविज्ञान के सभी अंगों के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन भी भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इस प्रकार के विकास में अर्थ, ध्वनि और शब्द रूप के विकार, उत्कर्ष, अपकर्ष आदि का अध्ययन करने के लिए भाषाविज्ञान को प्रचुर सामग्री लोकसाहित्य से प्राप्त हो सकती है। लोकबोली भी इस अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि इस प्रकार जीवंत भाषा का रूप लोकसाहित्य में ही होता है, शिष्ट साहित्य में नहीं। लोकसाहित्य में ऐसे अनेक शब्द हैं जो भाषाविज्ञान के लिए अत्यंत उपयोगी एवं लाभप्रद हैं। लोकसाहित्य में प्रयुक्त लोकबोली का रूप भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए अनेक नई समस्याओं के समाधान हेतु सामग्री प्रदान करता है तथा अनेक मान्यताओं की पुष्टि के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है। लोकबोली में प्रयुक्त अनेक शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषाशास्त्र विषयक अनेक सस्याओं का हल खोजा जा सकता है। लोकबोली में प्रयुक्त हजारों सार्थक अभिव्यक्तियों क्रियाओं परिभाषिक शब्दों, कहावतों, महावरों आदि से भाषा का भंडार समृद्ध किया जा सकता है।

यही नहीं, भाषा की अतीत कालीन कड़ियों तक जाने के लिए भी लाकेबोलियों में प्रचुर सामग्री मिल जाती है। शब्द के मूल तथा यथार्थ अर्थ के लिए जिन परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है, वे भाषाविज्ञान को लोकसाहित्य से ही प्राप्त होती है। जैसे ब्रज में जखैया की पूजा होती है। यह जखैया क्या है? इसके लिए भाषाविज्ञान को लोकसाहित्य का आश्रय लेना पडेगा कि लोकवार्ता 'जखैया देव' के संबंध में क्या सूचना प्रदान करती है। दूसरी ओर उसे धर्म की शरण में भी जाना होगा और धार्मिक साहित्य और इतिहास की शरण में भी जाना पड़ेगा। लोकवार्ता से ज्ञान होगा कि यक्ष का स्थान ही जखैया है जो जैन ग्रंथों में महावीर के ठहरने का स्थान 'जक्खचेइय' से उद्‌भूत है। लोकसाहित्य के द्‌वारा प्राप्त लोकबोली की प्रचुर सामग्री से भाषाशास्त्री अनेक निष्कर्ष निकाल सकता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन से लोकसाहित्य में प्रयुक्त अनेक शब्दों, उनके अर्थों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इस रूप में लोकसाहित्य के लिए भाषाविज्ञान की उपादेयता भी स्वत: सिद्‌ध है। दोनों का परस्पर घनिष्ट संबंध है। भाषाशास्त्री के लिए तो लोकसाहित्य रत्नाकर के समान है, जिसमें गोता लगाने पर उसे अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं।

2:3:7 धर्मशास्त्र

संसार में प्रत्येक जाति का एक धर्म होता है। मनुष्य की आदिम अवस्था में उसके जो लोकविश्वास कायम रहे बाद में उन्हीं से धर्म का स्वरूप भी विकसित हुआ। आदिम मूल विश्वास धर्म की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। तात्पर्य यह कि लोकविश्वास धर्म का मूल आधार होता है। लोकविश्वास की अमूल्य निधि लोकसाहित्य में सुरक्षित होती है। इसलिए धर्मगाथा, पुराणशास्त्र को लोकसाहित्य के अध्ययन से पर्याप्त सहायता मिल जाती है। लोकसाहित्य के द्‌वारा ही धर्म को सरलात से समझा जा सकता है। धर्म में प्रचलित विधियों के प्रमुख रूपों को भी लोकसाहित्य के माध्यम से भी जाना जा सकता है। स्थान, समय एवं समाजगत अंधविश्वासों की जानकारी केवल लोकसाहित्य के द्‌वारा ही संभव है। किसी भी धर्म के ऐतिहासिक विकास को समझने के लिए लोकवार्ता की शरण आवश्यक है। धर्म के मुख्य आधार धर्मगाथाओं के वास्तविक ज्ञान के लिए भी लोकवार्ता और लोकसाहित्य का उपयोग आज अनिवार्य हो गया है। उसी तरह धर्मगाथा एवं पुराणगाथाओं के अध्ययन से लोकसाहित्य की समस्याएँ भी सुलझ सकती हैं

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

धर्म के कारण मानव जीवन में कई बार संघर्ष के पलों को देखा गया है, जिनकी अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में समय-समय पर हुई है। मानव जीवन में व्याप्त सभी धर्म लोकविश्वास, पुराणगाथा को जनने के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन परमावश्यक है। धर्म का उदय कब, कहाँ, किस प्रकार हुआ? उसमें कौन से परिवर्तन हुए इन सबकी जानकारी लोकसाहित्य में ही मिल सकती है। धर्मगाथाओं के वास्तविक ज्ञान के लिए लोकवार्ता का उपयोग आज अनिवार्य रूप से किया जा रहा है। उसी प्रकार धर्मगाथा के द्वारा भी लोकवार्ता के स्वरूप का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। धर्मशास्त्र तथा दर्शन के ऐतिहासिक स्वरूप और उसके मूल को समझने के लिए भी लोकवार्ताविज्ञान की आवश्यकता है। जिस प्रकार धर्मगाथाओं के वास्तविक ज्ञान के लिए लोकसाहित्य का उपयोग अनिवार्य हो गया है उसी तरह लोकसाहित्य के अनेक अभिप्रायों का स्वरूप धर्मगाथा से स्पष्ट हो जाता है। इस तरह ये एक दूसरे के लिए सहायक बन सकते हैं।

2:4 शब्दार्थ – टिप्पणी

लोकवार्ता – यह 'फोकलोर' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। ऐसे सभी प्राचीन विश्वसों, प्रथाओं और परंपराओं का संपूर्ण योग, जो सभ्य समाज से अल्प शिक्षित लोगों के बीज आज तक प्रचलित है, फोकलोर या लोकवार्ता है। यह एक जीवित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है, उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा उस जन की संस्कृति – इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है। लोकवार्ता का संबंध उन्हीं के साथ है।

2.5 सारांश

लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। आज लोकसाहित्य के अध्ययन एवं अध्यापन की प्रवृत्ति लोगों में बढती जा रही है। लोकसाहित्य में लोकजीवन के सभी पक्षों की अभिव्यक्ति होती है इसलिए लोकसाहित्य और विविध समाजविज्ञानों में पारस्परिक संबंध देखे जाते हैं। मानव जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन करने वाले शास्त्रों को विविध समाजविज्ञानों के नाम से जाना जाता है। लोकसाहित्य आदिम युग से चले आ रहे मानवजीवन की आदिम परंपराओं और उनके अवशेषों को अपने में सँजोएँ रहता है। अनेक समाजविज्ञानों के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री लोकसाहित्य में प्राप्त हो जाती है। क्या इतिहास, क्या पुरातत्व, क्या समाजविज्ञान, क्या मानवविज्ञान, क्या मनोविज्ञान, क्या धर्मशास्त्र, क्या भाषाविज्ञान, क्या दर्शन, मानव समाज का अध्ययन करने वाला कौनसा ऐसा शास्त्र है, जिसके लिए सामग्री लोकसाहित्य में न मिल जाए? लोकसाहित्य में इतिहास के अनेक तथ्य छिपे रहते हैं। जब अनेक बार पुरातत्व के पृष्ठ अनंकित रहते हैं तब लोकसाहित्य ही इतिहास पर प्रकाश डालता है। इतिहास की कडियाँ जोड़ने का कार्य लोकसाहित्य से ही लिया जाता है। लोकसाहित्य में अनेक घटनाएँ, अनेक प्रकार के तथ्य और उनके निर्माण के स्तर होते हैं, इनकी जानकारी इतिहास के माध्यम से होती है। सँजोएँ

पुरातत्व शास्त्र किसी मानव समाज के आदिम से आदिम मानव जीवन का पता लगाने की दिशा में अध्ययन करता है। लोकसाहित्य में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति होती है। लोकसाहित्य में अनेक ऐतिहासिक सत्य छिपे रहते हैं, जिनके विषय में अनुसंधान करने के लिए पुरातत्वज्ञ को स्पष्ट संकेत एवं दिशा प्राप्त होती है। पुरातत्व विज्ञान के लिए लोकसाहित्य की उपादेयता एवं लोकसाहित्य पर निर्भरता सिद्ध होती है। समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र वर्तमान समाज में रहनेवाली विभिन्न जातियों, समुदायों की सामाजिक प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों तक फैला रहता है। लोकसाहित्य में मानवजीवन की यथातथ्य अभिव्यक्ति होती है, इसलिए समाजशास्त्री को अपने अध्ययन के लिए उसमें प्रचुर सामग्री मिल जाती है।

शारीरिक एवं सांस्कृतिक दोनों मानवविज्ञान की शाखाएँ लोकसाहित्य के अध्ययन से अनेक अध्यायों का आरंभ करती है इसलिए मानवविज्ञान के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन उपादेय ठहरता है। जाति मनोविज्ञान लोकमनोविज्ञान और आदिम मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य की सामग्री आधारशिला का कार्य

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

करती है। भाषाविज्ञान के ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ के विकार, उत्कर्ष, अपकर्ष आदि का अध्ययन करने के लिए भाषाविज्ञान को लोकसाहित्य से सामग्री प्राप्त हो सकती है। पुराणगाथा या धर्मगाथाओं के अध्ययन से लोकसाहित्य की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं। धर्म के लोकविश्वास और लोकविश्वासों की अमूल्य निधि लोकसाहित्य में सुरक्षित है। लोकसाहित्य के अनेक अभिप्रायों का स्वरूप धर्मगाथा से स्पष्ट हो पाता है।

इसप्रकार लोकसाहित्य से इतिहास, पुरातत्व, समाजविज्ञान, मानवविज्ञान, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र आदि किसी न किसी रूप में संबंधित रहते हैं। लोकसाहित्य और उपर्युक्त विज्ञान एक-दूसरे के लिए उपादेय है।

2:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* ''लोकसाहित्य का भाषाविज्ञान, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान से परस्पर घनिष्ट संबंध होता है'' - स्पष्ट कीजिए।
* ''लोकसाहित्य और मानवविज्ञान, लोकसाहित्य और इतिहास, लोकसाहित्य और पुरातत्व, लोकसाहित्य और समाजशास्त्र एक-दूसरे के लिए सहायक होते हैं'' - सिद्‌ध कीजिए।
* ''सभी समाजविज्ञान लोकसाहित्य से किसी न किसी रूप में संबंधित रहते हैं - विवेचन कीजिए।
* अन्य समाजशास्त्रों के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य की उपयुक्तता को विशद कीजिए।

(ख) टिप्पणियाँ -

* लोकसाहित्य और भाषाविज्ञान
* लोकसाहित्य और समाजविज्ञान
* लोकसाहित्य और इतिहास
* लोकसाहित्य और मनोविज्ञान

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

* लोकसाहित्य इतिहास का शास्त्र है - यह किसने कहा है?
* पुरातत्व से किस बात का पता चलता है?
* मनोविज्ञान की प्रमुख शाखाएँ कौनसी?
* धर्म का मूल आधार क्या है?

(घ) सही पर्याय लिखिए

* पुरातत्वशास्त्र किस बात का पता लगाने की दिशा में अध्ययन करता है?
  (अ) आदिम मानव जीवन (ब) शिक्षा (क) युद्‌ध (ड) ग्रंथों
* मनोविज्ञान में स्थूल रूप से किसका अध्ययन किया जाता है?
  (अ) मनुष्य के मन (ब) मनुष्य की संस्कृति (क) मनुष्य समाज (ड) मनुष्य-जाति
* भाषाशास्त्री के लिए लोकसाहित्य किसके समान है?
  (अ) खजाना (ब) रत्नाकर (क) बगीता (ड) कोठरी

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

2.7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य

- लोकसाहित्य का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन करें।
- 'अर्थशास्त्र और चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से लोकसाहित्य का महत्त्व इस विषय पर निबंध लिखिए।
- आपके क्षेत्र के लोकसाहित्य के आधार पर इतिहास के स्वरूप को जानने का प्रयास करें।
- आपके सीमावर्ती प्रदेश में प्रचलित लोकरूढ़ियों, परंपराओं एवं प्रथाओं का परिचय प्राप्त करें।

2.8 संदर्भ / अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें –

- लोकसाहित्य के स्वरूप का सैद्धांतिक विवेचन – डॉ. नारायण चौधरी
- भारतीय लोकसाहित्य – डॉ. श्याम परमार
- हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) संपा. राहुल सांस्कृत्यायन और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
- लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग – डॉ. श्रीराम शर्मा

इकाई – 3

लोकगीत

अनुक्रम

3:1 उद्देश्य
3:2 प्रस्तावना
3:3 विषय विवरण
  3:3:1 लोकगीत – परिभाषा
  3:3:2 लोकगीत के निर्माण तत्व
  3:3:3 लोकगीत – विशेषताएँ
  3:3:4 लोकगीतों का वर्गीकरण
  3:3:5 लोकगीतों और साहित्यिक गीतों में अंतर
  3:3:6 लोकगीतों के प्रमुख प्रकार – सोहर
   विवाह
   गौना
   कजली
   होली
   लोरी
   लावणी
3:4 शब्दार्थ – टिप्पणी
3:5 सारांश
3:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
3:7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य
3:8 संदर्भ – अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

3:1 उद्देश्य

- लोकगीत की व्याख्याओं के साथ लोकगीतों की विशेषताओं से परिचय होगा।
- लोकगीतों के वर्गीकरण का ज्ञान होगा।
- लोकगीत और साहित्यिक गीत में अंतर समझ पाएंगे।
- लोकगीतों के विभिन्न प्रकारों से परिचित होंगे।

3:2 प्रस्तावना

लोकसाहित्य एक ऐसा प्रबल प्रवाह विशेष है जिसमें अनगिनत धाराएँ आकर जुडी हैं। लोकसाहित्य की विधाओं में सर्वाधिक सशक्त एवं प्रधान अंग है लोकगीत। जो उसकी अपनी आत्मा है। लोकसाहित्य में लोकगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संख्या की दृष्टि से, अन्य विधाओं की दृष्टि से तथा गुण वैशिष्ट्य की दृष्टि से अन्य विधाओं की अपेक्षा लोकगीतों का स्थान ऊँचा है। लोकगीत का प्रस्फुटन, अंकुरण, उद्भव और विकास हर गाँव के मिले-घुले सामान्य जन-जन के बीज हुआ है। विद्वानों की राय में लोकगीत जन-जन का साहित्य है। लोक में प्रचलित लोकद्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को 'लोकगीत' कहा

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

जा सकता है। गाँव के मनुष्यों के मौखिक उद्गार इस विधा के अंतर्गत आते हैं। जो पद्यबद्ध होते हैं तथा जीवन की अनेक घटनाओं, पर्वों तथा अवसरों पर गाए जाते हैं। प्राय: लोकगीत जनसमूह द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में प्रदत्त होते हैं। साथ ही वे पारंपरिक रूप में बने रहे हैं। लोकगीत आदिम मनुष्य के उस प्रथम पल के हृदयगान के रूप में फूट पड़ा होगा जब उसने बोलना सीखा होगा। लोकगीत प्रकृति के समान ही सहज, स्वच्छंद, अपने आपमें अंकुरित एवं प्रस्फुटित होकर हृदय की मुलायम मसृण अनुभूति को पल्लवित तथा पुष्पित करते हैं। ये पुराने होते हुए भी नित्य नूतन प्रतीत होते हैं। लोकगीत की विषय वस्तु पूरे समाजजीवन को छूकर उसके हर सहृदय का भाव उद्घाटित करती है। ये जनता का साहित्य जनता की भाषा में होता है। लोकगीत को किसी भी समाज विशेष की संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहा गया है। लोकगीतकार अपने आपमें लोककवि ही होता है। वह अपने आपका और पूरे परिवेश का जीवन रसमय बना देता है। लोकगीत इतने सरस एवं सुरस हैं, जिन्हें सुनकर ही श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाता है। लोकगीतों में सहजता, रसमयता, मधुरता, संगीतात्मकता, पद लालित्य और रस योजना का मधुर मिलन होने के कारण पढ़ते एवं सुनते समय मनमयूर नाच उठता है।

लोकगीत लोकजीवन के खेत में उगते हैं। जीवन के सुख-दु:ख लोकगीत के बीज हैं। मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय पाया। अत: उसके गीतों में विजय का उल्लास अभिव्यक्त होने लगा। परंतु जब मानव प्रकृति के विकराल रूप से परास्त हुआ तब उसने संगठन का मूल्य जाना और सामाजिकता की आवश्यकता समझी। इसी कारण से आदिकाल के गीतों में मानव की सामूहिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। विभिन्न ऋतुओं एवं उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास एवं संघर्ष की कथाएँ ही हैं।

3:3 विषय विवरण

3:3:1 लोकगीत : परिभाषा

लोकगीत शब्द अंग्रेजी Folk Song शब्द का पर्यायवाची रूप है। 'फोक साँग' जर्मनी के 'फॉल्क' शब्द का मूल रूपांतर है। सामान्य रूप से लोक में प्रचलित लोकद्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीत को लोकगीत कहा जाता है। लोकसाहित्य के पाश्चात्य तथा भारतीय विवेचन कर्ताओं ने लोकगीत की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं।

पाश्चात्य विचारकों की परिभाषाएँ -

* ग्रिन - "A folk song composes itself."
  (लोकगीत तो स्वत:-जन्मा है।)
* पर्सी - "This primitive spontaneous music has been called folk song."
  (आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते हैं।)
* राल्फ व्ही. विल्यम - "A folk song is neither new or old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually forth new branches, new leaves, new fruits."

(लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जडें भूतकाल की जमीन में गहरी धँसी हुई है, परंतु जिस पर निरंतर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं।)

भारतीय विचारकों की परिभाषाएँ -

* रामनरेश त्रिपाठी - ''ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है, छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। लोक के, मनुष्य के, स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत हैं।
* बाबू गुलाबराय - ''लोकगीतों के निर्माता प्राय: अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

रखता है। वे लोकभावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किंतु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यत कुछ अधिक रहती है।

- ❊ डॉ. सत्येंद्र – ''लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्वमानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।''
- ❊ कुंज बिहारीदास – ''लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक की अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभाव से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।''
- ❊ डॉ. सदाशिव कृष्ण फडके – ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार में उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छंदोबद्‌ध वाणी सहज उद्‌भूत करता है वह लोकगीत है।''
- ❊ डॉ. श्याम परमार – ''गीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार है। भावों की लडियाँ लंबे-लंबे खेतों-सी स्वच्छ, पेडों की नंगी डालो-सी अनगढ़ और मिट्‌टी की भाँति सत्य हैं, उसे लोकगीत कहना चाहिए।
- ❊ देवेंद्र सत्यार्थी – ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं –

- ❊ लोकगीतों में लोकजीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है।
- ❊ अभिव्यक्ति के लिए जिस शैली का आश्रय लिया जाता है वह लयात्मक होती है।
- ❊ लोकगीत मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं।
- ❊ लोकगीत अनादिकाल से सामूहिक भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति करता चला आ रहा है।
- ❊ इन गीतों में व्यक्ति-विशेष की रचनाएँ भी सामूहिक भावनाओं में ढलकर सामान्य हो जाती है। अत: सामूहिक प्रवृत्ति अधिक व्यापक है।
- ❊ लोकगीत लोकानुरंजन के साथ मानवीय कर्मों के प्रेरणा स्रोत हैं।

अत: हमारी दृष्टि से लोकसंस्कृति, लोकविश्वास एवं लोकपरंपरा का निर्वाह करते हुए लोकजीवन अपनी रागात्मक प्रवृत्तियों की उत्स्फूर्त भावात्मक अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है उसे लोकगीत कहते हैं।

3:3:2 लोकगीत के निर्माण तत्व

गीत के रूपविधान पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गीत का प्रमुख तत्व है 'टेक'। संगीतशास्त्र की शब्दावली में 'टेक' को 'स्थायी' कहा जाता है। यह गीत के आवश्यक रूप विस्तार के बाद दुहराया जाता है। एक गीत का मूलरूप विधान उतना ही होता है जितना एक टेक से उसके दोहराने के बीच में प्रस्तुत होता है। डॉ. सत्येंद्र ने गीत के 'मूल-रूप-विधान' के निम्नलिखित अंग इस प्रकार किए हैं –

- ❊ **रीढ़ –** जिन शब्दों के आधारों पर मूल-रूप-विधान टिकता है वही गीत की रीढ़ है।
- ❊ **स्वर-संभरण –** रीढ़ के ऊपर गीत का मूल लय-रूप स्थापित करने के लिए जो स्वर-तत्व संयुक्त किया जाता है उसे स्वर-संभरण कहते हैं। यह गीत को अपना निजी रूप प्रदान करता है।
- ❊ **स्वरालंकरण –** गीत में इतना लोच होता है कि वह गायक के आवेग-आवेश को अपनी लय में समाविष्ट कर सकता है। इसके लिए जिन उपायों से काम लिया जाता है, उनमें से एक सामान्य तत्व स्वरालंकरण है। इसकी तुलना संगीतशास्त्र के तान और अलंकार से की जा सकती है। ये गायक की कुशलता और कला सौंदर्य को अभिव्यक्त करते हैं। गायक इनसे कला-सौंदर्य उत्पन्न करता है। लोकगीतों में यह स्वरालंकरण एक शक्ति भरता है। यह सामूहिक स्वरावेग का सहायक भी होता है। जैसे होली के गीतों में हो हो हो का ध्वनि विस्तार। इस प्रकार 'अरे', 'एजी कोई', 'हम्बे कोई' आदि शब्दों के आधार से इसी स्वरालंकरण से सिद्‌धि होती है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* **स्वरालंकरण के दो विशिष्ट तत्व और होते हैं –** एक है आरोह और दूसरा है अवरोह। भावावेग के साथ ही आरोह होता है। इसका प्रतिरूप अवरोह है जो लोकगायन में उतना स्फुट नहीं होता। लोकगीतों में विशेष स्फुट होते हैं – टूट और दुहरावट। स्वर को आवश्यक आरोह देकर छोड देने से 'टूट' होती है और फिर उसे इसी आरोह में दुहरा दिया जाता है। यही दुहरावट है।
* **तोड़ –** जब गीत का मूलरूप विधान स्वर-संभरण और स्वरालंकरण से युक्त, होता हुआ पुन: एक सामान्य आरंभिक लय को प्राप्त करता है। इस प्रयत्न को तोड़ कहते हैं। यहाँ पहुँचते ही फिर आरंभिक लय आ जाती है और टेक को दुहराने का अवसर आ जाता है। गीत का मूल रूप विस्तार तोड़ पर ही समाप्त हो जाता है।
* **भरती –** 'टेक' गीत के मूल रूप विधान का आदि है तो 'तोड' अंत। इसमें स्वर-संभरण से गीत की मूल लय-प्रकृति प्रकट होती है और स्वरालंकरण से उसमें अपेक्षित शक्ति और स्पंदन आता है। सामूहिक आवेगाकुलता को अभिव्यक्ति भी मिलती है और समस्त वातावरण गीत के लय के स्वरभाव से आक्रांत हो जाता है। इसी के बीच जब कभी अन्य लयों और गतियों का प्रभावार्थ समावेश किया जाता है उसे 'भरती' कहते हैं।
* **मोड़ –** 'मोड़', 'भरती' से घनिष्ट रूप से संबंधित होता है। एक लय-विधान से दूसरे लय-विधान में संक्रमण को 'मोड़' कहते हैं। यह 'भरती' के साथ ही प्रस्तुत होता है, परंतु कभी-कभी इसे एक लय-विधान की विविध संभावित 'पलट-लोटो' से संबंधित होता है।

3:3:3 लोकगीतों की विशेषताएँ

लोकगीतों की विशेषताओं को कुछ विद्वानों के द्वारा संकेतिक क्रिया है। जैसे डॉ. श्याम परमार, डॉ. चिंतामणि उपाध्याय, डॉ. तेजनारायण लाल डॉ. मोहनलाल बाबुलकर, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, रामनरेश त्रिपाठी आदि विद्वानों ने लोकगीतों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

अज्ञात रचयिता

लोकगीत का कोई एक रचयिता नहीं होता। जातीय रचना में किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। सभी के सहयोग से उसकी रचना होती है। अत: किस व्यक्ति ने उसका निर्माण किया, यह बतलाना असंभव है। गाँवों में संस्कार संबंधी अनेक लोकगीत प्रचलित हैं जिन्हें स्त्रियाँ विशेष मांगलिक अवसरों पर गाती हैं। ये गीत चिरकाल से परंपरागत रूप में चले आ रहे हैं। इन गीतों की रचना किसने की यह बतलाना कठिन है। आज भी स्त्रियाँ गीत गाने के साथ ही साथ उसके आगे की पंक्तियों की रचना भी करती जाती है। इसप्रकार गीत तैयार हो जाता है। परंतु किसी व्यक्ति विशेष की रचना न होकर समस्त समुदाय की कृति होती है। इसलिए कहा गया है कि लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है।

सामूहिक भावभूमि

लोकगीत लोकमानस की अभिव्यक्ति है। लोकगीतों को समूह द्वारा निर्मित माना जाता है। अत: इसमें एक सामूहिक भावभूमि तथा समूह के सामाजिक मूल्यों को व्यक्त करने की शक्ति है। ये गीत सामूहिक रूप से ही गाए जाते हैं। माना जाता है कि लोकगीतों का निर्माण लोकसमूह द्वार ऐसा नहीं होता। रचना तो व्यक्ति ही करता है परंतु उसका तादात्म्य लोक में हो जाता है, जिससे उसके न तो निर्माण के समय का पता चलता है और न उसके प्रचार प्रसार का। होता यह है कि एक व्यक्ति आरंभ करता है और दूसरा-तीसरा कोई न कोई कड़ी जोडता चला जाता है। ये कडियाँ ही मूल गीत बनकर परंपरा में चल पडती हैं। जिस भाव का प्रकटीकरण गीत में होता है। वह भाव अकेले कलाकार का नही होता, बल्कि कलाकार समूचे समाज की भावना को गीत के द्वारा व्यक्त करता है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

अकृत्रिमता

लोकगीत मानव जीवन के सहज और स्वाभाविक उद्‌गार है। उनमें कृत्रिमता का लवलेश भी प्राप्त नहीं होता। लोकगीत सहज और अकृत्रिम होते हैं। वे सामूहिक चेतना और लोकभावना पर आधारित होते हैं। इनकी अभिव्यक्ति का आधार सहजता और सरलता है। यहाँ किसी प्रकार के कृत्रिम बंधनों के लिए स्थान नहीं। लोकगीतों में कोई साज-सँवार नहीं होती। ग्रामगीत तो प्रकृति के उद्‌गार हैं।

मौखिक परंपरा

लोकगीतों की परंपरा मौखिक ही रही है। वे युगों से लोककंठ पर विराजमान हैं। ग्रामीणों के होठों पर बिखरे पडे हैं। हर विषय, हर भाव तथा हर समय वे यहाँ उपलब्ध हैं। लोकगीत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में प्रदत्त होते हैं। लोकगीत परंपरागत होते हैं। बहुत पहले लोकसमाज में किसी के द्‌वारा निर्मित ये गीत परंपरा से गाए जाते हैं। दूसरे प्रकार के गीत रचे जाते हैं। अपने अपने युग में लोक कलाकार विशिष्ट प्रसंग पर गीतों का निर्माण करते हैं। जब कजलियों के दंगल लगते हैं तब कई नई कजलिटों का निर्माण होता है। मौखिक परंपरा के प्रवाह में लोकगीतों का प्राण-तत्व अमृत सिंचित होकर प्रगति का संचार पाता है।

संगीतात्मकता

संगीतात्मकता लोकगीतों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इतना ही है कि लोकगीतों की संगीतात्मकता शास्त्रीय संगीत पर आधारित नहीं होती। लोकगीतों का अपना एक संगीत होता है। जिसे लोकसंगीत कहा जाता है। लोकगीतों को गाने के अपने अपने ढंग होते हैं। लोकगीत का जन्म संगीत के साथ ही होता है। शिष्ट (साहित्यिक) गीतों के समान पहले गीतों का निर्माण और बाद में उसे संगीत में बांधना इस प्रकार की स्थिति नहीं होती। कलाकार के मुख से लोकगीत संगीत के साथ ही शब्दबद्‌ध होकर बाहर निकलते हैं। लोकगीत गेय होते हैं। लय के साथ गाने योग्य होते हैं। संगीत के बिना लोकगीत अधूरा है। लय लोकगीतों की आत्मा है। ग्रामीण जनता के हृदय से नि:सृत सीधे-सादे शब्दों का संस्पर्श जब इस लय तत्व से होता है, तो वे अद्‌वितीय सौंदर्य से संयुक्त होकर असीम आनंद की सृष्टि करते हैं।

लोकसंस्कृति का चित्रण

मानव जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार किए जाते हैं। उस प्रत्येक संस्कार के समय पर गीत गाने की प्रथाएँ लोकजीवन में प्रचलित रही है। इसके अलावा विभिन्न ऋतु, त्यौहार, पर्व, धार्मिक अनुष्ठान, व्रत, उपवास आदि प्रसंगों पर भी लोकगीत गाए जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा लोकसंस्कृति का पक्ष हो जो लोकगीतों से अछूता रह गया हो। लोकगीतों से हम किसी जातिया देश विदेश की सांस्कृतिक परंपराओं तथा रूपात्मक परिवर्तनों, आदर्शों, देव-तीर्थ स्थानों, पवित्र एवं मंगल प्रसंगों का परिचय पा सकते हैं। लोकगीतों में लोकसंस्कृति का चित्रण अवश्यंभावी होता है। देवेंद्र सत्यार्थी ने लिखा है कि लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं। लोकगीतों में सामान्य जीवन से लेकर पारिवारिक जीवन के चित्र और आर्थिक, धार्मिक जीवन की झाँकी देखने को मिल जाती है।

स्वच्छंदता

लोकगीत किसी निर्धारित बंधन में बंधा नहीं रहता। सामूहिक चेतना और लोकभावना पर आधारित गीतों में छंदादि की रूढिगत परंपरा को लेकर चलना संभव नहीं। उन्मुक्त वातावरण लोकगीतों के लिए आवश्यक है। जहाँ लोकभावना सभ्यता के आडंबरयुक्त बंधनों को तोड़ देती है वहाँ अभिव्यक्ति स्वच्छंद होती है। इस संबंध में डॉ. सदाशिव फडके का कथन सही प्रतीत होता है - ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद-तरंग में छंदोबद्‌ध वाणी सहज उद्‌भूत करता है,

वही लोकगीत है।'' लोककवि को न तो छंद, अलंकारादि का शास्त्रीय ज्ञान होत है और न वह इनके पचड़े में ही पड़ना चाहता है। श्री. रामनरेश त्रिपाठी जी ने कहा है – ''ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।'' वास्तव में लोककवि किसी भावोद्‌गार को किसी लय में बाँध भर देता है। लोकगायक शास्त्रीय नियमों की परवाह न करके अपने आनंद की तरंग में अपनी वाणी सहज अभिव्यक्त करता है वही लोकगीत है।

रसात्मकता

भारतीय लोकगीतों में अत्यधिक रसात्मकता पाई जाती है। यही कारण है कि आज के सभ्य समाज के हृदयों को कंपित करने की शक्ति उसमें है। डॉ. वादुदेवशरण अग्रवाल ने लोकगीतों में प्राप्त रस कलश की ओर मुग्ध होकर कहा है – ''गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं। वे कंठ से गाने के लिए और हृदय से आनंद लेने के लिए हैं।'' लोकगीत जैसे सहज, सरल होते हैं वैसे ही सुरस तथा सरस अभिव्यक्ति से परिपूर्ण होते हैं। लोकगीतों में जो सहजता और मधुरता मिलती है वह अन्यत्र नहीं मिलती। लोकगीतों में विशेष रूप से श्रृंगार, करुण, हास्य, शांत और वीर रस प्राप्त होते हैं। लोकगीतों में श्रृंगार का आधिक्य है। रसों की शास्त्रीयता भले ही इनमें न हो लेकिन इस रस की बलवती धारा लोकगीतों में उमडती हुई दिखाई देती है। लोकगीत स्वाभाविक रूप से मधुमय छलकते प्याले हैं जो किसी भी आस्वादक को पाग बना सकते हैं। लोकगीतों को गाने वाले अपने आपके साथ पूरे परिवेश का जीवन रसमय बना देते हैं। लोकगीत अपने आपमें सरस, भावप्रवण, कारुण्यपूर्ण, आल्हादमय, विचारोत्तेजक तथा हर्षविभोर करने की अद्‌भुत क्षमता तथा अनूठापन रखते हैं।

रूढ़ अतिशयोक्ति

लोकगीत में अपने प्रदेश के अनुसार कुछ रूढ़ अतिशयोक्तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रदेश विशेष का यदि कोई वैशिष्ट्य है तो वह वैशिष्ट्य अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रूढ़ हुआ मिलता है। लोकगीतों में संख्यापरक शब्दों का प्रयोग बार-बार होता है। संख्याओं के प्रयोगों के विविध रूप ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में देखने को मिलते हैं। लोककवियों में अतिशयोक्ति विषयक रूढियाँ विशेष रूप से पाई जाती हैं। वे गीतों में तथ्यों को बढ़ाचढाकर अतिरंजित रूप में चित्रित करते हैं जैसे ग्रामीण गृहिणी सोने की थाली में भोजन परोसती है, सोने के लोटे में जल देती है। लोकजीवन इतना समृद्‌ध नहीं होता, जिसमें इस प्रकार के उपादान मिल जाएँ। किंतु लोकगीतकार आदर्श वातावरण को ही गीतों में ग्रहण करना है। प्रश्नोत्तर प्रणाली संबंधी रूढियाँ भी लोकगीतों में होती हैं। सीधे प्रश्न – सीधे उत्तर। कहीं-कहीं प्रश्न और उत्तर की नींव पर ही गीत का पूर्ण भवन खडा कर दिया जाता है। ब्रज के ऐसे छोटे-छोटे गीत हैं, जिनमें इसी प्रश्नोत्तर रूढि के आधार पर छोटी-छोटी भाव-स्थलियाँ तैयार कर ली जाती हैं। पुनरावृत्ति की रूढि के अनुसार एक गीत के बोल दुहरा कर बोल जाने की प्रवृत्ति लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। इस प्रवृत्ति से लय और संगीत की सृष्टि होती है। ब्रज प्रदेश के नारी-पथ गीतों में यह प्रवृत्ति संभवत: उसकी धुन में निखार लाने की भावना से प्रेरित प्रतीत होती है। लोकगीतों में टेक होती है। प्राय: पहली पंक्ति को दोहराया जाता है। गाते समय गीतों की जितनी ही अधिक बार आवृत्ति की जाए उसका आनंद उतना ही अधिक बढता जाता है। टेक की आवृत्ति से लोकगीतों में संगीतात्मकता की मात्रा में अतिशय वृद्‌धि होती है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति के ही गोद में लोक है। वही उसका जीवन है। इसलिए लोकगीतों में लहलहाते खेत, हरीभरी अमराइयाँ उनकी शीतल छाया में टंगे झूले, नीला गगन, मस्त हवा, रंग-बिरंगे फूल, झरनों की कर्णसुखद कल-कल, कोयल का मधुर कूक, वसंत का मदमस्त यौवन, खेत-खलिहान, बुआई-कटाई, गोडाई-भराई आदि का स्वाभाविक और मनोरम चित्रण लोकगीतों में होता है। इनमें प्राकृतिक सौंदर्य की छवि का अंकन और ऋतु

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

परिवर्तन के दृश्यों का चित्रण बड़ा ही सरस और सुखद होता है। लोकगीतों में स्थानीयता का पुट होता है।

संक्षिप्तता

लोकगीत अधिक लंबे रहे तो सुनने वाले ऊब जाते हैं। इसलिए छोटे-छोटे गीत अधिक प्रभावशाली रहते हैं।

आशु रचना

लोकगीत आशु रचना के अंतर्गत आते हैं। लोकगायक इन्हें प्रसंग के अनुसार तुरंत तथा शीघ्र ही रचते और गाते हैं। नारी हृदय की भावनाएँ शीघ्र ही गीत का रूप धारण कर लेती हैं।

अनलंकृत एवं सहज शैली

लोकगीतों में शब्द-विन्यास की सादगी होती है। इनकी शैली सहज, सुलभ, सरस और अनलंकृत होती है। इनमें परिनिष्ठित भाषा तथा अलंकारों का प्रयोग नहीं होता। अपने स्वाभाविक रूप में कुछ अलंकार इनमें निश्चित रूप से मिलते हैं जैसे - उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि। जानबूझकर अलंकारों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसलिए लोकगीतों में सरसता और मार्मिकता अधिक होती है। उत्कृष्टता और निकृष्टता के भेद-भाव से भिन्न वहाँ प्रत्येक वर-वधू राम-सीता बनते हैं। प्रत्येक माता-पिता कौशल्या और दशरथ हो जाते हैं। हृदय की यह अनुभूति सीधे शब्दों में व्यक्त होती है।

3:3:4 लोकगीतों का वर्गीकरण

किसी साहित्य का यदि सर्वांगीण अध्ययन करना हो तो उसके विभिन्न प्रकरों एवं वर्गों का सम्यक रूप से विश्लेषण करना आवश्यक होता है। लोकसाहित्य में लोकगीतों की संख्या बहुत अधिक है। दूसरी ओर इन गीतों में सम्यक एवं विषय वस्तुगत वैविध्य बहुत अधिक है। इस कारण लोकगीतों का वर्गीकरण करना अपने आपमें एक समस्या है। वर्गीकरण किस आधार पर किया जाए यही समस्याा है। हिंदी जगत में लोकगीतों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों ने किया है किंतु सर्वसम्मत या वैज्ञानिक अथवा निर्दोष वर्गीकरण कोई नहीं कहा जा सकता। तब फिर इसे क्या असंभव माना जाए? तब कहना होगा कि लोकगीतों का निर्दोष वर्गीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। डॉ. चिंतामणि उपाध्याय ने इस प्रकार का विचार भी व्यक्त किया है - ''लोकगीतों का वर्ण्यविषय इतना अधिक व्यापक है कि उनका वर्गीकरण कठिन हो जाता है।''

लोकगीतों के जितने वर्गीकरण हुए हैं, उनमें कहीं विषय-वस्तु को आधार बनाया है तो कहीं उनकी गायन शैली को। कुछ विद्वानों ने लोकगीतों के गाने के अवसर तथा गायन पद्धति एवं रचना शिल्प पर भी विचार किया है। कुछ ने उनकी परंपरा को ही दृष्टिपथ में रखा है। इस प्रकार के वर्गीकरण के अभाव के करणों पर प्रकाश डाला जाए तो कहा जा सकता है कि लोकगीतों में रूपात्मक वैविध्य एवं विषय-वस्तुगत व्यापकता निर्दोष वर्गीकरण में बाधक होने वाले प्रधान कारण हैं। इनके अतिरिक्त यह कारण भी है कि लोकसाहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों ने या तो अपने संकलन-क्षेत्र से प्राप्त लोकगीतों के आधार पर वर्गीकरण कर डाला है या किसी पाश्चात्य विद्वान आदि के संदर्भ ग्रंथों के आधार पर वर्गीकरण कर दिया है। प्रश्न है कि सर्वसम्मत, वैज्ञानिक या निर्दोष वर्गीकरण कैसा हो? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम कुछ प्रधान विद्वानों द्वारा दिए गए वर्गीकरणों को उपस्थित करेंगे.

विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया लोकगीतों का वर्गीकरण

हिंदी प्रदेश के लोकगीतों के वर्गीकरण की परंपरा की आदिम कड़ी के रूप में रामनरेश त्रिपाठी पर हमारी

दृष्टि सर्वप्रथम जाती है। उन्होंने लोकगीतों को ग्यारह वर्गों में विभाजित किया है –

(1) संस्कार संबंधी गीत

(2) चक्की और चरखे के गीत

(3) धर्मगीत

(4) ऋतु संबंधी गीत

(5) खेती संबंधी गीत

(6) भिखमंगी संबंधी गीत

(7) मेले संबंधी गीत

(8) जाति–गीत

(9) वीरगाथा

(10) गीत–कथा

(11) अनुभव के वचन

त्रिपाठी का उपर्युक्त वर्गीकरण लोकगीत जगत् में किए जाने वाले अध्ययन पथ का मील का पत्थर माना जाता है। इस वर्गीकरण में कुछ दोष भी हैं जैसे –

- द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और सप्तम क्रम पर दिए गए वर्गों के क्रिया गीत शीर्षक के अंतर्गत अंतर्भुक्त किया जा सकता है।
- भिखमंगी के गीतों को जाति–गीतों के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।
- वीरगाथा और गीतकथा दोनों वर्गों के अंतर्गत दिखाए गए लोकगीतों को 'प्रबंधगीत' शीर्षक के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।
- सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि प्रबंध गीत को तो हम लोकसाहित्य की पृथक् विधा (लोकगाथा) ही मानते हैं। इसलिए उन्हें लोकगीतों की कोटि में नहीं लिया जाना चाहिए।

कालक्रमानुसार त्रिपाठी के वर्गीकरण के उपरांत उल्लेख्य वर्गीकरण है श्री सूर्यकरण पारीक का जिन्होंने राजस्थानी लोकगीतों का संकलन–अध्ययन करके उसी के आधार पर निम्न २९ प्रकार निर्धारित किए हैं –

देवी–देवताओं और पितरों के गीत, ऋतुओं, तीर्थों, व्रत, उपवास और त्यौहारों के गीत, संस्कारों, विवाह, भाई–बहनों के प्रेम, साली–सालेल्यों, पति–पत्नी के प्रेमगीत, पणिहारियों के, प्रभाती के, हरजस, धमालें, देशप्रेम के, राजकीय, राजदरबार के, जागरण के सिद्‌ध पुरुषों के, वीरों के एवं ऐतिहासिक ग्वालों के, हास्यरस के, पशु–पक्षी संबंधी, शांत रस के, गाँवों के, नाट्यगीत और विविध प्रकार के गीतों के रूप में उपलब्ध हैं।

डॉ. सत्येंद्र ने अपने शोध प्रबंध में निम्न वर्गीकरण किया है –

- जन्म के गीत
- विवाह के गीत
- त्यौहार व्रत और देवी आदि के गीत
- अन्य विविध गीत
- प्रबंध गीत

उनके इस वर्गीकरण को कुछ खास आधार नहीं है क्योंकि यह केवल ब्रज प्रदेश के लोकगीतों के संकलन द्‌वारा ही बनाया गया है।

रामचंद्र भालेराव ने लोकगीतों को चार समूह में रखा हैं –

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

(1) संस्कार विषयक

पुत्र जन्म, सोहर, चौके, साध, मुंडन, जनेऊ, मामा के यहाँ पहली बार जाने के, पहली बार बारात में जाने के, टीका, विवाह, तिरागमन (रोने के) रमाधियों के आने के, गोदान, देवस्थापना, कूप-खनन, गृहप्रवेश, तीर्थयात्रा-गमन-आगमन, अन्न प्राशन, पलने, जेवनार, पत्तल बांधना एवं खोलना, मेले, जन्मगाठ के गीत आदि।

(2) माहवारी गीत

बारहमासा, नौरात्र, चैत-रामनौमी, आखातीज, दशहरा, देवशयनी, सावन-हिंडोला, कृष्ण जन्माष्टमी, करवाचौध, महालद्यमी, बछवा छठ, नौदुर्गा, गनगौर, होली, तीज कजरिया आदि।

(3) सामाजिक-ऐतिहासिक गीत

चंद्रावल, ढोला मारू, हरदौल, बाबू के कुँवर के, हीरामन, नगरा, जाहर पीर, आलख, कन्हैया, गोराबादल, ओखाजी, तेजाजी, भेरूजी, घासीराम, राजा, केवट आदि।

(4) विविध गीत

खेती की कहावतें, ऊख की फसल खत्म होने के, जात, चक्की, बारी पूजने के, लावनी, रसिया, ख्याल, दोहे, भजन आदि।

उक्त वर्गीकरण भी काफी विस्तृत है। अत: मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक तथा जीवन के सभी क्षेत्रों तक है फिर भी परिपूर्ण नहीं है।

डॉ. श्याम परमार ने पाँच भागों में वर्गीकरण किया है किंतु विवेचन नहीं किया है -

(1) जातियों की दृष्टि से

(2) संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से

(3) धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से

(4) कार्य के संबंध की दृष्टि से

(5) रस-सृष्टि की दृष्टि से

लोकगीतों के वर्गीकरण की परंपरा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कडी के रूप में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का उल्लेख आवश्यक है। उन्होंने निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है -

* संस्कारों के दृष्टि से
* रसानुभूति की प्रणाली से
* ऋतुओं और व्रतों के क्रम से
* जातियों के प्रकार से
* क्रिया के दृष्टि से

कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने लोकगीतों को वर्गीकृत करते समय सर्वप्रथम उनके आधार निश्चित किए और फिर उन्हें उपर्युक्त प्रकारों में विभाजित किया है। उपाध्याय जी द्वारा किया गया वर्गीकरण लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। केवल उनके द्वारा अपनाए गए रस के आधर पर आपत्ति की गई है। अन्य विद्वानों का कहना है कि सभी प्रकार के लोकगीतों में रसधारा प्रवाहित रहती है। वहाँ बिना रस के और है ही क्या? तब इसे आधार मानकर एक वर्ग विशेष नहीं बनाया जा सकता।

संस्कार की दृष्टि से

भारतीय लोकमानस आरंभ से ही धार्मिक रहा है। धर्म भारतीय लोगों का प्राण है। धर्म का उनके जीवन में प्रमुख स्थान है। भारतीय मानव जन्म से मृत्युपर्यंत जीवन संस्कारों से बँधा हुआ है। भारतीय धर्म में सोलह संस्कारों का विधान है जिनमें गर्भाधान, पुँसवन, पुत्र जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान हैं। इन विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कंठ से गीत गाकर जन-मन का अनुरंजन किया करती है। मृत्यु के अवसर के गीत बडे ही कारुणिक तथा हृदय-विदारक होते हैं। स्त्रियाँ मृतात्मा के गुणों का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती हैं परंतु ऐसे गीतों की संख्या अधिक नहीं है।

रसानुभूति की प्रणाली से

लोकगीतों में रस की अविरल धारा बहती है। उसका स्रोत कदापि नहीं सूख सकता। इनमें सभी रसों का वर्णन मिलता है परंतु पाँच रसों की प्रधानता पाई जाती है - शृंगार रस, करुण रस, वीर रस, हास्य रस, शांत रस। शृंगार रस के अंतर्गत विशेष कर सोहर, जनेऊ, विवाह और वैवाहिक परिहास के गीत तथा प्रवास गीत आते हैं। इन गीतों में संयोग तथा वियोग दोनों प्रकार के शृंगार का वर्णन पाया जाता है। करुण रस के गीतों में गवना, जँतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणान की जा सकती है। यद्‌यपि उपर्युक्त सभी गीत करुण रस से ओतप्रोत हैं, परंतु गवना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमडता हुआ दिखाई पडता है। लडकी की बिदाई के समय जो गीत गाए जाते हैं, वे बडे ही हृदयद्रावी होते हैं। गवना के गीत तो करुण रस के सागर हैं जो पाठकों को रस मग्न कर देते हैं। इनमें कुछ प्रबंध गीत भी आते हैं जिन्हें 'लोकगाथा' नाम दिया गया है। जैसे आल्हा, विजयमल, लोरकी, सोरठी, बनजारा, गोपीचंदभरथरी, नयकवा और ढोला मारू के गीत। आल्हा में वीर रस का सुंदर परिपाक है। विजयमल भी वीर रसात्मक है। सोरठी में रहस्य और रोमांच की कथा का वर्णन बड़ी सुंदर रीति से किया गया है।

लोकगीतों में हास्य रस की मात्रा अपेक्षा कृत कम पाई जाती है। वैवाहिक परिहास के गीतों में तथा झूमर में अवश्य हास्य की मधुर व्यंजना हुई है। इनमें कहीं तो अपने प्रियतम पर कोई फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी-मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगा मइया के गीतों में शांतरस पाया जाता है। इन गीतों में (संज्ञा और पराती में) भगवान की स्तुति होती है। प्रात:काल गंगा स्नान के लिए झुंड में जाती हुई स्त्रियाँ गंगाजी के गीत गाती हैं, जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटा कर भगवान में उसे लगाने का वर्णन रहता है। इन गीतों को सुनकर मन में भक्ति का उद्रेक होता है।

ऋतुओं और व्रतों के क्रम से

लोकगीतों की मीमांसा करने पर यह पता चलता है कि इनमें से अधिकांश गीत ऋतुओं और त्यौहारों से संबंधित हैं। वर्षा, वसंत आदि ऋतुओं के आने पर जन-जीवन में जो नवीन उल्लास उत्पन्न होता है, उसकी अभिव्यक्ति लोकगीतों में पाई जाती है। आषाढ में किसान वर्ग आल्हा, झूम-झूम कर गाता है। अपना मनोरंजन करता है। सावन में कजली खूब गाई जाती है और अपने दिल के दर्द को दूर किया जाता है। फागुन में होली और चैत में चैता या घांटों झूम-झूम कर गाए जाते हैं। इन गीतों को गाते समय लोग आत्मविभोर हो जाते हैं।

विभिन्न व्रतों के अवसर पर विभिन्न गीत गाए जाते हैं। नागपंचमी पर नागदेवता संबंधी गीत गार, जाते हैं। भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को 'बहुरा' का व्रत और कार्तिक शुक्ल द्‌वितीया को 'गोधन' की पूजा के अवसर पर स्त्रियाँ खूब गाती हैं और अपने अपने इष्ट देवता से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करती हैं। शायद ही ऐसा कोई त्यौहार हो जिस समय गीत न गाया जाता हो।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

विभिन्न जातियों के प्रकार से

कुछ ऐसे भी गीत हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। जैसे 'बिरहा' अहीर जाति के लोगों का जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभंगीमा तथा सुंदरता के साथ इसे गाते हैं, उस प्रकार से दूसरा नहीं गा सकता है। इस जाति के लोगों में विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके बिरहा गाने पर ही आश्रित होती है। 'पचरा' नामक गीत को दुसाध जाति के लोग गाते हैं। जब इस जाति का व्यक्ति बीमार पड जाता है, तब इस जाति का कोई बुढा बुलाया जाता है। वह आकर रोगी के पास बैठकर पचरा गा-गाकर देवी का आवाहन करता है। कई दिनों तक इस प्रक्रिया को करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है। वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग (नट) ढोल को गले में बाँधकर आल्हा गाते फिरते हैं। गेरुआ वस्त्र धारण करने वाले कुछ साधु जो 'साँई' के नाम से प्रसिद्ध हैं - सारंगी के ऊपर गोपीचंद और भरथरी के गीत गाते फिरते हैं। माली लोग शीतला माता के गीत गाते हैं। इसके अंतर्गत कहारों के गीत, धोबियों, चमारों, गोडों के गीत भी आते हैं।

क्रिया के आधार पर

कुछ ऐसे भी गीत गाए जाते हैं, जो किसी विशेष कार्य को करते समय गाए जाते हैं। काम से उत्पन्न थकावट को दूर करने के लिए भी कुछ लोकगीत गाए जाते हैं। 'रोपनी के गीत' धान को रोपते समय स्त्रियाँ गाती हैं। इसी प्रकार खेत को निराते या सोहते समय जो गीत गाए जाते हैं वे निरवाही या साहनी के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'जॅतसार' उन गीतों को कहा जाता है जिन्हें स्त्रियाँ जाँत पीसते समय गाती हैं। 'कोल्हू के गीत' तेली तेल को पेरते समय गाते हैं।

इन गीतों को गाने से काम करने में मन लगा रहता है और थकावट दूर होती है।

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती ने डॉ. उपाध्याय का वर्गीकरण दोषपूर्ण माना है। उनके मत से वर्गीकरण का एक ही आधार होना चाहिए। संस्कार संबंधी गीत, ऋतुसंबंधी गीत, व्रत संबंधी गीत तथा क्रिया संबंधी गीत- ये वर्ग उपयोग के आधर पर हैं। जातीय गीतों का आधार नृतात्विक है। इन जाति विशेष के गीतों में भी संस्कार, ऋतु, व्रतादि गीत मिल सकते हैं। क्रिया संबंधी गीत नाम भी समीचीन नहीं है क्योंकि संस्कार और व्रत भी क्रियाएँ ही हैं। अत: व्रत और ऋतु एक ही वर्ग में रखने होंगे। इनका संबंध काल-विशेष से है।

3:3:5 लोकगीतों और साहित्यिक गीतों में अंतर

लोकगीतों की बहुत-सी विशेषताएँ साहित्यिक गीतों में भी मिलती हैं। तब एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि इनमें अंतर कैसे किया जाए। इस विषय में अनेक विद्वानों ने विचार किया है। जैसे डॉ. गुलाबराय, श्री. रामखिलावन पांडेय आदि।

लोकगीतों और साहित्यिक गीतों में अंतर

* लोकगीतों का रचयिता अज्ञात होता है। याने उनके निर्माता का नाम प्राय: अव्यक्त होता है। वह एक व्यक्ति की कृति न होकर सामूहिक कृति होती है। लोकगीत का रचयिता अपने भाव लोकभावना में मिला देता है।

  साहित्यिक गीतों का रचयिता ज्ञात होता है। उसका नाम होता है

* लोकगीतों में होता तो निजीपन ही पर उनमें साधारणीकरण और सामान्यता कुछ अधिक रहती है, तभी वे वैयक्तिक रस की अपेक्षा जनरस उत्पन्न कर सकते हैं।

  साहित्यिक गीतों में निर्माता का निजीपन अधिक रहता है।

* लोकगीतों में कृत्रिमता का विरोध होता है। संगीतात्मक एवं रागात्मक अनुभूति का प्रबल आग्रह लोकगीतों में दिखाई देता है जिससे उनमें स्वाभाविकता, आत्मीयता, संवेदनशीलता अधिक मिलती है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

साहित्यिक गीतों में कृत्रिमता होती है और अन्य बातों की मात्रा कम होती है जैसै रागात्मक अनुभूति, स्वाभावितकता आदि।

- ※ लोकगीत लोक वातावरण से ओतप्रोत होते हैं।

  साहित्यिक गीतों में लोक वातावरण अत्यल्प मात्रा में मिलता है।

- ※ लोकगीतों में अकृत्रिमता, प्रयासहीनता, सरलता होती है।

  साहित्यिक गीतों में कृत्रिम, सायास होते हैं। कहीं कहीं वे बडे जटिल होते हैं।

- ※ लोकगीत प्राय: मौखिक होते हैं। एक पीढी से दूसरी पीढी तक जाते जाते वे बनते और बिगडते हैं। तात्पर्य उनमें परिवर्तन होता जाता है।

  साहित्यिक गीतों में परिवर्तनशीलता नहीं होती।

- ※ लोकगीत का सृजन संगीत के माध्यम से लोकरंजक होकर परंपरा में सम्मिलित होने के क्रम में व्यष्टि और समष्टि के भेद को नष्ट कर देता है।

  साहित्यिक गीतों में संगीतात्मकता का होना अनिवार्य नहीं।

- ※ लोकगीत अनलंकृत होते हैं। कहीं कहीं अलंकार अवश्यक पाए जाते हैं परंतु उनकी योजना सायासपूर्वक नहीं की जाती। अलंकार स्वत: आ जाते हैं।

  साहित्यिक गीतों में अलंकारों का प्रयोग सायासपूर्वक होता है।

- ※ लोकगीत लोकभाषा में लिपटे रहते हैं। वे पूर्णरूप से लोकवातावरण से ओतप्रोत होते हैं। लोकभाषा के कारण उनमें सरसता अधिक होती है।

  साहित्यिक गीतों में परिमार्जित भाषा का प्रयोग होता है।

- ※ लोकगीतों में इधरउधर के शब्दों तथा विचारों की भरमार नहीं होती। लय और स्वर भाव तथा अर्थ से सीधे संबंधित होते हैं। शब्दयोजना सरल होती है। साहित्यिक चमत्कार का लोकगीतों में अभाव होता है।

  साहित्यिक गीतों में कहीं कहीं साहित्यिक चमत्कार होता है।

- ※ लोकगीतों में छंद योजना का अभाव पाया जाता है। वे स्वच्छंद होने के कारण छंद और तुक की बेडियों में नहीं बांधे जा सकते हैं परंतु इन गीतों में लय अवश्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है जो इनको संगीतमय बना देता है। सुंदर और सरस लय के कारण इसके सुनने से आनंद की अद्‌भुत अनुभूति होती है। लोकगीतों को सुनते ही श्रोतागण आनंद सागर में डूबने लगते हैं। लय लोकगीतों की आत्मा है।

  साहित्यिक गीतों में लयबद्‌धता प्रचुर मात्रा में नहीं मिलती।

- ※ लोकगीत अपने आपमें रस से भरा हुआ ऐसा प्याला है, जिसके पीने से, मधुपान करने से प्यास संतृप्त होते हुए भी पीने की चाह बनी रहती है।

  साहित्यिक गीतों में इतनी सरसता नहीं होती न उनको पढ़ने सुनने से ऐसी अनुभूति होती है।

- ※ लोकगीत परंपरा, अनुभूति और अनुष्ठान से संबंधित होते हैं।

  कलागीत एवं साहित्यिक गीत साहित्य के अंग होते हैं।

3:3:6 लोकगीतों के प्रमुख प्रकार

सोहर

लोकगीतों के वर्गीकरण के अनुसार 'सोहर' संस्कार गीत के वर्ग में आता है। लोकगीतों में सोहर का अपना विशेष स्थान है। मानव जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर जन्म का होता है। किसी भी परिवार में बालक का जन्म अथवा नवजात शिशु का आगमन परिवार के लिए, कबीले के लिए खुशी का अवसर होता है। बालक का जन्म पौरुष एवं नारीत्व को तो सार्थक करता है, साथ ही परिवार के बाहर बिखरे हुए संबंधों

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

के समस्त वातावरण को एक अपूर्व आनंद से आप्लावित कर देता है। आनंद के इस अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'सोहर' कहते हैं। सोहर को 'सोहली' अथवा 'मंगलगीत' भी कहा जाता है। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जन्म और विवाह के अवसर पर स्त्रियों से 'मंगल' अथवा 'मंगलगीत' ही गवाया है। जैसे -

गावहि मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।

सोहर को 'सोहिलो' भी कहा जाता है। यह शब्द कदाचित् संस्कृत शब्द 'शोभन' व्युत्पन्न हुआ है। ऐसा माना जाता है कि यही शोभन शब्द सोहर में परिवर्तित हुआ होगा। भोजपुरी में 'सोहल' शब्द का अर्थ है अच्छा लगना। कुछ विद्वान सोहर की व्युत्पत्ति 'सुघर' शब्द से मानते हैं। इसका अर्थ है सुंदर। मांगलिक अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं वे सोहर छंद में होते हैं। इसलिए इसका नामकरण सोहर पड गया। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' की रचना इसी छंद में की है। सोहरों में पिंगल का नियंत्रण उपलब्ध नहीं होता। इसका प्रमुख कारण इनका स्त्रियों द्वारा रचा जाना है। रचना में मात्राओं की समता और अंत्यानुप्रास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। लेकिन गाते समय स्त्रियाँ इनके छोटे बडे पदों को बराबर कर लिया करती हैं।

भारत में पुत्रजन्म आनंद और प्रसन्नता का विषय माना जाता है। अत: इस अवसर पर अधिक गीत गाए जाते हैं। सोहर गाने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। पुत्र जन्म भारतीय मानव जीवन की ललित कामनाओं की परिणति है। इसके लिए मनौतियाँ भी मानी जाती हैं। पुत्र जन्म के अवसर पर आसपास की महिलाएँ नवप्रसूत स्त्री के घर के द्वार पर बैठकर सोहर गीत गाती हैं। पुत्रजन्म के अतिरिक्त उपनयन और विवाह के अवसर पर भी सोहर गाए जाते हैं। अवधी क्षेत्र के सोहरों का प्रधान वर्ण्य विषय प्रेम है। रस की दृष्टि से इनमें शृंगार और हास्य की प्रधानता रहती है। साथ ही करुण रस के भी पर्याप्त उदाहरण सोहर गीतों में पाए जाते हैं। बालक पति-पत्नी के पारंपरिक प्रेम और आकर्षण का परिणाम होता है। यही कारण अनेक सोहरों में पति-पत्नी के प्रेम का चित्रण उपलब्ध होता है। लेकिन इसके साथ ही अनेक स्त्रियों की करुण दशा के चित्र भी सोहरों में मिलते हैं। अनेक सोहरों में बंध्या के मन की व्यथा सजीव हो उठी है। कन्या के जन्म पर सोहर नहीं गाए जाते।

सोहर को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) पूर्व पीठिका (२) उत्तरपीठिका। गर्भाधान, गर्भिणी की शरीरयष्टि, दोहद, प्रसवपीडा, धाय को बुलाना आदि का वर्णन पूर्वपीठिका में आता है। पुत्रजन्म के पश्चात् माता-पिता का आनंद, बालक के जन्म पर धनधान्य माँगने वाली धाय, ननद द्वारा नेग माँगना, शिशु का रुदन, सास की प्रसन्नता, ब्राह्मणों को दान देना, गरीबों में धनधान्य वितरण करना, कुल में पुत्र के आगमन से अपने सर्वस्व को लुटाने वाला पिता, उसका उल्लास आदि उत्तरपीठिका के अंतर्गत आते हैं, जिन्हें 'खेलवना' के गीत कहते हैं।

पूर्बी सोहर -

सुनबे त सुनबे रे ननदिया, आरे हमरी बचनिया नु हो।
कि आरे मोरे ननदो भइया केरे बोलइतु उहे दरद मोरा जनो ले हो।।

उत्तरपीठिका के सोहर -

भुइँआ पड़े हइँ नंदलाल,
भुइँआ पड़े कि सुख सोभइ।
कि नंदलाल भुइयाँ पड़े हइँ।।
जाइ कहो मोरे बारे ससुर से,
जलदी चमाइन को लामइ,
कि नंदलाल भुइयाँ पड़े हइँ।।

ब्रज में भी पुत्रजन्म के समय विभिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न गीत गाए जाते हैं। जैसे जाति के गीत, छठी

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

के गीत, जगमोहन लुगरा, तगा आदि। जहाँ लोकगीतों में पुत्र के जन्म पर महान उत्सव मनाया जाता है वहाँ पुत्री के जन्म के कारण इनमें विषाद की गहरी रेखा दिखाई पडती है। कोई माता कहती है कि जिस प्रकार पुरइन का पत्ता हवा के झोंके से काँपने लगता है इसी प्रकार मेरा हृदय पुत्री जन्म की आशंका से काँप रहा है। यही कारण है कि पुत्री के जन्म पर सोहर नहीं गाए जाते।

इन गीतों में लोकमनोवृत्तियों के दर्शन सहज रूप से होते हैं। ढोलक, मंजीरा बजाकर स्त्रियाँ सोहरों को गाती हैं। इन गीतों में नारी सुलभी भावनाओं की सुकोमल अभिव्यक्ति हुआ करती है। सोहर प्रबंधात्मक एवं मुक्तक दोनों प्रकारों में मिलते हैं। प्रबंध सोहर में लंबा कथा-प्रसंग होता है जबकि मुक्तक में भाव विशेष की अभिव्यक्ति हुआ करती है। हिंदी की विभिन्न बोलियों में थोड़े बहुत परिवर्तन किए हुए सोहर प्राप्त होते हैं परंतु इनका विषय एक ही है।

विवाह

जन्म के बाद 'विवाह'। संसार की सभी सभ्य या असभ्य कही जाने वाली जातियों में यह संस्कार बडे उत्साह से मनाया जाता है। मानव जीवन के अन्य संस्कारों में विवाह महत्त्वपूर्ण संस्कार है। जन्म की भाँति विवाह संस्कार में भी कई लोकाचारों एवं पौराहित्य प्रणालियों का विधान होता है। लौकिक आचार घर के व्यक्ति ही करते हैं किंतु शास्त्रोक्त प्रणाली से किए जाने वाले आचार पुरोहित से ही कराए जाते हैं। शास्त्र सम्मत प्रणाली तो विवाह संस्कार का विधिपूर्वक विधान है जिसमें कर्तव्य, निष्ठा एवं बुद्धितत्व समाविष्ट है। किंतु लोकाचार में समाज की हार्दिकता व्यंजित होती है। विवाह बडे धूमधाम और उत्साह के साथ किया जाता है। निर्धन व्यक्ति भी इस अवसर पर अपनी शक्ति से अधिक व्यय कर देते हैं। इसलिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'धन जाय शादि का बादी' अर्थात् धन या तो शादी में नष्ट होता है अथवा झगड़े या मुकदमें में।

यदि दुल्हा आए और भाँवरे डालकर दुलहिन को बिदा कर ले जाए तो आनंद की उतनी सामग्री नहीं होगी जितनी अन्य लौकिक क्रियाकलापों से होती है। वैवाहिक अनुष्ठान में विविध प्रसंगों पर भिन्न भिन्न गीत गाए जाते हैं। विवाह के गीत वर और कन्या दोनों पक्षों में समान रूप से गाए जाते हैं। इन गीतों को दो प्रधान वर्गों में विभाजित किया जात सकता है। वर के घर गाए जानेवाले गीत और वधू के घर गाए जाने वाले गीत जिस दिन वर का तिलक चढता है, उसी दिन से इन गीतों का गाना प्रारंभ हो जाता है।

वर पक्ष के गीत

तिलक के गीत, सगुन के गीत, भतवानि के गीत, लावा भुजाई गीत, हरदी के गीत, मातृपूजा के गीत, वस्त्र धारण के गीत, गोदभराई के गीत, कोठवर के गीत, कंकन छुडाई के गीत आदि।

वधू (कन्या) पक्ष के गीत

तिलक के गीत, माँडों के गीत, कलसा धराई के गीत, हरदी के गीत, लावा भुजाई के गीत, मातृ पूजा और द्वार पूजा के गीत, पोखर रवनाई के गीत, विवाह के गीत, द्वार रोकने के गीत, काहबर के गीत, परिहास के गीत, भात के गीत, गाली के गीत, माडो खोलाई के गीत बिदाई के गीत, चौथारी के गीत आदि।

वधूवाले गीत अत्यंत सरस, मधुर और प्राय: करुण रस से पूर्ण होते हैं। बिदाई के अवसर पर गाए जानेवाले विदा गीत तो इतने हृदयद्रावक होते हैं कि उन्हें सुनकर हर एक का हृदय विदीर्ण होने लगता है। इसके विपरीत वरपक्ष के गीत हर्षोत्पादक एवं शोभा तथा श्री से पूर्ण होते हैं। इनमें वर के संबंधियों का उल्लास तथा अवसर विशेष की धूमधाम का ही वर्णन विशेष रूप से पाया जाता है। लडके के विवाह गीतों में जहाँ उल्लास और अभिमान की अभिव्यंजना मिलती है, वहाँ लडकी के गीतों में निरीहता, करुणा और सामाजिक विषमता आदि के विसंवादी स्वर सुनाई पडते हैं। विवाह के समय गाए जाने वाले लोकगीतों का वर्ण्य विषय अत्यंत विस्तृत है। इनमें कहीं पुत्री के विवाह के लिए पिता चिंताग्रस्त है तो कहीं पर अपने पिता से सुंदर और योग्य वर

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

खोजने की प्रार्थना करती हुई पुत्री चिंतित हुई है। कहीं पर माता अपने पति को पुत्री के लिए वर खोजने को प्रेरित करती है, तो कहीं योग्य वर न मिलने की चिंता से व्याकुल पिता दिखाई देता है। कहीं माता पुत्री जन्म के कारण अपने भाग्य को कोसती है।

भोजपुरी प्रदेश में कन्या का पिता या भाई वर की खोज में निकलता है। वर के वंश, कुल, गोत्र आदि पता लगाकर वर कन्या की जन्मकुंडली मिलाई जाती है। पश्चात् लेनदेन की बात चलती है। वर का पिता अपनी प्रतिष्ठा, संपत्ति तथा पुत्र की योग्यता के अनुसार कन्या के पिता से 'तिलक' माँगता है। बात पक्की हो जाने पर 'वररक्षा' विधि संपन्न होती है। विवाह तिथि निश्चित हो जाने पर बारात आती है। बारात में हाथी, घोडा, ऊँट, नालकी और पालकी सभी होते हैं। इससे वर पिता की प्रतिष्ठा जानी जाती है। बारात कन्या के घर पहुँचने पर अगले रीति-रिवाज एवं परंपराओं के अनुसार गीत गाए जाते हैं।

सगुन के गीत

विवाह संस्कार की प्रथम प्रमुख कडी सुगन या लग्नपत्रिका है। ये गीत विस्तार में नहीं होते। इनमें छिटपुट रूप में शुभ शकुनों का उल्लेख होता है। वैवाहिक कार्यक्रम एवं विविध तैयारियों का वर्णन तथा परिवार के स्नेही व्यक्तियों की भावना का प्रकाशन होता है। एक गीत में घर की स्त्रियाँ बाबा, ताऊ, चाचा आदि से पूछती है कि तुम क्या हार आए?

''कहा रे पिया तुम हारिए,
ए हम हारे नीऐं मुहर पचास
हार नाइ रुपया डेढ सौ
ए हम हारे हैं हियरा कौ जियरा राजकुमारि।''

भात के गीत

सगुन भेजने के बाद पुत्र अथवा कन्या की माँ अपने भाई से भात माँगने जाती है। भात के गीतों में करुणा का पुट अधिक रहता है। सगा भाई मर चुकने के कारण बहन श्मशान जाकर महुए के पेड को संबोधित करती है। भाई का प्रेत भात का न्यौता स्वीकार कर लेता है और निश्चित तिथि पर पहुँचता है। कोई ईर्ष्यावश भेद जान जाने के कारण छल करता है। तब सास और जिठानी के ताने सुनने पडते हैं। ये गीत बडे मार्मिक होते हैं। इनमें भातई का वैभव का चित्रण होकर उदारता भी व्यंजित रहती है।

रतजगे के गीत

इसमें सामान्य गीत भी होते हैं जो विवाह के किसी भी दिन गाए जा सकते हैं। लाड़ी, घोड़ी, खेल आदि।

कुछ गीत अनुष्ठान विषयक होत हैं जो विशेष प्रसंगों पर गाए जाते हैं। लड़ाइ-झगड़ा, अऊत-पितर आदि। इस अवसर पर 'सतगठा' विशेष गीत गाते हैं जिसमें समस्त देवी-देवताओं का उल्लेख होता है। कुछ विविध विषयों से संबंधित होते हैं जिनमें आश्चर्य की भावना के साथ अश्लीलता का पुट भी होता है।

भाँवरों के गीत

भाँवर पड़ते समय प्रत्येक फेरे के साथ स्त्रियाँ कहती हैं -

''लाई डारो भइया लाई डारो, मैं तो बहिनि तुम्हारि।
पहिली भँवरिया के घुमतें, भइया अबहुँ तुम्हारि।....
सतई भँवरिया के पैठत, दादुलि भइनि परारि।।''

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

गारी गीत

विवाह में गारी बहुतायत से गाई जाती है। इनमें व्यंग्य, अर्थ गांभीर्य और गालियाँ होती हैं। विवाह के बाद भात खाते समय समधी जब तक इन गालियों को नहीं सुनता तब तक वह अपना यथोचित सत्कार नहीं मानता।

''माठा ल चमके मोर भूरी भैंस राम,
कोठा ल चमके कलोर
मडवा ल मोर चमके समधिन छिनरिया,
देखें सहर के लोग।

'कोहवर' के गीतों में परिहास के अवसर और प्रसंग उपस्थित होते हैं। इन गीतों में हास्य का पुट होता है। 'ज्योनार' के गीतों में स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों की लंबी-सी सूची रहती है। भले ही ये चीजें बनाई न जाए फिर भी बरात के समय इन वस्तुओं को गीतों के माध्यम से गिना जाता है। मंडप के नीचे जौ बोने के समय 'पलका के गीत' गाए जाते हैं।

बाती के गीत

विवाह हो जाने अर्थात सप्तपदी के पश्चात् वर और वधू को उस कोठरी में ले जाया जाता है जहाँ घर की कुलदेवी होती है और मातृपूजन के दिन मातृस्थापना की जाती है। वहाँ एक दीपक जलाया जाता है जिसमें पृथक-पृथक दो बत्तियाँ जला करती हैं। कन्या की भावजें अथवा परिवार की स्त्रियाँ वर से इन दोनों ज्योतियों को मिलाने की प्रार्थना करती हैं।

''लाला तुम काहे न मिलयो बाती।
कि तोको सिखई माता बहिन तोरी।''

वर दोनों ज्योतियों को मिलाता है। यह पति-पत्नी की आत्माओं के मिलन की प्रथा है।

बिदाई गीत

ये गीत आँसू भरे, दर्दीले, मार्मिक और करुण रस से भरे होते हैं। कन्या बिदा हो रही है, भाई ने उसके रथ का डंडा पकड लिया है। माता-पिता, संबंधी सभी व्याकुल हैं।

''भैया का घर छोडकर बहना,
हो गई आज पराई रे।
बापू उनके सोच रहे,
मातन कर दी बिदाई रे।

हास उल्लासमय वातावरण गहन वेदना एवं शोक से अभिभूत हो जाता है। सगे माता-पिता और भाई-बहनों को छोडकर जाने वाली कन्या के विलाप से हृदय दहल उठता है। शोक विह्वल कन्या की करुणाभिव्यक्ति निम्न लोकगीत में हुई है-

''हम बिरना ऐ अम्मा जन्मे एक अंगी
संगे-संगे खेलही ऐ अम्मा खइली एक संग।....''

एक ही माता से उत्पन्न पुत्र और पुत्री के भाग्यविधान में विधाता द्वारा कितना अन्यायपूर्ण पक्षपात किया जाता है यह भावना इसमें व्यक्त हुई है। कन्या का दु:ख जितना गहरा है, उससे कहीं अधिक गहरा माता-पिता का दु:ख होता है जिन्हें अपने हृदय के कण को, अपने रक्त के अंश को पृथक कर देना होता है। बेटी की बिदाई

पर घर का कोना-कोना रो पहता है। माता-पिता, भाई और सखियों के रोने का वर्णन नीचे किया है -

''भाई के रोये अंचल भरि भीजई, बाबुल के रोए चउपालरे।

भइया के रोये पटुक भीजई सखिया रोबई सब ठाढ रे।''

कन्या का पिता हाथ जोडकर समधी से विनय करता है कि वह उसकी बेटी को अच्छी तरह से रखें। कन्या की माँ समधन से अपनी बेटी को अच्छी तरह से संभालने की प्रार्थना करती है। तो कन्या का भाई जीजाजी (वर) से विनय करता है कि वे मेरी (अपनी) बहन को सुख से रखें। इस प्रकार बिदाई गीतों में शोकमय भावनाओं की अभिव्यक्ति होती हैं।

गौना

गौना शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है। जिसका अर्थ है जाना। गौना को 'मुकलावा' भी कहते हैं। इस अवसर पर कन्या पिता के घर से पतिगृह गमन करती है। कन्या के विवाह के उपरांत कुछ वर्ष बाद गौना संस्कार किया जाता है। प्राचीन काल में बालविवाह की प्रथा थी। इसलिए वर-वधू अल्पायु होते थे। उस समय केवल विवाह की रस्म पूरी की जाती थी। जब तक कन्या सयानी नहीं हो जाती थी तब तक वह पिता के घर रहती थी। जब वह सयानी हो जाती थी तब शुभ मुहूर्त पर कन्या के पिता कन्या की बिदाई करता था। गौने का संस्कार विवाह के पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें वर्ष में किया जाता है। तात्पर्य विषम वर्षों में तिथि निश्चित की जाती है और पुन: कन्या ससुराल बिदा कर दी जाती है। गौना विवाह के समान ही बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर वर का पिता अपनी पुत्रवधू को लिवा लाने के लिए प्राय: नहीं जाता क्योंकि पुत्रवधू का रुदन सुनना उसके लिए निषिद्ध माना जाता है।

गौने के गीतों को विवाह के गीतों से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों ही अवसरों पर अंत में 'बिदागीत' गाए जाते हैं। दोनों अवसरों पर गाए जाने वाले गीत वस्तुत: एक ही है। इन गीतों का प्रधना विषय ममतामयी माता, प्रेमी पिता, परिचित स्नेही, बंधुओं और सखियों से बिछुडना रहता है। इन गीतों में बिछोह तथा करुण रस के चित्र अपनी संपूर्ण मार्मिकता के साथ चित्रित पाए जाते हैं। इन गीतों में विरह की भावना होती है। कहीं ससुराल जाने वाली अपनी बहिन की पालकी के पीछे-पीछे भाई रोता हुआ जाता है तो कहीं बहिन अपने माता-पिता, भाई-बहन को छोडकर जाती हुई रोती बिलखती दृष्टिगोचर होती है।

बेटी चलेलि अपने ससुरवा।

सुगना रावई छाछाकाल रे...।

इस समय गाए जाने वाले गीत अत्यंत हृदयस्पर्शी एवं करूण रस से भरे रहते हैं। वास्तव में लड़की की बिदा का अवसर ही अत्यंत करुण होता है। स्त्री-पुरुष दोनों ही अपने आँसुओं को रोक नहीं पाते। गौना के गीतों में विषाद की गहरी रेखा दिखाई पडती है। इसलिए करुण रस से ये गीत ओतप्रोत होते हैं। इस प्रथा में वधू पक्ष में 'सुहाग' तथा वर पक्ष में 'घोडी बन्ने' गाए जाते हैं।

आजकल कहीं कहीं परिस्थितियों को देखते हुए विवाह पर अक्सर गौना भी साथ कर दिया जाता है।

कजली

लोकगीतों में कजली का विशिष्ट स्थान है। विशेषकर उत्तर प्रदेश में सावन महीने में कजली गाने की प्रथा है। ऋतु गीतों के अंतर्गत 'कजली' नामक लोकगीत भोजपुरी जनपद की अमूल्य थाती माने जाते हैं। कजली बरसात के महीनों में खास करके सावन-भादों के महीनों में गाई जाती है।

कजली का नामकरण सावन के बादलों की कालिमा की तरह पडा है। भारतेंदु के मतानुसार मध्यभारत के दादुराय नानक लोकप्रिय राजा की मृत्यु के पश्चात् वहाँ की स्त्रियों ने एक नए गीत की पद्धति का आविष्कार किया जिसका नाम कजली पडा। कुछ लोग कजली वन से इसका संबंध जोडते हैं। कजली का मुढ्य वर्ण्य विषय प्रेम है। इन गीतों में शृंगार रस की प्रधानता रहती है। रसराज शृंगार के संयोग-वियोग इन दोनों पक्षों की

झाँकी कजलियों में मिलती हैं। फिर भी इनमें संयोग शृंगार का वर्णन अधिक मात्रा में होता है।

''आरे आव बहेला पुरवैया,
अब पिया मोरे सोवै ए हरी।।...''

यहाँ संयोग शृंगार का वर्णन है। वियोग वर्णन में -

''बैरी घरि आई कारी रे बदरिया
सँवरिया नहीं आयो ननदी।...''

पतिवियोग में विरहिणी की वेदना करुण रस में बोल उठी है -

''बादल बरसे बिजुली चमकै, जियरा ललचे मोर सखिया।
सइयाँ गरे ना अइलैं, पानी बरसन लागेला मोर सखिया।''

कजली के गीत बड़े ही सरस, सुंदर तथा मर्मस्पर्शी होते हैं। मार्मिक, कोमल भावों को व्यक्त किया है। इनमें मर्म को स्पर्श करने की अद्‌भुत क्षमता होती है।

अक्सर कजली गीत झूला झूलते हुए गए जाते हैं। सावन महीने में घर, गाँव, बाग में या नदी, तालाब के किनारे पर झूले लगाए जाते हैं। इन झूलों की बड़ी तैयारी की जाती है। एक तो रंगीत रस्सी पेडों की मजबूत शाखा को बाँधकर झूले लगाए जाते हैं या सुंदर रस्सी से काठ के चौकोर तख्ते को पेड की मजबूत शाखा में बाँधकर लटका देते हैं। इसी सुसज्जित झूले पर बैठकर नर-नारी झूलकेन का आनंद उठाते हैं इसकी विशेषता यह है कि पुरष और स्त्रियाँ दोनों समान रूप से कजली को गाते हैं। सावन की सुहानी रात में जब गवैए इसे गाने लगते हैं तो एक समाँ बंध जाता है।

मिर्जापुर की कजली विख्यात है -

''लीला रामनगर की भारी
कजली मिर्जापुर सरदार।''

अवधी में सावन महीने में कजली गाने की प्रथा है। उसमें प्रधानत: प्रेम का, शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन होता है। इनमें कहीं पतिव्रता के प्रेम का वर्णन होता है तो कहीं ननद भावज के हास-परिहास का वर्णन होता है तो कहीं करुण रस की मार्मिक व्यंजना भी मिलती है। मिथिला में कजली से मिलता जुलता गीत 'मलार' है। यह पावस ऋतु में स्त्री-पुरुष दोनों गाते हैं, लेकिन दोनों के गाने का ढंग अलग-अलग होता है। स्त्रियाँ हिंड़ोले पर बैठकर सम्मिलित स्वर में इसे गाती है। अयोध्या ने भी सावन के महीने में राम को झूला झूलाते हुए कजली गाने की प्रथा है। मिर्जापुर में तो कजली के दंगल लगते हैं। इसमें दो प्रतियोगी दल होते हैं। एक दल प्रश्न करता है तो दूसरा दल उत्तर देता है। यह क्रम देर रात तक चलता है।काशी में भी कजली गाने का अधिक प्रचार है। यहाँ भी गवैए दो दलों में विभक्त होकर रात-रात भर गाते रहते हैं। राजस्थान में तीज के अवसर पर हिंड़ोले के जो गीत गाए जाते हैं वे इसी कोटि में आते हैं। इस प्रकार लगभग उत्तर भारत में यह गीत बड़े उत्साह से झूले पर बैठकर गाया जाता है। कजली के गीतों में सामाजिक और आर्थिक जीवन की झाँकी मिलती है। गीतों में मनोवैज्ञानिक अंतद्‌र्वंद्‌व का सजीव चित्रण मिलता है। कहीं कहीं पारंपरिक कजलियाँ गाई जाती है, तो कहीं कहीं कुछ नई कजलियों का भी निर्माण होता है। कुछ कजलियाँ भक्तिसंबंधी और राष्ट्रीय संबंधी भी होती है। भक्ति संबंधी -

''मधुरा के दसवां से भेज ले पियरवा राजा,
हरि हरि ऊधो लाए जोगवा की पाती रे हरी।''

राष्ट्रीय संबंधी -

''टूटे सोमनाथ के मंदिरा, केलू लागे ना गोहार,
दौरो दौरो हिंदू हो सब, गौरा करें पुकार।।''

कजली में लोकगीतों की सी स्वाभाविक सरसता मिलती है। इनमें कई बार बहुरूपत्त्व के दर्शन भी होते हैं।

गृहस्थिनियों, नटिनों, गवनहारियों, बनारसी गुंडों, कृष्ण के ऊधम इत्यादि से संपन्न कजलियों को उनकी अपनी ध्वन्यात्मकता, लचक और आरोह-अवरोह के कारण सुनते तथा देखते ही बनता है।

होली

होली भार का अत्यंत लोकप्रिय त्यौहार है। संगीतमय त्यौहारों में होली महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। मूलतः हों फसल का त्यौहार है। यही कारण इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में इतना उल्लास, उत्साह एवं उमंग दिखाई पडता है। चारों ओर उत्साह और चहल-पहल होती है। फागुन महीने में होली का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस समय गाए जाने वाले गीतों को फगुआ या फाग कहते हैं। इन्हें होली के गीत कहते हैं। माघ महीने की शुक्ल पंचमी अर्थात वसंत पंचमी के दिनों से फाग का गान प्रारंभ किया जाता है जिसे स्थानीय बोली में 'लाल टोकना' बोलते हैं। वसंत ऋतु के लोकप्रिय गीतों में होली की चर्चा होती है।

होली त्यौहार में 'होलिका दहन' मुख्य घटना है। होली के कुछ दिन पूर्व से ही इसकी तैयारी आरंभ हो जाती है। टोले, मुहल्ले के बच्चे सूखी लकडियाँ, उपलियाँ और बल्ले इकट्ठा करते हैं। फिर मुहल्ले में गड्ढा खोदकर श्रीगणेश एरंडी का पेड या उसकी शाखा गाडकर किया जाता है। फिर उसके चारों ओर लकड़ियाँ, बल्ले, उपलियाँ गोलाकार रखकर होली रची जाती है। होली के दिन रात्रि में निश्चित मुहूर्त पर विशेष व्यक्ति के करकमलों द्वारा आग लागई जाती है। होली में आग लगाने के बाद गाँव भर के गवैयों की संगीत महफिलें जमती हैं। होली के समूहगीत ढोलक के साथ खूब जोर-शोर से गाए जाते हैं।डफ, झाँझ तथा मृदंग के स्वर में स्वर मिलाकर एक विशेष गतिमय सुर में गीत गाते हैं।

भारतीय जनसमाज बहुआयामी, बहुजातीय, बहु-भाषी और बहु-आचार धर्मी, बहु-प्रथाओं से सजा-सँवरा है। इसी कारण यहाँ होली का त्यौहार बहु रंगों में पाया जाना स्वाभाविक है। ये सभी रंग मानवीय भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रज में इस पर्व का महत्त्व कुछ और ही होता है। इस पर्व पर मनुष्य वसंत के उन्माद में मस्त होकर होली तथा रसिया गाते हैं। इन गीतों का प्रधान विषय राधा और कृष्ण का आपस में होली खेलना है।

''चलो बरसाने खेलो होरी, ऊँचो गाँव बरसाने
कहिए तहाँ बसै राधा गोरी
पाँच बरस के कुँवर कन्हैया
सात बरस की राधा गोरी।''

गीतों में अबीर, गुलाल, रंग, पिचकारी आदि का उल्लेख अधिक किया जाता है -

''होरी खेलन गए गिरधारी। होरी खेलन गए गिरधारी।
राधा के हाथ मां रंग कटोरा। कान्हा के हाथ मां पिचकारी।''

किसी किसी गीत में शिवजी से होली न खेलेन का वर्णन भी है। इस अवसर पर भांग का सेवन भी किया जाता है जिसका संबंध शिवजी से ही है। जहाँ होली के गीतों में संयोग शृंगार का वर्णन पाया जाता है वहाँ दूसरी ओर प्रियतम के वियोग में प्रिया की विरह-वेदना को व्यंजित करने वाले चित्र भी मिलते हैं। होली के गीत प्रमुख रूप से तीन विषयों से संबंधित हैं।

(1) प्रेम एवं शृंगार संबंधी (2) भक्ति संबंधी (3) राष्ट्रीय भाव संबंधी

(1) होली के गीतों में शृंगार रस की ही प्रधानता रहती है।

''तेरी अंगियों में चोर बसै गोरी।
इस चोरन मेरो सरबस लुट्टो, मन लीनै जोरा-जोरी।...''

किसी नवयौवना स्त्री का पति विदेश चला गया है। तभी वियोगिनी स्त्री गा उठती है -

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

''पिया बिन बैरिन होरी आई।''

इस प्रकार होली के गीतों में हास विलास के साथ ही वियोग और विरह की भी क्षीण किंतु हृदयद्रावक धारा प्रवाहित होती है।

(2) भक्तिसंबंधी होली गीत –

''हम चाकर राधा-रानी के,
ठाकुर श्रीनंदनंदन, वृषभानुलली ठकुरानी के।''

अवध में श्रीराम के होली खेलने का वर्णन मिलता है।

''अयोध्या मां राम खेलें होरी। अयोध्या मां राम खेलें होरी।''

(3) राष्ट्रीय भाव संबंधी होली गीत –

''महंगी परी, न पानी बरसा, बजरों नहीं सस्त,
धन सब गबा, अकिल नहीं आई, तो भी मंगल कस्त।।''

होली धम्मार फाल्गुन महीने में ही विशेष सुहाते हैं। फाल्गुन में गीतों की झड़ी-सी लग जाती है। रातदिन लोगों को फाग गाने की धुन सवार हो जाती है। होली भी मुक्तक गीत है। इसके दो भेद माने जाते हैं। एक तो साधारण शैली है दूसरी राजपूती होली कहलाती है। साधारण होली में रसिया जैसे विषयों और भावों के साथ होली खेलने का उत्साहपूर्ण वर्णन रहता है। राजपूतानी शैली विशेष सशक्त और उग्र स्पंदनों से परिपूर्ण होती है। इसमें एक ही चरण विविध गतियों से युक्त बहुधा किसी कथा से गर्भित होता है। इस शैली का आविष्कार आगरा का 'पतोला' माना जाता है। होली के समय गीतों की दो श्रेणियाँ होती हैं। एक क्रीडा विलास की, दूसरी ओजपूर्ण। ओजपूर्ण गीतों में महाभारत और रामायण के विविध युद्धों का बड़ा ही सजीव वर्णन होता है। कन्नौजी में जिस प्रकार कजरी की स्वरलहरी स्त्रियों के कंठ से सावन मास में प्रवाहित होकर वातावरण को रसमय बना देती है, उसी प्रकार फाग पुरुष कंठ से नि:सृत होकर वसंत के उन्माद को द्विगुणित कर देता है। मैथिली में होली के गीतों को 'फाग' कहते हैं। होली के अवसर पर गाए जाने वाले इन गीतों की गति, उनकी भाषा का बंध और स्वरों का संधान अत्यंत मीठा होता है। उत्तरप्रदेश में होली ढोलक और झाल (एक प्रकार का बाजा) के साथ गाई जाती है। बुंदेली में फाग कहने का बड़ा रिवाज है। फागों के फड जमते थे जो तीन-चार दिनों तक लगातार चलते थे। एक टोली की ओर से एक रंग की फाग कही जाती, तो दूसरी टोली तुरंत फाग कहकर उसका उत्तर देती। जो टोली उत्तर न दे पाती, वह हारी हुई मानी जाती।

इस प्रकार होली हमारा सबसे लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध त्यौहार है। चारों वर्णों के लोग बड़े प्रेम तथा उत्साह से इसे मनाते हैं।

लोरी

यह बाल लोकगीतों का एक प्रकार है। मानव ने अपने जीवन का प्रथम गान माता की गोद में दुलार भरे वात्सल्य पूर्ण ममतामय थपकियों की लय पर, मधुर गुनगुनाने के रूप में सुना है। इसी लय और मधुर रस भरी ध्वनि, ताल पर बच्चा स्वयं मीठी नींद सोने लगता है, वह गीत 'लोरी' कहलाता है। बालकों के मनोरंजन के लिए इन्हें गाया जाता है। इन गीतों को 'पालने के गीत' भी कहा जाता है। ये गीत विशेषत: बच्चों को खिलाते समय, बच्चों के हाथ-मुँह धोते समय, झूला झूलाते समय गाए जाते हैं। बच्चों को प्रसन्न रखना ही इन गीतों का उद्देश्य होता है।

माता का ममता भरा हृदय इस प्रभाव को प्राचीन काल से जानता आया है और इसी कारण 'लोरी' हमारी संस्कृति का प्राचीनतम सर्वप्रथम गान रहा है। लोरी की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मानव सभ्यता। लोरियों में स्नेहपूर्ण मनुहार एवं नींद का अवाहन ही प्रधान रूप में होता है। महाभारत में मदालसा अपने पुत्र

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

अलर्क के प्रति अपनी स्नेहिल भावनाओं की अभिव्यक्ति कई रूपों में करती है। मदालसा कहती है, ''हे पुत्र! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरंजन हो। तुम संसार की माया से रहित हो। तुम मोहरूपी निद्रा को छेडो। ''इसमें दर्शनशास्त्र झलकता है। लोरियाँ दो प्रकार की मुख्य रूप से मिलती हैं एक शुद्ध भावप्रधान होती है तो दूसरी चिंतनप्रधान। प्राय: हिंदी में लोरियों में भावतत्त्व ही अधिक मिलता है। अब नन्हा लाडला रोता है तब माता इन गीतों को बार-बार दोहराती है। इन गीतों में अर्थ के साथ साथ लय एवं स्वर को भी महत्त्व दिया जाता है। जब शिशु रोता है तो माँ उसे अपने कंधे या पैरों पर लिटाकर प्यार से थपकियाँ देती है और लोरी गुनगुनाती है। लययुक्त मधुर गीत सुनकर बालक सचमुच या तो रोना बंद कर देता है या फिर निंदिया रानी की गोद में चला जाता है।

''चिडिया आ, दाना खा, पानी पी,
भुर्र बोल के उड़ जा''

लोरी में माँ के हृदय की ममता, निर्मल वात्सल्य की सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है।

''लल्ला लल्ला लोरी, दूध की कटोरी
दूध में बताशा, मुन्नी करे तमाशा''

यहाँ तमाशा शब्द से माँ का क्रोध नहीं ममत्व टपकता है। लोरी लययुक्त होने से, सुनने मे सुखद लगते हैं। पालने या झूले के साथ गीतों का स्वर चढ़ता और उतरता है। इससे बच्चे बड़े आनंद का अनुभव करते हैं। इन गीतों के निर्माण में श्रवण सुखद शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। शब्दों की बार-बार आवृत्ति के कारण स्वर साम्य के द्वारा अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। जैसे - घुटुक-घुटुक, चुटुक-पुटुक।

लोरियों के कारण बच्चे की श्रवण क्षमता का उचित मात्रा में विकास होता है। साथ ही उनका भावनिक तथा सर्वांगीण विकास होने में सहायता मिलती है। शिशु के स्नायु पर अच्छा प्रभाव पडता है। लोरियाँ आकार में छोटी होती हैं। माँ एक विशेष लय और गुनगुनाहट से उसे शब्दों में व्यक्त करती है -

''झुला दो मैया स्याम परे पलना
काहू गुजरिया की नजर लगी है
उलक बुलक दूध डारे।।
राई नोंन उतारौ जसुदा खुसी भए ललना....।।''

इस लोरी में माता यशोदा अपने लाला को सुलाने का प्रयास कर रही है।

लावणी (लावनी)

लावणी के कई अर्थ बताए जाते हैं। जैसे लावणी याने एक प्रकार का ग्राम गीत हृदय को छू जाने वाला काव्य, लावण्य का वर्णन करने वाली रचना, सुंदर एवं सुभग रचना। लावणी शब्द 'लवण' संस्कृत, प्राकृत शब्द से बना है। लवणे का अर्थ है झुकना। झुकना अर्थ होने से कमर को सौ बार झुकाकर गाया जाने वाला गीत अर्थ हो गया। सामान्यत: ढोलकी और कडा के ताल पर लोकरंजनार्थ गाई जाने वाली शृंगारिक खटकेबाज रचना लावणी कहलाती है।

मराठी वाङ्मय में पोवाडा और लावणी इन दो प्रकार के काव्यों को मनोहारी ढंग से विकसित किया है। पोवाडे की पार्श्वभूमि पर पेशवाई के उत्तर काल में लावणी का प्रभाव भले ही दिखाई देता है लेकिन लावणी की परंपरा बहुत पुरानी है। पेशवा काल से पूर्व लगभग २०० वर्ष पहले लावणी की रचना हुई। शिवाजी के काल से पोवाडा और लावणी का विकास हुआ है। भारतेंदु काल में इसका प्रयोग मिलता है। भारतेंदु ने उर्दू लावनियों को लिखकर निर्गुण परंपरा का पालन किया है। ये सारी लावनियाँ रहस्यवादी रही हैं। भाषा की दृष्टि से ये तत्कालीन भाषा में लिखी गई हैं। ये सभी लावनियाँ लोककाव्य परंपरा को जीवन देने में बहुत समर्थ रही हैं। लावणी की परंपरा पूरे हिंदी क्षेत्र में फैली। बाबा बनारसीदास, सत्यनारायण, भारतेंदु, बदरीनारायण चौधरी

ने 'लावनियाँ' लिखीं और गाईं भी। मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध ने भी लावनियाँ लिखीं। महाराष्ट्र में लावणी का प्रभाव अधिक रहा है। खास करके सतारा, सोलापुर, कराड, कोल्हापुर में लावणी में लाघवता मिलती है। महाराष्ट्र की लावणी में जो नखरा और नृत्य है उसका रूप अन्यत्र दुर्लभ है। राम जोशी, परशुराम, गुनाजीवाला, सदनभाऊ प्रभाकर आदि शाहिरों ने लावणी को विकसित किया है।

लोकानुरंजन करना लावणी का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। जनसमूह के सामने शाहिरों ने हावभाव सहित गाए जाने वाली रचनाएँ प्रस्तुत कीं। रचना कौशल से श्रोताओं को मोहित करने वाले लावणीकार शाहीरों में होड़ भी थी। लड़ाइयों में थके हुए, जीवन की थकान कुछ देर मिटाने या ऊब दूर करने के लिए इन रंगबाज लावणियों की रचना में नए नए विषय लाना स्वाभाविक था।

इसमें रसीलापन और नवीनता के साथ ईमानदारी भी निभाई गई। यही कारण है कि जनसामान्य के सामने गाया जाने वाला यह साहित्य रंगबाज बन गया। लावणी में लावण्य, उत्तानता, शृंगारिकता, यमकादि से आनेवाली नादमधुरता के कारण उसका आकर्षण बढ़ गया। वह केवल श्राव्य नहीं बल्कि दृश्य बनी, साथ ही तमाशा का एक अभिन्न अंग बन गई। लावणी केवल सुरताल पर नहीं गाई जाती बल्कि साभिनय विशेष भावभंगिमा सहित प्रस्तुत की जाती है। इसमें चित्रमयता, जीवंतता, भावों की खुलावट संवादात्मकता अभिनय के लिए अनुकूल है साथ ही गाने वाली की नजाकत, नखरे, गर्दन के सूचक हावभाव, नेत्र चापल्य आदि उसमें नाट्यमयता लाते हैं। इसलिए लावणी को गाने का अपना एक विशिष्ट ढंग है।

लावणी के प्रकार

लावणी के मुख्य दो प्रकार हैं - (1) भेदिक लावणी (2) शृंगारिक लावणी

सवाल जवाब में पक्ष प्रतिपक्ष के माध्यम से लावणी खुलती है। कलगी-तुर्रा महत्त्वपूर्ण लावणी। कलगी शक्तिवाचक तो तुर्रा शिववाचक शब्द है। दोनों के सवाल जवाब में कई कूट प्रश्न पूछे जाते हैं। उत्तर न दिए जा सकने पर वह पक्ष हार जाता है।

सामान्य रूप से लावणीबाजों के दो अखाडों में बड़ी बड़ी गीत स्पर्धाएँ होती हैं। जो पैनी-नुकीली और सवाल जवाबों से भरी-पड़ी होती हैं। एक से बढ़कर दूसरी एवं हार-जीत, जीत-हार के नित्य नए रूपों के उतार-चढाव से युक्त होती है। लावणी का रूप चुटीला एवं कुछ खट्टा-मीठा तथा लचक भरा होता है। कभी कभार वह इस प्रकार चुभता है, व्यंग्य करता है कि समझदार श्रोता मन ही मन तिलमिला उठता है। कलगी-तुर्रा महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश और राजस्थान में होता है। भेदिक लावणी में गूढ़-अभ्यास विषयक चर्चा होती है। भेदिक लावणी के लिए पट्ठे बापूराव, राम जोशी, होनाजी बाळा, दगडू बाबा, प्रभाकर ख्यातनाम हैं।

शृंगारिक लावणी - कृष्ण गोपियों के - शृंगार में संयोग शृंगार और वियोग शृंगार का चित्रण मिलता है। यहाँ एक रसभरी, प्रेमरस में भीगी लावणी देखने योग्य है।

''रसहु अनरस में एक सरिस रस राखै
सोई सरस हृदय बल प्रेम सुधा रस चाखै।''

कृष्णलीला, गोपियों की छेडछाड, उनको आलिंगनादि, दैनिक वर्णनों में कुछ आध्यात्मिक रंग भर देने वाली लावणीकारों में होनाजी बाळा, राम जोशी सिद्धहस्त रहे हैं।

लावणी में वियोग शृंगारी की भी अनेक छटाएँ मिलती है। इसके साथ-साथ आत्मा-परमात्मा की एकता, परमात्मा का लीलावर्णन आदि का भी चित्रण हुआ है।

राष्ट्रीय लावणी में राष्ट्रीय भाव एवं राष्ट्रभक्ति व्यक्त होती है। इसके अलावा ईश्वर वर्णन, पौराणिक अध्याय, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि अनेक रूप उपलब्ध हैं। शृंगार के साथ ही तत्कालीन समाज का चित्रण भी लावणी में मिलता है। शृंगार रस से ओतप्रोप लावणी मराठी साहित्य की देन है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

3:4 शब्दार्थ – टिप्पणी

- आशुकवित्व – शीघ्रकाव्य रचने की शक्ति
- रीढ़ – मेरुदंड
- स्वरसंभरण – उदात्त अनुदात्तता तथा तीव्रतादि गुण वाला शब्द
- सोहर – पुत्र जन्म के अवसर पर गाया जाने वाला गीत
- कोल – गोद
- गलहारु – गले का हार
- भुइँआ – भूमि
- सोभइ – सुशोभित होना
- बलम – पति
- माँडो – मंडप
- कोहवर – विवाह में कुलदेवता स्थापित करने का स्थान
- कलोर – क्रीडा
- माठा – एक प्रकार की मिठाई
- भाँवरि – विवाह के समय अग्नि की वह परिक्रमा जो वर और वधू विवाह के अंत में करते हैं।
- ज्योनार – दावत
- पुँसवन – गर्भाधान से तृतीय मास का एक संस्कार
- साध – गर्भाधान से सातवें महीने में होने वाला संस्कार
- चौक – मंगल समय पर पूजन के लिए आटे, अबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूँटा क्षेत्र
- झाँझी – खेल विशेष, क्रोधी, झगडालू
- जँतसार – जाँता गाडने का स्थान

बाती – सप्तपदी के पश्चात् वर और वधू को उस कोठरी में ले जाया जाता है जहाँ घर की कुलदेवी होती है। वहाँ एक दीपक जलाया जाता है जिसमें अलग-अलग दो बत्तियाँ जला करती हैं। कन्या की भावजें तथा अन्य स्त्रियाँ इन दो ज्योतियों को मिलाने की वर से प्रार्थना करती है। वर दोनों को मिलाकर एक कर देता है। दो आत्माओं के मिलन की यह प्रथा समाप्त होती है।

3:5 सारांश

लोकसाहित्य की विधाओं में सर्वाधिक सशक्त एवं प्रधान अंग है – 'लोकगीत'। लोक में प्रचलित लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहते हैं। ये मौखिक, पद्यबद्ध तथा जीवन की अनेक घटनाओं, पर्वों तथा अवसरों पर गाए गाते हैं। लोकगीत सरस और सुरस होते हैं। लोकगीत की पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने परिभाषाएँ दी है। उदा., देवेंद्र सत्यार्थी ने लोकगीतों को संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहा है। श्रीराम शर्मा ने लोक में प्रचलित, लोकद्वारा रचित, लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा है। परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष हैं – लोकगीतों में लोकजीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। उनमें लयात्मकता, रससिक्तता, लोकानुरंजनता होती है। वे स्वयंस्फूर्त होते हैं। लोकगीत सामूहिक भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

लोकगीत के निर्माण तत्व – डॉ. सत्येंद्र ने मूल-रूप-विधान के रीढ़, स्वरसंभरण, स्वरालंकरण, तोड़, भरती, मोड़ ये प्रकार किए हैं। लोकगीतों की विशेषताओं के अंतर्गत अज्ञात रचयिता, सामूहिक

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

भावभूमि, अकृत्रिकता, मौखिक परंपरा, संगीतात्मकता, लोकसंस्कृति का चित्रण, स्वच्छंदता, रसात्मकता, रूढ़ अतिशयोक्ति, प्रकृति चित्रण संक्षिप्तता आदि बातें आती हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण उसके सम्यक अध्ययन के लिए आवश्यक है। लोकगीतों की संख्या बहुत अधिक है। विषय वस्तुगत वैविध्य बहुत है। इसलिए उनका वर्गीकरण करना अपने आपमें एक समस्या है। विभिन्न विद्‌वानों ने उनका वर्गीकरण किया है। जैसे संस्कार संबंधी ऋतु संबंधी, खेती संबंधी, मेले संबंधी गीत, चक्की और चरखे के गीत, वीरगाथा आदि। डॉ. कष्णदेव उपाध्याय ने संस्कारों की दृष्टि से, रसानुभूति की प्रणाली से ऋतुओं और व्रतों के क्रम से, विभिन्न जातियों के प्रकार से, क्रिया-गीत की दृष्टि से लोकगीतों का वर्गीकरण किया है। लगभग सभी विद्‌वानों ने उनके वर्गीकरण को स्वीकार किया है।

लोकगीतों और साहित्यिक गीतों में अंतर करते समय यह दिखाई देता है कि लोकगीतों की बहुत-सी विशेषताएँ साहित्यिक गीतों में भी मिलती हैं। फिर भी दोनों में अंतर है। लोकगीतों का रचनाकार तथा उसका रचनाकाल अज्ञात होता तो साहित्यिक गीतों में रचनाकार और उसके काल के बारे में जानकारी होती है। लोकगीतों में अकृत्रिमता होती तो साहित्यिक गीतों में कृत्रिमता होती है। लोकगीत अनलंकृत होते तो साहित्यिक गीतों में अलंकारों का प्रयोग सायास होता है। लोकगीतों में साहित्यिक चमत्कार का अभाव होता तो साहित्यिक गीतों में साहित्यिक चमत्कार मिलता है। लोकगीत लोकभाषा में होते हैं तो साहित्यिक गीत परिनिष्ठित भाषा में होत हैं। लय लोकगीतों की आत्मा है तो साहित्यिक गीतों में लयबद्‌धता प्रचुर मात्रा में नहीं मिलती.

स्त्री की गर्भावस्था से लेकर पुत्रजन्म तक के गीत सोहर कहलाते हैं। पुत्रजन्म आनंद और प्रसन्नता का विषय होता है। इस अवसर पर आसपास की स्त्रियाँ नवप्रसूत स्त्री के घर के द्‌वार पर बैठकर सोहर गीत गाती हैं। कहीं कहीं नाच गाने का कार्यक्रम भी किया जाता है। इन गीतों में लोकमनोवृत्तियों के दर्शन सहज रूप से होते हैं।

विवाह संस्कार में कई लोकाचारों एवं पौराहित्य प्रणालियों का विधान होता है। इन गीतों में वर पक्ष के गीत, वधू पक्ष के गीत होते हैं। वधू पक्ष में गाए जाने वाले गीत अत्यंत सरस, मधुर और प्राय: करुण रस से पूर्ण होते हैं। विवाह के गीतों में तिलक के गीत, माँडो के गीत, कलसा धराई के गीत, हरदी के गीत, द्‌वारपूजा के गीत, भात के गीत, गाली के गीत, बिदाई गीत आदि होते हैं। बिदाई गीत बड़े ही ह्रदय द्रावक होते हैं। वर पक्ष की ओर उल्लास और आनंद होता है। हिंदी की विभिन्न बोलियों में विवाह के गीत मिलते हैं।

गौना गीत कन्या जब अपने पिता के घर से पति गृह जाती है तब गाए जाते हैं। इन गीतों में बिछोह तथश करुण रस के चित्र संपूर्ण मार्मिकता के साथ चित्रित पाए जाते हैं।

कजली गीतों का लोकगीतों में विशिष्ट स्थान है। ये बरसात के महीनों में गाए जाते हैं। झूला झूलते हुए ये गीत गाते हैं। इनमें प्रमुख रूप से प्रेम और श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन होता है। कहीं पतिव्रता के प्रेम का वर्णन, कहीं ननद-भावज के हास परिहास का वर्णन तो कहीं करुण रस की मार्मिक व्यंजना मिलती है।

होली फसल का त्यौहार है। इस समय गाए जाने वाले गीतों में उल्लास, उत्साह, उमंग दिखाई पडता है। चारों वर्णों के लोग होली को बड़े प्रेम एवं प्रसन्नता से मनाते हैं और गीत गाते हैं।

लोरी यह बालगीतों का प्रकार है। बच्चों को खिलाते, पिलाते समय, झूला झूलाते समय गाए जाने वाले इन गीतों से वे खुश हो जाते हैं। उनका मनोरंजन करना ही इनका उद्‌देश्य होता है।

लावणी के अनेक अर्थ बतलाए जाते हैं जैसे ग्रामगीत, दिल को छू जाने वाला काव्य, लावण्य का वर्णन करने वाली रचना आदि। ढ़ोलकी और कड़ा के ताल पर लोकरंजन के लिए गाई जाने वाली श्रृंगारिक, खटकेबाज, रचना ही लावणी है। महाराष्ट्र की लावणी में जो नखरा है, नृत्य है उसका रूप अन्यत्र दुर्लभ है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

3:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

❊ लोकगीत की परिभाषाओं को देते हुए लोकगीत के निर्माण के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

❊ लोकगीत की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

❊ लोकगीतों के वर्गीकरण को समझाइए।

❊ लोकगीतों और साहित्यिक गीतों में अंतर बताइए।

(ख) टिप्पणियाँ -

❊ विवाह और गौना

❊ कजली और होली

❊ सोहर और लोरी

❊ लावणी

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

❊ रीढ़, स्वरभरण, तोड़, भरती आदि किसके तत्व हैं?

❊ संस्कार गीतों के चार उदाहरण लिखिए?

❊ उत्तरप्रदेश में कजली गीतों का गान किस महीने में किया जाता है?

❊ लावणी में किन रसों की प्रधानता होती हैं?

❊ कहाँ की कजली प्रसिद्‌ध हैं।

(घ) सही पर्याय लिखिए

❊ अंग्रेजी 'फोक साँग' के लिए हिंदी में कौनसा शब्द प्रयुक्त होता है?

(अ) लोकसंगीत (ब) लोकगीत (क) लोकनाट्य (ड) लोककथा

❊ रीढ़, स्वर-संभरण, तोड़ आदि किसके तत्व हैं?

(अ) लोकगीत (ब) लोकगाथा (क) लोकनृत्य (ड) लोकसंस्कृति

❊ 'सोहर' गीत प्रमुखत: किस अवसर पर गाए जाते हैं?

(अ) पुत्र-जन्म (ब) बेटी-जन्म (क) भांजी के जन्म (ड) नातीन के जन्म

❊ तिलक, हरदी, मातृपूजा, भाँवरे, बिदाई आदि गीत किस अवसर पर गाए जाते हैं?

(अ) पुत्र-जन्म (ब) विवाह (क) कन्या जन्म (ड) होली

❊ माँ की ममता, स्नेह का दर्शन किसप्रकार के गीत में होता है?

(अ) होली (ब) विवाह (क) लोरी (ड) सोहर

❊ होली मूलत: किसका त्यौहार माना जाता है?

(अ) करुणा (ब) बोआई (क) फसल (ड) खेत

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

3.7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य

- आपके क्षेत्र के विवाह के प्रचलित लोकगीतों का संकलन करें।
- बच्चों से संबंधित बालगीतों को जानने और गाने का अभ्यास करें।
- मराठी के श्रमपरिहार से संबंधित लोकगीतों का संकलन करें।
- महाराष्ट्र में प्रसिद्ध लावणियों का संकलन कर उन्हें मंच पर प्रदर्शित करने का प्रयास करें।

3.8 संदर्भ / अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें –

- लोकसाहित्य के प्रतिमान – डॉ. कुंदनलाल उप्रेती – भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
- लोकसाहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, इलाहाबाद
- हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) संपा. राहुल सांस्कृत्यायन और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- लोकसाहित्य – डॉ. विद्या चौहान, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

इकाई – 4

लोकगाथा

अनुक्रम

4:1 उद्देश्य
4:2 प्रस्तावना
4:3 विषय विवरण
    4:3:1 उत्पत्ति विषयक सिद्धांत
    4:3:2 प्रमुख लक्षण तत्व-विशेषताएँ
    4:3:3 लोकगाथाओं का वर्गीकरण
    4:3:4 'आल्हा' का सामान्य परिचय
    4:3:5 गोरा-बादल का सामान्य परिचय
    4:3:6 भरथरी का सामान्य परिचय
4:4 शब्दार्थ - टिप्पणी
4:5 सारांश
4:6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
4:7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य
4:8 संदर्भ - अतिरिक्त के लिए पुस्तकें

4:1 उद्देश्य

* लोकसाहित्य के लोकगाथा प्रकार से परिचित कराना।
* लोकगाथा के उत्पत्तिविषयक सिद्धांतों को जानना।
* लोकगाथा के विभिन्न प्रकारों की जानकारी प्राप्त करना।
* लोकजीवन में प्रचलित लोकगाथाओं से परिचय प्राप्त करना।

4:2 प्रस्तावना

लोकसाहित्य में गेयात्मक अभिव्यक्ति के दो प्रकार मिलते हैं। काव्यशास्त्रीय परिपाटी के अनुसार एक को मुक्तक कहते हैं जिसे गीतिकाव्य कहना अधिक उचित होगा, दूसरे को प्रबंध काव्य कहते हैं। गीतिकाव्य की कोटि में लोकगीत आते हैं तो प्रबंध काव्य की कोटि में लोकगाथा प्रकार आता है। लोकगीत में कथा न होकर भावात्मकता होती है लेकिन लोककथा में कथा का होना अनिवार्य है, तथा कथा छोटी न होकर बड़ी होती है। दोनों में गेयात्मकता होती है। भारत में कथात्मक गीतों के लिए कोई निश्चित नामकरण प्राप्त नहीं होता। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। गुजरात में इसे 'कथागीत' कहते, राजस्थान में 'गीतकथा', महाराष्ट्र में 'पँवाडा' कहते हैं। उत्तर भारत में इन कथागीतों के लिए कोई निश्चित नाम नहीं मिलता। प्राय: वर्ण्य-विषय के आधर पर ही इन गीतों का नामकरण कर दिया गया है।

ग्रियर्सन ने इन कथागीतों को 'पापुलर साँग' कहा है। यह नाम वास्तव में सार्थक है। क्योंकि 'गीतकथा' या 'कथागीत' शब्दों में लोकभावना की गंध नहीं मिलती। 'लोकगाथा' शब्द सार्थक एवं लोकभावना को लिए हुए है तथा भारतीय लोक परंपरा के अधिक निकट है। वैसे 'गाथा' शब्द अत्यंत प्राचीन है। अमर कोश और विष्णुपुराण में 'गाथा' शब्द का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम 'गाथा' शब्द ऋग्वेद में मिलता है। यज्ञ के अवसर

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

पर गाथा गाने की प्रथा मौजूद थी। हिंदी में इसके लिए ग्रामगीत, नृत्यगीत, आख्यानगीत, वीरगाथा, वीरगीत, वीरकाव्य, आदि अनेक शब्दों का प्रयोग विभिन्न विद्‌वानों ने किया है। इनमें लोकतत्व का बोध नहीं होता जो लोककथा का अनिवार्य अंग है। अत: 'लोकगाथा' नाम ही उपयुक्त है।

4:3 विषय विवरण

लोकगाथा की परिभाषाएँ -

- किटरेज - ''बैलेड वह गीत है जिसमें कथा हो अथवा बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई है।''
- हैजालिट - ''बैलड को इन्होंने गीतात्मक कथानक कहा है।''
- मरे - ''बैलेड छोटे छोटे पदों से रचित एक ऐसी स्फूर्तीदायक सरल कविता है, जिसमें कई लोकप्रिय कथाएँ अत्यंत सजीवन रीति से कही गई हैं।''
- गूमर - ''बैलेड गाने के लिए रचित ऐसी कविता है जो सामग्री की दृष्टि से नितांत व्यक्ति-शून्य और संभवत: उत्पत्ति की दृष्टि से समूह नृत्यों से संबंद्‌ध हो किंतु उसमें मौखिक परंपरा प्रधान हो गई हो।''
- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका - ''बैलेड ऐसी पद्‌य शैली का नाम है जिसका रचयिता अज्ञात हो। जिसमें साधारण आख्यान हो और जो सरल मौखिक परंपरा के लिए अपनी वाणी ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हो।''

पाश्चात्य विद्‌वानों की परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि विद्‌वानों ने एक ही तथ्य को अपनी अपनी भाषा में अलग अलग ढंग से कहा है। अत: हम कह सकते हैं कि लोकगाथा किसी अज्ञात रचयिता द्‌वार रचित संपूर्ण समाज की ऐसी धरोहर है जिसमें गेयता के साथ-साथ कथात्मकता का भी निर्वाह होता है। इसका प्रसार या प्रचार मौखिक रूप में जनसाधारण से होता है।

4:3:1 लोकगाथा के उत्पत्तिविषयक सिद्‌धांत

लोकगाथा मानव समाज का आदिम सामाजिक रूप है। सामूहिक नृत्यगीतों के साथ आगे चलकर पौराणिक पात्रों या देवी देवताओं से संबंधित गाथाएँ भी जुड गईं। इस प्रकार नृत्य गीतों में समाविष्ट पौराणिक इतिवृत्तयुक्त स्वरूप ही लोकगाथाओं के निर्माण का मूल रूप कहा जा सकता है। परवर्ती युग में नृत्य, संगीत और गाथा इन तीनों कला रूपों का स्वतंत्र रूप में विकास हुआ। इसी आधार पर ऋग्वेद में प्राप्त नाराशंसी, गाथाओं, संवादों को हम भारत की प्राचीनतम लोकगाथाओं के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। आदिमानव सामूहिक इकाई में ही अपने जीवन की सार्थकता मानता था, इसलिए ऐसी लोकगाथाओं की उत्पत्ति का स्वत्व भी लोकसमूह को ही प्राप्त रहा। इसलिए समूह का प्रत्येक व्यक्ति इन्हें अपनी कृति मानकर आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार परिवर्तन और परिवर्धन करता रहा। इस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक कंठ से दूसरे कंठ तक जाते जाते मूल रूप में कुछ परिवर्तित होकर ही लोकगाथाएँ जीवित रहीं।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में विद्‌वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। विभिन्न युरोपीय विद्‌वान इस संबंध में अपना विभिन्न मत रखते हैं। किसी विद्‌वान के अनुसार लोकगाथा की उत्पत्ति एक समुदाय के द्‌वारा, तो कोई इसे व्यक्ति विशेष की रचना स्वीकार करते। कुछ मर्मज्ञ किसी जाति विशेष को ही इसका कर्ता स्वीकार करते हैं। प्राचीनकाल में ये गाथाएँ चारणों द्‌वारा गाई जाती थीं। अत: कुछ लोगों का मानना है कि लोकगाथा के निर्माण में उनका हाथ अवश्य रहा होगा। तात्पर्य लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में विद्‌वानों के विभिन्न संप्रदाय प्रचलित हैं।

- ग्रिम का सिद्‌धांत - समुदायवाद
- श्लेगेल का सिद्‌धांत - व्यक्तिवाद
- स्येंथल का सिद्‌धांत - जातिवाद

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

- ❊ बिशप पर्सी का सिद्धांत – चारणवाद
- ❊ चाइल्ड का सिद्धांत – व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद
- ❊ डॉ. उपाध्याय का सिद्धांत – समन्वयवाद

समुदायवाद

इस सिद्धांत को मानने वाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान चैकब ग्रिम और विल्हेम ग्रिम है। इनके मन से लोकगाथा का निर्माण अपने आप होता है। किसी कवि के द्वारा नहीं। सामूहिक रूप से जनता के द्वारा ही इनका निर्माण होता है। इनका निष्पादन स्वत: संभूत है। वास्तव में लोकगाथा लोकजीवन की अभिव्यक्ति है। इसका निर्माण समुदाय द्वारा होता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के हृदय में हर्ष–विषाद, सुख–दु:ख आदि भावनाएँ जाग्रत होती हैं उसी प्रकार किसी विशेष समुदाय के लोगों में भी समष्टि रूप से हर्ष–विषाद की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और किसी विशेष पर्व, त्यौहार आदि अवसर पर इन लोकगाथाओं का निर्माण होता है। ऐसे अवसर पर किसी एक व्यक्ति द्वारा एक कडी गाई जाती है, दुसरा इसी में दूसरी कड़ी जोड देता है और तीसरा व्यक्ति तीसरी। इस प्रकार सामूहिक गीत का निर्माण हो जाता है। अत: लोक ही इन लोकगाथाओं का रचयिता होता है। लोकगाथा जनता के द्वारा, जनता के लिए जनता की कविता है।

आलोचना

इसको सर्वमान्य सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

सभी गाथाओं को समुदाय की रचना इसलिए नहीं माना जा सकता कि कुछ गाथाएँ मूल रचयिता ने जिस रूप में रची होगी, उनमें बहुत थोडा ही परिवर्तन हो पाया है, ऐसी गाथाओं पर यह सिद्धांत लागू नहीं हो पाता।

ग्रिम के पास प्रथम कड़ी कहने वाला या गाने वाला कौन था? इसका उत्तर नहीं मिलता।

व्यक्तिवाद

श्लेगेल का मत है कि कोई लोकगाथा किसी समूह की कृति नहीं, उसकी रचना के पीछे किसी लोककवि का हाथ अवश्य रहता है उसकी आत्मा उस रचना में पग–पग पर मुखर होती है। जिस प्रकार किसी कलाकृति का निर्माता कोई न कोई कलाकार होता है, जैसे कविता, मूर्ति, चित्र, विशाल अट्टालिका। उसी प्रकार लोकगाथाओं की रचना के मूल में भी किसी एक व्यक्ति की उद्‌भावना रहती है। लोकगाथा की सृष्टि में अनेक लोककवियों का हाथ होता है परंतु वह किसी विशिष्ट कवि की ही रचना होती है। किसी लोकगाथा में उसके रचयिता की व्यक्तिगत रुचि, उसकी व्यक्तिगत अद्‌भुत गहराई आदि की छाया अवश्य पडती है। अत: लोकगाथाओं को किसी व्यक्ति की रचना न मानना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता।

आलोचना

यह सिद्धांत एक दृष्टि से पूर्ण रूपेण उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोकसाहित्य वस्तुत: लोकमानस की प्रतिकृति होता है और लोकमानस व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व को अपने में पचा लेता है। अत: लोकसाहित्य की कोई भी विधा लोकमानस की उपज ही कही जाती है, भले ही उसकी रचना किसी व्यक्ति ने की हो।

जातिवाद

स्टेंथल के द्वारा यह सिद्धांत आया और उसके द्वारा यह मान्यता स्थापित की गई कि कोई भी लोकगाथा किसी जाति विशेष के द्वारा ही निर्मित होती है। छोटे–मोटे द्विप या देश में अनेक ऐसी असभ्य तथा अर्ध सभ्य जातियाँ हैं जिनके सारे सदस्य एकत्रित होकर उत्सव मनाकर मनोरंजन करते हैं। इसी समय वे गीतगाथाओं की रचना करते हैं। किसी जाति के मेले या उत्सव पर एकत्रित जनसमूह की सामान्य कृति

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

अनुभूतियों की अभिव्यक्ति लोकगाथाओं में होती है। आदिम युग में एक जाति विशेष के इकट्ठे होने पर उनकी वाणी का सट्टिमलित रूप ही लोकगाथा कहा जाता है ऐसा स्टेंथल का विश्वास है। यह सिद्धांत ग्रिम महोदय के समुदायवाद से पर्याप्त मेल खाता है। इस सिद्धांत में समुदाय के स्थान पर जाति विशेष को माना गया है। इस सिद्धांत से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी जाति विशेष का चिंतन, उसकी रूढियाँ, परंपराएँ और अनुभूति की दिशाएँ समान होती हैं। इस समानता के कारण एक जाति ही लोकगाथा की सृष्टि करती है। भारत की लोकगाथाओं में ऐसी अनेक गाथाएँ देखने को मिलती हैं, जिनकी रचना किसी जाति विशेष के मेलों या पर्वों के अवसर पर की जाती हैं। नैनीताल और अल्मोडा जिले में नंदाष्टमी के अवसर पर नंदादेवी के पास लगने वाले मेले में या भोजपुरी के कजली गीतों के निर्माण में यही सिद्धांत कार्य कर रहा होता है। ब्रज प्रदेश में भी अहीरों जोगियों और भीख माँगने वाली अन्य जातियों के द्वारा रचित सरवन, भरथरी, गोपीचंद इत्यादि लोकगाथाएँ इसी सिद्धांत के अनुसार निर्मित प्रतीत होती हैं।

आलोचना

जातिवाद के सिद्धांत से यदि लोकगाथा की उत्पत्ति मानी जाए तो कहना न होगा कि जितनी भी लोकगाथाएँ हैं, वे किसी जाति विशेष की कृति मानी जाएगी। इस सिद्धांत में कुछ सत्य का अंश है फिरभी इसे पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

चारणवाद

बिशप पर्सी इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध गीत-संग्रहकर्ता थे उन्होंने इंग्लैंड के प्राचीन लोकगीतों का संकलन प्रकाशित किया है। अंग्रेजी लोकसाहित्य के इतिहास में बिशप पर्सी का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनका सिद्धांत है कि लोकगाथाओं की रचना चारण या भाटों द्वारा की गई होगी। प्राचीन काल में इंग्लैंड में ये चारण लोग ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना करते थे। इसके साथ ही ये गीतों की रचना भी करते जाते थे। ये चारण लोग इंग्लैंड के धनीमानी व्यक्तियों के दरबार में जीविकोपार्जन के लिए जाया करते थे और उन्हें स्वरचित कविता सुनाकर अपनी उदरपूर्ति किया करते थे। वहाँ उनका बड़ा सम्मान होता था। इंग्लैंड में कवि और चारण ऐसे दो वर्ग बन गए थे। चारण लोकगाथाओं की रचना करते थे।

बिशप पर्सी ने जो कहा है उसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अधिकांश प्राचीन वीरगाथशओं का निर्माण चारणों के द्वारा हुआ होगा। बिशप पर्सी के मत के समर्थक जोसिफरिट्सन, सर वाल्टर स्कॉट पॉल रहे हैं। यह संभव है कि विस्तृत गीतों की रचना साधु संतों की प्रतिभा का परिणाम हो परंतु छोटे-छोटे वर्णनात्मक गीतों की रचना तो चारणों द्वारा ही हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि चारण और भाट विरुदावलि और यशोगान या अनुनय करते हुए राजे महाराजों और सामंतों की प्रशंसा के लिए कुछ कविताओं का निर्माण करते रहे हैं। सुप्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' का मूलकवि जगनिक राजा परमार के दरबार में चारण था। 'पृथ्वराज रासो' का स्वयिता चंदवरदाई भी भाट था। राजस्थान में अनेक चारणों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की कीर्ति का गान किया है जो 'चारण काव्य' नाम से प्रसिद्ध है। आज भी गोरखपंथी साधु सारंगी बजाकर गीत बनाते और गाते फिरते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में निवास करने वाले चारण लोग, जो 'भाट' के नाम से प्रसिद्ध हैं, बारातों में जाकर तत्काल काव्य की रचना कर बारातियों का मनोरंजन करते हैं।

आलोचना

लोकगाथाओं की रचना के पीछे चारणों का ही हाथ रहा है यह कहना पूर्णांश में सत्य प्रतीत नहीं होता। क्योंकि समस्त लोकगाथाओं की रचना चारणों द्वारा ही हुई होगी, यह कहना कठिन है। इसलिए इस सिद्धांत को सर्वमान्य सिद्धांत के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता है।

व्यक्तिवाद

प्रो. चाइल्ड लोकसाहित्य के अधिकारी विद्वान थे। उनका कथन है कि लोकगाथाओं में उसके रचयिता

के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। व्यक्ति विशेष की कृति होने पर भी, भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा गाए जाने के कारण इन गाथाओं में परिवर्तन तथा परिवद्र्धन होता रहता है। अत: इनके मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट या तिरोहित हो जाता है और ये गाथाएँ जनसामान्य की संपत्ति बन जाती हैं। प्रो. चाइल्ड का मत ग्लेगेल के सिद्धांत के समान ही है। अंतर केवल इतना ही है कि प्रो. चाइल्ड लेखक के व्यक्तित्व को महत्त्व प्रदान नहीं करते। प्रो. स्टीन स्ट्रप ने भी इसी प्रकार का मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने भी लोकगाथाओं के निर्माण में किसी कवि के व्यक्तित्व का खंडन किया है। श्री. जी. एल. किटरेजन ने भी प्रो. चाइल्ड के मत का समर्थन किया है।

यह बडे आश्चर्य का विषय है कि भारतीय लोकसाहित्य के विद्वानों का ध्यान अभी तक लोकसाहित्य की उत्पत्ति की ओर नहीं गया। भारतीय विद्वानों ने इतना अवश्य कहा है कि महाकाव्यों का निर्माण लोकगाथाओं या लोकप्रचलित कथाओं के आधार पर हुआ है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने इस पर कुछ विचार अवश्य किया परंतु वे भी किसी एक निश्चित मत को देने में असमर्थ रहे।

समन्वयवाद

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का सिद्धांत है 'समन्वयवाद'। उपर्युक्त सिद्धांतों में से सत्य का अंश निकाल कर उपाध्याय ने अपना समन्वयवादी सिद्धांत बनाया है। उनके इस सिद्धांत में मौलिकता भले नहीं है। किंतु उन्होंने सभी मतों का समन्वय कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में उपर्युक्त प्रचलित सिद्धांत कारणभूत हैं। इन सबका सहयोग इन गाथाओं के निर्माण में हुआ है।

लोकगाथाओं की रचना में समुदाय का योग होता है। कुछ गीत ऐसे पाए जाते हैं जिनका प्रचार किसी जाति विशेष के लोगों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है। जैसे अहीर जाति के लोग 'बिरहा' गाते हैं और दुसाध (हरिजनों की एक जाति) लोग 'पचरा' गाते हैं। एक दल का व्यक्ति बिरहा गाकर प्रश्न करता दूसरा दल उसका उत्तर देता है। यही बात कजली गीतों के बारे में कही जा सकती है। झूमर तथा सोहर गीतों को स्त्रियों का समुदाय बनाता और गाता है।

ये स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि कुछ गाथाएँ ऐसी हैं जो व्यक्ति विशेष की रचनाएँ हैं। भोजपुरी चैता या घाँटों के गीतों में रचयिता बुलाकीदास का नाम बार बार आता है। खेती, कृषि तथा वर्षा संबंधी अनेक सूक्तियाँ घाघ के नाम से प्रसिद्ध हैं। बुँदेलखंड में 'ईसुरी' नामक लोककवि के फागी का जनता में बड़ा प्रचार है। ब्रजमंडल में मदारी और सनेहीराम के गीत बडे प्रेम से गाए जाते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि लोकगाथाओं के निर्माण में व्यक्ति विशेष का सहयोग अवश्य रहता है।

आदिम जातियों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है कि उस जाति के सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित होकर गाना गाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं। कोई व्यक्ति गीत की एक कडी बनाता है तो कोई दूसरी, तीसरा व्यक्ति तीसरी कडी जोडता है, चौथा अगली पंक्ति का निर्माण करता है। इस पद्धति से निर्मित गीतों में किसी व्यक्ति विशेष का हाथ नहीं बल्कि पूरी जाति का सहयोग होता है। बिहार के संथालों में तथा मध्यप्रदेश की गौंड नामक आदिम जातियों में आज भी यह प्रथा पाई जाती है।

चारणों द्वारा अनेक गाथाओं की रचना हुई है। जागनिक, चंदवरदाई की कृतियाँ इसका प्रमाण है। राजस्थान में तो चारणों द्वारा गाथा या काव्य रचने की परंपरा चल पड़ी थी। वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में गीतों की रचना करते थे। अधिकांश लोकगाथाओं के रचयिता अज्ञातनामा है। जिन लोककवियों के नाम का हमें पता है उनकी रचनाओं में कालांतर में इतना परिवर्तन और परिवद्र्धन हो गया है कि उन कृतियों में उनके व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव दिखाई देता है। उन कृतियों में लोकमानस का प्रधान स्वर प्रस्फुटित होता है।

इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त प्रत्येक विद्वान का यह सिद्धांत लोकगाथाओं के निर्माण के संबंध में समीचीन ठहर सकता है। पर सभी प्रकार की गाथाओं के विषय में लागू नहीं हो सकता। इस समस्या को हल करने के लिए उपाध्याय जी ने समन्वयवाद सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी सिद्धांतों का मिला-जुला रूप ही लोकगाथाओं की उत्पत्ति के पीछे कार्य करता है। अत: लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में डॉ. उपाध्याय का सिद्धांत समन्वयवाद ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

4:3:2 लोकगाथा के प्रमुख लक्षण तत्व – विशेषताएँ

लोकगाथा यह शब्द लोकसाहित्य में अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द के पर्याय रूप में गृहीत हुआ है। डब्ल्यू. पी. कर ने बैलेड के बारे में कहा है कि, ''बैलेड' वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोककंठ में विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूप-विधा को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती हैं, जिनका प्रचार जनसाधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है।''

लोकगाथा के प्रमुख लक्षण –

(1) कथात्मकता (2) गेयात्मकता (3) लोककंठ में निर्मित (4) समवेत स्वर में गान

(1) कथात्मकता

लोकगाथाओं में कथानक होता है। प्राय: सभी लोकगाथाओं का कथानक विशाल होता है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भले ही वह महाकाव्य की तुलना न कर सके परंतु आकार की दृष्टि से लोकगाथाएँ महाकाव्य से स्पद्‌र्धा कर सकती हैं। लोककथाएँ कथा चरित्रों के जीवन का सांगोपांग वर्णन करती है। संपूर्ण समाज के सामूहिक सहयोग के कारण प्रत्येक गायक लोकगाथा में अपनी कुछ न कुछ कडियाँ जोड़ता ही चला जाता है। अंग्रजी में छोटे और बड़े आकार की लोकगाथाएँ प्राप्त होती हैं परंतु भारतीय लोकगाथाओं का आकार अधिकांश रूप में बड़ा होता है। भोजपुरी आल्हा 620 पृष्ठों प्रकाशित हुआ है। ढोला मारू, विजयमल सोरठी, भरथरी, गोपीचंद आदि गाथाओं का आकार भी कम छोटा नहीं। अधिकतर कथानक श्रृंगार और वीर रस से संबंधित होता है। लोकगाथाओं में प्रेम का पुट गहरा रहता है लेकिन यह प्रेम जीवन संग्राम में अनेक संघर्षों का सामना करता हुआ अंत में सफल होता हुआ दिखाया गया है। लोकगाथा में युद्‌ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का वर्णन भी अधिक मात्रा में पाया जाता है। कथा सूत्र एक ही रहता है और उसमें अनेक पात्र एवं घटनाओं का संयोजन रहता है। इससे कथानक विस्तृत हो जाता है। पंजाबी लोकगाथा रसालू बहुत बड़ी है। इस प्रकार की गाथाओं में उत्साह, भय, जिज्ञासा, विवाद, करुणा जैसे भावों की भरमार होती है और मुख्यत: रौद्र, करुण, अद्‌भुत तथा भयानक जैसे रसों की अनुभूति होती है।

(2) गेयात्मकता

लोकगाथाओं का यह प्रमुख लक्षण है। जनसमुदाय समवेत स्वर में संगीत के साथ लोकगाथाओं को गाता है। संगीत और नृत्य लोकगाथा के अनिवार्य अंग हैं। लोकगाथा का महत्त्व भी इसी में है। लोकगाथा की लोकप्रियता का कारण भी गेयात्मकता ही है। लोकसंगीत के माध्यम से लोकगाथाएँ भावपूर्ण एवं सुमधुर बनती है। संगीत के द्‌वारा ही लोकगाथा को मस्ती से झूम-झूमकर लोग गाते हैं। अधिकांश लोकगाथाएँ द्रुतगति लय में गाई जाती है। गाथाओं का महत्त्व स्वरों के उतार-चढ़ाव पर अधिक निर्भर होता है।

युरोप में भी चारण ढोल या सितार बजा बजाकर इन्हें गाते हैं। पर्सी का कहना है कि अनेक सदियों तक चारणों का एक अलग संप्रदाय था जो सम्मानित तथा अमीर व्यक्तियों के यहाँ गीतों को गा गाकर अपना पेट भरता था। गूमर के मतानुसार कुछ गीत बड़े प्रेम से देर तक गाए जाते थे। भरथरी तथा गोपीचंद की गाथाओं में करुणा का भाव है। गायक स्वरों के माध्यम से उसे और भी करुणापूर्ण बना देता है। वर्षा ऋतु में आल्हा को गायक गले में लटके ढोल को भावावेश में पीट-पीट कर गाता है। जैसे जैसे गाने की गति तीव्र होती जाती है ढोल बजाने में भी उसी के अनुरूप तीव्रता आती जाती है। गायक संगीत के माध्यम से मानव में एक प्रकार का नया जीवन भर देता है। लोकगाथा विभिन्न लोककंठों से नि:सृत होने के कारण लय और संगीत में अंतर आ जाता है। गाने की धुन बदल जाने के साथ साथ टेक पद भी बदल जाते हैं।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

(३) लोककंठ में निर्मित लोकगाथा

लोककंठ में निर्मित - लोकगाथा जनमानस का प्रतिनिधित्व करती है। वह समाज की रचना है, समाज की संपत्ति होती है। ग्रिम सामूहिक रूप से जनता के द्‌वारा ही इसकी निर्मिति मानते हैं। विशेष समुदाय के लोगों में समष्टि रूप से हर्ष-विषाद की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। लोकगाथाओं का समाज के मुख में ही आवास होता है। ये मौखिक परंपरा के कारण परिवर्तित तथा परिवद्‌र्धित होती हैं। किसी विशेष समुदाय के व्यक्ति विशेष अवसरों पर सुख-दुःख, हर्ष-विषादादि भावनाओं का अनुभव करते हैं। किसी उत्सव के समय, मेले के अवसर पर अथवा धार्मिक पर्व पर साधारण जनता का समुदाय एकत्र होकर हर्ष और प्रसन्नता के कारण एक साथ मिलकर गाता है। लोकगाथा की निर्मिति लोक के द्‌वारा ही हुई है। भावावेग की परिस्थिति में लोक में से किसी एक ने गीत की किसी एक कड़ी को बनाकर गाया तो दूसरा दूसरी कड़ी जोड़ता है, तीसरा तीसरी कड़ी तो चौथा शीघ्र ही नई चौथी कड़ी बनाकर गाता है। आधुनिक सभ्यता से दूर रहने वाली भोली-भाली निरक्षर जनता अपनी सरल भाषा में सहज स्फूर्त रीति से अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना करती है। लोकगाथाओं से उनका मनबहलाव और परितुष्टि होती है। कहीं कहीं लोकगाथा को गाने वाले गवैयों में प्रतियोगिता भी होती है।

(4) समवेत स्वर में गान

लोकगाथा में दीर्घ कथानक होता है। पूरी कथा लयबद्‌ध रीति से कही जाती है। उसमें आगे गाने वाला और उसे उसी प्रकार के स्वरों एवं लय में पीछे साथ देने वाले होते हैं। आदिम जातियों में यह प्रथा थी कि उस जाति के लोग एक स्थान पर एकत्र होकर अपना मनोरंजन किया करते थे। कोई व्यक्ति गीत की एक कडी बनाता था, तो कोई दूसरा व्यक्ति दूसरी कड़ी, तीसरा व्यक्ति तीसरी कड़ी जोडता था और इस प्रकार पूरी गाथा तैयार हो जाती थी। गाथाओं में दल का महत्त्व होता है। टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक हो जाते है और श्रोताओं को आनंद प्रदान करते हैं। ये सामूहिक रूप से गाए जाते हैं गवैया जब गीत की एक कड़ी गाता है तब समुदाय के अन्य लोक मिलकर टेक पदों की आवृत्ति करते हैं। वर्तमान काल में समवेत स्वर में गाने की प्रवृत्ति इसी आदत को सूचित करती है।

इन लक्षणों के अलावा लोकगाथा की विशेषताएँ भी हैं -

- रचयिता का अज्ञात होना
- प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव
- संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य
- स्थानीयता का प्रचुर पुट
- मौखिक प्रवृत्ति
- उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव
- अलंकृत शैली की अविद्‌यमानता
- रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव
- लंबा कथानक
- टेक पदों की पुनरावृत्ति

4:3:3 लोकगाथाओं का वर्गीकरण

लोकगाथाएँ लोकसाहित्य का एक विशिष्ट प्रकार का काव्यरूप होती हैं, जो प्रबंध तत्व का निर्वाह करते हुए रोचकतापूर्ण वातावरण में लोककवियों का वाणी विलास कही जा सकती हैं। इसी आधार पर यह काव्य-विधा लोकगीतों से पृथक मानी जाती है। यही नहीं, लोकगाथा की भावभूमि भी लोकगीतों की भावभूमि से

भिन्न होती है। लोकगाथाओं और लोकगीतों में आकार विषयक अंतर होता है। लोकगीतों का आकार छोटा और लोकगाथा का बड़ा होता है।

लोककथाओं का विभाजन विषयवस्तु के आधार पर किया जा सकता है। जिस तत्व का प्राधान्य हो, उसी वर्ग में किसी लोकगाथा को वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी प्रकार आकार के आधार पर विभाजन हो सकता है। कुछ लघु आकार वाली लोकगाथाएँ भी होती हैं और कुछ अत्यंत बडे आकार वाली लोककथाओं मे तो कथांशको अत्यंत संक्षेप में रोचक ढंग से उपस्थित कर दिया जाता है, जबकि दूसरे प्रकार की लोककथाओं में आकार की दीर्घता के कारण यह होता है कि कथांश के अतिरिक्त सांगोपांग जीवन की अभिव्यक्ति के साथ वस्तु-वर्णनों का विस्तृत वर्णन किया जाता है। इसी प्रकार बीच-बीच में अनेक विस्तृत वस्तु-वर्णनों से कथांश को लंबा कर दिया जाता है।

वैसे तो लोकगाथाओं का वर्गीकरण विषयगत भेद के आधार पर उचित माना जा सकता है। आकार के आधार पर मोटी विभाजक-रेखा तो खींची जा सकती है, किंतु इस आधार पर किया गया वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

लोकगाथाओं के वर्गीकरण पर विशेष रूप से इंग्लैंड के विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है। पाश्चात्य विद्वानों में प्रो. कीटरेज और प्रो. गुमर का नाम उल्लेखनीय है।

प्रो. कीटरेज का वर्गीकरण -

प्रो. कीटरेज ने लोकगाथाओं को दो मुख्य भागों में विभक्त किया है -

(1) चारण गाथाएँ (2) परंपरागत गाथाएँ

(1) चारण गाथाएँ

ये गाथाएँ विशेष रूप से चारणों द्वारा गाई जाती हैं। मध्यकालीन यूरोप के राजदरबारों में चारण लोग गाथाएँ गाकर अपनी जीविका चलाते थे। चारणों द्वारा गाए जाने के कारण ही इन्हें 'चारण गाथाएँ' कहते हैं। प्रो. कीटरेज ने चारण लोकगाथाओं को परंपरागत गाथाओं से अलग माना है।

(2) परंपरागत गाथाएँ

परंपरागत गाथाओं से तात्पर्य उन गाथाओं से हैं जो आदिम काल से मौखिक परंपरा के रूप में चली आ रही हैं। इन गाथाओं का प्रभाव तथा प्रचार आज तक अक्षुण्ण है। इसका रचनाकार अज्ञात होता है और इनका काल भी संदिग्ध होता है।

प्रो. गूमर का वर्गीकरण - प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं को छह प्रधान भागों में विभक्त किया है।

(1) प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest Ballads)

(2) कौटुंबिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

(3) अलौकिक गाथाएँ (Coronach& Ballads of the supernatural)

(4) पौराणिक गाथाएँ (Legendary Ballads)

(5) सीमांत गाथाएँ (Border Ballads)

(6) आरण्यक गाथाएँ (Greenwood Ballads)

(1) प्राचीनतम गाथाएँ (Love Ballads)

इन गाथाओं की उत्पत्ति ग्रीस देश से मानी जाती है। ये गाथाएँ आदिम काल से चली आ रही है। ये आकाश, पृथ्वी, ऋतुएँ आदि प्रकृति के उपकरणों से संबंधित होती हैं। इन गाथाओं में समस्यामूलक गाथाओं

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

का प्रमुख स्थान है। ये गाथाएँ प्राचीनकाल में प्रश्नोत्तर शैली में सामूहिक रूप से गाई जाती थीं। इन गाथाओं का विषय प्रमुख रूप से शुद्ध दांपत्य प्रेम रहा है। स्कॉटलैंड की गाथाएँ, भारत की कुसुमादेवी, भगवती देवी इसी प्रकार की गाथाएँ हैं।

(2) कौटुंबिक गाथाएँ (Ballads of Kinship)

ये लोकगाथाएँ विशेष रूप से परिवार से संबंधित हैं। इनमें परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों तथा व्यवहारों का चित्रण किया गया है। भारतीय लोकगाथाओं में इसका अत्यंत मनोहारी चित्रण मिलता है। विशेष रूप से सास-बहू तथा ननद-भावज के संबंधों की मधुर झांकी देखने को मिलती हैं। सास-बहू के विषम संबंध का चित्रण 'पपइयों' नामक लोकगाथा में पाया जाता है। यह गाथा राजस्थानी है। गुजराती में ऐसी ही गाथा 'लो दीढी' के नाम से संग्रहित है। यूरोप में केवल भाई-बहन के प्रेम को ही इन गाथाओं में चित्रित किया गया है।

(3) अलौकिक गाथाएँ (Coronach& Ballads of the supernatural)

इस प्रकार की अलौकिक गाथाओं में मृत्युगीत, जादू के द्वारा शरीर का बदल जाना, अंधविश्वास पर आश्रित गीत तथा जादू के गीत आते हैं। यूरोप में मृत्युगीत अत्यंत मर्मस्पर्शी और हृदय-विदारक होते हैं। वैसे संसार के सभी देशों में मृत्युगीत की परंपरा उपलब्ध होती है। युरोप में परियों की प्रेम-कथाएँ अत्यधिक प्रचलित हैं। इन गाथाओं में रहस्य, रोमांच और अलौकिकता की भावना मिलती है।

(4) पौराणिक गाथाएँ (Legendary Ballads)

किसी प्राचीन पौराणिक कथा तथा किंवदंती के आधर पर जनता में प्रचलित लोकगाथा को पौराणिक गाथाएँ कहा जाता है। यूरोप में एक गीत में एक किसान का वर्णन है जो खेत बो रहा है, उसी रास्ते से मेरी जोसेफ और क्राइस्ट के जाने का भी वर्णन है। भोजपुरी में 'ढोलन' की गाथा भी ऐसी ही है। ढोलन को नल तथा दमयंती का पुत्र स्वीकार किया गया है। नल और दमयंती की कथा तो पुराणों में पाई जाती है।

(5) सीमांत गाथाएँ (Border Ballads)

इंग्लैंड तथा स्कॉटलैंड के सीमांत भागों में प्रचलित होने के कारण इन गाथाओं को उन्होंने सीमांत गाथाएँ कहा है। ये सीमांत पर होने वाले युद्धों से संबंधित हैं। इन गाथाओं में सीमांत पर होने वाले छोटे-छोटे युद्धों का ही वर्णन है। इनमें कुछ स्थानीय इतिहास से संबंधित गाथाएँ भी हैं। १८५७ के भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले वीर कुँवरसिंह की गाथा इसी के अंतर्गत आती है।

(6) आरण्यक गाथाएँ (Greenwood Ballads)

इंग्लैंड में 'रॉबिन हुड' नामक एक साहसी व्यक्ति हो गया। वह अमीरों, राहगीरों को लूटकर जो धन मिलता था उससे गरीबों की सहायता करता था। शासन के नियमों को वह अपने इस उद्देश्य के लिए भंग भी करता था अत: उसे लुटेरा कहा गया। रॉबिन हुड से संबंधित अनेक गाथाएँ इंग्लैंड में प्रचलित हैं। उसे राष्ट्रीय वीर तक स्वीकार किया गया।

भारत में इस प्रकार की गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। पश्चिमी उत्तरप्रदेश के जिलों में सुलताना डाकू का नाम बहुत प्रसिद्ध था। वह भी अमीरों को लूटकर गरीबों की सहायता करता था। यही उसकी लोकप्रियता का कारण भी था। अत: उसके संबंध में अनेक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। आज भी उसकी गाथाएँ बडे प्रेम से गाई और सुनी जाती हैं। रास तथा नौटंकियों में भी सुलताना से संबंधित लोकनाटक प्रस्तुत किए जाते हैं। यही स्थिति आगरा-ग्वालियर में डाकू मानसिंह की रही है। राजस्थान में जोरावरसिंह डाकू की बहादुरी के कई गीत प्रचलित

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

हैं। काठियावाड में डकैतों की वीरता और उदारता के गीत बडे प्रेम से गाए जाते हैं।

ये गाथाएँ प्राय: साहसिक व्यक्तियों (डकैतों) की वीरता तथा उदारता से संबंधित हैं।

पंजाब की लोकगाथाओं का संग्रह करने वाले अंग्रेज विद्वान सर आर. सी. टैम्पुल ने इन्हें लीजेण्ड्स कहकर पुकारा है और इन्हें छ: चक्रों में विभाजित किया है –

(1) रसालू चक्र (शौर्यपूर्ण, चमत्कार पूर्ण साहसिक लोकगाथाएँ)

(2) पांडव चक्र (पौराणिक गाथाएँ)

(3) गूगा चक्र (योद्धा और संतों की गाथाएँ)

(4) सिद्ध चक्र (पूरनमल या धन्ना भक्तों से संबद्ध गाथाएँ)

(5) सखी-सरवर चक्र (शृंगार प्रधान गाथाएँ)

(6) स्थानीय प्रवीर चक्र (पंजाब के स्थानीय साहसी पुरुषों के किस्से)

डॉ. कृष्णदेव उपाध्यायजी ने विषय की दृष्टि से लोकगाथाओं को तीन प्रधान वर्गों में विभाजित किया है

(1) प्रेम कथात्मक गाथाएँ (Love Ballads)

(2) वीर कथात्मक गाथाएँ (Heroic Ballads)

(3) रोमांच कथात्मक गाथाएँ (Supernatural Ballads)

(1) प्रेम कथात्मक गाथाएँ (Love Ballads)

जिन गाथाओं में प्रेमसंबंधी घटनाओं का उल्लेख प्रधना रूप से होता है, वे गाथाएँ प्रेम कथात्मक गाथाएँ कहलाती हैं। प्रेम मानव जीवन का प्राण है। अत: प्रेमगाथाओं में प्रेम संबंधी घटनाओं का उल्लेख होना स्वाभाविक है। यह प्रेम साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत विषम वातावरण में जन्म लेता और उसी में पलात है। फलस्वरूप इसमें संघर्ष भी पाया जाता है। भोजपुरी की 'कुसुमादेवी', 'भगवती देवी', 'लचिया' आदि गाथाएँ इसी प्रकार की हैं। 'बिहुला' की कथा तो प्रेम का प्रबंध काव्य है। इसमें बिदुला के अलौकिक लावण्य पर आकर्षित होकर बालालरवंदर का बिहुला के प्रेम से जीतने का प्रणयाख्यान है। 'भरथरी' में भरथरी के घर छोडकर चले जाने पर उसकी दु:खी पत्नी का विरह वर्णन बड़ा हृदयस्पर्शी और मार्मिक है। राजस्थान का 'ढोला-मारू' तो प्रेम का अजस्र स्रोत है। पंजाब का 'हीर-रांझा' किसे अपने प्रेम से रसमग्न नहीं करता। इसी प्रकार गुजराती गाथा शुद्ध एवं स्वाभाविक प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही प्रेम की धधकती आग में अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं।

अंग्रजी साहित्य में भी प्रेमगाथाओं की प्रचुरता पाई जाती है। जिससे वहाँ की सामाजिक परिस्थितियों का पता चलता है। 'निर्दयी भाई' (Cruel Brother) नामक गाथा में बहन भाई की आज्ञा के बिना अपने प्रेमी से विवाह कर लेती है। फलस्वरूप उसका भाई उसे जान से मार डालता है।

(2) वीर कथात्मक गाथाएँ (Heroic Ballads)

इन गाथाओं का लक्ष्य अलौकिक वीरता का वर्णन करना रहा है। इन गाथाओं में वीर पुरुष कहीं किसी आपदग्रस्त अबला का उद्धार करता है, कहीं अपने पराक्रम से शत्रुओं को पराजित कर न्याय का पक्ष प्रबल करता है, कहीं युवती के पाणिग्रहण के लिए भयंकर संग्राम करता है। वह मातृभूमि के उद्धार के लिए लड़ता है। इन वीर गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वोच्च है। आल्हा और ऊदल की अलौकिक वीरता, मातृभूमि की रक्षा के लिए उनका त्याग, पृथ्वी से भीषण युद्ध इस गाथा की प्रमुख घटनाएँ हैं। 'लोरिकायन' में लोरकी की जीवनकथा, विवाह और वीरता का मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है। भोजपुरी में 'कुँवर विजयी' गाथा प्रसिद्ध है। कुँवर के सामने शत्रुगण लडाई के मैदान में कभी टिक नहीं सकते थे। इसके साहसपूर्ण कार्यों की

गाथा उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में बडे चाव से गाई जाती है। गुजरात में राणकदेवी और सिद्‌धराज की वीरगाथा प्रसिद्‌ध है।

(3) रोमांच कथात्मक गाथाएँ (Supernatural Ballads)

ये गाथाएँ रहस्य, रोमांच तथा रोमान्स से भरी रहती हैं। इनमे जिन घटनाओं का वर्णन होता है वे अस्वाभाविक लगने वाली काल्पनिक घटनाएँ होती हैं। अलौकिक कथा होने के कारण इनमें कुछ अमानवीय पात्र भी होते हैं। इन गाथाओं में 'सोरठी' की गाथा बड़ी ही लोकप्रिय है। 'सोरठी' एक साधारण घर की कन्या थी। विवाह से पहले पैदा होने के कारण उसकी माँ ने उसे नदी में बहा दिया था। एक मल्लाह ने उसे बचाया और उसका पालन-पोषण किया। युवा होने पर सोरठी का विवाह हो गया। सोरठी की यह कथा अलौकिक और रोचक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपाध्याय जी का वर्गीकरण अत्यंत संकुचित है। प्रो. गूमर ने जो वर्गीकरण किया है वह व्यापक एवं विस्तृत है। इनके अलावा अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्‌वानों ने लोकगाथाओं के प्रकारों का उल्लेख किया है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत के सभी जनपदों में प्राप्त लोकगाथाओं को सामने रखकर उनके वर्गों का विभाजन किया जाए। तभी भारतीय लोकगाथाओं का सही विभाजन किया जा सकेगा। यदि हम ब्रज की लोकगाथाओं के वर्गीकरण पर विचार करें तो कह सकते हैं कि इस जनपद की 'महादेव कौ ब्याहुलौ', 'गोपीचंद', 'भरथरी, 'सरवरनीर', 'मोरधुज' आदि गाथाएँ धर्मप्रधान लोकगाथाएँ मानी जानी चाहिए। इसी प्रकार 'ढोला' लोकगाथा अद्‌भुत तत्व एवं वीरतापूर्ण साहसिक घटनाओं से परिपूर्ण वीरगाथाओं के अंतर्गत वर्गीकृत की जा सकती है। 'जाहरपीर' या 'गुरु गुग्गा' की लोकगाथा में सिद्‌धों-नाथों की धर्म परंपरा है और साथ ही शौर्य पूर्ण साहसिक तत्व भी देखा जा सकता है। अत: इसे धर्म-वीरता का सुंदर सामंजस्य करनेवाली लोकगाथाओं के पृथक्‌ वर्ग में रखना होगा। यही नहीं स्थानीय इतिवृत्त या शौर्यपूर्ण कथानकों पर आधारित 'राधाचरण' की लोकगाथा भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार अन्य जनपदों में प्राप्त लोकगाथाओं का भी वर्ग-विभाजन करना चाहिए।

4:3:4 आल्हा

इस लोकगाथा का रचयिता जगनिक कवि रहा है, जो महोबा के परर्दिदेव के आश्रित था। आल्हा बारहवीं शती की महत्त्वपूर्ण वीरगाथा मूलत: बुँदेलखंडी में लिखी गई थी। बनाफर शाखा के दो क्षत्रिय वीर आल्हा और ऊदल परमर्दिदेव अथवा परमाल की सेना के प्रमुख वीर थे। परमाल की स्त्री रानी मल्लना बहुत सुंदर और बहादुर थी। उसकी आज्ञा से उन्होंने अनेक लडाइयाँ लड़ीं। पृथ्वीराज चौहान ने जब चंदेल राज्य पर आक्रमण किया था तब आल्हा और ऊदल ने उनसे लोहा लिया था। तब वे वीरगति को प्राप्त हुए थे। आरंभ में इस गाथा का कलेवर बहुत छोटा था। कुछ बत्तीस या उससे भी कम लडाइयों के प्रसंग उसमें प्राप्त थे। कालांतर में ५२ लडाइयों के प्रसंग उसमें समाहित हो गए। इस रचना में अनेक परिवर्तन तथा परिवर्द्‌धन हुए फिर भी हृदयस्पर्शी भावधारा अजस्र गति से प्रवाहित होकर आजतक रसिकों के मन को आप्लावित करती आई है। आल्हा और ऊदल इन दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लडाइयों का वर्णन अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से हुआ है। ये दोनों वीर योद्‌धा लोकजीवन में अपनी वीरता के लिए इतने प्रिय है कि उनका व्यक्तित्व बहुत कुछ अतिमानवीय बन गया है।

साहित्य में इस गाथा को 'आल्हाखंड' कहा जाता है पर लोकजीवन में यह 'आल्हा' नाम से प्रचलित है। आल्हा की वीरता का वर्णन एक विशेष छंद में किया गया है। बाद में यह इतना लोकप्रिय हुआ कि अनेक लोककवियों ने वीर रस वर्णन के लिए इसको अपनाया। इस गाथा को विशेषकर वर्षाऋतु में गाया जाता है। ढोल बजाकर ताल स्वर से इसे गाते हैं। इसे गाने वालों को 'अल्हैत' कहते हैं। आज भी गायक इसे संगीत के साथ गाते हैं तब दुर्बलों में भी तलवार चलाने की स्फूर्ति आ जाती है। इसमें युद्‌धों के अत्यंत प्रभावशाली

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

वर्णनों की भरमार है। भावों के अनुसार भाषा चली है। इसकी वर्णनशक्ति और प्रभावोत्पादकता अद्भुत है। राजपूत कालीन संस्कृति का वर्णन भी इसमें मिलता है। इसमें जादू टोने का चमत्कार भी मिलता है।

आल्हा लोकगाथा होने के कारण इसके विविध रूपांतरण मिलते हैं। जैसे खडीबोली, कन्नौजी, बुँदेली, अवधी, भोजपुरी में आल्हाखंड मिलते हैं। इसके दो रूप पाए जाते हैं - एक साहित्यिक काव्य, दूसरा लोककाव्य। साहित्यिक काव्य के रचयिता जगनिक भाट माने जाते हैं। विद्वानों के अनुसार आल्हाखंड १३वीं शती में रचित एक कवि की रचना है जो आगे चलकर एक ओर लोकगायकों के द्वारा लोककाव्य की मौखिक परंपरा में विकसित होती रही और चारण-भाटों द्वारा साहित्य की लिखित परंपरा में भी रूपांतरित होती चली गई। इसमें नैनागढ की लडाई का वर्णन सबसे रोचक और लोकप्रिय रहा है। सेना के हरण की कथा भी प्रसिद्ध है। यों तो इसके नाम से केवल आल्हा के ही कथानक होने का आभास होता है परंतु इस गाथा का दूसरा आकर्षक वीर ऊदल है जो आल्हा का छोटा भाई रहा है। आल्हा का चरित्र महाभारत के युधिष्ठिर की तरह अधिक मर्यादावादी है तो ऊदल का चरित्र अर्जुन की तरह है। यह काव्य राज-प्रशस्तियों से भिन्न रहा है। इसकी अत्यधिक लोकपियता का कारण भी संभवत: यही है कि इसमें किसी राजा का गुणगान न होकर साधारण परिवार में उत्पन्न लोकवीरों का चरित्र, उनकी वीरता को प्रस्तुत किया गया है।

4:3:5 गोरा-बादल

राजा रत्नसेन के दरबारी गोरा और बादल थे। वे दोनों राजा की दो भुजाओं के समान थे। दोनों क्षात्र धर्म की उज्वल मूर्तियाँ थीं। ये दोनों स्वामी भक्त, वर, कार्यपटु स्पष्टभाषी थे। एक बार चितौड़ गढ़ में अल्लाउद्दीन का स्वागत हो रहा था। इन दूरदर्शी वीरों ने अल्लाउद्दीन को भलीभाँति जान लिया था। इसलिए उन्होंने राजा के कान में कहा - 'हमने वाणी से परीक्षा ली है और तुर्क को समझ लिया है। यह प्रकट में मेल और गुप्त रूप में सेना की बात सोचता है। तुर्कों से मेल मत कीजिए। अंतिम दाँव में ये अवश्य छल करते हैं। आज हमारा छत्र इस दुष्ट के हाथ में चला गया है। मूल के नष्ट होने पर संग के पत्ते भी नहीं रहते। पर राजा ने इन बातों को पसंद नहीं किया और शिष्टाचार की बातें करने लगे। जिससे गोरा-बादल क्रोध में आकर अपने घर चले आए। तबसे इन दोनों ने इधर कोई रुचि लेना बंद-सा कर दिया था। परंतु जब राजा को शाह बंदी बनाकर दिल्ली ले गया तब रानी पद्मावती बड़ी दु:खी हुई। वह स्वयं गोरा-बादल के द्वार पर पैदल पहुँची। जब रानी उनके यहाँ गई तो उन्होंने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ रानी का स्वागत किया और कहा, "सेवक के द्वार पर रानी कभी नहीं आया करती, ऐसा कष्ट क्यों किया? शीघ्र ही आज्ञा करें। हमारे प्राण आपके कार्य के लिए समर्पित हैं। रानी की बातें सुनकर दोनों क्षुब्ध हो जाते हैं।

दोनों ने राजा को छुडाने का संकल्प किया। दोनों बडे व्यवहार कुशल, निर्भीक, नीतिकुशल, दृढ प्रतिज्ञ, दूरदर्शी, देशभक्त थे। जिस तरह छल करके शाह राजा रत्नसेन को बंदी बना ले गया था उसी तरह 'शठ शाठ्यं समाचरेत्' की नीति अपनाकर ये राजा को मुक्त कर लाते हैं। दिल्ली में बादशाह के पहरेदारों एवं संरक्षकों को पर्याप्त रिश्वत देकर अपना काम बना लेते हैं। गोरा ने अपने भतीजे बादल के साथ राजा को चित्तौड भेज दिया और स्वयं अपने साथी सैनिकों के साथ असंख्य शाही सेना का सामना करता रहा। गोरा अकेला उस समय तक लड़ता रहता है जिस समय तक राजा रत्नसेन को लेकर बादल चित्तौड नहीं पहुँच पाता। गोरा युद्ध करते करते मारा जाता है तो उस प्रसंग की चारणों ने बड़ी प्रशंसा की है।

"भाट कहा धनि गोरा, तुभा राव न राव।
आँति समेटी बाँधि कै तुरक देत है पाव।।"

उधर बादल के भुजदंडों की रानी द्वारा पूजा की जाती और उसको गढ सौंपकर रत्नसेन प्राण छोड देता है। रानियाँ सती हो जाती हैं। सुलतान फिर चित्तौड पर धावा बोलता है, बादल उसके विरुद्ध लड़ता रहा। वह जीते जी शाह को चित्तौड नहीं घुसने देता और अंतत: चित्तौड के दरवाजे पर मारा जाता है।

यह दोनों की अपनी अपूर्व स्वामी भक्ति, अद्भुत पराक्रम, अनुपम विवेक, अलौकिक वीरता और असाधारण

दूरदर्शिता के लिए उत्तर भारत में प्रसिद्ध हैं। ये वीर, पराक्रमी, स्वाभिमानी, कार्यपटु और अबलाओं के रक्षक रहे हैं। इस लोकगाथा में इन दो क्षत्रिय, वीरों के आदर्श और लोकरक्षणकारी मनोवृत्ति का अत्यंत मनोमुग्धकारी चित्रण किया है। दूरदर्शी देशभक्त होने से वे राजा को बादशाह से संधि हो जाने पर सावधान करते हैं। बादल अपनी माँ के अनुरोध की परवाह नहीं करता, अपनी गौने में आई हुई नववधू के आग्रह को भी अनसुना कर देता है, उसका स्पर्श तक नहीं करता, गोरा और बादल राजा को बादशाह के कारागृह से मुक्त करने की अनुपम योजना बनाते हैं इन सभी बातों से उनके उज्वल चरित्र पर प्रकाश पडता है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने कहा है, ''अबलाओं की रक्षा से जो माधुर्य युरोप के मध्ययुग के नायकों की वीरता में दिखाई पडता था, उसकी झलक के साथ स्वामी भक्ति का अपूर्व गौरव इनकी वीरता में देखकर मन मुग्ध हो जाता है।''

इस प्रकार दोनों वीरों में वीरता के साथ साथ राजनीतिक चातुर्य और आत्मसम्मान का भाव भी था।

4:3:6 भरथरी

भरथरी की लोकगाथा सारंगी बजाकर भिक्षा की याचना करने वाले जोगियों द्वारा बडे प्रेम से गाई जाती है। इसे मालवा, भोजपुर, राजस्थान, राजपुताना, उत्तरप्रदेश, छत्तीसगढ में अलग अलग गाया जाता है। लोकगीतों में वर्णित भरथरी तथा राजा भर्तृहरि दोनों एक ही व्यक्ति हैं यह कहना कठिन है। पर दोनों के कथानकों में बहुत कुछ साट्टय है।

उज्जैन में राजा रत्नसेन राज्य करते थे जिनके लड़के का नाम चंद्रसेन था। इन्ही के पुत्र भरथरी जिनकी माता का नाम रूपदेई और पत्नी का नाम सामदेई था। विवाह के पश्चात जब भरथरी शयन कक्ष में गए तब उन्होंने अपनी खाट को टूटा पाया कारण पूछा तो पत्नी संतोषजनक उत्तर न दे सकी। संसार की झंझटों से ऊबकर भरथरी गुरु गोरखनाथ के चेला बन गए। परंतु संन्यास धर्म में दीक्षित होने से पूर्व अपनी स्त्री से भिक्षा माँग लाना आवश्यक था। वे भिक्षा की याचना करने के लिए अपने घर गए। सामदेई ने उसे पहचान लिया कि भिक्षुक नहीं, पति है। उसने पहले भिक्षा देना अस्वीकार कर दिया था परंतु भरथरी के द्वारा बहुत अनुनय विनय के पश्चात् उसकी प्रार्थना को सामदेई ने स्वीकार कर लिया। गोरखनाथ से दीक्षा ग्रहण कर भरथरी ने आसाम की यात्रा की। अंत तक वे भ्रमण करते हुए यति धर्म का पालन करते रहे।

भर्तृहरि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। किसी रानी के दुश्चरित्र होने के कारण उन्हें वैराग्य हो गया था। जालंधरनाथ के शिष्य गोपीचंद की माँ मैनावती भर्तृहरि की बहन थी। भर्तृहरि गोपीचंद के मामा थे।

भर्तृहरि की निम्न कथाएँ प्रचलित हैं -

वॉटसन के राजस्थानी गीत के अनुसार

एक समय चंद्रावती नगरी का राजा 'हुण परमार' आखेट करने वन में गया था। वहाँ उसने देखा कि एक पारधी स्त्री सर्पदंश से अपने मृत पति के लिए विलाप कर रही थी। वह रोते हुए चिता रचती है और शव को अग्नि देने से पूर्व अपने तन से मांस के टुकडे निकाल निकाल कर चिता पर रखती है। अंत में शव के साथ चिता पर लेट जाती है। राजा यह दृश्य देख कर भावना विभोर हो जाता है। सोचता है कि भारत वर्ष की स्त्रियाँ सचमुच पतिव्रता, त्याग और बलिदान की मूर्तियाँ हैं। तभी वह रानी पिंगला की परीक्षा लेने के लिए रानी को अपनी मृत्यु का समाचार भेजता है। परंतु रानी पिंगला को वरदान था कि जब तक उसका पति जीवित है तब तक आँगन का वृक्ष जलबिंदु टपकाता रहेगा। समाचार सुनते ही रानी वृक्ष के पास गई देखा तो वृक्ष से जलबिंदु टपक रहे हैं तात्पर्य राजा जीवित है। रानी क्रोधित हुई। उसे पता चल गया कि समाचार झूठा है परंतु एक क्षत्राणी अपने माता-पिता की बदनामी और प्रतिष्ठा के भय से चिता पर आरूढ होकर जल जाती है। परीक्षा का इतना भीषण परिणाम होगा इसकी राजा ने कल्पना न की थी। वह रानी पिंगला के लिए विलाप करता रहा तब गोरखनाथ ने पिंगला को राख से जीवित कर दिया। योगी का यह चमत्कार देखकर राजा को विरक्ति हो जाती है और वह गोरखनाथ का शिष्य बन जाता है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

इस गाथा में राजस्थान में प्रचलित जौहर से संबंधित आख्यानों को गोरखनाथ के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है।

नाथ पंथियों की कथा

पारधी स्त्री का सती होना उज्जैन के नाथों में एक कथा प्रचलित है कि पारधी की स्त्री को सती होते देखकर राजा अपनी रानी को सिंह द्वारा अपने को खाए जाने का समाचार भेजता है। रानी को वरदान था कि राजा के जीवित रहते चंपा का वृक्ष हरा रहेगा। रानी ने समाचार सुनकर देखा तो वृक्ष हरा था। खबर असत्य होते हुए भी वह चिता रचकर सती हो जाती है। यह खबर सुनकर राजा 'हाय पिंगला, हाय पिंगला' कहते हुए विलाप करने लगा। शंकर पार्वती वहाँ से जा रहे थे। उन्हें राजा पर दया आई। पार्वती मेंढकी बनकर शिवजी की जटा में जा बैठी। अब स्वयं शिवजी पार्वती के लिए चिंतित हुए। तभी पार्वती प्रकट हुई और उसने पिंगला को जीवित करने का शिवजी से अनुरोध किया। शिवजी ने राजा को एक क्षण के लिए आँखें बंद करने के लिए कहा। आँखें खुली तो राजा ने देखा कि हजार पिंगला सामने खडी हैं। असली पिंगला ढूंढ़ना कठिन था।

इसमें पारधी स्त्री की कथा गौण है। कथा के आरंभ में गोरख एवं उनके शिष्यों का नाम है। राजा को वैराग्य हो जाता और वह गोरखनाथ का शिष्य बन जाता है।

नाथपंथियों में भरथरी का गोरखनाथ से संबंध हर तरह उभरकर आया है। वैराग्य धारण करने से पहले भर्तृहरि के जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घटित होती हैं जिनसे राजा को उपरति हो जाती है। तनिक हेर फेर के साथ इस प्रकार की घटनाएँ हर जनपद में कही जाती हैं। मृगी के आकेट का वर्णन और भर्तृहरि की कथा भी इसी प्रकार की है।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में नाथपंथी जोगी जिन्हें 'साई' भी कहते हैं, सारंगी बजाकर इस गीत को गाते फिरते हैं। भरथरी की गाथा में गोपीचंदे समसामयिक होने का उल्लेख पाया जाता है परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों के समय में बड़ा ही अंतर है। भर्तृहरि संबंधी किंवदंतियों के विकास का समय १२वीं शती के बाद का प्रतीत होता है।

भरथरी में श्रृंगार तथा करुण रसों का पुट पाया जाता है। रानी से भिक्षा मांगने का दृश्य बड़ा मनमोहक है। कहीं कहीं शांत रस की छटा देखेन को मिलती है। मालवी में नाथ जोगियों के प्रभाव के कारण भरथरी के गीत को चिकारों पर सुने जाते हैं। सीमावर्ती भागों में भाषा का स्वरूप बदल जाता है। प्रांतों में थोडे हेर-फेर के साथ जोगी इसे गाते हैं।

4:4 शब्दार्थ – टिप्पणी

लोकसंगीत – यह सीधा-सादा संगीत होता है किंतु फिर भी लोकगीतों की गायकी में लय या धुन के सौंदर्य का निखार स्वर के अभ्यास पर ही निर्भर करता है। अनेक लोक गायक स्वर की सादगी बरतते हुए भी कभी अंतिम अंश से प्रारंभ करके कभी टेक के उत्तरार्थ को अंतरा की धुन के साथ जोडकर स्वर सौंदर्य आयोजित कर लेते हैं। 'अलापना' तत्व भी लोकसंगीत का एक प्रधान तत्व है। लोकसंगीत में लोकवाद्यों का भी महत्त्व होता है। वे लोकजीवन में सहज उपलब्ध वस्तुओं से निर्मित होते हैं।

4:5 सारांश

लोकगाथा मानव समाज का आदिम सामाजिक रूप है। लोकगाथा किसी अज्ञात रचयिता द्वारा रचित संपूर्ण समाज की ऐसी धरोहर है जिसमें गेयता के साथ-साथ कथात्मकता का भी निर्वाह होता है। लोकगाथाओं में दीर्घ कथानक होता है। लोकगाथाएँ एक पीढी से दूसरी पीढी, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक कंठ से दूसरे कंठ तक जाते-जाते मूलरूप में परिवर्तित होकर जीवित रही हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में

बड़ा मतभेद पाया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न संप्रदाय प्रचलित हैं। ग्रिम का सिद्धांत समुदायवाद, श्लेगेल का सिद्धांत व्यक्तिवाद, स्टेंथल का सिद्धांत जातिवाद, बिशप पर्सी का सिद्धांत चारणवाद, चाइल्ड का सिद्धांत व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद तो डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का सिद्धांत समन्वयवाद के नाम से प्रसिद्ध है। समुदाय के अनुसार लोक ही लोकगाथाओं का रचयिता होता है। लोकगाथा याने जनता के द्वारा, जनता के लिए जनता की कविता है। व्यक्तिवाद के अनुसार लोकगाथा किसी समूह की रचना नहीं बल्कि उसकी रचना के पीछे विशेष व्यक्ति (लोककवि) का हाथ होता है। जातिवाद के अनुसार कोई भी लोकगाथा किसी जाति विशेष द्वारा ही निर्मित होती है। चारणवाद के अनुसार लोकगाथाएँ चारणों द्वारा रची गई हैं। व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद के अनुसार लोकगाथाओं में रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। ये भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा गाए जाने के कारण इनमें परिवर्तन तथा परिवर्धन होता है जिससे मूल्य रचयिता का व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है। ये जनसामान्य की संपत्ति बन जाती है। भारतीय विद्वानों में रामनरेश त्रिपाठी ने इस पर विचार किया है।पर वे निश्चित मत नहीं दे पाए। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने सभी सिद्धांतों के समन्वय पर बल दिया है। सभी गाथाओं के संबंध में विचार करने पर समन्वयवाद ही समीचीन प्रतीत होता है।

लोकगाथा के प्रमुख लक्षण हैं - कथात्मकता, गेयात्मकता, लोककंठ में निर्मित।

लोकगाथाओं के वर्गीकरण पर पाश्चात्य विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है। प्रो. कीटरेज ने चारण गाथाएँ, परंपरागत गाथाएँ प्रो. गूमर ने प्रचीनतम गाथाएँ, कौटुंबिक गाथाएँ, अलौकिक भाषाएँ, पौराणिक गाथाएँ, सीमांत गाथाएँ, आरण्यक गाथाएँ. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने - प्रेम कथात्मक गाथाएँ, वीर कथात्मक गाथाएँ, रोमांच कथात्मक गाथाएँ ऐसे भेद किए हैं।

प्राचीनतम गाथाओं में शुद्ध दांपत्य प्रेम का वर्णन है। इनमें भारत की कुसुमादेव, भगवतीदेवी गाथाएँ आती हैं। कौटुंबिक गाथाओं में परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का तथा उनके व्यवहारों का चित्रण किया गया है। युरोप में केवल भाई-बहन के प्रेम को गाथाओं में चित्रित किया है। अलौकिक गाथाओं में जादू-टोना, मृत्युगीत, जादू के द्वारा शरीर का बदल जाना, अंधविश्वास पर आश्रित गीत आते हैं। इनमें रहस्य, रोमांच और अलौकिकता मिलती है। पौराणिक गाथाएँ किसी प्राचीन, पौराणिक तथा किंवदंती के आधार पर कही जाती हैं। भोजपुरी में 'ढोलन' की गाथा प्रचलित है। सीमांत गाथाओं में छोटे-छोटे युद्धों का वर्ण है। १८५७ के भारत स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले कुँवरसिंह की गाथा इसमें आती है। आरण्यक गाथाओं में सुलताना डाकू से संबंधित गाथाएँ, डाकू मानसिंह की गाथाएँ आती हैं जिन्हें साहसिक गाथाएँ भी कह सकते हैं।

प्रो. गूमर का वर्गीकरण व्यापक तथा विस्तृत है। फिर भी भारत के सभी जनपदों में प्राप्त लोकगाथाओं को सामने रखकर उन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाए तो उचित होगा। आल्हा-जगनिक कवि द्वारा रचित लोकगाथा है। इसमें बनाफर शाखा के दो क्षत्रिय आल्हा और ऊदल के साहस और वीरता का वर्णन किया है। वर्षा ऋतू में ढोल बजाकर ताल स्वर में इसे गाते हैं। आज भी इसे संगीत के साथ गाते हैं। युद्धों का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन है। लोकवीरों का चरित्र प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

'गोरा-बादल' गाथा में राजा रत्नसेन के दरबारी गोरा और बादल इन दो वीरों के चरित्र का वर्णन है। दोनों व्यवहार कुशल, निर्भीक, नीतिकुशल, दृढ प्रतिज्ञ, दूरदर्शी और देशभक्त थे। दोनों में वीरता के साथ-साथ राजनीतिक चातुर्य और आत्मसन्मान का भाव भी था।

भरथरी

भरथरी की लोकगाथा को भिक्षा की याचना करने वाले जोगी सारंगी बजाकर गाते हैं। अलग अलग प्रदेशों में भरथरी का गाथा में अंतर मिलता है। वॉटसन के राजस्थानी गीत के अनुसार भर्तृहरि की कथा, नाथपंथियों की कथा।

4:6 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

- ❊ लोकगाथा के उत्पत्ति विषयक सिद्धांतो पर प्रकाश डालिए।
- ❊ लोकगाथा के वर्गीकरण को समझाइए।
- ❊ लोकगाथा के प्रमुख लक्षण बताते हुए 'गोरा-बादल' का सामान्य परिचय दीजिए।
- ❊ लोकगाथा के उत्पत्ति विषयम सिद्धांतों में से चारणवाद को समजाते हुए 'आल्हा' का सामान्य परिचय दीजिए।

(ख) टिप्पणियाँ लिखिए -

- ❊ समुदायवाद और व्यक्तिवाद
- ❊ भरथरी और आल्हा
- ❊ लोकगाथाओं का वर्गीकरण
- ❊ जातिवाद और व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न -

- ❊ लोकगाथा के पर्यायी नाम लिखिए।
- ❊ बिशप पर्सी के लोकगाथा उत्पत्ति विषयक सिद्धांत का नाम लिखिए।
- ❊ लोकगाथा के दो लक्षण बताइए।
- ❊ प्रसिद्ध लोकगाथाओं के नाम लिखिए।

(घ) सही पर्याय लिखिए

- ❊ श्लेगेल के सिद्धांत का नाम क्या है?

  (अ) जातिवाद (ब) चारणवाद (क) समुदायवाद (ड) व्यक्तिवाद
- ❊ अंग्रेजी बैलोड शब्द का पर्यायी अर्थ क्या है?

  (अ) लोकनाट्य (ब) लोककथा (क) लोकगाथा (ड) प्रकीर्ण
- ❊ प्रो. गूमर ने लोकगाथाओं का वर्गीकरण कितने भागों में किया है?

  (अ) दो (ब) तीन (क) छह (ड) पाँच
- ❊ लोकगाथा के आल्हा के रचयिता कौन हैं?

  (अ) जगनिक (ब) सोमदेव (क) गुणाढ्य (ड) भरथरी

4.7 स्वाध्याय / क्षेत्रीय कार्य

- ❊ आपके क्षेत्र की प्रचलित लोकगाथाओं का संकलन करें।
- ❊ राजस्थान की लोकगाथाओं का परिचय प्राप्त करें।
- ❊ हिंदी की विभिन्न बोलियों में प्रचलित 'भरथरी' लोकगाथा का अध्ययन करें।
- ❊ हिंदी की प्रसिद्ध लोकगाथाओं में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों का संकलन करें।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

4.8 संदर्भ / अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें –

- ❊ भारतीय लोकसाहित्य – डॉ. श्याम परमार
- ❊ लोकसाहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
- ❊ लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग – डॉ. श्रीराम शर्मा
- ❊ हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) संपा. राहुल सांस्कृत्यायन और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

इकाई : 5

लोककथा

अनुक्रम

5.1 उद्‌देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 विषय - विवरण
  5.3.1 लोककथा के मूलस्रोत
  5.3.2 लोककथा का स्वरूप एवं वर्गीकरण
  5.3.3 लोककथा उत्पत्ति विषयक विविधवाद
  5.3.4 लोककथा और साहित्यिक कहानी में अंतर
  5.3.5 लोककथा में अभिप्राय
  5.3.6 लोककथा की विशेषताएँ
5.4 शब्दार्थ
5.5 सारांश
5.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
5.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य
5.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

5.1 उद्‌देश

* लोककथा के मूलस्रात एवं उत्पत्ति विषयक वादों की जानकारी प्राप्त करना।
* लोककथाओं के अध्ययन से लोकजीवन में उसकी व्यापकता को समझना।
* लोककथाओं में अभिप्रायों के महत्त्व को समझना।

5.2 प्रस्तावना

सत्य या काल्पनिक घटना - प्रसंगों का लेखा-जोखा की प्रस्तुति को 'कथन' कहते हैं। कथन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। कथन में कथानक या कथावस्तु का महत्त्व माना जाता है। कथन करने वाला या वक्ता किसी घटना - प्रसंग का वर्णन नमक-मिर्च लगाकर, अपनी कल्पना, भावना को जोड़ कर सरस शैली में बताता है तब श्रोता या पाठक का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होता है। उपस्थितों के सामने वक्ता कथा के द्‌वारा कल्पना की दुनिया तक ले जाता है। शूरता, वीरता, विजय, स्वप्न में संकटों से सामना, परि, पशु-पक्षी, अलौकिक शक्ति की मदद से सफलता प्राप्ति, कथा -विकास के लिए भनगढ़त पात्रों का निर्माण करके लोककथाओं को रंजक, आकर्षक बनाया जाता है। जीवनोपयोगी संदेश, आदर्शों की प्रस्तुति, मूल्यों के प्रति आस्था, लोकजीवन की व्यापकता, अभिप्रायों का महत्त्व इनसे मिलता है। कथा, आख्यान, परिकथा, अख्यायिका, रूपकथा, पुराणकथा आदि इसके कई प्रकार हैं। लोककथाओं का प्रचलन परंपरागत एवं मौखिक रहा है। छोटे बच्चों में इनके प्रति अधिक आकर्षण रहा है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

5.3 विषय विवरण

5.3.1 लोककथाओं के मूलस्रोत

लोककथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इनकी निर्मिति का केंद्र भारत है। वैदिक साहित्य, पुराण, उपनिषद आदि लोककथाओं क बृहत् कोश है। इत स्रोतों से अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं।

* वैदिक साहित्य - संहिता - वैदिक सूक्तों से कथाओं का निर्माण हुआ हैं। कहा गया है - ''वेदों की एक-एक ऋचाओं में संपूर्ण कथा उपलब्ध होती है।'' दो या तीन पात्रों के संवादों से कथा सूत्र मिल जाता है।

  उदा. गौतम कथा, आपाला - आत्रेयी कथा, शुन:शेप का आख्यान आदि।

* ब्राह्मण ग्रंथ - ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ में ४३ आख्यायिका दी गई हैं तो शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ कें उर्वशी-पुरुरवा प्रसिद्ध कथा है , दधीचि- वृत्तासुर की कथा इसी ग्रंथ में मिलती है।
* उपनिषद् ग्रंथ - इत काल में अनेक कथाएँ लौकिक धरातल पर आ गई थी। उदा. गार्गी याज्ञवल्क्य, यम-यमी, अग्नि और यक्ष आदि।
* पुराण ग्रंथ - इनमें भी विषयों की विविधता, रोचकता, कथानों का विकसित रूप मिलता है।

  उदा. सती अनूसुया, सावित्री, राजा भोज, हरिश्चंद्र आदि

* बृहत्कथा - पैशाची - प्राकृत भाषा में लिखा हुआ गुणाढ्य का यह अत्यंत प्राचीन एवं पारंपरिक कथा संग्रह है। इसी ग्रंथ ने संस्कृत नाटककार शूद्रक, भास, हर्ष आदिओं को अनेक कथानक दिए है।
* कथासरित्सागर - के रचनाकार है सोमदेव। इसमें शंकर- पार्वती से संबंधित अनेक कथाएँ है। पाश्चात्य विद्वान पेजर ने इसका अनुवाद 'ओशन ऑफ स्टोरिज' नाम से किया है। सोमदेव अर्थात् वररूचि ने अपने में ग्रंथ अपनी जन्म कथा के साथ साथ राजावत्सराज, नरवाहनदत्त, इंद्र, कुबेर आदि की कथाएँ दी है।
* वेताल पंचविंशतिका - इसमें २५ कथाएँ हैं। शव में बसा हुआ वेताल राजा विक्रमादित्य को हैरान करता है और रहस्य का उद्घाटन करता है जिससे राजा कल्याण होता है।
* सिंहासन द्वात्रिंशिका - इसे विक्रमांकचरित भी कहते हैं। राजा विक्रमादित्य के सिंहायन में लगी बत्तीस पुतलियों द्वारा कही हुई बत्तीस कथाओं का यह संग्रह है। राजा भोज इन कथाओं को सुनते है किंतु उस दैवी सिंहासन पर बैठ नहीं सकते।
* पंचतंत्र - राजकुमारों को नैतिक शिक्षा देने के लिए इस ग्रंथ का निर्माण किया गया है। मित्र-लाभ, संधि-विग्रह आदि इसके भेद है। पशु-पक्षी, नीति सदाचार, लोकव्यवहार विषयक कथा-सूत्र उपदेशात्मक, व्यंगप्रधान, विनोदप्रिय, कलात्मक एवं मनोरंजक रहे हैं।
* हितोपदेश - इस ग्रंथ पर पंचतंत्र का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ४३ कहानियाँ हैं जो उपदेश से परिपूर्ण है। भाषाशैली सरल, सीधी, बोधगम्य होने के कारण ही कथाएँ लोकप्रिय बनी हैं।

5.3.2 लोककथा का स्वरूप एवं वर्गीकरण

लोककथाओं का लोकसाहित्य में अत्याधिक महत्त्व रहा है। लगभग संपूर्ण विश्व में कथा साहित्य का आकर्षण रहा है क्योंकि संस्कृति और समाज की परंपराएँ इनमें सुरक्षित है। आशय भले ही पुराना हो, किंतु लोककथाएँ नित्य नई लगती है। शिक्षित - अशिक्षित, अमीर - गरीब, शहरी - ग्रामीण, बड़े - बुढ़े - बच्चे सभी इनका आस्वाद लेते हैं क्योंकि युगीन परिवर्तनों को स्वीकारती हुई इन कथाओं ने जनमानस में अपना स्थान बनाएँ रखा हैं।

कथाओं के विकास के साथ- साथ उनके उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता गया। व्यक्तिगत और प्रादेशिक

भावनाओं के साथ- साथ प्रेम, शृंगार, साहस, वीरता, वैमनस्य, उपदेश, आदर्श भी इन कथाओं में अभिव्यक्त हुए है और मनुष्य का ज्ञानवर्धन एवं मनोरंजन भी होता रहा है। रामायण, महाभारत में आख्यान कथाएँ, पंचतंत्र एवं हितोपदेश में नीति-उपदेशपरक कथाएँ मिलती है। कथासरित्सागर तो कथाओं का समृद्ध भंडार है।

लोककथाओं की सर्वव्यापकता और उपयोगिता को देखते हुए अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

* डॉ, विद्या चौहान 'लोकगीतों की सांस्कृतिक चेतना' में स्पष्ट किया है कि - 'लोकभाषा के माध्यम से सामान्य लोकजीवन में प्रचलित विश्वास आस्था और परंपरा पर आधारित कथाएँ लोककथा के अंतर्गत आती है।'
* हिंदी साहित्यकोश में लिखा है - ''लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आई मूलत: मौखिक रूप से प्रचलित कहानियाँ लोककथा कहलाती है।''
* डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार - ''लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमश: एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्राप्त होते रहे हैं।''

इन विविध परिभाषाओं से स्पष्ट है कि लोककथा लोकमानस से निर्माण होती है, मौखिक परंपरा से वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होती है। कथन और श्रवण के कारण उसके मूलरूप में भले ही परिवर्तन होतो हो किंतु उसकी चिर नूतनता के प्रति आज भी लोक में आकर्षण बना हुआ है।

कहानी और कथा दोनों भिन्न भिन्न है। कथा सुनाने का एक धार्मिक अभिप्राय होता है। निष्ठापूर्वक सुनाने वाला अर्थात् कथावाचक और सुनने वाला धार्मिक वर्ग अर्थात् भक्तगण दोनों का कथाओं में योगदान रहाता है। सुनाने वाले को और सुनने वालों को धार्मिक लाभ मिलता है। उत्सव, त्यौहार, पर्व आदि विशेष प्रसंगों में इनका महत्त्व रहा है।

* बौद्ध - जातककथा - पालिभाषा में गौतम बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ हैं। इनकी संख्या लगभग ५५० हैं।
* जैन चूर्णी - प्राकृत भाषा के कवि कौतुहल की लीलावती कथा, सेतुबंध, अपभ्रंश की 'पउमासिरी चरिउम्' भविसयत्त कहा, संदेशरासक प्रसिद्ध कथाएँ हैं।

जैनियों की नीति कथाएँ, न्याता धर्मकथा, उत्तराध्ययन सूत्र में संग्रहित हैं। तीर्थंकर, ऋषी आदिओं की कथाएँ, अति-उपासकों की दंतकथाएँ भी मिलती हैं।

लोककथाओं के इन प्रमुख स्रोतों से स्पष्ट है कि भारतीय कथासाहित्य की समृद्ध परंपरा रही है। बौद्ध और जैनियों ने कथाओं की परंपरा को जीवित रखा है। रामायण, महाभारत में नीति-आदर्शपरक कथाएँ हैं। इन सभी कथाओं में नवीनता मिलती है। चरित्रसंपन्न राजा, सौंदर्यवती राजकन्या, कलावंत, ब्राह्मण, व्यापारी आदि की अभिव्यक्ति इन कथाओं में हुई है।

5.3.2 लोककथाओं का वर्गीकरण

लोककथाओं में लोककथाओं के विभिन्न पक्षों का विवेचन होता है। लोकजीवन की विविधता के कारण धर्म, नीति, आस्था, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास के आधार पर लोककथाओं का वर्गीकरण करना असंभव है। अत: विषय और उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर विद्वानों ने लोककथाओं के वर्गीकरण का प्रयत्न किया है -

लोकसाहित्य के अध्यन कर्ता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने निम्न आधारों पर लोककथाओं का वर्गीकरण किया है -

* उपदेशात्मक कथाएँ
* मनोरंजनात्मक कथाएँ

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* ब्रतात्मक कथाएँ
* प्रेमात्मक कथाएँ
* वर्णनात्मक कथाएँ
* सामाजिक कथाएँ

पाश्चात्य विद्वान डॉ. स्टिथ ने सरलता और कठिनता के आधार पर निम्न भेद किये हैं -

* परि कथाएँ
* पशु-पक्षी की कथाएँ
* नीति कथाएँ
* पुराण कथाएँ
* परंपरागत कथाएँ

बंगाली भाषा के विद्वान डॉ. दिनेशचंद्र की दृष्टि से लोककथाओं के निम्न भेद है।

* रूप कथा
* हास्य कथा
* व्रत कथा
* गीति कथा

लोकसाहित्य के विद्वान डॉ. सत्येंद्र ने लोककथाओं के वर्गीकरण निम्न आधार मानकर विभाजन किया है -

* गाथाएँ - इसमें धर्मगाथा, लोकगाथा, पँवाड़ा, वीरगाथा
* पशु - पक्षी संबंधी या पंचतंत्रीय - शिक्षा देने वाली कथाएँ
* बुझावेल - राजा तथा अन्य व्यक्तिओं के पराक्रम की कथाएँ, नीति, धर्म अन्य समस्याओं का निराकरण करनेवाली कथाएँ
* विक्रम की कथाएँ - वीर नायक का चरित्रांकन करने वाली
* निरिक्षण संबंधी - चुटकुले के रूप में जिनसे धर्म का ज्ञान मिलता हैं।
* साधु-पीरों से संबंधी - संकटनिवारण, पुत्र, धर्म प्राप्ति संबंधित कथाएँ
* परिकथा - अबोध बच्चों पर संस्कार करने वाली कथाएँ
* कारणसंबंधी - व्यापार - यात्रादि संबंधी कारण व्यक्त किए जाते हैं।
* विविध विद्वानों के मतों से लोककथाओं का विषयानुसार वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता हैं

लोककथा-वर्गीकरण

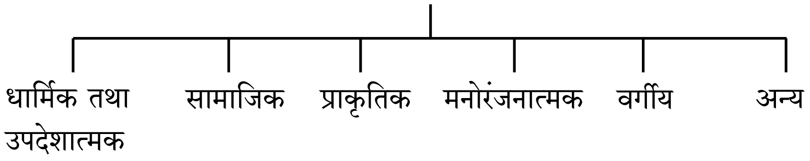

* धार्मिक तथा उपदेशात्मक कथाएँ - इसमें पौरोणिक चरित्रपरक कथाएँ उदा. राजा हरिचंद्र, नल-दमयंती, श्रवणकुमार, गोपीचंद आदि; तथा व्रत, नीति, अनुष्ठान भाग्य, शाप-वरदान आदि कथाएँ आती हैं - उदा.- सत्यनारायण की कथा, करवा चौथ की कथा, गनगौर आदि।
* सामाजिक कथाएँ - इसमें सामाजिक, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक रिश्तों से संबंधित समस्याओं की अभिव्यक्ति की कथाएँ आती हैं - उदा., राजा भोज की उदारता, राजा विक्रम की न्यायप्रियता, विमाता

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

का दुर्व्यवहार, पति-पत्नी, भाई- बहन के प्रेमादि का वर्णन किया हुआ मिलता है।

* प्राकृतिक कथाएँ - इसमें पशु -पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, तोता बंदर, सूर्य-चंद्र, आग-वर्षा आदि की कथाएँ का समावेश होता है।
* मनोरंनात्मक कथाएँ - इसमें जिज्ञासा, उत्कंठा बढाने वाली, राक्षस, जादू-टोना, अप्सरा, भूत-प्रेत, कहावतें, पहेली आदि से संबंधित कथाओं का समावेश होता है। दरी, दिया, डण्डा आदि के चमत्कारपूर्ण बातों का कथाओं में समावेश होता है।
* वर्गीय कथाएँ - राजा, सामंत, स्वामी, सेवक, मित्रा, किसान, मजदूर, प्रेमी, चोर, डाकू, विविध व्यवसाय से संबंधित कथाएँ वर्गीय कथाएँ होती हैं।
* अन्य कथाएँ - युवक युवतियों से संबंधित प्रेमपूर्ण, पवन, फलादि से गर्भधारणा आदि कथाएँ इसके अंतर्गत आती हैं। लैला-मजनू, ढोला मारू की कथाएँ।

उक्त वर्गीकरण एवं विवेचन से स्पष्ट है कि लोकजीवन जितना विस्तृत और व्यापक है लोककथाओं का क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत और व्यापक है। शायद ही जीवन का कोई पक्ष इन कथाओं से अछूता रहा हो।

रचना, निवेदन-कथन, भाषा आदि दृष्टि से लोककथाओं के और भी कई भेद बन सकते हैं।

सर्वसामान्य दृष्टि से लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नप्रकार का माना गया है -

लोककथाओं का वर्गीकरण

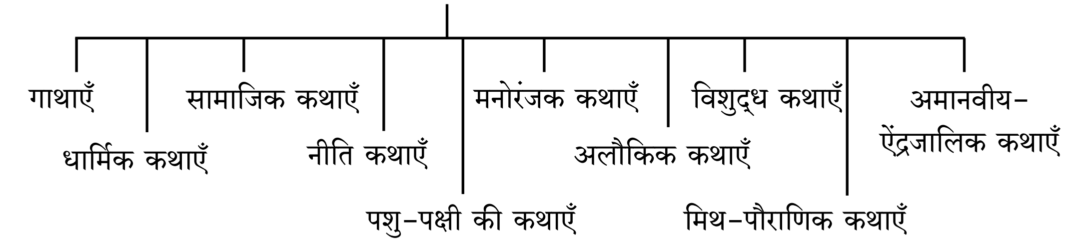

* गाथाएँ - जिनमें वीरता, साहस युद्‍ध, त्याग आदि का वर्णन होत हैं - जैसे - झाँसी की रानी, दधिचि, गोपिचंद, बादशाह अकबर, श्रवणकुमारादि।
* धार्मिक कथाएँ - व्रत, पूजा, अनुष्ठान, देवी देवताओं से संबंधित कथाएँ। जैसे - रक्षाबंधन करवाँ चौथ, लद्‍यमीपूजा, सोमवार की कथा आदि।
* सामाजिक कथाएँ - अकाल, विपन्नता, विवाह, धूर्तता से संबंधित कथाएँ। जैसे - चालाक बनिया, ठग की कथा, राजा विक्रम की कथाएँ। जैसे - जैसे को तैसा, सत्य की जीत आदि
* पशु-पक्षी की कथाएँ - इनका मानवीकरण करके मनोरंजन और शिक्षा देने के लिए उपयोग होता है। जैसे - चतुर कौवा, चालाक गीदड़, जाट और चिड़ियाँ, तोता बिल्ली, कबूतर आदि की कथाएँ।
* मनोरंजक कथाएँ - हास्य, व्यंग, उपहासात्मक कथाओं से मनोरंजन किया जाता है - उदा. बीरबल की कथाएँ, चोर आर शेखचिल्ली, पहेली लाल बुझक्कड आदि कथाएँ।
* अलौकिक कथाएँ - मनुष्य की अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति इन कथाओं से की जाती है। वास्तविक जीवन से इनका संबंध नहीं होता। उदा. भूत - प्रेत, परिकथाएँ
* विशुद्‍ध प्रेमकथाएँ - त्याग, समर्पण, प्रेम की अभिव्यक्ति इन कथाओं से होती है। उदा. - ढोला मारू, हीर - रांझा
* मिथ पौराणिक कथाएँ - इन कथाओं में धार्मिक विधानों का आधार लिया जाता है। इनमें देवी-देवतादि पात्र होते हैं, अत: इनके संदर्भ में अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया जाता है।
* अमानवीय - ऐंद्रजालिक कथाएँ - अमानवीय जीवों से संबंधित कथाएँ इसके अंतर्गत आती है। ये पात्र

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

कभी सहायक तो कभी खतरनाक बनते हैं। अंग्रेजी में इन्हें 'फेअरी' अर्थात् जादू था इंद्रजाल कहते हैं।

भारतीय कथाओं में फेअरी की कल्पना स्त्री रूप में की गई है। जे अलौकिक दिव्य पात्र है। अपने अलौकिक सौंदर्य से मनुष्य को यह वश करती है। उदा. मेनका और विश्वामित्र।

अदृश्य होना, रूप परिवर्तन करना, मनचाही चीजें पेश करना आसमान में विचरण करना आदि अलौकिक बातों से फेअरी या परि का संबंध होता है। अद्‌भुत रस प्रधान इन कथाओं से जीवन उपयुक्त उपदेश - शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाता है। कथासरित्सागर में इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

5.3.3 लोककथा उत्पत्ति विषयक विविध वाद

लोकमानस से मनोरंजक कथाओं के साथ-साथ धर्म, नीति, शिक्षा, उपदेश आदि उद्‌देश्यों से जुड़ी हुई कहानियों का निर्माण होता रहा। पंचतंत्र, हितोपदेश, बृहत्कथा, वैताल पंचविंशतिका आदि प्रसिद्‌ध ग्रंथ लोककथा के अंतर्गत आते हैं। स्रोतों के अतिरिक्त लोककथाओं की उत्पत्ति विषयक धारणाओं को अनेक विद्‌वानों ने व्यक्त किया है। अर्थात् लोककथा उत्पत्ति विषयक सिद्‌धान्तों पर भी विचार करना आवश्यक हैं।

प्रसारवाद

इस मत के समथकों का कहना है कि आग जिस तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है उसी तरह लोककथाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य, एक समाज से दूसरे समाज तक अर्थात् सर्व दूर पहुँचती हैं किंतु देश तथा जाति की कथाओं में थोड़ी भिन्नता मिलती हैं।

प्रकृतिरूप वाद

इस वाद के अनुसार प्रकृति में जितने रूप हैं, उनका काल्पनिक रूप बनाकर लोककथाओं में उनका सांकेतिक वर्णन किया जाता है। मनुष्य की आदिम अवस्था में तो प्रकृति एक रहस्य थी - बिजली का चमकना, चाँद की कलाओं का घटना - बढ़ना, पूनम के दिन समुंदर में तुफान आना आदि बातें चमत्कारपूर्ण थी। प्राकृतिक घटना - प्रसंगों को वह नित्य देखता था अत: उनका मानवीकरण करके कथाओं का निर्माण हुआ होगा। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य की जिज्ञासा और प्रकृति के अनुकरण से विविध कथाओं का सृजन हुआ है।

मनोविश्लेषण वाद

मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के चेतन एवं अवचेतन मन होते हैं। प्रत्येक क्षण में उसके मन में भावों का निर्माण होता रहात है। किंतु उन भावों को कभी कभी वह अभिव्यक्त नहीं करना। अत: उसके वे भाव अतृप्त या दमित रहते हैं। अवचेतन मन में यह भाव कई दिनों तक दबे रहते हैं। विविध प्रसंगों के द्‌वारा दमित भाव व्यक्त होते हैं। इसी प्रकार लोकमानस की यह   कथाएँ प्रसंग - समयानुसार व्यक्त की जाती हैं। किंतु सभी कथाओं के संदर्भ में यह बात ठिक नही हैं। इसलिए यह सिद्‌धांत सर्वमान्य नहीं बन सका है।

इच्छापूर्ती वाद

यह सिद्‌धान्त भावनाओं पर आधारित है। अतृप्त इच्छाओं की पूर्णता इस मत के द्‌वारा करना चाहता है। मनुष्य हर पल अपनी इच्छाओं की पूर्णता करना चाहता है। स्वप्न कल्पना के द्‌वारा पूर्णता की जा सकती है इसी लिए मनुष्य इच्छापूर्ती हेतु साहित्य या काव्य सृजन करता है। शायद इन्हीं इच्छाओं की पूर्णता के लिए ही लोककथाओं का निर्माण हुआ होगा। अंशत: इस मत का स्वीकार किया जा सकता है।

व्याख्यावाद

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

महत्त्वपूर्ण बातों को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या का प्रयोग किया जाता था। इससे घटना, प्रसंग, वस्तु आदि का महत्त्व समझाया जाता था। केवल शब्दों के द्वारा समझाने के कारण उसमें नीरसता बढ़ने लगी होगी। इसलिए लोककथा का आधार लिया गया। कथाओं के माध्यम से सामाजिक व्यवहार, रीति, रूढियाँ आदि की व्याख्या ही जाने लगी। बात स्पष्ट है कि किसी एक बात पूर्णता के लिए लोककथाओं का निर्माण होता रहा।

यथार्थवाद

कुछ समुदायों में यह प्रवृत्ति रहती है कि वे घटनाओं का वर्णन यथार्थ रूप में करते हैं। बार- बार वर्णन करने की यह प्रक्रिया एक व्यक्ति से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से आगे आगे बढ़ती है। देखी हुई घटना के वर्णन में कुछ नया भी जुड़ जाता है और नई - नई कथाओं का निर्माण होता है।

विकासवाद

मनुष्य समाज की आधारभूत मानसिकता के कारण विश्व के कोन - कोने में बसे हुए होने पर भी कुछ देशों की कथाओं में समानता मिलती है। शब्द रचना भले ही अलग अलग हो किंतु उनमें भाव साम्य जरूर होता है। उदा. राजकुमारी सिंड्रेला और सौतेली माँ की कथा - विभिन्न लोककथाएँ इस संदर्भ में उपलब्ध हैं जिनमें कथा संदर्भ विकसित हैं।

उक्त सभी सिद्धांत तथा मत अपने अपने दृष्टिकोण से सही है किंतु किसी एक को लोककथा उत्पत्ति का कारण नहीं माना जा सकता। कथा निर्माण में इनकी सहायता अमान्य नहीं की जा सकती।

5.3.4 लोककथा और साहित्यिक कहानी में अंतर

* दोनो में रचनागत अंतर होता है। लोककथाओं का आकार लघु होता है किंतु कुछ कथाओं का पाठ दीर्घ होता है। उदा. भागवत कथा, सत्यनारायण की कथा। साहित्यिक कहानी का स्वरूप प्रदीर्घ होता है।
* लोककथा भाग्य पर आधारित होती है। साहित्यिक कहानी का भाग्य पर भरोसा नहीं। जीवन का संघर्ष इसका प्रमुख आधार होता है। लोककथा में देवी देवता, व्रत, उपवास, तर्पण आदि का महत्त्व होता है।
* लोककथाओं का उद्देश्य मनोरंजन होता है, नीति, आचार, आदर्शो की शिक्षा देने का प्रयत्न भी किया जाता है। उदा. करवाँ चौथ के व्रत से जनम जनम वही पति मिलता है। भागवत कथा सुनने से अच्छा फल मिलता है। साहित्यिक कहानी से मनोरंजन के अतिरिक्त आदर्श, सामाजिक बोध, प्रबोधन, शिक्षा आदि उद्देश्यों का स्पष्ट किया जाता है।
* लोककथा में मुख्य और गौण कथानक होते हैं जो कथा को आकार देते हैं तो साहित्यिक कहानी में भाव, विचार, अनुभूतियों की प्रधानता के कारण गौण कथानक मुख्य कथा के विकास में सहाय्यक होते हैं।
* लोककथा में तोता, मैना, साँप, गाय, कबूतर, मनुष्यादि पात्र होते हैं किंतु कहानी के पात्र अधिकतर मनुष्य ही होते हैं।
* लोककथा में हर्ष, आनंद, प्रेम, उत्साह आदि प्रसंगों का वर्णन अधिक होता है तो कहानी में सामजिक विषमता, स्पर्धा, अत्याचार, अन्याय आदि का यथार्थ चित्रण किया जाता है।
* कथा लघु होते हुए भी अपने आप में पूर्ण होती है, सुनकर श्रोता संतुष्ट होता है तो कहानी पढ़कर मनुष्य विचार प्रवण बनता हैं।
* कथा सहज बोली में होती है किंतु कहानी में सैद्धांतिक बातों का तत्त्वों का भी ध्यान रखना पड़ता है।
* कथा में धर्म की प्रधानता होती है अत: धार्मिक नियमों के पालन न करने से बुरा फल मिलने का संकेत होता है। उदा. प्रसाद फेंक देने से मौत, विधवा होना आदि। कहानी में ऐसा कोई नियम नहीं होता।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

5.3.5 लोककथा में अभिप्राय

अंग्रेजी में अभिप्राय के लिए 'मोटिफ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिंदी में इसके लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है - कथानक रूढ़ि आधार, बीज, प्रयुक्ति, मूल, लक्षण, कथा-अभिप्राय, मूलभाव, मूलतंतू, कल्पना-बंध आदि। अभिप्राय कथा निर्माण का प्रमुख तत्त्व है जिससे कथानक का विकास होता है। अभिप्रायों की संख्या अनंत हैं।

* डॉ. सावित्री सरिन अभिप्राय के संदर्भ में लिखती है - ''अभिप्राय कथा का वह लघुत्तम तत्त्व है जो परंपरा में स्थिर रूप से रहने की शक्ति रखता है। अभिप्राय कथानक का निर्माण तत्त्व है। अतिमानवीय एवं अद्भुत तत्त्वों को ही अभिप्राय के रूप में स्वीकारा गया है।''
* डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार अभिप्राय यह तत्त्व साधारण न होकर असाधारण होना चाहिए जिसे सर्वसाधारण जनता स्मरण में रख सकें।
* स्टिथ थॉमसन लिखते हैं - जिस पारंपरिक कथा का स्वरूप संपूर्णत: स्वतंत्र होता है, उसका अर्थ समझने में अन्य किसी कथा की जरूरत नहीं होती, उसे 'कथा-विशेष' कहते हैं।

अभिप्राय या कथा-बंध में कर्ता, वस्तु और घटना का महत्त्व होता है। देवी-देवता, भूत-अप्सरा, राक्षस आदि इसके कर्ता होते हैं। दरी, चिराग, छड़ी, अंगूठी आदि जादू की वस्तुओं का कथाव्यापार में उपयोग किया जाता है। विभिन्न घटनाओं के आधार पर कल्पनाबंधों से ही कथानक पूर्ण किया जाता है।

लोककथा का परंपरागत, मनोवैज्ञानिक, नैतिक रूप इन अभिप्रायों से स्पष्ट होता है। मनुष्य ने अपनी कल्पना शक्ति के बल जिन कथा-बंधों का निर्माण किया है उनसे नई-नई लोककथाएँ अपने अद्भुत पात्रों के द्वारा श्रोताओं के आकर्षण का केंद्र बनी हैं।

लोककथाओं में मिलने वाले अभिप्रायों या कथा-बंधों की सुदीर्घ परंपरा दिखाई देती है। इनके अध्ययन के आरंभ का श्रेय अमरिका के विद्वान ब्लूम फिल्ड को जाता है और हिंदी साहित्य में आचार्य हजारीप्रसार द्विवेदी को।

लोककथाओं में मिलने वाले अभिप्राय निम्न है -

* परकाया प्रवेश
* कल्पथाली - जिस में भोजन कभी समाप्त नहीं होता।
* जादू से रूपपरिवर्तन - दरी, अंगूठी, छड़ी, टोपी आदि।
* भूत-प्रेतों में विश्वास
* पशु-पक्षियों से बातचित - मनुष्य की मदद
* भविष्यवाणी - ऋषि का शाप, सती का शाप आदि।
* परि का स्त्री रूप में आगमन - उससे विवाह का हठ करना।
* वानर, मेंढक, मछली, साँप का मानव रूप धारण करना।
* धोखा, चोरी, ठगाना - मूर्ख राजा, साहूकार आदि।
* छिपा खज़ाना, भाग्य और कर्म, लालसा के कारण बच्चे की बलि।
* विश्वासघात - सौतेली माँ का व्यवहार
* दुर्भाग्य में धीरज, भय की परीक्षा, पहेलियों का प्रयोग।
* चरित्र की अच्छी-बुरी बातें
* मूर्ख एवं शेखचिल्ली - भेद नीति, चातुर्यपूर्ण प्रसंग।
* दुष्ट औ विद्रोही - दुर्बल की जीत

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* देवी – देवताओं द्वारा मदद
* बादल, पवन, भ्रमर, कागा, वृक्ष, पौधे, फल आदि

इसके अतिरिक्त और भी अभिप्राय मिलते हैं। लोककथाओं में इनका प्रयोग किया जाता है। अभिप्रायों के प्रचलन को ही 'कथानक रूढ़ियाँ' कहा जाता है। उदा. कालिदास कृत मेघदूत में बादल, हरिऔध कृत प्रियप्रवास में पवन, जायसी कृत पद्मावत में भ्रमर, कागा सूरदासकृत भ्रमरगीत में भ्रमर आदि द्वारा किया गया संप्रेषण कथानक की रूढ़ि बन गए हैं।

* कथा –विशेषों के अभिप्राय या कल्पना बंध भिन्न भिन्न रूपों में मिलते हैं। उदा. कथा –विशेष है – 'मैं अपने नसीब पर जी रही हूँ। कौड़ी पर, तीन दानों पर भी संसार कर सकती हूँ।' इस पर कथानक अलग अलग मिलते हैं।
* जैसे – एक ब्राह्मण कन्या कौड़ी पर संसार करने की बात कहती है। क्रुद्ध होकर राजा उसका विवाह कर देते हैं – उसे सात समुंदर पार भेज देते हैं किंतु वह साधु वेश धारण करके पाताल मार्ग से वापस आती है – राजा की मर्जी संभालती है।
* – एक किसान की बेटी केवल तीन दानों पर अपना संसार चलाने का ठान लेती है – राजकुमार यह सुनकर उससे विवाह करता है। राजकुमार से वियोग होता है – लड़की पक्षियों की भाषा समझती है – पक्षी द्वारा मोतियों की भेंट – वह अमीर बनती है – अंत में राजकुमार से भेंट।
* – राजकन्या और राजा – राजकुमारी का कथन मैं अपनी ही भाग्य से जी रही हूँ – राजा का क्रोध – बेटी का एक दरिद्र के साथ विवाह – दिवाली के दिन सभी के घर में अंधेरा – दरिद्र के घर में दीपक जलता देखकर लद्‌यमी का आगमन – कन्या का अमीर बनना।

स्पष्ट है कि कथा–विशेषों में थोड़ा साम्य होते हुए भी इनके कथा–बंध या अभिप्राय भिन्न हैं। समय, स्थान विशेष के कारण कथाओं में भिन्नता मिलती है। सती अनूसुया की कथा अर्थात् सती परीक्षा, नल–दमयंती कथा आदि लोककथाओं में वेषांतर – परू परिवर्तन, अदृश्य रूप आदि अभिप्राय है।

5.3.6 लोककथा की विशेषताएँ

लोककथाओं के अध्ययन से विद्वानों ने उसकी विशेषताओं को प्रस्तुत किया है –

वक्ता और श्रोता का तारतम्य

लोककथा कथन करने वाला वक्ता या कथावाचक रातभर श्रोताओं के सामने कथा प्रस्तुत करता है। दिनभर काम करने वाले लोगों को रात में ही फुरसत का समय मिलता है। वे बड़ी लगन से कथा सुनते हैं बीच–बीच में वे स्वीकृति सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं, इससें श्रोताओं की रुचि का भी पता चलता है। श्रोताओं का 'हुंकार' ही कथावाचक के साथ तादात्म्य का सूचक है।

मनुष्य की मनोवृत्तियों का प्रदर्शन

लोककथाओं में मनुष्य के विविध भावों और मनोवृत्तियों का चित्रण मिलता है – माँ की ममता, वात्सल्य, विमाता की कठोरता, शत्रु से संघर्ष का उत्साह, पारिवारिक हर्ष – विषाद, संकटों से भय, पति–पत्नी, भाई–बहन का प्रेम आदि का लोककथाओं सहज– सरस वर्णन किया हुआ दिखाई देता है।

जिज्ञासा

उत्कंठा या जिज्ञासापूर्ण शैली के कारण श्रोता कथा सुनता है,अपनी जगह से वह उठता भी नहीं है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

समाज का यथार्थ चित्रण

लोककथाओं में गाँव का सेठ, साहूकार, नाई, किसान, नट आदि सभी का यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण मिलता है।

अश्लीलता का अभाव

अधिकतर कथाओं में प्रेम का चित्रण होत है मगर भद्दापन उनमें नहीं होता। कुंठा, घुटन आदि को इसमें स्थान नहीं दिया जाता।

चमत्कारपूर्ण घटनाओं का प्रयोग

भूत-प्रेत, देव- दानव, परियाँ उड़ने वाला घोड़ा, दरी, जादू की छड़ी, चिराग, अंगूठी आदि के द्वारा कथा को सुरस बनाया जाता हैं।

भाग्यवाद में विश्वास

लोक में विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को उसके भाग्य के अनुसार अच्छा या बुरा फल मिलता है।

पात्रों की विविधता

लोककथाओं में मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी, देवी-देवता, परियाँ, अप्सरा आदि के द्वारा उपदेशादि दिए जाते हैं।

स्थानीयता

एक कथा देश-विदेश में स्थानीयता के कारण ही भिन्न रूप धारण करती है। समाज के हर पहलु का इनपर प्रभाव पड़ता है, इसलिए इनका रूप नित्य नया मिलता है।

कथा का अंत सुखद होता है

आदर्श जीवन मूल्यों में आस्था अत: सुख, आनंद, संपन्नता, पुण्य की पाप पर, धर्म की अधर्म पर विजय दिखाकर लोककथाओं का अंत सुखद बनाया जाता है।

शिल्प संगठन

शास्त्रीय नियमों का इनमें अभाव होता है। कथावाचक अपनी खास प्रस्तुति से कथा में सजीवता निर्माण करता हैं।

स्वच्छंद प्रयोग

कथावाचक स्वच्छंद शैली - के प्रयोग से कथा के द्वारा जिज्ञासा, उत्कंठा बनाए रखता है। श्रोता कथा सुनकर मुग्ध हो जाते हैं। गद्य-पद्य लोकोक्तियों, मुहावरों - कहावतों के प्रयोग से कथा रंजक बनाई जाती है। उसकी स्वच्छंद कथन शैली से लोककथा रोचक, सहज, सरस बनती है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

5.4 शब्दार्थ

* वेताल - बेताल, प्रेत
* व्यवहृत - व्यवहार या प्रयोग में लाया हुआ
* बुझावेल - एक प्रकार की पहेली
* धारणा - विचार

5.5 सारांश

मानव जीवन में लोककथाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राचीन काल से ही लोककथाओं का प्रचलन रहा है। इनकी निर्मिति का प्रमुख केंद्र भारत रहा है। लोककथाओं की समृद्धि एवं संपन्नता का भंडार वेद, पुराण, उपनिषद आदि रहा है। वेदों की प्रत्येक ऋचा या सूत्र एक एक कथा उपलब्ध करते हैं। उदा. गौतम - कथा, आपाला-आत्रेयी कथा, उर्वशी-पुरुवा कथा, यम- यमी कथा, सावित्री कथा, हरिश्चंद्र कथा, राजा वत्सराज कथा, कुबेर कथा, विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियों की कथाएँ, बौद्धों की जातक कथाएँ, लीलावती कथा, संदेश- रासक, रामायण, महाभारत की कथाएँ, शिकारी - नीति- युद्ध - स्वप्न - जादुई आदि कथाएँ।

लोककथाओं का क्षेत्र विस्तीर्ण एवं व्यापक रहा है अत: उसका वर्गीकरण करते हुए विद्वानों ने उसके महत्त्व को बतलाया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ. स्टिथ, डॉ. दिनेशचंद्र, डॉ. सत्येंद्र आदि विद्वानों ने लोककथाओं का वर्गीकरण किया है। सर्वसामान्य दृष्टि से लोककथाओं का वर्गीकरण - गाथाएँ, धार्मिक कथाएँ, सामाजिक कथाएँ, नीति कथाएँ, पशु-पक्षी की कथाएँ, मनोरंजक कथाएँ, अलौकिक कथाएँ, विशुद्ध कथाएँ, मिथ एवं पौराणिक कथाएँ, अमानवीय -ऐंद्रजालिक कथाएँ - किया जा सकता है।

लोककथा उत्पत्ति विषयक विविध वादों में प्रसारवाद, प्रकृति रूप वाद, मनोविश्लेषणात्म वाद, इच्छापूर्ति वाद, व्याख्या वाद, यथार्थ वाद, विकास वाद आदि लोकभावना, लोकविश्वास, लोकमानस पर आधारित रहे हैं।

लोकप्रचलित, मौखिक, परंपरागत प्रवृत्ति के कारण लोककथा एवं साहित्यिक कहानी में निश्चित अंतर दिखाई देता है।

लोककथा निर्माण का प्रमुख तत्त्व है अभिप्राय। विभिन्न घटनाओं के आधार पर कल्पना बंधों से लोककथा का कथानक पूर्ण किया जाता। परकाया प्रवेश, वानर, मेंढक, मछली, साँप का मानवरूप धारण करना, संकटग्रस्त को देवी-देवताओं की मदद, शाप वाणी, दरी, अंगूठी, छड़ी आदि की जादू से रूपपरिवर्तन, पशु-पंछियों से बातचित, भूत-प्रेत में विश्वास, बादल, पवन, भ्रमर, कागा आदि अनेक अभिप्राय हैं। इनका लोककथाओं में प्रयोग किया जाता है। चमत्कारी, अद्‌भुत पात्रों, वस्तुओं के कारण लोककथाओं को रंजक, आकर्षणीय बनाया जाता है।

लोककथाओं के अध्ययन से - समाज का यथार्थ चित्रण पात्रों की विविधता चमत्कारपूर्ण घटनाओं का प्रयोग, सुखद अंत, स्वच्छंद भाषा प्रयोग, वक्ता - श्रोता का तादात्म्य, मनुष्य की मनोवृत्तियों का प्रदर्शन आदि विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

5.6 स्वयं अध्यन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* लोककथा के मूलस्रोतों का विवेचन कीजिए।
* लोककथा के उत्पत्ति विषयक विविध वादों का परिचय दीजिए।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* लोककथा में अभिप्राय का क्या महत्त्व है, सोदाहरण लिखिए।
* लोककथा की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

ख) लघूत्तरी प्रश्न

* लोककथाओं का वर्गीकरण
* लोककथा और साहित्यिक कहानी का अंतर
* लोककथाओं में मिलने वाले अभिप्राय
* लोककथा का स्वरूप

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* बृहत्कथा किस भाषा में लिखी गई रचना है?
* 'बौद्ध जातक कथा' में बुद्ध के जीवन संबंधित कितनी कथाएँ हैं?
* चार धार्मिक कथाओं के नाम लिखिए।
* लोककथा उत्पत्तिविषयक वादों मे नाम लिखिए।
* कालिदास कृत मेघदूत में किसको अभिप्राय का आधार बनाया है?

घ) सही पर्याय लिखिए

* लोककथाओं की निर्मिति का केंद्र कौनसा है?
  अ) भारत ब) युरोप क) फ्रान्स ड) रूस
* कथासरित्सागर को 'ओशन ऑफ स्टोरिज' किसने कहा है?
  अ) डॉ. स्टिथ ब) पेजर क) डॉ. सरिन ड) डॉ. सत्येंद्र
* 'बृहत्कथा' किसकी रचना है?
  अ) भास ब) शूद्रक क) कालिदास ड) गुणढ्य
* लोककथा में समाविष्ट अतिमानवीय एवं अद्‌भुत तत्त्वों को क्या कहते हैं?
  अ) कल्पकता ब) अभिप्राय क) सिद्‌धांत ड) रंजन

5.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* लोककथाओं के वर्गीकरण की तालिका तैयार कीजिए।
* कोई एक पौराणिक कथा अपने शब्दों में लिखिए।
* धार्मिक कथा कार्यक्रम में सहभागी बनें।
* अभिप्राय के स्वरूप को स्पष्ट करके कोई एक कथा लिखिए।

5.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* भारतीय साहित्य - डॉ. श्याम परमार
* लोकसाहित्य की भूमिक - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
* लोकसाहित्य : सिद्‌धांत और प्रयोग - डॉ. श्रीराम शर्मा

इकाई – 6

लोकनाट्य

अनुक्रम

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 विषय - विवरण
    6.3.1 भारत में लोकनाट्य की परंपरा
    6.3.2 लोकनाट्य की विशेषताएँ
    6.3.3 लोकनाट्य और साहित्यिक नाटक में अंतर
    6.3.4 लोकरंगमंच
    6.3.5 भारत के प्रमुख लोकनाट्य - रामलीला, रासलीला, भवाई, यक्षागन, तमाशा, जात्रा, माँच, नौटंकी, कुचिपुडी, ललित, ख्याल
6.4 शब्दार्थ
6.5 सारांश
6.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
6.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य
6.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

6.1 उद्देश

* भारत में लोकनाट्य की प्रचलित परंपरा को समझना।
* लोकनाट्य की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना।
* भारत में प्रचलित लोकनाट्यों का सामान्य परिचय प्राप्त करना।

6.2 प्रस्तावना

लोकजीवन में नाटक लोकरंजन का महत्त्वपूर्ण माध्यम माना जाता है। नृत्य, गीत, संगीत, अभिनय, खुला मंच, प्राकृतिक रंग-सज्जा के द्वारा स्थानीय पात्र नाट्यों के द्वारा उत्सव मेला, पर्वों के समय आनंद बढ़ाते है। मंदिर का चबूतरा, चौक, खुला मैदान लोकनाट्यों कें प्रदर्शन के लिए उपयोगी माना गया है। भागवत, पुराण ग्रंथ, रामायण, महाभारत, लोकजीवन की समस्याएँ आदि इन नाट्यों के कथानक के विषय होते हैं। प्रबोधन, उपदेश, आदर्श चरित्रों का निर्माण इनक उद्देश्य होते हैं।

भारत में विविध प्रदेश, भाषा, संस्कृति धर्म-संप्रदाय जाति आदि के कारण लोकनाट्यों के विविध भेद - रूप एवं स्वरूप मिलते हैं। उत्सव-त्यौहारों, मेले में लोग इकट्ठा होते हैं और लोकनाट्यों को देखकर हर्ष-आनंद प्राप्त करते हैं, नाट्यों का आस्वाद लेते हैं। इस इकाई में भारत में प्रचलित विविध नाट्यों के सामान्य परिचय द्वारा धर्म, संस्कृति, जीवन-मूल्य, इतिहास आदि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

6.3 विषय- विवरण

लोकरंजन की अकृत्रिम एवं रमणीय विधा है लोकनाट्य। लोक की स्वाभाविक जीवन शैली के रूप का

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

अभियनमूलक प्रतिबिंब लोकनाट्य हैं। लोकजीवन से इसका घनिष्ठ संबंध रहा है। इसलिए लोकचेतना का इसमें सहज रूप में प्रदर्शन होता है।

कथानक, पात्र, संवाद, वाद्‌ययंत्र, सूत्रधार, दर्शक आदि की भूमिका भिन्न होते हुए भी प्रस्तुतिकरण में इन सबकी सामुहिकता का ध्यान रखा जाता है। इसके प्रदर्शन के सामूहिक स्थानों का उपयोग किया जाता है। रंगमंच या प्रसाधनों की इसमें अधिक तैयारी करनी नहीं पड़ती। रात-रात भर चलने वाले इन नाटकों का जनता आस्वाद लेती है।

स्थानीय रंग, लोकरुचि, जीवन वैविध्य के कारण संपूर्ण भारत लोकनाट्यों के विविध रूप मिलते हैं। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, भांड, जश्न, माँच, तमाशा, ख्याल, भवाई, यक्षगान आदि नाट्यप्रकारों में मनोरंजन और उपदेश, नैतिक आचरण, आदर्श, अधिकतर पौराणिक कथानकों द्‌वारा किया जाता हैं। इस इकाई में इन्हीं बातों पर ध्यान दिया गया है।

6.3.1 भारत में लोकनाट्य परंपरा

लोकनाट्य स्वरूप

लोकनाट्य की परंपरा का अध्ययन के पूर्व लोकनाट्य के स्वरूप की जानकारी आवश्यक है। लोकनाट्य में लोक की जीवनशैली प्रतिबिंबित होती है।

* डॉ. श्याम परमार इसी संदर्भ में लिखते हैं - ''लोकनाट्य का संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है, जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है।''
* डॉ. महेंद्र भानावत 'लोकनाट्य परंपरा और प्रवृत्तियाँ' में लिखते हैं - ''लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्म क अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने अपने क्षेत्र के लोकमानस को उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोकनाट्य कहलाता है।'' जनसमान्य का आडंबरहीन साधन लोकनाट्य ही है और उत्सव, शुभ अवसरों पर इनका अभिनय किया जाता है।

इन नाटकों में समूह का योग रहता है, पौराणिक या लोकरुचि संपन्न कथानक, पात्र, वाद्‌ययंत्र, संवादों के द्‌वारा गाँव का चौपाल, मंदिरों के चबूतरे, सार्वजनिक स्थानों पर नाटक खेले जाते हैं। आम जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति इन नाटकों से की जाती है। भारतीय संस्कृति ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक आस्थाओं का यह समृद्‌ध भांडार है। स्थानीय रंग, लोकरुचि, लोकमानस की विविधता के कारण भारत में इन नाट्यप्रकारों में भी भिन्नता मिलती हैं, किंतु रंजन, नैतिक आदर्शों की सीख, आचरण में परिवर्तन करना इसका लक्ष्य रहा है। इसलिए आज भी लोकनाट्य के विविध प्रकार लोकप्रिय रहे हैं।

भारत में लोकनाट्य की परंपरा

लोकनाट्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। आदिम काल में मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति शारीरिक संकेतों के द्‌वारा करता था क्योंकि उसके पास भाषा नहीं थी। उसके इन संकेतों को ही अभिनय का आरंभ रूप माना जा सकता है। प्राकृतिक उन्मुक्त, स्वच्छंद वातावरण में मनुष्य बहुत समय व्यतीत करता था, अत: सृष्टि के विभिन्न साधनों का अनुकरण करते करते वह बहुत कुछ सीखने लगा था। प्राकृतिक परिवर्तन, पंछियों की चहल-पहल, प्राणियों की क्रीड़ाओं को देखकर वह मन ही मन खुश रहाता था। धीरे धीरे वह इनका अनुकरण करने लगा। अनुकरणात्मक क्रीड़ाओं से उसका रंजन भी होता था। शायद अनुकरण और संकेतों से ही अभिनय कला का निर्माण हुआ होगा। नाट्यकला में अभिनय को विशेष महत्त्व होता है।

अनेक विद्‌वानों ने यह मान्य किया है नाट्यकला अति प्राचीन है। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ मे नाटक के विविध अंगों का विवेचन- विश्लेषण किया है। नाटक की महत्त्वतापूर्ण स्वीकार करते हुए उसे

'पंचमवेद' की संज्ञा दी गई। भरतमुनि ने अपने इस ग्रंथ में नाटकों की नाट्यधर्मी और लोकधर्मी परंपराओं का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ के प्रमाण से इस बात की पुष्टि होती है कि भरतमुनि के पूर्व भी नाटकों का प्रचलन जनसाधारण में रहा होगा। स्पष्ट है कि नाटकों की परंपरा अति प्राचीन ही रही है।

नाटकों की उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत करते हुए कुछ उदाहरण भी दिए हैं -

* पाश्चात्य विद्वान डॉ. स्मेल कठपुतलियों के खेल से नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। भारत में प्रचलित यह खेल अत्यंत प्राचीन है। आरंभ में कठपुतलियों को कपास, वस्त्रादि से बनाया जाता था, उसमें कुशल व्यक्ति के करतब रहते थे। धीरे धीरे लकड़ी या काष्ठ के द्वारा कठपुतलिओं को बनाया जाने लगा। राजा-महाराजा, रानी-राजकुमारी, नौकर, सेठ-सेठानी, बच्चे आदि लकड़ी से बनाए जाने लगे, उनकी वेशभूषा, आभूषण, मुख, मुद्राएँ आदि का भी ध्यान रखा जाने लगा। इन कठपुतलियों को सूत्र बांधकर बड़ी कलात्मकता से खेल दिखाया जाने लगा था। इसी से नाटकों की निर्मिति हुई है।
* डॉ. मक्झमुलर और प्रो. लेव्ही नाटकों का स्रोत ऋग्वेद की ऋचाओं को मानते हैं। ऋग्वेद में ऐसे घटना प्रसंग हैं जिनमें सरस संक्षिप्त, प्रभावपूर्ण, रोचक संवाद मिलते हैं। 'संवाद' नाटक का एक तत्त्व है। ऋग्वेद के यम-यमी संवाद उत्कृष्ट हैं।
* डॉ. ग्रिझले मृतक-पूजा से नाट्य निर्मिति मानते हैं। पितरों के प्रति श्रद्धा- आस्था रखने के लिए पूजा की जाती है ताकि उनकी आत्मा को शांति, प्रसन्नता मिले। नाट्य अभिनय के द्वारा उनके चरित्र को उभारा जाता है। इससे ही नाटकों की निर्मिति हुई हैं।
* प्रो. किथ ने उत्सवों में किए जाने वाले नृत्य में नाटकों की खोज की है। लोकजीवन में संगीत और नृत्य का महत्त्व रहा है। उत्सव, त्यौहार, पर्व मनुष्य मनाते आ रहा है। यह उत्सव मनाने की परंपरा भी प्राचीन रही है। हर्ष, आनंद, उल्लास, उमंग आदि भावों की अभिव्यक्ति इन उत्सवों से होती हैं। आनंद आदि की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य अभिनय का उपयोग किया जाता है।

कुछ विद्वान महाभारत, रामायण ग्रंथों से नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। कथावाचन इन ग्रंथों के विविध प्रसंगों का वाचन करते हैं।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय मध्यकालीन आंदोलन को नाट्य निर्मिति का श्रेय देते हैं। किंतु मध्यकाल में नाट्य परंपरा खंडित हो गई थी जिसे भक्तिकालीन आंदोलन के द्वारा संजीवनी मिली। रामलीला, रासलीला इसकी ही निर्मिति है।

बहुरूपियाँ नकल करने वाली कुछ जातियाँ नाट्याभियन दिखाकर अपनी उपजीविका चलाते हैं। वे लोक नृत्य, अभिनय, गीतों के द्वारा लोगों का मनोरंजन करते हैं। लोकनाट्यों के विविध रूप भारत में मिलते हैं। ब्रज, वृंदावन, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र में स्वांग, रासलीला, रामलीला, घूमर, भवाई, कथकली, तमाशा आदि नाट्य रूपों से जनसामान्य का मनोरंजन किया जाता है।

सारांशत: यह स्पष्ट है कि लोकधर्मी नाट्य परंपरा वैदिक काल के पूर्व से प्रचलित थी और लोकजीवन में निरंतर विकसित होती रही। लोकजीवन से नाटकों का घनिष्ठ संबंध रहा है इसलिए लोक की विविध समस्याओं को नाटकों का विषय बनाया जाता रहा। ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विषयों के घटना प्रसंगों के द्वारा उपदेश, आदर्श चरित्रों को प्रस्तुत किया जाता है। लोकजीव का उत्साह नाटकों को खेलने-देखने से वृद्धिंगत होता है। मुक्त रंगमंच, पात्रों की चहल-पहल, सहज संवाद लोकनाट्य को आकर्षणीय बनाते हैं और लोगों का मनोरंजन करते हैं।

6.3.2 लोकनाट्य की विशेषताएँ

लोकनाट्य में विशिष्ट लोकसमूह की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्ति की अपेक्षा इसमें समूह का महत्त्व होता है। डॉ. सत्येंद्र ने इसकी विशेषताओं को व्यक्त करते हुए कहा है कि लोकनाट्य में निम्न बातों पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाता हैं - लोकरंगमंचीय नाट्य संगीतात्मक होता है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

- गेयता की प्रधानता
- गेयता में शास्त्रीय दृष्टिकोण का अभाव
- लोकवाद्यों का प्रयोग
- लोकरुचि के अनुसार वेशभूषा पर अधिक ध्यान

लोकसाहित्य के अध्ययन कर्ता डॉ. महेंद्र भानावत लोकनाट्य की निम्न विशेषताएँ मानते हैं –

- धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का आधार
- गीत – नृत्य की प्रधानता
- खुला रंगमंच
- लोक रूढ़ि और लोकविश्वास की प्रबलता
- नित्य नवीनता
- पूर्वाभ्यास, प्रवीणता एवं प्रशिक्षण का अभाव
- सामाजिक प्रतिभा की उपज
- इसका कोई शास्त्र नहीं
- प्रस्तुतीकरण की तन्मयता
- दशकों में भेदभाव का अभाव
- नकल में असल की प्रतिच्छाया
- अशोभनीयता, अश्लिलता होते हुए भी दर्शकों पर बुरा असर नहीं।
- प्रस्तुतिकरण में दर्शक-प्रदर्शक की समान रूप से अनुभूति की एकरसता।

लोकसाहित्य के अनेक विद्वानों ने लोकनाट्य की विशेषताओं के संदर्भ में अपने मत प्रदर्शित किए हैं। उन सभी का समाहार करते हुए निम्न विशेषताएँ मान्य की गई हैं –

समूह या समाज की अनुभूतियों की अभिव्यंजना

लोकनाट्य लोकरंगमंच पर किसी एक व्यक्ति की प्रतिभा की निर्मिति नहीं होती अर्थात् एक तरह से यह सामाजिक उपज होती है। नाटकों में तो समाज या समूह की भावनाओं को लोकमंच पर दिखाया जाता है।

कथानकों की विविधता

लोकनाट्यों के कथानक में अत्याधिक प्रामाणिकता होती है। धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक विषयों पर यह नाटक आधारित होते हैं। प्रहसनात्मक कथानकों के द्वारा ही सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया जाता है। कथानक में सुसंयोजन एवं नियोजन नहीं रहता। मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं से कथाविकास किया जाता है। यह नाटक रातभर खेले जाते हैं। कुछ छोटे छोटे प्रसंगों के द्वारा पाठक -दर्शक नाटक का आस्वाद लेते हैं।

पात्रों द्वारा सामूहिक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन

समाज में कुछ पात्र परंपरागत रूप में ही दिखाए जाते हैं अत: उनकी प्रवृत्तियों स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता। यह पात्र समूचे समूह का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। उदा. सौतेली माँ, कंजूष बनिया आदि पात्र एक टाईप से ही बार बार नाटकों में दिखाए जाते हैं।

अभिनय का महत्त्व

अभिनय नाटकों की आत्मा है। लोक नाट्यों में नृत्य के साथ अभिनय को महत्त्व दिया गया है। नाटक में जीवन की घटनाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिनय के द्वारा दिखाया जाता है।

दर्शक और पात्रों की एकरसता

कथानक के अनुसार लोकनाट्यों में पात्रों का चुनाव किया जाता है। चिरपरिचित कथानक चुना जाता है किंतु नाट्य प्रस्तुतिकरण का ढंग अनोख होता है। इसलिए पाठक- दर्शक और पात्रों का तादात्म्य स्थापित हो जाता है और पाठक भी पात्रों के भावों की अनुभूति में मगन हो जाता है। छोटे छोटे मनपसंद संवादों का अपनी ही पद्धति से व्यक्त करके पाठकों में रसानुभूति निर्माण की जाती है।

संगीत योजना

संगीत लोकनाट्यों का प्राणतत्त्व है। सारंगी, मृदंग, डफ, झांझ, नगाड़ा, मंजिरा, ढोलक आदि वाद्यों के द्वारा नाटकों में वातावरण की निर्मिति की जाती है। लोकरंगमंच की एक ओर वादकों की बैठक व्यवस्था होती है।

नाटक का सदस्यों प्रत्येक भूमिका की जानकारी

नाटक में ऐन मौके पर कोई पात्र न आ सका तो सूत्रधार या अन्य पात्र उसकी भूमिका निभाता है। सूत्रधार मंच की एक और बैठकर पात्रों की गलतियों को सुधारता हैं। नाटक को पूर्ण रूप से सफल करने का उसका प्रयत्न रहता है।

आडंबरहीन लोकरंगमंच

खुला मैदान, चौपाल, चबूतरा आदि स्थानों पर लोकनाट्य खेले जाते हैं। तत्काल ऐसे स्थानों पर मंच बनाया जाता है। दृश्य परिवर्तन के लिए कोई परदा नहीं होता। दशकों के सामने ही दृश्य परिवर्तन किए जाते हैं।आसपास की उपलब्ध वनस्पतियों, फूलों - पौधों से मंच की सजावट की जाती है। गॅस बत्ती या मशाल के प्रकाश में नाटक खेले जाते हैं। परदे के पीछे से संवादों को दोहोराया जाता हैं। काजल, हलदी, खडिया आदि से रंगसज्जा की जाती है और बड़ी सहजता से लोकनाट्यों का प्रयोग सफल बनाया जाता हैं।

6.3.3 लोकनाट्य और साहित्यिक नाटक में अंतर

समाज प्रबोधन का सशक्त माध्यम नाटक माना जाता है। दृश्य और श्राव्य विधा होने के कारण नाटकों का प्रभाव शिक्षित-अशिक्षित दोनों पर होता है। इसलिए यह विधा सर्वत्र लोकप्रिय बन गई है। नए कथ्य की मांग पे अनुसार नौटंकी, तमाशा, भवई, यक्षगान आदि परंपरागत शैलियों के माध्यम से आज भी नए नए रंगमंच प्रकार आहर उपकरणों द्वारा नाटकों को नया अर्थ रूप देने का प्रयास किया जा रहा है। नाटक देखने वाला वर्ग सीमित होता है। संगीत, नृत्य, अलग अलग मुखौटे स्वाभाविक रूप सज्जा के द्वारा लोकनाट्य आज भी भारत के विविध क्षेत्रों में उत्सव, त्यौहार, पर्व के समय खेले जाते हैं। लोक समूह का आनंद, हर्ष, प्रसन्नता इन अवसरों पर उभर कर आते हैं। लोकप्रचलित नाटकों द्वारा समाजप्रबोधन किया जाता है। साहित्यिक नाटकों के विषय प्रबोधन के अतिरिक्त समस्या अर्थात् सर्वसामान्य, समसामायिक सामाजिक जीवन की समस्याओं का ईमानदारी के साथ चित्रण, राजनीतिक उलझने आदि का उद्घाटन करते हैं। अत: इन दोनों नाट्य प्रकारों में निम्न प्रकार का अंतर दिखाई देता है -

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

लोकनाटक और साहित्यिक नाटक में अंतर

लोकनाटक	साहित्यिक नाटक
इसका रंगमंच खुला मैदान, चौराहा	घुमता, फिरता, बंद रंगमंच होता है, कभी कभी खुला मैदान
संवाद पद्यात्मक होते हैं।	संवाद गद्यात्मक, पद्यात्मक, मिश्र
संगीत वाद्यों का प्रयोग - झांझ, डफ, ढोलकादि	संगीत वाद्यों का प्रयोग नए नए वाद्यों का प्रयोग किया जात है
नृत्य- अभिनय को महत्त्व	नृत्य, संवाद, अभिनय का महत्त्व
लोकमनोरंजन - उद्देश्य	मनोरंजन के साथ उपदेश, शिक्षा
समूह की अभिव्यंजना	सामाजिक एवं वैयक्तिक अभिव्यक्ति
गेयता प्रधान	गद्यात्मकता
सामूहिक प्रतिभा की उपज	वैयक्तिक प्रतिभा की उपज
कथानक - लोकप्रथा, संस्कृति, धर्म, इतिहास पुराण से संबंधित	इसके अतिरिक्त वर्तमान जीवन की विविध सम स्याओं, विसंगतियों का कथ्य में उपयोग
शैली - सहज, स्वाभाविक, रस, छंद, अलंकारों का प्रयोग	शैली में विविधता, रोचक, सांकेतिक, आलंकारिक भाषा प्रयोग
विसंगतियों का उपहास, हास्यद्वारा प्रदर्शन	विसंगतियों, विकृतियों पर करारा व्यंग्य प्रहार
पात्र - एक पात्र अनेक भूमिकाएँ कर सकता है, पुरुष पात्रों की अधिकता, पुरुष ही स्त्री वेश धारण करके मुख्य पात्र सूत्रधार होता है।	स्त्री-पुरुष दोनों का सहभाग, अनेक पात्र होते हैं, कभी कभी एक पात्र अनेक भूमिका करता है।
शास्त्रीय नियमों से पूर्णत: मुक्त	दिग्दर्शक, पात्रों को नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करना पड़ता है
रंगमंच - सीधी सादी वेशभूषा, नेपथ्य	प्रभाव के लिए वैविध्यपूर्ण
टाईपवाले पात्र - सौतेली माँ, साहूकारादि	सभी प्रकार के पात्रों का समावेश
नाटकों के तत्त्वों का भी बंधन नहीं	नाटक के तत्त्वों की ओर ध्यान रहता है।
लोकभाषा - बोलियों का प्रयोग, सभी पात्रों की भाषा में भेद नहीं होता।	उच्च वर्ग, शिक्षित पात्रों के लिए साहित्यिक भाषा, निम्न वर्गीय, अशिक्षित पात्रों के लिए लोकभाषा का प्रयोग।
नाट्य प्रस्तुति में संवाद गलत हुए हो या भूल गए तो मनगढ़त संवादों का प्रयोग किया जाता हैं।	नेपथ्य के पीछे संवाद-वाचक प्रत्येक पात्र के संवाद पढ़ते है, उन्हें सुनकर प्रत्येक पात्र उन्हें दोहराता है।
तमाशा, रासलीला, रामलीला, यक्षगान आदि लोकनिर्मित नाट्यकृतियाँ हैं।	विविध विषयों के आधार पर नाट्य निर्मिति करने वाले लेखकों की कृतियों की प्रस्तुति की जाती है।
समय -लोकनाट्यों का आरंभ देर से होता है वे रात-भर चलते हैं।	इन नाटकों का समय निर्धारित होता है। केवल दो या तीन घण्टे।
विनामूल्य होते हैं अत: प्रेक्षक बीच में से निकल जा सकते हैं।	टिकट - अर्थात् पैसे देकर नाटक देखते हैं।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

6.3.4 लोकरंगमंच

नाटक के कारण ही रंगमंच का निर्माण किया जाता है। रंगमंच वह स्थल विशेष है जहाँ नाटक अभिनित किया जाता है। दर्शक आनंदातिरेक से विहवल हो उठते हैं। वस्तुत: दृश्य नाटक जो दर्शकों को रसानुभूति कराते हैं। नाटक की सफलता रंगमंच पर निर्भर होती है। लोकनाटकों के लिए भी रंगमंच की आवश्यकता होती है, इनका मंच खुला होता है। साहित्यिक नाटकों के रंगमंच का बाह्य परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहा किंतु लोकनाट्यों ने अपने स्वाभाविक रूप को संभाले रखा है। उत्सव, मेला, पर्व आदि अवसरों पर लोकरंजन हेतु लोकनाट्य खेले जाते हैं। लोकरंगमंच के लिए निम्न महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान दिया जात है -

* **लोकरंगमंच की तैयारी –** चबूतरा, चौपाल, खुला मैदान, मंदिर का प्रांगण लोकमंच के लिए स्थल के रूप में चुना जाता है। कभी दर्शक चारों ओर बैठ सकते हैं तो कभी तीन ओर। इसे तैयार करने में अधिक समय नहीं लगता।

* **रंगमंच की स्थापना –** स्थापना के पूर्व अनुष्ठान विधि आवश्यक मानी जाती है। लोकविश्वास है कि नाटक बिना संकटों से संपन्न हो।

* **रंगमंच के क्षेत्र का विस्तार –** लोकनाट्य के अनुसार निर्धारित स्थान पर रंगमंच का विस्तार तय किया जाता है। रासलीला, रामलीला, नौटंकी, तमाशा जैसे नाट्य प्रकारों में अधिक भीड़ होती है अत: इसके मंचन के लिए खुला मैदान ही चुना जाता है। दर्शकों की संख्या अगर कम हैं तो चौपाल, मंदिरा चबूतरा चुनकर रंगमंच की व्यवस्था की जाती है।

* **साजसज्जा –** रंगमंच खुला होने के कारण साजसज्जा की आवश्यकता नहीं होती। रंगीन कपड़ो से थोड़ी सजावट की जाती है। उपलब्ध पौधे, फूलों पत्तों से पताकाएँ बनाकर वातावरण की निर्मिति की जाती है।

* **नेपथ्य का स्वरूप –** रंगमंच खुला होने के कारण लोकनाट्य में नेपथ्य की कल्पना करना निरर्थक है। कुछ विशिष्ट नाटकों के प्रयोग कपडा बीच में लगाकर पर्दा बनाया जाता है। दृश्य परिवर्तन इन नाटकों में नहीं होता, वेशभूषा करके सभी पात्र रंगमंच पर एक ओर बैठते हैं और सामने प्रेक्षक होते हैं। अपनी भूमिका करने के बाद पात्र अपने स्थान पर आकर बैठ जाते हैं या अन्यत्र जाते-आते रहते हैं।

* **वाद्‌यों का प्रयोग –** इन नाटकों में संगीत और नृत्य अनिवार्य होता हैं। रंगमंच पर ही उनके बैठने की व्यवस्था होती हैं। सारंगी, डफ, झांझ, ढोलकल मृदंग आदि वाद्‌यों का प्रयोग किया जाता हैं। वाद्‌यों के कारण भी वातावरण में उत्साह की निर्मिति की जाती है।

* **प्रकाश व्यवस्था –** दर्शकों की संख्या देखकर रंगमंच पर प्रकाश व्यवस्था की जाती है। आरंभ में मशाले जलाकर प्रकाश व्यवस्था की जाती थी। धीरे धीरे गॅसबत्ती और बिजली का उपयोग होने लगा है।

* **अभिनय –** भरतमुनि के अनुसार अभिनय के अनेक प्रकार हैं। किंतु लोकनाट्यों में वाचिक और आंगिक अभिनय किया जाता है, अधिक तर नाटकों में नृत्य-गीत के साथ अभिनय किया जाता है।

* **वेशभूषा –** साजसज्जा के लिए रंगमंच पर कोई स्वतंत्र व्यवस्था नहीं होती। वहाँ न कोई रंगकर्मी होता है, पात्र अपनी अपनी दृष्टि से वेशभूषादि करते हैं। कोयला, हलदी, कुंकुम, काजल, गेरू आदि का रंग बनाकर चेहरा, हाथ-पैर, पेट-पीठ को लगाकर पात्र एकसाथ मंच पर बैठते हैं। अपनी भूमिका समाप्त होते ही कुछ पात्र अन्यत्र या कभी कभी दर्शकों में आकर बैठ जाते हैं।

* **संवाद सुधार –** शिष्ट साहित्य के नाटकों में संवादों की गलतियाँ के सुधार के लिए पर्दे के पीछे वाचक (प्राम्टर) पढ़ता है पात्र उन्हें सुनकर संवाद दोहराता हैं। रंगमंच खुला होने के कारण लोकनाट्यों में ऐसी व्यवस्था नहीं होती। नाटक मंडली का प्रमुख वाद्य समूह के पास बैठता है। जब कोई पात्र - अभिनेता संवाद भूल जाता है तो वह मुखिया बैठे हुए स्थान से ही संवाद सुधारता है और पात्र उन्हें दोहराता है।

  लोकनाट्य में काम करने वाले सभी पात्र एक दूसरे की भूमिका कर सकते हैं। अगर किसी कारण से एकाध

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

पात्र नाटक नहीं कर सकता तब उपस्थित पात्रों में से कोई उसकी भूमिका निभाता है।

लोकनाट्य का रंगमंच खुला होता है।अनेक कमियों के बावजूद भी इस प्रकार के नाटकों द्‌वारा दर्शकों में स्फूर्ति एवं चुस्ती निर्माण होती है। सब कुछ कार्य बड़ी सहजता और स्वाभाविकता से होते हैं। लोकनाट्य के आरंभ मे गणेश गुरू देवी-देवाताओं की प्रार्थना वंदना की जाती है और नाटक समाप्ति के बाद जयजयकार होती है। उदा. रामलीला की समाप्ति के बाद हनुमान जी की जयजयकार होती है। लोकविश्वास है कि जहाँ जहाँ रामलीला होती है वहाँ वहाँ हनुमानजी अवश्य आते हैं। रामजी के वे परमभक्त सेवक है अत: उनकी भी जयजयकार करना अत्यावश्यक होता है।

6.3.5 भारत के प्रमुख लोकनाट्य

विविध उत्सव, पर्व मनाने के प्रवृत्ति मनुष्य की प्रसन्नता, हर्ष, आनंद का प्रतीक है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे विभिन्न अवसरों पर खेले जाने वाले नाट्यप्रकार इसी बात का द्‌योतक है। अत: प्रमुख लोकनाट्यों का विवेचन निम्न प्रकार का है।

रामलीला

भारत में उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, मालवा में रामलीला का प्रचार हुआ है। देश के विभिन्न भागों में रामलीला की हजारों मंडलिया हैं। जो प्रतिवर्ष रामलीला करती है। इनमें भी दो भेद हैं, एक जो केवल एक ही स्थान पर रामलीला करती है और दूसरी विभिन्न स्थानों पर जाकर। इनके पास तुलसीदात कृत 'रामचरितमानस' की प्रति होती है अर्थात् इसके आधार पर रामलीला की जाती है। इसके प्रदर्शन के लिए मंडली में २० /२५ लोग होते हैं रात्रि के समय में नाटक खेला जाता है।

रामलीला का मंच सीधा-सादा होता है। प्रसंगानुसार मंडलिया अपने-अपने तरिके से भिन्न भिन्न स्थानों पर नाट्य प्रदर्शन करती है। वनवास लीला मंदिर में तो गंगापार वाले दृश्य के लिए जलाशय या नदी किनारा चुना जाता है। चित्रकूट लीला, युद्‌धादि लीला बहार विस्तृत मैदान में तो भरत मिलाप लीला पुन: मूल गाँव में की जाती है।

रामलीला मंच पूर्णत: खुला रखा जाता है, चारों ओर दर्शक बैठते हैं। 'मानस' पढ़ने वाला बीच में मंच पर बैठता है, राम, लद्‌यमण, रावण आदि पात्र अपने स्थान से उठकर मंच पर अभिनय करके चले जाते हैं। अयोध्या, लंका, वन, कुटिया आदि का अस्थायी प्रबंध किया जाता है।

रामलीला में ''कथावाचक'' का विशेष स्थान होता है। कथावाचक सूत्रधार होता है। उसके द्‌वारा पढ़ी गई कथानुसार ही अभिनय होत है। इसके पात्रों की वेशभूषा -रंगसज्जा साधारण होती है। राम, सीता, लद्‌यमण, रावण आदि के लिए कागज़ के मुकुट, उनपर रंगीन पन्नी चिपकाई जाती है। इनके जरी के वस्त्र होते हैं, बंदरों के लाल तो राक्षसों के काले वस्त्र होते हैं। काजल, हलदी, खडिया राख आदि का रंग सज्जा के लिए उपयोग किया जाता हैं। पात्रों के लिए आवश्यक शस्त्र लकड़ी के ही होते हैं।

रामलीला के आरंभ में तबला, हारमोनियम बजाकर रामलीला शरू होने की सूचना दी जाती है। जब लीला का आरंभ होता है तो कथावाचक राग से दोहा, चौपाइयाँ पढ़ता है। अभिनेता गद्‌य में उसका अनुवाद करके अभिनय करते हैं। बाहर बैठे हुए राम, सीता, लद्‌यमण की आरती उतारी जाती है। भक्तगण के बीच आरती की थाली घुमाई जाती है वे बड़ी श्रद्‌धा से नतमस्तक होते हैं और कुछ दक्षिणा थाली में डालते हैं। जब रामायण की कथा का आरंभ होता है तब प्रत्येक पात्र अपने अपने संवादों के साथ अभिनय करके चले जाते हैं। यात्रा का संकेत करते हुए पात्र मंच पर बार- बार घुमते हैं। आयोध्या, लंका आदि स्थान निर्देश करते हुए पर्दे का उपयोग किया जाता है। संवादों से पता चलता है कि आयोध्या है, यह लंका है।

रामलीला जैसा लोकनाट्य धार्मिकता के साथ मनोरंजन करता है। सालभर में यह कभी भी खेला जाता है किंतु इसका विशेष आयोजन आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से होता है और दशहरा -विजयादशमी को समापन

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

होता है। सरकार द्वारा मान्यता मिलने के कारण राजधानी दिल्ली में आजकल इसका आयोजन बड़े धूमधाम से किया जाने लगा है। उत्तर भारत में भी इसी समय रामलीला का आयोजन किया जाता है। उसी प्रकार मथुरा, वृंदावन, आगरा, लखनऊ, आयोध्या आदि स्थानों इन दिनों में रामलीला की धूमधाम चलती है। लंका दहन, रावण दहन, कुंभकर्ण, मेघनाथ दहन दशहरे के दिन लाखों लोगों के सामने किया जाता है। बुरी प्रवृत्तियों का विनाश करके सुख-संपन्नता की कामना इस समय की जाती है।

वर्तमान युग में रामलीला - प्रदर्शन एक आजीविका का साधन, व्यवसाय बन गया है। कुछ भी हो किंतु राम लीला नाट्य के द्वारा जनसामान्य तक संदेश पहुँचाया जाता है कि अंत में असत् पर सत् की विजय होती है।

रासलीला

भगवान कृष्ण की लीलाओं के द्वारा उनका चरित्रगान रासलीला है। भगवत् भक्ति ही इसकी प्रेरणा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ प्राप्ति और भगवान के दर्शन से सात्विक भाव निर्माण करना इसके उद्देश्य हैं। रासलीला का उद्गम स्थान वृंदावन है और लीला स्थान ब्रज कहलाता है।

''श्रीमद्भागवत'' के अनुसार रासलीलाओं का प्रवर्तन ब्रज की गोपियाँ हैं। भागवत के दशम स्कंध में इसका वर्णन है। रासलीलाओं की उत्पत्ति के संदर्भ में कहा जाता है कि ''राधा और गोपियों के मन में अहंकार निर्माण हुआ था इसी कारण कृष्ण भगवान अंतर्धान हो गए, तब गोपियाँ उनका स्मरण करके उनकी लीलाओं की नकल करने लगी, कृष्ण उसी समय प्रगट हुए और रासलीला उत्पत्ति हुई।''

कुछ विद्वानों की दृष्टि से रासलीला निर्मिति की कथा भिन्न है। श्रीकृष्ण कंस मामा के वध के लिए ब्रज से मथुरा चले गए थे। श्रीकृष्ण के वियोग से दु:खी ब्रजवासी कृष्ण का रूप धारण करके उनकी क्रीडाओं के द्वारा आनंद प्राप्त करके अपना समय व्यतीत करते थे। कृष्ण की बाललीलाओं का प्रकटीकरण उनके धार्मिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया था। अत: जन-जीवन में इसी प्रवृत्ति का विकास होकर रासलीला का मंच पर आविष्कार हुआ। ब्रज के अतिरिक्त इसने उत्तर प्रदेश, राजस्थान को भी प्रभावित किया।

श्रीकृष्ण का चरित्र ही अद्भुत है। उनकी लीलाओं से रासनृत्य खेला जाता है। कृष्ण बीच में और चारों ओर गोपियाँ गोलाकार घुमकर नृत्य करती है। गुजराती 'गरबा' नृत्य से इसकी समानता मिलती है। रास यह एक लोकनृत्य का प्रकार है किंतु अभिनय के कारण इसे लोकनाट्य की कोटि में रखा गया है।

रासलीला से संबंधित अधिकतर नाटक ब्रजभाषा में मिलते हैं। नंददास कृत 'गोवर्धन लीला', 'श्याम - सगाई'; ध्रुवदास कृत 'दानलीला', 'मानलीला' आदि ४२ लीलाएँ लिखी हैं; चाचा हितहरि वृंदावन दास ने ४० लीलाएँ लिखी हैं - 'गौनेवारी लीला', 'मालिन लीला', 'राधा दासी सांझी लीला' आदि। ब्रजवासी दास के 'ब्रजविलास' प्रबंध-काव्य रचना में ७४ लीलाओं का वर्णन हैं। यह सभी लीला नाटक लोक में प्रसिद्ध है। इनकी एक एक लीला का अभिनय किया जा सकता है। आधुनिक काल में वियोगी हरि की 'छद्म-योगिनी' लीला इसी परंपरा में आती है।

वर्तमान युग में रासलीलाओं में नाटकीय तत्त्वों का समावेश होने लगा है। रास मंडलियों ने इसे अपनी आजीविका का साधन बना लिया है अत: वे इन लीलाओं में सस्ते ढंग का हँसी - मजाक करने लगे है। ब्रज में आज भी इन लीलाओं का प्रदर्शन किया जाता है।

रासलीला में पद्यमय भाषा, गीत-नृत्य के द्वारा रास रचाते है, रंगमंच आडंबरहीन होता है, चारों ओर जनता बैठकर नाट्य का आस्वाद लेती है, राधा कृष्ण के रूप में पात्रों के प्रवेश करते ही उनकी जयजयकार होती है, नांदी पाठ- गुरू वंदना के बाद के पदों का गायन होता है। 'मनसुखा' कथा विकास एवं पात्रों का परिचय करता है। बीच में कृष्ण गोप-गोपियों- राधा के साथ रास खेलते हैं। अंत में भक्तगण खड़े होकर आरती करते हैं।

रासलीला का प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा है। यह परंपरा अतिप्राचीन है और लोकप्रिय भी है। अमीर-गरीब, शिक्षित- अनपढ़, बड़े - बूढ़े सभी इसका आस्वाद लेते हैं। जन मनोरंजन का यह उत्कृष्ट साधन बन गया है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

भवाई

गुजरात का यह अत्यंत लोकप्रिय नाट्य प्रकार है। देवी की पूजा से इसका संबंध रहा है। नृत्य, संगीत, अभिनय प्रधान इस नाट्य के द्वारा भक्ति भावना के अतिरिक्त धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, शृंगारिक विषयों का प्रदर्शन किया जाने लगा है।

'भवाई' का कथानक- गद्यात्मक, पद्यात्मक होता है। भवाई की कथा का आरंभ देवी से संबंधित होता है। आज की यह अंबाजी के सामने खेला जाता है - नवरात्रि इसका मंगलदायी समय माना जाता है। भक्तगण नौ दिनों तक देवी का उपवास रखते हैं गाँव और नगरों में इनका प्रदर्शन होता है। प्रदर्शन करने वाली मंडलियों को 'टोलियाँ' भी कहते हैं। भवाइयों के गायक, अभिनेता तरगा जाति के ब्राह्मण होते हैं। राजस्थान में राजपूत, जाट, गुजर आदि जातियों के लोग भवाई खेलते हैं किंतु गुजरात में भवाई खेलने के लिए जाति विशेष का बंधन नहीं होता।

भवाई का आयोजन खुले मैदान या मंदिर के आंगन में होता है। देवता की स्थापना करके सामने वर्तुळाकार रेखांकन करके रंगमंच का स्थान निर्धारित किया जाता है। चारों ओर प्रेक्षक बैठते हैं। रात नौ - दस बजे भवाई का आरंभ होता है। इसमें पुरुष ही स्त्रियों की भूमिका करते है, इन्हें 'काँचलिया' कहते हैं। मंडलियों का मुखिया 'नायक' कहलाता है और वह सब व्यवस्था देखता है।

इसमें भी रंगमंच साजसज्जा सादी होती है, ढोलक, सारंगी, मंजीरादि वादन से गणपति के 'वेश' से मंगला-चरण आरंभ होता है। एक हाथ में थाली लिए गणपती नाचता- गाता है और आशीर्वाद देकर चला जाता है। बाद में 'माँ भवानी' का 'वेश' नृत्य करता है। हर वेश के आरंभ में 'आवणू' गाया जाता है जिससे मुख्य पात्र के आगमन की सूचना मिलती है और मुख्य पात्र नाचते- गाते मंच पर आते हैं। माताजी के 'वेश' के बाद ब्राह्मण वेश अभिनित होता है। गुरू वंदना के बाद नाट्यारंभ होता है। नायक बीच-बीच में कथन करता जाता है।

विदुषक जैसा ही भवाई में 'रंगलो' पात्र होता है अभिनय गीतों और उटपटांग बातों से दर्शकों को हँसाता है। अश्लील, ग्राम्य संवादों के कारण बालक और स्त्रियों को 'भवाई' देखना मना है। इसके संवाद पद्यमय होते हैं किंतु बीच-बीच में गद्य का भी प्रयोग होता है। दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठा जैसे छंदों का प्रयोग, श्रगांर, हास्य, वीर, अद्भुत रसों से भवाई में आकर्षण बनाए रखा जाता है। इसकी भाषा गुजराती होती है। आजकल उर्दू, हिंदी, मारवाडी, राजस्थानी, ब्रज आदि के शब्दों का पात्रानुसार भाषा का प्रयोग होने लगा है। भवाई गुजरात की अनमोल निधि है, गुजरात की सांस्कृतिक विरासत है इसलिए सरकार की ओर से इसका रूप विकसित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भवाई में 'वेश' स्वतंत्र रूप से एक प्रसंग प्रस्तुत करता है। गणेश, देवी-देवताओं के वेश में वंदना, नृत्य संगीत अभिनय द्वारा प्रदर्शन, हलदी, चुना, काजल आदि रंगसज्जा, ढोलक, मंजीरादि वाद्य, वीर, शृंगारादि रस, दोहा सोरठादि छंद, गुजराती - मारवाडी, ब्रज - हिंदी का प्रयोग, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा, सरकारी अफसर, कंसारे की कंजूषी और ठगाई, बहुपत्नीत्व, अनमोल विवाह आदि का कथाओं द्वारा प्रदर्शन भवाई में होता है।

यक्षगान

दक्षिण भारत का अर्थात् कर्नाटक का प्रसिद्ध नाट्यप्रकार है यक्षगान। 'यक्ष' का अर्थ है पूजा करना। मनोकामना की पूर्णता के बाद यक्षगान आराधना-पूजा के लिए किया जाता है। यह नृत्य नाट्यप्रकार है। इसका कथानक 'भागवत' पर आधारित है। कथा - गायक 'भागवत' कहलाता है और नाटक प्रस्तुत करने वाला 'अर्थधारी'।

यक्षगान के लिए खुला रंगमंच होता है। तीन तरफ दर्शक और ए कोने में वादक होते हैं। बाजा बजाकर भागवत का गान आरंभ होता है और सभी पात्र मंच पर आते हैं। गणेश - स्तवन होता है। छोटे छोटे प्रसंगों को लेकर यह लघु-नाटक धीरे धीरे विशाल रूप धारण करता है। पूरी रातभर यह नाटक खेला जाता है। बीच

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

बीच में कई घटनाओं का समावेश किया जाता है। भूतों को प्रसन्न करने के लिए यह पौरुष प्रधान नाटक किया जाता है।

यक्षगान नृत्य प्रधान नाटक है। प्रत्येक पात्र का नृत्य एक-दूसरे से भिन्न होता है, पात्र ही उसका अर्थ स्पष्ट करते हैं। नृत्य, संगीत, अभिनय आदि कलाओं से यक्षगान परिपूर्ण होता है।

यक्षगान में हनुमान, वानर, कृष्ण-बलराम, गोपियाँ आदि पात्र होते हैं। हनुमान- नायक हास्यविनोद करते हैं फिर मंच पर कृष्ण बलराम और उनके पीछे गोपियों का प्रवेश होते ही 'यक्षगान' का पूर्वरंग और इसके बाद कथानक का मुख्य भाग अर्थात् उत्तररंग आरंभ होता है।

यक्षगान करने के पूर्व पात्र मंचिय रंग संकेतों का पालन करते हैं उदा. - मंच पर आते ही भूमि स्पर्श करके भागवत और मंच को वंदन करना, परदे के पीछे नृत्य करते करते धीरे-धीरे मंच पर प्रवेश करना। अर्थात् प्रत्येक पात्र इन परंपरागत नियमों- संकेतों का पालन करते हैं।

मंच पर उपस्थित सभी पात्रों का परिचय हनुमान करते हैं। नृत्य, संगीत, अभिनय के द्वारा यक्षगान आरंभ होता है। भागवत एक कोने में खड़ा होकर गायन करता है बीच में थोड़ा-सा रुकता है ताकि मंच के पात्र अपने संवाद, अभिनय के द्वारा प्रसंगों को साकार कर सके। स्थल, काल, परिस्थिती, समय के अनुसार नाटक का प्रदर्शन किया जाता है। नृत्य, अभिनय, संवादों में मुक्तता होती है।

आंध्र प्रदेश में भी यक्षगान अत्याधिक प्रचलित नाट्यप्रकार है। यक्षगान आडंबरहीन होने के कारण लोकप्रिय नाट्यप्रकार माना जाता है।

तमाशा

यह शब्द पर्शियन भाषा से लिया गया है इसका अर्थ है - मजा, मनोरंजन। ढोलकी और तुनतुनिया के ताल पर खेला जाने वाला यह नाट्यप्रकार है। शृंगारपूर्ण गीत और नृत्य के कारण इसमें 'लावणी' का समावेश होने लगा। मध्यकाल तक यह केवल ग्रामीण, असंस्कृत लोगों के मनोरंजन का साधन था। युद्ध, आक्रमण करने वाली फौज के मनोरंजन के लिए गाने वाले कई दलों को इसमें आश्रय मिलने लगा था। इसमें पुरुष स्त्री पात्र 'नाच्या' बनकर अभिनय करता था। मुगल दरबार से पेशवाई तक लावणी-तमाशा का प्रचलन अधिक रहा। सत्ता ऐशोआराम, विलासिता बढ़ने लगी। शाहिरों को राजदरबार में आश्रय और सन्मान मिलने लगा। भक्तिपरक, वीररसात्मक, आध्यात्मिक, शृंगारिक आदि विषयों को लेकर लावणियाँ गाई जाने लगी। लावणी के दलों का परिवर्तन तमाशा के फडों में होने लगा था।

तमाशा में गण, गवळण, लावणी, पवाड़ा, स्तुतिपरक गीत गाए जाने लगे तथा दैनिक जीवन से संबंधित विषयों को भी इसमें स्थान दिया गया। पूर्व प्रचलित तमाशा का स्वरूप आज बदल गया है। होनाजीबाळा, सगनभाऊ, गंगू हैबती, राम जोशी, अनंत फंदी आदि प्रसिद्ध लावणीकार थे। तमासगीर पट्ठे बापूराव, उमाजी बाबाजी मांग की जोड़ी 'उमाबाबू' के नाम प्रसिद्ध है। उसीप्रकार दगडू साळी शिरोलीकर, भाऊ बापू नारायणगावकर, दादू इंदुरीकर, माधव नगरकर आदि तमाशा फडों का लोगों में आकर्षण रहा है। आधुनिक युग में तो महिलाओं की तमाशा - संगीतबारी प्रसिद्ध है - कमला कोपरगावकर, गुलाब संगमनेरकर, हौसा कोल्हापूरकर, सुलोचना सातारकर, बसंता जळगावकर, कमला चंदापूरकर आदि।

गण, गौळण, लावणी, वग, मुजरा एवं पात्रों के द्वारा तमाशा का कथानक पूर्ण किया जाता है -

* **गण** - तमाशा का खेल 'गण' अर्थात् गणेश वंदना से आरंभ होता है, उसके बाद शिवशक्ति की भी पूजा की जाती है। आध्यात्मिक विचार प्रणालीवाले जो शिव को मानते हैं उन्हे 'तुर्रेवाले' तो शक्ति को मानने वाले 'कलगीवाले' कहलाते हैं। गणेश वंदना के बाद अपने अपने देवता का स्तवन होता है इससे उनके दल का पता श्रोताओं को लगता है।
* **गौळण** - गण समाप्ति के बात 'गौळण' का आरंभ होता है। ग्वालों के द्वारा कृष्ण को संबोधित करके गाया गया गीत 'गौळण' कहलाता है। कृष्ण और उनके सखओं द्वारा गोपियों की छेडछाड़, राधा-गोपियों

के विलासपूर्ण उद्गार एवं हावभाव से गौळण रंगतदार बनती है। इसमें नाट्याभिनय अधिक होता है। राधा कृष्ण, गोप गोपिया, मौसी, सोंगाड्या, कृष्ण सखा आदि पात्रों का इसमें समावेश होता है। मथुरा के बाजार में दूध-दही बेचने वाली गोपियों को रास्ते में रोकना, हास्य विनोदपूर्ण संवादों से श्रोतागण आनंदास्वाद लेते हैं। गौळण का मुख्य पात्र कृष्ण और उसका मित्र सोंगाड्या होता है। वह कृष्ण की तरफदारी करते हुए हास्य-व्यंग पूर्ण बातों से नाटक में रंग भरता है।

- **लावणी –** गौळण के बाद तमाशा का आकर्षण हिस्सा आरंभ होता है लावणी का। 'नाच्या' अर्थात् स्त्री वेशधारी पुरुष पात्र स्त्री सुलभ हाव-भाव-नृत्याभिनय करते हुए लावणी गाता है। ढोलकी ताल पर नाचता है और श्रोताओं को आकर्षित करता है। लावणी का अर्थ है ग्रामगीत। यह काव्यप्रकार प्राचीन है। ज्ञानेश्वरी में इसका उल्लेख मिलता है। शृंगार के संयोग – वियोग के प्रसंग, पुराणकथाओं का उपदेशात्मक कथ्य, प्रस्तुत किया जाता है। लावणी के भेदिक और शृंगारिक दो भेद है। भेदिक लावणी का गायन किया जाता है, कलगी और तुर्रा दोनों दलों में सवाल – जबाब चलते हैं। पुराण, गणित, पहेली आदि से संबंधित सवाल – जबाब चलते हैं। सही जबाब देने वाला दल विजयी होता है। शृंगारिक में कृष्ण-गोपियों और राधा के लौकिक शृंगार के संयोग-वियोग का वर्णन किया जाता है।

- **वग –** रातभर चलने वाले तमाशे में लावणी के बाद 'वग' अर्थात कथा का आरंभ होता है। इसका कथानक राजा-साहूकार आदि पर आधारित होता है जैसे – नल-दमयंती, सीता – सावित्री, राजा विक्रम, भोजराजा, झाँसी की रानी, संत तुकाराम आदि। सुख-दु:ख, हास्य व्यंगपूर्ण भावों को गीतों-संवादों से रंजक बनाया जाता है। आजकल राजनीति, आंदोलन, चुनाव आदि विषयों का भी इसमें समावेश किया जाने लगा है। वग के लिए शाहिर साबळे, अण्णाभाऊ साठे, शंकर पाटील, पट्ठे बापूराव प्रसिद्ध हैं।

- **मुजरा –** तमाशा के अंत में मुजरा गाने की प्रथा है। इसमें शाहिरों तथा साधुओं की वंदना की जाती है और आशीर्वाद मांगा जाता है। उत्सव, मेला, पर्व आदि अवसरों पर खुले मैदान में या बंद नाट्यगृहों में 'तमाशा' दिखाया जाता है।

- **जत्रा –** जत्रा या यात्रा लोकनाट्य की परंपरा काफी पुरानी है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मेला, उत्सव, जुलूस की प्रथा थी। भक्तगण नाचते- गाते जुलूस निकाल कर किसी देवता के आसपास एकट्ठा होते हैं। संस्कृत नाटकों की परंपरा जहाँ छिन्न हुई वहाँ बंगला 'जात्रा' उत्कृष्ट रूप में प्रचलित रही। शिव यात्रा, शक्ति यात्रा, जगन्नाथ जी यात्रा, कृष्ण यात्रा आदि प्रसिद्ध है।

भक्ति संप्रदाय के कारण बंगाल में कृष्ण भक्ति का प्रसार हुआ और कृष्ण लीलाओं के आधार पर धार्मिक उत्सव होता था उसे ही कृष्ण यात्रा कहा जाता था। श्रद्धा – भक्तिभाव जागृत करने के लिए प्रतिवर्ष जात्रा का आयोजन होता रहा है। रामायण, महाभारत, भागवत, पुराण, ऐतिहासिक प्रसंग, वर्तमान समस्याओं से संबंधित विषयों को आधार बनाकर नाटक खेले जाते हैं।

जात्रा का मंच खुला मैदान, मंदिर का चबूतरा होता है। कम्बल या चटाई बिछाकर दर्शक चारों ओर बैठते हैं। बीच में एक परदा लगाया जाता है वहाँ पात्र वेशभूषादि करते हैं। खेल के दो घंटे पहले वाद्यों के द्वारा वातावरण निर्मिति की जाती है। कलाकार मंच पर आकर महाप्रभु चैतन्य के गौर-चंद्रिका का गायन करके वंदना की जाती है। जात्रा का प्रमुख पात्र 'अधिकारी' सूत्रधार होता है। इसमें प्राय: पुरुष ही अभिनय करते हैं। पुरुष ही स्त्री वेशभूषा करके अभिनय करता है। मुख्य अभिनेता सफेद रंगे का चोगा पहन कर अभिनय करता है।

जात्रा के संवाद पद्यमय होते हैं। हर्ष-आनंद, पीड़ा आदि भावों की अभिव्यक्ति गीतों के द्वारा की जाती हैं। शिक्षित, अशिक्षित सभी वर्ग के लोगों के रंजन का यह उत्कृष्ट साधन रहा है। हिंदी नाटक की परंपरा का मूलस्रोत यह जन-नाटक ही रहे हैं। जात्रा-नाटक मूलरूप में बंगाल में विकसित हुए जगन्नाथ वल्लभ, परमानंददास, सुदामा, पीतांबर, अधिकारी आदि ने इस परंपरा के विकसित किया। कृष्ण कमल गोस्वामी का स्वप्न-विलास, भरत-मिलाप, निमाई सन्यास प्रसिद्ध जात्रा नाटक हैं।

आधुनिक युग में जात्रा मंडलियों ने कथ्य एवं तकनीक में परिवर्तन किया है। इन नाटकों में भी अश्लीलता का समावेश होने लगा। बंगाल मे प्रसिद्ध नाटककार गिरीशचंद्र घोष ने यात्रा मंडलियों की सहायता से जात्रा

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

नाटक लिखें और उनमें स्वयं अभिनय भी किया। बंगाल के अतिरिक्त ओरिसा में भी जात्रा-नाटक धार्मिक स्थानों पर खेले जाते हैं।

माँच

मालव अंचल में प्रचलित माँच नाट्यप्रकार है। संस्कृत शब्द 'मंच' का यह तद्भव रूप है। माँच के अनेक अर्थ हैं - मंच या मचान, चारपाई, खटोली। मंच पर मंचित किए जाने के कारण नाट्यरूप को 'माँच' कहा जाता है।

माँच का कथानक इतिहास, पुराण, प्रेममूलक लोककथाओं पर आधृत होता है। उदा. ढोला- मारूणी, नागजी-दूदजी, चारण-बनजारा आदि। माँच के आदि प्रवर्तक हैं बालमुकुंद गुरू। इनके १६ माँच प्रसिद्ध हैं, वे स्वयं इसमें अभिनय करते थे। इनके बाद कालूराम उस्ताद, मेरू गरू के नाम आते हैं।

माँच का मंच चारों ओर से खुला होता हैं किंतु दर्शक तीन ओर बैठते हैं। माँच के मंच पर एक पात्र आकर अपना परिचय देता है फिर भिस्ती मंच पर जल छिड़कता है, हलकारा बाद में नायक के आने की सूचना देता है। अन्य सभी पात्र मंच पर आकर गणेशजी, मेरू जी, मंच की वंदना करते हैं, नगर के देवी देवताओं का स्तवन किया जाता है। देवा का पंड्या आता है फिर देवी स्वयं आकर आशीर्वाद देती है। बाद में गुरू की जयजयकार होती है, उसके बाद ही माँच का आरंभ होता है। चोबदार क्रमश: सभी पात्रों का परिचय देता है।

माँच में स्त्री-पुरुष पात्र होते हैं किंतु पुरुष पात्रों की अपेक्षा इनमें स्त्री पात्र अधिक होते हैं। नायक का सहयोगी पात्र 'शेरमारखाँ' कहलाता है। जो विदूषक के समान अपने संवाद अभिनय द्वारा दर्शकों में रुचि पैदा करता है। इसकी संगीत शैली की विशेष धुन अर्थात् 'रंगत' होती है। विविध रंगत में माँच के दूहों को गाया जाता है। ढोलक, सारंगी इसके प्रमुख वाद्य हैं। पद्यप्रधान, अभियन संपन्न इस नाट्य प्रकार का संवादों के द्वारा ही दृश्य घटना परिवर्तन का आभास निर्माण किया जाता है। इसके संवादों को 'बोल' कहते हैं। रूपक उपमादि अलंकारों के प्रयोग से कथावस्तु को अधिक प्रभावपूर्ण हृदयग्राही बनाया जाता है। उत्सव मेले में आज भी माँच गाँव गाँव में खेले जाते हैं।

नौटंकी

पंजाब, उत्तरप्रदेश में स्वाग को ही 'नौटंकी' कहते हैं। यह गीति नाट्यप्रकार है। कथानक की प्रस्तुति काव्यमय होती है। आरंभ में मंच पर वादक आते हैं। सारंगी, नगाड़ा, ढोलक आदि वाद्यों से देवताओं को आवाहन किया जाता है। शिव, कृष्ण, सरस्वती, गुरू आदि की वंदना की जाती है। नौटंकी में 'रंगा' अर्थात् सूत्रधार के प्रतिरूप की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। वह कथा से संबंधित विविध प्रसंगों का समायोजन करके नौटंकी प्रस्तुत करता है। गीत-नृत्य-संगीत के द्वारा पात्र अभिनय करते हैं।

नौटंकी में 'मखौलिया' नामक पात्र तमाशा के सोंगाड्या जैसा होता है। जो व्यंगपूर्ण शैली में विविध विषयों का आधार बनाकर कथा विकास में सहायता करता है। शूर, वीर, योद्धा, दयावान, डाकू, प्रेमकथा आदि उसके विषय होते हैं। स्थानीय आवश्यतानुसार विषय चुनकर वह गायन करता है। धार्मिक, शृंगारिक, सामाजिक, पौराणिक कथाओं को नौटंकी में स्थान दिया जाता है। उदा. ध्रुव, श्रवण कुमार, हरिश्चंद्र, आदि धार्मिक-पौराणिक, लैला मजनू, हीर-रांझा, पद्मावती आदि प्रेम शृंगारिक, अमरसिंह राठौड, सुलतान डाकू आदि वीरता प्रधान कथाएँ। चैत-बैसाख, कार्तिक मास में मेलों में खेले जाने वाले नौटंकी नाटक में पुरुष पात्रों की अधिकता होती है। पुरुष ही स्त्री वेश धारण करके नौटंकी करते हैं।

नौटंकी में दो परंपराओं का प्रचलन हैं - एक हाथरस नौटंकी जिसमें शास्त्रीय संगीत प्रवीण पात्र होते हैं तो दूसरी कानपुर नौटंकी जिसमें संवाद और अभिनय कौशल होता है। आजकल व्यावसायिक नर्तिका इनमें हिस्सा लेने लगी है।

उस्ताद लछमन के स्वांग नौटंकी नाम के प्रसिद्ध है। हाथरस की नाथाराम ने २० नौटंकी नाटक लिखे

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof   dt.05-02-2014)

हैं। कठपुतली के खेल का प्रसिद्ध आख्यान अमरसिंह राठौड भी इसकी कथावस्तु बना है। फारूखाबाद के तिरमोहन, कानपुर के श्रीकृष्ण, बरेली के राधेश्याम कथावाचक नौटंकी लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं।

स्वांग के समान सीधा-सादा रंगमंच, ढोलक, सारंगी, नगाड़ा आदि वाद्यों का प्रयोग, नादसौंदर्य से कथानक प्रभावपूर्ण, कृष्ण, शिव आदि की वंदना, सस्वर गायन, लयबद्ध संवाद, गीत - नृत्य एवं अभिनय में आकर्षकता, पौराणिक, सामाजिक, शृंगारिक, धार्मिक कथाओं का आधार, हाथरस, कानपुर दो परंपराओं का प्रचलन, पुरुष पात्रों का अधिक्य, रंगा (सूत्रधार) मखौलिया प्रमुख पात्र नौटंकी की विशेषताएँ हैं। लोक मनोरंजन का यह लोकप्रिय साधन है।

कुचिपुडी

आंध्र प्रदेश के कुचिपुडी गाँव में इस कलाकृति का निर्माण हुआ है इसलिए इसका नाम 'कुचिपुडी' रखा गया हैं। इसप्रकार की नाट्यकृति में संगीत की प्रधानता होती है। इसमें देशी और भार्गी दो परंपराओं का प्रचलन हैं। इसमें केवल पुरुष पात्र ही होते हैं। हास्य, व्यंग्य, उपहास, विनोद आदि के कारण कुचिपुडी नाट्य आकर्षक बनते हैं।

भक्तिभाव प्रधान इस नाट्यारंभ में देवता स्तवन होता है। बीच बीच में ध्वनि वाद्यों के साथ ही शोरगुल होता है। पुरुष ही स्त्री वेश धारण करते हैं। पारंपरिक कथाओं का आधार लेकर कथानक वर्तमान के साथ जोड़ा जाता है।

अन्य नाट्यकृतियों के समान ही इसका मंच खुला मैदान होता है। मंच के एक ओर वादक तो दूसरी ओर पात्रों के रिश्तेदार बैठते हैं। विदूषक के समान ही 'कनंगी' नामक पात्र दर्शकों का मनोरंजन करता है। सूत्रधार या नटवूनर अपने अन्य साथियों के साथ मंच पर आकर प्रार्थना करके कथा को कुछ गाकर या सुनाता हुआ अभिनय करता है। अन्य सभी उसका साथ देते हैं। उत्सवों के अवसरों पर यह नाट्य खेला जाता है।

ललित

महाराष्ट्र में मध्ययुग में लोकमंच पर खेला जाने वाला नाट्य प्रकार ललित है। नवरात्र के उत्सव में अंतिम रात्रि में देवता सिंहासन पर विराजमान होते हैं ऐसा मानकर कुछ स्वांग इन दिनों में किए जाते हैं। इन स्वांगों के द्वारा प्रसाद बाँटा जाता है। इस समारंभ को ललित कहते हैं।

मध्ययुगीन भारत में देवता के अवतारों के स्वांग धारण करके उनके जीवन प्रसंगों का अभिनय कर संगती के द्वारा मंच पर प्रस्तुत करने का लोक विश्वास प्रचलित था। ललित की अनेक मंडलियाँ हैं। व्यावसायिक दृष्टिकोण के कारण ललित मे भी परिवर्तन हुआ है। श्रृंगार प्रधान प्रसंगों का इसमें आधिक्य रहा है किंतु आजकल इसमें विकृतियाँ उभरने लगी हैं।

नौटंकी के समान इसमें भी संगीत का प्रयोग होता है। संगीत में नाटकीयता, चुटिले संवादों का प्रयोग इसमें होता है। ललित के आख्यान हास्यपूर्ण होते हैं। एक रात में अनेक स्वांग खेले जाते हैं। महाराष्ट्र में वाघ्या-मुरळी का स्वांग प्रसिद्ध है।

ललित का मंच बिना साजसज्जा वाला होता है। जमीन से लगभग सवा हाथ ऊँचाई पर मंच बनाया जाता है। मनोरंजक प्रसंगों का गायन होता है, कुछ लड़के ध्रुपद गाते हैं। उसके बाद गणेश वंदना होती है। सूत्रधार, विदूषक बीच बीच में हँसी-मजाक करते हैं। पात्रों की वेशभूषा सादी होती है। अंगरखा, सलवार, पगड़ी, दुपट्टा, हाथ में छड़ी, कमर में पट्टा होता है। विदूषक पैरों में घुंघरू, सिरपर ऊँची टोपी, सलवार, माथे पर टिका लगाता है। हास्यप्रधान शैली का प्रयोग होता है। आध्यात्मिक विषयवाले आख्यान हलके-फुलके तरिके से खेले जाते हैं।

कुछ विद्वान मराठी में प्रचलित भारूड काव्यप्रकार से ललित की उत्पत्ति मानते हैं। मराठी के संत एकनाथ ने अनेक विषयों पर भारूड लिखें हैं जिनमें से कई ललित के द्वारा प्रयोग में लाए गए हैं क्योंकि संतो ने

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

लोकजीवन से अनेक दृष्टांत ग्रहण किए हैं जिनका उपयोग कठिन रहस्यमय बातों को समझाने के लिए होता है। ललित में भी इनका सहज प्रयोग किया गया है।

ख्याल

राजस्थान का प्रसिद्ध लोकनाट्य ख्याल जो अनेक नामों से प्रचलित हैं - स्वांग, लीला, तमाशा, खेल, रम्मत, नौटंकी आदि। राजस्थान में ख्याल के अतिरिक्त पवाड़ा, गंधर्व, भवाई, गौरी, कड़ा, सेठ-सेठानी आदि नाट्यप्रकार खेले जाते हैं। राजस्थान का क्षेत्र विस्तार व्यापक होने के कारण यहाँ प्रत्येक जनपद की धुन गायन शैली भी भिन्न भिन्न है। लोकमानस की अनेक संवेदनात्मक अनुभूतियाँ इन लोकनाट्यों में प्रदर्शित होती हैं। स्वाभिमान, प्रेम, शौर्य, त्याग, भक्ति, बलिदान आदि राजस्थान के जीवन मूल्य हैं जो यहाँ के लोकनाट्यों में भी दिखाई देते हैं।

जोधपुर, जयपुर, अजमेर, किशनगढ़, अलीगढ़, मथुरा, कलकत्ता आदि स्थानों पर ख्याल खेले जाते हैं। संगीत, नृत्य, अभिनय, काव्य का इसमें समन्वय पाया जाता है। कथानक, वेशभूषा, अभिनय, संवाद, मंचसज्जा, वाद्य - संगीत आदि महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं किंतु स्थानीय रंगत लाने के लिए इसे 'ख्याल' नाटक कहा जाता है। प्रतिवर्ष हजारों ख्याल प्रकाशित होते हैं किंतु विभिन्न स्थानों पर इसे प्रस्तुत करने की पद्धति भिन्न-भिन्न है।

'ख्याल' के आरंभ में मंगलाचरण, गुरू महिमा गायन और दुर्जनों का स्मरण किया जाता है। मंच पर पात्र आते हैं और स्वयं अपना परिचय देते हैं। हलकारा आकर प्रमुख नायक के आगमन की सूचना देता है। राजस्थानी संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, समाज की संपन्नता एवं विकृतियों का इसमें सजीव वर्णन किया जाता है। उदा. देवी-देवता, योगी, साधु-संत, सती से संबंधित कथ - शिव-पार्वती, भक्त प्रल्हाद, राजा पुरणमल, भरथरी, रामदेवबाबा, तेजाजी, पाबूजी, शीतला माताजी आदि जो लोकजीवन के निकट हैं उन्हें स्थान देकर ख्यालों के द्वारा उनके संदेशों का प्रसार किया जाता है। जैसे, न्यायप्रिय विक्रमादित्य, दुर्बलों का शोषण करने वाले सेठ, साहूकार, धनवानों को लूटकर गरीबों की मदद करने वाले डूंगजी जुहार, हीर-रांझा, निहालदे -सुलतान, राजा केसरसिंह - फूलादे आदि प्रेमी, सामान्य नायक-नायिका, देवर-भाभी की शृंगारपूर्ण लीलाएँ, सामाजिक विकृतियाँ आदि का 'ख्याल' में वर्णन मिलता है।

'ख्याल' में पात्रों के वार्तालाप से कथा विकसित होती है किंतु मंच से पात्र के चले जाने का अर्थ होता है कि अब नया दृश्य आरंभ होगा। नगाड़ा, सारंगी, चौपाई लावणी आदि छंदों का प्रयोग इसमें मिलता है। ख्याल नृत्य गीत प्रधान होते हैं। शेखावटी, मेवाडी, मारवाडी आदि कई प्रकार मिलते हैं। माधुर्यपूर्ण, नादमधुरता से युक्त ख्याल आज भी जनप्रिय है।

नानूराणा, उजीरा तेली, प्रेमसुख मोजख, मोतीलाल, लच्छीराम आदि अनेक विद्वान 'ख्याल' लेखन कार्य कर रहे हैं।

6.4 शब्दार्थ

* अणुप्राणित - प्रेरित, जिसे जीवन या स्फूर्ति दी गई हो।
* प्रहसन - हास्यरस प्रधान एक रूपक - नाट्य
* पन्नी - रंगीन कागज़ के टुकडे जो सुंदरता के लिए चिपकाए जाते हैं।
* कंसारा - काँसे का काम करने वाला
* भिस्ती - मशक से पानी ढोने वाला
* हलकारा - दूत

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

6.5 सारांश

नाटक लोकजीवन के मनोरंजन की लोकप्रिय विधा है क्योंकि इसमें लोकजीवन का प्रतिबिंब स्वाभाविक रूप में उभर कर आते ह। लोकनाट्यों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में नाटक के विविध अंगों का विवेचन किया गया है। अत: यह स्पष्ट है कि भरतमुनि के पूर्व भी नाटकों का प्रचलन रहा है। पाश्चात्य विद्वान डॉ. स्मेल ने कठपुतलियों के खेल से नाटक की उत्पत्ति मानी है तो डॉ. मक्समुलर और प्रो. लेव्ही ऋग्वेद की ऋचाओं को नाटक का स्रोत माना है।

कठपुतलियों की कलात्मकता, ऋचाओं से संवाद शैली, उत्सव-पर्वों में भावाभिव्यक्ति एवं नृत्य अभिनय, मुक्त रंगमंच के कारण लोकनाट्यों का आकर्षण आजतक भारत में बना रहा है।

लोकनाट्यों में संगीत, नृत्य, अभिनय की प्रधानता, लोकरुचि के अनुसार वेशभूषा, समाज की अनुभूतियों की व्यंजना, लोकरुढ़ी - लोकविश्वास की प्रबलता, खुला रंगमंच, कथानक में धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक कथाओं -कथानकों को स्थान, रस-छंद- अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, पुरुष पात्रों की प्रधानता, नाट्य तत्त्वों का बंधनहीन प्रयोग, लोकभाषा- बोलियों का प्रयोग, मनगढ़त संवाद, सीधी-सादी वेशभूषा और साजसज्जा विसंगतियों का उपहास- हास्य द्वारा प्रदर्शन, प्रबोध - मनोरंजन उद्देश्य आदि अनेक तत्त्व विशेषताओं से परिपूर्णता मिलती है। विनामूल्य होते हैं और रातभर चलते हैं।

भारत विभिन्न क्षेत्र-प्रातों में विविध प्रकार के लोकनाट्यों का प्रचलन रहा है। स्थानीय पात्र लोकनाट्यों मे हिस्सा लेते हैं तो कभी कभी मंडलिया अपनी आजीविका के लिए गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर नाटक खेलते हैं। इनके प्रदर्शन के लिए गाँव का चौपाल, मंदिरों का चबूतरा, चौक, सार्वजनिक खुला मैदान चुना जाता है।

लोकरुचि, स्थानीय रंग, जीवन की विविधता के कारण विविध उत्सवों में भारत में लोकनाट्यों कें अलग-अलग रूप प्रदर्शित होते हैं। जैसे उत्तर भारत में रामलीला, रासलीला, नौटंकी, कश्मीर में भाँड, जश्न, मालवा में माँच, राजस्थान में ख्याल, बंगाल में जात्रा, हरियाणा में स्वांग, बिहार में विदेशिया, महाराष्ट्र में तमाशा, गुजरात में भवाई आदि।

लोकनाट्य आम जनता की भावनाओं का संप्रेषण करने वाला सशक्त माध्यम है। यह भारतीय संस्कृति, धर्म, आस्था, श्रध्दा, भक्ति, जीवन, मूल्य, आदर्श चरित्रों का समृद्ध भांडार है। इसी लिए आज भी लोकनाट्य जनजीवन में लोकप्रिय है।

6.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* भारत में लोकनाट्य की प्रचलित परंपरा को संक्षेप में लिखिए।
* लोकनाट्य की विशेषताएँ को समझाइए।
* लोकनाट्य और साहित्यिक नाटक के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
* लोकरंगमंच के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
* भारत के प्रमुख लोकनाट्यों का उल्लेख करते हुए रामलीला, भवाई के स्वरूप को समझाइए।
* 'तमाशा महाराष्ट्र का लोकप्रिय नाट्यप्रकार है विवेचन कीजिए।

ख) टिप्पणियाँ

* लोकनाट्य की प्रमुख विशेषताएँ
* लोकनाट्य स्वरूप
* रासलीला
* नौटंकी

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* जात्रा

ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* भरतमुनि के नाट्यविषयक ग्रंथ का नाम लिखिए।
* पाश्चात्य विद्वान डॉ. स्मेल नाटक की उत्पत्ति किस खेल से मानते हैं?
* लोकनाट्य की चार विशेषताएँ लिखिए।
* रामलीला का अधिक प्रचार कहाँ हुआ है?
* रामलीला का मुख्य आधार किस रचना को माना गया है ?
* रासलीला का आधार ग्रंथ कौनसा है?
* लोकनाट्यों के प्रकार लिखिए।

6.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* भारत में प्रचलित नाट्य प्रकारों में से किसी एक का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
* साहित्यिक नाटकों की विषय सूची तैयार कीजिए।
* 'रामलीला' के किसी एक प्रसंग के आधार पर संवाद लेखन कीजिए।
* स्थानीय नाट्यगृह का निरीक्षण करके लोकरंगमंच से तुलना कीजिए।

6.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* महाराष्ट्र का लोकधर्मी नाट्य - डॉ. दुर्गा दीक्षित
* लोकसाहित्य सिद्‌धांत और प्रयोग - डॉ. श्रीराम शर्मा
* लोकनाट्य - परंपरा और प्रवृत्तियाँ - डॉ. महेंद्र भानावत

इकाई – 7
प्रकीर्ण साहित्य

अनुक्रम

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 विषय – विवरण
    7.3.1 मुहावरे
    7.3.2 कहावतें
    7.3.3 पहेलियाँ
    7.3.4 मुरकियाँ, ढकोसला
    7.3.5 टोना-टोटका, मंत्र
7.4 शब्दार्थ
7.5 सारांश
7.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
7.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
7.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

7.1 उद्देश

* कहावतें, मुहावरे, पहेलियों का लोकसांस्कृतिक अध्ययन में महत्त्व समझना।
* मंत्र, टोना-टोटके का लोकजीवन में स्थान का परिचय करना।

7.2 प्रस्तावना

भाषा की प्रभावशाली एवं व्यंजक अभिव्यक्ति के लिए मुहावरे, कहावतें आदि का प्रयोग किया जाता है। मुहावरो से भाषा में सौष्ठव, माधुर्य और कथन में चमत्कार एवं प्रभाव निर्माण होता है। इनके प्रयोग से वाक्य के अर्थ में विलक्षणता उत्पन्न होती है। तो कहावतों के प्रयोग से साधारण अर्थ को छोडकर विशेष अर्थ की उपलब्धि होती है।

भाषा एक महत्त्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने मनोभावों को दूसरों के सामने व्यक्त करता है। अपनी भावनाओं को सुस्पष्ट करने के लिए वह मुहावरों, कहावतों का प्रयोग करता है।

पहेलियाँ, मुकरियाँ, ढकोसलों के प्रयोग से मनोरंजन के साथ साथ मानव जीवन की लुप्त अनेक बातों पर प्रकाश पड़ता है। मनुष्य की प्रतिभा, विवेक का मूल्यांकन इससे होत है। लोकजीवन, इतिहास, धर्म, दर्शन, लोकसंस्कृति आदि के भूले-बिसरे प्रसंगों के साथ आधुनिक सभ्यता के भी इनमें दर्शन होते हैं।

लोक में प्रचलित टोना -टोटका, मंत्र के द्वारा लोकविश्वास प्रदर्शित होता। अच्छाई-बुराई के लिए लोकजीवन में इनका प्रयोग होता रहा है। इस इकाई में इन सबका अध्ययन किया जाने वाला है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

7.3 विषय विवरण

भाषा के सौंदर्य बढ़ाने वाले एवं भावों विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति कराने के लिए मुहावरे, कहावतें, बौद्धिक परीक्षा के लिए पहेलियाँ मनोरंजन के लिए ढकोसले, मुकरियों का लोकसाहित्य प्रयोग किया हुआ मिलता है। मंत्र, टोन-टोटका लोकविश्वास का अंग है। इनका अध्ययन यहाँ किया जा रहा है।

7.3.1 मुहावरे

साधारण रूप में 'मुहावरा' उस वाक्यांश को कहते हैं जिसके प्रयोग से वाक्य के अर्थ में विलक्षणता निर्माण होती है। अर्थात् मुहावरे केवल वाक्यांश होते हैं। लिंग, वचन और क्रिया के अनुसार परिवर्तित होते हैं। हिंदी में तथा लोकसाहित्य में मुहावरों की अधिक संख्या मिलती है।

वाक्य का यह एक खंड होता किंतु वह संपूर्ण भाव को अपनी अर्थ-शक्ति से अधिक रोचक बनाता है। यह छोटा-सा खंड अर्थ गांभीर्य और भावों की अभिव्यक्ति का अपने में समेटे रखता है। राम नरेश त्रिपाठी ने मुहावरों की विशेषताओं की ओर संकेत करने हुए लिखा है - 'मुहावरा वाक्य के बाहर कभी नहीं जाता और वह अपना असली रूप नहीं बदलता।' स्पष्ट है कि वाक्य में प्रयोग किए बिना इसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

- मुहावरों की निम्न विशेषताओं का डॉ. रमेशचंद्र उल्लेख करते हैं -
- मुहावरा एक वाक्यांश होता है।
- वह भाषा विशेष की विलक्षणता है जो भाव के किसी विशेष पहलू को व्यक्त करता है।

इसकी उत्पत्ति विभिन्न शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों के अनुकरण कहानी, कहावतों, विभिन्न अलंकारों तथा लक्षणा-व्यंजना शक्तियों आदि के आधार पर होती है।

- यह व्याकरणिक नियमों से निरपेक्ष होता है। भिन्न अर्थ की व्यंजना करता है।
- यह भिन्न-भिन्न देश, जाति या समाज के वर्गों की सूचक संज्ञा है।

मुहावरों के पीछे विस्तृत परंपरा, कथा या प्रथाएँ होती हैं। मुहावरे गद्यात्मक होते हैं और आकार में लघु होते हैं। अधिक तर मुहावरों में 'ना' प्रत्यय लगता है। इनसे किसी कार्य-व्यापार का बोध होता है। इनके पीछे विशेष पृष्ठभूमि होती हैं। उदा. 'मुँह को ताला लगना' - भगवान की मिन्नत पूरी करने के लिए दक्षिण भारत में मौन धारण करते हैं। चांदी की तार दोनों गालों और दाँतों के बीच से डाला जाता है। इससे मुँह थोडा-सा खुलता है खा सकते है किंतु बोल नहीं सकते। तिरूपती, मैसूर में इन तारों को 'ताला' कहते हैं। इसलिए 'मुँह को ताला लगना' मुहावरा चल पड़ा है। प्रकृति, आहार, जीव-जंतु, शरीर के अवयव, कृषि,दर्शन, उद्योग, साजशृंगार आदि दृष्टि से मुहावरों का वर्गीकरण किया जा सकता हैं। कुछ उदा.

- **प्रकृति संबंधी** - आसमान के तारे तोड़ लाना, ईद का चाँद होना, हवा होना, पानी-पानी होना, पत्थर की लकीर, पहाड़ हिलान आदि।
- **आहार संबंधी** - मूली-गाजर समझना, आटे - दाल का भाव मालूम होता, खिचड़ी पकाना, भुरता करना, टेढ़ी खीर, तील का ताड़ करना, जले पर नमक छिड़कना, पापड बेलना, दाल न गलना आदि।
- **जीव-जंतु संबंधी** - आस्तीन का साँप, गिरगिट की तरह रंग बदलना, धोबी का कुत्ता, झख मारना, तोते उड़ जाना, घुन लगना, हिरण हो जाना, उल्लु का पट्ठा आदि।
- **शरीर के अवयवों संबंधी** - सिर खपाना, माथा ठनकना, बाल खींचना, कलेजा ठंडा करना, पसली तोडना, पेट काटना, कमर कसना, कान भरना, नाक कटना, जीभ चलना, गला घोटना, मुँह फेरना, दाँत तोडना, औठ चबाना, आँखे फेरना, बाह पकड़ना, पैर छूना आदि।
- **कृषि तथा अन्य व्यवसाय संबंधी** - हल जोतना, घास काटना, हजामत करना, कसाई के खूँट बांधना, बाजार गर्म होना आदि।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* **दर्शन –** धर्मादि संबंधी – रोजा टूटना, रोजा करना, फाग खेलना, जहन्नुम कें जाना, स्वर्ग सिधारना, भूत सँवार होना, मन्नत मांगना, मुक्ति मिलना, दिवा स्वप्न देखना आदि।
* **साज शृंगार संबंधी –** सेहरा बांधना, घुँघट निकालना, पर्दा डालना, पगड़ी उतारना, माँग भरना, काजल की कोठरी, सोने में सुगंध, हीरे की कनी चाटना, कंधी करना आदि।
* **ऐतिहासिक–पौराणिक कथा–प्रसंगों से संबंधी –** द्रौपदी का चीर, बीरबल की खिचड़ी, सुदामा के तंदुल, राम–बाण औषधी, शबरी के बेर, भगीरथ प्रयास आदि।
* **अन्य वस्तुओं से संबंधी –** गुड़ियों का खेल, जता उठाना, झाडू मारना, ढोल पीटना, मीठी छुरी चलाना, घड़िया गिनना, कौड़ी मोल होना, पाँसा फेकना, झंडा गाड़ना आदि

कुछ मुहावरो के अर्थ और प्रयोग – उदा. –

* अँगूठा दिखाना – देने से साफ इन्कार करना।

सेठजी ने मंदिर के लिए चंदा देने को कहा था किंतु जब मांगने गए तो उनके मुनीन ने अंगूठा दिखा दिया

* आसमान सिर पर उठाना – बहुत शोर करना।

परीक्षा में अव्वल नंबर आने से मोहन के सभी दोस्तों ने आसमान सिर पर उठा लिया था।

* ईद का चाँद – बहुत कम दिखाई देने वाला।

सच में मीना तुम ईद का चाँद बन गई हो। आजकल रहती कहा हो?

* उंगली पर नचाना – वंश में रखना।

आजकल की स्त्रिया अपने पतियों को उंगली पर नचाती हैं।

* एक ही थैली के चट्टे–बट्टे – सभी का एक जैसा होना।

विश्वास किसपर रखें, झूठ बोलने में तो सब एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं।

* किस्मत खुलना – भाग्य चमकना।

एक करोड की लॉटरी लगने से मनीष की किस्मत खुल गई।

* खाक में मिलना – नष्ट–भ्रष्ट करना।

रावण ने सीता को वापर न देकर स्वयं को खाक में मिला दिया।

* गले का हार बनना – बहुत प्यार होना।

क्रिकेट के खेल में विश्वविक्रम करने वाला सचीन तेंदुलकर सब के गले का हार बन गया है।

* घास खोदना – व्यर्थ समय बरबाद करना।

कब तक घास खोदते रहोगे, काई अच्छा सा काम तो ढूँढ़ो।

* चीटी के पर निकलना – मृत्यु काल निकट आना।

गुंडे के साथ लड़ने का मतलब हैं चींटी के पर निकल आना।

* छप्पर फाड़कर देना – अचानक धन प्राप्त होना।

परिश्रम करने वाले को भगवान छप्पर फाड़कर देता है।

* जूती चाँटना – खुशामद करना।

नौकरी के लिए दूसरों की जूती चाटने से स्वतंत्र व्यवसाय करना अच्छा है।

* टांग अड़ाना – व्यर्थ में दखल देना।

अपना काम करते रहो, दूसरे के मामले में टांग अड़ाना अच्छा नहीं।

* ठोकरे खाना – धक्के खाना।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

दर दर की ठोकरें खाने से अब उसे अपने घर यात आ रही है।

* डंका बजाना - नाम रोशन करना।

स्वामी विवेकानंद ने सारे विश्व में अपने विचारों का डंका बजा दिया।

* तिल का ताड़ बनाना - साधारण बात को बढ़ा-चढ़ाकर बतलाना।

झगड़ा करने वाली स्त्रियाँ तिल का ताड़ बनाकर गली में शोर कर रही थी।

* दाँत पीसना - क्रोध करना।

बेवजह से दाँद पीसना सेहत के लिए ठिक नहीं है।

* नमक-मिर्च लगाना - बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

गुंडे को देखकर भाग आया मनीष नमक - मिर्च लगाकर बताई बातों पर कौन विश्वास करेगा?

* पापड़ बेलना - दु:खी जीवन बिताना।

आज उसे सब मानते हैं, बहुत दिनों तक पापड़ बेलने पर ही मोहन गाँव का सरपंच बना है।

* बाल - बाल बचना - बड़ी कठिनता से बचना।

इतना बड़ा आक्सिडेंट हुआ मगर व बाल-बाल बच गया।

* भीगी बिल्ली बनना - डर जाना।

अध्यापक के क्लास में कदम रखते हुए गृहपाठ करके न लाने वाले छात्र भीगी बिल्ली बनकर निकल गए।

* मक्खियाँ मारना - निरर्थक समय बिताना।

कामकाज छोड़कर मीना अधिक समय मक्खियाँ मारती है।

* रंग उड़ना - डर जाना।

साँप को देखकर विहा का रंग उड़ गया था।

* लहू का घूँट पीना - क्रोध पर काबू पाना, रोकना।

पिताजी, बेटे के द्वारा चोरी के रुपये लाने की बात सुनकर लहू का घूँट पीकर रह गए।

* विष की गाँठ - हानि पहुँचाने वाला व्यक्ति।

अरे, तुम उसे मित्र न समझो। वह तो विष की गाँठ है।

* सोने की चिड़िया - बहुत कीमती वस्तु।

समय सोने की चिड़िया है उसे हाथ से जाने न दो।

* हाथ पर हाथ धर के बैठना - निकम्मा रहना।

उद्योगी व्यक्ति को हाथ पर हाथ धरा व्यक्ति अच्छा नहीं लगता।

मुहावरों का प्रयोग केवल साहित्य में ही नहीं होता, जनसाधारण में भी इनका प्रयोग होता रहा है। आचार - व्यवहार, धर्म, संस्कृति आदि में इनकी अभिव्यंजना होती है। लोकभाषा की मिठास और अभिव्यक्ति के सीधेपन के कारण मुहावरो का आकर्षण दिन-ब-दिन बढ़ ही रहा है।

7.3.2 कहावतें

'कहावत' का अर्थ है उक्ति, कथन या लोकोक्ति। कथन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए एवं भाषा को सरस, सुंदर बनाने के लिए कहावतों का उपयोग किया जाता हैं।

जो पूरे वाक्य के समान होती है और साधारण अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट करती है। देश-

काल के गंभीर अनुभव, बुद्धिमत्ता के द्वारा कहावतों का लोक में उपयोग किया जाता है। इनसे ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों पर प्रकाश पड़ता है।

लोक साहित्य में घाघ, भड्डरी की कहावतें प्रसिद्ध हैं।

कहावतों की विशेषताएँ –

* अनुभवजन्य ज्ञान।
* नीतिपरक ज्ञान – उपदेश।
* आचार संबंधी बातें।
* मास्तिष्क की उपज।
* हिंदी की लगभग सभी बोलियों में इनका प्रयोग।
* विभिन्न भावों का प्रकाशन करने की क्षमता।
* भाषा का रूप संवर्द्धन
* भाषा में प्रभावोत्पादकता तथा कथन में तीव्रता।
* भाषा और शैली में विषमता होते हुए भी भावों में एकता।

कहावतें प्राय: किसी अनुभव सिद्ध कहानी का सार होती हैं। लाक्षणियता, व्यंजकता, अर्थगांभीर्य की दृष्टि से इनका महत्त्व हैं। साहित्य, शिक्षा, धर्म, दर्शन, कृषि, ऋतु–वर्षा, स्वास्थ्य, स्थान विशेष, इतिहास, सामाजिक संबंध आदि का कहावतों में आधार लिया जाता है, विषयों के संदर्भ में इनकी व्यापकता लक्षणीय होती है।

कहावतों के लक्षण

* लघुता
* गति–लय
* तुक
* निरीक्षण और अनुभूति की अभिव्यंजना
* रंजकता
* प्रभावपूर्णता
* ज्ञान वृद्धि
* संस्कृति का परिचय

कहावतों के विविध प्रकार एवं उदाहरण

शारीरिक अंगों से संबंधित –

* अक्लमंद को इशारा काफी।
* आँख में अंधे नाम नयनसुख।
* नाक दबाने से मुँह खुलता है।
* आँखों देखी न कानों सुनी।
* उखली सें सिर दिया तो मूसल से क्या डरना?
* उतने पाँव पसरिए जितनी चार हो।
* ऊँट के मुँह में जीरा।
* पाँचों उंगलियाँ समान नहीं होती।

नाते–रिश्तों से संबंधित –

* चोर चोर मौसेरे भाई।
* गरीब की जोरू सबकी भौजाई।

* मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काज़ी।
* गोद में लड़का गाँव में ढिंढ़ोरा।

धार्मिक आचार से संबधित –

* कर भला तो हो भला।
* गंगा गए गंगादास, जमुना गए जमुनादास।
* जैसे करनी वैसे भरनी
* भूखे भजन न होय गोपाला।
* नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज को।
* सब्र का फल मीठा होता है।

उद्योग व्यवसायों सें संबंधित –

* सौ सुनार की एक लुहार की।
* दूध का दूध पानी का पानी।
* हीरे की परख जौहरी जाने।
* धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का।
* कोयले की दलाली में हाथ काले।
* ऊँची दुकान फीके पकवान।
* कुम्हारिन अपने ही बर्तन सराहती है।
* घड़ी में तोला घड़ी में माशा।

पशु–पंछी, जीव–जंतु, प्राकृतिक चीजों से संबंधित –

* गधा धोने से बछड़ा नहीं बनता।
* घर की मुर्गी डाल बराबर।
* हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और।
* बिल्ली के भाग से छींका टूटा।
* पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर।
* कौआ चला हंस की चाल।
* जैसे साँपनाथ वैसे नागनाथ।
* खोदा पहाड़ निकली चुहिया।
* बोथे पेड़ बबूल के, आम कहाँ से आएँ।
* आसमान का थूका मुँह पर पड़ता है।
* उलटी गंगा पहाड़ को चली।

आहार से संबंधित

* आम खाने से काम या पेड़ गिनने से?
* एक अनार सौ बीमार।
* गुड़ खाए गुलगुलों से परहेज।
* थोथा चना बाजे घना।
* सीधी उंगली से घी नहीं निकलता।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* ककड़ी चोर को फाँसी नहीं दी जाती।
* भूख में चने भी मखाने।
* घर की मुर्गी दाल बराबर।
* बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।

वस्त्र-अलंकार से संबंधित

* हाथ कंगन को आरसी क्या ?
* आपका जूता आपका सिर।
* आँख न दीदा काढ़े कसिदा।
* बंदर के गले में मोतियों की माला।

अन्य विषयों से संबंधित -

* घर का भेदी लंका ढाए।
* चिराग तले अंधेरा।
* दूर के ढ़ोल सुहावने।
* चलती का नाम गाड़ी।
* एक म्यान में दो तलवारे नहीं समा सकती।
* एक तवे की रोटी क्या पतली क्या मोटी।

कुछ कहावतों का अर्थ और प्रयोग -

* अधजल गगरी छलकत जाए - थोड़े से ज्ञान, धन या मान वाले मनुष्य अभिमान करते हैं।

लॉटरी लगते ही मोहन ने बड़ा मकान क्या खरीदा, वह सब जगह डींग मारता रहात है। कहते हैं - अधजल गगरी छलकत जाए।

* आटे के साथ घुन भी पिस जाता है - अपराधी - बुरे के साथ रहने वाला निरपराध-अच्छा भी मारा जाता है।

रामू निरंजन जैसे जुआरी के रहने से उसे भी सजा मिली। कहते हैं कि आटे के साध घुन भी पिस जाता है।

* इस हाथ दे उस हाथ ले - दिया हुआ दान निष्फल नहीं जाता उसका अच्छा मिलता है।

उपकार करना मनुष्य का धर्म है, इससे उसे सुख मिलता है। बड़े लोगों ने ठीक ही कहा है - इस हाथ दे उस हाथ ले।

* ऊंची दुकान फीका पकवान - आडंबर की अधिकता।

मुंबई का हलवा प्रसिद्ध है, खाने पर वह किती को अच्छा नहीं लगा। इसी को कहते हैं - ऊंची दुकान फीका पकवान।

* एक और एक ग्यारह होते हैं - एकता में बड़ा बल होता है।

कीचड़ में फँसी गाड़ी अकेला कैसे निकालेगा। जरा सब मिलकर हाथ लगाओ क्योंकि एक और एक ग्यारह होते हैं।

* ओस के चाटे प्यास नहीं बुझती - थोड़े से काम नहीं चलता।

दो-चार हजार से तेल की मिल नहीं चलाई जा सकती है, कहते हैं - ओस के चाटे प्यास नहीं बुझती।

* कोयले की दलाली में हाथ काले - दुष्टों की संगति से कलंक लगता है।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

निरंजन से क्या दोस्ती कर ली, पत्ते खेलने वालों के साथ रामू को भी पुलिस ले गई। कहते हैं - कोयले की दलाली में हाथ काले।

* खोदा पहाड़ निकली चुहिया - अधिक परिश्रम से कम फल मिलना।

आशा थी कि कुँए का पानी धूप काल तक सबको मिलेगा, किंतु वह हफ्तेभर में ही सूख गया। कहते हैं - खोदा पहाड़ निकली चुहिया।

* गुड़ खाए गुलगुलों से परहेज - बनावटी परहेज।

प्याजी की पकौड़ियाँ खाते हो और प्याज नहीं खाते। कहते हैं गुड़ खाए गुलगुलों से परहेज।

* घाट घाट का पानी पीना - अनेक अनुभव प्राप्त करना।

मनीष का तुम कुछ नहीं बिघाड़ सकते वह तो घाट घाट का पानी पीना पी चुका है।

* चिराग तले अंधेरा - विद्‌वान- बुद्‌धिमान के यहाँ भूल होना।

राजधानी दिल्ली में ही अत्याचार और खून का धमाका। कहते हैं चिराग तले अंधेरा।

* छाती पर साँप लोटना - ईर्ष्या से जलन होना।

मोहन की पदोन्नती के समाचार सुनते ही ऑफिस के कर्मचारियों की छाती पर साँप लोट गया।

* जैसी करनी वैसी भरनी - कर्मों के अनुसार फल मिलना।

गरीबों को सताने का परिणाम अच्छा नहीं होता।

* तबेले की बला बंदर के सिर - अपराधी कोई और पर फँसे कोई और

शिकायत तो पिताजी के आगे छोटे ने की और दोष मुझे ही दिया जा रहा। इसी को कहते हैं तबेले की बला बंदर के सिर।

* डूबते को तिनके का सहारा - कठिनाई में थोड़ी सहायता भी लाभदायक

रामू की थोड़ी मदद की उसे पडोसी के यहाँ काम मिला। कहते हैं डूबते को तिनके का सहारा।

* दूर के ढ़ोल सुहावने - दूर की वस्तु अच्छ दिखाई देती है।

सभी ग्वालियर के गज़क की प्रशंसा करते थे, पर जब लाए तो अच्छी न लगी। कहते हैं दूर के ढ़ोल सुहावने।

* नाच न जाने आँगन टेढ़ा - काम करना न जानने से बहाना बनाना।

तुलसीदास जी के पदों का अर्थ तो मोहन नहीं जानता, कहता है पद अशुद्‌ध है। कहते हैं नाच न जाने आँगन टेढ़ा।

* बिना सेवा मेवा नहीं - परिश्रम से ही अच्छा फल मिलता है।

कष्ट करोगे तो सफलता मिलेगी कहते हैं बिना सेवा मेवा नहीं।

* भैंस के आगे बीन बजाय, भैंस खड़ी पगुराय - मूर्खों के आगे उपदेश करना व्यर्थ है।

अनपढ़ रामू के आगे लेख पढ़कर सुनाना वैसे ही होगा जैसे भैंस के आगे बीन बजाय, भैंस खड़ी पगुराय।

* मुँह में राम बगल में छुरी - ऊपर से मित्रता, मन में शत्रुता।

नरेंद्र ने एकांत में ले जाकर मोहन का काम पूरा कर दिया। कहते हैं मुँह में राम बगल में छुरी।

* रोज कुआँ खोदना, रोज पानी पीना - उतना ही कमाना जितना खर्च के लिए काफी है।

महेश मेरा क्या हाल पूछता है? यहाँ तो बस रोज कुआँ खोदना, रोज पानी पीना है।

* लोहे से लोहा काटता है - शत्रु से शत्रु को परास्त। नष्ट करना।

खाँसी करते-करते वह परेशान है उसे कुछ खट्टा खाने को दो क्योंकि लोहे से लोहा काटता है।

* विषस्य विषमौषधम् – लोहा लोहे को काटता है, काँटा काटे से।

दुष्ट के साथ सज्जनता का व्यवहार अच्छा नहीं। उसके साथ तो विषस्य विषमौषधम् का बर्ताव करना चाहिए।

* सिर मुंडाते ही ओले पड़े – काम के शुरू होते ही आपत्ती आना।

रामलाल ने दुकानदारी आरंभ की और मुनीम ने पहले ही दिन की जमा पुंजी लेकर भाग गया। कहते हैं सिर मुंडाते ही ओले पड़े।

* होनहार बिरवान के होत चिकने पात – बचपन में ही श्रेष्ठ बनने के गुण दिखाई देना।

सिद्धार्थ गौतम को देखकर किसी ने कहा था कि यह बालक बड़ा होकर महान् पुरुष बनकर विश्वकल्याण करेगा कहते हैं होनहार बिरवान के होत चिकने पात।

7.3.3 पहेलियाँ

पहेलियाँ, पहेली, बुझावैल आदि विविध नामों से इसका प्रयोग होता है। मनुष्य गोपनीय बातों को छिपाने के लिए इनका प्रयोग करता है। लोकजीवन की प्राचीनतम अभिव्यक्ति पहेलियाँ हैं। मनुष्य की इच्छा, प्रतिभा और विवेक मूल्यांकन के लिए इनका उपयोग किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान संबंधी तथ्यों, व्यावहारिक मूल्यों के लिए एवं मनोरंजन के लिए इनका प्रयोग होता हैं। इनसे बौद्धिक विकास होता हहै, परिवेश को देखने की नई दृष्टि विषयों का विवरण, इतिहास, सामाजिक जीवन, धर्म, दर्शन लोकविश्वास आदि का कुशलतापूर्वक दर्शन करवाया जाता है। प्रक प्रकार से यह बुद्धि की परीक्षा का साधन है।

पहेली के दो अंग होते हैं – एक है समस्या या प्रश्न और दूसरा है निदान या 'उत्तर'। लोकमानस इसका निर्माण स्थान है ता लोक समुदाय इसके विकास का क्षेत्र है। इसलिए इसके आकार-प्रकार में विविधता हैं।

पहेली की उत्पत्ति के संदर्भ में डॉ. फ्रेजर का कथन है – 'सर्व साधारण के सामने मनुष्य अपनी बात स्पष्ट करना नहीं चाहता होगा अत: का प्रयोग वैदिक चिंतन, याज्ञिक क्रियाओं, महाभारत, बौद्ध-जैन साहित्य, कथा सरित्सागर, वेतालपंचविंशति, बाणभट्ट की कादंबरी, संस्कृत के आख्यानों आदि में मिलता है। पाश्च्यात्य जगत् में यूनान में इनका आरंभ हुआ है फिर इंग्लंड, जर्मन, चीन आदि देशों में इनका आकर्षण दिखाई देता है।

विषयों की विविधता से डॉ. सत्येंद्र, डॉ. कृष्णराव उपाध्याय ने इसके निम्न भेद किए हैं –

डॉ. सत्येंद्र ने पहेलियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है – खेती, भोजन, घरेलू वस्तुओं, प्राणी, प्रकृति, अंग-प्रत्यंग एवं अन्य विषयों से संबंधित पहेलियाँ।

तो डॉ. कृष्णराव उपाध्याय के अनुसार हैं – शरीर, भोज्य पदार्थ और प्रकीर्ण

भले ही इन वर्गीकरणों के अतिरिक्त बहुत विषय शेष रह जाते हैं। त्याग, तपस्या, देशप्रेम, देशभक्ति को अपने जीवन में स्थान देने वाले महान हस्तियों को भी पहेलियों में स्थान दिया हुआ मिलता है।

वर्गीकरणानुसार पहेलिओं के कुछ उदाहरण –

खेती संबंधी

* हरी मन भरी नौ-लाख मोती जडी।
  राजाजी के महाल में दुशाला ओढ़े खड़ी।। (मकई का खेत)
* – राधो जले रघ मघ। तीन माथा दस पग।। (हल, हलवाहा, बैल)

आहार-भोजन संबंधी –

* काली नदी, कलूटा पानी। डूब मरी चंद्रावली रानी।। (पूरी)
* मामा मामा बाजार जा। एक टांग की मुर्गी ला।। (बैंगन)

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof   dt.05-02-2014)

* बाप से बेटा बड़ो, पोता हो सरदार। तीनों जनमें एक दिन ज्ञानी करो विचार।। (दूध, दही, घी)
* सफेद बिल्ली हरी पूछ। बने तो बताओ, नहीं तो अम्मा से पूछ।। (मूली)

घर-परिवार से संबंधी -

* बिन दादा का पोता। फिरै दीवार से रोता।। (पोता)
* एक नार गोल गात। खड़ी खड़ी रोवे, जले। कोई न पूछे बात।। (मोमबत्ती)
* जब मांगू तब जल भर लावे। मेरे मन की तपन बुझावे।।
  मन का भारी तन का छोटा। ए सखी साजन, ना सखी।। (लोटा)

जीव-जंतू, पशु-पंछी से संबंधी -

* एक जीव असली। जिसके हड्डी न पसली।। (जोंक)
* तुम उत्ते बड़े, हम इत्ते बड़े। हमने छू दिया, तुम रो पडे।। (बिच्छू)
* चार अलन, चलन चार घर बर्तन। दो सूखी लकड़ी, एक राम लटकन।। (गाय)
* काला है पर कौवा नहीं, बेढ़ब है पर हौवा नहीं। करे नाक से अपना काम, बतलाओ तुम उसका नाम।। (हाथी)
* ऊपर से मामा आए। काँ- काँ की खबर लाए।। (कौवा)

प्रकृति से संबंधी -

* रोम रोम से रोत हूँ मैं। सबके आँगन धोता हूँ मैं।। (बादल)
* रोज सबेरे खाने जाते। मिलती है पर दिख न पाते।। (हवा)
* संध्या को पैदा हुई, आधी रात जवान। बड़े सबेरे मर गई, घर हो गया मसान।। (ओस)
* जल में थल, मृदंग में पानी। जे बूझ से बड़ा गियानी।। (नारियल)

धर्म नीति, उत्सव, पर्व संबंधी -

* एक पेड है ऐसा, कहो कौन है कैसा ? शिव सो जढ़े इसी का पत्ता, फल का बनाता सुने मुरब्बा।। (बिल्व)
* पंद्रह दिन से लगुन लिखाई, नाम धरोवर बाई। दुल्हा दुलहिन दोनों मरे, पीछे बजी बधाई।। (होली)

वेशभूषा - वस्त्रादि से संबंधी -

* पहाड़ से आए बगुले, हरी टोपी लाल झगले।। (लाल मिर्च)
* देखि एक अनोखी नार। दो पाँव और मुँह चार।। आधा मानुस लीले रहे। पूझ पहेली खुसरो कहे।। (पाजामा)
* झाँझर कुआँल रतन फुलवारी।। (सिर का आभूषण - मौर)
* रच- रच गढ़ी रजत घर पड़े। आह करम जो पैरे पड़े।। (पाजेब)

बुद्धि-परीक्षण, ज्ञानवर्द्धन, मनोरंजन, गुप्त संभाषण, विदग्ध कथन आदि अनेक कारणों से पहेलियाँ जन-मानस में प्रचलित रही हैं। भारतीय संस्कृति, सामाजिक, जीवन-धर्म-नीति, उत्सव आदि के यथार्थ चित्र पहेलियों में मिलते हैं। कथ्य और कथन की दृष्टि से इनका महत्त्व रहा हैं।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

7.3.4 मुकरियाँ – ढकोसला

'मुकरी' का स्वरूप पहेली के समान होता है किंतु इसके प्रश्न के उद्घाटन में उसका उत्तर मिल जाता है। पहेली और मुकरी में कुछ लोक फर्क नहीं करते। पहेली में ज्ञानवृद्धि, मनोरंजनादि होता है किंतु मुकरी में आश्चर्य, कौतुहल के साथ रंजन भी रहता है। 'मुकरी' का अर्थ है किसी बात को कहकर मुकर जाना-नहीं कहना। प्रश्न और उत्तर के साथ-साथ मुकरी में शृंगार का भाव भी छलकता है।

कुछ उदाहरण -

✲ बरसा बरस आवे, मुँह में मुँह रस प्यावे। वा खातिर में खरचै दाम ए सखि साजन? ना सखि आम।।

✲ बड़ी थी मैं अचानक चढ़ी आयौ, जब उतारयौ तब वारीना आयो। सहम गई नहिं सकी पुकार, ए सखि, ना सखी बुखार।।

ढकोसला –

शब्दों का न निश्चित अर्थ, न उक्ति का अर्थ केवल प्रलाप हो तो उसे 'ढकोसला' कहते हैं। इनमें ऐसे घटना प्रसंगों का उल्लेख होता हैं जो न सत्य होती है और न उनके होने की संभावना होती है। कुछ आदिवासी जाति के लोक शादी-विवाह के अवसर पर ढकोसले सुनाते हैं। अमीर खुसरो के ढकोसले लोकप्रिय हैं।

कुछ उदाहरण -

✲ खीर पकाई जतन से, चरखाँ दिया जला। आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।।

✲ हाथी चढ़ ली पहाड़ पर बिनि -बिनि महुआ खाई। चिउंटी मरलिस, बाध के उकुटा पैर उठाई।।

7.3.5 टोना – टोटका, मंत्र

लोकमानस से निर्मित अनुभूतियों की धारा विज्ञान के विकास से भी विचलित नहीं हुई है। लोकविश्वासों का प्रभाव इतना जबरदस्त रहा है की वह लोकमानस की तह तक पैठ गया है। प्रत्येक समाज की अपनी - अपनी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि से संबंधित मान्यताएँ होती हैं जिनसे उस समाज के आचार-विचार, रहन-सहन आदि पर प्रकाश पड़ता है। समाज की मान्यताएँ हैं शकुन- अपशकुन, जादू-टोना- टोटका, मंत्र -तंत्र, झाड़फूक आदि। लोकविश्वासों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और थोड़ा विचित्र भी है। क्योंकि इनके कारण समाज में अनेक बुरी प्रथाओं का प्रचलन होता है।

उदा. किसी स्त्री की संतान जीवित नहीं रहती तब उसकी पहली संतान को मंदिर में अर्पित कर देते है या गंगा में बहा देते हैं। महाराष्ट्र में खंडोबा के स्थान पर देवदास-देवदासी इसी प्रथा की उपज है।

टोना-टोटका लोकसाहित्य का अंग है। विद्वान फ्रेजर ने इसे मैजिक (जादू) कहा है - 'लोकसाहित्य का मूल मानस मैजिक (टोने) का परिणाम है।' उनका यह मत नृविज्ञान पर आधारित है। जन-जीवन में आज भी इनका महत्त्व है। कुछ लोगों का कहना है कि स्वहित, समाजहित के लिए इनका प्रयोग होता है तो कुछ लोगों की दृष्टी से प्रतिकूल, अहित के लिए इनका प्रयोग होता है। ओझा, तांत्रिक, भगत, राख आदि डालकर तावीज बनाते हैं। इसको गले, बाह या कमर पर बांधने से बीमारी दूर होती है। संक्रामक रोगों के निवारण हेतु टोने-टोटके का उपयोग किया जाता है।

टोने-टोटकों के कुछ उदाहरण -

हाथ-पैर, माथा, कान के पीछे काला दिठौना लगाना, शेर या सूअर के नाखून पहनाने से बुरी नजर से बचाना, नमक, मिर्च, रार्ध आदि छोटे बालक पर से सात या नौ बार उदार कर उन चीजों को चौराहे पर फेकना।

जच्चे-बच्चे की माँ का, उनके वस्त्रों का ध्यान रखा जाता है, उनको मिलने वालों को बाहर ही टोका

जाता है जिससे आने वाले व्यक्ति के बुरी भावना का जच्चे और माँ पर कोई असर न हो। विशेष रूप से बांझ स्त्रीपर अधिक ध्यान रखा जाता है।

कुछ लोगों का मानना है - अमावस के दिन चौराहे पर उतार कर चीजें रखकर आना या नदी पर स्नान करना, किसीके टोके बिना घर में प्रवेश करना, पूरे दिन मौन रखना, काली वस्तुओं का दान करने से घर में समृद्धि शांति आती है।

ब्रज में टोट के संदर्भ में श्रवणकुमार की कथा जिसमें अंधे सास-ससुर की सेवा करने से नाखूष बहु टोटका करती है, जिससे वे दोनों दुर्बल होते हैं जब श्रवण को इस बात का पता चलता है तो वह पत्नी को मैके भेज देता है और माता-पिता को तीर्थ-यात्रा ले जाता है। उनकी प्यास बुझाने के लिए पानी लेने जाता है, तो राजा दशरथ के बाण से श्रवण की मौत हो जाती है। तब माता-पिता पुत्र वियोग से मरते हैं किंतु राजा दशरथ को शाप देते हैं। इस लोककथा में टोटके का प्रयोग मारने के लिए किया गया है।

हरियाणा में जादू-टोना से रूप-परिवर्तन से संबंधित 'लालसिंह आर हीरम' की कहानी प्रसिद्ध है जिस में लालसिंह एक मरा हुआ साँप और हीरम मेंढ़ा बनाएँ जाते हैं, उनके गले में धागा बांधा जाता है। धागे को तोड़ने से वह पुन: लालसिंह बनता है। भले ही ये बातें सबको चमत्कारिक लगती है किंतु लोकमानस में इनका प्रभाव छाया हुआ है।

टोने-टोटके का शुद्ध रूप हैं मंत्र। इनके द्वारा भी बुरे-अच्छे कार्य करवाएँ जाते हैं। भूत-प्रेत की बाधाएँ, बीमारी को दूर करना सिद्धि प्राप्ति, चमत्कार प्रदर्शन आदि से संबंधित मंत्रों का समाज में प्रचलन दिखाई देता है। परंपरागत, व्यक्तिपरक, उच्च मंत्र जैसे भेद मिलते हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार लौकिक और पारमार्थिक मंत्र भेद है। चिकित्सा, वर प्राप्ति के लौकिक मंत्र जिन्हें 'श्वेत टोना' कहते हैं। तो मारक, अमंगल हेतु पारमार्थिक मंत्र जिन्हें 'काला टोना' कहते हैं।

मंत्रों के निर्माण के संदर्भ में कहा गया है कि शिवजी के मुख से जो शब्द निकले वे ही मंत्र हैं। तो कुछ विद्वान मानते हैं कि सिद्ध पुरुषों ने जिन शब्दों का उच्चारण किया वे 'मंत्र' हैं। इनका संबंध वेदों से रहा है। वैदिक ऋचाओं के मंत्र 'सुर' में पढ़े जाते हैं। सामवेद का तो गायन किया जाता है। इनके शुद्ध उच्चारण से लाभ और अशुद्ध उच्चारण से हानि होती है।

लोकमानस मंत्र-तंत्रों में विश्वास करते आ रहे हैं। काली तील, उड़द के दाने, नींबू या आटे का सुई चुभाकर रखा गया पुतला चौराहे पर फेंकने से या गाड़ देने से शत्रु की मौत होती है। भूत, प्रेत, डाकन दोपहर या रात में १२ से ३ तक सुनसान स्थान या शमशान से निकलते हैं। जिन्हें मंत्रों द्वारा भगाया जाना। आधा सिर दर्द, पीलिया, बिच्छू, साँप का काटना मंत्रों से ठिक किया जाता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्ति के लिए मंत्र सहायक होते हैं किंतु ध्यान रखें कि मंत्रोच्चार शुद्ध हो।

टोना - टोटका, मंत्र का प्रयोग अच्छाई-बुराई के लिए आज भी लोकजीवन होता रहा है।

7.4 शब्दार्थ

* सौष्ठव - सौंदर्य
* विलक्षणता - चमत्कार
* आख्यान - कहना, वर्णन, पौराणिक कथा
* यूनान - ग्रीक, आयोनिया, यूरोप का एक देश

7.5 सारांश

भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए मुहावरे, कहावतें आदि का प्रयोग किया जाता है। इनसे न केवल

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

भाषा प्रभावपूर्ण बनती तो उसमें माधुर्य एवं सौंदर्य भी निर्माण होता है, भाव एवं विचार सुस्पष्य होते हैं। कथन में चमत्कार निर्माण होता है। मुहावरे गद्यात्मक होते हैं, इनकी विस्तृत परंपरा है। आकार में लघु होते हैं किंतु इनसे कार्य-व्यापार का बोध होता है। वाक्य के बाहर मुहावरे का प्रयोग नहीं होता। प्रकृति, आहार, जीव-जंतु, शरीर के अंग, कृषि, दर्शन आदि से संबंधित अनेक मुहावरे प्रचलित हैं।

कथन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कहावतों का भी प्रयोग होता है। साधारण अर्थ से भिन्न अर्थात विशेष अर्थ की इनसे अभिव्यक्ति होती है। समाज, इतिहास, संस्कृति पर इनके द्वारा प्रकाश पड़ता है। घाघ, भड्डरी की कहावतें अर्थात् लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध है। इनका प्रयोग वाक्य के बाद किया जाता है। मुहावरो के समान इनका भी, धर्म, उद्योग, पशु-पंछी, रिश्ते, शारीरिक अंग, आहार, वस्त्रादि से संबंधित वर्गीकरण किया जाता है।

गोपनीय बातों को छिपाने के लिए पहेलियों का प्रयोग होता है। ज्ञान विज्ञान, रंजन, प्रतिभा, विवेक की वृद्धि, बौद्धिक परीक्षा का यह साधन है। लोकमानस में इनका निर्माण होता है। प्रश्नोत्तरे शैली में इनका प्रयोग होता है। ढकोसले, मुकरियों का प्रयोग मनोरंजन के लिए ही किया जाता है और टोना, टोटका, मंत्र आदि से लोकमानस - संस्कृति का पता चलता है।

7.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न -

* ‘मुहावरो’ का अर्थ बताकर, भाषा की दृष्टि से उसका महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
* ‘कहावत’ की परिभाषा स्पष्ट करते हुए उदाहरण दीजिए।
* ‘मुहावरे’ एवं ‘कहावतों’ के द्वारा भाषा माधुर्यपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण बनती है’ स्पष्ट कीजिए।
* लोकजीवन में टोना - टोटका, मंत्र की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(ख) टिप्पणियाँ -

* मुहावरा
* कहावतें
* पहेलियाँ
* टोना - टोटका

(ग) एकवाक्यीय उत्तर वाले प्रश्न -

* मुहावरे का एक उदाहरण देकर वाक्य में प्रयोग कीजिए।
* कहावत का एक उदाहरण दीजिए।
* एक पहेली लिखिए।
* ‘ऊंची दुकान फीका पकवान’ का अर्थ लिखिए।
* ‘अंगूठा दिखाना’ मुहावरे का अर्थ लिखिए।
* आहार से संबंधी एक मुहावरा लिखिए।
* व्यवसाय से संबंधी एक कहावत लिखिए।

(घ) सही पर्याय लिखिए -

* मुहावरा अपने कौनसे रूप को नहीं बदलता ?

  (अ) बाह्य (ब) असली (क) नकली (ड) विशेष
* उक्ति, कथन या लोकोक्ति को क्या कहते हैं?

  (अ) मुहावरा (ब) ढकोसला (क) कहावत (ड) मुकरी

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* 'मामा मामा बाजार जा एक टांग की मुर्गी ला' इस पहेली का उत्तर क्या है ?

  (अ) भिंडी (ब) बैंगन (क) मकई (ड) लाल मिर्च

* 'लालसिंह और हीरम' जादू टोने से रूप-परिवर्तन की कहानी कहा प्रसिद्ध है?

  (अ) हरियाणा (ब) राजस्थान (क) अवध (ड) ब्रज

7.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य

* बीस मुहावरो का अर्थ और वाक्य में प्रयोग कीजिए।
* बीस कहावतों का वाक्य में प्रयोग कीजिए।
* वर्गीकरण के आधार पर मुहावरो की सूची तैयार कीजिए।
* वर्गीकरण के आधार पर कहावतों की सूची बनाइए।
* किसी गाँव में जाकर टोने - टोटके के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करें।

7.8 संदर्भ - अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* मानक व्यावहारिक हिंदी व्याकरण तथा रचना - श्यामजी शर्मा - आर्य बुक डेपो, नई दिल्ली, ४ संकरण २००२
* हिंदी साहित्य का बृहत्इतिहास (षोडश भाग) संपा. राहूल सांस्कृत्यायन - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

इकाई : 8

लोकसाहित्य : भावाभिव्यक्ति और कलात्मक सौंदर्य

अनुक्रम

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 विषय - विवरण
8.4 शब्दार्थ
8.5 सारांश
8.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
8.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य
8.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

8.1 उद्देश

* लोकसाहित्य भावाभिव्यक्ति से परिचित होना।
* लोकसाहित्य के कलात्मक सौंदर्य की जानकारी प्राप्त करना।

8.2 प्रस्तावना

मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए मौखिक एवं लिखित रूप का प्रयोग करता है। लोकसाहित्य की मंदाकिनी अनंत काल से लोककंठ के द्‌वारा अखंड रूप से प्रवाहित हो रही है। अत: मनुष्य अपने जीवन के सुखद-दुखद घटना- प्रसंगों के द्‌वारा भावों की अभिव्यक्ति करता रहा है।

धर्म, संस्कृति, परंपराओं के आचरण से, व्रत, पूजा, आराधना, विधि, उत्सव आदि के पालन से भक्ति, आस्था, श्रद्‌धा जन्मोत्सव, कर्णछेदन - नामकरण, विवाह आदि संस्कार समारोह से हर्ष, आनंद, उमंग, उत्साह, व्रत- उपासना आदि से मानसिक प्रसन्नता संतोष, निग्रह, संयम, स्वास्थ्य, पारिवारिक सुरक्षा का भाव छिपा हुआ है। लोकसाहित्य के लोककथा, लोकगाथा, लोकगीत आदि विविध अंगों के द्‌वारा मनुष्य ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है।

लोकसाहित्य के अध्ययन से विविध भाव-भावनाएँ एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही साथ लोकसाहित्य के कलात्मक सौंदर्य का ज्ञान उसमें प्रयुक्त रस, छंद, अलंकार आदि से होता है। इन्हीं बातों का अध्ययन इस इकाई में किया जा रहा है।

8.3 विषय विवरण

मनुष्य का मन भावनाओं, प्रवृत्तियों का समृद्‌ध भंडार है। समय - समय पर उसमें अनेक भाव-तरंगो का संकलन होता है और विशेष प्रसंगों या घटनाओं के समय उनकी अभिव्यक्ति होती हैं। मनुष्य चाहे शिक्षित हो या अनपढ़, शहर में रहाता हो या गाँव में भावों की अभिव्यक्ति तो सर्वत्र होती हैं। जीवन के तर्क-वितर्क, समस्याएँ उलझने, संघर्ष, समस्याओं का हल आदि से पीड़ा, वेदना, कुंठा, अकेलापन, आनंद, हर्ष जैसे विविध भाव निर्माण होते हैं। जीवन में घटित क्रिया, घटना- प्रसंगों से भावों का घनिष्ठ संबंध होता है। लोकसाहित्य में लोकमानस की सीधी - सरल - सहज- अभिव्यक्ति होती है। लोकसाहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

लोकगीतों में इन भाव-भावनाओं की सूक्ष्म, मार्मिक, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप में मिलती है।

लोकसाहित्य में भावात्मक अभिव्यक्ति

लोकसाहित्य की विविध विधाओं के अध्ययन से मनुष्य जीवन की कार्यप्रक्रिया, घटनाओं से अभिव्यक्त होने वाली भावनाओं से उसकी मानसिक स्थिति का आकलन होता है। लोककथाओं के द्वारा परंपराओं, प्रथाओं में आबद्ध संस्कार, भक्ति, श्रद्धादि भाव, लोककथाओं से वीरता, साहस, यश-कीर्तिगान, कहावतों-मुहावरो आदि से जीवनानुभूतियों का निचोड़ तो लोकगीतों में व्यंग्य, उपहास, विषाद, हर्ष-आनंद, विरह-मिलन की स्थिति, आशा-आकांक्षा के स्वर वाणीबद्ध किए गए हैं। मानव जीवन के सुख-दुखपूर्ण भाव-व्यंजना का अक्षय भंडार है लोकसाहित्य।

समग्र लोकसाहित्य मानव संवेदनाओं-भावनाओं की किसी ना किसी रूप में स्वाभाविक अभिव्यंजन करता है। इसमें लोक की मंगलदायी कामना है, अन्याय- अत्याचार, विरह की पीडाओं -वेदनाओं से निर्मित कराह है, तो रूढ़ियों - परंपराओं के प्रति विद्रोह, दुष्ट प्रवृत्तिओं के प्रति निंदा तो सज्जनों के सदाचरण की प्रशंसा, व्यावहारिक चतुरता तो कही नैतिकता की सीख भी है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मारवाडी, राजस्थानी बोलियों में उपलब्ध लोकसाहित्य- मौखिक परंपराओं से प्राप्त लोकगीतों, लोककथाओं से भाव-व्यंजना होती है।

सुखात्मक-दुखात्मक भावों के अनुपम क्षण मन की तह तक-गहराई तक पैठकर मनुष्य के मन को रसमग्न कर देते हैं। पुत्र प्राप्ति का आनंद नारी के मातृत्व की उपलब्धि है जिससे उसे परिवार और समाज में आदर का स्थान मिलता है। मातृत्व प्राप्ति में ही वह अपने जीवन की सफलता मानती है - निम्न लोकगीत में उसके भाव देखिए -

''नइहरे ना बाटे बीरन भइया, ससुरे ना देवर हो,
राजा मोरे गोदिया, न जनमत बलकवा ....।''

लोकगीतों में माता की ममता, स्नेह, वत्सलता, विवशता का वर्णन राम और कृष्ण की जीवन-गाथा के मार्मिक प्रसंगों को मानवीय पार्श्वभूमि पर लाकर प्रस्तुत किए गए हैं। कौशल्या माता, यशोदा मैया की आंतरिक पीड़ा लोकगीतों में सहज एवं स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुई है।

पुत्र जन्मोत्सव, नामकरण, कर्ण छेदन जैसे धार्मिक संस्कारों के समय हर्ष - उल्लास से देवी देवताओं के गीतों का गायन किया जाता है। विवाह भी मनुष्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है जिसमें आनंद, उल्लास, उमंग, भविष्य के सुनहरे सपने, नए रिश्तों को संभालने का डर, ससुराल में जाते समय व्यथित मन, माता-पिता के लाड़-प्यार से दूर जाने वाली कन्या के मन की बैचैनी का सरस वर्णन लोकगीतों का विषय रहा है।

कन्यादान-बिदाई की तीव्र व्यथा-संवेदना का वर्णन निम्न भोजपुरी लोकगीत में देखिए -

''अक्षत कांपेला चन्नन कांपेला ......''

बिदाई का प्रसंग करुणा वेदना से युक्त होता है। वधू का विलाप, परिवार के सभी सदस्यों को एक-एक आसुओं की बारिश में सबको भीगो देती है। अनुभूतियों की तीव्रता किसी भी भावुक कलाकार को अभिव्यक्त करने के लिए मजबूर कर देती है। आधिक तर लोकगीतों में नारी मन की सूक्ष्म भावनाओं की बड़ी सहज और सरस अभिव्यक्ति होती है।

ससुराल में वातावरण बिल्कुल अलग होता है। वहाँ तो नववधू के आगमन के समय हर्ष, उमंग के साथ स्वागत की तैयारी की जाती है। मधुर गीतों का गायन होता है। बिदाई का प्रसंग एक घर में दुख दो दूसरे घर में आनंद निर्माण करता है।

एक ही माता-पिता से बेटा-बेटी जन्म लेते हैं किंतु दोनों का भाग्य कितना अलग रहता है। भाई-बहन कितने दिनों तक साथ साथ खेलते हैं, खाते-पिते हैं। बेटी विवाह के बाद यह सारे अधिकार छोड़कर अनजान, पराये लोगों के साथ जाती है उसकी असह्य पीड़ा का भाव निम्न गीत में देखिए -

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

''हम बिरना ऐ अम्मा जन्मे एक के संगी।

संगे - संगे खेल ही ऐ अम्मा खइली एक संग।।'' .....

भाई-बहन, माता-पिता को छोड़कर जाने वाली बेटी की पीड़ा का वर्णन इस गीत में मिलता है।

दांपत्य जीवन में नारी अनेक भूमिकाओं में भावाभिव्यक्ति करती है। परिवार के बुजुर्गों के प्रति आदर, पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम, बच्चों के प्रति स्नेह, वात्सल्य, पारिवारिक सामंजस्य के लिए परिश्रम, सहकार्य, त्याग, परंपरा - प्रथा पालन में आस्था, श्रद्‌धाभाव दर्शाती है। बेटी, बहन, माँ जेठानी, देवरानी पत्नी, बहू, सेविका आदि अनेक रूपों में नारी अपनी भूमिकाएँ और दायित्व निभाती है। अपनी कार्य पूर्णता के लिए विविध प्रसंगों में उसके विविध भावों की अभिव्यक्ति होती है। लोकगीत और गाथाओं में इन भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म अनन्य साधारण महत्त्व रखता है। उसमें आचरण के संदर्भ अनेक बातों का उल्लेख किया गया है। मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। इसी लिए दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, शुद्‌धता आदि सत्प्रवृत्तियों का आचरण वह बड़ी आस्था से करता है। धार्मिक पूजा-विधि, अनुष्ठानों में वह पेड़, पौधे, कुआँ, तालाब, नदी, पर्वत, अग्नि, चंद्र, सूर्य, इंद्र आदि को मानता है और बड़ी श्रद्‌धा से आराधना - पूजा करता है।

लोकजीवन में होली, फाग, चैता, वसंतोत्सव, दशहरा, दुर्गोत्सव में उसकी आनंद, हर्ष, उमंग की भावना व्यक्त होती है। व्रत - उपवास, त्यौहारों में धार्मिक आस्था के साथ मोह, माया, क्रोध आदि बुरी भावनाओं पर नियंत्रण रखने के साथ-साथ सामाजिक संबंधों में दृढता आती है और एकात्मकता का भाव बढ़ता जाता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में उमंग उत्साह की तीव्रता अधिक दिखाई देती है।

प्रकृति के साथ मनुष्य का संबंध अनादि काल से रहा है। प्रकृति के विशाल प्रांगण में मनुष्य बड़ी स्वच्छंदता एवं उन्मुक्तता से जीवन यापन करते आ रहा है। लोकसाहित्य में इन बातों का यथार्थ चित्रण मिलता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, अत: मनुष्य इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है। मास, ऋतु-चक्र के साथ मनुष्य की भाव तरंगे भी विविध रूपों के द्‌वारा प्रकट होने लगती हैं। सूर्य का आतप, चांदनी की उज्वलता एवं शीतलता, समीर की चंचलता, सावन की हरियाली, पर्वतीय मनोरम शोभा, बारिश में नृत्य करने वाली दामिनी, घने-काले बादलों का नर्तन, वसंत की बहार, शिशिर की ठण्डक आदि संयोग में रति भावों के उद्‌दीपन में सहायक होते हैं और वियोग में असह्य पीड़ादायक बनते हैं। लोककंठ से सुमधुर गीतों के यह प्रेरणास्रोत बनते हैं। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मनुष्य के मन में नए-नए गीतों के निर्माण में सहायक रही है। लोकमानस में उभर कर आने वाली भावनाएँ गीतों के रूप में मौखिक परंपरा के द्‌वारा अभिव्यक्त होती है।

व्यक्तिगत और समूह के हित, कल्याण के लिए किए जाने वाले व्रत, उपासना, विधिओं में अंतर होते हुए भी लोकविश्वास एवं लोकमान्यताओं में साट्‌ट्य मिलता हैं। वटसावित्री व्रत, करवा चौथ, शिवरात्रि, छठ-पूजा, हरितालिका, दुर्गाष्टमी, जन्माष्टमी, रामनवमी के अवसर मंगल गीतों का गायन होता है। घर-परिवार का आनंद एवं उत्साहवर्धक वातावरण की निर्मिति होती है। मनोकामनाओं की पूर्णता, अखंड सुहाग की मांग, पति की आयु में वृद्‌धि, स्वास्थ्य, संपन्नता परिवार की रक्षा की कामना करते हुए स्त्रियाँ एक - दूसरे से मिलकर मिठाई, बत्तासे आदि बड़े हर्ष से बाँटती हैं। स्पष्ट है कि उत्सव-पर्व- उपवास, विविध विधिओं के द्‌वारा मनुष्य के विविध भावों की सहज - स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्ति होती हैं।

लोकसाहित्य का कलात्मक सौंदर्य

लोकसाहित्य के लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य आदि विविध अंग है। इन सबमें लोकम नस की लोकभाषा - बोली में स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्ति होती है। मौखिक रूप से पीढ़ी - दर - पीढ़ी में कुछ मूल रूप में और कुछ परिवर्तित रूप में इनकी उपलब्धता बड़ी कठिनाई से की जा रही है। लोकबोली या भाषा में उपलब्ध लोकसाहित्य में रस, छंद, अलंकार, कहावतें, मुहावरे, लोकोक्तियों के भी सहज सुलभ प्रयोग मिलते हैं। इसलिए इनसे न केवल भावों की अभिव्यक्ति होती है बल्कि कलात्मक सौंदर्य की भी निर्मिति होती है।

लोकसाहित्य में रसव्यंजना

मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई हैं। रस की अभिव्यक्ति भोजपुरी, ब्रज, अवधी के गीतों में हुई हैं। कहा गया है कि 'लोकगीत रस से भरा हुआ प्याला है जिनके पिने से प्यास नहीं बुझती।' बार-बार श्रवण करने के बाद भी तृप्ति नहीं होती। विविध अवसरों पर गाए जाने वाले इन गीतों में शृंगार रस, वीर रस, हास्य रस, करूण रस, अद्‌भुत रस की अभिव्यंजना होती रही हैं, जैसे -

शृंगार रस

लोकसाहित्य में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों वर्णन मिलता है। विवाह, उत्सव में सुखद भावों की अभिव्यक्ति होती है - कृष्ण-गोपियों का प्रेम, रासलीला खेलना, मुरली के सुरों का प्रभाव, दहि बेचने का बहाना, पथ भूल जाना, फागुन मास में होली की उमंग, रंगभरी पिचकारी मारना आदि शृंगार पूर्वक चेष्टाओं में स्पर्श, दर्शन, मिलन की उत्सुकता, आनंद की भावना व्यक्त होती है। रंग की क्रीडा का मनोरम दृश्य देखिए -

'भरी पिचकारी मारी कान्हा टपकै रंग केसरिया ....।'

शृंगार रस का दूसरा पक्ष है वियोग। शृंगार जिसमें दुःख, असह्य पीड़ा, वेदना के भाव व्यक्त होते हैं। वर्षाऋतु अर्थात् सावन का महीना उसमें भी बादल, बिजली दुःख - पीड़ा बढ़ाते हैं। बिदाई, कजली गीतों में वियोग की भावनाओं की अभिव्यक्ति की हुई मिलती है। उदा - बादल बरसे बिजुली चमके, जियरा लालचे मोर सखियाँ .....

वीर रस

'आल्हाखंड' वीर रस पूर्ण काव्य है। ओजपूर्ण भाषा में युद्‌ध का यथार्थ वर्णन किया गया है। लोकगीतों का नायक युद्‌ध में शत्रु से लड़कर अपनी माँ-बहनों की लाज रखता है।

हास्य रस

लोकनाट्य, तमाशा का सोंगाड्या, विदूषक, चित्रविचित्र वेशभूषा, अटपटी बोली-संवादों से हास्य रस की निर्मिति होती है। विवाह के समय वधू-वर पक्षवाले हास - परिहास - उपहास पूर्ण गीतों का गायन करते हैं।

करूण रस

प्रिय व्यक्ति की मृत्यु या अनिष्ठ प्राप्ति से इसकी निर्मिति होती है। स्त्री-पुरुष अपने दुख के बोझ को सुर एवं लयबद्‌ध कथन गायन करके थोड़ा हलका पन महसूस करते हैं।

अद्‌भुत रस

रौद्र रस, बीभत्स रस, वात्सल्य रस एवं भक्तिरस से पूर्ण कुछ गीत लोकसाहित्य में उपलब्ध हैं।

छंदों का सहज प्रयोग

लोक कलाकारों को न भाषा का न पदसंघटन, न जटिल शब्दों का अर्थ ज्ञात है फिर भी लोकप्रचलित शब्दावली से उसमें माधुर्य, सौंदर्य, कोमल भावों की व्यंजना हुई। संगीत की दृष्टि से कर्णमधुर बनाने के लिए ग्रामीण जीवन के संस्कारों की गहराई से चुने हुए शब्द प्रयोग गीतों की रचना कर गए हैं।

लयात्मकता, प्रभावपूर्णता, कोमलता, सरसता, आकर्षणीयता छंदों के कारण बनी रहती है। लोकसाहित्य

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

में प्रयुक्त छंदों के उनके अपने नियम हैं – ताल और लय पर ही वे आधारित होते हैं। शिशु जन्म के शुभ अवसर गाए जाने वाले समस्त गीत सोहर छंद में हैं। अवधी, ब्रज, भोजपुरी में मिलने वाले सोहर गीतों में भिन्नता रही है।

उत्साहपूर्ण अनुभूतियाँ 'झूमर', 'जँतसार' एवं 'निर्गुण' गीतों में निराशा, उदासिनता व्यक्त होती है। साहस, वीरता, प्रदर्शन में 'आल्हा' छंद का प्रयोग मिलता है। उदा – 'मोरे पीछुवारावा रे सीरिसिया, हहर, झहर करे ए राम ....'

अलंकार विधान

गीतों या काव्य में शब्द और अर्थ रमणीयता बनाए रखने का काम अलंकार करते हैं। काव्य के क्षेत्र में इनका अत्याधिक महत्त्व रहा है। लोकसाहित्य यह मानव मन के स्वाभाविक उद्‌गार है अत: इनके निर्माण के समय केवल भाव आंदोलित होते हैं। इसलिए कलाकार अलंकार, छंद, शब्दों पर ध्यान नहीं देता। किंतु भाषा की दृष्टि से अलंकारों का महत्त्व है।लोकगाथा, लोककथा, लोकगीतों में अनुप्रास, रूपक, उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है।

अनुप्रास अलंकार

लय और ताल, श्रुतिमाधुर्य के लिए वर्णों या शब्दों की बार – बार आवृत्ति हुई है वहाँ अनुप्रास अलंकार बना है। उदा – 'काँचे इ बंसिया बनवत कन्हैया जी ....।'

उपमा

लोकसाहित्य उपमाओं की अभिव्यक्ति के कारण भाषा एवं भाव सौंदर्य की वृद्‌धि हुई है। चंद्र, सूर्य, चांदनी, पहाड़, पेड़, नदी, कोयल, कागा, फूल– फल आदि प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग किया गया है।

उदा. 'अखियाँ तो तुम्हारी आम केरी फाँके भौंहे चढ़ी कमान।' ....

लोकजीवन एवं प्राकृतिक परिवेश से उपमानों चयन करके भावव्यंजना स्पष्ट एवं सरलतम की गई है। अर्थात् अलंकारों के प्रयोग से केवल बाह्य पक्ष ही नहीं आंतरिक सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति भी हुई हैं।

कलात्मक पक्ष के अंतर्गत कहावतें, मुहावरे, लोकोक्तियों के प्रयोग से लोकजीवन की प्रथा, परंपरा, उत्सव–पर्व, संस्कृति, आदि से संबंधित अनुभूवों को प्रदर्शित किया हैं। अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि बोलियों में उपलब्ध लोकसाहित्य के अध्ययन से ही भाषागत सौंदर्य का परिचय हो सकता है।

8.4 शब्दार्थ

* निचोड़ – सारांश सारगर्भित
* कराह – दु:ख वेदना, पीड़ा
* उपलब्धी – प्राप्ति
* बिरना – भाई
* खइली – खाना –पिना
* कजली – सावन में गाया जाने वाला गीत
* आल्हाखंड – कपि जगनिक द्‌वारा लिखा गया वीररस पूर्ण रासो काव्य

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

8.5 सारांश

साहित्य लिखित हो या मौखिक उसका लक्ष्य होता है भावों विचारों की अभिव्यक्ति करना। अत: लोकसाहित्य इस लक्ष्य से दूर रह सकता है। मनुष्य का मन भावों का अथाह सागर है। उत्सव, पर्व, प्रथा, परंपराओं के पालन का आग्रह, कल्याण की कामना, श्रद्‌धा, आस्था, उत्साह, उमंग आदि की सूक्ष्म अभिव्यक्ति लोकसाहित्य के विविध अंगों से संभव हुई है। लोकगीतों में तो मनुष्य जीवन एवं मनस्थितियों की सूक्ष्मतम व्यंजना विवाह, पुत्रजन्मोत्सव, नामकरण के गीतों में मिलती है। बिदाई के गीतों में व्याकुलता, बेचैनी, नए रिश्तों को संभालने का डर, माता-पिता के व्यथित मन की छटपटाहट व्यक्त होती है।

धर्म संस्कृति, प्रकृति, व्रत, उपसना - विधि, उत्सव-पर्व, प्रथा- परंपरा आदि का मनुष्य के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। अत: इनके कारण ही दया, क्षमा, सत्य, निर्मलता, शुद्‌धता, भक्ति, आस्था, श्रद्‌धा, पारिवारिक, व्यक्तिगत एवं सामूहिक कल्याण, उत्साह, हर्ष, आनंद, उमंग, निग्रह - संयम, सुख - शांति, आयु में वृद्‌धि स्वास्थ्य, संपन्नता की कामना आदि भावों की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में मिलती है।

लोकमानस की सहज, स्वच्छंद, स्वाभाविक, अभिव्यक्ति में भी रस, छंद, अलंकार, लोकोक्ति, मुहावरे आदि के सरस प्रयोग से न केवल भावों की अभिव्यक्ति हुई है बल्कि भाषिक सौंदय भी निखर उठा है। इसी लिए लोकसाहित्य के कलात्मक एवं भावात्मक सौंदर्य की ओर मनुष्य आकर्षित होता है।

8.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* ''लोकसाहित्य में मानव मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है'' स्पष्ट कीजिए।
* आकांक्षा, श्रद्‌धा, हर्ष, प्रेम, उत्साह की सरिता लोकसाहित्य से निरंतर प्रवाहित होते रही है - सिद्‌ध कीजिए।
* लोकसाहित्य के कलात्मक सौंदर्य को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(ख) टिप्पणीयाँ

* लोकसाहित्य में भावाभिव्यक्ति
* लोकसाहित्य का कलात्मक सौंदर्य

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* लोककथाओं में कौन-से भाव आबद्‌ध होते हैं?
* पुत्रप्राप्ति का आनंद नारी को कौनसी उपलब्धि कराता है ?
* कन्यादान - बिदाई के प्रसंगों में कौनसे भाव व्यक्त होते हैं?
* छठ-पूजा, वटसावित्री व्रत करने के पीछे कौनसी भावना जुड़ी है?
* आल्हा छंद में कौनसे भाव अभिव्यक्त होते है?
* लोकसाहित्य में कलात्मक सौंदर्य वर्णन के तत्त्व कौनसे?

(घ) सही पर्याय लिखिए

* लोकसाहित्य की लोकगाथाओं से कौनसी भावना उभरकर आती है?

  (अ) विषम (ब) वीरता-कीर्तिगान (क) द्‌वेष (ड) मत्सर
* लोकजीवन में होली, फग, दुर्गोत्सव में कौनसे भाव स्पष्ट होते हैं ?

  (अ) हर्ष-उल्लास (ब) दुख-करुणा (क) वेदना-पीड़ा (ड) क्रोध-मोह

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

* विविध अवसरों अधिकतर गीतों का गायन कौन कर्ता है?

  (अ) बच्चे (ब) स्त्रियाँ (क) बूढे (ड) परिवार जन

8.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* विविध भावाभिव्यक्ति करने वाले गीतों का संकलन कीजिए।
* 'रस, छंद, अलंकारों का लोकसाहित्य में सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है।' विवेचन कीजिए।
* होली का गीत, जँतसार के गीतों का सस्वर गायन कीजिए।
* धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति कराने वाली एक कथा सुनाइए।

8.8 संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* भारतीय लोकसाहित्य – डॉ. श्याम परमार
* लोकसाहित्य – डॉ. विद्‌या चौहान
* लोकसाहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

इकाई – 9

लोकसाहित्य का महत्त्व

अनुक्रम

9.1 उद्‌देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 विषय - विवरण
   9.3.1 लोकसाहित्य का सामाजिक महत्त्व
   9.3.2 लोकसाहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व
   9.3.3 लोकसाहित्य का राष्ट्रीय महत्त्व
9.4 शब्दार्थ
9.5 सारांश
9.6 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न
9.7 स्वाध्याय - क्षेत्रीय कार्य
9.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

9.1 उद्‌देश

* लोकसाहित्य का सामाजिक, सांस्कृतिक महत्त्व समझाना।
* लोकसाहित्य के राष्ट्रीय महत्त्व को बताकर उसके अध्ययन की प्रेरणा देना।

9.2 प्रस्तावना

लोकसाहित्य एक ऐस भांडार है जिसमें समाज, संस्कृति, धर्म, कर्म - आचार, विधि, जनजीवन अभिव्यक्त होता है। समय समय पर लोकसाहित्य का अध्ययन करने वाले विद्‌वानों ने सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय भावनाओं से संबंधित अनेक बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

प्रथा, परंपरा, रीति, रस्में जाति की संप्रदायों के अनुसार भिन्न भिन्न रहे हैं किंतु इन सबका अंतिम लक्ष्य होता है मनुष्य का विकास। बुरी प्रथा- परंपराओं के त्याग से ही स्वस्थ समाज का निर्माण संभव होता है। प्रेम, उपदेश, सीख, सूचनाएँ, परिस्थितिओं की जानकारी आदि लोकगीतों से सहज उपलब्ध होते हैं।

आचार, संस्कार, रिश्तें, आदर्श, कर्तव्य, श्रद्‌धा, आस्था, सामंजस्य आदि की भी जानकारी लोकसाहित्य के द्‌वारा संभव होती है। इसी लिए लोकसाहित्य का सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय महत्त्व है। उसी की जानकारी इस इकाई द्‌वारा प्राप्त होगी।

9.3 विषय विवरण

मनुष्य का संबंध समाज, संस्कृति, धर्म, अर्थ, देश आदि से रहता है। लोकजीवन में जन-सामान्य की सीधी-सादी एवं सहज अभिव्यक्ति होती है। जीवन की विविध समस्याएँ, उनका हल करने से हर्ष, अकेलेपन की वेदना, विविध घटना प्रसंगों की अभिव्यक्ति लोकसाहित्य में उपलब्ध होती है। परंपरा, प्रथाएँ, संस्कार, उत्सव, पर्व आदि के क्षणों में मनुष्य का मन रसमग्न हो जाता है। अत: मनुष्य के द्‌वारा सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय भावनाएँ लोकसाहित्य में प्रवाहित होते हुए दिखाई देती हैं।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

9.3.1 लोकसाहित्य का सामाजिक महत्त्व

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसका अटूट संबंध रहा है। मनुष्यरहित समाज या समाजरहित मनुष्य की हम कल्पना नहीं कर सकते। समाज की विशाल- व्यापक पृष्ठभूमि लोकसाहित्य का आधार है। मानवी प्रवृत्तियाँ, सामाजिक प्रथाएँ, परंपराएँ, रीति - रिश्तें आदि लोकसाहित्य के प्रेरक हैं। जाति, वर्ग, संप्रदायानुसार सामाजिक आचार, अनुशासन, मान्यताएँ एक दूसरे से भिन्न भिन्न होती हैं। इनका लक्ष्य होता है मनुष्य का विकास। लक्ष्य

समाज की आधारशिला है परिवार। हिंदू परिवार में संयुक्त परिवार व्यवस्था को आदर्श माना जाता था। क्योंकि संयुक्त परिवार में पिता, पुत्र, भाई, बहन, सास, बहू, बेटी, पति, पत्नी, ननद, भावज, देवर, देवरानी, जेठ, जेठानी, चाचा, चाची, दादा, दादी सभी बड़े आनंद से रहते थे। परिवार में छोटे- मोटे झगड़े होते थे किंतु बड़े बुजुर्ग बड़े सांमजस्य से उन्हें मिटाते थे। लोकगीतों में इनका वर्णन मिलता है और प्रेम, स्नेह, आदर, कर्तव्यपरायणता, आस्थाभरी झाँकियाँ भी मिलती हैं।

मनुष्य जीवन के कर्म संस्कारों का पालन करना लोकजीवन का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। अत: जन्म से लेकर मृत्यु तक के विविध संस्कारों का पालन प्रत्येक समाज में अलग अलग पद्धतियों से किया जाता है - जन्म, नामकरण, कर्ण छेदन, अन्न प्राशन, जन्मपूर्व संस्कारों में गोद-भराई, सोहर, छठी पालना आदि के गीत गाने की प्रथा है। सामाजिक संस्कार स्वरूप विवाह, तिलक, तेलना मंडप, कलसधराइ, भाँवर, बिदाई के गीत गाए जाते हैं।

लोकसाहित्य में प्राप्त सामाजिक जीवन से संबंधित वर्णन -

सात्विक प्रेम का वर्णन

भाई- बहन का सात्विक प्रेम लोकगीतों का प्रिय विषय रहा है। बचपन में दोनों एक ही छत के नीचे बड़ी लाड-प्यार से बढ़ते हैं। विवाह के बाद बहन ससुराल में जाती है। बहुत दिनों के बाद भाई जब उसे मिलने जाता है उसके आने के समाचार सुनते ही बहन की उत्कंठा बढ़ती है। वह अपनी सास से एक चादर मांगती है और चादर ओढकर उतरने का वर्णन निम्न गीत में मिलता है -

.. देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया, बीरन मिलन हम जाइबी ....।।

माँ की बेटी को सीख

माँ की ममता बेटी के प्रति अधिक होती है। विवाह के बाद बेटी पराए घर अर्थात् ससुराल में जाती है। उसके लिए तो वहाँ सभी कुछ नया-नया होता है। अत: बेटी को माँ ससुराल में होने वाले कष्टों की, वहाँ के लोगों से अच्छे बर्ताव की सूचना देती है। लोकगीतों में शिव-पार्वती के उदाहरण में पार्वती ससुराल के कष्टों का निवदेन करती है - ''हे माता, सुनो तो, शिवजी के लिए भांग पिसते-पिसते मेरा हाथ घीस गया है, धतूरा मलने से मन व्याकुल हो गया है -

''भांगिआ पीसत, आमा हथवा खिअइले .....।।'

ससुराल के लोगों का व्यवहार

ससुराल में सास, बहू, ननद, जेठ, जिठानी, देवरानी एक साथ परिवार में रहते हैं, उनके कटू एवं कठोर व्यवहार के उदाहरण लोकसाहित्य में मिलते हैं। बहू से अधिक काम करवाना, कटु एवं कठोर उक्तियों से मानसिक पीड़ा, हर पल गलतियाँ निकालना, कोसना, नीचा दिखाना आदि से संबंधित वर्णन लोकगीतों में मिलता है।

पुत्र जन्म पर छोटी बहू का मान बढ़ते देखकर जिठानी के मन ईर्ष्या पैदा होती है। किंतु देवरानी समझदार है वह अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से सबका मन जीत लेती है। वह निम्न गीत में कहती है - ''सासु जे भेजेलि नउनिया त ननदि बरनिया तू रे ...।।'

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

कुप्रथाओं के परिणाम

दहेज प्रथा समाज में दिखाई देती है। दहेज देने में असमर्थ पिता के लिए अपनी बेटी का विवाह समस्या बन जाती है। अच्छा वर मिलना कठिन हो जाता है। बेटी अपने पिता की विवशता समझती है। आर्थिक विपन्न दशा के कारण अयोग्य वर के होथों मे बेटी को सौंप देने से निर्मित दु:ख की दशा का वर्णन अनेक लोकगीतों में मिलता है। अत: बेटी के पिता भगवान से प्रार्थना करते हैं कि जब घर में ऐश्वर्य, वैभव हो तभी कन्या का जन्म हो।

बेटी के जन्म से परिवार में अवसाद

बेटी के जन्म से ही माता पिता को उसके भविष्य के प्रति चिंता निर्माण होती है। पहले से ही बेटी के प्रति घर में नफरत, उपेक्षा होने लगती है। ससुराल में सास-ननद भी उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं। व्याकुल पिता क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं -

'राम जी काहे जनमेली मोर बिटिया ....।'

बेटी के विवाह के लिए काफी घन जुटाना पड़ता है इसलिए गर्भस्थ कन्या को मार डालने की सलाह से माता के मन की छटपटाहट का वर्णन अनेक लोकगीतों में मिलता है। आज भी यही प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई देती है।

सामाजिक विषमता

समाज में गरीब, अमीर तथा विविध जाति, धर्म संप्रदाय के लोग रहते हैं। इन भेदों के कारण अनेक दूषित प्रवृत्तियाँ मनुष्य-मनुष्य को एक-दूसरे से दूर करती है। अमीरों की निम्न, गरीबों की ओर देखने की दृष्टि उपेक्षा युक्त होती है। उनका अनादर, अपमान का वर्णन लोकगीतों मे मिलता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है इसलिए हर्ष, आनंद, उल्लास के क्षणों का उपभोग लेता है। खान - पान, रहन-सहन, आतिथ्य, सामाजिक मर्यादाएँ उत्सव , पर्व, व्रत, उपासना रीति-रस्म आदि का ध्यान रखा जाता है अर्थात् सामाजिकता के साथ लोग संस्कृति, धार्मिक विधिओं का पालन करते हुए दिखाई देते हैं। लोककथाओं, लोकगाथाओं एवं लोकगीतों में इसकी अनेक झाँकियाँ मिलती हैं। लोकसाहित्य के द्वारा लोकजीवन के सामाजिक पक्ष का अध्ययन किया जा सकता है। इसलिए इसका महत्त्व अनन्य साधारण है।

9.3.2 लोकसाहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व

लोकसाहित्य समृद्ध भंडार है। उसके द्वारा लोकजीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। सामाजिकता के साथ-साथ लोकजीवन में सांस्कृतिक महत्त्व का ध्यान रखा गया है। संस्कृति से जुड़े है उत्सव, पर्व, उपासना, व्रत आदि। लोकमानस की धारणाएँ, विश्वास इन सबमें प्रकट होते हैं और इसका संबंध धर्म से जोड़ा गया है। विविध देवा-देवताओं की पूजा विधि, व्रत उद्‌यापन, उपवास आदि के द्वारा मनौतियाँ मांगी जाती हैं। कथा-वाचन से स्वास्थ्य, मन:शांति, समृद्धि की आशा की जाती है।

धार्मिक आचार, विधि का स्वरूप सर्वत्र भिन्न रहा है। किसी की सगुणोपासना तो किसी की निगुर्णोपासना रही है। लोकजीवन में ईश्वर के अवतारों की उपासना की जाती है। संपर्क और व्यवहार में सभी वस्तुओं को पूजनीय माना गया है। मूर्ति हो या पत्थर, उन्हें फूल, अक्षत, कुंकुम चढ़ाने का भाव सर्वत्र रहा है। इन विधियों में लोकमानस के विश्वास और आस्था की व्यापकता दिखाई देती है।

लोकगीतों में तो गंगा, तुलसी, छठी माती, गौरी, पार्वती, कृष्ण, हनुमान, राम, सूर्य, चंद्र आदि देवता रूपों की वंदना का वर्णन मिलता है। देवताओं से संबंधित पूजा-पाठ-व्रत-उपवास के समय लोकगीत गाए जाते हैं। ब्रज, अवध, भोजपुर में 'कृष्णजन्माष्टमी' उत्सव बड़े उत्साह से मनाया जाता है। कृष्ण के कारागृह में जन्म लेने से गोकुल तक पहुँचने वाली समस्त घटनाओं का वर्णन कृष्ण की बालसुलभ लीलाएँ, शृंगार लीलाओं

को सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं।

भादो मास में शुक्ला तृतीया के दिन सौभाग्य अक्षत रखने के लिए और कुमारिका अच्छे वर की प्राप्ति के लिए 'हरितालिका व्रत' करती है। पूरे दिन भर उपवास रखकर, रातभर जागरण किया जाता है, शिव-कथा का वाचन और शिव- पार्वती से संबंधित गीतों का गायन किया जाता है। नवरात्री में दुर्गा - अंबामाता की प्रसन्नता एवं सबके कल्याण के लिए नौ दिनों तर उपवास करके श्रद्धापूर्वक गीतों का गायन होता है। लोक में विश्वास है कि माता को अक्षत चढ़ाने से धन-दौलत, सिंदूर चढ़ाने से अखंड सौभाग्य, तो नारियल चढ़ाने से संतान की प्राप्ति होती है।

भोजपुर में 'छठ की पूजा' का महत्त्व है। यह व्रत बड़ा कठिन होता है। स्त्रियाँ वह व्रत करती है। पूरा दिन वे जल तक नहीं पिती और रात में बिना नमक के भोजन से पारना किया जाता है। संध्या के समय सूर्य देवता को अर्घ्य दिया जाता है। नदी, तालाब के पानी में खड़े होकर तीन-चार घंटों तक यह पूजा करके अखंड सौभाग्य की कामना की जाती है और माता के गीत गाएँ जाते हैं।

गंगा मैया, तुलसीमाता, शितलामाताल सूर्य आदि की पूजा की जाती हैं और मन्नते मांगी जाती हैं। अपनी मनोकामनाओं की पूर्तता के बाद देवी-देवताओं को चढ़ावा चढ़ाया जाता है।

व्रत- उपवास - आराधना - विधि आदि इंद्रिय निग्रह के अच्छे उपाय हैं। इसलिए सामान्य जनजीवन में इनका अधिक उपयोग किया हुआ मिलता है। लोकसाहित्य में इसके उदाहरण मिलते हैं।

संस्कृति से केवल भौतिक ही नहीं मानसिक और आत्मिक संतुष्टि भी मिलती है। प्रत्येक देश की भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का संस्कृति पर प्रभाव पड़ता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसमें परिवर्तन होता है। प्रत्येक पीढ़ी सुख-सुविधा चाहती है उसके लिए आवश्यक है धन-संपदा। आर्थिक सुसंपन्नता पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर है। अत: लोकगीतों में तत्कालीन आर्थिक परिस्थिति का वर्णन मिलता है। सोने के गिलास में शरबत, सोने की थाली में भोजन, सोने के लिए चंदन की लकड़ी का पलंग, उस पर रेशम का गद्दा, मलमल की साड़ी, कुसुंभी रंग की चोली, सोने के गहने, सोने की छुरी, मोतियों का हार, भोजन में चावल, अरहर की दाल, दही, दूध, हलवा, रबड़ी, नारंगी, केला, निंबू, नारियल आदि का लोकगीतों में उल्लेख मिलता है। इससे सामाजिक संपन्नता दिखाई देती है। आर्थिक विपन्नता से संबंधित गीत कम मात्रा में मिलते हैं।

पारिवारिक जीवन में संयुक्त परिवार के कारण अनेक रिश्तों का उल्लेख मिलता है - माता, पिता, सास, ससूर, चाचा, चाची, दादा, दादी, जेठ, जेठानी, देवर, देवरानी आदि सभी अपने अपने कर्तव्य के साथ जुड़े है। परिवारों में हास, उपहास, विनोद, विवाद चलते ही है, उनका गीतों में वर्णन मिलता है।

संस्कृति से जुड़े हुए संस्कारों का प्रचलन संपूर्ण भारत में विद्यमान है। कुछ घरेलु कुछ सामुदायिक संस्कारों का पालन किया जाता है। जन्मोत्सव, नामकरण, कर्ण छेदन, विवाह, गौना, बिदाई के समय स्त्रियाँ गीत गाती हैं। मृत्यु के विविध संस्कारों के साथ ही वृद्ध की मौत पर ब्रज में बतासे, मखाने लुटाते हैं, तो महाराष्ट्र में चिउरा और सुकड़ी बाँटते हैं। सुहागन की मौत को अच्छा माना जाता है।

विवाह की प्रत्येक विधि के समय मंगल गीतों का गायन किया जाता है। बड़े-बूढे, स्त्री-पुरुष सभी इस अवसर सहभागी होकर आनंद प्राप्त करते हैं। लोकगीतों में राम-सीता के विवाह का वर्णन मिलता है -

'गावहिं सुंदर मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता।।'

किसी भी देश-जाति की सांस्कृतिक परंपराओं प्रथाओं उत्सव मेले, त्यौहारों पर उसी संस्कृति की अमिट छाप होती है जो लोकसाहित्य में सुरक्षित है। सदाचार, आदर्श, त्याग, नीति विवेक आदि की सीख लोककथा, लोकगाथा और लोकगीतों में मिलती है। काल एवं समय की सीमा के बंधनों से मुक्त प्रथाओं, परंपराओं में आज तक लोकमानस में अपना स्थान बनाएँ रखा है। इसलिए लोकसाहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व है।

9.9.3 लोकसाहित्य का राष्ट्रीय महत्त्व

साहित्य लिखित हो या मौखिक, उससे किसी भी देश, काल, संस्कृति का पता चलता है। अत: भारतीय

साहित्य इससे अलग नहीं है। भारत की अंतर्गत व्यवस्था प्रदेशों - प्रांतों में विभाजित की गई है। आरंभ में यहाँ राजा, महाराजाओं की सत्ता रही है। साम्राज्य विस्तार के लिए उन्होनें अनेक युद्धों, आक्रमणों के द्वारा शासन में भी परिवर्तन होते रहे। अन्याय, अत्याचार, उपेक्षा, अपमान, स्त्रियों को ही भुगतने पड़े। लोकगीतों में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जहाँ मुगलों से भयभीत हिंदू स्त्रियों ने आत्महत्या कर ली या तो वे सती हो गई। लोकगीतों में पीड़ित नारी- चरित्रों की गाथाएँ उनके त्याग, बलिदान की कथाएँ वर्णित हैं जिनसे सीख मिलती है।

भारत के उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पंजाब, तामिलनाडू, असाम, बंगाल, कलकत्ता, केरला आदि प्रदेश प्रांत है। प्रत्येक प्रदेश की अपनी भौगोलिक सीमा है और अपना अपना वैशिष्ट्य भी है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी लोकगीतों में गंगा, जमुना, सरयु, सोनवा नदियों का उल्लेख हैं। काशी, प्रयाग, अयोध्या, जनकपुर, मारवाड, राजस्थान आदि क्षेत्रों एवं उनसे संबंधित महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लोककथाओं, लोकगीतों एवं लोकगाथाओं में स्थान दिया गया है। ढोला मारू रा दुहा, आल्हा आदि प्रेमगाथाएँ लोक में प्रचलित है।

लोग धर्म, विश्वास, एवं आस्था के कारण गाँव-गाँव, शहर-शहर के विविध जाति, वर्ग के लोक तीर्थयात्रा, यात्रा पर्वों में काशी , प्रयागादि पवित्र स्थानों पर सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रीय एकता और सांमजस्य का यह अद्‌भुत मेला होता है। गंगा स्नान, सामूहिक गंगा आरती के समय किसी के मन में कोई भेदभाव नहीं रहता। सारा जनसागर भक्ति के एक रंग में डूब जाता है। लोकगीतों में बड़ी प्रामाणिकता से इसका वर्णन किया हुआ मिलता है। ऐसे शुभ अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाती है जिनमें उनका हर्ष, आनंद, प्रसन्नता, उल्लास झलकता है -

''आरती गंगा जीव तुम्हारो।
भरि के कमडलु भगीरथ लाए।।......''

मनुष्य सामाजिक संस्कारों के कारण अनेक उत्सव, पर्वों में हिस्सा लेता रहा है। जीवन में आने वाली समस्याएँ छोटे-बड़े लड़ाई झगड़े आदि अनेक कारणों से वह चिंतित होता है। चिंताओं को दूर करने के लिए ही वह उत्सवों में सम्मिलित होकर जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रसन्न बनाना चाहता है। अत: समाज में उत्सव धूमधाम से मनाए जाते हैं। इनसे मनुष्य का सर्वांगिण विकास संभव है। इनसे मन को स्फूर्ति, ताजगी मिलती है। हम सब एक है कि भावना विकसित होती है। जाति, वर्ग, धर्म, भेद इन उत्सवों, पर्वों या तीर्थस्थानों में नष्ट होने लगते हैं। स्वार्थ, व्यथा, द्‌वेष आदि संकुचित भावों से मुक्त होकर मनुष्य आनंद की प्राप्ति करता है।

राष्ट्रीय भावना का विकास, एकता, अस्मिता, देश-प्रेम, त्याग, बंधुता, आत्मीयता की भावना ऐसे प्रसंगों में वृद्‌धिंगत होती है। इसलिए लोकसाहित्य अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

9.4 शब्दार्थ

- हल करना - समस्याएँ दूर करना, उपाय मार्ग बतलाना।
- झाँकी - छबि, चित्र
- भाँवर - विवाह मंडप में किए गए फेरे
- पहलु - पक्ष, स्तर
- गौना - विवाह के बाद पहली बार ससुराल जाना
- सुकडी - चीनी-गेहूँ के आटे से बनी मिठाई

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

9.5 सारांश

लोकसाहित्य का संबंध समाज, संस्कृति, धर्म, देश से रहा है। समाज की आधारशिला परिवार है। पारिवारिक जीवन से रिश्तें, कर्तव्यपालन, ससुराल जाने वाली बेटी को सीख दी जाती है। कुप्रथाओं के परिणाम सामाजिक विषमता, अमीर - गरीब वर्ग भेद, गरीबों की ओर देखने की संकुचित दृष्टि, उनका अपमान, अनादर आदि का लोकगीतों में वर्णन मिलता है। कुछ लोककथाओं में झाँकिया मिलती हैं।

संस्कृति का संबंध लोकमानस - लोकविश्वास से जुड़ा है। धार्मिक विधि उत्सव, पर्व, उपासना, व्रत आदि द्वारा सामुदायिक रूप से आनंद, शांति, प्रसन्नता, उत्साह, समृद्धि की आशा की जाती है। जाति, भेद, वर्ण, धर्म आदि से पूजा पाठ विधि में भिन्नता मिलती है। कृष्ण जन्माष्टमी, करवा चौथ, हरितालिका, छठ का व्रत, दुर्गोत्सव, वसंतोत्सव, गंगा स्नान, तीर्थयात्रा, सूर्य, चंद्र आदि की पूजा की जाती है। व्रत - उपवास, आराधना विधि आदि इंद्रिय निग्रह के अच्छे उपाय है। इसलिए जनसामान्य में इसका अधिक प्रयोग होता रहा है।

जन्मपूर्व- जन्मोत्तर से मृत्यु तक के विविध संस्कारों का पालन कम अधिक मात्रा में हिंदू समाज में किया जाता है। सदाचार, त्याग, नीति, विविक की सीख लोककथा, लोकगाथा एवं लोकगीतों में मिलती हैं। संस्कृति के इन मूल्यों की जानकारी लोकसाहित्य में संभव हैं।

साहित्य लिखित हो या मौखिक उससे देश,काल, संस्कृति का पता चलता है। भारतीय व्यवस्था प्रांतो के विभाजन द्वारा की गई है। अत: साम्राज्य, सत्ता, अन्याय, अत्याचार, त्याग, बलिदान की जानकारी साहित्य से मिलती है।

काशी, प्रयाग, अयोध्या, मारवाड़ से संबंधित महत्त्वपूर्ण घटना प्रसंगों का वर्णन लोककथा, लोकगाथाओं से संभव हैं। लोकधर्म, विश्वास, श्रद्धा, आस्था के कारण लोक तीर्थक्षेत्रों में मिलते हैं। राष्ट्रीय एकाता और सामंजस्य का अद्‌भुत मेला तीर्थक्षेत्रों में होता है। यहाँ सभी जातिभेद, वर्ण, संप्रदाय भिन्न भिन्न होते हुए भी उनमें 'भारतीय एक' होने के व्यापक उदात्त भावना के दर्शन होते हैं।

अर्थात् लोकसाहित्य की समृद्धता के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय महत्त्वपूर्णता स्पष्ट होती है।

9.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

* लोकसाहित्य का सामाजिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व लिखिए।
* लोकसाहित्य के सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
* लोकसाहित्य का सामाजिक महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

(ख) टिप्पणीयाँ

* लोकसाहित्य का राष्ट्रीय महत्त्व
* लोकसाहित्य का सांस्कृतिक महत्त्व

(ग) एक-दो वाक्यीय उत्तरवाले प्रश्न

* समाज की आधारशिला किसे माना जाता है?
* लोकजीवन में किए जाने वाले चार संस्कारों के नाम लिखिए।
* समाज में किस प्रथा के कारण बेटी के विवाह की समस्या बनी है?
* लोकजीवन में किए जाने वाले चार व्रत-पूजाओं का उल्लेख कीजिए।
* यात्रा, मेला, गंगादि का स्नान आदि पर्वों की क्या उपयोगिता है?
* भारतीयों के पवित्र स्थानों-क्षेत्रों के नाम लिखिए।

Comp 5:/E:/nitin panse/Uttar Maharashtra Vidayapeeth MA Hindi 2nd Year (Second Proof dt.05-02-2014)

(घ) सही पर्याय लिखिए

* समाज की आधारशिला किसे माना जाता है ?

  (अ) आचार (ब) परिवार (क) अनुशासन (ड) परंपरा

* लोकजीवन में तीर्थयात्रा, मेला, पर्वों का क्यों महत्त्व है?

  (अ) राष्ट्रीय एकता (ब) अनुशासन (क) आदर्श (ड) नैतिकता

* संस्कृति का संबंध किससे जुड़ा हुआ होता है ?

  (अ) अमीरी (ब) गरीबी (क) लोकविश्वास (ड) स्वार्थ

* छठ की पूजा का महत्त्व किस प्रदेश में अधिक रहा है?

  (अ) भोजपुर (ब) राजस्थान (क) बंगाल (ड) कलकत्ता

9.7 स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य

* लोकसाहित्य का सामाजिक महत्त्व पर एक निबंध लिखिए।
* 'संस्कृति के मूल्य' लोकसाहित्य में ही उपलब्ध है – स्पष्ट कीजिए।
* विवाह की विविध विधिओं का निरीक्षण कीजिए।
* विवाह के समय गाए जाने वाले गीतों को सुनिए और उनका अर्थ समझने का प्रयास कीजिए।
* राष्ट्रीयता एवं सामंजस्य के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

9.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

* लोकसाहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
* लोकसाहित्य सिद्धांत और प्रयोग – डॉ. श्रीराम शर्मा
* लोकसाहित्य – डॉ. विद्या चौहान